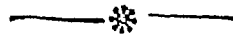


विज्ञापन ॥

इस महीने अर्थात् मार्च सन् १८८८ ई० पर्यंत जो पुस्तकें बेचने के लियेतय्यार हैं उनमेंसे कुछ इस सूचीप में लिखी हैं और उनका मूल बहुत किफायत से घटाके नियत हुआ है और व्योपारियों के लिये और भी सस्ती होंगी जिनको व्योपार की इच्छा हो वह मुंशीनवलकिशोर के छापेखाने मुकामलखनऊ हजरतगजकेपते खत भेजकर क्रोमतका निर्णयकर लें ॥

नामकिताव	नामकिताव	नामकिताव	नामकिताव
(अ)	ऐक्ट २६ सन् १८६७ ई० ऐक्ट मजमूआ अवधल- गान १६ सन् १८६८ ई० ऐक्ट १८ सन् १८६९ ई० ऐक्ट २४ सन् १८७० ई० ऐक्ट १६ सन् १८७३ ई०	गर्गसंहिता गरुडपुराण प्रेतकल्प गणितप्रकाश चारोभाग (च) चित्रचन्द्रिका चाणक्यनीति चौरासीवार्तिक	दास्तान अमीर हमजा दैवज्ञाभरण दोहावली रत्नावली (न) निर्णयसिंधु नाममाहात्म्य नानार्थनवसग्रहावली नवीनसंग्रह नवरत्नभाष्य निघंटभाषा नारीबोध
(इ)	(क)	(छ)	(प)
इलाजुल्गुरवा ईशावास्यवाजसनेय सं- हितोपनिषत् इतिहास तिमिरनाशक इगलिस्तानका इतिहास	कायस्थकुलभास्कर कायस्थविनोद कर्मविपाकसंहिता कृष्णबाललीला कालिजरमाहात्म्य कृष्णसागर कथा श्रीगंगाजी कैवल्यकल्पद्रुम कृष्णप्रिया कविकुलकरपतरु कवितरंग केनोपनिषत् काव्यसंग्रह कवित्तरत्नाकर दोभाग कृष्णचालीसी	(ज)	(प)
(उ)	(ङ)	जातकालकार जातकाभरण जगद्विनोद जातकचन्द्रिका (त) तुलसीद्वाराभाषण तथरी हुलहरुफ उर्दूबना०	परमार्थसार प्रेमसागर पारसभाग प्रेमरत्न प्रेमामृतसार पद्मावतभाषा पत्रासवत् १६४५ पटवारियोंकी पुस्तकके तीनो भाग प्रबोधचन्द्रोदयनाटक पञ्चतैपिगीना० वक्रै० प्रेमप्रकाश
(ए)	(रा)	(द)	
ऐक्ट १ सन् १८७६ ई० ऐक्ट १० सन् १८८१ ई० ऐक्ट १० सन् १८७२ ई० ऐक्ट १४ सन् १८८० ई० ऐक्ट १० सन् १८८० ई० ऐक्ट १० सन् १८५६ ई० ऐक्ट १० सन् १८६२ ई० ऐक्ट २० सन् १८६६ ई०	गुटका तीनोखण्ड	दुर्गास्तोत्रमूल व मट्रीरू दुर्गायननवकाण्ड देवीभागवतभाषादार- होस्क ५	

मिताक्षरा स० प्रायश्चित्त काण्डका विज्ञान ॥



पाठक महाशयों को ज्ञातव्य है कि इस ग्रंथ की रचना और छापेद्वारा प्रकाश होने मध्ये यद्यपि राजा महाराजा आदि अनेक सज्जनों की कृपा दृष्टि धन दान की सहायता द्वारा आरूढ हुई परच अंतिम सिद्धि को फतेह (विजय) केवल मुंशोनवलकिशोर साहब (सो आई ई) रईमप्रवर लखनऊ के हाथ होनहार थीं सो अब हुई विक्रमादित्य के सवत् १९४४ उन्नीससौ चवालिस में मुंशी साहब ने पूरा कराकर प्रकाश किया आगे को मुंशोनवलकिशोर जब चाहें तभी वारवार इसको छापेंगे कि जिससे उन सब सामान्य विद्वानों का उपकार होयजिनको ऐसा यथ अलभ्य रत्न हाथ नहीं आसता था—इसकी रचना का प्रारंभ सन् १८७२ ईसवी में मर्यादा प्रिय पंडित दुर्गाप्रसाद शुक्ल कान्यकुब्ज ने निज इच्छाचार से आगरा बेलनगज में श्री यमुना तटपर किया जिन को जन्मभूमि शहर शाहाबाद जिला हर्दोई मुल्क अवध राज लखनऊ में थी ताको वाल अवस्था में विद्याच्यसन से संत्यक्त करि आगरा में सुखवासी हुये—अपने रचेहुये पाडुलेख (मसौदा) की प्रवृत्ति होनी चाहिके छापे का यंचस्थान कल्पना करिके सन अठारह सौ उन्नासो अस्सी तक सात आठवर्ष में जैसे जैसे आचार व्यवहार दो काडों का स्वाधीनता से छापिके कुछ पुस्तकें प्रकाश करि पाई—उसी अवसर में श्रीमन्महागणा मेद पाटेग्रर श्री सज्जनसिंह उदयपुर अधिष्ठित वीरेश ने धन दान की सहायता देकर व्यवहार मर्यादा परिपाटी बृहत्कांड पूरा करवाया किंतु उस समय व्यवहार शास्त्र अवलोकन को आकाक्षा उनको विशेष थी चाहते थे कि शीघ्र पूरा होय इसी हेतु मध्यम काल में सहायता उदय हुई थी—इसी प्रकार पहिला आचार कांड राजाधिराज शाह पूरा मेवाड ने पूरा करवायाथा—तथापि सात वर्ष में दो कांडो को समाप्ति करके कर्ता के चित्तने उपराम लिया और व्यवहार कांड के अंतमें समस्या लिखी कि अगले बहुत बड़े प्रायश्चित्त कांड का प्रारंभ नहीं करेगे कि जब तक कोई धरणीपाल अपने ऊपर इसका पूरा भार न भेने—किंतु वही पूरा भार आज मुंशी नवलकिशोर ने अपने ऊपर स्वीकार सहित भेला अर्थात् उक्त समस्या लिखे पीछे ग्रंथ कर्ताने इस कांडको रोकिये सन् १८७२ ई० तक पांच वर्ष छोटे मोटे वैद्यक आदि विद्याओं के अद्भुत ग्रंथों का पाडु लेख निर्माण करते हुये पूर्व तुन्य एकासन वृत्ति से कालक्षेप किश—यद्यपि इसी मध्यम काल में परोपकारी मुंशी नवलकिशोर ने यशोवृत्ति का विस्तार करतेहुये ग्रंथकर्ता को अपने सन्मित्री के द्वारा तथा चिट्टियों से आवाहनका संवोधन भेजिके अभिजाप प्रकट करी थी कि लखनऊ में आकर अपना अधूरा ग्रंथ पूरा करी तथापि (सत्यप्रतिज्ञेनपुन.प्रतिज्ञा) इस आग्रह से रचयिता ने यही उत्तर भेजा कि आगरा में प्रारंभ होचुका था समाप्ति भी इसी जगह होनी चाहते हैं यन्कि उदयपुर के महाराजा वीरेशो ने जब जब आवाहन के आज्ञापत्र भेजे कि राजकीय यचान्य का अधिष्ठान पद स्वीकार हो तो शीघ्र चले आवो या अपने इष्ट मित्रो को भेजो जो इस कार्य को करके—नरुह केवल समा प्रतिज्ञा के प्रतिबंध से अपने मित्र वशोधर वाजपेयी जिनकी नौकरी यहा छुटिचुकी थी त्नेहसे उनकी कैशियन की रिपोर्ट भेजि मंजूरी कराकर उस पदपर उदयपुर भेजिटिया आगम नहीं होडा—निमसे आग्रहो समाप्त हुनाने बिना यहां बैठेही प्रतिज्ञा पूरी करै तो पीछे कोई शक न रहेगी—इस पर श्रीमान् मुंशी नवलकिशोर ने ग्रंथकर्ता के साथ अपने दो संबंध माने कि जहां पर शासनो मुन्यान होने से जिन्ह करके का में प्रतिज्ञा निवासी और जहा मेरे बहुत बढिया स्वजन इष्ट मित्र वकील व रईम मुंशी गिरिधरनाथ शाह इष्टम भी उपस्थित है और जहा मेने (भागवत विद्याग्रम नाम) महत् पाठशाला या आश्रम निकल करे भागवत जनों के निमित्त से करवाया जिसके प्रबंध में श्री मुंशी गिरिधरनाथ साहब वकील अदालत आगरा आदि सज्जनों

जन स्वकीय उत्साहो से सन्न रहते है उनकी भी सुरमति मर्यादा परिपाटी यथ पूरा करवाने पर आहूठ पाई जाती है तथा इसने मुखवास लेकर धर्मशास्त्र का अनुवाद प्रकाश किया १—और जिस देशमे इसकी जन्मभूमि कहाती है उसी लखनऊ मुल्क अवध में सर्व श्रेष्ठ सपन्न मेरा एक कारखाना और पूरा मुखवास है २ ऐसे दोहरे सबध को मैत्री से इसकी अधूरी प्रतिज्ञा पूरा कराना निपट मेराही काम है—तिमसे पाच सात सहस्रसंख्या धन लागति मे लगाकर कार्य पूरा करवाया—उक्त मुंशी साहब जो सब देशो मे पूज्य विख्यात है तिनको परम राज भक्तिमय शिष्टाचार के प्रतिकार मे साम्राज्य लक्ष्मी श्रीमती विक्टोरिया राजराजेश्वरी महागनी को सदा-ज्ञा से (सी आई ई) इन तीन शुभ शब्दो की विशेषण प्रशस्ति लाभ हुई—तिनको उदारता मे सबसे अधिक विशेषता यह ठहरी कि कर्ता को सतुष्टि तुल्य धनका दान आगम बैठे कर्ता को देकर सोते उत्साहको जगाया फिर यथ के छापने मे धन जुदा लगाया ऐसा हर एक से होना बडा दुर्घट है यह कर्ताकी लेखनी आप कहती है—पाठक जनो को संबोध कराया जाता है कि जैसा नक्ष्त्रा शुद्ध शुद्ध का सब जिल्दो के साथ लगाया जाय उसी से देखि देखि अपनी जिल्दो को शोधिले अर्थात् नक्ष्त्रे के अनुसार पृष्ठ पंक्तिया ठूठिके जो जो शब्द वा अक्षर अशुद्ध हो तिनके ऊपर ऐसा—दो छेवे का प्रदर्शक चिह्न देकर उसी पंक्ति के सामने (आयुपर) कोरे हासिये पर शुद्ध अक्षर वा शब्दो को बनाइ लेवे और अशुद्धको भी न काटै तद्रूप बना रहने दें अथवा कहीं उसी अक्षर में माचाविट्टु लगाने से बनिजाता है या कही अधिक अक्षर माचाहरतार से मिटाकर शुद्ध होजाता है यद्वा, कही चुटि रहिगई है सो ' ऐसा चिह्न देकर आयु पर लिखि देनेसे इत्यादि जहा जैसा सम्भव हो सो करौ—इसके उपरालू एक सन्देह निवारण पत्र है तिसमे (पुनर्निर्मित नाम) चक्र देखो जिसमेमोह सचह विषय भेद जुदे जुदे धरे हैं उन पर भी प्रीति करौ—यह परिश्रम केवल दशरोज करने से सब जिल्द शोधो जायगी फिर पठते समय शुद्धाशुद्ध चक्र अवलोकन की जहूरत न होगी•छापेखानोमें अशुद्ध रहजाने की शुद्धि इसी रीतिसे होती है•शोधन कर्मसे केवल अपनाही आगम नहीं किन्तु उतनाबडा पुण्यफल भी प्राप्त होता है कि जैसा किसी घायल अंग भग आदि पुरुष के चिकित्सा आदि प्रयत्नो से अंगपूरे कर देनेका फल होता था प्राचीन मठ मन्दिर धर्मशाला आदि टूटे फूटेकी मरम्मत कराने से फल होता है—ऐसेही विकृत पुस्तक आदि शोधिकेसाग शुद्ध कर देने से फल होता है क्योंकि सच्छास्त्र हैं सो वेदमय ब्रह्मका स्वरूप है इनकाजन्म सुधारने से परब्रह्म की सन्तुष्टि होती है दूसरे जो कोई असमर्थ उसको पाठकर सुखपाते है तिनके पुण्य कर्मोका कुछफल भागशोधक पुस्तको पहुँचता है यह समुक्तिके दशरोजका परिश्रम सुज्ञानी को करना चाहिये—इसी न्याय के अनुसार ग्रन्थकर्ताने निज एक जिल्द सर्वथा शोधि के वर्तवै को पामही अपने रखी उसके सिरे पर (ग्रन्थकर्ता ने अपने किये ममोदा के समान शोधो) इतना लेख मोटे अक्षरो से परिज्ञान के निमित्त से लिखदिया है—कारण इमका यह था कि यद्यपि साम्राज्यमुहूर्द् मुन्शी नवलकशोरने वारम्बार यही कहा कि रचयिता आपही लखनऊ मे रहिकर नित्यप्रति छपेहुये प्रूफ (पूर्वरूप) जो कागद एक सबसे पहिले छापिकर नमूना पठिके देखा जाता है तिमका शोधन किया करै (क्योंकि जो पुस्तक जिसकी कल्पना से बनीहो उसीके द्वारा बहुत अच्छी शोधन होती है) यदि यही बानक होसक्ता तो फिर शुद्धाशुद्ध चक्रो की जहूरत बाकी न रहती—परच ऐसा बानक नहीं बना किन्तु कर्ताका उम जगह जाना न होसका सिर्फ छपिजाने वाद पुस्तक देखनेका आगरा में पहुँची तब शोधन कर्मके यही लेख अशुद्ध शुद्ध चक्रों सहित लखनऊ भेजागया—कर्ताने काष्ठ गिनिके गालित्य सख्या का हिमाय देखा कि प्रतिपृष्ठ एक एक अशुद्धि पाई जाती है अर्थात् किसी किसी पृष्ठ में दो चार इकट्टी और कहीं दो चार पृष्ठोंमें एक भी अशुद्धि नहीं है (यद्यपि विद्वान् पुरुष अच्छी भाँति जानते हैं कि प्रायः पुस्तको की प्राँत उतारने वाले वैतानक निपिकार या छापे का साचा टैप जमानेवाले विवेचन शक्तिसे विहोन होते हैं इसीसे बहुधा पुस्तका मे गालित्य टुये त्रिना नहीं रहता है) इसी हेतुमे इस रचयिता को मसौदा लिखते समय यह ध्यान लगा रहता है कि उनमें किमा अक्षर का स्वरूप ऐसा मन्द या भ्रामक अगभग न होय जिससे पंछे लिपिकार आदि अच्छे न पडिसकें जो त्रोग का औरही

कुछ निखै छपै—इसीलिये तोनि वार शोधिके व्यर्थ विदुमात्र को भी हरिताल से भ्रान्ति मेटि देता है कि दर्पण के तुल्य पटाजाय (यद्यपि विद्वानो के निकट किसी एक अक्षर या मात्रा का भूलसे रहिजाना कुछ अशुद्धिमे नहीं माना जाता क्योंकि इतना तौ अत्यन्त शोधने पर भी कहीं दृष्टिचूक से रहिजाता है) परव ऐसी दशा पर भी फिन्तने उदासी केवन इस बातमे ठहिरी कि प्रायशः वैतनिक लोग कुछ मात्रा वा अक्षर अपनी और से अधिक

पृष्ठ	श्लोक	अशुद्ध जोवैतनिक प्रमाद से छपा	शुद्ध पाठ जो मसौदा मे दर्पणतुल्य
२	२५	अत्रारथः	अक्षरार्थः
४	१८	जमसूतक	जन्मसूतक
८	२४	मुर्दानेजायँ	मुर्दानेलेजायँ
६	७	चिराचि	चिराच
६	१७	दिमुखाः	दिङ्मुखाः
१६	७	मास	मास
२०	२८	का स्थिरत्व	का अस्थिरत्व
२२	३	निर्वृत्यापि	निहृत्यापि
२३	३	पिचुपा	पिचुपा
२३	१२	मातापितोरिति	मातापित्रोरिति
२४	२४	सर्वकोअर्थात्देवै	अर्थान्सर्वकोदेवै
२५	७	अत्रिभक्तियन	अत्रिभक्तयन
३१	१८	सिद्धिक्रिये	सिद्धिक्रिये
३२	२६	बहुताकाल	बहुतकाल
३०	१८	सस्यनैनिपि ध्यते	सस्यनैनि- पिध्यते
३०	१८	सस्यशेसुतिका- यास्तु	सस्यशेसुतिका- यास्तु
३७	२४	द्विजाश्वदायण	द्विजश्वदायण
३७	३०	चिद्येतेषु	चिद्येतेषु
२२४	१५	ये श्रोता ब्रह्मोज्ज्वला	अयेश्रोता ब्रह्मोज्ज्वला

धर देते और कहीं विरले अक्षर को निज प्रमाद या चातुर्य से पलटि भी देते है—इसका दृष्टान्त जैसा इस कांड के पहिले पृष्ठ मे भूमिका के श्लोक सात है उनके द्वितीय श्लोक मे (योह्यस्यजगतःस्रष्टा) यही तीसरा पाद है तथा स्रष्टा के स्थान पर अष्टा बदलि के धर दिया— इसी तरह बहुधा प्राचान ऋषि वाक्यो मे अक्षर मात्रा की अधिकता और व्यत्यय देखिपरा इसका भी प्रमाण यहां बीस केठे का चक्र देखा जो विद्वानो के समझने को अशुद्ध शुद्ध पत्रो से चुनिकर जुदा बना— यह नमूना केवल इस प्रेरणा (ताकीद) के निमित्त से इस जगह धरा गया है कि ऐसाही अशुद्ध शुद्ध चक्रों मे सर्वत्र समुझिके अपनी अपनी जिल्दें शोधिलेना—तथा प्रतिपृष्ठके केवल एक अशुद्धि शोधने का परिश्रम अति छोटो बात समुझिके—परमोदार मुंशी नवलकिशोर के महान्त गुणपर यह धन्यवाद करना चाहिये कि जिसने ऐसे अनभ्य रत्न ग्रथ को पूरा करवाकर थोड़े मूल्य से प्रकाश किया जो पहिले बहुत मोल देने की शक्ति वा इच्छा होते हुयेभी हाथ नहीं आता या सम्कृत मूल रूप हाथ आता तो समुझा नहीं जाता था—उक्त मुंशी वगैरके ऐमेही उदार चरितो सहित सर्वेश्वर्य सदा चिरजीव रहे शीशःपायात् इति-

संवत् १९४४ विक्रमी ॥

सन् १९८८ ई० जनवरी ॥

परिदित दुर्गाप्रसाद धर्मशाम्बो

मिताक्षरा स० प्रायश्चित्तकांड का प्रथम सूचीपत्र ॥

परिच्छेद०	विषय	पृष्ठ	पंक्ति	परिच्छेद०	विषय	पृष्ठ	पंक्ति
०	मगनाचरण—ग्रथस्यास्य प्रयोजनच	१	३		(इति अध्यात्मप्रकरण चिदण)		
०	ग्रथस्यास्य भूमिकाच—तत्र किंकिं वस्तुव्यर्थते				(परिच्छेदमयं समाप्त)	२६	
१	मृतवाल वृद्धादीनां दाहादिकर्म विवेकः	१	१०	२१	कर्मविपाकानां सर्वेषां विवेकः	२४०	७
	प्रथमः परिच्छेदः	२	२५	२२	सद्यःकर्तव्य प्रायश्चित्ताधिकारिणालक्षणानि	२५२	१८
२	जन्ममरणयोः सूतकभेदाश्चतुर्वर्ण्य भेदात्			२३	अकृतप्रायश्चित्तपुसाभाविनगकनामलक्षणानि	२५७	२
	द्वितीयः परिच्छेदः	३३	१		(इति नरकादिगति विषयिकविपरिच्छेद)		
३	सद्य शौचानाव्यवस्थाभेदाः तृतीयः परिच्छेदः				(मय प्रकरणं समाप्त)	२६३	
४	सूतकं विनापि ऋशुचिस्पर्श दोषभेदाः	७०	१	२४	पंचमहापातकानानाम लक्षणनिर्णयः	२६४	७
५	शुद्धिसम्पादनहेतु सामान्यानां स्वरूपसख्या	८१	१	२५	अतिपातक पातकादीना लक्षण भेदाः	२७२	७
	भेदाः			२६	उपपातकादीना सर्वपापाना लक्षणभेदाः	२८०	११
	(इत्याशौचप्रकरणं पंचपरिच्छेदमयं समाप्त)	८६	१३		(इति महापातकादि सर्वनिमित्ताना)		
६	आपत्कालिकजीविकादि वृत्त्यंतर धर्मभेदा	६३			(प्रकरणं च परिच्छेद मयं समाप्त)	२६०	
७	वानप्रस्थाश्रम धर्मभेदाः	६३	११	२७	ब्रह्महत्यायाः प्रायश्चित्त भेदाः	२६०	१७
	(इति प्रकरण द्विपरिच्छेदमयं समाप्त)	१०१	१७		असमाप्तेषु द्वादशवर्षे क्वचित्कर्म सिद्धि		
	आपद्दुर्मसाहृत			२८	कारणानि	३०६	२०
८	संन्यासग्रहणे परिव्राजकस्वरूप लक्षणभेदाः	११८		२९	उक्तप्रायश्चित्तस्य विध्यन्तरानुकल्प भेदाः	३१७	१४
९	संन्यासि हृदिज्ञानोत्पत्तिप्रकारनियमाः	११८	१५	३०	अन्यथापि ब्रह्मवध प्रायश्चित्तम्यातिदणः	३२८	७
१०	परमात्मनः सृष्टिग्रहण प्रकाराः	११३		४	(इति ब्रह्महत्याप्रकरणं चतु परिच्छेद)		
११	गर्भस्थस्य शरीरक व्यवस्थाज्ञानं	१४३		२५	(मय समाप्त)	३३३	
१२	ब्रह्मोपामनायाः प्रकार भेदाः	१६०		५	मुगपाने सकामकृतपापे प्रायश्चित्त भेदाः	३३४	७
१३	ईश्वरस्य विश्वरूपिताया निरूपण	१८०		१४	अकामत मुगमद्यादीना प्रायश्चित्तभेदाः	३४०	१७
१४	पूर्वाक्ताया जगदुत्पत्तेः प्रपच विस्तारः	८५		३३	मुनेतर मद्यजाताना प्रायश्चित्त भेदाः	३४६	५
१५	कर्मबोजाना विपाक प्रपंच विवेकः	१६१		३३	(इति मुगपान प्रायश्चित्त प्रकरण)		
१६	बोजवापादिकर्मानन्तर सर्वव्यापित्वप्रकारा	१६७		६	(समाप्त चिदपरिच्छेदमय)	३५१	
१७	भोक्तृपदत्वं देवादियोन्तित्वं वागच्छतीत्या	२०४		१५	मुवर्षोपहार प्रायश्चित्तभेदाः	३५१	१८
	दि विवेकाः			३५	अज्ञानात्सु वर्षोपहारे प्रायश्चित्त	३५३	७
१८	ईश्वरस्य सर्वगतस्य प्रत्यक्ष लक्षणानिचाच	२११		१२	(इति मुवर्षोपहारे प्रायश्चित्त प्रकरण)		
१९	तत्त्वानामुत्पत्तिक्रमः स्वर्गादिमार्ग विवेक	२१७		२	(समाप्त द्विपरिच्छेदमयं)	३५६	
	श्वास्मन्	२२३		३६	जनन्यादि पुनडात्मन प्रायश्चित्तभेदाः	३५६	७
२०	अग्निमाद्यष्ट विभूति प्रायश्चित्त येनान्याकेन				(इति पुनडात्मन प्रायश्चित्त प्रकरणं च परिच्छेदं समाप्तं)	३५९	
	मे चनायन	२३३		१७	सर्वाणां प्रायश्चित्तभेदाः	३६१	७

मिताक्षरा स० प्रायश्चित्तकांड का प्रथम सूचीपत्र ।

परिच्छेद	विषय	पृष्ठ		परिच्छेद	विषय	पृष्ठ	
		पृष्ठ	पंक्ति			पृष्ठ	पंक्ति
३८	पतितस्य कन्यायाः परिग्रहे प्रतिप्रसवधर्मः (इतिससर्ग प्रायश्चित्त प्रकरणं) (समाप्तं द्विपरिच्छेदमय)	३६४	१४ ५१		परिवित प्रायश्चित्तं • वार्धुष्य प्रायश्चित्तं • लवणक्रियाच प्रायश्चित्तं (इत्युपपातकचयं) (इत्युपपातक चयाणाप्रकरणंसमाप्त) (परिच्छेदैकमयं)	४७६	१६
३९	स्त्रीशूद्रादि प्रायश्चित्त विधानं—प्रतिलोम जातिवध प्रायश्चित्तानिच (इ तप्रकरणंच परिच्छेदैकमयसमाप्त) (इत्यशेषमहापातकादीना वृहत्प्रकरण) (चोत्तविंश १६ परिच्छेदमयं समाप्तं)	३६८	२		क्षत्रियादिवर्ण चयवधो पपातक प्रायश्चित्त भेदाः अकुलटा कुलटादिमन्द स्त्री वध भेदाना प्रायश्चित्त भेदाः (इति ब्राह्मणेतर नरहिसामय प्रक-) (रणं समाप्तं द्विपरिच्छेदात्मक)	४८२	७
४०	गोहत्यायाः प्रायश्चित्तैकदेश विभागः	४०२	२		नरेतर सर्वप्राणि हिमाया प्रायश्चित्तभेदा (इति नरेतर सर्वप्राणिहिंसा प्रकरणं) (समाप्तं परिच्छेदैकमय)	४८९	७
४१	सकाम गोवधादि प्रायश्चित्ताना भेदाः	४०७	१६		वृत्तादि सर्ववनस्पति विनाशन प्रायश्चित्त भेदाः पुंश्चल्यादृष्टिभिर्वाटपुसुपस्यप्रायश्चित्तभेदा. (इति म्यावर हिंसादि प्रकरण) (समाप्त द्विपरिच्छेदमयं)	४९८	१४
४२	बहुकर्तृभिर्हननादि गोवध भेदानां प्राय- श्चित्तभेदाः बन्धन दाहवाहादिकर्म दोषैर्गोवध भेदाना प्रायश्चित्त भेदाः (इति गोवध प्रायश्चित्त प्रकरणंचतुः) (परिच्छेदमयं समाप्तं)	४१६	५		वर्षस्कंदनस्यजने प्रतिश्रवालोक्रनादेः नि- दितोपजीवनस्यनास्तिक्यच प्रायश्चित्तभेदा अवकीर्ण ब्रह्मचर्यादीना प्रायश्चित्त भेदा, (सकल हिंसा पवादश्च) ब्रह्मचारिणो व्रत नियम भगेपि प्रायश्चित्त भेदा मिथ्यादोषा गोपकस्य-मिथ्याभिश्मन्म्यच प्रायश्चित्त भेदा रजस्वलाद्यगम्यागमने-रजस्वनायाश्च नियम भगेपि प्रायश्चित्त भेदा (इति व्रतनेप प्रकरण पचपरिच्छेद मयममाप्तम्)	४९८	१४
४३	गोवध प्रायश्चित्तस्यै वातिदेशिक विषयाः सर्वेषूपपातकेष्वेव ॥ (प्रकरणंचासौ स्वयमेव)	४३२	१३		मुतविक्रयाद्यनिष्ठ विक्रयोपजीवनस्य प्राय- श्चित्त भेदा. अयाज्य ब्राह्म्यादि याजन • वेदप्रायन • मर्गणा ज्ञाटनाद्यभिचरण • शरणागतन्याग मृपाणा	५१०	७
४४	संस्कार विहीन ब्राह्म्याना प्रायश्चित्तानि (प्रकरणंचासौ स्वयमेव)	४३६	७				
४५	चौर्योपपातकप्रायश्चित्त—स्वर्णमत्नेयव्यति रिक्तचौर्यस्याचभावः (प्रकरणंचासौ स्वयमेव)	४३६	५				
४६	अपय्याविक्रयं ऋणानपाक्रिययोः प्रायश्चित्त अनाहिताग्निता याश्च (प्रकरणंचासौ स्वयमेव)	४४५	७				
४७	परिवेचादीना भृतका ध्यापकादीनांच प्राय- श्चित्तभेदाः (प्रकरणंचासौ स्वयमेव) नचैतेषुपंचसु प्रकरणत्व नियम.	४४८	६ ६१				
४८	परदार गमन प्रायश्चित्तभेदाः—जनन्याद्य गम्यागमन व्यतिरिक्त विषयोऽचक्षेयः	४५३	७ ६२				
४९	स्त्रीणांच व्यभिचरिताना प्रायश्चित्तप्रकाराः (इतिपारदार्य प्रायश्चित्त प्रकरण) (समाप्त द्विपरिच्छेदमयं)	४६०	६ ६३				

परिच्छेद	विषय	पृष्ठ	पंक्ति	परिच्छेद	विषय	पृष्ठ	पंक्ति
	निमित्तानां प्रायश्चित्त भेदाः	५५३	२		सत्कार विधिश्च	६४६	४
६४	पितृमातृ सुतत्याग कन्यादूषणादि दशोपपातक विशेषाणां प्रायश्चित्त भेदाः	५५७	१८	७७	पर्यदोनुमत प्रायश्चित्त ग्रहण विधानं (इति सर्वप्रायश्चित्तानां साधारण विधिप्रकरणं समाप्तं चिपरिच्छेदमयं)	६५७	२
६५	स्वाध्याय त्यागाद्युपपातकाष्टक निमित्त विशेषाणां प्रायश्चित्त भेदाः	५६१	२०	७८	गुणपापानां रहस्य प्रायश्चित्त विचारः— ब्रह्मवध प्रायश्चित्त विधान सहितः	६६३	
	(इत्यौचित्य त्यागप्रकरणं चतुःपरिच्छेदमयं समाप्तम्)	५६५		७९	ब्रह्मवध व्यतिरिक्त महापातकानां रहस्य प्रायश्चित्त विधानं	६६४	५
६६	दुर्व्यसनासक्तिनामोपपातकस्य प्रायश्चित्त भेदाः	५६६	२	८०	उपपातकादीनां रहस्य प्रायश्चित्त भेदाः	६६९	२
६७	आत्मविक्रयाद्युपपातक चतुष्टयस्य प्रायश्चित्त भेदाः	५७०	२	८१	सर्वपातकादि हरसाधारणपवित्रमंत्र जप होमादीनां स्वरूप प्रकाशः	६७२	८
६८	असत्प्रतियह भार्याविक्रय अनाश्रमवासाद्युपपातक षट्कस्य प्रायश्चित्त भेदाः (इत्यनिष्टसग सेवनादि प्रकरणं समाप्तं चिपरिच्छेदमयं)	५७६	७	८२	सांतपन कृच्छ्रस्यानेकव्रत भेदानालक्षणानि	६७४	२
६९	जात्यैव स्वभावेन वा दुष्टान्नपानादीनामक्षणे प्रायश्चित्तभेदाः	५८१	२३	८३	पर्यकृच्छ्र•तप्तकृच्छ्र• पादकृच्छ्राद्यानां कृच्छ्रव्रत भेदानां लक्षणानि	६७५	२
७०	अशुचिभिः सस्पृष्टस्यान्नपानादेर्भक्षणो प्रायश्चित्त भेदाः	५८५	१०	८४	प्राजापत्य कृच्छ्रादीनां बहुभेदानां स्वरूपाणि विधानं च	६७६	२
७१	भावेन कालेन वा दूषिताद्यन्न भोजन प्रायश्चित्त भेदाः	६०३	११	८५	चांद्रायणसोमायन मामिकव्रतभेदानां विधानं पूर्वोक्त व्रतादीनां सर्वेषां अनुष्ठान समयोचितक्रियाविधि प्रकाशः	६७७	१४
७२	आह्वानभोजन दोषस्य प्रायश्चित्त भेदाः	६११	१०	८६	(इति सर्वकृच्छ्रादिव्रत भेदानां • दानजप होमादीनां च स्वरूप विधायकं प्रकरणं पञ्च परिच्छेदमयं समाप्तं)	६७८	४
७३	परिग्रहदोष दूषितान्नभोजनस्य प्रायश्चित्त भेदाः (इत्यभक्ष्य भक्षण प्रकरणं समाप्तं पञ्च परिच्छेदमयं)	६२५		८७	सर्वत्रैव सर्वैरपि व्रतभेदाः समन्वयेनैवांशुसाधितैः शुद्धिर्भवतीति व्रतहोम जपदानादीनां सर्वसाधारण विचारः	६७९	१२
७४	जातिभ्रंश करादीनां—अनुक्तानां च पापानां प्रायश्चित्त भेदाः (इति प्रकीर्ण मिश्रोपपापानां प्रकरणं समाप्तं परिच्छेदमयं)	६४०		८८	केवलं धर्माद्यैः चान्द्रायण कृच्छ्रव्रत इह मुच्यन्ते मायनत्वे प्रजायते—धर्मो मृत्युं फलं वर्तनं च	६८०	१२
७५	सर्वत्रैव प्रायश्चित्तस्य लेपेण—अनुक्तप्रायश्चित्तस्य लेपेण—न्यायात्मक युक्तिविचारः	६४१	५				
७६	पतितस्य त्यागविधि — कृतप्रायश्चित्तस्य						

इति श्रीसूर्यादिप्रियज्ञतेर्वर्षशास्त्रे प्रायश्चित्तकाण्डस्य लघुसूचीपत्रं समाप्तम् ॥

अथ मिताक्षरा स० प्रायश्चित्त कांडस्य वृहत्सूचनं द्वितीयं ॥

आशयानां व्यवस्थाक्रमः		पृष्ठ	पक्ति
मंगलाचरणं	।	१	३
ग्रंथ की भूमिका	।	१	१०
दाहादि कर्म विवेकमयः	— प्रथमः परिच्छेदः	२	२५
दो वर्षसे आछे प्रेतको गन्धमाला आदि अलंकृत करै • यामसे बाहर खोदि गाडै ॥		३	२३
अशुद्ध अग्नियो से दाहका निषेध ॥		४	१३
चोटीरखे बालकां को अग्निदाह दियाजाय ॥		४	२०
तीनिवर्ष के भीतर चोटीरखे बिना भी अग्निदाह जलदान होय ॥		४	२८
तीनि वर्षके भीतर भी दांत जमिआने में क्रियाकर्म का विकल्प ॥		५	२
यशोपवीत होने वादि मरनेसे पूरा कर्म कियाजाय ॥		५	१८
अग्निहोत्री आदि कुलोके भेदसे भी जुदे विधान हैं ।		५	१८
दाह क्रिया में भी जुदे जुदे भेद हैं ॥		५	२०
किन अग्नियो से कौन पुरुष जलाय जायें ॥		६	१२
अग्नि या लकडी आदि में शूद्रका हाथ न लगनेदें ॥		०	२६
प्रेतको स्नान कराके चन्दन फूल आदिसे संस्कृत किये पोछे पुचादि अधिकारी लोग जलावै ॥		८	२
सगोत्री वा सजाती लोग मुर्देको लेजावै गैर नहीं ॥		८	८
किस वर्णका मुर्दा किस दिग्द्वारसे निकास जाय ॥		८	१६
मृतकदेह न मिलने में पुत्तलविधान से दाहदेना ॥		८	२४
जलाजली दान करनेके प्रकार भेद भी अनेक हैं ॥		९	१६
नाना • आचर्य मरेहो या ससुर भानजा ऋत्विक् मित्र मरेहो तिनको जल देनेका अतिदेश धर्म ॥		१०	२७
उक्त जलदान का विधान प्रेतोके नाम सहित होय ॥		११	५
ब्रह्मचारी और पतित आदि किसीको जलाजली नदें ॥		११	५
पतित आदि मरे प्रेतोको जलदान कोई भी न करै ॥		१२	२६
(आत्मघाती आदि अनेक पतितोके लक्षणभेद)			
अग्निहोत्री जो अपमैतसे मरे तिसकी यज्ञशाला आदि क्या करीजाय ॥		१५	२
इन सब निषिद्धोंका कर्म करनेवालो के प्रायश्चित्त		१५	१८
विरले आत्मघातियों का कर्म भी कर्तव्य है—तहा कर्मकर्ता प्रायश्चित्तो भी न ठहिरै ॥		१६	१९
पतित आदि कुछ निषिद्धों का दाहकर्म नारायणबलि करनेसे होसक्ता है तिसका विधान यहा देखो ॥		१६	२४
सर्पकाटे मरजाय तिसका जुदा विधान होने बाद नारायणबलि ॥		१८	०
नारायणबलि कर्मका पूरा विधान ॥		१८	५
मुर्दा फूंकने आदि समयो में शोक उठा करता है तिसकी शांतिका उपाय ॥		१९	२४
फूंकने वादि स्नान करिके घरमें किस रीति से घुसै ॥		२१	६
मुर्दाके साथी जो गैरहो तिनकी शुद्धि इन प्रकारो से होती है ॥		२१	१८
ब्रह्मचारी भी बिरने प्रेतको काधे घरसक्ता है निज नियमो साथ ॥		२३	८

आशयाना व्यवस्थाक्रमः	पृष्ठ	पंक्ति
सूतकी घरमे सूतकभर क्या क्या नियम साधेजायँ कितने पिंड दियेजायँ ॥	२३	१५
वृक्षपर छींकमे जल दूध आदि लटकाने के नियम ॥	२६	८
सूतकी बाल मुडाने के नियम ॥	२७	२१
बिरले कर्म धर्म सूतकमे भी होते रहिते हैं सो किस ढंगसे ॥	२८	७
असगोची के सूतकमे जानिके और विना जाने अन्नखाने के दोषदोष ॥	३१	२
विवाह आदि बड़ेउत्सव और यज्ञोंमे सूतक होजाने पर भी अन्नखानेका प्रति प्रसवरूपी आदेशविधान ॥	३१	१३
सूतकमे किन चीजोंको सूतकदोष नहीं लगता है ॥	३१	२६
बिरानेमुर्दाके संसर्गसे कितना सूतक असवर्णी या असगोचीको लगता और किन कर्मोंकीहानि उसके होतीहै ॥	३२	१८
विदेशका सूतक अपनी अवधि बीतिजाने बाद जो मुनिपावै तिसको कितना सूतक लगता है ॥	३२	२४
जनन मरण दोनोके सूतकमे सब तरहकी अवधो जो होताहै सो सब आगे दूसरे परिच्छेदमे ठुठना ॥	३३	१
विदेशमे रहिते हुयेका जन्मसूतक या मृतकसूतक मुनिपाने से कितने दिन सूतक मानाजाय ॥	३४	१५
गर्भहीमे बालकमरै या पैदाहोके मरै तिसका सूतक कितना किसको ॥	३५	२६
पुत्रजन्म होनेमे माता या पिताको कितनी अशुद्धि और उनके उपरालू सपिंडोंको कितना सूतक होताहै ॥	३६	२२
कन्या नहीं केवल पुत्रही पैदा होनेमें पहिला दिवस पवित्र होताहै ऐसे सूतकमे प्रथमदिवस दान आदि ब्राह्मण भी लेसक्ते हैं ॥	३७	२१
जन्मके सूतकमे भी पक्वान्न भोजन करलेवै तिसको चान्द्रायण व्रत एकमहीने भरकरना चाहिये ॥	३७	२६
पुत्रजन्मका पहिला छठा दशमा दिन भी उत्तम कहाता इनमे जागण्य और जन्मदानाम देवताओंका यागपूजन भी होता है ॥	३७	२८
एक सूतक होतेहुये बीचमे दूसरा सूतक मरण या जन्मका आपरै तब कितने दिनमे सूतक शुद्धहोंगे ॥	३८	१७
गर्भ गिरिजाने या मराजन्म होने या जन्म लेके मरजानेमे माता यापिता आदि किसकिसको कितना सूतक ॥	४१	१०
अग्निहोत्र आदि वेदोक्त श्रौतकर्मों के निर्मित्तसद्यः शौचकी व्यवस्था ॥	४४	२८
नालच्छेदन कर्मसे अनन्तर सूतक लगिजाता किन्तु पहिले नहीं ॥	४५	४
रजस्वला स्त्रियोंका सूतक कै दिनमे शुद्ध होता है कि जिनके थोड़ेदिनका गर्भ निचुडि गया तिसमे या इसके बिना भी रजोरक्त जाय ॥	४७	८
भयानक स्वरसे पीडित रजस्वलाकी स्नान शुद्धि कैसे होय या अन्य कोई रोगी जो सूतकमे स्नान करना चाहे तिसका क्या प्रकार ॥	४६	२६
रजस्वला या प्रसूतीनारीमरजाय तहांउसकी क्रिया कैसेहोय और घरके यज्ञ करनेवालोंका नियमकैसेचले ॥	४७	१०
प्रसूती या मौत या रजोधर्म होजाने मे किसदिन किस बेरासे सूतक लगा करता है ॥	४७	२१
बिरले प्रेतोंका सूतक नहीं मानाजाता किन्तु सद्यः शौच होजाता है ॥	४६	५
दैनान्तरमे मरगय सपिंडका चर्चा बहुतकाल पीछे मुनिपाने या शीघ्र भी मुनिपानेमे किसकेलिये कितना सूतक माना जाय ॥	४७	२७
दैनान्तर कितनी दूर कहाता है तिसके लक्षण यह देखै ॥	४६	१७
जनेऊदार चाहे किसी अवस्था का मरै तिसके सूतक मानने की व्यवस्था जगज्जह मरै मे सूतक ब्राह्मण की स्मृत्तनी ॥	४८	३०
बच्चों आदि तौने बर्षके मरने मध्ये कितने दिन सूतक होय ॥	४८	१७

आशयानां व्यवस्थाक्रमः

	पृष्ठ	पंक्ति
बालक आदि विना जनेऊ हुये जो मरगये तिनके सूतकों की अवधिमे अवस्थासे भेदहैं सोभी सब सामान्य चारो वर्ण के निमित्त में ॥	५६	१०
कन्या जो सगाई वाग्दान आदि हुये विना मरै या लड़के जो दांत जमे विनाही मरजायँ तिनके सूतकों की अवधि कितनी होय ॥	५६	१६
असंस्कृता कन्या मरजाने से पिता और पतिके कुलको भी तीन तीन दिन सूतक लगता है ॥	६०	६
विवाही बेटो मरनेसे पिताके घरको सूतक नही लगता परंतु जो पिताके घर मे मरै या जनन करे तौथोड़ासा सूतक भी ॥	६०	१४
गुरु आदि स्थितेदारो के मरने में भी वही ऊपरले सूतकोका अतिदेश यहां देखा ॥	६२	१४
दत्तक आदि अनैरस पुत्रोंके मरने तथा धृता या परगता आदि स्त्रियोंके मरनेमे भी सूतकों का वही अतिदेश यहां देखा ॥	६६	४
राजा आदि देशाधिप के मरने में सूतक नियम ॥	६०	११
वह सूतक जो गैर मुर्दाके साथ चले जाने माचसे या पीछे उसके घर सूतकमें शिष्टाचार से अनुगमन करने माचसे लगता है ॥	६०	२३
इस तीसरे परिच्छेद मे सदाशौच के भेद कहेजायँगे कि अमुकामुक मनुष्योंको सूतक नही लगता है ॥	७०	१
विरले सपिंड भी अपने सपिंडोके मरनेमे सूतकी नहीं ठहिरते किन्तु छूने योग्य शुद्ध रहिते है ॥	७०	०
यज्ञमें दीक्षित आदि अनेक गैर भी सदाशुचि होते और अनेक तीर्थ आदि स्थल भी सदाशुचि होते है कि जिनको सूतक नहीं लगता ॥	७४	१६
इस चौथे परिच्छेद मे वेही प्रायश्चित्त हैं कि सब तरहके अशुद्ध प्राणी या चीजोंको छुइलेने से अपवित्र होकर शुद्ध होसकै ॥	८१	१
रजस्वला आदि अशुद्धों को छुइकर इस प्रकार शुद्ध होजाता है ॥	८१	५
इस पाचवें परिच्छेदमे उन्हीपदार्थोंके नाम संख्या अनुक्रम कहेजायँगे जिनसे अशुद्धोंको शुद्धिहोसकी है ॥	८६	१३
कालकर्म अग्निजल मट्टो हवा आदि जो जो अशुद्धों को शुद्ध करसकते है ॥	८६	१८
(इति आशौच प्रकरण समाप्तम् पंच परिच्छेदमय)	८३	८
छठे परिच्छेदमे आपत्कालिक धर्म कहा जायगा कि चारोवर्ण के अपनी वृत्ति से निर्वाह न करसकै तव अमुक वृत्ति करै ॥	८३	११
ब्राह्मण आपत्कालमें भी इन चीजोंकी विक्रयवृत्ति न करै कि जिनसे उसका जातीयधर्म मिटिजाता है ॥	८५	१०
जिनका वेचना प्रतिषेध किया उनमें विरली चीजको इस रीतिमे बेचै ॥	८०	५
ब्राह्मण आपत्ति मे घिराहुआ इस रीतिसे निर्वाह करै ॥	८६	१५
भूखसे मरते हुये का यह धर्म है ॥	१००	२१
इस सातवें परिच्छेदमें वानप्रस्थ आश्रमके धर्म कहेजायँगे	१०१	१०
वनमें रहिते वानप्रस्थ इन रीतोंसे उस आश्रमका निर्वाह करै -	१०५	१८
वानप्रस्थ इन प्रकारो से धान्य आदिका संबन्ध भी करसका है ॥	१००	१६
विशेष नियम धर्म जो वानप्रस्थको साधन करने चाहिये ॥	१०८	२६
वानप्रस्थको पचाग्नि आदि तप करनेके प्रकार और कुटी छेडि जहां तहां फिरनेके नियम विशेष ॥	११०	२५
विरले लाचारी समय यामोमे घुसिकर इस नियम से भिन्ना लेआना भी उचित है ॥	११८	२२

आशयाना व्यवस्थाक्रमः	पृष्ठ	पंक्ति
महाप्रस्थान का मार्गनियम जिसको असमर्थ वानप्रस्थ्य करसक्ता है ॥	११३	२८
संन्यासाश्रम और गृहस्थी का आश्रम इन दोनों की प्रशंसा	११५	१२
(इति प्रकरणं द्विपरिच्छेद मयं समाप्तम्)	११८	६
आठवें परिच्छेदमें संन्यासी होजाने का ढंग बताया जायगा कि इन प्रकारोंसे संन्यास धारण करै ॥	११८	१५
संन्यासी पुण्यके धर्म जो उसको अपने आश्रमकी रियासतसे करने चाहिये ॥	१२४	६
संन्यासी इनसब नियमों के साथ भित्तामागै ॥	१२८	१०
यती संन्यास के पांच कैसे होयँ और किसप्रकारसे शोधन कियेजायँ ॥	१३१	२३
नवें परिच्छेद में ज्ञानके उत्पन्न करानेवाले कारणों का समूह दर्शावेगे जिनको समुक्ति वृक्ति संन्यासी के हृदय में ब्रह्मज्ञान का अंकुर ॥	१३३	४
प्रथम अपने अंतःकरण को शोधै तिसका यह प्रकार है ॥	१३३	२३
इन्द्रियोका रोकना जीतना मनमें चाहिके संसारका स्वरूप खोटा जानै तिसका डौल अब समुभातेहै ॥	१३४	२०
संन्यासाश्रमके सब धर्मोंका कारण भूत इतना मूल विशेष है ॥	१३०	२३
परमात्माके सकाशते सब जीवात्मा उत्पन्न होते है इस भाति से ॥	१३६	५३
सर्व जीवात्मा सबसे पहिला देह भी कर्महीके अनुसार पाते है ॥	१४१	२५
दशवें परिच्छेदमें यह डौल कहाजायगा कि परमात्मा आप अजन्मा होते संसारी देहों में किम प्रकार जन्म लेता है (इस परिच्छेदका रूप डौल मोटे अक्षरों सहित १४३ पृष्ठ में छपना रहिगया तिमको वहा २५ पचीसवीं पंक्तिके स्थलपर वैसा समुफिलेना जैसा सदेह निवारणके पत्रमें पुनर्निर्मित किया गया ॥	१४३	२५
परमात्मा जीवरूप होके चराचर किसी गर्भ में घुसते हुये आकाश आदि पंचमहाभूतोंको अपने साथ उनके गुणों सहित लेलेता है ॥	१४६	३
धरित्री आदि पांच तत्वोंसे चराचर जीवोंके देह जैसे बनजाते हैं सो डौल यहा देखो ॥	१४६	१८
स्त्री पुरुषके मैथुन समय जीवात्मा पांच धातुओंको लेकर छूटा आप भी मिलिके एक साथही गर्भ में घुसकर देह बनाता है ॥	१४८	२३
गर्भरूपी आदि की चाहना से अनादि परमात्मा के स्वतः इतने भाव उत्पन्न होजाते जिनमें इन्द्रिया अंतःकरण इच्छा प्रयत्न आदि अनेक नाम भेदहै ॥	१४६	२०
स्त्री पुरुषके रजर्वीर्य मिलेहुये जीवात्माका गर्भ इसक्रमसे वृद्धिको पाता और अंग वृद्धि आदिमें मयुक्तहोता है ॥	१५१	२
गर्भमें तीसरे चौथे मास में गर्भिणी दो हृदय वाली होजाती है तिसका इच्छित भाग टेनेदेहों गर्भ का कन्याण होता है ॥	१५४	२०
चौथेमासको आदि लेकर दशवें तक जो कुछ गर्भका उदय आदि हो ॥	१५६	४
ग्यारहवें परिच्छेदमें उत्पन्न हुये गर्भ का शारीरिक दर्शावेगे कि उसके शरीर में इतने अणुवणुके प्रत्यंग आदि भीतर बाहर होते हैं ॥	१६०	५
गर्भके शरीरमें तीसरी साठि हाड किन किन स्थानोंपर किम किम नामके होते हैं ॥	१६४	२४
पांच जनेन्द्रियों की व्यवस्था उनके मज्ज स्पर्श आदि विषयों सहित ॥	१६६	२५
पांचजनेन्द्रियों और दशों इन्द्रियोंका प्रेक्षक मन भी उस शरीर में ॥	१६८	४
जिनके बाहर और भीतरमें अनेक छोटे छोटे कोष वा स्थान आदि व्यवस्था होतेहैं तिसका देखावे दिखाया ॥	१६८	१५

आशयाना व्यवस्थाक्रम	पृष्ठ	पंक्ति
जीव और चेतना जिनका हृदय में निवास है पुनि उसी जगह रक्तप्लीहा आदि अनेको का निवास है उन सबही की व्यवस्था वैद्यक शास्त्र से ॥	१७०	६
जठराग्नि और पित्तोके परस्पर जो विरोधमय संदेह तिसका निर्णय निर्विकार है (इसी के श्लोक भी देखो १७१ पृष्ठ में दशवे अक्षरे प्रारंभ हुये थे ॥	१७४	२०
शरीरकी भीतरली नाडिया और दाढी मूछके बालोकी संख्या आदि और एकसौ सात मर्मस्थान सबअंग में दोसौ सन्धिया भी ॥	१७६	२३
रोमकूपो का संख्या और भीतरली धातु आदि द्रवरूपो ढीली पतरी सब चीजेके परिमाण ॥	१७६	३
बारहवें परिच्छेदमें वह रूप दर्शावैगे जो योगोजनको हृदयमें ध्यान करना चाहिये जो दीपज्योति के समान अपने हृदय में रहिता है ॥	१८०	१४
योगध्यान की धारणा सीखिपाने की चाहनासे इतने उपाय करै जो उत्तम दर्जेका योग साधा चाहे ॥	१८१	१६
शब्दब्रह्म की उपासना इस रीतिसे करनी चाहिये जो मध्यम दर्जेका योग है ॥	१८२	१६
तेरहवें परिच्छेदमें ब्रह्मविद्या कही जायगी जिससे परमेश्वर की विश्वरूपिता जानीजाय कि जगत् और परब्रह्मका परस्पर सबध कैसा ॥	१८५	८
परमेश्वर आपही अन्नरूपसे यज्ञोका रूप होके फिर वर्षाका रूप होके अन्नरूप होजाता है उसी अन्न के बीर्यसे मैथुनी सृष्टि होती है निराली भी सब सृष्टि उसी वर्षा से ॥	१८७	३
मोक्षपाने मध्ये सदिग्ध शंका का समाधान ॥	१८७	५
चौदहवें परिच्छेदमें पूर्वोक्त जगत्की उत्पत्ति जो परमात्मासे हुई कहिचु के तिसके विस्तार का प्रपच कहा जायगा कि इस तौर से होती है ॥	१८९	२५
यह संदेहरूपी प्रश्नहै कि ऐसा शक्तिमान् होके पापरूपी देहोंमें क्यों जन्मलेता और इद्रियो के होते भी पहिले जन्मोंका देहादि भोगयाद क्यों नहीं ॥	१८३	६
इसी प्रश्नका उत्तर समाधान सहित ॥	१८४	२
कर्मके परिपाकफल विरलेके इसीदेहमें विग्लेके दोनो लोकमें बहुतोके परलोकही में जाकर मिलाकातेहैं ॥	१८६	१५
पंद्रहवेंपरिच्छेदमें पूर्वोक्तकर्म व.जोके फलप्राप्त होनेको प्रकार व्यौरवार विस्तार से दर्शावैगे कि उनमें ऐसी योनि मिलता हैं ॥	१८७	६
सतेगुणी रजोगुणी तमोगुणी तीनों भातिके मनुष्यों के लक्षण और जहा उनको जन्म जाय मिलता है वे म्यान भी ॥	२००	१८
पहिले क्रिये प्रश्नोके सब उत्तर जुटे जुटे आगे मभुभावैगे ॥	२०१	२३
सालहवेंपरिच्छेदमें यहज्ञान कहाजायगा कि परमात्मासृष्टि बीजवोते मायही आप सब जगत्में व्याप्त होजाता है तिससे कोई वस्तु या केई जीव ऐसा नहीं कि जिसमें ईश्वर न देखिपरै ॥	२०४	१५
परमात्मा सर्वजगत्को इन प्रकारोसे बनाता रहिता है	२०५	१०
जगत् के सब देहोंमें परमात्मा बैठा उसका पहिंचानना बडा मुगम है इन प्रमाणों को ज्ञाचो ॥	२०६	२०
जिसजीवात्माका स्वभाव अहंकार मयहोकर परमात्माको नहीं पहिंचानता तिसकी ऐसी गति होतीहै ॥	२०६	६
उसी विकृत जीवात्माकी सद्गति भी कालांतर में ऐसी उपासनासे होसकी है जब मायै तभी ॥	२०६	४
सत्रहवेंपरिच्छेदमें यहदर्शावैगे अध्यात्म विद्या जानने आदि मत्कर्मों से अनेक जीवात्मा पहिंचने जगत्की दशा भी जानते और विग्ले मोक्षपद पातेहैं इत्यदि ॥	२११	१०

आशयाना व्यवस्थाक्रम.	पृष्ठ	पंक्ति
जातिस्मग्त्व के न होने पर भी विरले कर्मोंसे यह गति होती है ॥	२१२	१२
अकालमृत्यु होजाने के सदेह मध्ये समाधान ॥	२१३	२०
मोक्षहोकर ब्रह्मलोक जानेका मार्ग एक डोरी तनी मिलती है ॥	२१४	२१
मुक्त के अभाव में स्वर्ग प्राप्ति होनेके मार्ग भी अनेक डोरिया ॥	२१५	१६
मर्त्य लोकही में आकर जन्महोनेके मार्गोंको पहिँचान ॥	२१६	२
अनीश्वरवादी भी इसी संसार में होते जो परलोक आदि भुंठा जानते हैं ॥	२१६	६
अठारहवें परिच्छेदमें अनीश्वर वादियोंकामत खण्डनकिया जायगा जो पचभूतो से बने देहको चैतन्य मानते और देहमें ईश्वर कोई नहीं—तिनको ईश्वर के प्रत्यक्ष चिह्न समुझावेंगे कि वही सब देहों आदि जगत् में सर्वत्र अपनी सत्ता से उपस्थित होरहा है ॥	२१७	२
उन्नीसवें परिच्छेदमें वह ब्रह्मज्ञान है कि माया के पाससे महत्तत्त्व बुद्धिआदि चौबीस तत्त्व जिमक्रमसे उत्पन्न होते और उसी क्रमसे प्रलय होतेहैं—तहा कितने लोक स्वर्गमें जाते या मर्त्यलोक में या कितने फिर लौटि लौटि दूसरी सृष्टिमें भी आतेहैं इत्यादि प्रकारोंके ईश्वरही अपनी शक्ति प्रकाश करनेको नानारूप धरता है ॥	२२३	२
स्वर्गके भगी पुरुष प्रलयकाल में भी स्वर्गही को जाते हैं तिनके पहुँचानेका यह मार्ग है ॥	२२६	६
उन्नीसवें परिच्छेदमें अष्टासोहजार गृहस्थीधर्म जाननेवाले प्रलय नहीं होते किन्तु अग्नि की सृष्टियोंका बीज रखेजाते हैं वही लौटि आतेहैं ॥	२२७	६
और भी अष्टासोहजार तपस्वी जो वेदशास्त्रआदि वाणीका बीज रखे रहिते जत्रतक प्रलयवर्तमानहो ॥ वेदही ब्रह्मज्ञान का मूल है सब आश्रमों को जानना चाहिये ॥	२२७	२५
परब्रह्म तक जातेहुये मार्गों में जैसा रूप होजाता और जिनकी रक्षा तथा सहायता से पहुँचते हैं ॥	२२७	६
स्वर्ग भोगव लो को जैसा मार्ग मिलता और जैसे रूप पलटते हैं ॥	२२७	२७
बौध्दपरिच्छेदमें योगाभ्यास का निरूपण किया जायगा जिसमें अणिमादि आठो सिद्धि प्राप्ति होनी और प्रा मोक्ष मिलता है ॥	२२८	१५
साधन किया योग सिद्ध होजाने की परिक्षा ॥	२२८	११
योगाभ्यास जिस पर न होसके तिसके लिये दूसरा सुगम उपाय देखो ॥	२२८	२०
(इति अध्यात्मज्ञानप्रकरण १३ त्रिदशपरिच्छेदमयं)	२२८	१७
एही त्रिदशपरिच्छेदों कर्मविपाके फल दर्शवेंगे कि प्रायश्चित्त न करनेवाने महापातको आदि कर्मों का फल भोगे पोंछे ऐसा जन्म लेते हैं ॥	२४०	७
कर्मों के अनुसार नीचयोगि पशुपक्षी आदि या चंडाल आदिको मिलती है ॥	२४०	१२
मनुष्य को अच्छे कुलमें जन्म होनेपर भी पहिले छोटे कर्म के नेपथ्य प्रभावही से अंग भंग मरता गीत आदि होते हैं ॥	२४०	१०
समुदायक पाप कर्मों से अलुक्क मुक्क योगि मिलती है जो मनुष्य में उपगन्तु योगि है ॥	२४०	७
और भी अक्षय योगि योगि शिवे द्रव्यो के भेदसेही मिलती हैं ॥	२४०	७
कहीं कानातन से कर्मों का एक भोगि दुके दोहे अनेक जन्म का से धर्म मुक्त सिद्धि जन्म मुक्त भी उत्पन्न होते हैं ॥	२४०	२२
चतुस्रपरिच्छेद में उन पुत्रों के स्वर्गप्राप्त होनेके जो तजानती प्रायश्चित्त करने पर मिलते हैं ॥	२४०	२०

आशयाना व्यवस्थाक्रमः

	पृष्ठ	पंक्ति
तेईसवेंपरिच्छेदमें सवनरुकोकेनाम लक्षण कहेजायँगे कि जो जो प्रायश्चित्त न करनेवालोंको मिलते हैं ॥	२५०	२
पाप जो विनाचाहे अज्ञानतामें होगया तिसका दोष प्रायश्चित्तसे मिटिजाता किंतु चाहना से किये पाप का प्रायश्चित्त करनेसे इतनाही फलहै कि ससारमें शुद्धि मानीजायगी परलोकमें नरकभोग बनारहेगा ॥	२५६	१३
इसी बातपर सन्देहसे वितर्कवाद का समाधान ॥	२६२	६
(इति नरकादिगति प्रकरणं त्रिपरिच्छेदमयं)	२६३	२४
चौबीसवेंपरिच्छेदमें पांचो महापातकियोंके जुदेनाम और लक्षणभेद उनके पातकोंसहित निर्णय किये जायँगे-इति महापातकानि ॥	२६४	२
पच्चीसवेंपरिच्छेदमें महापातकसे कुछ नीचे अतिपातक और इनसेनीचे पातक नामके पाप इन दोनो के लक्षणभेद कहेजायँगे जिनसे अतिपातकी और पातकी पुरुष पहँचाने जायँ ॥	२७२	०
ब्रह्महत्याके समान पातको का लक्षण ॥	२७०	६
सुरापान के समान पातको का लक्षण ॥	२७३	१३
सुवर्ण की चोरी के समान पातको का लक्षण ॥	२७५	४
गुरुदारा संगम के समान पातको का लक्षण ॥	२७६	६
गुरुदार संगमके समान पातकीका अतिदेश जिन पातको पर दियागया तिनके लक्षण ॥	२७८	१३
छब्बीसवेंपरिच्छेदमें तीसरेदरजेवाले पचासकेलगभग उपपातक और उनसेभीछोटे अनुपातक आदि सबके लक्षण कहे जायँगे ॥	२८०	१०
गोहत्या आदि अनेक उपपातको के लक्षण ॥	२८०	१६
सर्प आदि वर्णोंका वध करना और पराई दारा संगम करना स्त्रियोंका वधकरना आदि अनेक उपपातको के लक्षण ॥	२८५	२३
धान्य आदिकी चोरी • पिता माता पुत्रोंका त्यागदेना और कन्या को दूषित करना आदि अनेक उपपातको के लक्षण ॥	२८७	१३
मूर्खआदि बहुप्राणघाती यज्ञोकावनाना • मद्यपस्त्रीसेवन • नियम त्यागदेना • स्त्रियोंसेजीविकाकरना • हीनियोंसेवन • नीचसे मैत्री आदि अनेक उपपातक ॥	२८३	२७
ध्वभिचार आदिकी शिक्षावाले असत्शास्त्रों का विचारना या भार्यावैचिदेना आदि अनेक उपपातकोकेलक्षण ॥	२८५	१२
जातिभ्रंशकर म्कगकरण आदि उपपातको के लक्षण ॥	२८५	१६
बड़े छोटे सभी पातकोके जुदेजुदे संज्ञाभेद इकट्ठे करिके बृहद्विष्णुने कहे सो सब चौदहभेद होजातेहै ॥	२८३	९
कात्यायनने उन्ही चौदहके मुख्य पाचहीभेद माने और उन्हीं पाचका वर्तावा ठाक ठाक समुझम आताहै ॥	२८८	१८
यहा एक शास्त्रार्थका विवाद है इममें छे टे पातक भी बड़े पातकोके तुल्य होजाते है जब छोटोका अभ्यास वारम्बार कियाजाय तिसकी माप तौ नहै ॥	२८८	२५
(इति महापातकादीना लक्षण प्रकरणं त्रिपरिच्छेदमयं)	२९०	१४
सत्ताईसवेंपरिच्छेदमें ब्रह्मघातियोंकेप्रायश्चित्त अनेकपातकहेजायँगे क्योंकि ब्रह्महत्या महापातक जो अनेक तरह का होताहै तिमके जुदे जुदे कर्ताओंके प्रायश्चित्त भी अनेक है ॥	२९०	१५
यहा एक अर्थ वादनामसे बहुत बडा शास्त्रार्थ है ॥	२९५	०
हत्यारे के सहायक लोग इतना प्रायश्चित्त करें ॥	२९८	२०
निमित्ती हत्यारा जिम्मे हाथ से मारा नहो न मनसे मग्गाना चाहा किंतु ऐसा कुछ अनान कि या		

आशयाना व्यवस्थाक्रमः	पृष्ठ	पंक्ति
जिसपर आपही वह मरगया तिसका प्रायश्चित्त ॥	२६८	६
सहायको से उपरालू विरले संमतिदेने या उत्साह दिलानेवाले आदि और भी अपराधी होतेहैं तिन सबके सहित सहायकोके लक्षण यहां देखो ॥	२६९	४
बालक बूढ़े रोगी आदि हत्यारो को पूरेका आधा प्रायश्चित्त ॥	३००	२३
जहां दो तीन आदि पातको का सन्निपात एकसाथ आनिपरै तहां प्रायश्चित्तोके सन्निपातका निर्वाह निर्णय ॥	३०२	२०
इंचायती व्यवस्था जो अनेक मुनि वचनोसे निर्णय करी जायगी ॥	३०३	२०
व्यवस्था पंचायत का तोड़निचोड़ ॥	३००	१२
अट्टार्वेपरिच्छेदमे उनकारणोकेस्वरूप कहेजायेंगे जिनसे बारहवर्ष आदिके नघेहुये प्रायश्चित्त किसी समय बीचहो मे समाप्त होजाते और पूरी साधना के समान फल देते हैं ॥	३०६	२०
इन्तीसवेंपरिच्छेदमे उसीब्रह्महत्याके बारहवर्षवाले प्रायश्चित्त के बदले कई प्रकार और भी दर्शावेंगे कि जिनमे प्रायश्चित्तोको स्वाधीनता होगी किसी एक प्रकारका स्वीकार करै ॥	३१५	१४
अग्निप्रवेश रूप प्राणातिक प्रायश्चित्तका विधान है कि जिसका वर्तावा सप्रति नहीं रहा ॥	३१५	१०
एक यह प्रायश्चित्त है कि जहा दुतरफा शस्त्र चलतेहो तिनके बीच मे बैठके प्राण देदे यद्वा मरने के तुल्य होकर दैवसे जीता रहिजाय ॥	३१८	२३
तीसरा यह प्रायश्चित्त है कि जो वेद पठा विद्वान्हो सो वनमे रहिके सहिताका पाठ करै ॥	३२१	०
चौथा यह प्रायश्चित्त है कि जो धनवान्हो सो इस प्रकारसे दानकरै ॥	३२२	५
बेतुवधरामेश्वर की यात्रा करना यह भी एक निमित्त भेदी प्रायश्चित्त है ॥	३२३	०
यहांतक ब्राह्मण हत्यारे के प्रायश्चित्त कहेगये क्षत्री आदि हत्यारे इन्हीं को दूनी आदि अवधियो से स्वीकार करै ॥	३२४	२४
क्षत्री आदि वर्णोके प्रायश्चित्तो का विशेष निर्णय ॥	३२५	१६
प्रतिलोमोत्पन्न जातो का प्रायश्चित्त निर्णय—और गृहस्थोसे उपरालू आश्रमों के लोग जो हत्यारे हुये हो तिनके प्रायश्चित्त ॥	३२६	१३
तीसवें परिच्छेद मे ब्रह्महत्या का प्रायश्चित्त विरले उन पातको पर भी अतिदेश उतारा जायगा जो साक्षात् ब्रह्मवध नहीं हैं ॥	३२८	०
यद्यमें लगेहुये क्षत्री या वैश्य को मारै सो ब्रह्महत्या वाने प्रायश्चित्त करै—जिसने गर्भका वधकिया या आंचियो स्त्री का वध कियाहो ॥	३२८	०
शस्त्र आदि लेजाकर मार डारनेपर समुद्यत हुआ किसी हेतुमे विना वध किये लोटिआत्रे सोभी वही प्रायश्चित्तकरै ॥	३३०	४
लिखे नियमसे दूना प्रायश्चित्त चाहिये जिसने यक्षोंमें लगेहुये पुरुष व स्त्रिया वध करि हो ॥	३३०	२८
(इति ब्रह्महत्या प्रायश्चित्त प्रकरणं चतु परिच्छेदमयं)	३३३	२०
(इति साधारण प्रकरणं दशपरिच्छेदमयं ।	३३३	२३
एकतीसवें परिच्छेदमे उन महापातकोके प्रायश्चित्त जानेजायगे जो इच्छानसहित निष्ठि मटिंग रीज्ज उत्पन्न होयें ॥	३३४	०
असंस्कृत बालक मुरापानकरै तिनके माता पिता आदि प्रतिनिधि होके प्रायश्चित्तकरै ॥	३३६	२३
वर्तासवेंपरिच्छेदमे इच्छाकेबिना धोखे आदिसे मुग पालनेके प्रायश्चित्त अनेक भेद हैं ॥	३३६	१५

आशयाना व्यवस्थाक्रमः		पृष्ठ	पंक्ति
सूखाअन्न जिसमे सुराका अंशभीकुछमिलाहोसोखाकर तीनोवर्णकेद्विजाती फिर यज्ञोपवीत कगवे तत्रशुद्धहोये		३४४	१८
सूखे मदिरा के वासन में धरे जलको यदि पीजाय तिसका प्रायश्चित्त ॥		३४४	२३
सुरामद्य पीनेवाले के मुंहकी दुर्गंधि जो सूघिजाय तिसका प्रायश्चित्त ॥		३४५	१६
तैंतीसवें परिच्छेद मे सुरामदिरा से उपरालू मद्योके पीने के मध्ये प्रायश्चित्त है—		३४६	३
फिर उनकेउपरालू और अभ्यक्ष्योंके भक्षणमेंभी केवल मुखमे मद्य आदि कुछगया गलेकेनीचे नहीं उतरने		३४८	५
पाया तिसकाप्रायश्चित्तमद्यके सूखे वासनमें धरा जल एकवार व अनेकवार पीजानेके जुदेप्रायश्चित्तहै ॥		३४६	४
स्त्रियाजो मदिरा पानकरै तिनके प्रायश्चित्त ॥		३५०	२
(इति सुरापान प्रायश्चित्त प्रकरणं त्रिपरिच्छेदमयं)			१५
चौतीसवेंपरिच्छेदमें ब्राह्मणका सुवर्णापहार जो इच्छासहितकियाजाय तिसकेप्रायश्चित्त भेदकहेजायेंगे		३५१	१६
कितना सेना हरने पर कितना प्रायश्चित्त चाहिये इसका निर्णय ॥		३५६	०५
अपहार कियाहुआ धन स्वामीको परिवर्तन करदेने वादि प्रायश्चित्त किया जासक्ता है पहिले नहीं ॥		३५७	२४
पैंतीसवेंपरिच्छेदमे इच्छाविना अज्ञानतामें सुवर्णहरनेकेप्रायश्चित्त और चांदी तावा आदि घातुओ वा			
रत्नोंके हरने का प्रायश्चित्त ॥		३५६	२
कामनाके विना सेना हरने मध्ये वादविवादरूपी शास्त्रार्थ और दूसरा प्रायश्चित्त भी ॥		३६०	५
जब कोई चार धन हरिके तत्काल पछितावेके साथ उसके स्वामी को प्रत्यर्पण करदेवे या छोडिभागै			
तिसके प्रायश्चित्त ॥		३६	२०
स्वामीको वापिस करदेना या छोडिभागना ये दो वातहै इनके मध्ये वादविवाद की व्यवस्था ॥		३६१	२०
जहा चांदी तांवा आदि मिश्रित सेना हराजाय तहा प्रायश्चित्तकी कमी और देशीका निर्णय ॥		३६२	१३
सोहरहमाशे सुवर्णके भीतर एकमाशेसे अधिक सेनेके मूल्यवाना द्रव्य चुगानेका प्रायश्चित्त विशेष ॥		३६२	२१
जिसने सेना हरनेका विचार मनसे किया परंतु खोटाफल समुष्णिके अपहार करनेपर ममुद्यत न हुआ			
तिसका प्रायश्चित्त ॥		३६३	४
स्त्री बालक वृद्धे अतिरोगी आदि जहां चारहे। तिनको उक्त प्रायश्चित्तोका आया सायन करवानाचाहिये ॥		३६३	८
जिन चोरियों के स्वरूप २३० दोसौतीस मूल प्रनोकमे कहिचुके तिनके प्रायश्चित्त यही देखो ।		३६३	१०
रत्न • चांदी • तावा लोहा आदि घातु और घान्य तिल नाजआदि चीजोंकी चोरी मध्ये तोलके परिमा-			
नसे प्रायश्चित्त भेद ॥		३६३	१३
(इति सुवर्णन्तेय प्रायश्चित्त प्रकरणं द्विपरिच्छेदमयं)		३६४	४
छत्तीसवेंपरिच्छेदमे केवल उन्हींपातकोंके प्रायश्चित्त दर्शावेंगे जो ठेठ जननी या विमाता जो पिताकी			
मवर्णा कोई भार्या या उसके तुल्य कोई और स्त्रियां मानी जाती हैं। तिनके साथ इच्छा व अनिच्छा		३६४	८
से संगम गुरु शब्द के शास्त्रार्थ की व्यवस्था जो पितापर आरूठ हुई ॥		३६०	७
जिसने बिनाजाने धोखेमें संगम किया तिसका जुटा प्रायश्चित्त ॥		३६६	२०
जननी और जननीकी सवर्णा सौतिया जननीमे उत्तम वर्णासौति एवं पिताकी मनर्षा भार्या या पितामे			
उत्तम वर्णाभार्या जो कोई संगम करै तिनके प्रायश्चित्त ॥		३६६	२५
जननीमे जान बूझ संगम करनेवानेके औरभी प्रायश्चित्त ॥		३७०	५
स्त्री पुरुष दोनोंकी चाहनासे प्रसंग या पुरुषने उत्माह दिलाया वा स्त्रीने पुरुषको लुभाया रत्यादिभेटो			
के प्रायश्चित्त ॥		३८०	२५

आशयानां व्यवस्थाक्रमः	पृष्ठ	पंक्ति
समवर्ण या उत्तमवर्ण पिताकीभार्या जिसने इच्छाविना घोखाआदिमे संगमकरोहो•या चाहिके संगमकर- नेपर उतारू होकर लौटिपडाहो•या इच्छासे संगमपर उतारूहोके लौटिपरा तिनके प्रायश्चित्त भेद ॥	३७१	७
ठेठजननीमे कामनासे उतारूहोकर वीर्य सींचने से पहिले लौटिपरा हो•या कामनाके विना उतारूहोके वीर्यपात से पहिले लौटिपराहो तिसके प्रायश्चित्त भेद ॥	३७१	२०
पिताकी भार्या जो पितासे हीनेवर्ण की हो तिसके संगमपर आरूठहोके जो वीर्यपातसे पहिले लौटिजाय तिसका छेटा प्रायश्चित्त ॥	३७१	३६
गुरुत्प के अतिदेश रूपी निमित्तौ पर प्रायश्चित्तों के भेद ॥	३७२	६
ब्राह्मणोका पुत्रहोके पिताकी शूद्रा भार्या को इच्छासहित भोगै•या जो ब्राह्मण पिताकी वनेनी भार्या में घोखेसे एक बार संगमकरे दोनों का प्रायश्चित्त वारवार एकहै ॥	३७२	१८
पिताकी सवर्णापत्नी जो व्यभिचारिणी होय तिसको विना जाने घोखा से भोगै•या जो इच्छासाथ जानि के भोगै•इनदोनों के दोजुदे प्रायश्चित्त ॥	३७२	२५
जो आप ब्राह्मणी का पुत्रहोते पिताकी क्षत्रिया भार्या को इच्छा सहित जानिबुझिगमन करे तिसका प्रायश्चित्त ॥	३७३	७
उसी क्षत्रिया विमाता में कामनासे वारंवार संगमका अभ्यास करे तिसका प्रायश्चित्त ॥	३७३	१०
जहाँ स्त्रीने अपनी ओर से इच्छा वा उत्साह देनाआदि प्रकट किया हो तहाँका विशेष नियम ॥	३७४	४
ब्राह्मण पिता की वनेनी भार्या ब्राह्मणी का पुत्र इच्छा सहित भोगै तिसका प्रायश्चित्त ॥	३७४	७
ब्राह्मण पिता की शूद्रा भार्या ब्राह्मणी का पुत्र भोगै तिसका प्रायश्चित्त ॥	३७४	१५
ठेठजननी और सवर्णाविमाता ये चारोंवर्णमे होतीहैं•अनुलामप्रतिलामजातीमेभी•तिनकेदृष्टांत और निर्णय ॥	३७४	१०
क्षत्रिया माताका पुत्र अपने ब्राह्मण पिता की वनेनी भार्या भोगै•या वही पुत्र अपने ब्राह्मण पिताकी शूद्राभार्या भोगै•इन दोनों के प्रायश्चित्त ॥	३७४	२६
वनेनी का पुत्र अपने ब्राह्मण पिताकी शूद्रा भार्या भोगै एकवार तिसका प्रायश्चित्त ॥	३७४	२०
वही वनेनी का पुत्र अपने ब्राह्मण पिताकी दूसरी भार्या वनेनी को इच्छा सहित वारवार का अभ्यास करिके भोगै तिसको सवर्णा विमाता के भोगतुल्य प्रायश्चित्त जानो ॥	३७४	२२
क्षत्रिया का पुत्र अपने ब्राह्मण पिताकी दूसरी भार्या क्षत्रिया को इच्छा से जानिबुझि वारंवार भोगै तिसको भी अनतरोक्तके तुल्य प्रायश्चित्त ॥	३७५	४
वनेनी का पुत्र अपने पिताकी शूद्रा भार्या जानिबुझि इच्छासे वारंवार का अभ्यास करिके भोगै तिसका प्रायश्चित्त ॥	३७५	११
वनेनी का पुत्र अपने पिताकी क्षत्रियाभार्याभोगै तिसका प्रायश्चित्त यहाँ और तीन सौ उन्हत्तगिष्ट्र जी पञ्चसवी पंक्ति से भी देखै ॥	३७५	१४
ब्राह्मणी का पुत्र अपने ब्राह्मण पिताकी क्षत्रियाभार्या को विनाजाने घोखा आदिमे भोगै तिसका प्रायश्चित्त वही ब्राह्मणी का पुत्र अपनी क्षत्रिया विमाता को जाने विना घोखामे ठुवाग आदि वारवार भोगै तिसका प्रायश्चित्त ॥	३७५	१७
उसी क्षत्रियाविमाताको जानतेहुये इच्छासे एक बार या अनेज्वाभोगै तिसके प्रायश्चित्तकेद्वारे दूसरी पंक्ति से देखै फिर यहाँ भी ॥	३७५	२१
पिता की वनेनी भार्या से ब्राह्मणी का पुत्र को विना इच्छा से घोखा से गमन करे एकवार • या	३७५	२५

आशयाना व्यवस्थाक्रमः	पृष्ठ	पंक्ति
विना जाने घोखा से अनेकवार संगम किया हो • इन दोनों के प्रायश्चित्त ॥	३८६	०
इसी बनेनी विमाता को इच्छा सहित भोगनेमध्ये प्रायश्चित्त यहाँ और तीनों चौहतरि के पृष्ठमें सातवों पंक्ति से चौदहवीं तक देखो ॥	३८६	१६
पिता को शूद्री भार्या को ब्राह्मणी का बेटा विना जाने किसी घोखामे भोगे तिसका प्रायश्चित्त ॥	३८६	२१
जिसने उसी शूद्रा विमाता को जाने विना एकवार से उपरालू कईवार भोगा हो तिसका प्रायश्चित्त ॥	३८८	३
इसी विमाता शूद्रा को जानिकर कामना से भोगने मध्ये प्रायश्चित्त का विचार ॥	३८९	१०
ब्राह्मणी का पुत्र जो क्षत्रिया विमाता को जानिवृत्ति इच्छा से भोगनेपर उतारूहोके वीर्य सींचने से पहिले लौटिजाय तिसका प्रायश्चित्त ॥	३९०	१२
इसी क्षत्रिया विमाता को समुझे विना किसी के घोखेसे संगम करने पर उतारूहोके वीर्यपात से पहिले लौटिजाने का प्रायश्चित्त ॥	३९०	२३
जो ब्राह्मण अपने पिताकी बनेनी भार्या को जानतेहुये इच्छासे भोगने पर उतारू होके वीर्य सींचनेसे प्रथम लौटिजाय उसका प्रायश्चित्त ॥	३९०	६
इसीबनेनी विमाताको नजानिके भोगने परउतारूहे का वीर्यपातसे पहिले लौटिजाय तिसका प्रायश्चित्त ॥	३९०	१४
जो ब्राह्मण अपने पिताकी शूद्रीभार्याको जानतेहुये इच्छासे भोगने पर उतारूहोके मुख्यसगमसे पहिले लौटिजाय तिसका प्रायश्चित्त ॥	३९०	२३
इसी शूद्रा विमाता को नजानिके इच्छा विना भोगने पर उतारूहोके वीर्य सींचि विना लौटिजाय तिसका प्रायश्चित्त ॥	३९०	०
स्त्रियों को भी पुरुष के तुल्य महापातक और प्रायश्चित्त ॥	३९६	१०
जो स्त्रियाँ अपना इच्छा विना प्रव्रलतासे भोगीजायें तिनका प्रायश्चित्त जुदाहे ॥	३९६	२१
यहाँ तक महा पातको का निपटारा होगया—यहाँ से आगेआगे उनसे कुछ नीचे अतिपातको के प्रायश्चित्त कहेजायेंगे ॥	३९०	२८
महापातकोसे उपरालू अतिपातक और पातक दोभेटोकेप्रायश्चित्तएकसमानहैं जिनमें पुत्रवधू फुफीआदि रिशते की स्त्रियाँ ॥	३९१	२६
चंडालीआदि अंत्यजाति की स्त्रियो से प्रसंग होनेका प्रायश्चित्त ॥	३९०	२०
इसी के वाचमे उत्तमनाते रिशते की स्त्रियोका प्रसंग • तिनमें रानी वा संन्यासिनि स्वगोत्रा गुरु शिष्य की भार्या निक्षिप्र सौर्ष हुई आदिभी गिनतीहै	३९३	६
कन्या दूषण आदि महापाप का अपवाद (इम्तिन्नाऽ) छूट ॥ (इति अगम्यागमनविषयिकं गुणतल्पप्रकरणं परिच्छेदेकमयं)	३९४	१८
सैतोसर्वेपरिच्छेदमें चारभातिकेससर्गी जो महापातकोहोतेहैं ति केप्रायश्चित्त भेदकहेजायेंगे—इसीसेसंमर्ग के लक्षण भी—फिर उनचारिसे उपरालूभी ससर्गी जो होतेहैं तिनके भी प्रायश्चित्त—संमर्गी वही कहाताहै	३९५	६
जो किसी पातकी से हेलमेल करै ॥	३९५	६
ससर्गि के ससर्गी जो हेलमेल वाने से आपहेलमेल करै तिनकेभी प्रायश्चित्त भेद ॥	३९६	१४
संसर्ग हेलमेन के कितने लक्षण भेदहैं ॥	३९६	२०
कितनीदिन या कितनेदिन संसर्ग होने से संमर्गी पतित होताहै ॥	३९९	११
इच्छा सहित किये हेलमेन का प्रायश्चित्त—यहातक महापातकियों के हेलमेनका प्रायश्चित्त है ॥	३९९	१४

आशयाना व्यवस्थाक्रमः	पृष्ठ	पंक्त
अतिपात को आदिका ससर्ग भजे तिनके प्रायश्चित्त भेद ॥	३६३	१०
अडतीसवेपरिच्छेदमे यौनसंबंधकाप्रति प्रसवकहागायगा कि पतितसे विवाह संबंधकरना मनेहोचुका उसमें इतनी आज्ञाहै कि उसकी कन्या इसरोतिसे विवाह लोजाय तौकुछदोषनहीं ॥	३६४	१४
पतितहोने का दशमे संतान लड़कीया लड़का उत्पन्नहोने की व्यवस्था ॥ (इति ससर्ग प्रायश्चित्त प्रकरण द्विपरिच्छेदमयं)	३६५ ३६७	१६ १७
उनतानोसवे परिच्छेदमे चारि बर्णोषे नांचे प्रतिनोमजातो पुरुषोका वध करने के प्रायश्चित्त० और स्त्री शूद्रआदिको मंत्रो के विना प्रायश्चित्त का विधान कहाजायगा ॥	३६८	२०
शूद्र• स्त्री• मूर्ख सब जातोंके लोग•अवकृष्ट जातीलोग• इनको मंत्रों विनाभी प्रायश्चित्त करनेका अ- धिकार ॥ (इति प्रकरण परिच्छेदैकमयं)	३६९ ४०१	२५ ६
(इत्यशेष महापातकादि प्रायश्चित्त प्रकरणानां बृहत्प्रकरणं १६ जनविंशति परिच्छेदमयं)	४०१	१०
चालीसवेपरिच्छेदसे उपपातकोके प्रायश्चित्त प्रारंभ किये जायगे -तिनमे प्रथम गोहत्याके प्रायश्चित्त छेडते हैं जो अनेक भेदके होंगे सो सब इच्छा विना देवयोगसे मरजाने मध्ये नियतहै ॥	४०२	२०
इकतानोसवे परिच्छेदमे उसी हत्यारे के प्रायश्चित्त होंगे जिसने इच्छा सहित जानि बूझि गाय मारी याजिसपर इच्छा विना भी ऐसी गज मरजाय जो जिसका स्वामी उत्तम गुण वाला पुरुष हो या वह गाय आपही उत्तम गुणवालीहो ॥	४०७	१६
अति बूढा या दुर्बल या रोगिनि या बूढीगाय जिसने मारीहो तिसका प्रायश्चित्तभेद ॥	४१०	२८
उत्तम स्वामीकी गाय मारने मध्ये प्रायश्चित्त जुदाहै ॥	४११	८
उत्तम स्वामीकी गाय जिसने इच्छासहित मारीहो तिसका प्रायश्चित्त विशेषहै ॥	४१२	८
पूर्वोक्त सवनस्य श्रोत्रियकी गाय मारने मध्ये औरभी विशेष प्रायश्चित्तहै गायकी उत्तमतासे ॥	४१३	८
वैश्यको हत्यावाला प्रायश्चित्त गोहत्यापर गौतमने उतार दिया ॥	४१४	१६
किन शम्भ्रीसे गोहत्या करी इसके निर्णय सेभी प्रायश्चित्तोंमे कुछ भेदहै ॥	४१५	१३
वयालोसवे परिच्छेदमे गोवधके अनेक भेदोवाले जुदे प्रायश्चित्त होंगे -किन्तु अति बूढी वालक आदिकालुदा•गर्भ गिराके मारदेनेका• एक गायको अनेक मिलि के मारै• रुधि घेरिके एकही पुरुष अनेकमारै हत्यादि ॥	४१६	५
अति बूढा दुबल आदि मरजानेका आधा प्रायश्चित्तहै ॥	४१६	१४
गाम्भिन गाय मारने मेगर्भ हत होनेमे दूसराभी प्रायश्चित्त कितना चाहिये ॥	४१७	१४
रुधि घेरि अनेक गाय मारनेके प्रायश्चित्तभेद ॥	४१८	२३
दाना चाग आदि बहुत खवाइ देनेसे मारनेका प्रायश्चित्त ॥	४१९	८
किसी उपाधि रूपो निमित्त के द्वारा गायमारनेका प्रायश्चित्त ॥	४१९	२१
तेगलीसवे परिच्छेद मे उस गोहत्याके प्रायश्चित्त होंगे जो द्रापने होरने जौतने दाने मिट देने आदि कामोंके व्यतिक्रमसे गफलतमे गाय बैन मरजाय ॥	४२३	८
बधन जौन नाय लेडना आदिमे ऋषिके मरजानेके प्रायश्चित्त ॥	४२३	२०
अति दाने प्रतिवारने अति जौतने आदि कठिन्तासे मरजानेका उदा प्रायश्चित्तहै ॥	४२४	११
इतने प्रकारके बंधनोंसे न बाधना चाहिये ज्ञानरू मर जत है ॥	४२५	१८

आशयाना व्यवस्थाक्रमः

	श्लो	पंक्ति
घटा बाधने वा आभूषण पहिराने आदि उपाधिसे यदि गाय मारीजाय तोभी प्रायश्चित्त है ॥	४२६	२०
मशाले देकर अतिशय दूध निचोडने या शिवामें अति दमन करने या अनेको को एकही बंधनमे बाधने आदि व्यतिक्रमसे मरजानेका प्रायश्चित्त ॥	४२७	३
जंगल आदिमें यथोचित रक्षा न करने आदि गफनतसे मरजानेका प्रायश्चित्त ॥	४२८	१७
विरले कामोमे गाय मरजाने सेभी दोष नहीं है न प्रायश्चित्त है ऐसे अपवादोकी व्यवस्थाभी अनेक है ॥	४२८	१०
उक्त अपवादों (छूटों) मेंभी एक विशेष नियम देखो ॥	४२८	२०
हाड आदि टूटि जानेमें मरनेसे प्राण बचि जाने परभी प्रायश्चित्त ॥	४२९	२९
जिसको गाय मारी गई तिसको वैसोगाय या उतना मूल्य देनेका नियम ॥	४३०	१३
सर्वप्रायश्चित्तोका विभाग चारों वर्णों पर यह समुक्तो-क्यो किय हात क ब्राह्मण प्रायश्चित्तोकी व्यवस्था कही गई ॥	४३०	२३
स्त्री बालक बूढ़े रोगी आदिके प्रायश्चित्तों का विचार ॥	४३१	११
(इति गोवध प्रायश्चित्त प्रकरणं चतुःपरिच्छेदमयं)	४३२	०
चबालीसवें परिच्छेदमें सभी उपपातकों पर गोवधके प्रायश्चित्तोंका अति देश उतारा जायगा कि येही प्रायश्चित्त अन्य उपपातको मे ॥	४३२	१३
इच्छा सहित किये उपपातकों की व्यवस्था ॥	४३३	१९
उपपातकों पर गोवध प्रायश्चित्त का अतिदेश उतारने मध्ये एक तर्कवाद है ॥	४३४	१०
पैतालीसवें परिच्छेदमे ब्राह्मण पुरुषका प्रायश्चित्त कहा जायगा जो वैश्वर्णिकहोके यज्ञोपवीत संस्कारमे विहीन होय तिसको ब्राह्मणता मिटिसके ॥	४३६	२
जिनके बाप दादे आदि अनेक पीढ़ियोंसे संस्कार विना ब्राह्मणता चली आती हो तिनकेभी प्रायश्चित्त से फिर संस्कार होसके है ॥	४३८	११
छियालीसवें परिच्छेदमें उन चारों के प्रायश्चित्त होंगे जो मुवर्णस्तेयसे उपरालू धान्य आदि सामान्य चोरी करें जिसके भेद अनेक हैं ॥	४३९	७
ब्राह्मण की चोरी करो या क्षत्री आदि अन्य वर्णों की इस भेद से प्रायश्चित्तों में भेद है ॥	४४०	१६
छोटी बड़ी चोरी के अनुसार प्रायश्चित्तों के भेद ॥	४४०	२६
कामनाके बिना किसी धोखे आदिसे चोरी करी तिसका प्रायश्चित्त ॥	४४१	९
मुख्य सुवर्ण की चोरी के समान जो चोरियाँ कहाती है तिनकी व्यवस्था और प्रायश्चित्त का भेद ॥	४४२	१२
खानों पीनों वनी तैयार भोजनको चीजेके हरनेमध्ये प्रायश्चित्त ॥	४४३	४
तृण काष्ठ सूखा अन्न गुड तैल आदि अनेक चीजे थोडो हरनेका प्रायश्चित्त ॥	४४३	२०
मणि मुक्ता प्रवाल रजत ताम्र आदि अनेक चीजे के प्रायश्चित्त ॥	४४४	७
पैतालीसवें परिच्छेदमें तीन उपपातकोंके प्रायश्चित्त कहे जायेंगे एक ऋणों के न गोवधनेमध्ये • टूट मर्ग अनाहिताग्नित्वका • तीसरा अपण्य विक्रय का ॥	४४५	०
देवताओंका ऋण • ऋषिओंका ऋण • पितरों का ऋण इसके साथ मनुष्यों का ऋणों जानना इनके न उद्धार करने के प्रायश्चित्त ॥	४४५	११
अनाहिताग्निताका प्रायश्चित्त • जिसके कुत्रमें अग्निका म्यापन चला आता हो वही पुन्य अग्निको म्यापन न राखे तिसका ॥	४४५	२०
अपण्य विक्रय अर्थात् जो चीजे बेनी ब्राह्मण आदिने निषिद्ध है तिनके बेवने का प्रायश्चित्त ॥	४४६	२०

आशयाना व्यवस्थाक्रमः	पृष्ठ	पक्ति
अडतालीसर्वेपरिच्छेदमेमुख्यतौ दोहीउपपातकहैं जिनकेअनेकभेदहोतेहैंअर्थात्परिवेदनकर्मके उपपातक में परिवेता परिविती आदिकई पातको • और दूसरे भृतकाध्यापन के प्रायश्चित्त कहेजायेंगे ॥	४४८	८
परिवेता वहपुरुष जो बड़े भ्राता के विवाह से पहिले अपनाकरै तिसका सगाई मात्र हो जाने का प्रायश्चित्त ॥	४४८	१६
विवाह तकहोजाने कीदशामे परिवेदनी कन्या जो प्रथम छेाटे को विवाहीजाय • परिदायी वह पुरुष जो ऐसी कन्याका दानकरै •परियग्रापडित जो ऐसा विवाह करावै इनसबके प्रायश्चित्त ॥	४४९	७
बड़वहिनके विवाह सेपहिलेछेाटीवहिन विवाहीजाय सो अयेदिधिपू कहाती है इत्यादि अनेकौ के प्रायश्चित्त एकसाथही कहेगये ॥	४५०	११
पर्याहित जेठाभाई जिमके अग्निस्थापना न होतेहुये छेाटाभाई अग्निस्थापन करै तो यह छेाटाभाई पर्याधातृ कहावै दोनौ के प्रायश्चित्त ॥	४५०	१७
दिधिपू वहजेठोवहिन जिससे प्रथम छेाटी विवाहीजाय • यहछेाटी अयेदिधिपूकहातीहै • जिसको विवाहीगई सो अयेदिधिपूपति कहाया तानौ के प्रायश्चित्त ॥	४५०	१७
भृतका ध्यापक • भृता ध्यापित • जो मजूरी देलेकर पढे पढावै तिनके प्रायश्चित्त यह दूसरा उपपातकहै ऊपर एकहीके अनेक भेदकहै ॥	४५०	१७
(इति बहुभेद विषयिकं साधारण प्रकरणं पंच परिच्छेदमयं)	४५०	२६
उष्णसर्वेपरिच्छेदमेंपरस्त्रीगमन प्रायश्चित्तोंके अनेकभेदहोगे • यह परस्त्रीगमन उपपातको मे गिनतीहै • उनस्त्रियोका चर्चा इसमेनहीहै जिनके प्रायश्चित्त गुरुदारागमन के नामसे महापातकोमेकहिचुके ॥	४५३	७
कामसे गमन करना पराई दारा सजातीके ऋतुकाल आदि उतम मध्यम दशके भेदोंसे प्रायश्चित्तभेद ॥	४५३	१०
ब्राह्मण क्षत्री आदि श्रोत्रिय जो विद्यासंग्रह मे लगेहोंया सयह कग्चुके हो तिनकी दारा गमनकरने के प्रायश्चित्त भेद ॥	४५३	२०
श्रोत्रिय ब्राह्मणकी विवाहिता भार्या क्षत्रिया वा वनेनी वा शूद्राहो तिमके ऋतुकालमे संगम आदि भेदों से प्रायश्चित्त ॥	४५४	६
बाई क्षत्री भिसी क्षत्रीकी विवाहिता भार्या क्षत्रिया वा वनेनी वा शूद्रा के ऋतुकाल आदि उतम लक्षणवाली मे गमनकरै तिसके प्रायश्चित्त भेद ॥	४५४	२०
बाई वैश्य किसी वैश्यकी विवाहिता वनेनी या शूद्रा जो पूर्वोक्त उतम गुणवाली हो तिसमे गमन करै उसके प्रायश्चित्त भेद ॥	४५४	२३
बाई शूद्र किसी शूद्रकी विवाहिता शूद्रो भार्यामे विगरै तिसका प्रायश्चित्त ॥	४५४	२५
इच्छा सहित एक रात्रिके सिवाय जो दुबारा आदि संगम करै तिनके पूर्वोक्त प्रायश्चित्तोंके अर्थ बहिजाती है ॥	४५४	२६
इच्छा विना धोखा आदिसे उसी प्रकारकी उतम गुणवाली स्त्रिया जो श्रोत्रिय द्विप्र क्षत्री आदि के जहां भोगीजायै तहा पूर्वोक्त प्रायश्चित्तों में न्यूनता होती है ॥	४५५	१७
पूर्वोक्त ब्राह्मण आदि उन्हीं स्त्रियोको ऋतुकाल के विना कामकी इच्छा सहित भोगे तिनके प्राय- श्चित्तोंमे कुछ भेद है ॥	४५५	१७
उसमे भी तीनों वर्गके अपनेमे नीचे वर्गों की विवाहिता भाईहो तिनके भोगे तहा प्रायश्चित्तों कुछ भेद है ॥	४५५	२७

आशयाना व्यवस्थाक्रमः

	पृष्ठ	पक्ति
तिसमें भी यदि इच्छा विना धोखेमें संगम हुयेहो तिनके प्रायश्चित्त भी जुटेहैं ॥	४५५	२८
धर्म कर्म से बिहीन किसी सजातीकी भार्या यदि कोई सजाती ब्राह्मण आदि भोगै तिसमें जुदा एक नियमहै ॥	४५६	१६
व्यभिचारिणी स्त्रिया जो इन्ही मेंसे कोईही तिनमें संगम करने मध्य प्रायश्चित्तो में कुछ भेदहै ॥	४५६	२०
उत्तम गुणवान् ब्राह्मणकीभार्या जो व्यभिचारिणी या नहीं व्यभिचारिणीहो तिनमें संगम करने के दो तरह प्रायश्चित्त है—ब्राह्मणके समान अन्य वर्णकी काभी सजातो के भोगमें समझना ॥	४५७	१०
रानी सन्यासिनि आदि उत्तम स्त्रियों के भोगमें प्रायश्चित्त ॥	४५७	२४
व्यभिचार से बदनाम रानी सन्यासिनि आदिके भोगमें छोटा प्रायश्चित्त है ॥	४५७	२८
रानी सन्यासिनि आदि जो निपट स्वैरिणीहो अर्थात् तीन पुरुषसे बदनाम होकर चौथे आदि जा- रीसे विगडो हों तिनके भोगमें अति छोटा प्रायश्चित्त ॥	४५८	१३
गर्भ रखि देने का प्रायश्चित्त अनुलोम मैथुनकी दशमें अर्थात् ऊचे वर्णके पुरुष ने नीचे वर्णकी स्त्रीके गर्भ धराहो तिसका ॥	४५८	२३
प्रतिलोम दूषित स्त्रिया जो नीचे वर्ण के पुरुषों से बदनाम होचुकीं तिनमें जो पुरुष गर्भ धरि या चंडाली आदि मलीन जातों की स्त्रियोंमें गर्भ धरै तिसका प्रायश्चित्त ॥	४६०	०
गर्भ जमि जाने वादि उत्पन्न होजानेमें अधिक प्रायश्चित्तहै ॥	४६०	२०
शूद्रिनीके पेटसे गर्भ उपजाने मध्य जुदा प्रायश्चित्तहै ॥	४६१	३
प्रतिलोम व्यभिचार का प्रायश्चित्त जो ऊचे वर्णकी स्त्रियों में नीचे वर्णके पुरुष मैथुन करै ॥	४६१	१४
अत्यंत व्यभिचारिणी ऊचेवर्णकी स्त्रियोंमें प्रतिलोम मैथुन जो नीचे वर्णके पुरुषकरै तिनका प्रायश्चित्त धोविनि रगरेजिनि चिडीमारिनि आदि अंत्य जातोंकी स्त्रियोंमें ब्राह्मण जो एक वार संगम करै या लची आदि कामना से करै तिनके प्रायश्चित्त ॥	४६२	२३
उन्हीं चंडाली धोविनि आदि में जो इच्छा विना धोखा आदि से संगम करै ऐसे तीन वर्णके प्राय श्चित्त यह एकवारके संगमको व्यवस्था कही ॥	४६३	२०
उन्हीं अंत्य जातोंकी स्त्रियोंमें धोखेमें वाग्वार जिसने संगमकिया तिसका बड़ा प्रायश्चित्तहै—तथा जानि ब्रूमि एक वारके भोगमें भी ॥	४६४	१०
उन्हीं चंडाली आदिमें संगमसे गर्भ रहिजाने का प्रायश्चित्त बहुत बड़ा है मो भंगिनि आदि अति मलीनोमें चारों वर्णके पुरुषोंसे कहा गया ॥	४६४	१५
अत्यजाति भंगी आदि जिसके घरमें किसी हेतुमें घुमा या कुछदिन बसाहो तिसके प्रायश्चित्त यहा पर प्रमग से लिखे गये ॥	४६५	२६
पचासवें परिच्छेद में उन्हीं स्त्रियोंके प्रायश्चित्त कहे जायेंगे जो पराये पुरुषोंमें संगमकरै इच्छा वा अनिच्छाके भेद से— यहा उन स्त्रियों का प्रमग नहींहै तिनका चर्वा ३६ परिच्छेदमें आचुका ॥	४६६	६
जो स्त्रियां अपने सवर्णी पुरुष से या ऊचे वर्णके पुरुष में संगम करै तिनका प्रायश्चित्त ॥	४६६	११
जो स्त्री अपना से नीचे वर्णके पुरुष साथ संगम करै तिनका प्रायश्चित्त ॥	४६६	१८
इच्छा विना प्रव्रलता आदि कारणों में जो स्त्री नीचे वर्ण में भोगी जाय तिनके प्रायश्चित्त भेद ॥	४६६	१३
तीनों वर्णकी स्त्रिया कहीं शूद्र के समोग में भी शूद्र होमकरै कही गई है ॥	४६७	१८
कहीं गर्भ रहि जाने में भी स्त्रियों की शूद्रि होनी कही गई है ॥	४६९	८

आशयाना व्यवस्थाक्रम.	पृष्ठ	पंक्ति
जहा शूद्र के बीज से रहकर पैदा होय तहां उत्तम स्त्रियों का फिर प्रायश्चित्त नहीं है अर्थात् त्यागही करना कहा है ॥	४७१	२६
द्विजाती माचकी भार्या अपने पतिके बीजसे सगर्भा होय तिसका यदि शूद्र आदिका प्रवलता से सगम होय तिसका जुदा नियम है ॥	४७०	३
कहों चंडाल आदि अत्यजातोके सगम से भी स्त्रियोंकी शुद्धि प्रायश्चित्त से होजानी कही है ॥	४७२	१६
चारों वर्णकी स्त्रियां जो पतिके बीजसे सगर्भा होते हुये चंडाल आदि अत्यजो से भोगीजायँ तिनके जुदे नियम है ॥	४७५	१७
जिस स्त्री ने कामना सहित अत्यजों के साथ मैथुन और भोजन किया तिसके जुदे नियम है ॥	४७६	१०
उन्हों सर्ववचनोका सागभूत निर्णय यहा देखौ जो जो इमीपरिच्छेदमे प्रारभसे यहातक दियेगये ॥ (इति पारदार्य प्रायश्चित्त प्रकार्य द्विपरिच्छेदमय)	४७६	१५
दक्ष्यावनवेपरिच्छेदमे जुदेजुदे तीनिउपपातकोंके प्रायश्चित्तकहेजायँगे • १ परिव्रित्तिदोष • २ वार्धुष्य दोष • ३ लवणक्रिया दोष • ये तीनि विषय छोटी व्यवस्थाके हेतुसे एकही परिच्छेद मे रक्खेगये ॥	४७६	१६
परिव्रित्तिका प्रायश्चित्त यहां देखौ जिसका स्वरूप ४८ के परिच्छेद मे आचुका था कि जिस जेठे भाई के विवाह से पहिले छोटेका होजाय ॥	४७६	२०
वार्धुष्य वह पुरुष जो अनुचित रीतिका व्याज बट्टा किशत लगाने आदि प्रकारो से खाय तिसका प्रायश्चित्त ॥	४८१	५
लवणक्रिया का प्रायश्चित्त भी वार्धुष्य के साथही देखौ ॥ (इति पारिव्रित्यादि विषयत्रय प्रकरणं परिच्छेदकमय)	४८१	५
वावनवे परिच्छेदमे चर्चो आदि शूद्रपर्यन्त तीनि वर्णोमे किसीपुरुषका वधकरनेवालो के प्रायश्चित्त भेदकहे जायँगे ॥	४८२	२
शिष्टाचार संयुक्त सत्याच चर्चो आदिके मारनेका प्रायश्चित्त ॥	४८३	१०
इच्छा सहित चर्चो आदिका वध किया हो तिसके प्रायश्चित्त ॥	४८४	८
श्रोत्रिय चर्चो आदि जो विद्याके अध्ययन मे लगे या पठिचुके हो तिनके इच्छा सहित मारनेवालो के प्रायश्चित्त ॥	४८४	१८
दोनों गुणमे युक्त चर्चो आदि जो श्रोत्रिय लक्षण और शिष्टाचार आदि सद्वृत्त लक्षणमे भरे हुं हों तिनका वध करने मध्ये प्रायश्चित्त भेद ॥	४८५	८
श्रोत्रिय चर्चो आदि जो यज्ञका आरभ किये हो तिनका वध करने के प्रायश्चित्त भेद ॥	४८५	२१
निपट यज्ञहो मे बैठे हुये श्रोत्रिय चर्चो आदिके वध करने मध्ये प्रायश्चित्त का बडापन ॥	४८५	११
दुर्वृत चर्चो आदि जो कुमार्गी विदित होयँ तिनका वध करने के प्रायश्चित्त छोटेहैं यहातक उरु के प्रायश्चित्त कहे गये जो मारनेवाला सुद ब्राह्मण हो ॥	४८५	८
प्रायश्चित्त मे उपरालू कोई चर्चो आदि वधकर्ता हो तिनके प्रायश्चित्तो मे कुछ भेदहैं उन्नी पंक्ति पावे पर ॥	४८५	१
तिरपनवेपरिच्छेदमे चारौवर्णकी उन्स्त्रियोंकेवधपर प्रायश्चित्तभेदकहेगे जो मन्त्र • मन्त्र • दुर्वृत • तात भाति को हो-अर्थात्-सतन पैदा करने के उत्तम गुणके हन बंधन • आदि का निश्चित्य • आदि चारके कलकित या अत्यंत स्त्री • आदि ॥	४८५	८

आशयाना व्यवस्थाक्रमः

	पृष्ठ	पंक्ति
मवधे प्रथम अतिखोटी स्त्रियो के वधपर प्रायश्चित्त—फिर ॥	४६१	६
एक अडवंगी व्यवस्थाका निर्णय जो बीचमें आनिपग ॥	४६०	२०
किंचित् व्यभिचार मे दूषित जो अति खोटी न हो तिनका वध करने के प्रायश्चित्त भेद (इनके मध्यमा कहना चाहिये) ॥	४६४	६
निकम्मी या मंदा कहे जो तीनों मे श्रेष्ठ है तिनके वध करने का प्रायश्चित्त हारीत के वचन से कुछ बडा है ॥	४६७	१३
श्च्छके विना दैवयोग से वधकिया हो तिसके लिये आधे प्रायश्चित्तका नियम है ॥	४६७	२७
सर्वसिद्धात रूपी-निर्णय—इसमे आचेयी • मदा • मध्यमा • अति खोटी इन चारों की व्यवस्था समुक्ति लेना ॥	४६६	०
(इति ब्राह्मणेनरनरहिसा प्रकरणं द्विपरिच्छेदमथ)	४६८	१०
चोवनवें परिच्छेद मे मनुष्य से उपरालू सब जीवों की हिसा मध्ये प्रायश्चित्त भेद कहे जायेंगे जो हाथी से लेकर मच्छर लीख पर्यन्त होतेहो ॥	४६८	१४
विनहाडोके जन्तु या हाडोंवाले अतिमूढम जन्तुओका समूह वध करने मध्ये प्रायश्चित्त ॥	४६८	१६
बिल्ली • गोह • मेढक • नेउरा • और उडनेवाले काकपत्ती आदि अनेक जीवोंका वधकरनेके प्रायश्चित्त ॥	५००	१०
हाथी • गदहा • बकरा • आदि चौपाये • तथा • तोता • कौंच • सारस आदि श्रेष्ठ पक्षियोंके वधकरनेका प्रायश्चित्त भेद ॥	५०१	१६
वानर • हंस • वाज • गिद्ध • और मांसभक्षी जीव जो जलमें या स्थलमे होतेहो और भाम नामकपत्ती आदि जीवोंके वधमध्ये प्रायश्चित्त ॥	५००	०
नाप आदि सगीसृप • जँट • वागह • घोडा आदि और नपुम केवल हिजरो की जातिमाच जो वे भी पशुतुल्य हैं • इनके वधकरने के प्रायश्चित्त ॥	५०३	४
उक्त प्रायश्चित्तो की अशक्ति मे दूसरे प्रायश्चित्त बताते हैं ॥	५०७	३
अति सूक्ष्मजंतु जो फल फूल पत्ते लकड़ो आदि मे होतेहैं तिनके नाश करनेका प्रायश्चित्त ॥	५०६	२३
उन सब जीवोंके वधपर प्रायश्चित्त जो अपगध करने के प्रतिकार में मारेंहो (अपगधका दृष्टात जैसे कुत्तेने काटिखाया • काकने ऊपर हगिदिया ॥	५०८	२४
(इतिनरेतर सर्वप्राणिहिंसा प्रकरण परिच्छेदकमथं)	५१०	२४
षवपनवेंपरिच्छेद मे सब तरहकी वनस्पति वृथा काटने या तोडने या उगाडि उगने आदि क्रिमो प्रकार से विनाश करनेके प्रायश्चित्त भेद कहे जायेंगे ॥	५११	४
छप्पनवेंपरिच्छेद मे उस पुरुष के प्रायश्चित्त कहे जायेंगे जो क्रिमो मलीन पशुपत्तीआदि ज यमे या मनुष्यही से काटि खायाजाय—क्योकि माग्नेका प्रमग चना आताहै तथा मानेवाना क्रिमोमे काटि खाया भो जाताहै ॥	५१३	००
पुश्चनी व्यभिचारिणां वेश्या आदिभी प्रायःक्रिनोल के समय काटि खातीहै या बन्दर गदहा जट कारु आदिमे काटिखायाजाय तिमके प्रायश्चित्त ॥	५१६	०५
स्त्रिया जो कुत्ते आदिसे काटीजायें तिनके जुडे प्रायश्चित्त है उनमे जो व्रत नियम मे मगृक हो तिनके लिये विशेष नियम है ॥	५१७	१५
रजव्वला होने जो स्त्रियां कुत्ता गदम कारु आदि काटीजायें तिनके जुडे प्रायश्चित्त है ॥	५१७	२४

आशयानां व्यवस्थाक्रमः	पृष्ठ	पंक्ति
पुरुष जो कुत्ता आदि मलीन जीवोंसे केवल सूघि लियाजाय या जीभसे चाटि लियाजाय तिसके जुदे प्रायश्चित्त है ॥	५१६	८
जिस पुरुष के देहमे कुत्ता आदिके काटने न घोटने या औरही किसी चोट फोडा आदि के सड़ि-जानेसे राधिमे कीड़े भी परै तहाका जुटा प्रायश्चित्त है ॥	५१६	१४
(इति स्यावर हिसादि प्रकरणं द्विपरिच्छेदमयं)	५१७	१३
सगवनें परिच्छेदमें उन प्रायश्चित्तोंके भेद कहेजायँगे जो देहका मातवा धातुवीर्य किसीतरहसे विगाडि देनेमे लगते हैं या जलमे मुहकाया देखिलेने • या कोई अशुचि वस्तु देखिलेने • या नि-दित उपजीवन • या नास्तिकता प्रकट करने मे लगते है ॥	५१८	२
वृथा वीर्यपातन के प्रायश्चित्तभेद अनेक है ॥	५१८	८
जनमे छाया देखनेका प्रायश्चित्त १ अशुचिवस्तु देखिलेनेका प्रायश्चित्त २ असत्य वचन जो केवल हासी ठट्टेको चपलतासे बोला हो तिसका भी प्रायश्चित्त ३ तीनों एकसाथ ॥	५१९	२६
निदित अर्थसे उपजीवन कर्मका प्रायश्चित्त • इसमे स्त्री पुरुष बालकआदिका बेचना या विकवाना दलानीलेना आदिभी शामिल हैं ॥	५२०	२६
नास्तिकतापर आरूठहोने या उसकेद्वारा जीवनवृत्तिकरनेकाप्रायश्चित्त उसीनिदित अर्थकेसाथमें देखो ॥	५२१	३
अट्टावनवेपरिच्छेदमे ब्रह्मचारी आदि जो वीर्य खंडित करिके अबकीणी ठहरेहे। तिनके प्रायश्चित्त हेगे—और वानप्रस्थ सन्यासी जो आश्रम छोडिभागै या फिरिके घर बसावै तिनके भी प्रायश्चित्त ॥	५२२	८
अबकीणी ब्रह्मचारी आदिका प्रायश्चित्त ॥	५२२	१८
ब्रह्मचारी जो स्त्री सगम के बिना भी वीर्यका स्कन्दन करै या दिनमें सेवै या स्वप्नेमे वीर्य त्यागै तिसके प्रायश्चित्त ॥	५२६	२३
वानप्रस्थ या सन्यासी जो वीर्य खंडित करै या निजआश्रम के व्रत भगकरै तिनके प्रायश्चित्त ॥	५२७	२६
सन्यासी जो संन्यास छोडि फिरिके घरबसाकर आप गृहस्थोवनै तिसका प्रायश्चित्त पुन. मस्कार भी ॥	५२८	११
बिरले सन्यासी आदि भग्नव्रत होकर पीछे प्रायश्चित्त करने से भी गृहस्थो मे नहीं शामिल होसकैहे (अर्थात् ऊपरके प्रायश्चित्तशाले शामिल होसकते है ॥	५२९	१३
नास्त्रीय मरणारूठ प्रच्युताना व्रतभग प्रायश्चित्त भेदा. यह दोनोवात एकरूप है ॥	५२९	१४
अशास्त्रीय मरणारूठस्य प्रायश्चित्त—इसमे आत्मघातियोंके प्रायश्चित्त भेदहै कि जे जेह बिनामौत मरनेपर उताहू होकर बचिजायँ ॥	५३०	५
आत्मघाती जो निपट किसी बहानेसे आपही मरणये तिनके प्रायश्चित्त उनके पृवादिज अविजारीजरे ॥	५३१	३
व्रतनोपे शब्दके अर्थका निर्णय जो अनेक वातापर फैनता है ॥	५३१	२८
उनमठिवे परिच्छेद मे ब्रह्मचारिके व्रतभग होने मध्ये प्रायश्चित्तहेगे जि जिमब्रह्मचारिके यद्येन नियम खरिडत होजायँ—और ब्रह्मचारी विद्यार्थी के मरने से गुहूजेभी प्रायश्चित्त बहानायोग ॥	५३३	७
ब्रह्मचारी जो मास आदि भक्षण करै तिसके प्रायश्चित्त ॥	५३३	८
गुरुके प्रतिजूल आचरणकरै तिसके प्रायश्चित्त ॥	५३४	१
यज्ञोपवीत आदि खरिडत होजाय तिसके प्रायश्चित्त ॥	५३४	३०
यज्ञोपवीत क धेपर हुये बिना भोजन या शंका नष्टुमंका आदि कर्म करै तिसका प्रायश्चित्त ॥	५३५	८
अभत्य जीवेकेमास घातनेखाने • या जनिबूजि इच्छासहित श्रेष्ठ स राइनेके बड़े प्रायश्चित्त ॥	५३५	१३

आशयाना व्यवस्थाक्रम.	पृष्ठ	पंक्ति
रोगहोनेकी दशमे जो वैद्य आज्ञादे तो दूसरोगकी शांति चाहिके मासखानेका दोष नहीं पर गुरुके आज्ञालेले ॥	५३३	२४
ब्रह्मचाराको यदि कुत्ता आदि मलीनजीव काटिखाय तिसके प्रायश्चित्तका प्रसंग ॥	५३०	१३
गुरुका भेजाहुआ शिष्य कहीं वेहड आदिमे मग्जाय तिमका प्रायश्चित्त गुरुपर ॥	५३०	२२
प्राणहिंसाहोजानेपर भी हिंसाकादोष विरले स्थलपर नहीं है तिसमेमर्ष हिंसामात्रका अपवाद यहादेखी ॥	५३८	२०
साठिवे परिच्छेदमे उसपापीका प्रायश्चित्त कहाजायगा जिसने किसीपर झूठा दोष लगाया हो—और उसका भी कि जिसपर झूठा दोष लगाया जाय ॥	५४०	०
मिथ्याभिर्शंमन प्रायश्चित्त—झूठा दोष लगाने का प्रायश्चित्त ॥	५४०	८
मिथ्याऽभिर्शस्तस्य प्रायश्चित्त—जिसपर झूठा दोषलगाया तिसको भी प्रायश्चित्तकी जरूरत होती है, इसको प्रायश्चित्त वृथा क्यों करना चाहिये इसी सदेहका निर्णय ॥	५४२	२२
इकसठिवेपरिच्छेदमे उनपापीके प्रायश्चित्तहोगे जो पुरुषको रजस्वला स्नान करनेमे या भाईकी भार्या गमन करने मे लगते—और स्त्री को उस दशा मे लगते है जो रजस्वला होते दूसरी रजस्वला मे भिडजाय या चडाल कुत्ते आदिको छुडजाय ॥	५४४	१०
अग्भ्यागमन के प्रायश्चित्त—यहा अगभ्या भाई का भार्या • या अपनी भार्या जो रजस्वला हो • या गर्भिणी हो • या पतिता • या मद्यपा • या चडाली आदि रजस्वला हो ॥	५४४	२३
रजस्वला सगम करने का विशेष नियम • इसमें गर्भिणी और पतिता और चडाली आदि भी शामिल है ॥	५४४	१३
भाई की भार्या गमन करने पर छोटा प्रायश्चित्त कहा जानेका निर्णय परम कारण के साथ ॥	५४१	२८
रजस्वला स्त्री जो दूसरी रजस्वला अपनी सगोत्रा आदि किसीको छुडजाय तिमके प्रायश्चित्त ॥	५४६	१८
जुदे जुदे वर्णोंकी दो स्त्री रजस्वला होते परस्पर छुडजाय तिन दोनो के प्रायश्चित्त ॥	५४२	४
चडाल आदि मलीन प्राणीमे जो कोई रजस्वला छुडजाय तिमके प्रायश्चित्त भेद ॥	५४८	५
रोगिनी असमर्थ रजस्वला यदि कुत्ता मूक काक आदि मे छुडजाय तिमके जुदे प्रायश्चित्त है ॥	५४८	२५
रजस्वला भोजन करते हुये कुत्ता वा चडाल आदि मलीनोको छुडजाय तिमका जुदा प्रायश्चित्त है ॥	५४८	२०
दो रजस्वला भोजन करते समय आपसमे भिडजाय उन दोनोके प्रायश्चित्त भेद ॥	५४३	१४
भोजन के विना किसी रजस्वला को यदि कुत्ता गर्दभ आदि काटि खाय या नाक मे मूथिजाय या चिमगादर आदि नीच पक्षी छुडजाय तिमके प्रायश्चित्त का प्रसंग ॥	५४३	२८
(इति व्रतनोप प्रकरण पंच परिच्छेद मय)	५५०	५
वासठिवे परिच्छेदमे मुतविक्रय आदि खोटे विक्रयो मे उपजावन करनेके प्रायश्चित्त कहे जायेंगे—आदि शब्दसे • स्त्री • कन्या • पुरुष • गाय • पुण्य • वागीचा • देवालय • नाताय • तीर्थ आदिका विक्रय भी जाना	५५०	१०
मुतादि विक्रय का प्रायश्चित्त • जहा अज्ञान आदि विपत्तिके विना विक्रय किया है ॥	५५०	१३
अकाल आदि प्रवल विपत्तिके जो मुत आदिका विक्रय किया तिमका प्रायश्चित्त ॥	५५०	५
यहा आदि शब्दसे देवालय वागीचा पुण्य तीर्थ आदि भी समझने और मद्र तर्हर्क मतान मात का विक्रय समुझनेना ॥	५५१	८
नारी और कन्या पुत्र पुरुष आदिका विक्रय जो इच्छा नहित तोषलान्दमे किया है तिमका प्रायश्चित्त ॥	५५१	२८
विपत्तिके होने विना व्यर्थ व्यय करने के निमित्त जिसने इच्छाले है वस्तु या प्राणी बेदा है तिमके प्रायश्चित्त ॥	५५२	५

चाशयाना व्यवस्थाक्रमः	पृष्ठ	पं क्र
तिरसठवे परिच्छेद मे चारि उपपातको के प्रायश्चित्त कहे जायँगे—उनमे एक अयाज्ययाजक पाधा परिडतके १ दूसरे वेदकी वृथा बखेर करनेवाले वेदपाठीका २ तीसरे मारण उच्चाटन आदि प्रयोगी मचशास्त्री का ३ चौथे शरणागतको रक्षा न करनेवाले धनवान् जनवान् का ॥	५५३	७
इन चारो उपपातकियोके मिले भुने प्रायश्चित्तो के लक्षण भेद ॥	५५३	१०
इनमे प्रथमके दो पुस्तोका एकही प्रायश्चित्त है और दोनोका एकहीसा पापहै जो मचसे संवधरखता है।	५५३	२२
इन्हो चारोमे पिछले दोपुस्तो का प्रायश्चित्त एकहीसा अभेदहै अर्थात् वेदपात्री और शरणागतके त्यागीका। पढने पढाते समय गुरु शिष्य दोनोके बीचमे यदि मूसा आदि कोई जीव निकसिजाय तहां अनध्याय होकर प्रायश्चित्त होना कहा है ॥	५५६	११
चौसठवे परिच्छेद मे १० दश उपपातको के प्रायश्चित्त कहे जायँगे—उनमें प्रथम पितृ मातृ मुत गुरु त्याग • कन्याद्रूषण • परिविंदकयाजन • कुटिलता • निजव्रतोके नियम तोडिदेना • मद्यप स्त्री का सेवन • परिविंदक को कन्या देना आदि ॥	५५७	६
पिता माता पुत्र गुरु आदि को कारण के विना त्यागि देनेवाले का प्रायश्चित्त ॥	५५८	८
किसी कुमारो कन्याको दूषित करने या उसमे कोई दूषण आरोपित करनेवालेका प्रायश्चित्त ॥	५५६	१०
कौमार अवस्था मे दारा त्यागि देनेवाले • वृषलो के पात होनेवाले • कूट व्यवहारी आदि अनेक पापी लोगोके प्रायश्चित्त प्रसंगमात्र से दर्शाये गये ॥	५५८	२८
कुटिलता और परिविंदक को कन्या देना या उसको यजन कराना और मद्यप स्त्रीका सेवन करना और स्वीकृत व्रतोके नियम तोडिदेना आदि छ.प्रकारके प्रायश्चित्त एक साथही यहां देवो ॥	५६१	७
पैसठवे परिच्छेद में आठ उपपातको के प्रायश्चित्त कहे जायँगे—प्रथम स्वाध्यायकात्याग • अग्निहोत्र कात्याग • मुतादि मस्कारकी उपेक्षा • वन्धुओ का अपालन आदि आठनाम जुटे जुटे आवैगे ॥	५६१	३०
स्वाध्याय जो पढा वेद शास्त्र या नधापाठ आदि हो तिसके निपट त्यागि देने या भुनाइ देनेका प्रायश्चित्त ॥	५६०	४
अग्निहोत्रको स्थापना जिसके कुनमे चली जातीहो वही उसको त्यागिटे तिसके प्रायश्चित्त ॥	५६०	३०
पुत्री पुत्र आदि जो विवाह द्विरागमन यज्ञोपवीत मुण्डन आदि सस्कारो के योग्य हो तिनके काने मे विनम्ब या निपट उपेक्षा करै तिसके प्रायश्चित्त ॥	५६४	३१
बाधव रिगते दार समपी जे असपर्यहो तिनका पानन जो समर्थ होतेहुये न करै तिनका प्रायश्चित्त ॥	५६४	३१
स्त्रियोकेजर्म द्वारा निद्रितजीविका करै या तिसके कर्म के प्रसंगवे जीविका करै या अशुकर विषय भोग आदि सबयो औषधियो से जीविका करै तिनके प्रायश्चित्त भेद ॥	५६५	१३
(इतिश्रुतित्याना परित्याग प्रकार चतु परिच्छेदमथ ।	५६५	३२
ए दूठवे परिच्छेद मे दुर्व्यसना को धन लज्जाने के प्रायश्चित्त कहे जायँगे जेन उन के प्रसंग मे सद्व्यसनावा भी निर्णय किया जायगा ॥	५६५	३
दिनेकर ब्राह्मणेमेंदृष्ट्य न उपपातकी जो प्रवेताने कहे तिनका प्रायश्चित्त यथा कर्म के प्रसंग मे दर्शाया गया ॥	५६५	३
रासठवे परिच्छेद में चारि उपपातको के प्रायश्चित्त कहे जायँगे—उनमें प्रथम अशुचित्त दूषण भेदा २ हीनजाति वा हीन प्रकृति पुरुषके भेद ३ हीनदेविना भेदा ४	५६५	३
नान्यवधय और गूढसेयो इन दोनो के प्रायश्चित्त :	५६५	३

आशयाना व्यवस्थाक्रमः	शृ	पङ्क्ति
हीनसे मित्रता रखनेवालेका प्रायश्चित्त ॥	५०१	११
हीनयोनिका मेघन कईभांतिसे होताहै तिसके प्रायश्चित्त किन्तु अपने से नीचे वर्णकी स्त्रियो साथ विवाह करनेवालेका ॥	५०१	२०
वेश्या आदि नीच स्त्रियोसे भोगरूपी हीन योनिके मेघन मध्ये प्रायश्चित्त भेद ॥	५०२	२५
जिसने इच्छा सहित वेश्यागमनका अभ्यास बारम्बार या बहुतकाल पर्यन्त किया हो तिसके प्रायश्चित्तका निर्णय ॥	५०३	०
जिमने जन्मसेही मुग्धि बुधि सम्हारने से लेकर वेश्यागमन आदि पापसंचय किया हो तिसके प्रायश्चित्तका निर्णय ॥	५०५	२०
असठवे परिच्छेद में ६ भांति उपपातको के प्रायश्चित्त कहे जायेंगे—प्रथम अनाश्रमीका १ पराक्ष लोलुपका २ असत्शास्त्र के अभ्यासीका ३ खानिके अधिकारीका ४ भार्या बेचनेवालेका ५ असत्प्रतियह लेनेका ६ ॥	५०६	०
अनाश्रमी जो चार आश्रमीके बीच किसी भी आश्रमीका अवलम्ब न राखे तिसके प्रायश्चित्त ॥	५०६	१३
पराक्षलोलुप आदि चारोके प्रायश्चित्त गकमाथ यह देखो ॥	५०७	१३
असत्प्रतियह लेनेवाले के प्रायश्चित्त भेद अनेक हैं ॥	५०७	२४
सत्प्रतियह लेनेवालेको भी कुछ प्रायश्चित्त योग्यहै ॥	५०७	०
(इति अनिष्ट मगादिमेघन प्रकरण त्रिपरिच्छेदमथ)	५०७	२५
प्रासंगिकवार्ता विशेष जिसमें अगिले पिछले प्रायश्चित्तको अन्तर जाना जाय ॥	५०७	२५
उनहतरवें परिच्छेद मे उन अभक्ष्योके खानेपीनेका प्रायश्चित्त कहाजायगा जो अपनी जातिही मे दुष्ट जैसे पियाज आदि या सधिनोगायकादूध आदि—और स्वभाव दुष्टमास आदि जो अपना खानेपियत से खोटे ॥	५०९	२३
जातिदुष्ट पिआज आदि चीजें भक्षण करने के प्रायश्चित्त ॥	५०९	६
जातिदुष्ट दूध आदि जो मन्थियो आदि गै.ओ.मे है तिनके पान करने के प्रायश्चित्त भेद ॥	५१५	१७
स्वभावदुष्ट मास आदि अभक्ष्योके प्रायश्चित्त भेद ॥	५१७	१०
मतरवा परिच्छेद मे उन अभक्ष्योके प्रायश्चित्त कहे जायेंगे जो अन्नादि खानो पीना चीज किसी की जूठी या किसी मनोन प्राणमेरुहै या किमी अशुद्धवस्तुके भिडिगई है तिनको भक्षणकरै ॥	५११	१०
विराना जूठा अन्नखाने के प्रायश्चित्त भेद जो कुत्ता कब आदिका जूठाने या मनुष्य का जूठा ऊँच नीच भेदोसे विना खाने या जानिके खायाहो ॥	५२०	०
ब्राह्मणको ब्राह्मण आदि किसीवर्णका जूठा खाइलेनेके प्रायश्चित्त ॥	५२०	२५
पिता और जेठे भाई आदिका जूठा खानेमध्ये प्रायश्चित्त का अपवाद है—स्त्रियो मे माता और बहिन अदिका जूठा खानेके जनेज आदि सम्झार न हो तनीकर कृष्टहै आगे नहीं ॥	५२२	२३
शूद्रकी जूठावस्तु खाने वा स्त्रियोकी जूठी खाइलेने—और चण्डालआदि ज्ञान मनोन की जूठा खाने लेने के जुडे प्रायश्चित्त है ॥	५२४	६
गुरुमे जन्पीकर पात्रमें बचे हुये जूठे तन्को खाने मध्ये ठो भेदके प्रायश्चित्त है कि एक निज अपनाजूठा पीनेपर दूसरा अन्यवर्णका जूठापीनेमे ॥	५२५	१०
टीपक मे जनेहुये जूठे तन्को खानेमध्ये जुडा प्रायश्चित्त है ॥	५२५	४

आशयानां व्यवस्थाक्रमः	पृष्ठ	पंक्ति
भोजन में बाल गक्खी जाना आदि पगिजाय या कोई अपवित्रवस्तु भिडिजाय तिसके खाइलेने का प्रायश्चित्त या पशु पक्षी आदिका जूठा मूघा खाइ तिसके भी ॥	५२६	२०
विष्णु मूत्र आदिसे दूषित फलमूल आदि चीजें खाइलेनेके प्रायश्चित्त ॥	५२७	६
भोजनका तैयारपन्न जो किसी अपवित्र प्राणीपाचने स्पर्श किया हो या बनाने वालेने क्रिया भ्रष्टकी रीतिमे बनाया हो तिसको खाइलेनेके प्रायश्चित्त ॥	५६०	२०
गन्धला या चण्डाल आदि अति मलीनका छुआ अन्न भक्षण करनेका प्रायश्चित्त ॥	५६८	२
शूद्र आदि नीचका छुआ बिगाडा अन्न खानेके प्रायश्चित्त ॥	५६८	१६
जूठी पातिमे बैठि भोजन करनेका प्रायश्चित्त ॥	५६६	६
परोसी हुई रसोई पत्तन आदि पर मर्चावधि किये बिना भोजन करनेका प्रायश्चित्त • या वार्येहाय से परोसी या फूटे पाचमे परोसी या खड़े भोजन करै इत्यादि अनेक प्रायश्चित्त ॥	५६६	१६
मृतक आदि परेहुये जलाशय कूप आदिका जलपीने वा स्नान करनेके प्रायश्चित्त ॥	५६६	२३
चाडान आदिके कूप कुण्ड आदिमें जलपीने वा स्नान करनेका प्रायश्चित्त ॥	६००	२१
पुष्करिणी तलेया वड़े गड़हिले आदिके पानी पर यह जुदी व्यवस्था है ॥	६०१	१२
चण्डाल अंत्यज आदिके वासनमे घरेहुये पानी दही दूध आदि खानेपीने का प्रायश्चित्त ॥	६०१	२०
पिमाळ आदिके जलमें जाकर देह घोवै या नाविक जलपीवै तिसको जुदा प्रायश्चित्त है ॥	६०२	१८
उपवासके लक्षण समुक्ति पानेमे भ्रांति खड़ी होय तब यहा निर्णय देखौ ॥	६०२	३०
इकहतरवें परिच्छेदमें उस अन्न का भोजन करनेके प्रायश्चित्त भेद होगे जो भावदुष्ट • कालदुष्ट वासी आदि • शंक्तिभोजन • ग्रहण आदि समयोपर कालदूषित • अनुक्तप्रायश्चित्त • फूटेपाच आदि का भोजन • क्रियादुष्ट • ॥	६०३	११
भावदुष्ट अन्न आदि चीजोंका भक्षण करिलेने के प्रायश्चित्त ॥	६०३	२०
शंक्ति भोजन जो भ्रांतिरूप शंकासे दूषित होय तिसके भोजन का प्रायश्चित्त ॥	६०४	२१
कालदूषित अन्न जो वासी तिसासी आदि अतिकाल घरा रहिने से कोई चीज विगडजाय तिसके भोजन का प्रायश्चित्त ॥	६०५	१४
रायकी देरा या ग्रहणके मृतकमे या और किसी अशुचिकाल मे या सध्या आदि समयो पर सभी अन्नवान दूषित होजाते हैं उस बेला पर खानेके प्रायश्चित्त भेद ॥	६०६	१
गुणदुष्ट चीजोक प्रायश्चित्त जो काजी सिर्वा आदि अनेक भाति होते हैं जिनमे दवाईमे उपगन् खाने मे बुरा गुण होता हो ॥	१०	६
फूटे टूटे फटे आदि पाचमे या बहुतेरे सजे पाचमें भी भोजन का निषेध है तिनमे ८२ लेने का प्रायश्चित्त ॥	६०७	२१
हाथ घुमेडिके देने आदि क्रियादुष्ट भोजन भी अनेक भाति होते हैं जिनके संहारनेका प्रायश्चित्त ॥	६१०	६
दूधके टाचसे दिया परोसा अन्न चाहे ब्राह्मणका हो या अरका हो या शूद्रका अन्न ब्राह्मणके हाथ से भी दियाजाय इनके खानेसे प्रायश्चित्त ॥	६१०	२३
घरतरवें परिच्छेदमे सब तरहके आटोंका नैला आदि कुत्तितान्न खानेमेने शक्यमे प्रायश्चित्त करेकार्यगे जिसके भेद अनेक हैं ॥	६११	१०
नवीन आहु जो मरे पुरुष के मृतकमे रोज रोज होते हैं उनमे आदि नैला आदि नैला आदि दूधका आटोंके वड़े वड़े प्रायश्चित्त है ॥		

आशयाना व्यवस्थाक्रमः	पृष्ठ	पंक्ति
अतिथि अभ्यागत जिसके द्वारपर भूखा बैठाहो तिसको भोजन करलेने से महा प्रायश्चित्त लगता है यह वाचमे प्रसंगसे कहागया ॥	६१०	१८
अपमौतसे मरेहुयोका श्राद्ध खाइलेने के प्रायश्चित्त विशेष ॥	६१४	३
अपाक्तेय पुरुष जो पातिसे बाहर कियेगये हो तिनके मरका श्राद्धान्न खाइलेनेके प्रायश्चित्त विशेष ॥ आम श्राद्धके लक्षण जो कच्चे अन्न देके श्राद्ध होताहै उस दशामें कि जिसकी पत्नी रजस्वलाहोय या पत्नी निषट न होय इत्यादि में ॥	६१४	१६
ब्रह्मचारी या कोई ब्राह्मण जो किसी यज्ञ,दि अनुष्ठान मे लगाहो वही यदि श्राद्धका नैता दिया अन्न खाय तिसका प्रायश्चित्त ॥	६१५	१०
आमश्राद्धमे कच्चा सीधा अन्न दिया हुआ जो खायें तिनको सभी प्रायश्चित्तों का आधा प्रायश्चित्त करना चाहिये ॥	६१५	१६
अनुक्त श्राद्धान्नका प्रायश्चित्त-अर्थात् जिस किसी श्राद्धके नामसे कोई प्रायश्चित्त कहीं न लिखादेखा जाय तिसके भोजन का यह छोटा प्रायश्चित्त ॥	६१५	३०
जातकर्म आदि सस्कारों के अगभूत जो अभ्युदय श्राद्ध होतेहैं तिनमें भोजन करनेका प्रायश्चित्त ॥ संबंधी आदि घरों मे परस्पर व्यवहार को लाचारी से जिसको नियम भोजन करना परादेो तिसका प्रायश्चित्त किसी मुखतारके द्वारा भी होता है ॥	६१६	६
सोमंतोन्नयन कर्म जो गर्भाधानसे छठे आठवें मास होताहै इत्यादि सस्कारों के अन्न भोजन करने का प्रायश्चित्त ॥	६१६	१२
तिहत्तरवें परिच्छेद में उन्हींके प्रायश्चित्त होंगे जिन्होंने पग्ग्रह दोषमय अन्न खाया हो-कित्तु बहुधा मनुष्यों के कब्जेवाला अन्न या उनकी हर्कायत का अन्न दूषित कहाता है तिसके भोजन का प्रायश्चित्त ॥	६१६	२१
अभोज्य भोजन करने का प्रायश्चित्त ॥	६१७	३
जवर्दस्ती जिनको चण्डाल स्त्रेच्छ आदिने अन्नादि भोजन या कोई बुरी चीज मगार्ने या गौहत्या आदि करवाई तिनके प्रायश्चित्त विशेष ॥	६१७	१५
सूतकी लोगोके पग्ग्रह (कब्जे) में रहिते अन्नका भोजन करने के प्रायश्चित्त ॥ अपुचादिकोका अन्न खानेवालो के प्रायश्चित्त विशेष • आदि कहिने से अनेक पुरुष शामिल है उन सबही का अन्न खाना मने है ॥	६१७	२४
(इति अभक्ष्य प्रायश्चित्त प्रकरणं पंचपरिच्छेदमयं समाप्तम्)	६२१	१०
चौहत्तरवें परिच्छेद मे प्रकीर्ण पापोंके प्रायश्चित्त जो प्रधान है सो तौ पाछे कहे जायेंगे-प्रथम • जाति भ्रंशकर • सकरी करण • अपाची करण • मदिना करण • इन नामोंके उपपातकोका प्रायश्चित्त कहा जायगा ॥	६२०	१५
जाति भ्रंशकर आदि चागे भाति उपपातकोके लक्षण और प्रायश्चित्त मकरहीमाय ॥	६२०	२४
प्रकीर्णक नामके अनेकछोटे उपपातको के लक्षण और प्रायश्चित्तों के भेद भी मकरही माय ॥	६२०	२४
लूट गदहा का सवारीपर बैठने और नगे बैठि नहाने या भोजन करने और डिामे म्त्रा मे मैशुा करनेके प्रायश्चित्त ॥	६२०	२९
गुस्ने अपमासे उपगलू जिन्ही ब्राह्मणको वार्ता विनादमे हराने कित्तु जिनके पापना प्रायश्चित्त ॥	६२१	२९

आशयाना व्यवस्थाक्रमः	पृष्ठ	पंक्ति
ब्राह्मणके दण्डा मारनेको उठाने या मारदेने या रक्त चलाइदेने या भीतरी चोटकोपीडा पैदाकरि देने मध्ये जुदे जुदे प्रायश्चित्त है ॥	६०६	२३
मलमूत्र लगी देहको एक दिन राति भर जो कोई सेवन करै चाहै जलके न मिलनेसे या जलहोते हुये बीमारी आदि किसी हेतुसे विना शौचकिये रहिजाय तिसका प्रायश्चित्त ॥	६३०	६
अग्नि या जलमे मूतने,हगने, घूकने आदि का प्रायश्चित्त ॥	६३०	२१
श्रोत वेदोक्त अग्निहोत्र आदि कर्म और स्मार्तकर्म जो स्मृतियोंके अनुसार नित्यहोमआदि होते हों और स्नातक पुरुषके नियम जो आचारमे कहिचुके इनका लोप या भंग करनेवालेके प्रायश्चित्त पंचमहायज्ञ जो गृहस्थों के नित्य नियम होते हैं तिनको मेटिदेने या कुछ दिन छोडिदेने का प्रायश्चित्त ॥	६३०	२७
अग्निहोत्र कर्मवान् पुरुषके जेठीभार्या जीतोरहिते यदि छोटी कोईमरै तिसकोअग्निहोत्र की अग्नि से जनाने वाले का प्रायश्चित्त ॥	६३१	१४
क्रोधसे कोई पुरुष अपनी भार्या को अगम्या कहिके दोष लगावै तिसका प्रायश्चित्त ॥	६३१	२४
स्नान किये विना जो भोजन आदि करै या स्नातक होके जलके विना रीतालोटा लियेफिरै तिसका प्रायश्चित्त ॥	६३२	६
घोंनार की पातिमे विषमरीति से परोसै कि विरलोंको और चीज़ बहुतोंको अन्यवस्तु इत्यादिभेद करनेके प्रायश्चित्त ॥	६३२	१०
जलका बाध या पुल तोडै या कन्याके विवाहमें भांजीमारै या समान धरतीमार्ग आदि पर ऊचा नीचाकरै तिसके प्रायश्चित्त ॥	६३२	१०
आकाश मे इंद्रधनुष देखै या ओरोको दिखावै इत्यादि कई बातोंको छोटासा प्रायश्चित्त ॥	६३३	६
धर्मवान् पुरुष स्नेच्छपतित चंडाल अपवित्रोंसे वातचोत न करै यदि प्रयोजनसे थोडी बहुतकरनी परै तिसका प्रायश्चित्त करै ॥	६३३	२०
अपने घरहोके धन लाभ स्त्री आदिसे उपद्रव करै या उनकामों में विघ्नडारै तिसका प्रायश्चित्त ॥	६३३	२८
यज्ञोपवीत काधे वा कानपरहोनेविना जो स्नान भोजन या मलमूत्रआदि कर्मकरै तिसका प्रायश्चित्त भोजन के अन्तमें जल पियेविना उठि खड़ाहोय या कुल्ला आदि शौचाचमन कियेविना रहिजाय तिसके प्रायश्चित्त ॥	६३४	१७
गजा और प्रधान मंत्री हाकिमका प्रायश्चित्त जो दण्डदेने योग्य अपराधको छोडिदे या अटअनी दण्डकरै ॥	६३४	३०
दूषित पातिमे भोजनकरै कि जिसमें कोई चोर पतित आदि बैठाहो तो उनसे जन्मकर्म संपत्ति का प्रायश्चित्त ॥	६३५	१७
मले वस्त्र पहिरने या नीलका कोई काम करने आदि के प्रायश्चित्त-जिसमें शौभायवती स्त्रियों मध्ये थोडी छूटहै जो प्रतिप्रसव जानना ॥	६३५	१८
स्त्रियों से उपरालू जिरले पुरुष और विरले कान और विरले वस्त्र भी लेवै कि जिनके विरले का प्रतिप्रसव टियागया है ॥	६३५	१३
नक्षत्र होके काव नकडी को छूट या खडाई या चोरी छोटी या खरनी का छूट न कर्षण तिसके प्रायश्चित्त ॥	६३६	३

आशयाना व्यवस्थाक्रमः

ब्राह्मण जो शस्त्रवाधनेकी वृत्ति रखता हो सो चञ्चोके साथ किसी रणमें प्राणोंके लोभसे पीठि देकर भागै० या फलदेनेवाले वृत्तको काटे ये दोनो पाप बराबरहै दोनोका एकही प्रायश्चित्त ॥

परस्पर दो चन्ते या बैठे बातकरते विप्रोके बीचमे जो निकसिजाय० या ब्राह्मण अग्नि इन दो के बीच या पति पत्नीके बीच० या गऊ ब्राह्मणके बीचसे० तिसके प्रायश्चित्त ॥

जहाजी आदि मार्गोसे विरलेदेश विशेषो की यात्रा करनेवालोंका प्रायश्चित्त (केवल तीर्थका निमित्त एक छोटिके समुहना)

सूर्य मे चन्द्र देखिपरना या खोटा स्वप्न दिखाईदेना आदि निमित्तों के प्रायश्चित्त ॥

सूर्य के सन्मुख जो मूत्रे या विष्णु जो अपनाभी देखिले या अग्नि मे पैरसेकै या खाटके नीचेअग्नि धरि सोवै या कुशासे पैरमाजै इनके प्रायश्चित्त ॥

नमस्कार पालागन रामरमौअर आदि अभिवादन के मुख्य कायदे छोटिके अभिवादन करै तिसके प्रायश्चित्त और मुख्य नियमों का निर्णय ॥

(इति प्रकीर्ण प्रायश्चित्तप्रकरणं परिच्छेदैकमय)

०५ परिच्छेद एक फालतू है इसलिये कि इसमें उक्त अनुक्त सभीप्रायश्चित्तों का न्याय विचाराजाय तिससे सभी प्रायश्चित्तोंके विचार समय इसमेंसे युक्ति शोचनी चाहिये ॥

इस०६परिच्छेदमे दोविधो जानीजायँगी—एक तो जोपुरुष प्रायश्चित्त न करनाचाहै तिमकोइसरीति से त्यागिदेना ॥

दूसरे जो प्रायश्चित्त पुराकृश्रिवै तिसका इसरीतिसे सत्कारकरना तिसपीछे घरके कामोंमें शामिल करना दासी घट विधानं ॥

कृत प्रायश्चित्त पुरुषस्य प्रत्यावर्तनविधिः—तत्र नूतनघटविधानत्र ॥

स्त्रीप्वप्यतिदेशः—पूर्वाक्त दोनो विधानका अतिदेश पातकिनी स्त्रियोपर भी उतारते है ॥

तथापि स्त्रियोके निमित्त पर क्रुद्ध और विशेष धर्म है ॥

अतिपतिता भी स्त्रियां क्रुद्ध होतीहैं तिनके लक्षण यहा देग्या ॥

विरने ऐसे पतित भी होतेहैं कि प्रायश्चित्त कृश्रिआनेपर भी हेल मेल उनसे न करे० न उनकेनिये नूतनघट धरवाना चाहिये ॥

नूतन घटकीविधि होजानेवादि पापीकी पगीक्षा करनी होताहै कि प्रायश्चित्त करने मे यह शुद्ध भया अथवा नहीं ॥

सतहतरवे परिच्छेदमे यह आत्तादीजायगी कि पापीलोग प्रायश्चित्तका विचार अपने आप न करे किन्तु बडा छोटा जैसा पापहो तैसा बडो छोटो सभामेही निर्णय कावायँ० उन सबसभाओके डैलयागदेग्या ॥

सभाकपास किसप्रकार से बूझनेजाय तिसका निर्णय ॥

परंतु धर्मसभाका डैलन कैसाहो तिसमे बूझनेजाय० गेमा होय ॥

वैसा सभा न होनेमे दूसरा डैलन यहर्म है—इसके भी न मिलने मे एकही पण्डित जो धर्मशास्त्र मे अनि निपुण होय सभा स्वरूप मानाजाय ॥

सभाके बडापन छोटापन पर तर्कनामे निर्णयकर ॥

प्रायश्चित्त निरूपण करनेमध्ये ब्राह्मणोक्तो राजा विना कितन स्वाधीनता है :

इसनेनिये छसौअरतालिन पृष्ठमे (तन्व्यगुरुवाधवन्) इत्यादि शंकाका बचन देग्या ॥

पृष्ठ

पक्ति

६३०

६

६३०

५

६३०

३०

६३८

८

६३८

१०

६३८

१४

६३८

१६

६४०

१२

६४१

५

६४६

४

६४६

१३

६४८

८८

६५१

५

६५१

१२

६५२

२

६५३

२८

६५५

१५

६५७

०

६५८

२६

६५९

१८

६६०

२०

६६१

५

६६१

२८

६६८

०

आशयानां व्यवस्थाक्रमः	पृष्ठ	पंक्ति
(इति सर्वप्रकाश प्रायश्चित्तानां साधारण विधिप्रकरणं त्रिपरिच्छेदमयं)	६६३	२२
अठहत्तरवें परिच्छेद में रहस्य प्रायश्चित्तों का साधारण प्रकार कहाजायगा कि जिसने छिपेपाप कियेहो प्रायश्चित्त भी छिपिभेकरै • उनमें एक छिपी ब्रह्महत्याका प्रायश्चित्त भी इसी में ॥	६६४	५
छिपे पापोंके प्रायश्चित्तका विचारमात्र ॥	६६४	२०
सुगुप्त ब्रह्महत्याका प्रायश्चित्त विधान ॥	६६६	२३
उन्नासोवें परिच्छेद में ब्रह्महत्या से उपरालू महापातक जो गुप्त कियेहो तिनके जुदे जुदे रहस्य प्रायश्चित्त कहेजायेंगे ॥	६७२	२
सुरामद्यपान का रहस्य प्रायश्चित्त जो छिपिके विनाजाने घोखा आदिसे पीगया हो या जानि बूमि पीकर पछितावा किया हो तिसको ॥	६७७	८
सुवर्णस्तेय कर्मका रहस्य प्रायश्चित्त • जिसने ब्राह्मणका सुवर्णहरिके गुप्तपछितावा कियाहो तिसको ॥	६७५	१०
गुरुदारगमनका रहस्य प्रायश्चित्त • जिसने गुप्तही घोखा आदिमें जननी आदि गुरुदारा संगम करीहो तिसको (इति महापातकानि)	६७७	१६
असोपरिच्छेद में उपपातकों के रहस्य प्रायश्चित्त कहेजायेंगे जो किसीने छिपि के कोई उपपातक किया हो तिसको—उपपातकोंके सब लक्षण वही समुझने जो गोवध आदि प्रकीर्ण पर्यन्त पहिले प्रकाश प्रायश्चित्तोंके निमित्त वर्णन होचुके ॥	६८०	८
सभी उपपातक आदि पाप जो गुप्ततौर होगयेहो तिनके प्रायश्चित्त एक साथही देखो इसमें भेद भी पातक पतनीय आदि अनेक है ॥	६८०	१६
अभक्ष्य भक्षणआदि अनेक अनुपातक जो छिपे होगये तिनके प्रायश्चित्त रहस्योक्ता भेद यहा देखो ॥	६८१	१८
अतिशयतुच्छपाप जो दिनरातिमें चलते फिरते आदि अज्ञानतासे अनेक होजातेहै तिनकाप्रायश्चित्त इत्यासोत्रे परिच्छेद में उनमंत्रोंके नाम चिह्न दर्शविगे कि जिनका जप करना रहस्य प्रायश्चित्तों में कहिचुके—और बहुधा मंत्र ऐसे भी दर्शविगे जिनका चर्चा कहीं नहीआया तो भी उनके जपने से सब पापोंका नाशहोसक्ता है—इसीमें वेदाभ्यासी और पूरे ज्ञानी ध्यानीका रहस्य प्रायश्चित्त मायागण पापोंपर एकही रूपसे ॥	६८४	२
सर्व पापोंके हरनेवाले अतिसमर्थ जो मंत्रहै तिनके नाम लक्षण ॥	६८५	१०
गायत्रीसे तिनकाहोम होना भी सब पापोंके हरने में समर्थहै इसकेसाथ तिन आदि उत्तम दानोंके स्वरूप भी देखना ॥	६८६	२१
वेदका अभ्यास राखनेवाला या अन्य सबधर्मों में सुनिष्ठ ज्ञानी ध्यानी पुनप जो कर्म जो पीडा देना नहीं चाहता • दैवयोग से कदाचित् कोई महापातक भी अनिच्छा से होजाय • तिसका जुदा गुप्त प्रायश्चित्त ॥	६८६	२

आशयाना व्यवस्थाक्रमः	पृष्ठ	पंक्ति
पंचगव्योक्तं लक्षणं भी देखो ॥	००५	६०
महासातपन व्रत कई रीतिसे होताहै सात वारह पंद्रह इक्कीस दिनके भेदसे जुदेजुदे रूपहैं ति- नमे एक अति सातपन भी कहाता है ॥	००७	२०
तिरासीवें परिच्छेदमे अनेक कृच्छ्रों के रूपकहेजायेंगे• तिनमे गकर्ण कृच्छ्र• पादकृच्छ्र• तप्तकृच्छ्र• शीतकृच्छ्र• अर्धकृच्छ्र• दिवान्नत• नक्तन्नत• अयाचितभोजी• फिर इनके भी अनेकभेद होंगे ॥	००८	१५
पर्णकृच्छ्रके रूपमे अनेकभेद इनरीतीसे होतेहैं ॥	००८	२३
तप्तकृच्छ्र भी अनेक भातिका इनरीतीसे होताहै ॥	००८	१६
पादकृच्छ्र—यहकईभातिके व्रतमिलिके एकहोताहै• तिनकेनाम टिवान्नत• रात्रिन्नत• अयाचितन्नत• उपवास• इनके भी लक्षण उसीके साथहै ॥	०१०	१७
प्राजापत्य भी उसी पादकृच्छ्रसे बनताहै फिर उसके चाग्भिेद है ॥	०१४	४
अर्धकृच्छ्र और पूराकृच्छ्र या पादोनकृच्छ्र इनके विरोधपर व्यवस्था कही ॥	०१४	२६
उपवास नामके साधारण व्रतका स्वरूप निर्णय सहित ॥	०१५	१२
चौरासीवें परिच्छेद में प्राजापत्यकृच्छ्र आदि अनेक कृच्छ्रही इसक्रममेकहेजायेंगे प्रथम प्राजापत्य- ही के लक्षण भेद• बीचमें शिशुकृच्छ्र• अतिकृच्छ्र• कृच्छ्रातिकृच्छ्र• पराक• सौम्यकृच्छ्र• तुलापुरुष• इनके भेद अनेक हैं ॥	०१६	७
प्राजापत्यकृच्छ्रके लक्षणभेद इनरीतीमें अनेक होतेहैं ॥	०१६	८
शिशुकृच्छ्रके लक्षण प्राजापत्यहीके प्रसंग मे आगये है ॥	०१७	५
अतिकृच्छ्र भी अनेकभातिका इनप्रकारसे होताहै ॥	०२०	७
कृच्छ्रातिकृच्छ्र और पराक इनरीतीसे होताहै ॥	०२१	२
सौम्यकृच्छ्र भी दो तरहका होताहै ॥	०२१	१०
तुला पुरुषनाम कृच्छ्रव्रतके लक्षण भी कईभांतिमे होतेहै ॥	०२१	७३
पचासीवें परिच्छेद में चाद्रायण• सोमायन• मासिकव्रतोंकेभेद कहेजायेंगे• प्रथम• यवमध्य चाद्रा- यण• पिपेलिकामध्यचाद्रायण• साधारणचाद्रायण• यतिचाद्रायण• शिशुचाद्रायण• ऋषिचाद्रायण• सोमायन इसी क्रमसे ॥	०२२	१४
चाद्रायण व्रतके कईभेद एकसाथही देखो ॥	०२४	२१
साधारण चाद्रायण के अनेक डौन ॥	०२८	८
ऋषि चाद्रायणका स्वरूप ॥	०२९	१५
सोमायन व्रत भी एक महीने मे कईतरह से होताहै ॥	०२९	७८
द्वियासीवें परिच्छेद मे अनुष्ठान विधिवर्णन होगी जो सभी प्रायश्चित्तोंके आरंभ समयक्रमआती है कि प्रायश्चित्तके दिनमे रोज रोज क्याकरना चाहिये ॥	०३०	५
वपन सर्वांग क्षौरका विधान जो प्रायश्चित्त के आरंभ मे मुहिन होताहै ॥	०३०	१६
वपनकर्मकेमध्ये गरुजुडा भी न्याय कहागया है ॥	०३३	११
बड़े प्रायश्चित्तों के आरंभ और समाप्ति के समय भी व्याहृतिहोम आदि ॥	०३८	२८
पापका नाशकरनेवाले कुछ और भी आचरण हैं जो प्रायश्चित्तोंका अंगमानेगये ॥	०४०	५
इनआचरणोंका त्याग प्रायश्चित्तोंको अवश्य करना चाहिये ॥	०४१	८

आशयानां व्यवस्थाक्रमः	पृष्ठ	पंक्ति
सतासीविंशतिपरिच्छेदमे वह व्यवस्थाकही जायगी कि सभीपापोंपर सबतरहके व्रत होम दान आदिका बदले से वर्तावा होसक्ताहै अर्थात् जिन व्रतादिकोंको जिनपापोंपर नहीलगाया तिनपरभी लगिसक्ते हैं ॥	७४०	१३
इसपरिच्छेद के सिद्धांत का विवेकपहिले शोचौ ॥	७४३	२
जिन प्रकारों से बदला कियाजाता है सो यहाँ से देखौ ॥	७४४	१८
प्रायश्चित्त और पापोंका योग जिसरीति से मिलाया जाताहै सो देखौ ॥	७४८	६
कृच्छ्रातिकृच्छ्र व्रतके (प्रत्याम्नाय) बदल यहां देखौ ॥	७५२	११
ग्यारह ११ गोदान वाले प्रायश्चित्त के (प्रत्याम्नाय) बदल यहां देखौ ॥	७५६	५
महीनाभर दूधपोंके रहिनेवाले व्रतपर (प्रत्याम्नाय) बदल देखौ ॥	७५६	१५
पराक व्रतके (प्रत्याम्नाय) बदल यहां देखौ ॥	७५६	२०
तप्तकृच्छ्रके प्रत्याम्नायौ मध्ये संदेह का निवारण ॥	७५७	१३
परस्पर तुल्य व्रतभेदों की तुल्यता निरूपण करने का न्याय ॥	७५८	३
प्राजापत्यो के स्थान पर अन्यव्रतो का (प्रत्याम्नाय) बदल सर्वपापोंपर ॥	७५८	१०
प्राजापत्य आदि व्रतोंके अभावसे ब्रह्मभोजकाभी प्रत्याम्नाय कहागयाहै जो अतिरोगी आदि व्रतको न करसके और धनीहोय तिसको ॥	७६१	२०
चाद्रायणके अभावमे उसके स्थानीभूत प्रत्याम्नायोंका विचार ॥	७६२	१६

इति सूचीपत्रं समाप्तम् ॥

अथ संदेहनिवारणां
पुनर्निर्मितभेदानां संग्रहचक्रं ॥

पृष्ठ	पंक्ति	वृत्तिपाठ या भ्रामक पाठोंके बोध या विज्ञापन आदि पाठोंके जुटे जुटे भेद यहां मोचिनेना १
१४३	२५	अथ परमात्मनः शरीरग्रहणाप्रकारप्रदर्शकोऽयंपरिच्छेदः (१०) दशमः इस परिच्छेद मे वहप्रकार जानाजायगा कि ईश्वर आप अजन्मा होते हुये भी ममांगे देनामे किसप्रकार जन्मलेताहै (यह इतनी वृत्ति ऐसेही अति मोटे और बारीक अहंगे मे मोटे नरमिने नीचे लिखिलेना) ॥
२५६	२२	पुश्वली आदिकी व्यवस्थाका तात्पर्य आगे १६ छमन परिच्छेदमे २०० दोगैमत्तहति मृगयैय से समुझिलेना (इस वृत्तिको बार्हस्पतिकेनीचे तेईसवीं के स्थानपर लिखिलेना)
२६३	२३	इतिपापात्मनां नरकादिगति विधायिकं प्रकरणं त्रिपरिच्छेदमयं ॥ इस प्रकरण मे तीनही परिच्छेद है—यद्यपि आगे तीसर्वे परिच्छेद के अन्तमे दशपरिच्छेद का एक प्रकरण मानाजायगा कि जिसमे ये भी तीन मिलेजायगे—वहा हमारे मताप्रमाण समझ लिये—तिससे दहीसर्वके प्रारभसे तेईसर्वके अन्ततक यह एक इन्की नैति परिच्छेद का पूर्ण प्रकरण करागया कि इसमे सब तरहके पादिको दो बर्तनेन के प्रमाण मे नरक काटि देना के ले मिलने है उन्का वर्तन किया गयाहै (इसवृत्तिको तेईस परिच्छेद से लिखिलेना)

पृष्ठ	पंक्ति	पुनर्निर्मितविषयभेदाः
२६०	१४	<p>इति त्रायश्चित्त निमित्तानां महापातकादीनां नाम लक्षणा विवेक प्रकरणां त्रिपरिच्छेदस्य ॥</p> <p>इस प्रकरण मे २४ । २५ । २६ ये तीन परिच्छेद हैं इन तीनों मे महापातकों से लेकर तुच्छ उपपापों पर्यन्त सब तरहके निमित्तोंका निर्णयनाम लक्षणो सहित किया गया है—यद्यपि तीसरे परिच्छेदके अन्तमे दशपरिच्छेदोंका प्रकरण कहा जायगा तिसको महाप्रकरण समझिलेना कि वहतीन प्रकरणोंका एक बड़ा प्रकरण है तिससे कुछ दोष नहीं (इसचुटिको चौदहवीं पंक्तिके माथही लिखिलेना)</p>
२२६	२५	<p>भ्रामकता—इन तीन पंक्तिओका पाठ जो भ्रामकता प्रतीत होता है उस भ्रातिको भजन आगे २७ ३३० पृष्ठमे दशवीं १० पंक्तिसे विचारो किन्तु उसीके अनुसार पाठ यहा भी समझो—यहा जो वशिष्ठ के वचन मे—रजस्वला शब्द जुडा होनेसे कुछ भ्रातिभी प्रतीत होती है उसका भी समास रेमा मानना कि (रजस्वलां च ऋतुस्नाता च आचयेयीमाहुः) अर्थात् जुदी जुदी रजस्वलाको तथैव ऋतुस्नाताको भी आचयेयी कहिते है• तहां मुख्यतो ऋतुस्नातानाम ऋतुमतीसे प्रयोजन है उसीके अन्तर्गत रजस्वला होनेके दिवस भी अपेक्षित ठहरे किन्तु केवल रजस्वला या उसके स्नान के मर्मोंको दिवसो से तात्पर्य यहां नहीं है ऋतुमतीसे प्रयोजन ठीक है उसीका प्रमाण देखो प्रचेताके वचनमे ४२४ पृष्ठका सबसे निचली पंक्तिमें जैसी अतुमती कही तैसी उसके विपरीत यहा ऋतुमती जानना—यह मत्र साधारणोंके बोध हेतु लिखना परा अन्यथा विवेकीजन आपही जानमान हैं (इन्हों तीन पंक्तिओका पाठ परिवर्तन भी अशुद्ध शुद्ध चक्रोंको देयो)</p>
३३३	२२	<p>चतुः परिच्छेदस्य ॥</p> <p>इस प्रकरण मे सत्ताइसको आदिमे तीसके अन्ततक चाण्डि परिच्छेद हैं जिनमें केवल ब्रह्महत्याको व्यवस्था कही गई (इस चुटिको बाईसवीं पंक्तिके माथही मिलाकर आयुपर लिखिलेना) ॥</p>
३३३	२३	<p>इति साधारणा प्रकरणांच दशपरिच्छेदस्य ॥</p> <p>(इस चुटिको बाईस पंक्तिके नीचे और तेईसवींके ऊपर दोनोंके बीचमे स्थापन करना)</p>
३५२	१० १३	<p>अर्थ विशेष—ये दोनों पंक्तिदेखो उनमे वशिष्ठने कहा है कि राजा आप न माग्मिहे तो नारयो औदुम्बरशस्त्र सौपिडे तिससे अपने आपही चार मग्जाय—इस कथनमे साफ यही अर्थ मिलता है कि तमचा तुपंचा आदि गोलो बान्हदवाना आग्नेयशस्त्र सौपिडे जिनको चार अपने हाथमे धारिके तब शुद्ध होय—यद्यपि मितान्तमे (औदुम्बरतामसमे) औदुम्बर ताविकाशस्त्र गेमाकहा है क्योकि उदुम्बर तावा तिमकावना औदुम्बर कहावे—तथापि यह व्योम नहीं माना है कि ताविका गेमा कोई शस्त्र संसार में होता है यानही जो अपने किमो विशेष नाममे विख्यात हो और निमदेद्राग चार अपने हाथमे मरमके पंच तुपञ्जा आदि आग्नेयशस्त्र यद्यपि लोहेके होतेगे तौभी उनका नाम औदुम्बर इस लक्षणे से वशिष्ठने माना होगा कि गृहका फलभी औदुम्बर कहाता है तिमके मान गोलो भी मानहेतु जो तुपंचा आदिमे भगीतानां और गृहिका गृहिका नामोमे या वचन ही सो गोल गोल नामोमे प्रसिद्ध है तथा लक्ष्मिञ्ज मत्र यमे मं शस्त्रमे अतिशय भारमे प्रसिद्ध है (इसपाठके पान्तू मानिके ३५२ पृष्ठ मे मत्रमे नीचे उक्त जगदपर स्थापनकरण)</p>

१४	पक्ति	पुनर्निर्मितविषयभेदाः
----	-------	-----------------------

इति साधारणां प्रकरणां पंचपरिच्छेदसयं • नचैतेषु
पंचसुपरिच्छेदेषु प्रकरणात्त्व नियमः ॥

अर्थात् चवालिस परिच्छेदकी आदिसे यहां अरतालिस परिच्छेद के अन्ततक पाच परिच्छेदोका साधारण मिला भुला प्रकरण ऐसानाम यद्यपि बोधमात्र के निमित्तसे लिखि दियागया तौ भी इन पाचोमे विषय अपना अपना जुदाहै तिससे प्रकरणकानाम अर्था सहित नही सिद्ध होताहै क्योंकि प्रकरण उन्हीं सबका एक होताहै जिनके विषय एक समान हो—इसीलिये इन पाचोके जुदे जुदे पाच प्रकरण समझने चाहिये—इसका व्योरा पाठार्थ प्रकरणके ठिकानेपर फिर भी दर्शावैगे तब समुक्ति लेना • इसके लिये ४६६ पृष्ठदेखो (इस चुटिको तेईस २३ पंक्तिके नीचे लिखिलेना)

४६५ १६ २४ अर्थवाद—इन दोनों पंक्तिको देखो • तहां कर्मसाधन होसकने आदि गुणका तात्पर्य केवल यहीहै कि घरके काम धन्धोमे समर्थ और निपुणहोय तथा पतिके मैथुन और सेवा आदि प्रयोजन वालीहो विचित्रा या योनिहीना या गूंगी बहिरी कोठिन आदि होनेसे निकम्मी न हो (परतु उम उत्तम गुणसे रहित होय जो स्त्रियोका मासिकधर्म प्रसिद्धहै जिसके द्वारा सन्तानरूपी रत्न पैदाहोते हैं वही आचेयो कहाती है उसके वधपर इनसे भी बडे प्रायश्चित्त चाहिये सो तीमवें परिच्छेद मे लिखिचुके तहा देखो (इस पाठको ४६२ पृष्ठमे सबसे नीचे स्थापन करना चाहिये यह किमी की चुटि नहीहै ॥

४६० २८ यहां संदेह शेषरहा कि जिनको यहां निकम्मी कहा उन्तीको ४६७ पृष्ठमे—तदपि (कर्मसाधन त्वादि गुणयोगिनी) यह कहिचुके तौ फिर कर्मसाधन होसकने की सम्भावना आदि उत्तम गुणमे युक्त होनेपरभी निकम्मी उनको क्योंकहा—सुनौ निकम्मी उनका परम उत्तम गुण समझानेके निमित्त सेही कहागया तहा मंदा मध्यमा कहिके भी समुक्तिनेना क्योंकि कर्मका साधनत्व आदि गुणमे युक्त होनेका व्योरा उभी ४६५ पृष्ठकी अपेक्षा ऊपर लिखागया तिसको देखो वैसे गुणोमे संयुक्त होनेपरभा निकम्मी या मंदा मध्यमा कहाती हैं क्योंकि आचेयोसे मंद होतीहै (इस पाठको २८ पंक्तिके बीच में एकहीहै इन चारिअक्षरोके आगे चुटिमानिके हाशियेपर लिखना तिसके आगे ॥ २६६ ॥ यही अर्थ)

४०८ २५ भ्रामकपाठ—पचीसवीं पंक्तिसे लेकर पचाशर के आठ नव श्लोकहैं यद्यपि उनमे अनुष्टुप का पद नहीं है तथापि उनके विश्राम अस्तव्यस्त है कि प्रायण अष्टश्लोक ठुमरे अर्द्धमे मिडारटिये और चरण वा आधे चरणपर व्यर्थ विश्रामहै कि जहापर विश्राम न होना चाहिये यह मर्ममे व्यर्थ भ्रामकता होतीहै पठते समय दुखदेत है—सो यह एक निदर्शनका नमूनमात्र उतलाने है कि तेरा पाचसौ आठके पृष्ठमे भ्रामकता हुई तैसी और भी बहुधा अन्येपत्र श्लोको मे दिखार देत है कि पदु निपिके निमित्त डौलसे अन्य या हृषी परन्तु अब कोई उनका उपाय देना नहीं है बिना समझा किसी चक्रमे स्थापन करीजासकै—वेदना यही इनाज है कि जमे निर्मातरे एत दुःखमे मन्त्रों से देवादेका पढ़े जुदे किये और व्यर्थ विश्रामोके मन्त्रक कारण से जेहिने सुखदय निमित्त तेरा मर्म सद्व्यसनी बुद्धिमान अपने जिव्दोमे सुधारिके ।

पृष्ठ	पंक्ति	पुनर्निर्मितविषयभेदाः
		<p>वहां देवलका वचन है (स्वयतुब्राह्मणाब्रूयुः) इत्यादि इसकी व्याख्या जो कुछ वहालिखीहो मोभी यहा शंखजीके वचन से मौलान करिके काम चनाना क्योकि दोनो वचन का एकही तात्पर्य है— (यह इतना विशेषलेख तेरहवीं पक्तिमे चुटिमानिके आयुपर लिखिलेना)</p>
६६२	१०	<p>आरुढ़ करैगा यह तात्पर्य है—द्वै सौअरतालिस के पृष्ठ मे सातवीपक्ति देखो शंखजीका वचनहै (तस्यगुरुवांधवान् राजसमत्तं) इत्यादि इसी वचनकी व्याख्या वहा जो कुछ लिखी हो तिमका भी मौलान यहा देवल के वचन से करना चाहिये क्योकि वहा जो शंखजीका ध्वन्यर्थ है वही यहा देवलका तात्पर्य है और सिद्धांत दोनोका यहीहै कि जिन पापोकें अपराध में राजशादी (राजमुद्रुई) न होताहो न होसका हो तिनके मध्ये प्रायश्चित्तका बोझडागनेवालो को राज अदालत में प्रकाश करना या करवाना कुछ आवश्यक नहींहै—परंतु जहां पापी इच्छा सहित पापकरे और प्रायश्चित्त भी न करनाचाहै और सज्जनोकी मुशिक्षासे अपनी प्रकृति को भी न मुधारै वल्कि बारम्बार पापकर्म का अभ्यास करै तो फिर सभी पाप ऐसेहै कि राज अदालतके सन्मुख पापीके बडे बूडे दूधजनोको समझाकर प्रायश्चित्त करायाजाय ॥ (यह इतना लेख विशेष दशमी पक्तिकी चुटिमानिकर आयुपर लिखिलेना चाहिये)</p>
७६२	११	<p>समुभलेना—अर्थात् जिन व्रतको साधना जितनेदिन होतीहो उमके वदने उतनेही दिनेतक उक्तसख्या रोज रोज जिमाये इसका दृष्टात जैसे धाद्रायण में तीसदिनतक चौबोम ब्राह्मण ॥ ० ॥ (यह इतना लेख ग्यारहवीं पक्तिमें चुटिमानिके आयुपर लिखिलेना चाहिये)</p>
७६२	१६	<p>ने समुभाया—परंतु जैसा अति निर्यनको प्राजापत्य के बदले बारह ब्राह्मण कहैगये तैसा अन्यव्रतोके उपरले हिसाब से जितने होमके तितने उनमें भी इन्ही बारहके अनुमार लेखा आडिके समुभिलेना ॥ ० ॥ (यह इतनानेख उन्नीसवीं पक्तिमें चुटिमानिके आयुपर लिखिलेना)</p> <p>मिताक्षरा सटीक प्रायश्चित्तकांड—इस ग्रंथकानाम निर्माताका निर्माण किया (मर्यादापरिपाटी समाचार) धर्मशास्त्र ठीक ठीकहै जैसा सन् १८०३ ई० से लेकर आचार और व्यवहार के दोकांडोपर छपिचुका सो प्राचीन ग्रहकोके पास वह मौजूद हैं उनके उपर याचवत्कृत्यमृति और मिताक्षरा मर्यादा परिपाटी ये तीनोंनाम समस्या क्रियेगयेथे अबके इसकांड प्रायश्चित्त के प्रयोग मिताक्षरा सटीक द्वापगया किसी भीरतिमें निर्माता के अनुपस्थित होनेमें सो इसकांड में कुछ दोष वा गलती न समझना कभी दुवाग मुद्रित होनेमें परिवर्तन कियाजायगा—यथायं मे मिताक्षराका पूरा लेख इसमें प्रधानतासे लेकर बाकी और ग्रथोका सारांश नियागयाहै कि जो जो वाने मिताक्षरा में भी नहींथो उनकी व्यवस्था इस मर्यादा परिपाटी में मिलसके—और भी मिताक्षरा में प्रकाशो न परिच्छेद आदि ध्वन्यभेद जो कुछ नहींथे सो सब इसमें अपने गद्यिता के उद्योग से निर्माण क्रिये गये जिनसे व्यवस्था टूटनेवालो को सुगमता होय—शास्त्रोक्त विधि जो सबकायिकी होती है सो मर्यादा कहाती है—और सब देगेजेभिन्न भिन्न आचार्योकी रीतिहै सोपरिपाटी कहातीहै और शत्रुपुत्रो से लेकर क्रमागतवर्ती आईहो ये दोनो भिन्निके (मर्यादापरिपाटी) बना उन्ही दोनोका अन्त आचरण वर्तमान होय या वरुन कियागया तिन धर्मशास्त्र में सो (मर्यादा परिपाटी) समझाव धर्मशास्त्र इसनामसे यथानाम तथा गुण मर्यादा नाम होताहै ॥</p>
		इति ॥



मिताक्षरा सटीक ॥

तीसरा प्रायश्चित्तकाण्ड ॥

श्रीगुरुमुप्रणम्यादौ परमात्मपदाभिधम् । तद्वचोमंत्रपूतात्मा शुद्धिगत्वाविशेषतः १ ॥
 ध्यात्वा सर्वशरीरस्थं जगदीशं निरञ्जनम् । यो ह्यस्य जगतः श्रष्टा चराचरमयस्य तु २ ॥
 दोगीश्वरं याज्ञवल्क्यं मिथिलापतिपूजितम् । येन लोकोपकाराय कृते यंधर्मसंहिता ३ ॥
 विज्ञानेश्वरनामानं प्रणम्य च पुनः पुनः । मिताक्षराकृतायेन विद्वज्जनप्रमोदिनी ४ ॥
 श्रीमर्यादाप्रियस्तस्या मर्यादापरिपाटिकाम् । भाषाटिकांप्रकुर्वाणः शुक्लोदुर्गाप्रसादकः ५ ॥
 आचारव्यवहाराभ्यां निवृत्त्यायेतनोति च । प्रायश्चित्ताभिधंकाण्डं क्रमप्राप्तं मलापहम् ६ ॥
 प्रायश्चित्तमपेक्षुना मात्मशुद्धयभिलाषिनाम् । सौगन्धेनैव बोधाय परार्थे वा विचारिणाम् ७ ॥

प्रायश्चित्त काण्डका प्रारम्भ क्रिया चाहते हैं तहां पहिले यह बात भी प्रकाश करनी आवश्यक ठहरी कि प्रायश्चित्त काण्डमें क्यावस्तु वर्तानकरेंगे—येसे समझो कि आचारकाण्ड में गृहस्थाश्रमीसात्र सबहीके तिल्य और नैमित्तिकधर्म वर्तानक्रिये थे उनसे भी राजात्तः गिनती हो चुका क्योंकि वह भी एक गृहस्थीहै—इस उर्मा आचारकाण्ड में ३०८ श्लोक से लेकर व्यवहारकाण्ड पर्यंत एक गृहस्थी विशेषज्ञ अभियेक्त आदि गुराँसे संयुक्त होने कारके राजा प्रसिद्ध होताहै तिनके गुण धर्म सबमें जुदेभी दशायिगये क्योंकि सब गृहस्थियोंकी अपेक्षा उरुमे राजरूपीगुणा विशेषतः तिन गुराँकेधर्म प्रजापालन आदि उरुकेलिये अधिक होतेहैं—अब इस प्रायश्चित्तकाण्डमें उन्ही पूर्वोक्त सर्वधर्मोंका अपवाद (अर्थात्छूट इस्तिस्नात, वर्तानकरेंगे—उसीलिये उन धर्मोंका अधिकार संज्ञाचित्तकरणे (रोकिदेने)वाला आशीचका नियम पठिते करते ॥ तहां आशीचशब्दके अर्थसे वहकाल उतना समझना जिसमें अनुष्ठाने आदि कार-राशि स्नान ध्यानआदि पूर्वोक्त धर्मोंका अवरोध हो और यही उन अपवादका स्वरूप

हे कि आचार और व्यवहारकारणमें जो जो धर्मकरने कहेगये सो सब आशौचकाल आदि समयोंको छोड़िकर समझने किंतु आशौच आदि अशुद्धकालों में पूर्वोक्तधर्म करनेसे रुकियायेंगे। परंतु ऐसाभी न समझिलेना कि निषेध किसीकर्मका अधिकारही उतनेकाल में न होगा क्योंकि यहाँपर केवल यहवार्ता कथन होरहीहै कि जिस कालमें पिण्डदान जलदान आदिविधि उद्धार करनेके हेतुसे पठनपाठन आदिकर्मोंका पर्युदासरूपी निवारणा करनापरै ऐसा निमित्तभूत कोईसा अतिशय जो किसी पुरुष में व्याप्तहोय तोवह उतनाकाल आशौचकेनामसे कहावै। औरभी (अशुद्धावान्धवाःसर्वे) अशुद्धसभीवांधव) इत्यादि वचनोंमें अशुद्धता जोकहींकहींगईनो तिसपरध्यानदेनेसे और भी वृद्धव्यवहारोंपर अनेकभाँति दृष्टिदेनेसे विचार में तर्कनारूपी व्यंग्यखंडा होताहै क्योंकि अशुद्धता जोहै सो वृद्धव्यवहारों में अर्थात् यज्ञआदि बड़ेकामों में अनाहितारिण वा आहितारिण वा दीक्षितआदि जो जो अशुद्धताके अनधिकारी कहेजायगे तिनपर नहींआरूढ़ होसक्तीहै तो फिर सभीवांधव क्योंकर अशुद्ध समझेजाय तिससे व्यंग्य खंडाहोताहै—औरभी वृद्धव्यवहारहीकी व्युत्पत्ति शब्दसार्गसे देखनेमें कईभाँत समझेजाते हैं कि बड़ेबड़ेकामोंका अर्थमानाजाय या बूढ़ेजनोंकी आज्ञा अर्थ समझा जाय या पुराने वृद्धजनोंमें क्योंकि—जो अशौची सूतकीलोंको दानआदि कर्मोंका निषेध देखिलेनेसे उनका अयोग्यत्व आशौचशब्दके नामसे कल्पना क्रियाजाय तो फिर जलदान आदिविधि जिसके करनेका अधिकार उनको देखिपवता है तिसमें उनका योग्यत्व भी कहनापरै • तिसमें अनेकतरह के अर्थोंकी कल्पनारूपी दोयका प्रसंग खडाहोताहै इसहेतुसे यहतर्कनारूपी पक्षही उपेक्षा करदेनेकेयोग्यहै कि ऐसी थोथी तर्कोंपर बुद्धि न दौडावै। अर्थात् सामान्यरीतिमें यह समझिलेना कि पहिले दोकांडोंमें दर्शनक्रिये धर्मकर्मोंका अपवाद यहाँकहेरे • तिस अपवाद में सबसे प्रथम शौचीचर यह दगातिहै कि सपिण्डआदि आशौची (सूतकी) लोंगोंको न्नाक्याकरना चाहिये सो सबदेखो प्रयत्न प्रनोक्ष्ये ॥

जनद्विवर्षनिघनेन्नकुर्यादुदकांतत आठममानादनुब्रज्यइतरेजातिभिर्मृत. १ ॥

यममृतंतथागाथांजपद्भिलांदिनाग्निना सदग्धव ॥ उपेतव्येदातिनाम्याकृतार्थवत ॥

अवरार्थःसहृदयोः—जनद्विवर्षद्वोतिवर्षेउदकांतके । तिसकेउत्तरवरा (आपगतमान) प्रसंगान पर्यंत जातियों कालके (अनुब्रज्य) साधनागे योग्यहै श्वेत यममृता तथा या गाथा जपतेहुये जातिजनोंकरके लौकिका अरिजके जनार्थयोग्यहै (उपेतव्येदत) त्रों ३-

पनीत हो तो (आहिताग्निवृत्ता) आहिताग्निकी दाहक्रियासे (अर्थवत्) प्रयोजन के अनुसार ॥ २ ॥

अभिप्रायार्थः—दोषसे कमअवस्थाके सरेहुये प्रेतको धरती में गडहिला खोदि राडे किन्तु जलावे नहीं यह अभिप्राय ससक्तता और उदक दाहविधि जैसी पाँचवें प्रतीकसे अगारी कहेंगे सो भी इसको न करे (और भी इसको विशेषता अगारी अधिकोक्तिमें देखो) । ततः तिससे दोषके भीतर अवस्थावालेसे इतरकोई मराहो जिसकी अवस्था दोषपर्यं या अधिक हो तिसके साथ जातिके सपिराडोंको प्रसशानकी भूति तक जाना चाहिये (इसीवचनसे यह अभिप्राय भी निकलता है कि दोषसे न्यून अवस्था वालेके साथ जाना अनियत है आवश्यक या नियसात्सक नहीं तिससे जाना न जाना दोनों होसकते हैं) और साथजाकर यससक्त और यमगाथाओंको जपतेहुये जातीलोग दोषपर्यं अवस्थाके प्रेतको लौकिकअग्नि अर्थात् असंस्कृत अग्नि जो सवक्षेत्रवि में रहती है उसीसे जलावे सो उसदशामें कि जब अरणीकायसे उपजीअग्नि न हो (अर्थात् जो अरणीकाय विद्यमान हो तो उसीसे सधिकर निकासेहुये अग्निसे दाह देना चाहिये लौकिकाग्निसे नहीं) अरणीकाय के न होनेमें यदि लौकिकाग्नि से दाह देनापर तहां चण्डाल आदि से अग्नि को न ले इसका द्योरा अधिकोक्ति में देखो । किंतु उपेतप्रचेत् • जिसकिसीका जनेऊतक होचुका ऐसा मराहो तो आहिताग्नि नास अग्निहोत्रियों की आवृत्तनास परिपारी जो दाहक्रिया सधये उनके मृत्यु आदि से प्रसिद्धहो तिसहीके प्रयोजन अनुसार लौकिक अग्नि से दाह देना चाहिये • यह याज्ञवल्क्यहुति का कथन है ॥ अभी इसमें और जो विशेषता कहिनी गेयरही सो मत्र अन्य स्मृतियों के वचनोंसाथ देखो अधिकोक्ति में ॥ १-० ॥

(अधिकोक्तिप्रदका यही तात्पर्य है कि अदिक नृत्तियोंके वचन उसमें निर्गणकिये जायें)

१ । २ अधिकोक्तिः—दोषसे जनेप्रेतको जलायान्यादिजर्थेदेतिवार्त्ता का निर्देश यद्यपि किमाराया तथापि यह विशेषता है कि गन्धनालय चण्डालेण आग्निं अन्वयान् विभूयित् कन्दे प्रसशानसे जुदी शुद्धधरती में प्राप्तसेवातर खोदि राडे कि नहां काट आदिसतीवता इच्छतहो = अयाहसह — अतद्विद्वार्त्तिकेप्रेतविद्वर्त्तमानेवार्त्तिकेऽप्युक्तत्वात् शुचौभूसावस्थिसंचप्रताहते तास्प्रकार्ये ससंस्कृतोत्तरप्रकारे । अतश्चिन्ता अयमेव कायवत्यदत्ताक्षिपेत्स्वहदेवह = अर्थात्—तदुक्तं अन्वयान् कि दोषसे जने प्रेतको जांवर लोम असंस्कृत कतिके प्राप्तसे वातर ताडोंके मंच परे गती शुद्धधरती में निधान

करें इसका अग्नि संस्कार और जलदान क्रिया भी न करनी चाहिये किन्तु जैसे जंगलमें लकड़ी छोड़कर बेफिकर होजातेहैं तैसे इसे गडाहिले में दाबिकर तिस पीछे (ग्राह्यादि ऊर्ध्वदैहिककर्म जो आचारकांडमें श्राद्ध प्रकरणाके द्वाराकरने कहिचुके तिनसे) उदासीनहोकर तीनदिन उदासीमें बितावें (ध्यानसे सोचनाचाहिये इसकथन से अपवादकाल्परूप सिद्धहोगया कि जो आचार अध्यायमें करना कहाया वहइसको छोड़कर औरोंपर समझना इसीको द्यूष्या इस्तिस्नाय कहतेहैं इसीतरह सर्वत्र प्रायश्चित्तकांड में आचार व्यवहार दोनोंके अपवाद अनेक भाँति बरान्त होते रहेंगे कि जहाँ जहाँ जिस जिसप्रकारके अपवादका प्रयोजन हो) ॥ दोबर्षसे कमअवस्थाके घृत लगाकर गाडना और यमगाथा पढतेहुये गाडना येदोनोंवात यमस्मृतिसे सिद्धहोतीहैं = यथाह यमः = ऊर्ध्वद्विबार्धिकंप्रेतं घृताक्तनिखनेद्वहिः यमगाथागायमानो यमसूक्त मनुस्मरन् = अर्थात्--दो बर्षसे ऊने प्रेतकोधीसेचुपडि यमगाथा गातेहुये ग्रामसे बाहर खोदिगाईऔर यमसूक्तका स्मरना उच्चारना करतेहुये लौकिक ॥०॥ देवलः--चांडालाग्नि रक्षेध्याग्निः सूक्तिकानिप्रचकर्हिचित्त पतित्ताग्निप्रचत्ताग्निप्रचनशिशुप्रहराओचिताः = अर्थात्--देवलपुनिका यहवचनहै कि जिसप्रेतको अरणीकाठकी अग्नि न सि ननेमे लौकिक अग्नि लेनीपरै तहां उत्तमकूल जातिवालेको इतनी अग्नि न लेनीचाहिये. एकतो किसीचांडालसे दूसरे जो अग्निआपनी प्रत्यक्षमें अपवित्रहो जैसे पजावेआदि में लगीहुई तीसरे सूक्तिकाक्षेपाम जहां जममूतक हुआहो तिसकीअग्नि चौथेपतित के हाथसे न लेनी पांचवें किसी चित्तामे भी न लेनीचाहिये॥अग्नि संस्कार और जलदानमध्ये लौगाक्षिने यहअप्रोक्तविशेषता दर्शाईहे = यथाहलौगाक्षिः = तृणीमेवो दकंक्षुर्यत्तिष्णींसंस्कारलेवच सर्वेषांहतचूडानामन्यत्रापीच्छयाहयत् = अर्थात्--सभी बालक जिनका चूडाकर्म सुंडन होचुकाहो तिनको तो नियमसे अत्रप्रयत्नी अग्निदाह और जलदान करनाचाहिये लौकिक विनामंत्रके चुपके करनाचाहिये. अन्यत्रापिजहां चूडाकर्म नहोचुकाहो परन्तु नानकरणा होचुकाहो एमेवा तर्कों के मरने से यदि कर्ता पुरुषोंकी इच्छाहो तो अग्निदाहऔर जलदान दोनोंविना मंत्रके करे अपणेप्रेतकाअभ्युदयचाहि सोचिके अन्यथा कुछ आवश्यक नियमतरी देवल इच्छापर आचरहेचाह करे घान करे ॥ इसीनियमके अनुस्मरणसे कुछ और विशेषता कही है = यथाह मनुः = नात्रिवर्षस्यकर्तव्यावांचवेन्दकाक्रिया जातदंतप्रवाण्यार्थाग्निवापिकर्तव्य ति = अर्थात्--विना तीवर्ष होनेहुये को उदक दात क्रिया दांढरोंको न करनी चाहिये (देवल उदक क्रिया कहत है अग्निदाहभी समस्तलेना क्योंकि उन दोनों कः

जोड़ा है) कहीं विकल्प से तीनवर्ष के भीतरभी जिसकेदौत जसिचुके हों अग्निदाह उदकादान करो या न करो इसी प्रकार नासकराहोजानेवाले के तीनवर्ष भीतर करो या न करो किंतु कर्ता की इच्छापर आरुह है आवश्यक नियम नहीं है परंतु तीन वर्षका जो नियम आवश्यक ठहिराया तिससे यह अभिप्राय सिद्ध होता है किचूडा कर्म यद्यपि किसी के कुलपरिपाटी से तीन वर्षके उपरांत पाँचसात वर्षतक होताहो तिससे न होनेपाया तौभी तीनवर्ष से उपरांत सरे प्रेत को अग्निदाह और जलदान अत्रश्य बिना संश्रोंके चुपके करदेनाचाहिये = सनुके इस वचनसे लौगाक्षिके पूर्वोक्त वचन में इतना भेदहै कि लौगाक्षिके तीन वर्षभीतरभी चूडाकर्महोजानेवादि अग्निदाह और जलदान का आवश्यक नियम किया और इसमें सनुके तीनवर्ष के उपरांत चूडा न होनेपरभी आवश्यक नियम ठहिराया क्योंकि चूडाकर्मका विशेषकर कोई एकसमवठीकनहींहै तिसकोदेशकालवस्तुके अनुसारविवेचन करलेनाचाहिये = ऊर्ध्वोक्त सभी वचनोंका अभिप्रायलेकरयहकस स्थापनहुआहै किजबतकनासकररा कर्मसंस्कार न हुआहो तिससे पहिलेसरे सो खोदिके गाडाजायउदकादानभी नकिया जाय. फिर नासकराके उपरांत तीनवर्ष भीतर विकल्पहै कि चाहें अग्निदाहजलदान करो या न करो. तिसपीछे जबतक जनेऊ न हुआहो तिसकेसरनेमें अग्निदाह जलदान दोनों अवश्यकियेजायेंगे परंतु बिनासंश्रके चुपके कियेजायेंगे और तीनवर्ष के भीतर जिसका चूडाकर्म होचुकाहो तिसकाभी यही नियम समुभना. फिरजनेऊ होजानेवादि जोसरे तिसको (आहितारन्यावृत्त विधिसे) जलायकर सब कर्म ऊर्ध्वदेहिभी किये जायें जोइच्छ लोकमें होतेहैं. तिसजलानेमें कई भौतिक विचारहै कि जनेऊयाले कई तरहके होतेहैं उनका जुबाजुबा विधान अपनी कुल परपाटीसे होताहै अर्थात् यदा तौ सामान्य कुलका लड़का किजिसके कुलमें अग्निहोत्र नहींहोता औरवाहकर्मभी अग्नि होत्रियोंकी रीतिसे नहींहोताहो. दूसरावह लड़का किजिसदेघर अग्निहोत्र तौ नहींहै परंतु अग्निहोत्रियों की रीतिसे बाहकर्मकी परिपाटी चली आतीहै. तीसरा वर्याकि जिसदेघर अग्निहोत्रकी स्थापना रहितोहो. चौथा वह कि जिसदेघर अग्निहोत्र की स्थापनाहै औरवह अपने आपभी आहितारितहो क्योंकि विद्याहमी होइका पित्रने उसने अग्निकी स्थापनाकी जुदी अपनी करीहोती — इन्हीं रीतियों अनुसार वाहकर्म-यामेभी कईसेदहोतेहैं क्योंकि जोघरे अग्निहोत्री है तिनकायक उनी अग्नि कुंडकी अग्निसे होता और यज्ञके पाद आदिभी कुंडके जायती जलायेजातेहैं इत्यादि विधान उनकी कुल पद्धतियोंमें प्रदिकहै. विरलेकुलोंमें अग्निहोत्रके न होनेपरभी योदीवाँ

उसी शीतकी चलीआतीहैं क्योंकि पहिले कभी अग्निहोत्र उनके होताथा इत्यादि सब भेदोंका तात्पर्य योगीश्वर ने (उपेतप्रचेत-आहितारग्न्यावृत्तार्थवत्) इतने अक्षरों से समुझायाहै कि जिसकी जैसी परिपाटीहो उसीके प्रयोजनसे दाहकर्मकरै—इसका यह दृष्टांत है कि जिसके अग्निहोत्र का वितान हो और भूमिजोयरा प्रोक्षणा आदि विधि करनी आवश्यक हो तो वही करना या जिसके अग्निहोत्र का वितान आदि न हो तो वहलुप्त प्रयोजनहै कि पात्र योजन आदि विधान उसका न करनाहोगा। यह ससस्तवार्ता प्रासंगिक है। अब उसी प्रकृतको दर्शाते हैं कि उपनीत जनेऊ होचुके का दाहलौकिक अग्निके विधानसे होताहैपरंतु जो अग्निहोत्रीकेकुलमेंउपनीत होनेपरभी अनाहितारग्नपुरुषकरै तो गृह्यारग्नसे और लौकिकाग्निके दाहसेभी जलायाजाताहै किंतु उसका विवाह और यज्ञारग्न संबंध नहोनेसे आहवनीय आदि अग्नि नहीं है ॥ उसीअग्निसे या दूसरी अग्नि से भी • यह अग्रन्तंतर विधान भी वृद्ध याज्ञवल्क्य ने प्रकाश किया है = यथा—आहितारग्निर्यथान्यायंदग्धव्यस्त्रिभिरग्निभिः अनाहि-
 तारग्निरैकैर्न लौकिकेनापरोजनः=अर्थात्—आहितारग्न जो अग्निहोत्री हो सो तीनों भाँति की अग्नियों में किसी अग्नि से यथोचित न्याय के अनुसार जलायाजाय अर्थात् तीनों सौजद होते जो उत्तमहो उसीसे जलाना चाहिये अनाहितारग्न जो अग्निहोत्री के घर जन्म होतेहुये अग्निराज न हो सो एकही गृह्यारग्न से जलाया जाय और बाकी सामान्य जन लौकिक अग्निसेजलाया जाय॥ अग्नीनां भेदाः—
 प्रसंग से आवश्यक जानिके अग्नियों के भेद भी दर्शाते हैं - यद्यपि अग्नि ती-
 नही मुख्य और प्रसिद्ध हैं तथापि उनके भेद अनेक हैं और यद्यप्ये में सर्वत्र अग्नि एकही है कि जिसके संस्कार भेद वा स्थान कर्म भेद से नामभेद भी हो-
 जातेहैं। इसका दृष्टांत है कि जैसे एक लौकिकअग्नि बहीकहाना जो लोकमें जहाँ-
 तहाँ प्रसिद्धरहता और कोईसा संस्कार उदका गारयोक्त विधानमें न किया बायाजा
 इसकेभी स्थानदार्त भेदसे अनेक नाम होतेहैं जैसे भाद्र भट्टी आदिमें होतेहैं—पिर
 वही अग्नि जो निरंतर किसी के घर में रहता हो तो आवश्यक वह नाम होजाता
 क्योंकि आवश्यक नामहै करना (परंतुयमें रहते भी जबतक कोईसा संस्कार न किया
 जाय तबतक तीनों नाम रहतेहैं यद्यपि आवश्यक और लौकिकभी कहाताहै) उपांतर
 ह लौकिक अग्निके स्थान भेदसे अनेक नाम होतेहैं—पिर उी आवश्यकनाम अ-
 ग्निको जब किसी यज्ञ विशेष के लिये कहा तबतक याक यज्ञोंके लिये यका ना-
 मिक संस्कारोंमें कल्पितकरै तब सार्थक नाम कहाता है क्योंकि गृहर्षांत जो घर

का स्वामी है वही उसका संस्कार यजन करनेसे यजमान ठाहरा और उसी गार्हपत्य अग्नि को नामांतरसे गृह्याग्नि भी कहते हैं—फिर उसी गार्हपत्य से से थोड़ा अग्नि लेकर जब किसीके विवाह से होस संस्कार से संयुक्त क्रिया जाय जिसे साक्षीबनाकर दर बधूको प्रतिज्ञा बचन दियेजाते हैं तब उसका और नाम भेद भी विवाहाग्नि ऐसा कहाने लगता और वही वैवाहिक अग्नि आगे को सदा सर्वदा उन दर बधू को घर में रक्षासे रहती है कि जबतक वह पत्नी जीवै दिंतु सरजाने से उसी अग्निमें फंकी जा ती है फिर अन्य विवाह करनेसे अग्नि स्थापन होता है (आचार मर्यादा परिषादी में ८६ श्लोक देखो)—फिर उसी गार्हपत्य अग्निसे से थोड़ी लेकर जुदेकुंड या वेदीमें वेदोक्त कर्म अग्निहोत्र आदि किसी होसके निमित्तसे स्थापन करके संस्कार करीजाय तो यह अग्नि आहवनीय कहाता और वैतानिक भी कहाता और इस भाँतिके वेदोक्त अनेक अग्नि सब अग्निके नामसे प्रसिद्ध होते हैं. इसी प्रकार अनंतरोक्त वैवाहिक और गार्हपत्यभी रक्षार्तअग्नि के नामसे प्रसिद्ध होते हैं. इसी प्रकार ऊपर कहे आवसथ्य पर्यंत लौकिक अग्निके नामसे प्रसिद्ध होते सो लिख चुके हैं तिससे अग्नि के मुख्य भेद तीनही कहेजाते हैं (अन्यथा भेदतौ अनेक अभी लिखने श्रेय है) इसीलिये आचार मर्यादा परिषादी में योगीश्वरने यह कहाया कि (कर्मक्षार्तविवाहाग्नीकुर्वीति प्रत्यहं गृही दायकालाहतेवापिश्रौतवैतानिकादिषु) अर्थात् गृहस्थका सदाग्रह धर्मने कि प्रतिदिन रक्षार्त कर्मोंको विवाह को संचित्तकरी अग्नि में निया करै यथादाय भाग होनेके समय जो हिस्सादाँट में पाईहो तिस अग्निमें करै और वेदोक्त अग्निकर्मोंको वैतानिक आदि अग्निमें से करै—और जो अनेक अग्नि लिखने श्रेय है तिन में एक दक्षिणाग्नि के नामसे कहाता उसका यह लक्षण है कि जो कर्मोंके संचित्तका के रक्षोई आदि पाकयज्ञ से प्रवृत्त करजाय सो इस दक्षिणाग्नि जन्मकेवलनागि माना जा है कि जो कर्मोंसे होता है क्योंकि या तो किसी दूसरे गृहस्थके गार्हपत्य से लेईजाती है या ब्रह्मदार वैश्यके कुलसे या भाइसे इत्यादि ले आयेका विधान है.

अधर्मसे लिप्त होता है ॥ ० ॥ दाहकर्म भी स्नान आदि कराने पीछे करना चाहिये
जैसा यह वचन है = प्रेतदहेच्छुभैर्गंधैः स्नापितं स विभूयितम् = अर्थात्—प्रेतको स्नान
कराये हुये साला आदिसे विभूयित उत्तम गंध द्रव्यों सहित जलावै ॥ प्रचेतस्मृति
ले प्रचेताने भी कहा है = यथा = स्नानं प्रेतस्य पुत्राद्यैर्वस्त्राद्यैः पूजनं ततः । नरनदेह दहेनै
व किंचिद् यंपरित्यजेत् = अर्थात्—पुत्रादिकोंके द्वारा प्रेतको स्नान और वस्त्रादि सा-
सग्रीसे पूजन भी होय किंतु नंगीदेह नहीं जलावै और चढाए हुये वस्त्रमें से कुछ देने
योग्य फाड़िके छोड़िदे जो प्रमशान के निवासी पावेंगे ॥ ० ॥ मनुने प्रेतको लेजाने
सध्ये भी विशेषता कही है = यथा—न विप्रं स्वयुतियत्सु मृतं शूद्रेण हारयेत् । अस्वर्ग्या
ह्याहुतिः सा स्याच्छूद्रसंपर्कदूयिता = अर्थात्—अपने जाती सौजद होते हुये नरे ब्राह्मण
को शूद्रके कंधे न पहुंचावै क्योंकि जो आहुति उसको स्वर्ग पहुंचाने हेतु दीजायगी
वह शूद्रके संसर्गसे दूयित अस्वर्ग्य होजायगी (इस वचनमें अपनों के होते हुये यह
कथन केवल गोत्रियों पर नहीं कहा समझना किंतु जातिमात्र पर विवक्षा
करी है कि ब्राह्मण मात्र किसीके होते हुये ऐसा अनर्थ न होने देवै क्योंकि अस्वर्ग्य
दोषके भागी वेभी होते हैं जो अनर्थ देखें इसी प्रकार अन्य वर्गोंमें समझना ॥ ० ॥
जहाँ ग्रामके चारों खंड सार्ग खुले हैं या शहर पनाह के दरवाजे पुरमें बने हों तहाँ
भी किस द्वारको कैसा मुर्दा निकाला जाय यह भी नियम किया है = यथा—दक्षिणा
नमृतं शूद्रं पुरद्वारेणानिर्हरेत् । पश्चिमोत्तरपूर्वेस्तु यथा संख्यं द्विजातयः = अर्थात्—सरे
हुये शूद्रको पुरके दक्षिणा द्वारमें निकाले और पश्चिम उत्तर पूर्व इन द्वारों से यथा
क्रमके अनुसार द्विजातियों के मुर्दे निकाले जाय—किंतु पश्चिम द्वार से दैत्य और
उत्तर द्वारसे लज्जी और पूर्वद्वारसे ब्राह्मण निकाला जाय • तात्पर्य इसमें यही है कि
द्विजा प्रकाश लिये स्वतः प्रकाश होखता है कि असुद्ध वर्गों का मुर्दा निकाला ॥ न
यासाभिमुखं प्रेतं हरैर्युरिति हारी लोपि = अर्थात्—हारीलने यहभी कहा कि गणके न-
नुख मुर्दा न लेजाय ॥ ० ॥ कदाचिन् लोकं विदेशे न गच्छेत् साजाय विनया शरी
पुत्रादिकोंको न मिलखे परंतु हाड मिले तो उन हाडोंमें प्रतिज्ञाति पुनर्लिवधान
करे या हाड भी न मिले तो पर्यायोंमें ही पुनर्लिवधान ही निकालि वृत्तान्तकारोंमें क-
राकर दाह आदि संस्कार करे (पर्याय अर्थात् इत्येते और गरुडगर्भे नगदात मुर्दाको
नकल बनानी घसल दिवान कहा जाता है) और नृतक भी दग्धिन आदि जैसा होता है
तो सब इसमें साने— इन नियम का प्रचार आगे दत्तिलेखीका वचन देखो— यथाह
वर्गैः = आहितारितप्रचेत्प्रवसन्निव्रयेत् पूनः संस्कारं कृत्वा शववदागोचरिण

अर्थात्—जो आहिताग्निः पुरुष अग्निहोत्री होकर विदेश में रहते सरजाय पुत्रादि कोंको अग्निदाह देनेका अवसर न मिले तिसका फिर पुत्तल विधानके द्वारा अग्नि संस्कार करके सुदी की तरह सूतक माने ॥ और जो अनाहिताग्नि पुरुष अग्निहोत्री नहीं है सो विदेशमें सरै तिसका सूतक तीनरात्रि जानाजाय—इसके भी प्रसारामें यह वचन है—यथा=सुपिष्टैर्जलसंमिश्रैर्दग्धव्यप्रचतथाग्निना । असौस्वर्गायलोकायस्वाहे त्युक्त्वासवांधवैः ॥ एवंपर्याशरंदग्ध्वा त्रिरात्रिसशुचिर्भवेत्=अर्थात्—पर्यांतर नामक पुत्तल बनाने पीछे जल सितायेहुये अच्छे तंदुल यव आदिके पिसानोंसे थोपिलीपि के अग्निसे जलाना योग्य है और उन्हींसने पिसानोंके बने पिण्डसे (यह कहिकर कि यह मृतक और पिण्ड स्वर्गलोक प्राप्त होनेके निमित्तस्वाहा) इस भाँति संवसे स्वाहा कहिकर बांधवोंसहित कर्त्ता पुरुष पर्याशर को जलाइकर तीनरात्रितक अशुचिनाम सूतकीर है ॥ यहाँतक मृतक संस्कारकहागया कि इसतरह गाड़ै या जलावै ॥ संस्कार के आगे फिर क्या करना चाहिये सो नीचे अभी कहते हैं १ । २ परन्तु दाह के दिवसजो कुछ और करना होता है तिसकी व्यवस्था आगे पाँचमी अधिकोक्ति में व्यौरेवार देखना ॥ इतिशवदाहविधानं ॥

(अथ जलदानप्रकारः)

तप्तमाहशमाद्वापि ज्ञातयोभ्युपयंत्यपः । अपनःशोशुचद्वयमनेनपितृदिमुखाः ३ ॥

अर्थः—सातमें या दशमें दिवसके अनन्तर ज्ञातीयजन (अपनःशोशुचद्वयं) उस संवसे दक्षिणासुख होकर जलका अभ्युपरास करतेहैं+ इसमें अभ्युपरासन कहिनेमें उस के प्रयोजन अनुसार स्नान और जलदानकर्म समुष्ताजाताहै क्योंकि चौथेप्रलोकमें इसी तीसरे और पाँचमेंका अति देशधर्म नाना आदिपर बताकर उदक क्रिया करना कहेंगे और पाँचमें प्रलोकमें भी जलदानदिवि स्पष्ट भावसे कहेंगे (अतिदेश उमकानाम है कि जो कोई ताधर्म किसी एक दोके नामसे कहिकर आगेपर भी बतायाजाय कि जैसा यहाँ तैसा वहाँ भी होना चाहिये ॥ ३ ॥

३अधिकोक्तिः=उक्त जलदान दिवि विद्यत तिथियों में करनाचाहिये ममतिथियों में नहीं=यथाह गौतमः=प्रथमतःतीर्थपंचमसहस्रनवमेयुवकक्रिया=अर्थात्—पढ़िने तीसरे पाँचमें सातमें नवमें दिवसोंमें उदक क्रियाहोय ॥ सो यह स्नानके अनन्तरकरना चाहिये=यथाहगातातपः=प्रतिरसरतौसंयोज्यानवेत्तनागाआजंभ्युपयंतीति=अर्थात् मृतकदेह को अग्नि में संयुक्त करके फिर उसकीतर्जन देवते हुये उन्नका अभ्युपरास

करें ॥ प्रचेताने कुछ और भी विशेषता कही=यथा= प्रेतस्यवांशवायथावृद्धमुदकमव
 तीर्यनोद्धर्ययेयुरुदकांतिप्रसिंचेयुरपसव्ययज्ञोपवीतनासमो दक्षिणाभिमुखा ब्राह्मणास्यो
 दक्षुखाः प्राङ्मुखो राजन्य वैश्योरिति= अर्थात् प्रेतके वांशवतोग जैसा उत्तमज
 लाशय या राहिरा जलमिले उसमें गोतालगाके शरीरको नमलें घिसें जलके किनारे
 अंजलियाँ सींचें दाहने क्रंधे जनेऊ अंगौछा से अपसव्य होकर दक्षिणामुख होकर यह
 नियम सबका सामान्य है उसमें यह विशेषता भी करसक्ते हैं कि ब्राह्मणको मुर्दाको
 उत्तरमुखहोकर और क्षत्री वैश्यको मुर्दाको पूर्वमुखहोकर • किंतु शूद्रके लिये कोई नियम
 यद्यपि नहीं कहा गया है तथापि श्रेय प्रश्चित्तकी दिशा केवल बुद्धिसे कल्पनाहोती
 है तिसका निर्णय देशाचारसे कर्त्तव्य है ॥ विष्णुकी स्मृतिमें तबतक रोजरोज अंजली
 देनी कही है कि जबतक सूतक साना जाय=यथाह विष्णुः=यावदाशौचं तावत्प्रेतस्यो
 दकांपिराडंचदधुरिति=अर्थात्-जबतक आशौच रहे तब तक प्रेतके लिये जल और
 पिराड भी देते रहें ॥ प्रचेतस्स्मृति में रोजरोज अंजलियों की वृद्धि करनी कही है जैसा
 यह प्रचेताका वचन है=दिनेदिनेऽंजलीवृत्तान्प्रदद्यात्प्रेतकारणात् तावद्वृत्तिः प्रक
 र्तव्यायावत्पिराडः समाप्यते=अर्थात्-प्रेत के निमित्तसे दिनदिन प्रति जलभरी हुई
 अंजलियाँ देवें और जबतक दशमापिराडपूराहो तबतक एकअंजली रोजवटातावें ॥०॥
 ऊर्ध्वोक्त दो प्रकारोंमें हुटाईवडाईके हेतुसे यद्यपि तर्कावतर्कस्वपीणाद्यार्थव्यवहाराहो
 तथापि जो बड़ा अनुकल्पकहा तिसमें बहुत क्लेश उदाने दोहेतुमें बहुधा प्रवृत्ति नहीं गिह
 होती है परन्तु जिसको यह अभिलायाहो कि धरे प्रेतका अभ्युदयरासा मो दसवडेही
 अनुकल्प को राधे जिसपर न सावाजाय जो उनीछोहे अनुकल्पका अचलस्वलेधे कि
 एकही दिनमें निपटारा हो जैसा याज्ञवल्क्य और गौतम के वचनों से लिया गया ॥
 अंजलीदान दोनों हाथ मिलाकर करना चाहिये=यथा वर्णश्लोः=सव्योत्तराभ्यां पाणि
 भ्यामुदकाक्रियां कुर्वीत्=अर्थात्-बाए दाहिने दोनों हाथों से उदक क्रिया करें ॥३॥
 दशमें दिनकी शुद्धक्रियाका विधान आगे १० अध्याय के प्रसोक्तमें देखें ॥

अधिकोक्तिः=जलदानके नियम ऊपर दहेगये सो किसप्रकारसे करना चाहिये तिसका प्रकार पाँचमें सल श्लोकसे कहेंगे और उसी पाँचमें अधिकोक्ति में सविरतर द्यौरा लिखेंगे कि जिससे कुछ संदेह न रहसके ४ ॥

(उदकदाने गुणविधिः)

सकृत्प्रसिंचत्युदकं नामगोत्रेणवाग्यताः । नब्रह्मचारिणः कुर्युरुदकंपतितास्तथा ५ ॥

अर्थः-सकृत् एकही बार सींचते हैं जलांजली (प्रेतके) नामगोत्रसे (बांधवलोन सपिंड और समानोदक) बाक्वाशी घांभे हुये अर्थात् (सौती होकर) ब्रह्मचारी तथा (जातिसे) पतित बांधव जलांजली न करें (यह विधिमें अपवाद है कि ये दोनों जलदान के अधिकारी नहीं ॥ ५ ॥

५ अधिकोक्तिः = (असुकनासा प्रेतोऽसुकगोत्रः तृप्यतु) इस संज्ञसे एक बार जलांजली छोड़नी सल श्लोक में योगीश्वर ने कही परंतु कहीं देशाचार वा इच्छा के अनुसार द्विकल्प भी तीन अंजलीसे होताहै अर्थात् नामगोत्रका संज्ञ एकही बार कति कर तीन अंजली देना भी ठीकहै ॥ क्योंकि प्रचेतस स्मृतिमें तीनबार जल देनेका नियम है जैसा यह प्रचेताशुनि का वचनहै=त्रिःप्रत्येकं कुर्युः प्रेतरत्प्यतु=अर्थात्-असुकनासा प्रेतस्तृप्यतु इस पूर्वोक्त संज्ञके प्रत्येक उच्चारण से तीन अंजलीकरें ॥ यह नियम तौ तीसरी अधिकोक्तिमें प्रचेताके वचनसे लिखिचुके हैं कि शौच शौच एकअंजली की वृद्धि होतीरहै ॥ उन्हीं प्रचेताने यह और भी विशेषविधि बर्णन करीहैं=यथा=तदीकूलंततोरात्वा शौचं चकारयेत् । दक्षसंशोधयेदादौ ततःस्नानं समाचरेत् ॥ सचलस्तु ततःस्नात्वा शुचिः प्रयत्नान्नः । पायारांततश्चादायविप्रेद्याद्गान्मर्त्तान् ॥ द्वादशसत्रियेदद्याद्द्वैष्येपंचदशस्मृताः । त्रिंशद्गूद्रायदात्तव्यान्नतःसंप्रविशेत्पृथक् ॥ ततः स्नानं पुनःकार्यं गृहशौचं चकारयेत्=अर्थात्-सबसे पहले छिजदाह दिये पीछे नदी दिनारे जाकर यथोचित शौच करिके पहिले कपड़े धोवै तिस पीछे स्नान करै ० फिर धोती सहित स्नान किये हुये णविस और सजको लावधान किये उमात्रये सेरक पत्थर लेके एक दिवाने जलके दिनारे धरै उसको प्रेत मानिके जो ब्राह्मण प्रेतहो तो दश १० अंजली छोड़ैसही प्रेतकोदारह १० अंजलीके वैश्यप्रेत को पंद्रह १५ देनीकहीं शूद्रप्रेतको तीस ३० अंजली देनी चाहिये तिसपीछे बत्को जायै फिर द्वारा स्नान करना चाहिये और बत्का शौच भी लीजयेनी करवै ॥ ६ ॥ ऊपर सल श्लोकके उत्तरार्द्धमें योगीश्वरने जो अपवाद कता तिसके मध्ये कहां और भी विशेष-

ता निर्णय करते हैं कि ब्रह्मचारी यद्यपि सजाती सगोत्रीहों तौभी अपने ब्रह्मचर्य के समावर्तन कर्मकी अवधि तक जलदान आदि कुछ न करें किंतु ब्रह्मचर्य से निपटारा हुये पीछे सूतक सानिके जलदान आदि शुद्धक्रिया उन्हीं सपिराडोंकी फिर करें जो जो ब्रह्मचर्यके भीतर सरगये थे . ऐसेही पतित जो द्विजातियोंके कर्माधिकारसे गिर चुके अर्थात् जातिपांतिसे बाहरहों वेभी जलदान आदि अशौचकर्म नकरें परंतु जब कभी प्रायश्चित्त आदि प्रकारोंसे जे कोई जाति पांति में मिलाये जाय तो पहिले सरें हुआओं को फिर पीछे जलदान आदि करें और सूतक मारें यह सूतक सिर्फ तीन दिन होता है—यथाह मनुः—आदिष्टीनोदकंकुर्यादाव्रतस्यसमापनात् । समाप्तेतदकंठ त्वात्रिरात्रमशुचिर्भवेत् = अर्थात्—आदिष्टी नाम ब्रह्मचारी का और उसका भी कि जो जातिसे पतितहोके किसी प्रायश्चित्त आदि प्रयोगमें लगाहो . क्योंकि आदिष्टी वह कहाता है जिसको कुछ आदेश कियागयाहो जैसाब्रह्मचारी को आदेश किया जाताहै कि अपोशान कर्मकरों दिन में मत सोना इत्यादि व्रतके नियम और पतित को आदेश किया जाताहै कि अमुक प्रायश्चित्त करी—इसव्याख्याके अनुसार मनु कहते हैं किदोनों आदिष्टी जलदानको न करें जबतक उनके व्रत समाप्तहों किंतु समाप्त होजाने बाद जलदान करके तीनरात्रि सूतकीवने ॥ इसी प्रकारनिपट नपुंसक आदि भी जलदान के अधिकारी नहीं हैं = यथाहृद्वमनुः—क्तीवाद्यानोदकंकुर्युः स्तेनात्रात्याविधर्मिणाः गर्भभर्तृद्रुहश्चैव सुराप्यश्चैवयोर्यितः = अर्थात्—क्तीवआदि और स्तेनचोर और व्रात्य संस्कार विहीन और विधर्मी जो पराये धर्मका आय-य लेकर वेधर्म हुयेहों . एवं गर्भ राराने वाली और भर्ताके प्राणा हारने वाली या उस से परा द्रोह राखने वाली और सद्यपान करनेवाली स्त्रियां भी जलदान आदि न करें . क्तीव के साथ जो आदि शब्दकहा तिसमें कृष्टी कलंकी आदि औंभी मसभने ॥ इस अपवाद में जो जो अनधिकारी कहे तिनमें एक ब्रह्मचारी को अपेक्षा अपवाद का कुछ प्रति प्रलव है सोभी आगे पंद्रहवें मूल श्लोक और उसीकी अधिकोक्ति में देखौ क्योंकि उसके देखे बिना व्यवस्था में अनिदि स्वर्डीगदेगी ॥ ५ ॥

(अकर्मपात्रमृतकाः)

पाखंड्यनाश्रिता. स्तेनाभर्तृवृन्व कामगादिका । सुराप्यअत्मन्वागिन्यानागेचोदकभाजना. ६ ॥

अचरार्थः—पाखंडी अनाश्रित स्तेन . भर्तृवी कामगा आदि स्त्रियांभी तथा सुरापी आत्मत्यागिनी भी आशौच तथा उदकपाव नहीं हैं ॥ ६ ॥

अभिप्रायः—नरकपाल आदि (वेदवाह्य) चिह्नों को धारणा करतेहुये जे कोई पुरुष उदर परणावृत्तिलेते हैं सो पाखराडी कहाते हैं. अनाश्रित जो किसी आयस के सहारे न हों. शतेन जो सोना आदि उत्तम द्रव्य चुरावें या अपहार करें. भर्तृघ्नी स्त्रियाँ कि जिन्होंने पतिको वियदेकर या किसीप्रकार माराहो. कामरा जो कुत-रा कहाती हैं. इनको आदि लेकर औरभी समझनी जो गर्भ गिराती या गिरवाती हों या ब्राह्मणा का या बालकों का वध करतीहों इत्यादि. सुरापी जो कोईसा मद्य-पीती हों अर्थात् जिस मद्यका पीना जिसजाति को नियिद्ध हो उसके पीनेवाली सुरा-पी ठहरती है अन्यथा नहीं. आत्म त्यागिनी जिसने अपने आत्मा को जलमें डुबाया वा अग्निमें गिराया वा विय भक्षणाआदिप्रकारोंसे या फाँसीसेत्यागिदिग्राहो (सुरापी आदि जो स्त्रियाँ कहीं उस प्रकारके पुरुषभी संभिलेना) ये सभी सरने पीछे सुतक या जलदान के भारी नहींहैं अर्थात् इनके सरनेमें सपिंड लोग सुतक न मानें और जल-दान आदिकर्त्तभी न करें = इन्हीं दो कर्मोंका नियेधकरनेसे यह तात्पर्यभी स्वतः सिद्ध होजाता है कि अग्निदाह मात्र यथा संभव इनको भी कराय देना चाहिये ॥ इसका मुख्यतात्पर्य आगे दूरजाके इक्कीस सामूलप्रलोक और उमीकीअधिकोक्तिमेंदेखनाई ॥

६ अधिकोक्तिः—अभिप्राय रूपी पाठमें जिन पापों के प्रभाव से ऊर्ध्व दैहिक क्रिया का प्रतिषेध किया सोभी इच्छा पूर्व या बुद्धिपूर्व पाप करनेवालोंका नियम समुझना क्योंकि अगिले बचन का यही तात्पर्य है = यथाह गौतमः = प्रायोऽनाग कश्चाग्निविषोदकोद्वन्द्वनप्रपततैश्चेच्छताम् = अर्थात्-प्रायो नाम महा प्रग्यान किंतु सरजाना इच्छतां इच्छा करते हुयोंका भी (उदकदान आदिमें प्रतिषेधजानो) किन प्रकारों से इच्छा सहित सरजाने वाले. अनागक लंघनमे. गम्भोंमें. अग्निमें. विय भक्षणासे. उद्वन्द्वन ललपंदा लगानेसे. प्रपतन पर्वत आदि ऊंचे चिह्नोंके गिर परने से .॥

दंष्ट्रिभ्यश्चपशुभ्यश्च सरसांपापकर्मणाम् ॥ उदकांपिंडदानंचप्रेतेभ्योयत्प्रदीयते
 नोपतिष्ठति तत्सर्वं सन्तरिक्षेविनश्यति = अर्थात्-पापकर्मां पुरुषोंका सरना जो चां-
 डाल के हाथसे या जलसे या सर्पसे या ब्राह्मणोंके हाथसे या वैद्युत विजली गि-
 रनेसे या दाढ़वाले सिंह बराह आदिसे या पशुओंसे हो तो जलदान और पिंडदान
 जो इन प्रेतोंको दीजिये सो सब अंतरिक्षही में विनाश होजाता किंतु पापों के प-
 भावसे उनके पास तक नहीं पहुँचने पाता तिससे करना व्यर्थ है ॥ इस प्रकार की
 मृत्युभी इच्छा पूर्वहुई हो तो कर्मके अधिकारी नहीं समझने क्योंकि गौतम ने जो
 अपने वचन में इच्छा जाहर करीथी सो इन वचनोंमें पापकर्म के विशेषरूपसे इच्छा
 सिद्ध होतीहै • इसपर ये दृष्टांत हैं कि जो अपने दर्पसे कोपयुक्त होकर चांडाल आदि-
 कोंको मारने गया जलजीवों को मारनेगया या भयानक प्रवाहके देखते हुये तैरने
 गया इत्यादि सबतरह पापकर्मकी इच्छाटाहरी यदि उन्हींकेहाथसे यह आपसारा
 गया तो अपने मारेजानेकी इच्छा उसने जानिबभिकेकरी यह तात्पर्यहै • इसीतिये
 उसके पिंडदानका नियम (विधिका अतिक्रम करनेके निमित्तमें) क्रियागया क्योंकि
 (सर्वत एवात्मानंगोपायेदिति) यह युतिजो प्रसिद्धहै कि सबओरसेही आत्माकी रक्षा
 कियेरहै सो यहविधि उसने न मानी ॥ पापकर्मके विशेषरूपसे यह दूसरा तात्पर्यहै
 कि जिसने पुरायकर्मके हेतुसे उन्हींप्रकारोंमें अपने प्राणार्थदिये हां तिसका क्रिया
 कर्मकरना चाहिये यहां पुरायकर्मका दृष्टांतजैसेकिसी दुबतेहुयेको उभारनेके निमित्त
 गोतालगाया यद्यपि उसकेप्राण वचादिये परन्तु आप दुबिगया तो यह पुरायकर्ममें
 जल के द्वारा मृत्युहुई पापकर्मसे नहीं इसीप्रकार सबमें दृष्टांत समुष्कलेने जैसेमांपने
 धोखेमें काटिखाया तो सरजानेमें क्रियाकर्म करना चाहिये यदि सांपको पकड़ते
 या मारते पालते काटाजाय तो यहपापकर्मके हेतुमें क्रियाकर्मका भागीनहीं इत्या-
 दि ॥ ० ॥ यह जो सूतक न जानना कहा सो रसादिन आदिनिग्रमोंका प्रतिषेध कि प्राहे
 अर्थात् थोड़ेकालतक इनका भी सूतक जानाजाताहै सो सब सद्यःशौचका नियम
 आगे इच्छीससे मूलउ लोकसे शौचीश्चर आप दर्शन करेगे = जिनका जलदान और
 सूतक नियम किया तिनको अरिन्दाह का भी प्रतिषेध कर्त्ते है = अथाहयमः =
 नागौचंनोदकंनानुनदाहाद्यतकर्मच प्रह्वद्वहतानांचनगुर्यान्कट्टनाभ्यात = अर्थात्-
 ब्रह्मदंड काहिये ब्राह्मणकागाप तिनसे सरेहयों तथा और भी पूर्वोक्त पापियों
 का न सूतक न जलदानहै न ज्ञानु डालिके गेलाहै न दाहयादि अतकर्म है न उनका
 कट्टवारण किन्तु दित्तरी रथी विज्ञान आदि कर्मपर लागूकरे ॥ परन्तु (आहितारिभ

मग्निभिर्दहंतियज्ञपात्रेषु च) यहश्रुति जो प्रसिद्ध है कि अग्निहोत्री को अग्निगणोंसे और यज्ञके पात्रोंसे जलातेहैं सो इस प्रसिद्धि से यह न समझिलेना कि युतिसे प्रतिपादन हुई अग्नि तथा यज्ञपात्रोंकी आज्ञालोप होती है तिससे अनन्तरोक्त दाहका नियेध जो स्मृतियोंका धर्म है सो ब्रह्मदंड से सगेहुये अग्निहोत्रियोंपर नहीं आरूढ होता है क्योंकि अग्निहोत्री पर भी वहीधर्म आरूढ होता है इस हेतुसे कि अन्यस्मृती में चांडालआदिके हाथसे अग्निहोत्रीके अग्नि तथा यज्ञके पात्रोंका भी विधान कहा है = यथा = वैतानंप्रक्षिपेदधुआवसथ्यंचतुष्टपथे पात्रारिातुदहेदरनौ यजमानेवृथामृते = अर्थात् — यजमान कहिये अग्निहोत्री यदि वृथा सरजाय किन्तु ब्राह्मण के शापसे या चांडाल आदि के हाथसे सरै तब उसका वितान लेकर जलप्रवाह में फेंके तथा आवसथ्य नामक अग्नि जो उसके वितान वा निवास में स्थापन हुई हो सो लेकर चौराहे में छोड़िदे और यज्ञके पात्र लेकर अग्नि में जलाय देवै = इसी प्रकार उसके सरै शरीर का भी नियम कहा है = यथा = आत्मनस्त्यागिनां नास्ति पतितानां तथा क्रिया तेषामपितथा गंगातोये संस्थापनहितम् = अर्थात् — अग्निहोत्री भी यदि आत्मघाती हो या पतित होजाय तिनका क्रिया कर्म दाह आदि नहीं हो किंतु उनका भी गंगा के प्रवाह में स्थापन करना श्रेष्ठ है कि जैसा ओरो का = इन वचनों के प्रसारा से अग्निहोत्री और अग्निहोत्री सभीके दाह आदि कर्मों का प्रतिषेध ऊपर कियाया यह समझिलेना ॥ ० ॥ तिसपर भी यदि कोई अपने मुर्दा के स्नेह आदि आग्रह से कदाचित् प्रतिषेध का अतिक्रम करै किंतु नियेध को न मानकर दाह आदि कुछ उपकार करै तब उसको उसी अतिक्रम का प्रायश्चित्त करना चाहिये = तथा च वचनं = इत्त्वाग्निस्तुदकं स्नानं स्पर्शादं वहनं क्षयात् रज्जुच्छेदाद्युपातंचतत्रकच्छं गामद्यति = अर्थात् — अग्निदाह देकर या जलांजली देकर या उसके नाश स्नान करिके या उस मुर्देका स्पर्श करिके या लंदा देकर या उसकी क्षया करिके या रथोंका रसीदाहकर या आँसू नहायकर तहश्च्छ नामक प्रायश्चित्त करिके शुद्ध होता है अर्थात् कोईसी एकद्वे वात करने से प्रायश्चित्त लगता है परंतु उही दगा में कि जिनसे जानि बूझि के ऐसा लिखा हो = किंतु = जिनसे विनाजाने योग्यने सेमा क्रिया हो तिसके लिये दूसरा प्रायश्चित्त है = यथाह संदर्भ = तथा अन्यतमंप्रतयोरदंत वृत्तवा कठोदकक्रियां कृत्वा हच्छं सांतपनंचरत् = अर्थात् — इन पूर्वोक्त पापी प्रेतों में यदि किसीको जो कोई वंश लादे या दाहदेवे या कठोदक क्रियाकरके हच्छमान्पन प्रायश्चित्त करै तब शुद्ध होय = परन्तु = जिनसे अनन्तरोक्तनाम न किये हो केवल

आंसूडाले या गुर्देको हुआहो तिसका प्रायश्चित्त छोटासा जुदा है= यथा=तच्छब्दं
 केवलंरपृष्टमयुवापातितंयदि पूर्वोक्तानामकारीचे देकरात्रमभोजनम=अर्थात्-नियिद्ध
 मुर्दा केवल स्पर्श क्रिया या यदि उसकेलिये रोयाहो और वह पूर्वोक्त कामोंका न
 करनेवाला ठहिरै तौ एक शत्रि निराहार व्रतकरै=सो यह छोटा प्रायश्चित्त उसका
 है कि जो कठिन प्रायश्चित्तोंके करनेमें अशक्तहो=औरभी अशक्तों का प्रायश्चित्त
 आगे कहिते हैं=अथाह सुसंतुः=बंधनच्छेदेवासांसभैक्षयाहारस्त्रियवरांच=अर्थात्-
 गुर्देकी लपटी रूसीका बन्धन काटने में एक सहीनाभर भिक्षामांगि खातारहै और
 त्रियवराभी करै. जिसको लक्ष्मणा आगेदूर जाके बर्णनहोगे=ऐसेहीयदि और स्मृति-
 योंके वचन कहीं इकोत्रातकी संबंधी मिलै तौ उनकीभी व्यवस्था कल्पित करलेनी
 चाहिये॥ ० ॥ छेदेसूल पुलोक्षसे लेकर यहाँतक जो जो मृतकक्रियाकरने योग्य नहीं
 ठहिरै तिनका थोडा अपवाद भी कहिना शेषरहाहै कि अमुकामुक मुर्दे छोडके वह
 नियम समुभ्रना=इसीलिये पूर्वोक्तदाहकर्म आदिका नियेध उनके लिये न समुभ्रना
 जो अपने अंगीकृत अनुष्ठान में अत्यंत अजरुर्ग या जीर्णबिह्वानप्रस्थ आदि कोई
 अपने प्राणा त्यागिते विन्तु उनको स्मृतियों से आज्ञा पाईजातीहै=तथाचवचनं =
 वृद्धःशौचस्मृतेर्लुप्तः प्रत्याख्यातभियक्तक्रियः । आत्मानंघातयेद्यस्तुयुंयान्यनगना
 स्वभिः ॥ तस्यत्रिणाशनागौचंद्वितीयेन्वम्यसंचयः । तृतीयेतदकंठत्वाच्चतुर्थेग्राहमाच
 रेत=अर्थात्-जो अति बूढाहोकर नित्यशौच क्रिया न कर सकने से या अति रोगी
 होकर असाध्य रोगहोके से देखे से निपट करारा उत्तर पायाहो गेसा पुरुष यदि अपने
 शरीरको दिनाशकरावे तीसवालोंसे या अग्नि से या लंघनसे या जलसे. तौ उसका
 तीन शत्रिभर अशौच कृतक भी होनाचाहिये ।

भी सूतक माना जाय किन्तु उसीके संबंधसे उनको भी दक्षिणासहित अन्नदेना चाहिये
 अन्यथा नहीं=एवं=व्यासजीने भी यही दृढ किया है=यथा=नारायणसमुद्दिश्य शिवं-
 वायत्प्रदीयते । तस्य शुद्धिकरं कर्म तद्भवेन्नैतदन्यथा=अर्थात्--नारायणके नामसे उद्देश
 करिके या शिवको उद्देश करिके जो कुछ किया और दिया जाता है वही कर्म उस प्रेत
 की शुद्धिकारक होता है यह अन्यथा न समुभन्ता=नारायणबलिः कारणं--जैसा ऊ-
 पर कहा चक्रके उसके अनुसार नारायणबलिकर्म जो है सोई प्रेतकी शुद्धिकरनेके द्वारा श्राद्ध
 आदि संप्रदानरूपकी योग्यता उत्पन्न करता है इसलिये उनका भी ऊर्ध्वदेहिकसर्वकर्म
 करना चाहिये=इसी हेतुसे=षट्त्रिंशत् स्मृतिके मतसे भी श्राद्ध आदि ऊर्ध्वदेहिककर्मक-
 रनेकी अनुज्ञा देखि पड़ती है=यथा=गोब्राह्मणराहतानांच पतितानांतथैवच ऊर्ध्वसंव-
 त्सरात्कुर्यात्सर्वमेवोर्ध्वदेहिकम्=अर्थात्-गऊसे ब्राह्मण से सारे हुये तथा पतित प्रेतों
 का ऊर्ध्व देहिक कर्म सब एकवर्ष उपरांत करै=तौ इस नियमके अनुसार एक वर्षके
 उपरांतही नारायण बलिकरके सर्व कर्मसाधै ॥ ० ॥ अथ नारायण बलिप्रकारः--
 कोईसी एकादशी जो शुक्लपक्ष की हो तिसके रोज विष्णु और वैवस्वत. यम इन
 तीनोंको पद्धति की विधिसे पूजिकर इनके सन्मुख सहत घी तिल मिले हुये दस पिंड
 विष्णुके रूपसे प्रेतको याद करते हुये प्रेतके नाम गोत्रका उच्चारण करिके आप
 दक्षिणा मुख बैठाहुआ दक्षिणा को अग्रभार से फेंके हुये कुशाओं पर उक्त पिंडोंको
 दरिके गन्धआदिसे पिंडोंको पूजिके पिंडप्रवाहणपर्यंत कर्मसाधनकिये पीछे नदीके
 प्रवाह में फेंक दें (किंतु पत्नी आदि किसी स्त्रीको ये पिंड न दिये जायँ) फिर उमीराति
 को विषम संख्यासे पाँच सात आदि विद्वान् कुलवान् तपयुक्त ब्राह्मणोंको निमंत्रित करके
 आप निराहार प्रतीरहै. दूसरा दिन उदयहोनेमें सध्याह्नसमय विष्णुका आगन्धन करके
 एकोद्दिष्ट पद्धतिके विधानसे निमंत्रित ब्राह्मणोंके चरणाप्रक्षालन आदि तृप्तिदा प्रय-
 करने पर्यंत कर्म निपटायके फिर (पिंडपितृयज्ञावृत्तोल्लेखनादि अवनेजनपर्यंत) च-
 पके मौनी भत दस करिके ब्रह्मा विष्णु शिव और परिवार उहित उभराज को भी
 चारों पिंड जुदे जुदे क्षणपर्यंत करके फिर ताज रोज उचित प्रेतको स्मरण करके और
 विष्णुका नाम उच्चारण करिके पाँचदा पितृदेवैः--तिस एते ब्राह्मणोंको आच-
 जन करने पर अनेक दक्षिणाओं से संतुष्ट करके उत्तरेने इति पुरायाद गन्त ब्राह्मण
 को अथने प्रेतका स्वरूप वनक्ति स्मरता करते हुये तद्वदन्ती मीना चोदी आदि उ-
 त्तत वृत्त्योंसे अतिशय संतुष्ट करके तिलपीछे पवित्रा वाक्ता किये जायेंगे ब्राह्मणों
 के द्वारा प्रेतके लिये तिल आदि संतुष्ट जलवात तर्पण कर्माय के कर्माभ्युपगमने

बंधुजनों सहित भोजनकरै = परंतु = जो सर्पकाटेसे मराहो तिसके लिये यह अग्रोक्त विशेषता समुभ्रती कि-जबताई संवत्सर पूराहोय तत्रतक पुराणोक्त विधिसे पत्येक पंचमीको नागपूजा करके वर्ष पूरा होजाने बाद सोनेका बनाहुआ सर्प देवै तथा साक्षात् राजदान करै तिस पीछे सब ऊर्ध्व देहिक कर्मकरै ॥ ० ॥ नारायणवलि का अनुक्रम जो ऊपर लिखचुके तिसका स्वरूप वैष्णवपुराण में कहाहै = यथा = एका दशींसमासाद्यगुक्तपक्षस्यवैतिथिस विष्णुसमर्चयेद्देवं यमदेवस्वतंतथा दशापिंडान्घृताभ्यक्तान्दर्भैर्युसधुसंयुतान् तिलमियान्प्रदद्याद्दक्षिणामुखः विष्णुं ब्रह्मसमासाद्य नद्यंभसिततःक्षिपेत् नामगोत्रग्रहंतत्र पुष्पैरभ्यर्चनंतथा धूपदीपप्रदानंचभक्ष्यंभोज्यंतथापरम निमंत्रयेत्विप्रान्वैपंचसप्तनवापिवा विद्यातपःसमृद्धान्वैकुलोत्पन्नान्समाहितान् अपरेहनिसंप्राप्तेमध्याह्नेसमुपोयितःविष्णोरभ्यर्चनं कृत्वाविप्रांस्तानुपवेशयेत् उदङ्मुखान्त्रययाज्येष्टं पितृरूपमनुस्मरन् मनोनिवेश्यविष्णोवैसर्वं कुर्यादितंद्रितः आवाहनादियत्प्रोक्तं देवपूर्वतदाचरेत् तप्तान्जात्वात्ततोविप्रावत्तपि पृथ्वायथाविधि हविष्यव्यंजनेनैवतिलादिसहितेनच पंचपिण्डान्प्रदद्याच्चदेवंरूपमनुस्मरन् प्रथमंविष्णावेदद्याद्ब्रह्मरोचशिवायच यमायमानुचारायचतुर्थं पिंडमुत्सृजेत् मृतंसंकीर्त्यमनसागोत्रपूर्वमतःपरम विष्णोर्नामगृहीत्वैवंपंचसंपूर्ववत्क्षिपेत् विप्रानाचभ्यविधिवद्दक्षिणाभिःसमर्चयेत् रावावस्थेराभम्याचप्रेतंतंमनमास्मरन् ततस्तितांभोविप्रास्तुष्टमोर्देर्भसमन्वितैः क्षिपेद्युगोत्रपूर्वतुनामिबुद्धौनिवेश्यच हविर्गंधतिलांभस्तुतस्मैदद्याःसमाहिताःसिन्धुभृत्यजनैःसार्द्धं पश्चाद्भुंजीतवारयतः गवंविष्णामतेस्थित्वायोदद्यादान्मघातिनेसमुद्धरतितंक्षिप्रंनावकार्याविचारणा=अर्थात्-गुक्तपक्षकी गकादगी पायकर विष्णा देवका पूजनकरै तथा यमराजको और देवन्वतको पूजे फिर दसपिंड घीके मने सहत तिलमिलेहुये कुशाओंके ऊपर विष्णाके निमित्त दानकरै दक्षिणा मुख वेदिके विष्णाको निज बुद्धिमें समझे हुये फिर सर्व कर्म समाप्त होनेपर नदीके जलमें फेंकि आवे. तहां विष्णाको दसपिण्ड देते हुये प्रेतकानाम रात्रिलेके कर पुष्पोंमें अर्चन भी पिंडोंपर करते हुये धूपदीप देवै और भक्ष्यभोज्य आदि और भी पदार्थ चढ़ावे. निमर्षाके रात्रि समयपांच या सात या नौ ब्राह्मणों को निमंत्रणा भेजे जो विद्या तपभ्यासे संयुक्त अच्छे कुलकेहों तिनको और मात्रदान हांकर भोजनमें आमकते हों तिनको फिर कर्ता पुरुय आप ब्रती रहिकर हमरा दिवस होनेपर मध्याह्न समय विष्णाका पूजन करके नीते हुये ब्राह्मणों को उत्तर मुख वेदावे और जेमा अशुभ उतमर्ष उममें अधिक प्रेत पितर का रूप मनमें और अपना मन विष्णुमें लगायकर निग-

लक्ष्मी होतासन्नकर्म करै आवाहन आदिजो कर्म करना कहासो सब देव शब्द पूर्वक साधै • फिर भोजन से तृप्तहुये जानिके ब्राह्मणों से यह बूझै कि आप अच्छे तृप्त हुये जो तृप्ति शेष रही समुझै तौ उसको भी • पूर्यकरै • फिर खीर व्यंजन मात्रमें तिल सहितआदि मिलेहुयेसे पाँचपिराड बनावै सो देवहीका रूप स्मरणा करतेहुये पहिला पिराड विष्णुके निमित्त देवै दूसरा ब्रह्माको तीसरा शिवके लिये चौथा अनुचरों सहित यमके लिये समर्पणा करै फिर पाँचमा पिराड हाथमेंलेते अपने मनमें प्रेतका नामगोत्र याद करके और विष्णुका नाम उच्चारणा करके पूर्वरीतिसे यह पिराड भी छोड़ै तिस पीछे ब्राह्मणोंको विधिवत आचसन कराय के अनेक दक्षिणाओं से समर्चन करै पर उनमें एक सबसे बड़ेबड़े उत्तम विप्रको सोना चांदीसे पूजै और गऊ तथा बस्त्र और पृथ्वीसे भी संतुष्ट करै प्रेतका नामलेताहुआ • तिसपीछे वै ब्राह्मण भी तिल जल कुशा हाथोंमें लेकर प्रेतका गोत्रनाम कहिकर तर्पणा करै अर्थात् सावधान चित्तसे प्रेतके निमित्त में हविष गन्ध तिल जल समर्पणा करै • तिसपीछे कर्तापुस्त्य भी अपने मित्र भृत्य कुटुम्बी जनों सहित भोजनकरै वारीको जीतेहुये किन्तु मुखसे कोई क्रूर वचन न काढ़ै • इसप्रकारसे जो कोई विष्णुके मतमें स्थितहोकर जिसकिमी आत्मघातीको देवै वह तत्कालही उसका उद्धार करदेता है इसमें कुछ विचारकरना आवश्यक नहींहै ॥ ० ॥ सर्पकाटे प्रेतके निमित्त सोनेका नाग बनाकर देना सुसंतुने भविष्यत्पुराणा में कहा है =यथा=सुवर्णाभारनिष्पन्नं नारांशत्वात्तथैवगाम । व्यासायद त्वाविधिवत्पितुरानृणयमाप्नुयात्=अर्थात्—एकभार सोने से बना नाग विधि से दान करके तथा गोदान भी व्यास विप्रको देकर पिता के ऋणासे उद्धार होवै=इसव्यग्रम्या का पकाहट्चाहिकर इक्कीसमा मूलश्लोक अदिकोक्ति सहित देखना॥६॥इमर्भाति उदकदान आदिविधि और उसकाअपवादभोजतायाअत्र इसके आगे क्या करना चाहिये सो लिखते हैं ६ ॥

(शोकशान्तिनियमाः)

कृतोदकान्समुत्तीर्णान्मृदुशाड्वलसंस्थितान् । स्नातानपवदेयुस्तानिनिदाने पुगतान् ॥ ७ ॥

अर्थः—उदकदान किये और स्नानसे निवृत्तहुये दंडुओं मृदु गाडुन नदीन नदी घासके अंशु सहित भूमिपर बैठे विश्रामलेते हुयोंको गोकर्मे डूबे देखि बटेदूटे वृद्धिमान पुरुष अपवाद करै अर्थात् पुराने इतिहासोंकोमुनातेहुये गंजापीठना निषेध कर के शोकशान्तिकरै • कि संसार ने सदासे यहीरीति चलीआतीहै कोई अमरनहीं ॥ ७ ॥ यही वार्ता अगले चारश्लोकों से वर्णन करैगे ॥

अभिप्रायः—यहाँ इसवचनसे यह भी आज्ञा पाई जाती है कि जब मुर्दाको फूँक नहाय धोयकर लौटें तो दोचमें किसी उत्तम धरती पर बैठि के थोडासा विश्राम करें तहाँ रोतेहुयों को समुझाकर शोकशान्ति करें। इसीलिये मृदुशाङ्ख अर्थात् नवीन हरीघास जमी धरती पर बैठना कहा ॥ ७ ॥

(शोकशांत्युपायः)

मानुष्येकदलीस्तंभानिःसारेसारमार्गणम् । करोतियःससंमूढोजलबुहुदसान्निभे ८ ॥

पंचथासंभृतःकायोयदिपंचत्वमागतः । कर्मभिःस्वशरीरात्थेस्ततकापरिदेवना ९ ॥

गंत्रीवसुमतीनाशमुदधिर्देवतानिच । फेनप्रख्यःकथंनाशंमर्त्यलोकोनयास्याति १० ॥

श्लेष्माश्रुवांधवैर्मुक्तंप्रेतोभुंक्तेयतोऽवशः । अतो नरोदितव्यंहिक्रियाःकार्याःसशक्तितः ११ ॥

अर्थः—रोतेहुयोंको इस भाँति समझावें कि मनुष्यका शरीर जैसा केलोकारखंभ भीतरसे थोथाहोता किन्तु कुछसार नहीं होताहै ऐसे निःसार देहमें मारवस्तुका टुंडना जो कोई करने लगताहै वह बड़ा मर्ख है क्योंकि समस्त संसारही जलफेनके बँताये बूल बूले तुल्यहोता जो क्षणमात्रमें विनाश होमक्ताहै तिससे संसारका स्वरूप खूब समुझिके रोना न चाहिये चुपके होजाओ ॥ ८ ॥ मनुष्यकी काया पाँच वस्तुओंसे (पृथ्वी·जल·अग्नि·वायु·आकाश·इनके संयोगसे) बनीहै सो जब अपने पूर्वजन्मकृत कर्मोंके वेगसे संयोग जुदाहोकर पंचत्वको पहुँचिगया तो इस दशामें परिदेवना वृथा क्योंकरनी ॥ ९ ॥ मरजाना कोई अचंभा नहींहै क्योंकि पाँचोंतत्त्व समेत पृथ्वी भी एक दिन नाशको पहुँचनेवाली तथा इतने बड़े समुद्रभी नागमान हैं और देवता जो अमर कहाते या बडेनहीं होते सुने हैं अवश्य किसी बीज न होंगे अर्थात् महाप्रलय के समय पर कुछ भी न रहेगा तो यह मर्त्यलोक जो फेनके समान कहा सो क्योंकर नहीं नाशहोगा तिससे शोकदूर करी ॥ १० ॥ अन्यथा जो नहीं चुपके होतेहैं तो भी बड़ा दोषहै कि रोने से कफ आँसु आदि जो बान्धव लोग छोडते हैं सो मय प्रेत का विवशहोकर खानापरताहै इनके लिपटोनाही न चाहिये किंतु अपनीगतिके अनुरूप उसकेक्रियाकर्मकरने चाहिये तिससेतत्त्वछोडते उठि खडेहोए चरको चली ॥ ११ ॥

८-११ अधिकोक्तिः—केव तानानु-दशवक्त्रहा तिससे जरायुज आण्डज आदिमर्षी जीव समुझने क्योंकि मनुष्य प्रधान होनेसे सबका उदयनशान्त उदके द्वारा सारे संसारही का स्थिरत्व प्रकट किया गया एतदेव आगे दशमें उल्लोकमें मर्त्यलोक शब्द कहा है ॥ ८ ॥ पूर्व जन्मांतर में जो पुण्य अथवा पाप कर्म अथवा किये जाते हैं वही कर्म इसने जन्म का बीज कहाते हैं क्योंकि इन्हींके भोगने को यह जन्म लेनापरनाहै

जो पृथ्वी आदि पांच पदार्थों से बना तिसके पूर्व कर्मोंका भोग परा होजानेसे यदि शरीर छूटिगया तो यह आप्चर्य नहीं है क्योंकि पृथ्वी आदि पाँचों तत्त्व शरीर से भिन्न होकर निज निज सहा तत्त्वमें मिलजातेहैं ८॥ १० ॥ ११ ॥ शोक शांत किये पीछे जैसे घरको जाना चाहिये सो नीचे बरान करेंगे ॥

(अथगृहगमनप्रकारः)

इतिसंश्रुत्यगच्छेयुर्गृहंवालपुरःसराः । विदश्यनिम्बपताणिनियताद्वारिवेदमनः १२ ॥

आचम्याग्न्यादिसलिलंगोमयंगौरसर्पपान । प्रविशेयुःसमालम्ब्यकृत्वाऽश्वमनिपदंशनैः १३ ॥

अर्थः—ऊपर कही रीतिके इतिहासों को सुनिके शाङ्खल भूमिसे उठिकर छोटे बालकोंको आगेलेकर घरकोजायँ तहां घरकेद्वार आगेसब इकट्ठे एकसनहोकर खड़े हों औरनीवके पत्ते दाँतोंसे काटि खुतरि आचमन करें ॥ १२ ॥ आचमन किये पीछे अग्नि आदि तथा जल गोबर पीलीसरसों इनको छुडकर और पत्यरकी मिलापर पैरधरिके धीरे धीरे सावधानीसे घरमें घुसें ॥ १३ ॥

१२।१३ अधिकोक्तिः—अग्नि आदि जो कहा सो उस आदिशब्द से शंखोक्त अन्यवस्तुभी स्पर्श करनी कहीहैं=यथाहशंखः=दूर्वाप्रवालसरित्वयभौवा= अर्थात्-पूर्वाक्तचीजें या दूब सूरा अग्नि वृषभ इलको छुडकर मिलपरपैरधरि घरमेंघुसें अर्थात् जहाँ जिसके जैसीरीति प्रवृत्तहो उन्ही चीजोंको विकल्पसे समझना ॥ १२ । १३ ॥

(उक्तनियमस्यातिदेशः)

प्रवेशनादिकं कर्मप्रेतसंस्पर्शनामपि । इच्छतांतत्क्षणाच्छुद्धिः परेषां स्नानसंयमात् १४ ॥

अक्षरार्थः—प्रवेशआदि कर्म प्रेतसंस्पर्शियों को भी तत्क्षणा शुद्धि चाहनेवालों परजनोंको स्नान प्राणायाससे शुद्धि ॥ १४ ॥

अभिप्रायः—नीव के पत्ते चावना आदि घरमें घुसना पर्यंतजो कर्म ऊपर निज सर्पिंडों के निमित्त करना कहा सो गैरोंको भी करना चाहिये जो साथ साथेहों और प्रेतका स्पर्श कियाहो अर्थात् प्रेतके आभयरा उतारना आदि चुनेका बोडका प-राय अर्थ कियाहो ऐसे असर्पिंड गैर जनों कोभी नीवके पत्ते चवना आदि कर्मकर्य है परंच उनको अनेक दिन सतक मानना आवश्यक नहींहै इसी लिये इसअध्याय में यह कहा है कि परजन जो तत्काल शुद्धहोजाता इच्छा करें निजका अपने घर जाके स्नान और संयम कहिये प्राणायास ये दोनों कर्म करने में शुद्धि होजाती है ॥ यद्यपि नीवके पत्ते आदि इस क्रमसे घरमें जाना पर्यंत कनाया और इस मूलप्रकार-

क में आदि शब्द प्रवेश के साथ जोडा गया तोभी यह विपरीत न समझना किंतु का-
व्य की मर्यादा से प्रतिलोम अभिप्राय प्रकट किया है कि घरमें घुसने से लेकर इधर
नीच चावने तक जो कुछ करना कहा गया तिसका अतिदेश गौरवनों परभी समझना
यह लेख सांगतिक है ॥ १४ ॥

१४ अधिकोक्तिः--तत्काल शुद्धि होजानेका प्रमारा वाक्य यहाँ लिखते हैं = यथाह
पाराशरः=अनाथं ब्राह्मणं प्रेतं ये वं हंति द्विजातयः परेषु देयज्ञफलमनुपूर्व लभन्ति । न ते या
मशुभं किंचित्पापं वा शुकर्मणा जलावगाहनात्तेषां सद्यः शौचं विधीयते = अर्थात्-
किसी अनाथको या ब्राह्मण प्रेतको जेकोई द्विजाती लोग कंधे धरते हैं वे प्रत्येक पग
धरनेमें यज्ञफल पाते हैं उनको ऐसे शुभकर्मोंसे न कुछ अशुभ है न कोई सापाप है किन्तु
उनको जलमें गोता लगानेसेही तत्काल शुद्धि होजाती है ॥ स्नेह आदिसे पगया मुर्दा
लेजाने मध्ये मनुने विशेषता प्रकट करी है = यथा = असपिराडं द्विजं प्रेतं विप्रो निर्हृत्य बंधुवत्
विशुद्ध्यति विरात्रेण सातुराज्ञां च वांधवान् यद्यन्नमत्तितेयां तु दशाहेनैव शुद्ध्यति अनदन्न
न्नमह्नैव न चेतस्मिन् गृहे वसेत् = अर्थात्—इन वचनोंका यह तात्पर्य है कि जो कोई ब्राह्मण
अपने असपिराड द्विजाती गौरके प्रेतको प्रीतिभावसे बंधुके ही तुल्य कांधे धरै या साताके
ठीक सपिराडोंकोही कांधे धरै और उसके सूतक में अन्न भोजन करे और उसीके
घर निवास करे तिसको भी घर मनुष्योंकी तरह दशदिनका सूतक छोकर शुद्धि हो-
ती है या जो मुर्दा लेजानेके सिवाय केवल निवास उसके घर करे किन्तु भोजन में
साथी न हो तिसको तीनरात्रिका सूतक होता है पर जो कोई केवल मुर्दा कांधे धरै
किंतु न उसके घर बसे न अन्न भोजन करे उसको बरुही दिनका सूतक होता है को
यह नियम केवल अपने अपने वर्गानाम में समझना -- किन्तु -- अन्य वर्गोंका मुर्दा
कांधे धरनेसे उसी वर्गके समान सूतक उसकोभी लगाना है = यथाह गौतमः अत्र उपच्येद
सां पूर्ववर्षाभुपस्पृशेत् पूर्ववा २ वं न च दृष्ट्वा जामागौचं (विप्रस्य गृहनिर्हरणानाम
हलावर्षा जो पहले वर्षाको उपस्पृशेत् या पहिल्यावर्षा पिच्छलेको तदा या गृहे ह्ये
के वर्षाको कहा सूतक इसे करवा चाहिये यहाँपर उपस्पृशेत् अर्थात् मुर्दा लेजानेका समझना)
यह दृष्टांत है कि गृह जो ब्राह्मणका मुर्दा लेजाय तो दशदिन सूतकी चने या ब्रा-
ह्मण जो गृहका मुर्दा लेवे वह एक सहीना तक सूतक जाने उर्वाप्रकार गौवर्षाभी
बनुक्षितेने--इसका दिनेय लिखिय आगे मरुर्दा कांधे धरनेका अर्थमें देखना कि
हृदीसर्वो अतिकोक्तिभी देखो ॥ १४ ॥

(ब्रह्मचारिणंप्रत्याह)

आचार्यपित्र्युपाध्यायान्निवृत्त्यापिव्रतीव्रती । सकटान्नचनाशनीयान्नचतैःसहसंवसेत् १५ ॥

अर्थः—आचार्य (जिसके लक्षणा आचारअध्याय में कहिचुके) पिता माता-
उपाध्याय (जिसके लक्षणा आचार में) इन तीनोंको निर्वृत्यपि काँधेधरिके भी
व्रती जो ब्रह्मचारी है सो व्रती बनारहताहै अर्थात् उसकाव्रत नहीं भंग होताहै परंतु
सकटान्न जो कड़ेका सूतकी अन्नहो तिसको नहीं खाय न सूतकी सपिराडोंकेसाथ
वसै क्योंकि इन बातोंसे ब्रह्मचर्य भंग होताहै ॥ १५ ॥

१५ अधिकोक्तिः—ऊर्ध्वोक्त नियमसे यह तात्पर्य सिद्ध हुआ कि आचार्य पिता
माता उपाध्याय इनचारके उपरालू किसी सपिराड भाई आदिकी रथीमें हाथलगाने
से ब्रह्मचारीका व्रत भंग होताहै इसीलिये वशिष्ठका अग्रोक्त वचन है—यथा=ब्रह्म-
चारिणाः शवकर्मिणोव्रतान्निवृत्तिरन्यत्रमातापितोरिति=अर्थात्—मुर्देका कामकरने
वाले ब्रह्मचारी के ब्रह्मचर्य व्रतसे निवृत्ति होजाती है व्रत नहीं रहता परंतु माता
पितासे अन्यत्रका यह नियम है ॥ १५ ॥

(आशौचिनांनित्यनियमाःकर्माधिकारिणश्च)

क्रीतलव्धाशनाभूमौस्वपेयुस्तेष्टयक्पृथक् । + पिंडयज्ञावृतादेयंप्रेतायान्नंदिनत्रयम् १६ ॥

अचरार्थः—वे सब धरतीमें जुदे जुदे सोवें क्रीतलव्धाग्न होकर + प्रेतकालिये तीन
दिनतक पिराडयज्ञकी आवृत्तसे अन्नदेय है ॥ १६ ॥

अभिप्रायः—क्रीतनाम खरीदा हुआ रोज रोज या लव्धनाम जो त्रिना सांगे
अन्नादिक मिलजाय वही सब सूतकी भोजनकरें और वेही सब सपिराड लोगधरती
पर जुदेजुदे सोवें और तीनदिन प्रेतको भी अन्नदेतेरहें पिराडयज्ञकी आवृत्त मर्यादा
से अर्थात् पिराडपितृ यज्ञकी प्रक्रिया जैसी प्रसिद्ध है कि अपमद्य दाहना मद्य
होकर इत्यादि रीतोंसे—परंतुइसवचन में तीनिहीं पिराडवेने निवृत्तिये नियम अर्थात्क्रीतना
में देखो ॥ १६ ॥

ऊंचेपर नहीं=इसमें सनुने कुछ और विशेषता कही है=यथा=अक्षर लवणाक्षाःस्य
 निर्मज्जेयुश्चत्तेत्र्यहस सांसाशनंचनाप्रतीयुःशरीरंश्चपृथक्क्षितौ=अर्थात्—ऐसा अन्न
 भोजनकरें जो खार या खारी लवणा से विहीन हो और तीनदिन गोता लगाके स्नान
 करें और सांसका भोजन न करें और सब जुदे जुदे धरतीपर सोवें = गौतम ने भी वि-
 शेष कहा है=यथा=अवःशय्याशयिनोब्रह्मचारिणाःशवकर्मिणाः = अर्थात्—मुर्देका
 कर्म करनेवाले खाटसे नीचेसोवें तथा ब्रह्मचर्यसे रहें + प्रेतको अन्नदेने मध्ये अगिला
 वचन विशेष है=यथाहमरीचिः= प्रेतपिराडंविहिर्दद्याद्दर्भसंत्रविर्वर्जितम् प्राणुदीच्यांच
 रुंक्षत्वास्नातःप्रयतमानसः=अर्थात्—घरसे बाहर उदीची दिशा में पहले स्नान करके
 सन सावधान कियेहुये खीरि बनाइके प्रेतको पिराडदेवैकुशा और संत्रसे विवर्जित=
 कुशा और संत्र बिना जो देनाकहा सो उत प्रेतको समझना जिसका जनेऊ न हुआ
 हो यह भेद अगिले प्रचेता के वचन से जाना जायगा=यथा=असंस्कृतानांभर्मापिड
 दद्यात्संस्कृतानांकुशेयुः=अर्थात्—संस्कार से रहित प्रेतोंको धरतीपर पिराड देवै सं-
 स्कार होचुकनेवालों को कुशा विछाकरदेवै ॥ ० ॥ कर्मकरनेवालेका विशेष नियम
 जो गृह्य परिशिष्ट में लिखा सो अब कहतेहैं=यथा=अमगोत्रःसगोत्रोवायदिसत्रीयस्त्रिवा
 पमान् प्रथमेहनियोदद्यात्सदगाहंसमापयेत्=अर्थात्—चाहें सगोत्री वा अमगोत्री हो
 प्रथमदिन जोकोई पिंडदेवै वही दगदिनका कर्म समाप्तकरें ॥ पिंडोंका द्रव्य नियम
 भोजनःपुच्छ ऋषिने कहाहै=यथा=गालिनामक्तुभिर्वापि गाकैर्वाप्यथनिर्घपेत । प्रथ
 मेऽह्नियद्व्यंतदेवस्याहशाहिकम् ॥ नृपगांप्रमंक्रंपृथपघ धूपंदीपंतयेवच अर्थात्
 भातसे या सत्तुओं से अथवा शाकैःमेही प्रेत के निमित्त पिंडदेवै परंतु जिस द्रव्यमें
 पहले रोज दियाजाय वही द्रव्य दग दिन तक होय और सोन माधे हुपे जल प्रमेक
 फूल धूप दीप भी देवै ॥ धरती या पत्थर पर देनेका नियम विकल्प से समझना य-
 थाह शंखः=भूसौमाल्यंपिंडुपानीयमुपलेवाद्युः=अर्थात्—फूलमाला पिराड पानी यह
 सब धरती या पत्थर पर देवै ॥ यहां पर द्युःसर्वको अर्थात् देवै इस बहुवचन में यह
 शंका न करनी चाहिये कि जैसे जलांजली देनी सबको कही थी उनी प्रकार पिंड
 आदि भी सबकोई दे सकने है क्योंकि यह काम केवल पृथ्वीको या किसी गक्रराह
 देनेवाले को कर्तव्य है अर्थात् पृथ्वी न होनेमें जो कोई अतिगय निकरका सांपिंडों में
 करसकता है उसके भी न होने में प्रेत की माता का सांपिंड आदि जो निकर समुझा
 जाताहो वही कः=इसमें जो आदि गदर कहा निमित्त अधिकारी अगले गौतम के व-
 चन में देखो=यथाह गौतमः=पुत्राभावेमपिंडा मानमपिराडाः गिर्याद्व्यन्तदभावे

ऋत्विगाचार्यो = अर्थात्—पुत्रके अभावमें प्रेतका सर्पिंड पुनि उसके भी अभावमें प्रेत की माताके सर्पिंड पुनि उनके भी अभाव में प्रेत के शिष्य शागिर्द देवें उनके भी न होनेमें ऋत्विक् वा आचार्य पिंडदेवै ॥ परंतु जहाँ पुत्र अनेकहों तहां जेठा पुत्र कर्म करै सवनहीं = तथाह मरीचिः = सर्वैरनुमतिं कृत्वा ज्येष्ठैर्नैवतु यत्कृतम् । द्रव्येराचाविभक्ते न सर्वैरेव कृतं भवेत् = अर्थात्—जुदे जुदे भी सब पुत्रोंसे अनुमति और द्रव्यकी सहाय लेकर जो कर्म जेठे पुत्रने किया हो यद्वा अनुमति विना भी अविभक्ति धनसे जेठे ने किया हो सो सबका किया कहाता है ॥ ० ॥ वराभिदसे पिंडोंकी संख्यामें भी नियम भेद कहा है = यथाह विष्णुः = ब्राह्मराश्यदशपिंडाः क्षत्रियस्य द्वादशैवेत्येव माशौच दिवससंख्यया = अर्थात्—ब्राह्मरा के दशपिंड और क्षत्रीके बारह पिराड इसी प्रकार जिस वराका जितने दिन सूतकहो उसी संख्यासे पिराडहों अर्थात् जहांतक शुद्ध होने का दिवस आवै तवतक जलदान और एक पिराड रोज रोज प्रेतको दिया जाय = यही प्रसारा अन्यस्मृतिमें कहा है = यथा = नवभिर्दिवसेर्दद्यान्नवपिराडान्समाहितः । दश संपिराडमुत्सृज्य रात्रिशेषेषु चिर्भवेत् = अर्थात्—यहां केवल ब्राह्मरा वरासे उदाहररा दशति हैं इसी तरह अन्य वराओंके शुद्ध होने योग्य अवधि समुझी जायगी कि . नव दिनोंसे नौपिराड सावधानी सहित देतारहे फिर दशमा पिराड देकर केवल रात्रि शेष रहिते दिन दिनमें शुद्ध होजावै = शुद्ध होजाना यह तात्पर्यहै कि अगले दिन ब्राह्मरा निसंत्रणार्थ जो श्राद्ध किया जायगा उसके योग्य यह शुद्धि समुझी जायगी ॥ योगी- चरके मूलप्रलोक में केवल तीनदिन तीन पिराड देने कहेगये और यहां अधिकोक्तिमें अन्यस्मृतियों से दश बारह आदि पिराड देने सिद्ध हुये तो इन छोटे बड़े दो भांति के नियमोंकी व्यवस्था उसी तरह कल्पित करलेनी चाहिये कि जैसी तीसरी अधिकोक्ति के अंतमें जलदान मध्ये लिखिछुके अर्थात् जहां प्रेतका उपकार अधिक चाहा जाय तहां अधिक पिराडोंका नियम अंगीकार करना या जहां अधिक कर्म करनेका अवसर आदि न मिलने से कठिनताई समुझी जाय तहां तीनपिराडोंके नियमने निर्वाह करना यह सिद्धांतहै ॥ ० ॥ तथापि जहां यह भांति खड़ीहोय कि यद्यपि शुद्ध होके दोहे दिनमें कर सकनेका अवकाशहै परंतु पिराड पूरंपूर देना चाहतेहैं तहां गाना तपस्मृति का वचन अंगीकार करना = यथाह गानान्तप = आर्गोचश्चतुह्यहामपि पिराडान्दद्यादशैवतु = अर्थात्—आर्गोच नाम सूतक चाहें दोहे दिन माना जाय पंच पिराड पूरे दसदेने चाहिये ॥ इसी लिये योगीचरके वचनानुसार तीनदिन सूतक मानने वालोंका निर्वाह पारस्करने दर्शाया है = यथा = इत्यनेदिवसेदेया नव पिराडा म

साहित्यैः । द्वितीयेचतुर्योदश्यादस्थिसंचयनंतथा ॥ त्रींस्तुदद्यात्तृतीयेऽह्नि वस्त्राद्विहालये
 तथा = अर्थात्—जो तीनिही दिन सुतक्र जानै तो सावधानी से पहिले दिन तीन
 पिराड देने चाहिये दूसरे दिन चारपिराड देवै पुनि उसी दिन अस्थि संचय कर्म करे
 फिर तीसरे दिवस तीनपिराड देकर पं छे कपड़े दोकर गुड़होजावै तो यहभी दसदिन
 के समान कर्म ठाहिरता है = इस अदिकोक्तिमें बरान काफी व्यक्त्या सभी बरों की
 तुल्यात्मक साधारण है ॥ २६ ॥

(अथ सिकजल वंधनादि विशेषं नित्यकर्मादि विवेकश्च)

जलमेकाहमाकाशेस्याप्यंधोरंचमृगमये । † वैतानीपासनाःकार्या क्रियाशुभुतिनोऽनात् १११॥

अर्थः—आकाशमें रुद्रादि जलदूध भी मृत्पात्रोंमें जुदा जुदा स्थापन करवा चा-
 हिये किंतु छींकेमें बरिक्के वृक्षादि पर लटकाना चाहिये । वितान संगंधी उपासना
 क्रियार्थे भी करनी चाहिये य तिकी आज्ञारे-अर्थात्-वितान अग्निश्रेय के विस्तार
 का नामहै जो अग्निदेवियोंके वेद विहित मार्गसे स्थापन होतीहै कि जिनमें मांभ
 सुबरे दोनों समय नित्य होस जाता रहिताहै उसकी क्रियार्थे वैतानीपासना कहातीहै
 तिनका त्याग सुतक्रमे भी नहीं होता क्योंकि युति वेदकी आज्ञा यहीहै - इसका
 विशेष व्यौरा अधिकोक्ति में देख्यो ॥ २७ ॥

१७ अधिकोक्तिः—जल और दूध जुदे पात्रोंमें रुद्रादित जो कहा तिनका कोडे
 दिवस ठीक निश्चय नहीं किया तिसमें पहिला दिवस पायागथा कि दाहदिये पांके
 उसी दिन सायंकालको लटकावे=पारस्कारने इस कर्मका निमित्त भी प्रकाश किया
 है = यथा = प्रेतावलाहीत्युदकन्यायं पिवचेदमित्सीरं = अर्थात्—अथ प्रेत उपास
 स्नान कुरु इसलिये जल स्थापनहो. यह दुग्ध पातकरी इसलिये दूधका स्थापन ॥० ॥
 फल वीजना किंतु अस्थिसंचय कर्म करना यद्यपि २६ की अधिकोक्तिमें दूसरेदिन
 कहिचुके हैं तथापि इससे कई भेद हैं जो अगिले संवत्के वचनमें देख्यो अथान सं-
 वर्तः = प्रथमेऽह्निद्वितीयेद्या सुत्रमेतदनेयया । अग्निश्रेयसंचयनं दार्यं नित्यं योऽह्निःपद
 अर्थात्—पहिले दिवस या तीसरे या सातवें या नववें दिन अग्निश्रेयसंचय करना सो दिन
 में करना और प्रेतके रोदियोंको साथ लेकर करना = अहो विद्याय विख्या मृत्यु
 में दूसरे दिन करने कहे तथा वैशाखमास में चौथे दिनी करने कहे और गंगा नद्य
 में छोड़ने कहेहैं—इत सब कहे दिवसों में जो निवृत्त कर्मी प्रीणार्थसे प्रीणद ही न
 उसी दिन करे यह तात्पर्यहै ॥ अगिले इस कर्मके साथ देवदारा की कर्मा कदा

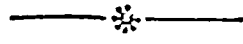
=यथा = अस्थिसंचयनेयागो देवानांपरिक्तीर्तितः । प्रेतीभूतंतसुद्दिश्य यःशुचिर्नक्षरो
 तिचेत् ॥ देवतानांहुयजनंतंशापंत्यथदेवताः । प्रसधानवादिनोदेवाः शदानांपरिक्तीर्ति
 ताः = अर्थात्--अस्थि संचय करके दिवस देवताओंका याग अर्थात् यजन पूजन क
 रना कहाहै उसी प्रेतको उद्देश करके जो कोई शुद्ध चित्त होकर देवताओंको यजन
 इसमें नहीं करता उसको अवश्यही देवता शाप देती है (देवता इसमें रासोशादि वा
 इन्द्रादि नहीं समुझते किन्तु) प्रसधानभूमि के रहनेवाले मुर्दाओं की देवता कहातीं
 जो पहिले वहांपर फंकीगये हों--इसका यही तात्पर्यहै कि फूल वीजते समय पहिले
 प्रसधानके देवता और अपने सुख्य प्रेतको तालसे धूप दीप पुष्प साला दूध और पिंड
 रूप अन्नसे पूजै ॥ ० ॥ अत्र दशवें दिनका शुद्धकर्म मुंडन आदि की विधि कहते हैं
 =यथाह देवलः = दशमेऽह्निसंप्राप्ते कान्तंशासाद्बहिर्भवेत् । तत्रत्याज्यानिवातानि
 केशशतयु नखानिच = अर्थात्--दशवां दिन प्राप्त होने में बस्ती से बाहर जाके शुद्ध
 स्नान किया जाय तहां अशुद्ध वस्त्र त्यागि दिये जाय और बाल बाड़ी सूत्र पत्र भां
 त्यागि दियेजाय ॥ यह सासान्य तावसे दशवां दिन कहा सो उन सभी दिवनों का
 उदाहरण समुझना जो जिस वर्राके नियमसे अविदा अत्रविने या किसीके परस्पर
 से या किसी आवश्यकता से थोड़ी अवधि में करने का दिन ठहराया जाय =
 सो यह विकल्प अगले स्मृत्यंतर वचन से स्पष्ट होताहै =यथा = द्वितीयेऽहनि
 कर्तव्यं क्षुरकर्त्सप्रयत्नतः । तृतीयेपंचसेवापिसप्तमेवाप्रदानतः = अर्थात्—यहां प्रदान
 शब्दसे आद्यप्रदान जो एकादशाहिका प्रसिद्ध है तिसते भीतर भीतर ये सब दिवस हां
 सक्तते हैं कि या तो दूसरे दिनही सौरदुर्म्भको यत्नमे करे या तीसरे या पांचवें या
 सातवेंदिन जहां जैसा संभव हो ॥ ० ॥ अत्र उसका निराय कर्तव्य है कि मुंडनका
 करारें तिसके लिये यह आपस्तम्ब का वचन देखो =यथा = अनुभाषिणांचपरिवापनं
 = अर्थात् — (शावदुःखसनुभवतीत्यनुभाषिनःसिंहाः)

में होता है=यथाग्रंथांतरवचनं=गंगायांभास्करक्षेत्रेमातापित्रोर्गुरुमृत्तौ । आधानकाले सोमेचवपनंसप्तसुसृतम्=अर्थात्—गंगातटपर-भास्करक्षेत्र में-माता और पिता के सरने में-गुरु के सरने में-आधान काल में अर्थात् अग्नि के स्थापन समय जो अग्निहोत्रियों का विधान है-सोमतीर्थ में अर्थात् सोमनामतीर्थ या सोमयाराख्य तीर्थमें भी इन सात स्थानोंपर सर्वभद्ररूपी वपनहोना कहा है ॥ यहां तक आवेमूल प्रलोकपर अतिकोक्ति परीहुई उसीका यह चिह्न है ॥ † ॥ अब उत्तरार्द्धकी अतिकोक्ति लिखते हैं क्योंकि पूर्वार्द्ध से जो सूतक में अशुचित्व कहा तिसते सभीकर्म श्रौत और स्मार्तों का करना तबतक नियिद्ध समझा गया परन्तु जो बिरले कर्म सूतक में भी किये जाते हैं तिनकी आज्ञा इसमें दर्शावैगे (वैतानोपासनाःकार्याःक्रियाश्चयुतिनोदनात्)वितान अग्निश्रौतोंका विस्तार कर्म कहाता है तिसमें जो क्रिया हों सो वैताना कहाती हैं-दृष्टान्त जैसे वैतानिनाम अग्निसे जो क्रिया वेदोक्त होतीहों या अग्निहोत्रकी अग्नि में होतीहों या अमावस पूर्णामामी आदिके वेदोक्त यज्ञों में अग्निसाध्य क्रिया होती हों तिनकी उपासना साधन करने के हेतु से (वैतानोपासनारूपी यह नाम टहरा) ऐसी सब क्रियायें सूतक में करनी बंदनहीं होती किंतु करना चाहिये क्योंकि यति नोदनात् यु तिकी आज्ञा होने से इनको सूतक नहीं लगाता- यु तिकी आज्ञाके यह अप्रोक्त उदाहरण हैं = यथा = यावज्जीवमग्निहोत्रं जुहुयात् = तथा = अहरहःस्वाहाकुर्यात् = अर्थात् —यह यु ति कहती है कि जबतक जीवै अग्निहोत्र में होमकरतारहे = तथा दूसरी यह यु तिहै कि = दिनदिनप्रतिस्वाहा करे = तौ इस आज्ञा में सूतकमें भी कोई दिन स्वाहासे रखा गी नहीं रहमकरता (अन्नाभावेकैर्नात्रशकायादिनायु ह्युपासनहोमोऽपिचोद्यते) अर्थात् होम शौर्य अन्नके अभाव में किसी गकका-प्ल आदि द्रव्यसेभी यु ह्युपासन होम कहाताहै ॥ अब इस बातपर ध्यान देना चाहिये कि योगीश्वर के मूलप्रलोक में यु तिकी आज्ञावाली क्रियायें करनी कहीं तिसते श्रौतकर्म मात्र सब सूतकमें होंगे किंतु स्मार्त कर्मोंकी दात आदि क्रियाओंका अनुष्ठान करना नियिद्ध टहरा = इसी बातपर वेयाद्यपाद का अप्रोक्त वचन है = यथा = स्मार्तकर्मपरित्यागोराहोन्न्यवसृतके । श्रौतकर्मगिणन्कालंदातःशुद्धिसवाप्तुयात्—अर्थात्—राहुसे अन्दर सूतक में स्मार्त कर्मों का परित्यागदे परंच श्रौत कर्मकरने मध्ये तत्कालही न्यान करके गुह्यहोजाताहै ॥ ० ॥ सूतक में श्रौतकर्मों का करना कहा सोभी नित्य और नैमित्तिक अभिप्रायसे कहागया है अर्थात् साधान्य सब कर्मोंका नहीं यह ध्वन्यर्थ अगले वचन में ननिहोना = यथाहोपेदीनाः = नित्यानिर्वान-

अर्थात्—जननसूतक और मृतक सूतक और रोग आदिने अशक्ति होनेमें औरयाद के रोज ब्रह्मभोज के अनवकाश में इसी प्रकार कहीं विदेशको जाने आदि निमित्तों में और के हाथसे होस करावै परकर्मको हानि न करै ॥ ० ॥ विभले स्मार्त कर्म भी सूतकमें करने कहे हैं = यथाहजातूकर्ण्यः = सूतकेतुमुत्पन्नेस्मार्तकर्मकथंभवेत् पिंडयज्ञं चरुं होसससगोत्रेणाकारयेत्=अर्थात्—सूतक उत्पन्न होने में यदि कोई कर्म ऐसाही आवश्यक आनिपरै जो स्मार्तहो किंतु स्मृतियों की आज्ञा के अनुसार परम धर्म गिना जाताहो तो वह स्मार्त कर्म कैसे होवै (इस प्रश्नका यह उत्तर है कि) पिंडयज्ञ नाम याद्व जो आद्यिन आदि महीनमें आवश्यक हैं तथा चरुहोस अर्थात् हव्यान्न होस जिसका बड़ा उपाय और सहर्त भी पहिले से निश्चय होचुका था या कोईसा नियमात्मक नित्य होस जो निरंतर होता रहताथा बीचही में सूतक होगया इसी प्रकार कोई बड़ा यज्ञ वागप्रतिया आदि जो पहिले से प्रारंभ था सो सब उभी सूतक में असगोत्री पुरुषके द्वारा करावै किंतु न आपकरै न अपने सागोत्रीसे करावै— अब = शेरहा यह संदेह कि शेरके हाथ से किये कर्म का फलभागी कौन होगा इसके मध्ये मदा शिवजी का यह वचनहै = यथा = देवेपित्र्ये चवाग्निाच्येराजद्वारं विशेषतः यद्विदध्यात्प्रतिनिविःतन्नियंतुःकृतिर्भवेत्=अर्थात्—विशेषकर देवकर्म जप होस यज्ञ आदि ब्राह्मणा वरगीमें और पितर कर्म थाद्व गयाथाद्व आदि जो आचार्य वा पुरोहित से कराया जाय और वाग्निाच्य व्यापार कर्मजो गुसाप्रतों वा मुनीमोंके द्वारा किया जाय तथा राजद्वार में जो मुस्ताव बक्षीलंके द्वारा काम होते हैं उनमभी में जोहुछ काम कोई प्रतिनिधि करे सो नियंता स्वामी का करना गिनाजाता किंतु भले घुरे फलका भागी बहो नालिक होता है

इसी अधिकृति में हो चुका है ॥ ० ॥ अस गोत्रीके सूतक में अन्न भोजन का निषेध है=यथाहयमः=उभयत्रदशाहातिजुलस्यान्नंभुज्यते सूतकेतुकुलस्यान्नमदोयंसनुरव्रवीत्=अर्थात्-जिसके सूतकहो उसके कुलमात्र का अन्न दशदिन नहीं खाया जाता उभयत्र नाम जनन सरणा दोनोंसूतक में (यहाँ दशदिन के उपलक्षणा से उतने दिन समझने जो जिसवर्गके सूतक में नियतहों) परंतु अपने सगोत्री कुलका अन्न अदोयिलहै सूतक में भोजन करना चाहिये यह सद्बुद्धा संमत यमने प्रकृत क्रिया ॥ ० ॥ विनाजाने या जान बूझ भोजन करने में किसीको दोष होताहै यह भेद षट्त्रिंशत् के मतसे दशति हैं = यथा = उभाभ्यामपरिज्ञातेसूतकंनैवदोयदत्त एकेनापिपरिज्ञातेभोक्तुर्दोषमुपावहेत् = अर्थात्-विदेशमें होने आदि कारणां से दोनोंको सूतक नामालूमहो तो अन्नका दोष देनेवाले या खानेवाले किसीको नहीं होता पर जो दाता या भोक्ता दोसे किसी एकहको सूतक मालूम हो तो केवल खानेवालेको दोष लगताहै यह जनन सरणा दोनों सूतक में समझना ॥ ० ॥ विवाह आदि उत्सवों में जो अन्न पक्वान्न सूतकसे पहिले सिद्धहो चुकाहो और सूतक उसी घरमें नहो किंतु गृहांतरमें पक्वान्न सिद्धहोआहो तो वह अन्न ब्राह्मणा आदि भोजन करसकते हैं=यथाह वृहस्पतिः=विवाहोत्सवयज्ञेषुत्वंतरामृतसूतके पूर्वसंकल्पितार्थेयुनदोयःपरिकीर्तितः = अर्थात्-विवाह या और किसी बड़े उत्सव या यज्ञोंमें उमवरके अंतरमें जनन या सरणा का सूतक उत्पन्न होय तो पहिले संकल्पित या सिद्ध क्रिये पदार्थों में सूतक दोष नहीं लगता = इसी वार्तापर षट्त्रिंशन्मत से औरभी कुछ विवेचयता दार्ढ्यं गृहं = यथा = विवाहोत्सवयज्ञेषुत्वंतरामृतसूतके परैरन्नं प्रदातव्यं भोक्तव्यंचद्विजोत्तमैः भुंजानेयुतुविप्रेषुत्वंतरामृतसूतके अन्यगोहोदकाचांताः सर्वेते गुचयः स्मृताः

अथ आशौचसूतकयोर्दिनावधिकथनेद्वितीयः परिच्छेदः २ ॥



इसदूसरे परिच्छेद में जन्म और मरणा दोनोंके सूतकों
मध्ये सबतरहकी अवधि कही जायँगी ॥

(जननमरणयोर्ज्ञाते श्रवणे वा सूतक नियमाः)

त्रिरात्रं दशरात्रं वाशावमाशौचमिष्यते ।। ऊनद्विवर्षउभयोःसूतकंमातुरेवहि ॥ १८ ॥

अक्षरार्थः—तीनरात्र या दशरात्र शवका आशौच इच्छा करतेहैं । दो वर्षसे जने
में (माता पिता) दोनोंको हि यथा सूतक साताकोही ॥ १८ ॥

अभिप्रायः—इस वचन के अर्थ कई तरहसे लगते हैं इसी हेतु बहुत गूढ अन्वय
लगाताहै तिससे खूब ध्यानदेकर शौचौ-शवनास मुर्देका. तिसके निमित्तको आशौच
सूतक शावकहाताहै. दूसरा पद सूतक जो उत्तरार्द्ध में आया तिससे केवल जन्मसूतक
भी समझा जाता और बिरले समय जन्म मरणा दोनोंके सूतक एकही पदमे समुझे
जातेहैं जहाँ जैसा प्रयोजन हो वही अर्थ लगाया जाताहै. यहाँ पर योगीश्वर कहितेहैं
कि—तीनरात्र या दशरात्र मुर्देका सूतक मानने को सन्नादि ऋषीश्वर इच्छा करते ह
सामान्य सभी शौचियोंके निमित्तमें इस भेदसे कि सातपीठितक सपिण्डानांगदशरात्र
साने और उनसे उपरालू आठवीं पीठीसे ले चौदह के भीतर जो समानोदक शौ शौ
केवल तीनरात्रिसाने (यहाँपर मुर्दा कहिनेसे पूरावृत्तक समझना कि तिसको आशौच
का दाह दिया गयाहो. क्योंकि उत्तरार्ध में गाड़ने शौर्य छोटी अवस्था का वृत्तान्त
जुदा कहेंगे—और भी यह व्यवस्था सिर्फ ऐसे मुर्दाको समझनी जो देहांतर में सग
सुना गयाहो. क्योंकि प्रत्यक्ष में सजीव सरेदेखे हुये की व्यवस्था सबह प्रयोग्य नक
वर्तान होचुकी) और विशेष वयौरा इसीका अविद्वोक्ति में समझना यह सब पूर्वार्ध
का अभिप्राय कहागया । पूर्वार्धमें सपिण्डोंको दण्डित बनायेगये तो सामान्यभाव
में सभी सपिण्ड समझेगये तिसने उत्तरार्धमें बिरले सभीकी सपिण्डोंका जुदा नियम
दगति है कि—दो वर्षसे जने बालक मरनेमें (उभयोर्ज्ञातौपि) सामान्यता दोनों के

दशरात्रिका सूतक लगै किन्तु सभी सपिण्डों को नहीं क्योंकि अन्य सपिण्डोंको सूतक आगे तेईसके मूलश्लोकसे कहेंगे (नूतनेमातुरेवहि) सूतकमें अर्थात् पुत्रजन्म होतेही अगउत्पन्न होय तहां केवल साताही को दशरात्रि सूतक लगै पिता को नहीं क्योंकि पिताके निमित्त आगे दोनके श्लोक से जुदा नियम कहेंगे- अथवा (सूतक मातुरेवहि) ऐसा पाठहोने से यह केवल दृष्टांत है कि हि यथा जैसे सूतक नाम जनन कालका अस्पृश्य लक्षणा केवल साताको होता है कि उसको न छूना चाहिये तैसेही दो त्रयमें जने वालक मरने में साता पिता दोनोंको अस्पृश्य रूपी सूतक लगता है कि दोनोंको न छूना चाहिये अन्य सपिण्डोंको छूनेका कुछ दोष नहीं (जब कि सपिण्डों को छूने मध्य दोषका नियंत्र क्रिया तो सपिण्डोंसे उपराल कसानोदक अवप्रय ही स्पर्श करने योग्य ठाहरे) इन बातोंके विमोचन्योरे अधिकोक्ति में गतभना जहां अनेक स्मृतियों के वचन दियेजायेंगे- परन्तु छोटे बच्चोंके सूतक नियम आगे तेईसके मूल श्लोक से देखना (इन आगौच के प्रकषणा में जहां कहीं केवल रात्रि या दिन कहाजाय तहां रात्रि दिन दोनों निवर्तक मसभते ॥ १८ ॥

१८ अधिकोक्तिः--योगीचर के मूलश्लोक में जैसा भाव--गन्धसे शरणागौच ससम्भ्राजाता है तैसा उत्तरार्ध में सूतकगन्धसे जनन गौचभी शरणासम्भ्राजाता है सो इन दोनों पदोंसे योगीचरने जनन शरणा दोनोंके आगौच सूतक गन्धही प्रतीकसे सामर्थ्या क्रिये हैं कि तीन या दश रात्र की व्यवस्था जो कुछ अभिप्राय से निस्वच्छके सो सब जन्म मरणा दोनोंके निमित्त यथा संभव मसभ लेनी = यह दोनों जब कभी कोई मर भी उत्पन्न होकर विदितहो जाय तभी सूतक लगता है अर्थात् उत्पन्न होनेपरभी जन्म किसीको मालूम न होसके तिमको सूतक नहीं लगता यह तात्पर्यहै इमो नित्ये अगले वचनहैं=यथा=निर्दशंजातिमरणां अत्रवापुत्रस्यजन्मच्चत्यादिनिर्दशंजात यथा विगतं तुविदेशस्यंशृणुयाद्योह्यनिर्दशं यच्छेदंशरात्रस्यनात्रदेवागौचर्भेदित्यादिवाक्यारंभ सामर्थ्येचि • उत्पत्तिमात्रापेक्षदेत्यागौचस्यदशाहाद्यागौचकालनियमागततत्प्रभृत कारव=अवति—ये दृष्टांत हैं कि जैसे निर्दश नाम निर्वास गये वगैरित जिनके ऐसा जो जातिका मरत हो या देताही एवका जन्महो ताहि मृतिदेः इत्यादि वचन का लिंग स्वरूप देखतेसे=तयैव = हुनग दृष्टांतहै कि विदेशमें निकटहूयेको यदि कोई अनिर्दश मरामुने अर्थात् मृतको दशदिन पूरे न बीतेहो बीचही में मृत तहां जो दश रात्रका शेषकाल रहाने उन्हीं दिनोंतक अगुडहैं • इत्यादिवाक्य आरंभकी सामर्थ्य तैसी सर्वथा निश्चित होताहै कि सूतक उत्पन्न होते मरकी अपेक्षा में आगौच के

दशादिन आदि दशाभिेद से जो नियम कहिचुके सो सब जन्म या सर्रा होनेके समय से आवश्यकहै—इलीहेतुसे अनिर्दशसर्रा सुननेसे कि जिसको दशादिवस न दीतेहों तो भोग्य दिवसोंका सूतक सिद्धहोता है तिसते यह तात्पर्य निकसताहै कि भोग्य काल से लेकर परा सूतक न आरंभ करै. इस कारणासे सर्रा या जन्म जब सुननेसे आवै तभी से सुनने वालेके निकट सर्रा या जन्म हुआ समझा जाय और उतने दिनतक साना जाय जैसा योगीश्वर के सुलप्रलोक पर अभिप्राय लिखागयाहै कि तीन रात्र या दश रात्र सप्तानोदक सपिराडके सेदसे = इसीके प्रसारासे यह वचन है = यथा = दशा हंशावसाशौचंसपिराडेयुविधीयते । जननेप्येवसेवस्यान्निपुरांशुद्विसिच्छतात् ॥ जन्म न्येकोदकानांतुत्रिरात्राच्छुद्विरिष्यते । शवस्पृशोविशुद्ध्यंतिःश्रहातुदकदायिनः = अर्थात्—सुनेहुये सुर्देका आशौच दशादिन सपिराडों से क्रिया जाताहै. ऐसेही जन्म सूतकसे दशादिन क्रियाजाय जो अच्छी शुद्धिचाहते हों. और जन्म सूतकसे सप्तानोदक सप्तानोदकों की शुद्धि तीनरात्रि से कही जातीहै. और उदकदायी नप्तानोदक प्रत्यक्ष सुर्दाको स्पर्श करके भी तीनिही दिनसे शुद्धहोजाते हैं = और भी स्मृत्यंतर वचन जो अशोक्तहै कि = चतुर्थेदशरात्रंस्यात्यरात्रिणाःपुंसिपंचमे । यथेचतुरहाच्छुद्विःसप्तमेत्त्र हरेवतु = अर्थात्—चौथी पीढीतक दशरात्रिका सूतकहोय पांचवींतक छेरात्रि गानी जाय और छठींपीढीसे चारहीदिनसे शुद्धिहोती सातवें पुरुषसे गकही दिन मानाजाय सो यह गाथा की रीति से कहा नियम आदर करने योग्य नहीं है. यद्यपि यह भी कहि सकते हैं कि गाथा नहीं एक नियमहै तथापि जैसे विवाह में मनुपर्व मलय पशुका आलंभन करना एक धर्म ही कहा गयाहै पर वह लोकविद्वेषी धर्मज्ञान में वर्तवा नहीं क्रिया जाता है (अस्वर्यंलोकविद्वेष्यं धर्मसप्याचरेन्न) जैसा मनु का यह वचनहै कि जिस धर्मसे स्वर्ग न मिलसके या वह लोक में विद्वेष्य वदानेवाला नैसा धर्म भी नहीं आचरै—यहां सातवें सपिराड हसीपीको गदही दिनसूतक नियम बताया तो ऐसा नियम आदरकरने योग्य नहीं है-

को भी दश दिन का आशौच लगे ॥ ० ॥ औरभी सूतक में छूना न छूना कहा तिस
 का भी प्रसारा यह देवल का वचन है=यथा=स्वाशौचकालादिज्ञेयंस्पर्शनंचविभाग
 तः । शूद्रत्रिट्क्षत्रविप्राराणां यथाशास्त्रंप्रचोदितम् = अर्थात्—शूद्र वैश्य क्षत्री ब्राह्मणा
 इनके जैसे सूतक शास्त्रमें आज्ञा किये गये हैं तैसे निज निज आशौच कालके तिहाड़े
 भागसे उपरांत अंगछूना समझो = देवल का यह वचनभी अनुपनीत मुर्देका नियम
 समझना जो यज्ञोपवीत होनेके भीतर मराहो और जनेऊहुये उस मृतक मध्ये समझ-
 ना जिसका पूरा सूतक बीति जाने पर सुनागया और दुवारा माना गया हो क्योंकि
 जनेऊवाले मृतकमध्ये देवलने जुदा वचन कहा है = यथा = दशाहादित्रिभागेनकृते
 संचयनेक्रमात्त्रास्यस्पर्शनमिच्छंतिवरानिनांतत्त्वदर्शनः॥ विचतुःपंचदशभिःस्पृश्यावर्गाः
 क्रमेणातु । भोज्यान्नोदशभिर्विप्रःशोयाद्वित्रियदुत्तरेः = अर्थात्—दशदिन आदि जिसवर्गों
 का जितना सूतक होता है तिसके क्रमसे तिहाड़े दिवस बीतने और अस्थिसंचय क-
 रनेपर सूतकियों का शरीर छूना कहा है तत्त्वदर्शी जनोंने. उसी का यह बयौरा है
 कि तीन.चार.पाँच.दश.ये वर्गों क्रमसे स्पर्श करने योग्य दिवस हैं—क्योंकि ब्राह्मण
 केदश दिनकी तिहाड़े तीन माने.क्षत्री के चारह दिनकी तिहाड़े चार हुये.वैश्यके पं-
 दह दिनकी तिहाड़े पाँच हुये.शूद्र के तीस दिनकी तिहाड़े दशदिन हुये. इसी प्रकार
 ब्राह्मण का अन्नभी दशदिन बीते बाद खाने योग्य और शोय वर्गों का दो तीन ये
 दिन उपराल बीति जानेपर समझना ॥ १८ ॥ दिवसमें मरे या रातमें तिसका दिवस
 गणना कवसे करनी यह विचार आगे २० की अतिक्रान्ति के अंतमें देखना ॥ ० ॥
 यद्यपि जन्म सूतक नररा के जायभी कृद्दिशुके पान्तु मसभत यथात स्वये ज्ञाती मां
 संदेह निवारणा पूर्वक अन्न कोवन जन्म सूतक वर्गान् करत है ॥ १८ ॥

(जनने चास्पृश्यत्वसूतकनियमाः)

आदि का जन्म होने के कारण से अर्थात् पुत्र रूप से आपही पहिले पुर्या जन्म लेते हैं तिसके संगल हेतुसे दान करने आदिका अधिकार नहीं सिद्ध सक्तता यह अधिकोक्ति में देखना ॥ १६ ॥

१६ अधिकोक्तिः—साता पिता के सूतक में कुछ भेद ऊपर कहागया तिसका व्योषा विशिष्टने स्पष्ट करके कहा है = यथा = नाशौचं विद्यते पुंसः संसर्गचेन्न गच्छति रजस्तत्रातुर्ज्येष्ठं तच्च पुंसि न विद्यते = अर्थात्—पुत्र्य को जन्मसूतक उत्र दशामें नहीं लगता जो सूतिका के संसर्ग तक नहीं पहुँचै क्योंकि उस घरमें रक्तका संसर्ग है सोई अशुचि ससक्तता वह रक्त पुरुष में नहीं होता = इसी हेतुसे पिता शीघ्रभी स्पर्श करने योग्य हो सकता है = यथाह संवर्तः = जातेपुत्रोपितुः स्नानं सचैलंतु विधीयते साता शुद्धे दशाहेतस्नानात्तु स्पर्शनं पितुः = अर्थात्—पुत्र पैदा होने में पिताको तत्रैतस्नान करना कहा है साता दशदिन में शुद्ध होगी और पिता को स्नान करने सेही छूने का दोष नहीं रहा = साताको दशदिन में शुद्ध होना कहा सो स्पर्श करनेआदि व्यवहारों मध्ये ससक्तता किंतु अदृष्टार्थ रूप कर्मकराने मध्ये जुदा नियम है = तदाहपैदीनतिः—सूतिकापुत्रवन्ती विशतिरात्रे राक्षसाणि कारयेत् तामेनन्ती जननी न = अर्थात्—पुत्र वाली सूतिका से बीस दिन बाद गृहस्थीके कास कराने और कन्या पैदा करनेवाली सेसहीना भरमें = जन्मसूतक में सपिंडों को न छूने योग्य दंग्य नहीं होता यह प्राग-रानेभी कहा है = यथा = सूतकेसूतिकाद्वयं संस्पर्शनं नित्यव्यते संस्पर्शसूतिकाया स्तुस्नानपेव विधीयते = अर्थात्—सूतकमें सूतिका के निवाय क्रिया और सपिण्ड का छूना निषेध नहीं है परंतु सूतिका स्त्रीको स्पर्श होजानेमें केव न स्नानकरना कहा है—
 १—उत्तरार्ध सूक्तश्लोक से पुत्रजन्मका दिवसनाइ निर्देय कहायातिसकानियम यह याज्ञवल्क्यस्मृतिमें कहा है = यथा = कुत्तारजन्मदिवसेदिष्टे कार्यं प्रतिग्रहः दिग्गयः ॥ १७ ॥

प/ होरी जो पहिले सरसा सूतक मध्ये शुद्धक्रिया का दिन दहिराहो. किंतु सूतिका नें दशादिन यद्यपि कई दिन पीछे पूरेहोये तथापि सूती शावशौच के साथ शुद्धहो-जायगी—यह सब नियम योगीश्वर के सलश्लोक से तुल्यात्मक है और (नसूतिः शावशोधिनी) यह वचन जो इसी अधिकोक्ति से लिखा गया तिसके भी समान है ॥ २० ॥ इति पूर्वार्ध श्लोकः ॥

(अब उत्तरार्ध श्लोक से उस प्रकार का सूतक बरान्त होरा जो गर्भके दिन पूरे हुये बिना गर्भ गिरजाय तहाँ कितना सूतक माना जाय—ऊपर तथा नीचेकी दोनों अधिकोक्तियों के नियम सभी बरोंको बराबर है कुछ भेद नहीं)

(गर्भस्त्राव सूतक नियमाः)

गर्भस्त्रावेमासतुल्यानिशाःशुद्धस्तुकारणम् २०

अर्थः—गर्भ गिरजाने में मासों के तुल्य रात्रियाँ शुद्धि का कारणा हैं—अभिप्राय इसका यहकि जितने सहीने का गर्भ होकर गिराहो उतनी संख्या से रात्रें किंतु उतने दिनका सूतक माना जाय तब शुद्धिका स्नान होय ॥ २० ॥

२० अधिकोक्तिः—गर्भस्त्राव होनेमें पुरुषोंको स्नान करने मात्र से उभी दिनशुद्धि होजाती है यह वृद्ध वशिष्ठने कहा है = यथा = गर्भस्त्रावेमासतुल्यारात्रयः स्त्रीणां स्नानमात्रमेवपुरुषस्य = अर्थात्—गर्भ गिरने में सहीनाओं के बराबर रात्रें शुद्ध होने को स्त्रियोंके निमित्त होतीहैं किंतु पुरुषको स्नान मात्र शुद्धि का हेतुहै ॥ स्त्रियोंकी शुद्धि योगीश्वर ने सहीनों के समान रात्रियोंसे कही—परंतु गौतमने (व्यहंच) यद्यप्य अपने किसी बचन में कहाहै कि तीन दिन सासान्य भाव से नियमात्मक ममभक्त लंने-इसपर सिताक्षरा का श्रीमद्विज्ञानेश्वराचार्य तर्कना दृढ करने हैं कि यह नियम तीन सहीनासे इधर गर्भ गिरने से उसभक्तना—क्योंकि—अगले सर्गके वाक्यमें यही नान्य र्थपाया जाताहै = यथाह सरीचिः =

व्यस्था कल्पित करलेनी पर विशेषकर देशाचार कुलाचार पर दृष्टिदेना पाण्डित्य का विश्वास है कि जो वचन जिस देश या जिस कुलकी परिपाटीसे तुल्य हो उसीको उस जगह पर स्वीकार करना ॥ ० ॥ जो गर्भ सातवें महीना से लेकर किसी महीना में जीवता जन्म लेकर तत्काल नरै या पेटही से सरा पैदाहोय तिसके लिये सपिण्ड लोग परा सूतक जो जन्म के निमित्त में दशदिन आदि होता है वही मानें कोंकि छे महीना से उपरांत जन्म होने या गर्भ गिरने में प्रसूति कहाती है यह अभी ऊपर लिखचुके हैं और भी अग्रोक्त वचन प्रसारण है—यथाहसरीचिः=जातमृतेमृतजातेवास पिण्डानां दशाहसिति=अतःसूतकेचेदोस्थानादाशौचंमृतकवदिति पारस्करवचनंच—अथार्ये (ओत्थानादासत्तिकाया उत्थानाद्दशाहसितियावत्सूतकवदिति शिशुपरम निमित्तोदकदानरहितमित्यर्थ इतिसिताक्षराकारः = अर्थात्—जन्म होकर सरने में या सरा जन्म होने में सपिण्डों को दश दिन सूतक ग्रह सरीचिने कहा=और=इसी से यदि सूतक वैही (शिशुमरजाय) तहाँ आउत्थानात् ओत्थान की अवधि से सूतकवत् आशौच कियाजाय यह पारस्कर का वचन है--यहाँ ओत्थान की अवधि जो कही तिसका यह तात्पर्य है कि सत्तिका स्त्रीका उत्थान अर्थात् बडा नहान जितने दिन में होता हो जैसे दश दिन प्रसिद्ध हैं सूतक उठि जाने के उमी दिन आशौच किया जाय सोभी सूतकवत् कियाजाय जैसा प्रसूतीका ज्ञान प्रमिद्ध है अर्थात् सूतक से बचा जो सरचुका तिसको जलदान आदि जरा जिया का आशौच न करे यही नियम वृहन्सग से स्पष्ट करते कहावया है=यथा=दशाहाभ्यंतरान्यप्रमातं तस्यवांदवेः ।

यथाह शंखः = अग्निहोत्रार्थस्नानोपरुपर्शनात्तत्कालंशौचं = अर्थात् — अग्निहोत्र कर्मको जखरत के लिये स्नान और आचमन करलेने से तत्कालही शौच होजाता है ॥ नाभि दर्शन किंतु नाल छेदन कर्म होजाने पीछे जो बच्चा मरै तो सपिराडों को परा सूतक जन्म निमित्त का होता है = तदाह जैमिनिः = यावन्नच्छिद्यतेनालंतावन्ना प्तोत्तिसूतकम् । छिन्नेनालेततःपश्चात्सूतकं तु विधीयते = अर्थात्—जब ताजीनाल नहीं काटाजाता तब ताजी सूतक नहीं लगता नाल कटे पीछे सूतक लया कहाता है ॥० ॥ अथात्र रजस्वलाप्रायश्चित्तं—यहाँसूतकियोंके प्रायश्चित्त प्रसंगसे रजस्वला स्त्रीओं के प्रायश्चित्त दर्शाते हैं = यथाहमनुः = रात्रिभित्तितुल्याभिर्गर्भप्रावेविशु द्यति । रजस्युपरतेसाध्वीस्नानेनस्त्रीरजस्वला = अर्थात्—जो गर्भपेटनेंजसिकरपीछे ब- हिजाय तो सहीनोंके तुल्य रात्रियोंसे वह स्त्री शुद्धहोतीहै दृष्टान्त जैसे प्रथम साममें गर्भ स्त्राव होजाय तो एक रात्रि दोते स्नान करै इत्यादि दूसरे तीसरे सालमें सगुक्ति लेना.परंतु जो रजस्वला मात्रहुईहो तो निपट रक्त सखिजाने पर देव कर्म आदि धर्मों के योग्यशुद्धिहोती है चाहें तितने अविक्त दिनोंके सुखे.किंतु छूने आदि व्यवहारों के योग्य तो चौथे दिनही रक्त सुखे दिना भी स्नान करके शुद्ध होजाती है- तदाह रुद्रमनुः--चतुर्थेऽहनि संशुद्धा भवतिव्यावहारिकी = तथा स्मृत्यंतरमपि - शुद्धाभर्तुश्चतुर्थेऽहनि स्नानेनस्त्रीरजस्वला देवेकर्मसापि = येचपंचमेऽहनिगुद्यति = अर्थात् चौथे दिन शुद्धहोती है व्यवहार साधके योग्य ऐसेही अन्यस्मृति का वचन है कि-रजावला स्त्री भर्तुके द्यवहार योग्य चौथे दिन स्नान करके शुद्ध होजाती है.पर देव कर्म औ पितर कर्मके योग्य पाँचवें दिन होतीहै (यहाँपाँचवाँदिन इसलिये नियत कियाहै किबहुधा स्त्रियोंका रक्त पाँचवें दिन निःशेष होजाता है अन्यथा प्रायश विरता स्त्रियों के दशादिनतक भी न सुखताहो इसीलिये ऊपरले मनुके वचन में रजस्युपरते सनस्या करीगईहै कि जब कभी रजकी निवृत्तिहो तभी देव कर्म के योग्य शुद्ध होगी)=जिस स्त्रीको रजोदर्शन के दिनसे लेकर नवह दिनोंके भीतर पितरके रजोदर्शन होय तो उसमेंअपवित्रता नहींमानी जायगी. जो नवह दिनोंके बाद अष्टमदशे दिवस होय तोएक दिनकी अशुद्धि जातीजायगी. उन्नीसवें दिनोंके दो दिनों शुद्ध होगी. इसके उपरालू बीसवें दिनको आदिलेकार लिजी दिनों होय तो तीस दिनों में शुद्ध होगी = तथाहादि. = रजस्वलायविरजातापुनरिदंरजस्वला अथावादिनादयोर्गुदित्वंनविद्यते गदोनविंशतेरवसिकाहंन्यत्ततोत्तर दिवसप्रभृत्युत्तमंशुद्धिर्भवतीअथ वेद = अथ ऊपरलिखचुके वहीदिखा = गदो नो नृत्तंनर वचन है कि चौदह दिनोंके

कर्मसे शुद्धि उसकी होय। सो कहिते हैं कि ज्वर के बेरामें स्नान तौ न होरा परन्तु चौथा दिन होनेमें कोई और स्त्री उस रजस्वला को स्पर्शकारके प्रतिनिविवने और नदीतडागमें बस्त्रों सहित उसके बदले गोता लगाकर दार दार उसको छूवती जाय और बीच बीच आचमन भी करती जाय ऐसे दशवारह बेर स्नान आचमन कारके छूने पीछे बस्त्रोंका त्याग करावै तौ वह रजस्वला भी शुद्ध होजायगी और शक्ति के अनुत्पन्न कुछ दानदेवै फिर पुरायाह वाचन कारके शुद्ध होती है ॥ यह प्रतिनिधि रूपी स्नान का प्रकार और भी एक रोगीमात्र के निमित्त से उसक्षता केवल रजस्वला को नहीं=क्योंकि= पाराशर से सभी रोगियों के निमित्त से कहा है= यथा= आनुरे स्नान उत्पन्ने दशकत्वो ह्यनातुरः स्नात्वा स्नात्वा स्पृशेदेनं ततः शुष्येत्स्नातुरः=अर्थात्--जहाँ किसी रोगी को स्नान की आवश्यकता खड़ी होजाय तब दूसरा कोई निरोग पुरुष स्नान कर कर के दशवार उसको छूवै तौ वह रोगी शुद्ध होजाय ॥ ० ॥ जहाँ कहीं रजस्वला या प्रसूती स्त्री की सौत होजाय तहाँ स्नान का प्रकार यह अग्रोक्त है = यथा = सति कायां मृतायां तु कयं कुर्वंति याज्ञिकाः क्षुम्भे सलिलमादाय पंचगव्यं तत्रैव च पुरायैर्भिर्भगिभ्यः व्यापोवाचा शुद्धिं लभेत्ततः तेनैव स्नापयित्वा तु वाहं कुर्याद्यथाविधि=रजस्वलायास्तु पंचभिः स्नापयित्वा तु गव्यैः प्रैतारं रजस्वलासु बस्त्रांतरा गृतांशुत्वा वाहयैर्द्विपर्यंकरं अर्थात्--प्रसूती स्त्री सरजाने में याज्ञिक लोग दौमे करते हैं उन प्रश्नका यह उत्तर है कि सही के घड़े में जल लेकर तथा पंचगव्य लेकर पवित्र ऋचाओं में जल आभि मंडित कारके वचन से शुद्धि प्राप्त करै तिस पीछे उसी जल में मुँद को स्नान करायके जैसी विधि हो तैसे दाह करै = रजस्वला का यह दिवान है कि = सराह प्रेता राजस्वला को पंचगव्यों से स्नान कारावके दूसरे सूखे बस्त्र में लपेटिके विधिपर्यंका दाह कर्य करै ॥ ०

उसी दिनमें लेकर तीन या दश या जितने दिन कहेहों सो गिनिलेने एकयह सामान्य कल्प कहा। एवं जो आधीरातिके पहिले कुछमरणा आदि हुआहो तौभी उसीपहिले दिवस को लेकर गिनतो करनी क्योंकि सूतक आदि कामों में आधीरात तक उसी दिन की अर्वाधि मानो जाती है (इसी से यह तात्पर्य स्वतः सिद्ध होगया कि जो आधी के उपरांत मृत्यु या जन्म या रजो दर्शन हुआहो तौ वह आधीरात दूसरे दिन के साथ समझनी और उसके लिये आगामी आधादिन भी दुपहर तक उसी रात्रिके साथ समझना दूसरा कल्प इसी नियम से माना जासक्ता है जिसकी इच्छा वा देश कुलकी रीतिहो तौ वह उसी कल्प को मानो। इसीलिये (यस्याहस्तस्यशार्वाणी) यह प्लोकों में कहागया कि जिस राति का दिन हो उसी दिन की राति समझनी या जिसदेशमें जैसा दिन मानाजाताहो तौ उसीदिनकेअनुसार उसकीशार्वाणीभी समझनी) तीसरा कल्प यह भी है कि रात्रिके तीन भाग मानिके दो भाग तौ बीते दिनके साथ समझने और तीसरा भाग जेय रात्रि को आगामी दिन के साथ समझना रजोदर्शन और सूतक में एक कल्प यह भी है कि जहाँ तक सूर्यउदय न हुये हों सामान्य भाव से रात्रि भर में किसी समय मरणा या रजोदर्शन या प्रसूत हुआ हो तौ पहिलेवाही दिन मानना किन्तु आगामी का प्रयोजन इसमें नहीं है—इन सब कल्पों में कल्पों में जिस देश की जैसी परिपाटी हो तैसा कल्प स्वीकार करना यह सिद्धांत है ॥ ० ॥ अब यह नियम करना शेष रहा कि मरणा के दिन में अर्वाधलेनी या दाह के दिन में सो कहिते हैं कि जो आहिताग्नि अग्निहोवी मरा हो तौ दाह आदि संस्कार के दिनमें अर्वाधलेनी और अनाहिताग्नि जो अग्निहोवी कांट मराहो तौ सो के दिन में अर्वाधि माननी परंतु अस्थिसंचय कर्म दोनों का दाहके दिनमें गिनाजाय सो यह भेद आगाम ने कहाहै = यथा = अग्निहोवीमरणादिः संस्कारकर्मणा गुह्यमच्यतदाहान्मृताहस्तुयथातिथिः = अर्थात्—अग्निमान का मृत के दिनमें गुह्यका दिवस लियाजाय और अग्निमान का संस्कार कर्मके दिन में और संचयन कर्म दाहके दिन से दोनोंका और सरलेका दिन क्षयाह जो तिथि हो उसके अलंकृत समझना ॥ उक्त वचन में अग्निहोवी का सूतक मानना जो दाह कर्म के दोने बाद कहा तिममें यह तात्पर्यभी उत्पन्नभया कि दिनका आहिताग्नि पिता कर्तों देहांतामें से तौपशारिकोंको पत्तन दिवान मरी संस्कार करनेमें पहिले मृग्यापदन आदि कर्मों का नियम नहीं है—तथाचपैतौरमि = अग्निहोवीमरणादिः मरणादिहोव्यातिथ्युदाहारादिमरणादि आदिदेवमृतेमति = अर्थात्—इजानी लोगों में अग्नि मानका मरणाके दिनमें

तिमका भी यह नियम नहीं है) किन्तु युद्ध में जो सारे गये तिनके लिये एक दिन का सूतक लिखा है = यथा = ब्राह्मणार्थविपन्नानां योयितांगो ग्रहेषु च आहवेषितानां च यद्ग्रात्रसर्गोचकस = अर्थात्—ब्राह्मणों की रक्षा आदि उपकार करते हुये जो किसी प्रकार की अपदृष्ट्यु से मरे हों एवं स्त्रियों की रक्षा करते जो मरे हों या राजके अनुग्रह में अर्थात् राजकी रक्षा या चिकित्सा आदि उपकार करने में या गोग्रह नाम गऊ के बाँधने छोड़ने आदि साधारण काम करते हुये उसके छारामरे हों या आहव नाम युद्ध में सारे गये इन सबका एक दिन रातिकी सूतक होना चाहिये किन्तु मद्यःशौच नहीं—तथापि यह नियम केवल उन युद्ध वालों को सम्भूतना जो युद्ध में घायल होकर तस्का तन मरे हों किन्तु कालांतर में प्राण छोड़े हों—क्योंकि—रसाभूमि पर प्राण छोड़नेवाले की मृत्यु भी यज्ञसमान होती है तिससे मनुने उसको मद्यःशौचभागी कहा बरन विशेष क्रिया कर्मकी आवश्यकता भी उसके लिये नहीं रखी = यथाह मनुः = उग्रतैराहवे मद्यःसद्यमं हतस्य च मद्यःसंतियुने यज्ञस्तथा शौचमिति स्थितिः— अर्थात्—संग्राम की भूमि पर उग्रत हुये शस्त्रोंसे मरी वरमं जो मरा हो तिमका यज्ञउसी समय खड़ा होता और उर्ध्वप्रकार मद्यःशौच भी हो जाता है यही मर्यादा इसकी नियत है—अर्थात् जेमे थीर पुरुषों का ब्रह्मभोज रूपी यज्ञ तत्काल किया जाता है सूतक पातकों का धिवा प्रममं नहीं क्योंकि उसकी स्वर्गयाया का उन्नय रूपी यज्ञ माना जाता है

र्थात्—यदि कोई सपिंड कहीं ऐसे विदेशमें बैठा हो जो मरे या पैदा हुयेकी खबरपहिले रोज न सुनिसके किन्तु कई दिन पीछे सुने तो दश दिन आदि सूतकों का जितना काल शेषरहाहो उसीको व्रिताकर शुद्धिहोगी • और जिसने सूतक पूरा होजाने बाद सुनिपायाहो वह सुनते सार जलदान करके पवित्र होगा (परंतु जलदान केवल प्रेत को होताहै तिससे यह पिछला नियम प्रेतही के निमित्त में समझना कि स्नान करके जलदान करे अन्यथा जो जन्मका सूतक पूराहोजाने बाद सुनाहो तो जलदानके अभावसे स्नानकी भी जरूरत नहींरही यह भेद अविक्रान्ति में देखना ॥ २१ ॥

२१ अधिक्रान्तिः—मनुराह—निर्देशंजातिसरसांश्रुत्वापुत्रस्यजन्मचासवासाजल-
साप्लुत्यशुद्धोभवतिमानवः=अर्थात्—दशदिन बीतजाने बाद जातिका मरना सुनिके
या पुत्रका जन्म सुनिके कपडों सहित जलमें स्नान करिके मनुष्य शुद्ध होता है ॥ यो-
गीश्वर के इसी उत्तरार्द्धमूल प्रलोक में पहिला पाद जन्म मरणा दोनों के नियम मध्ये
समझना और पिछला केवल मरणा के सूतक मध्ये समझना क्योंकि जलदान करके
शुद्धिहोजाना कहा सो जलदान केवल प्रेतके निमित्त में होताहै तो यह तात्पर्य नि-
कसा कि जन्म का सूतक पूराहोजाने के बाद जो विदेश में बैठा हुआ सपिंड सुने तो
उसको सूतक नहीं रहा समझना किन्तु स्नानमात्र भी न करना चाहिये—परंतु जो उम
जन्म लेनेवाले पुत्रके पिताने विदेशमें रहते सूतक पूरा होजाने बाद सुना हो तो पिता
को उस दशासे भी स्नानकरके शुद्धि होतीहै जैसा अनन्तराक्त मनुके वचनमें निव्यपृक्त
है सो देखी कि दशदिनबीते पुत्रका जन्म सुनिके स्नान करे—और—पुत्र शब्द कहने
से यह भी सिद्धांत ठहरा कि जिसका पुत्र नहीं गेना कोई सपिंड जो दशदिन बीते
बाद जन्म सुने तो उसको स्नान की आवश्यकता नहींरही—क्योंकि—जो गेना सिद्धांत न
होता तो मनुके वचनमें पाठभी (निर्देशंजातिसरसांश्रुत्वाजन्मचानिर्देशम्, गेमा ज्ञाना मो
नहीं है—और उसी सिद्धांत के अनूकूल चारो देवताका वचन है—यथा—नागार्जुन प्रम
दाशीचेत्पतीतेयदिनेष्वपि ।

और जो श्रेय नहीं रहा किन्तु सूतक पूरा हो जाने बाद सुनाहो तो नभी वरोंको समान भाव तीनदिन का सूतक चाहिये और जो एक वर्ष पूरा हो जाने बाद विदेगम्य का मग्ना सुनाजाय तो सभी ब्राह्मणा आदि वरों का एकही नियम है कि सुनते मार स्नान पूर्वक जलदेकर शुद्ध होजायेंगे—और इसका भी प्रमाण अप्रोक्त मनुका वचन है यथाह=संवत्सरेव्यतीतेतुरष्ट्वैवापोविशुध्यति=अर्थात्=संवत्सर बीतिजाने पर सुनने में जल स्पर्शाही करके शुद्ध होजाता है=तो यह पाटान्तर में तीन दिन का नियम दश दिन के बाद तीन महीना के भीतर खबर पाने में समुभक्ता और पूर्वोक्त मूल पाटमें कहाभया मद्यःगौच उस दशामें वर्तवा करना जो नौमहीना बीतिजाने बाद चर्य भीतर कभी खबर मिली होती जल दानमात्र से तत्काल शुद्ध होजायगी = और जो अप्रोक्त वचन है = यथाह वशिष्ठः = ऊर्ध्वदशाहाच्छत्वैकरात्रं = अर्थात् दश दिन उपरांत खबर मिलने में एक रात्रिका सूतक होय—तो यह एकदिनका उस दशामें मानना जो छैमास के उपरांत नौमासके भीतर खबर मिले = गक यह गौ- तमका वचनहै = यथा = श्रुत्वाचोर्ध्वदशम्याःपक्षिणी = अर्थात् दशईरातिके उप- रांत सुनिके गक पक्षिणी नामक रातिमात्रका सूतक होय किन्तु जिसकेपात्र गक दिन पहिला और गक पिच्छना भी मिनायाजाय जो पक्षिणी कहाती है तो इस हिमाव से दश ग्यारह या बारह प्रहरका सूतक दहना सो यह नियम उग दशामें समुभक्ता जो तीन महीना के उपरांत छे महीनाके भीतर कभी खबर मिले ॥ इतमव

दाम्नुयात्=तथाचशातातपः= एकादशाहाद्वाजन्वोवैश्योद्वादशभिस्तथा शुद्धोविंशति
 रात्रेराशुद्धतप्तसूतके=अर्थात्—जो अपने कर्मधर्म में निरत हो ऐसा क्षत्री भी दश
 दिनमें शुद्धहोच वैसाही वैश्य वारह दिनमें शुद्धिपावै यह परागर्ने कहा=तैसाही
 शातातप कहतेहैं कि=सररा याजन्मके होनेमें ग्यारहदिनसे क्षत्री और दारहदिनोंसे
 वैश्य और शूद्र बीसदिन से शुद्धहोय=दशियते और भी अदिदिन बताये हैं=यथा=
 पंचदशारात्रेसाराजन्वोविंशतिरात्रेरावैश्यः=अर्थात्—पंद्रह रात्रियों से क्षत्री और बीस
 रात्रियोंसे वैश्यका आशौच होय=अंगिराने सभी वर्गोंको वराजर दशदिनका सूतक
 बताया सो भी शातातपके कथनका पता देकर=यथा = सर्वेयामेववराजानामुत्तमोत्तम
 तकेतया दशाहाच्छुद्धिरेतेवासिनिशातातपोव्रवीत् = अर्थात्—जन्मतयासररा से इन
 सभी वर्गोंका (कि जितकासूतकजुदाजुदा वरान्त होचुका) उन्हीं सबकी सामान्य
 भाव दशदिनसे शुद्धि होतीहै यह शातातपकेकहाया ॥ इनभांतिसे जनेक जंचेनीचे
 गौचके कल्पदर्शित हुयेहैं तिनका संसारसे अच्छाप्रचार न होनेसे व्यवस्था कायपत
 करना कुछआवश्यक नहींहै इसलिये व्यवस्थाका रूप डोलनहीं दगतिहै यह विज्ञा-
 नेहरनेकहा—और भावार्थ इसका यहीहै कि जिस म्यलमें जेका प्रचारहो तोपापमात
 लेता ॥ ० ॥जहाँ कहीं ब्राह्मरा आदि किसी वर्गके क्षत्री आदि नपिठ हों तिनका
 शौच नियम हारीत आदि स्मृतियों के अनुसार होनाचाहिये क्योंकि उन्हीं में यत्
 निराय अच्चा कियाहै = यथा हारीतः = दशाहाच्छुद्ध्यर्तावर्षो जन्मदार्तावर्षोनि
 य यदभिस्त्रिभिरथैकेतस्रविदशद्रयोतिय=

के निमित्त में ससम्भना जिनको अग्निदाह न किया जाय—क्योंकि वैद्याशस्त्र में यही तात्पर्य स्पष्ट कहा गया है = यथा = अदंतजातेबालेप्रेतेसद्यस्वनास्थारित संस्कारोत्पत्तिक्रिया = अर्थात्—दांत जसे बिना बालक प्रेतहोजाने में लयही शौच किया जाय न इसका अग्नि संस्कार होवे न जलदान किया जाय = और जो दांतजसे बिना मरे को अग्निदाह किसी कारणा से किया जाय तिसके लिये एक दिन रात्रि का सूतक अगिले चौबीस के मूल प्लोक में देखो उसीका प्रसारा भी अशोक्त यम का वचन है (इतिविज्ञानेश्वरः) = यथाह यमः = अदंतजातितनये शिशोर्गर्भच्युतेतथा सपिराडान्तुसर्वेषामहोरात्रमशौचकम् = अर्थात्—बिना दांतोंका पुत्र करने में तथा सरावच्चा गर्भ से सरजाने में भी सभी सपिराडों को एक दिन रात्रिका अशौच लगता है = और भी नासकरणा से पहिले सरजानेमें अदृश्यभास्व मद्यः शौच कानियम गंध-स्मृति में नियत है क्योंकि उसको अग्निदाह कभी नहीं होता = यथा = प्राङ्नाम करणात्सद्यःशौचं) : (चूडाकर्मचौटीधारणा प्रथम वर्य वा तृतीय वर्य में भी होता है तथाचवचनं=चूडाकर्मद्विजातीनांसर्वेषामेवधर्मतःप्रथमेवैतृतीयेवाकर्तव्य अतिचौदना त=अर्थात्—चूडाकर्म सभी द्विजाती लोगों का निज धर्मके अनुसार पहिले वर्य में या तीसरे में करना चाहिये श्रुतिकी आज्ञासे) तो इस नियमसे यह व्यवस्था मिलती है कि दांत जसने से उपरांत पहिले वर्य भीतर जबतक चूडाकर्म न हुआ हो तब तक सरजानेमें एकदिन रात्रिका सूतक साना जाय तहाँदृमरायण विचार भी कर्तव्य है किजिनके तीतवर्यमें चूडाकर्महोताहो तिनकेदांतजामि आनेपर जो तीतवर्य भीतरतक चूडाकर्म हुये बिना सृत्यु होजाय तौभी एकाही दिनका सूतक रहेगा = इमी व्यवस्था का प्रसारा भी अशोक्त विष्णु का वचन है = यथा = दन्तजानेपश्चकनचूटे २नेगद्विगा शुद्धिः = अर्थात्—दांत जसने पर भी चौटी धरे बिना सरजाने में एक दिन रात्रि में शुद्धि होती है ॥ ० ॥ जिसका मुंडन और चूडाकर्म होचुका हो केसा दाहक मरेका होनेसे पहिले कभी सरजाय तिसका सूतक तीन दिन होना है क्योंकि मरेसे दाहकों को अग्निदाह भी अदृश्य किया जाताहै यह विचार भी पहिले दृश्य अग्निदाह में लौगाति के वचनसे देखी ॥ और जो अशोक्त सपु द्य वचन में वि = चूडाकर्म चूडानामशुद्धिर्नेशिकीरुता । निहत्तचूडकानांतु सपिराडहृदिगच्छते = अर्थात् बिना चौटी धरे सपुष्योंके करने में एक दिन रात्रिका कर्तव्य नहीं है जोर सपिराड चूडाकर्म से निपटारा होचुका तिनके करनेमें तीन दिन रात्रिके शुद्धि करनीपैगी । इस वचन का भी वही तात्पर्यहै जो कभी सरजाने कदा कदा और जो दाहकों को

पीठे अशुद्धतारूपी अथ सूतक तीन दिन रोकै • यह स्पष्ट प्रसारा है तिससे कश्यप के वचन में भी यही तात्पर्य समुभना ॥ सर्ववचनानां सारव्यवस्था—ऊर्ध्वोक्त सभी वचनोंके सारसे यह अनुक्रम सिद्ध होता है कि नासकरणा दसूटनि दट्टौन होने से पहिले सरै तिसका सद्यः शौच उसी समय ज्ञान चाहिये • नासकरणा होजाने से उपरांत दांत जसने से पहिले सरै तिसका एक दिन राति का सूतक मानै सो उन दशा में कि जो इसको अग्निदाह किया गया हो अन्यथा अग्नि संस्कार के न करने में इस का भी सद्यः शौच करना चाहिये • जिसके दांतभी जसिचुके और कुलजी परिपाटी से प्रथम वर्षसे चूडाकर्म होताहो तिसकर्म के हुये बिना मरजाय तो एक दिन राति का सूतक माना जाय • दांत जसने और पहिला दर्य पूरा होजाने से चूडाकर्म भी हो चुकाहो तिसको तीन वर्षके भीतर मरजाने में तीनदिन रात्रि का सूतक माना जाय परंतु जिसका चूडाकर्म न हुआहो तिसको तीनवर्ष भीतर भी एकही दिनका सूतक जानौ • तीन वर्षकी अवस्था पूरी होजाने उपरांत भी जिसका चूडा न हुन्याहो तिस का भी तीनदिन सूतक है • जिसका यज्ञोपवीतभी होचुका तिसके मरने में पूरा दश दिन आदि सूतक जो जिस वर्याका आवश्यक है सो करना चाहिये ॥ २३ ॥

(स्त्रीणां वयोवस्थाविशेषेणापवादः)

अहस्त्वदन्तकन्यासुबालेपुत्रविगोपनम् २२ (उनिर्णय)

नाम अवस्था भेदसे जो नियम सूक्तमें कहीं लिखा गयाहो कि इतनी अवस्था तक इतना सूक्त मानना होगा जैसा तेईस मूलश्लोक पूर्वमें देखीं सो सब नियम सभी वर्णोंको तुल्यहै कुछ ऊंच नीच का भेद उसमें नहीं तथैव अतिक्रान्त नाम जो बहुत काल बीति जाने बाद सुना गया तिसके जो नियम कहीं इक्कीस की अधिकोक्ति आदि में लिखे गये सोभी सर्व वर्णों के सामान्य हैं—तो इन सभी वचनों के प्रमाणासे ऊपरली व्यवस्था भी सभी वर्णोंकी समझनी जो इसी अधिकोक्ति के प्रारंभ से वर्णान होती रही जैसे सोरहवें श्लोक वा उसी की अधिकोक्ति वाले नियम सभी वर्णों के सामान्यकहे थे या जैसा समानोक्तों का आगौच सभी वर्णों को सामान्य कहागया था या जैसे बीसवें मूल श्लोक के दोनों अक्षोंसे अधिकोक्ति पर्यंत के सब नियम सभी वर्णोंको सामान्य कहे गये थे या जैसे इक्कीसके उत्तरार्ध मूलश्लोक से अधिकोक्ति पर्यंत के सब नियम सभी वर्णोंको सामान्यकहे गये थे या जैसा आगे वर्णान होने वाले नियम गुरु आदि के सूक्त मध्ये सभी वर्णोंके सामान्य कहेजायेंगे तैसेही अवस्था भेद के सूक्त भी सभी वर्णोंको बराबरहोने योग्य हैं यह व्यवस्था ठीक हो चुकी ॥ ० ॥ तथापि ऋष्ययुग आदिके वचन इसके विरोधी देखि परतः यथा = क्षत्रेयडभिःकृतेचौलेवैश्वेनवभिरुच्यते उर्व्यदिवयचिह्नैनुहादगाताविधीयते—तथा—यत्रत्रिसंदिप्राणासाशीचंसप्रदृश्यतेतपगदेहादगातःयगतवसप्रयेप्रगयो रित्यादीनि अन्यान्यपि वचनानिसंति=अर्थात् -

भेद से व्यवस्था कल्पित कर लेनी चाहिये तौ कुछ विरोध नहीं है ॥ २४ ॥ मूलश्लोक में एक दिन कहा था उसी एक दिनका अतिदेश अगले श्लोक में भी कहेंगे ॥ २५ ॥

(पूर्व नियमस्यैवातिदेशः)

अनौरसेपुपुत्रेषुभार्यास्विन्यगतासुच २५ (इतिपूर्वार्धः)

अर्थः—अनौरस पुत्रोंमें और अन्यपुरुषगता भार्याओंमें भी वही एकदिन सूतक हो—अर्थात्—दत्तक क्षेत्रज आदि जो वारह पुत्र व्यवहार मर्यादा परिपाली में वर्तान हुये सो औरस नहीं अनौरस कहाते हैं तिनके मरनेमें या उनमें यथा संभव किसीका जन्महोनेमें वही एकदिन सूतकहै जो पहिले श्लोकमें कहिचुके तथैव अपनी भार्या जो और किसीके वैठिगई हों तिनके उस घर में मरनेसे भी मुख्य पतिको एक दिन सूतक है (परन्तु जो ऊंचजाति छोडि नीच जातिके बैठी हो तिसके मरने में यह नियम नहीं समझना किन्तु ऊंचे वर्ण या समानवर्णके बैठी हो उसीका यह नियम है) क्योंकि प्रतिलोम जातिके बैठनेवाली का सूतक पहिले पतिको नहीं लगता यह छठे मूलश्लोक में नियेध होचुका तहाँ देखो । भार्या अपने पति की सपिण्ड होती है उसका सूतक सपिण्डतासे पूरा दशदिनहोना योग्यथा सो औरके वैठिजातिसे एकही दिन का रहनाया जो समान या ऊंची जातिके बैठीहो—सोभी यह उस वर्णके मनुष्यका कि जिस भार्या से पहिले पति को किसी तरह का समागम शेषवना हो—पति के सिवाय किसी और पतिके भाई आदि सपिण्डको निपट सूतक सेकी शिष्टों का नहीं है अधिकोक्ति देखो ॥ २५ ॥

२५ अधिकोक्तिः = अवप्रजापतिः = अन्याथितेषुदारेषु परप्रत्नीयुतेषु च । गोत्रिणाः खानशुद्धांस्युच्चिराजैरौदतरिपता = अर्थात्—प्रजापतिका वचनहै कि जो और किसीके बैठी हुई स्त्रियाँ हैं तिनमें पराई पहलीके मरनेमें सोची लोभ ज्ञानमात्र से शूद्र होजायेंगे परन्तु उनके पिता तीन रात्रि से शुद्धहोंगे ॥ स्वरिणा आदि स्त्रियाँ जिसके घर बैठीहों तिसको उनके मरने में तीन दिन सूतक होताहै = यथाह विष्णाः = अनौरसेषुपुत्रेषुजातेषुचमृतेषु च । परपूर्वानुभार्यामुप्रसूतामृतामुचेतिविवाचमप्रकृतं अर्थात्—अनौरस पुत्रोंको मरने या जन्म होनेमें भी और भी पर पूर्वा भार्याओंके मरने या प्रसूत होनेमें भी तीन दिन सूतकहै जो पहिले किसी वचनमें कहा होना—यहांपर विष्णु ने उन्हींको तीन दिन कहे जिनको योगीश्वरने एक दिन कहा था तौ यह न्य वक्ष्यामि नगीप और विशेषके भेदने दोनों टीका मनुष्यकी कि जो विशेषसे मग विष्-

तो नदी तडारा आदि में स्नान दुबारा किये पीछे अग्नि को स्पर्श करे फिर घृतप्राशन करे तब शुद्ध होता है सो यह नियम भी अपनी समान जाति और अपना से ऊंची जातिका विषय समझना ॥ २६ ॥

२६ अधिकोक्तिः=मनुरप्याह = अनुगम्येच्छयाप्रेतंजातिसजातिभेवचस्नात्वा सचैलःस्पृष्ट्वाऽग्निं घृतंप्राप्रयविशुद्ध्यति = अर्थात्—अपनी इच्छा से जाति या गैर जातिके मुर्दा साथ जायके वस्त्रों सहित स्नान करके और अग्नि का स्पर्श करके घृत चाटके विशुद्ध होता है (अवज्ञातयोमात्सपिंडाः इतरेषांतुविहितत्वान्नदीयः इतिविज्ञानेपूर्वराचार्यः) अर्थात् श्रीमद्विज्ञानेश्वरने यहभी कहा है कि यहांपर जाति शब्दमे माता के सपिंड समझने जिनके साथ जानेका यह प्रायश्चित्त कहा क्योंकि औरों के साथ जानेका नियम कह चुकने से कुछ दोषही नहीं) समान और ऊंची जाति का नियम यह कहागया अब नीची जाति के मुर्दा साथ जाने सख्ये स्मृत्यंतर वचन कहतेहैं=यथाहपराशरः=प्रेतीभूतंतुयःशूद्रंब्राह्मणो ज्ञानदुर्बलः अनुगच्छेत्क्षीयमानंसवि शत्रेणाशुद्ध्यति विशत्रेतुततपूचीरौनदीं गत्वा समुद्रगालप्रागायाचनभ्रातंकत्वाघृतप्राप्रयवि शुद्ध्यति=अर्थात्—मरे हुये शूद्रको लेजातेसमय जो कोई ब्राह्मण ज्ञानसे हीनहोकर साथ चला जाय सो तीन दिन में शुद्ध होताहै तीन रात्रि बीतजाने बाद ऐसी नदी में जाकर गोता लगावे जो समुद्रमें जानिलीहो फिर एकसौ प्राणायाम किये पीछे घां पीकर शुद्ध होता है=यहां पर विज्ञानेश्वर कहते हैं (क्षत्रियानुगमनेत्वनहोराथ) कि क्षत्री मुर्दाके साथ जानेमें ब्राह्मणको एकदिन रातिभर आठप्रहर तक अशुद्धता रहती हैक्योंकिवशिष्टकायहअग्नि जावचनप्रसाराहै) यथा--मानुश्रुतिस्यस्त्रिभस्पर्ष्ट्वात्रिरात्रि माशौचं अस्त्रिभेत्वहोरात्रं शवानुगमनेचैवं=अर्थात्—मनुष्यका हाड गीला लुडकर तीन रात्रिकी अशुद्धता और सूखाहाड छूनेमें एक दिन रात्रि की अशुद्धता और मुर्दा के साथ जाने में भी इही प्रकार (यद्यपि वशिष्टके इस वचन में शरीर का प्रसंग नहीं आया है तथापि इस प्रायश्चित्त कारांड में विगने लेखपर इसकुछ तर्क उठाना नहीं चाहतेहैं कदाचित्त ऐसा संदिग्धम्यत्त आचार व्यवहार में होता तो स्वयंदिको विस्तार दियेविना न रहते विवेकी पुरुष आपही मन न कामकरे) पुनर्गर्पविज्ञाने वाः-वैश्या नुगमनेपुनःपक्षिणीतया क्षत्रियस्यान्तरं वैश्यानुगमने अहोरात्रमेकांतरं शूद्रानुगमनेपक्षिणीवैश्यस्यशूद्रानुगमने तत्काहद्वत्पूहनीयत्=अर्थात्—फिर भी विज्ञानेश्वर ने यह लिखाहै कि ब्राह्मण जो वैश्यने मुर्दा साथगननकरे तो पक्षिणीतानकगर्पिकीवाग्द प्रहर तक अशुद्धि सालीजाय तथा क्षत्री को भी अपने से अंतरं वर्ग में वैश्यके मुर्दा

वचन है उनमें हत शब्दसे निपटसरेहुयेकाही अर्थ है पर यहाँ नहीं और उन वचनों में युद्ध में सरेहुयों का नियम सामान्य भावसे कहिचुके हैं यहाँ उसका सम्बन्ध निपट कुछ नहीं है फिर गऊ ब्राह्मण के निमित्त से संग्राम को विशेषण देनेकी अपेक्षा कहाँ रही और भी उसीजघे मनुका वचन देखौ कि संग्राम के सरेहुये का सर्पराडों को मद्यःशौच और तत्काल यज्ञ करना लिखिचुके फिर उस प्रकारका प्रसंग यहाँ इतनी दूर दुबारा क्यों कर आसक्ता था अर्थात् यह प्रकारा उससे जुदा है इसका उस का परस्पर भी संबन्ध नहीं है—और विजलीसे मरजाना आदि अकाल मृत्युका निपटाग छठी अधिकोक्ति में होचुका तहाँ देखौ किंतु यहाँ विजली से घायलहुये जीवतेका प्रसंग है कि वह मृतक से भी स्नान करनेसे मअजूर है तिससे इनअत्रोक्त सब नियमों के प्रसंग में हत शब्दका अर्थही सौत न समझना—अथवा जो आधुनिक निर्माता के विचार में कुछ अंतर पायाजाय तौभी विवेक्ता लोग समायुक्त होकर दो अर्थों में जिसको चाहें तिसको मानें कुछ विशेष आग्रह से प्रयोजन अपने के नहीं है ॥ अब इसकी अधिकोक्ति देखौ ॥ २७ ॥

२७ अधिकोक्ति:— महीनाम धरती का पति राजा ऊपर कहाग्या तहाँ मही शब्दसे यद्यपि सकल पृथ्वी समझी जाती है तथापि समस्त भूगोल का एक राजा होना सम्भव नहीं है इसीलिये योगीश्वर के श्लोक में महीपतीनां या अनेक पतियों का बहुवचन कहा है तिससे एकएक देशके जुदे जुदे भूभण्डल निश्चित होते हैं कि जिस किसी देश के पालन में सवो आदि कोई राजा अभियेक से युक्त कियाग्या हो वही महीपति कहाता है महीपतियों को मृतक नहीं लातायह नियम केवल इसलिये है कि प्रजाकी रक्षा आदि विगेष बड़ेकाम जिनको रक्षाके सिवाय कोई और नहीं करसक्ता तिनका विध्वंस न होजाय तिससे यह भीमान्पर्य है कि जिस राजा को दानमान शृङ्गार व्यवहार दर्शन आदि जिन विगेष कामों के प्रभाव से अशौच मानने का अवकाश न हो वही राजा केवल उन्हीकामों मध्ये मृतक न माननेका अधिकारी होसक्ता है अन्यथा पंचमहायज्ञ आदिभी कामों मध्ये मृतक न मानना कोई नियम नहीं है इसका प्रमाण भी अप्रोक्तनुका वचन है—यथा राजोसहात्मिकेस्थाने मद्यःशौचंविधीयते प्रजानांपरिहर्य सामनंचायकारणान् अर्थात्—राजाको बहुत बड़े कार्य की आवश्यकता के लिये मद्यःशौच करानाता है दृष्टान्त जैसे प्रजाओं की विगेष रक्षा के लिये हममें मन भी बड़ा कारण है यहाँ आसन शब्दसे कई अर्थ लिये जानसकते जैसे मृत से आसन सिद्धासन गद्दी या

थित हैं इनसे कास करानेमें दोष नहीं • विज्ञानेश्वर कहते हैं कि इन दासादिकोंकी शुद्धि अशुद्धि सध्ये विशेष उपाय कोई नहीं है कि इनको छूनेसे कोई बचिस्कै क्योंकि बहुधा गृहस्थों के काम धन्धे इनके बिना होभी नहीं सकते हैं तिससे जिनकासोंमें छूनेका बचाउ निपट न होसक्ता हो उन्हींमें शुद्ध समझना सर्वत्र नहीं = इसी आशयपरिकी स्मृति का यह वचन है = यथा = सद्यःस्पृश्यो गर्भदासी भक्तदासस्य हाच्छुचिः -- तथा -- चिकित्सको यत्कुरुते तदन्येन न शक्यते तस्माच्चिकित्सकः स्पृशेत् शुद्धो भवति नित्यम् = अर्थात् गर्भदास गृहजात नासक जो घरकी दासीके उदरसे उत्पन्न हो • तिसको किसी कालमें जब सूतक लगा हो तो वह शीघ्रही छूने योग्य है क्योंकि वह भी घर सनुष्योंके अनु रूप है उसके छूने बिना बहुतेरे कामोंकी हानि होगी • परन्तु भक्तदास जो अन्नसावधाने के स्वीकारसे दास होता है वह तीनदिनमें शुद्ध होय (यहाँ सद्यः शौचके प्रसंगमें तीनदिन का कोई सिद्धांत विशेष नहीं पाया जाता है या यह प्रलोकही असंगत हो विवेकी पुरुष आपही समझें) तथा -- यह दूसरा वचन पूर्वोक्त दृष्टांत में प्रमाणित है कि वैद्य जिस चिकित्सा लक्षी दासको करता है वह और किसीसे नहीं किया जासक्ता तिससे वैद्य अपने कामके स्थलपर छूनेमें हमेशा शुद्ध साना जाता है ॥ २७ ॥

(अन्येषु सद्यः शौचाः पुरुषविशेषाः कर्मस्थलानि च सद्यः शुचीनि)

ऋत्विजादीक्षितानां च यज्ञियं कर्म कुर्वताम् । सत्स्वित्तियं चारिदातृ ब्रह्मविदां तथा २८

दाने विवाहे यज्ञे च संग्रामे देशे विप्रिये । आपद्यपि हि कृष्यां सद्यः शौचं विधीयते २९

अन्तरार्थः — यज्ञीय कर्म करते हुये ऋत्विजों तथा दीक्षितों को और गृही • व्रती • ब्रह्मचारी • दाता • ब्रह्मज्ञेया • २८ इनको भी सद्यः शौच कहा जाता है और दान में • विवाह में • यज्ञमें • संग्राममें • देशे विप्रिये होनेसे • कृष्यादि कर्म आर्यत्तिसमें भी सद्यः शौच होता है २८ २९

अभिप्रायः — ऋत्विज वे कि जो किसी यज्ञमें वरणा क्रिये गये हों • वेसिद्ध वे कि जो यज्ञ आदि किसी प्रकार की दीक्षाओं संस्कारमें संयुक्त हो रहे हों • और भी (यज्ञियं कर्म कुर्वतां) जे कोई पुण्य यज्ञ संबन्धी कार्य में गये हों कि जिनके बिना वह काम किसी और से होना संभव न हो तिसको भी समझलेना • तर्जो जो गण नास यज्ञमें लगा हो अर्थात् निरंतर प्रयोग की रीतिये अन्नदान करने में प्रवृत्त हो चारें निज अपनी ओरसे या किसी उचकर्ता ग्यायी ने नियुक्त किया हो तभी उक्तोंमें समझना जैसा भगडारा कर्मादेवा ना ग्यायी और उरी भगडारे का अभिप्राय • व्रती उनको समझना जो वृद्ध चाम्पायता आदि व्रतों में प्रवृत्त हों या स्नानक व्रत वालों के निमित्त जो प्रायश्चित्त होते हैं दिनमें सोनों गेनेकी चानुसृत्य आदि अनेक महाव्रतों

सूतकउत्पन्न होनेसे पहिले प्रारम्भ होचुके जिनके बीचमें सूतक होजाय तौ उनमें भी सद्यःशौच माना जायगा—और भी इन वचनों में अन्न शब्दक उपलक्ष्यसे किसी देवताकी प्रतिया या बागीचेकी प्रतिया या कोई बड़ा उत्सव उद्यापनआदि बड़ेबड़े सब काम सञ्चालने जो पहिलेसेआरंभ होचुके हों सो सूतक आपरने से रुक नहीं सकते किंतु सूतकमें नवीन आरंभ नहीं कियाजाता यह तात्पर्य ठीक है—इनका भी नियम अगिले वचनसे मिलता है—तथाह विष्णुः—नदेवप्रतियोत्सर्गाविवाहेयु नदेश विधये नापद्यपिचकट्यायासाशौचं—अर्थात्—विष्णु ऋषि कहिते हैं कि न तौ देव प्रतिया में सूतक लगता है न उत्सर्ग व्रतोद्यापन आदि में न विवाह में न देश की भोग हरि होनेमें न कष्टरूपी आपत्ति में सूतक है ॥ योगीश्वर ने लल्लुलोक में संग्राम के समय भी सद्यःशौच होना कहा उसके अनेक तात्पर्य हैं तिनमें एक यह भी है कि जैसा आचलायन आदि ऋषियों ने युद्धको सजिकर सेना चलती होनेसमय प्रास्थानिक शांतिरूपी होस जप यज्ञ करने कहेहैं तिनका भी करना सूतक आपरने से रुकता नहीं इसी प्रकार संग्राम के और भी कोई काम नहीं रुकते और यह तात्पर्य तौ प्रत्यक्ष है कि युद्ध करते समय जो किसीको सूतक आपरे तब उसके हेतुमें आवश्यक युद्ध रोका नहीं जाता इसीलिये सद्यः शौच होजाना कहागया ॥ लल्लुलोक में देशविप्लवके समय भी सूतक नहीं लगता कहा था—देशविप्लव गदा का नाम है जो अपने राजसे उद्विखडाहो या दूसरा राजा चण्डि आनेसे लुटिमार चोरही हो और जो विरहोत्क महासारी आदि देशमें अत्यंत भयावक रूपमें फैले हों तौ भी देशविप्लव कहाजाता है इनकी शांतिके उपाय करने योग्य कामोंको सूतक नहीं लगता है तिससे ऐसे कालों में सूतकीलोग भी प्रवृत्त होने कहे हें इसी लिये सद्यःशौच कहाते हैं ॥ देशविप्लव के बिना भी तीर्थ आदि द्विरे स्थलों पर सौजद होनेवालोंको सूतक नहीं सताता है यह अगिले वचनमें देवी = तदाह पैटीनमिः = विवाहदुर्गाय ज्युषात्रायांतीर्थकर्माणा नतवस्तकंतवत्कर्म यज्ञादिकार्येषु = अर्थात्—निवाह के स्थलपर जो किसी वराती ने अपने को सूतक लगा मुनि पाया हो यद्वा उमी वरात का वराती कोई सरजाय या दोनों ननदीयों में से किसीके घर तात्कालिक सौन होजाय तौ भी फरे परने नहीं रुक सकते हैं न किसीको उत जेवर उम भांग का सूतक है कि जैना कोरी दगानें होताहो—गवं दृगिन्याद राजभवनमें जेकोई आधिकारी कार्यकर्ता आदि आवश्यक राजकार्यों में लगेहों तिनको सूतक आपरने में भी उम जेवर कि जब तक वह जरूरी कार्य पूराहोय नहीं लगानकता है—गवं यज्ञ संतेदुय

अर्वाक्संचयनादस्थानांश्चहमेकाहमेववा = अर्थात्—ब्राह्मणा कुसूल धान्यक हो या कुंभीधान्यकहो या श्यहैहिक तीनदिनके निर्वाह योग्य अन्नवाला हो या अन्न-स्तनिक जो उसी दिन कमाकर खालेता हो दूसरे दिनके योग्य संचय न करमके (ऐसेचारविध गृहस्थी ब्राह्मणा के अभिप्रायसे ही उन्हीं मनुने अगिला नियमकहा है कि) सपिंडों में सरसा का सूतक दश दिन होताहै या अस्थि संचय कर्म से पहिले जितनेदिन होतेहों तभी तक सूतक या तीनदिन सूतक याएकदिन सूतक—इन्हीं चार प्रकारों को अनन्तरोक्त चारों गृहस्थों के निमित्तयथाक्रमसे समुभिलेना किंतु ये संकोच वाले छोटे आशौच कुछ सबके लिये नहींमानेजामकते हैं—औरभी स्मृत्यंतर में समानोदकों के निमित्त भी छोटे नियम के आशौच लिखे देखे हैं कि पक्षिणी राति के बारह प्रहर एक दिन के आठ प्रहर सद्यःशौच जो तत्काल शुद्ध हो जाय—परंतु सोचनाचाहिये कि जब समानोदकता के निमित्तपर लिखे गये तो ये नियम जीविका के संकोच मध्ये नहीं जोड़े जासकते हैं—और वहभी कि जोजो नियम अभी ऊपर लिख चुके सो उन्हीं ब्राह्मणों के निमित्त मेंसमझने कि जिनको प्रतिग्रह लेने बिना या भिक्षा आदि किसी और वृत्तके साधे बिना पीडा नहीं मिट सकती हो किंतु ऐसी पीडा मे रहित ब्राह्मणों को भी आशौच का संकोच करना योग्य नहीं है फिर अन्य वर्णों की क्या कथा ॥ ० ॥ तर्कविवादः—अब यहाँ से आगे एक तर्कना रूपी शंका से विवाद है तिसकी व्यवस्था नैयायिक परिपाटी के अनुसार खंडन मराडन से वरान करी जायगी=यथा=ननु • गकाहादवात्त्राणाःशुद्धे शौरिनवेदसमन्वितः श्यहात्केवलवेदस्तुविहीनोदशभिर्दिने रित्यादिस्मृत्यंतरवचनपर्या लोचनयाऽध्ययनज्ञानानुष्ठानयोगिना मेकाहादिनागुद्विरित्येवंकरुमानेप्यते-उच्यते- दशाहंशावसाशौचंसपिंडेयुर्विधीयते • इतिमानान्यप्राप्तदशाहवात्रपुष्कर मेवत्येका हाडब्राह्मणाःशुद्धेदिति विवायकंभवति=अर्थात् वादी तर्क उठाता है कि (ननु) क्या जी अन्य स्मृतियोंमें ऐसे वचन भी उपस्थित हैं कि ब्राह्मणा गकही दिन सूतक मता के शुद्ध होजाय जो अरिनहोत्र और वेदाध्ययन से संयुक्त हो • जो केवल वेदही संयुक्त हो सो तीन दिन से शुद्ध होय • जो दोनोंमें विहीन हो सो दश दिनों में शुद्ध होय • इत्यादि अनेक वचनों की पर्यालोचना करने से अध्ययन ज्ञान अन्याता के संयोग वालों को एकही दिन आदिने गुद्विपाठ जातीहै उसलिये समझी नियम दयोंनहीं माना जाता है—उत्तर कथितहै कि—सपिंडोंमें मरनेका आशौच दशादिन कहा जाताहै • यह एकही नियम जो सामान्य भावने सबके लिये प्रायः जानाहै तिसके

ब्राह्मणा को अपना पाद आदि निवृत्त होने के हेतुसे सद्यःशौच होना ये मन्वादिक्त
 के ऐसे वचनों से एक वाक्यता भी होती है कि जो तात्पर्य इन वचनों का वह
 उसका होगा तिससे उपरालू यह वचन भी सबहवीं अधिकोक्ति में आचुकाहै वि
 दोनों सूतकों में सूतकी कुलका अन्न दश दिन नहीं भोजन करते हैं इसतरह दशदि
 पर्यंत भोजनादि का निषेध करते हुये यमादिकों के वचनों से अविरोध भी सिद्ध
 ताहै ॥ इसी कारणा से यह सिद्धांत समुक्ति लेना कि आशौच का संकोच विधानजं
 कुछ कहा गया कि ऐसे थोड़े काल से भी शुद्धि हो सकती है सो वह संकोच किस
 दिरले स्थलमें बिरले पुरुष की अपेक्षा सिद्ध होता है सब लोगोंको सामान्य उक्त
 वर्तवा करना व्यवहारिक नहीं है तिससे इसी तर्क विवाद के विस्तार द्वारा संकोच
 का निवारणा करना दर्शाया गया कि जहाँतक होसके सूतकों के संकोच पर अदि
 क दृष्टि न देनी चाहिये बल्कि यह वेदसाध्याय संबंधी सद्यःशौच विधान जो कत
 गया सो बहुत वेदके पाठाभ्यास वालेको जहाँ उसके त्यागने रोकने से क्लेश प्रतीत
 होताहो तहाँ समुक्तता पर्वइतनी वयोक्ति और सब सामान्यके लिये सबहवीं अदि
 कोक्तिसे लिख चुके हुये अशोक वचनमें साध्यायका भी रोकना कहागया है (यान
 प्रतिग्रहो होतः साध्यायश्च विवर्तते) अर्थात् सामान्य सर्वादा यहीहै किहीय जात
 प्रतिग्रह साध्याय इनको सूतकों न जारी रखवे—अथं वाऽसर्वे सूतश्च नोक्तं सोया उपमं
 पहिले पीछे ब्राह्मणा आदिवर्गोंको जिसका जितना सूतक लिखागया सो अन उतसे
 लिखोके अंतरतान करके गुह होते हैं निम्नु उपकालका अति क्रम करके सावने नहीं
 शुद्ध होतेहैं=अथाह सनुः=विश्वःसुख्यपदःसृष्ट्वत्तत्रियोऽसहतायुधस वैश्यःप्रतोदाश्रमा उ
 वायपिंशूद्रःक्षत्रियः=अर्थात्—दशदिन आदि स्ववर्गोंअत अर्थात् तत्र यथाहा कि
 यार्थकियाहुआ ब्राह्मणा जलस्पर्शकरके गुह होनाहै(यह जलस्पर्श कदिनेसे मानया
 आचसन न समुक्तता किन्तुकोई क्रिया विषय होगी जो प्रेत कर्म मर्हिता से सालुम
 होनतीहै)इसकी उदक्रिया करानिये पीछेसवारी औरगर्वा का स्पर्श करनेमें गुह
 जानाजाताहै यकी लोई क्रिया विषयहै एवं वैश्यभी सर्वाक्रियायेंकियाहुआ पीछेमे
 नगर पेनाचाहुक और दारहोरि लक्ष आदि की स्पर्शरपी क्रिया विषय करके गुह
 समझाजाता है सवंपुत्र लोनीय स्पर्श करके गुह होनाहै अर्थात्=क दोनों प्र लोक की
 अधिकोक्ति परी हुं॥२०॥२१॥ जहाँ तक कुलव्यापिती अमुदिके प्रायश्चित्त पृ
 हुये कि जितने एकनाय अनेक गुह होतेहैं उतके भागे प्रत्येक पृथय व्यापिती गुह
 तानी जायगी कि जहाँकोई क्रियायें स्पर्श प्रसंगमें अमुह नकरनागयाहो ॥ २००॥

यदि स्नान क्रिये विना स्पर्श होजाय तौभी आचमन विधि जो ऊपर लिखी सो कर्त-
 व्यहोती है तिनके नाम चिह्न अगिले वाक्य से देखौ किन्तु उन्हीं के हेतु गर्भित
 आशयसे (तैःस्पृष्टःउपस्पृशेत्) उनसे हुआ हुआ आचमनकरै यह बहु वचन भी
 परामर्श होता है विरोध नहीं = तदाह पाराशरः = दुःस्वप्नेमैथुनेवांते विरिक्तोस्तु
 कर्मणि चित्तियुपप्रमशानास्थानांस्पर्शनेस्नानमाचरेत् = तथाचमनुः=वांतोविरिक्तःस्ना
 त्वात्तु घृतप्राशनमाचरेत् आचामेदेवभुक्त्वान्नं स्नानंमैथुनिनःस्मृतम्=अर्थात्-खोटा
 स्वप्न होनेमें या बुरी तरह सोनेमें • मैथुन करने में • वसन करने में • दस्त लगेहोनेमें •
 वार बनवाने में • चिता को छूनेमें • यूपनाम पशुहिंसा के स्थानमें गड़े हुये स्तम्भ को
 छूनेमें • प्रमशान भूमिपर होआनेमें • हाड़ोंको छूनेमें • स्नान करै तब शुद्ध होय = ऐसाही
 मतुने कहाहै कि = वसन किया हुआ पुरुष • विरेचन जुलाब किया हुआ पुरुष •
 स्नान करिके घी चाटे तब शुद्ध होय • और अन्न भोजन करिके आचमन कुल्लामावर्ती
 करै तब शुद्ध होय • परंतु मैथुन वालेको स्नान करना चाहिये यह कहाहै = परंतु यह
 स्नान उस मैथुन के साथमें समुभना जो स्त्री के ऋतुकाल होने बाद किया गयाहो •
 अन्यथा ऋतुकालके न होने में जो मैथुन किया जाता है तिसकी शुद्धिस्नान क्रिये
 विना भी होसकती है = तदाह बृहस्पतिः = अचृतीनुयदागच्छे च्छीचमूधपुरीयवत् - अ-
 र्थात्-ऋतुकाल के अभाव में जो स्त्री से संभोग करै तौ गह्न मत प्रक्षालन करने की
 रीतिसेही शौच करिके शुद्धमाना जानत्ता है-

भी कि जो इसवचनमें नहीं लिखे पहिलेमें कहि चुके हों तिनको इच्छाविनाही यदि कोई विप्र हुवे तौ स्नान करिके शुद्धहोताहै पर जानि वृष्णिके छूने में वही च्यवनोक्त विधि करनी चाहिये ॥ इसीप्रकार जो आगे वचन लिखे जायें तिनमें भी बहुत या थोड़ीके अनुरूप इच्छा या विना इच्छा की व्यवस्था जानि के सबको तुल्य समझ लेना=तथाचक्रप्रयपः=उदयास्तसयौस्कंदयित्वा अस्मिन्स्यंदनेकराक्रोशनेचित्तारोड रो यूपसंस्पर्शनेसच्चैलंस्नानंपुनर्मासइतिजपेत् महाव्याहृतिभिःसत्ताज्याहुतीर्जुहुयात्= अर्थात्—उदयहोते या अस्त होतेहुये सूर्यका देखना भी आचारकांड में नियुक्तिया गयाहै तिनके सन्मुख ऐसे दोनों काल में जो स्कंदन करै अर्थात् मलमत्र आदि छोड़ै यद्वा आँखितिल मिलावै या करार्काक्रोशण होने में कि जब किसी सज्जनको वृथा निंदा आदि कान में सुनी हो या चित्त के ऊपर पैर धराहो या यूपका स्पर्श किया हो तो सच्चैल स्नान करै तथा पुनर्मास इत्यादि ऋचा मंत्रको जपै फिर सन्ध्या प्रयोग में लिखीहुई सात महाव्याहृतियों से धीकी आहुति होमै तत्र शुद्धहोय=स्मृत्यंतरवचनंचयथा=स्पृष्टदेवलकंचैवसवासाजलमाविशेत् देवार्चनपरोविप्रोवित्तार्थेय त्सरत्रयस असौदेवलकोनामहव्यकच्येयुर्गर्हितः=अर्थात्—देवलक ब्राह्मणाको भी ऋड करवस्त्रों सहित जलमें गोता लगावै तत्र शुद्ध होय देवलक वह कहताहै जो धनके लियेदेवताकी पूजा में तत्पर होके तीनवर्य वित्तार्थे सो देवलकनामा ब्राह्मणा हव्य और कव्यमें अर्थात् देव पितरोंके कार्यमें लगाना नियुक्त है=तथात्रह्यांशुपूगारोपि-शैवान्पाशुपतान्स्पृष्ट्वालोकान्यतिक्रान्स्त्रिकान् विकर्मण्याद्विजाचगृद्राचमवाताज लमाविशेत्—तथा—अस्त्रर्याह्याहुतिःसाम्याच्छूद्रमंपर्दाहृयिता इति लिंगाचगृद्रस्पर्शनेनियेधः=अर्थात्—शैव जो शिवालयका चढ़ावा आदि खानेवाले योगीआदि या पाशुपत जो ना दिया रीछ बंदर आदिमें जीविका करें या यतिक्र नाम्त्रिक लोग जो बनेहुये यतीकेनाल से प्रसिद्धपर अथार्थ धर्म से नाम्त्रिक हों या विकर्मण्य द्विजाती जो वैशर्णिक जाति होने पर भी कुक्कुटों से रहें या सर्लातगृद्र इनमें से किसी को भी छुइकर बलोंसहित जलमें गोतालगावै तत्र शुद्धहोय=तथा—ग्रह वचन जो निर्गम चुलेहैं कि गृद्र के संहर्य से स्पर्शकिये द्रव्योंकी आहुति भी अन्वय्य होजाती है सो इन डौलसे भी गृद्रको छूनेका नियेधहै=तथांगिरा=यम्नुद्यायांशुपाकरयथायगांय विशेषतितयन्नात्प्रसुर्वीतयत्प्रार्थयद्विगृह्यति=अर्थात्—जो कोई ब्राह्मणा चांदान की छायाको आरोहण करे सो स्वयं अच्छी विधिमें स्नानकरे और श्री आदिके वि-शुद्ध होताहै=तथाव्याघ्रपादः=चांडालप्रतिपदेष्वृषामःप्रतिपदेषुगोनात्प्रजनाद्यां

बिना धुला लेना होता है इसमें भी कुछ विचार नहीं एवं विलीको साधारण में कुछ कर स्नान करना आवश्यक नहीं है क्योंकि प्रायश इससे बचाना नहीं बनिआता है तिससे भोजन या अनुष्ठान के समय जो छुड़जाय तो स्नान करना उचित है = कृत्ता के स्पर्श का भी यह नियम समझना कि जो नाभिसे ऊपरली देहमें छुड़जाय तो स्नान करै किंतु नीचेकी देह में छुड़जाने से उसी अंग का धो डारना मात्र उचित है क्योंकि उन्हीं अंगिरा का दूसरा वचन इसपर मौजूद है = यथा = नाभेरुर्ध्वं करौमुत्क्राशुना यद्युपहन्यते तत्रस्नानमधस्ताच्च त्प्रक्षाल्याचम्यशुद्ध्यति = अर्थात्--तांदी से ऊपर जो हाथोंके उपरालू कोई अंग कृत्तासे विगाडा जाय तहां स्नान करना चाहिये जो नीचे का अंग या केवल हाथहीको विगाडा हो तो उतना धोकर आचमन करनेसे शुद्ध हो जाता है = एवं पक्षियोंके स्पर्शमध्ये जातकरार्यने विशेषता कही है = यथा = ऊर्ध्वं नाभं करौमुत्क्राशुदंगं संस्पृशेत्स्वगः स्नानं तत्र प्रकुर्वीत शेषं प्रक्षाल्य शुद्ध्यति = अर्थात्--हाथोंको छोड़के यदि कोई अङ्ग तांदीसे ऊपर में काक आदि पक्षीका स्पर्श हो जाय तो स्नान करै वाकी दोनों हाथ या नीचेके अंगमें स्पर्श हुआ हो तो धोनेमात्रसे शुद्ध हो जाता है = एवं अपवित्र वस्तुओंके स्पर्श मध्ये विष्णाने विशेषता कही है = यथा = नाभेरनग्ना त्प्रवाहुचकारियकैर्मलैः सुराभिर्मद्यैर्वोपहतो मृतोयैस्तदंगं प्रक्षाल्याचांतः शुद्ध्यति अन्यत्रोपहतो मृतोयैस्तदंगं प्रक्षाल्य स्नायात् तैरिन्द्रियैरुपहतस्तपोप्यग्नात्वापंचगव्येन दण नच्छदोपहतप्रचेति = अर्थात्--कायामे उत्पन्नयूक्तमृतआदि अनेककारियकम तहोते तिनसे जो कोई नाभिके नीचे अंगोंमें या कहुनीके नीचे पहुंचा आदिमें विगड़जाय या सुरासे या मद्योंसे उन्हीं अंगोंमें विगड़े तो बही अंग मारी और जलमें धोने तथा आचमन करनेसे शुद्ध होता है जो उन अंगोंके सिवाय किसी और अंगमें पूर्वोक्तमलोंसे विगड़े तो मारी और जलसे मात्र धोकर पीछे स्नान भी करे. कदाचित्त नाक कान आदि उत्तम इंद्रियोंमें उन्हीं मलोंमें विगड़े तो वह स्नान और निगाहा उपाम करिके शुद्ध होता है. कदाचित्त दांतोंके स्थानपर उन्हीं मलोंमें विगड़ा हो तो पूर्वोक्त संजन स्नान व्रत करने के सिवाय पंचगव्य में भी गृह्य करे--

पुरुष होते हैं तिनको अन्य स्मृतियों से समझना जहाँ प्रयोजन उनका संभव हो—तो इस भाँति स्नान करने योग्य पुरुषों की बहुतायत के आशय से योगीश्वर के मूल प्रलोक में (तैःस्पृष्टः उपस्पृशेत्) यह बहु वचन का निदेश दिया गयाया विरोध उसमें नहीं है ॥ ० ॥ श्रीसद्भिज्ञानेश्वर व्यवस्था देते हैं कि मूल प्रलोक में (उदक्यातया और अशुचियों से छुआहुआ स्नानकरै परंतु छुयेहुयों से छुआ हुआ पुरुष आचमन मात्र करै) यह थोड़ा प्रायश्चित्त दर्शाया था सो वह थोड़ा इस हेतु से समझना कि जहाँ चंडाल आदि कोई अशुचि प्राणी जडबुद्धि बेहोश होकर धोखा से लपेट में आकर भिडाहो तिसके भिडेहुयोंसे जो कोई भिडजाय तिसको आचमन मात्र करना ठीक है स्नान की अपेक्षा नहीं—परंतु—जहाँ होशियार चंडाल आदि लपेट में आया हो तिसके छुयेहुयों से यदि कोई भिडजाय तहाँ इसकोभी स्नानही कानाचाहिये किंतु आचमन मात्र से शुद्धहोना ठीक नहीं है यह सिद्धांत अगिले वचन में उत्पन्न होता है सो देखो = यथाह मनुः=दिवाक्रीर्तिमुदक्यांचपतितंसूतिकांतया शवंतत्स्पृष्टि नंचैवस्पृष्ट्वास्नानेनशुध्यति (अत्रतत्स्पृष्टिनंतत्तेयांस्पृष्टानांस्पृष्टिनमितिभावः नशत्र मात्रस्पृष्टिनं) अथति—नाई. रजत्वला. पतित. सूतिका. मुर्दा. और इनके छूने वाले को भी छुडकर स्नान से ही शुद्ध होता है = परंतु = छूने वालेके छुये हुये को तीसरा कोई छुवे तिसको फिर स्नानकी अपेक्षा नहीं किंतु आचमन से ही शुद्ध होता है - यथाह संवर्तः = तमेवतुस्पृशेद्यन्तुस्नानंतस्यविधीयते ऊर्ध्वमाचमनंप्रोक्तं द्रव्याणां प्रोक्षणांतथा = अथति—जिसने चंडाल आदिमे छुयेहुये को छुआहो तिसकोभी स्नान कराया जाता है पर उससे उपरालु कोई तीसरा जो दूसरे का छुट जाय तिसको आचमन हाय पेरोंका प्रक्षालन और बत्तादि द्रव्यों को छींटा देना कहा है ॥ सोभी यह तीसरेको आचमन विधिउम दशासे समझना जहाँतीसराज्ञान विनाधोनासे भिडगया हो अन्यथा जानिदक्षिके भिडने वाले तीसरेको भी स्नान करना होगा तदाहमीतम पतितचंडालसूतिकाव्यदाशवस्पृष्टितत्स्पृष्ट्यप्रस्पृष्टिसंचेत्तनुदको गयर्गनादृश्यंत

जो रीत गाया कि दश दिन से शुद्ध होय या तीन वा एकही से इत्यादि जो यह
 कैसा भ्रम है कि वृथा इतने दिनतक अशुद्ध बन्निके बैठें--इसी संदेहके निवारणार्थ
 कालरूपी शुद्धिपर अग्नि आदिको दृष्टान्त रूपसे दर्शाते हैं--वरन दूसरायहभी तात्पर्य
 है कि आचार स्यादा परिपाठो के द्रव्य शुद्धि प्रकरण में शुद्धि के जो कुछ हेतु कहि
 चुके हैं या अब यहाँ से आगे जितने हेतु कहे जायेंगे कि इनसेभी अमुकामुक्त शुद्धि
 होती है तिन सब अगिले पिछिलों का इन्द्रदृष्टे कारके इसी प्रलोक में अनुक्रम क्रिये
 देते हैं--और कालरूपी हेतु में जो संदेह अभी कहि चुके तिनका एकप्रमाणा तो आचार
 काण्ड में भी १८७ सूत्रप्रलोक पर देखौ कि काल वीतने से इस तरह पृथ्वी शुद्ध हो
 जाती है उसी प्रकार यहाँभी सूत्रक आदिमें नियमित काल वितानेसे शरीर शुद्ध हो
 है--उसी काल की शंका सध्य यहाँ यह दृष्टान्त है कि जैसे अग्नि आदि दश नाम
 निज निज विषय के स्थलों पर यथा योग्य शुद्धिकरसक्ते हैं तैसे काल भी दश वि
 आदि जहाँ जितना उचित है उतना समय वितानेसेही शरीरोंको शुद्ध करावेता है यथा
 शास्त्र की आज्ञा है तिससे काल भी शुद्धिकारकेको एक परम हेतु है--तहाँ--अग्नि जैसे
 अशुद्ध धातु पात्रों को शुद्ध करता या पकेहुये मृत्पात्रोंको दुगारा पकाने से पशुति
 मेटि देता है इत्यादि कर्म भी शुद्धि का हेतु नामनिमित्त है जैसा आगे कहेंगे या जय
 अक्षय के अवभृथ शेषांग कर्म का स्नान आदि अनेक भाति सही भी शुद्धि का
 कारणा है साजने लीपने आदि प्रकारों में वायुभी शुद्धिका हेतु है (सागतेवेन शुद्धात्)
 यह लिख चुके हैं कि अनेक चीजें कंचन दवामेंही शुद्ध होती हैं मन भी सक्त शुद्धि
 साधन करनेका हेतु है क्योंकि ज्ञान आते ही शुद्धि करीजाय यथा सतमेंही शुद्ध ना
 चाल आदि गुरुओंसे उपदेशलेकर लीगो जानी है

का स्वरूप समुत्थिके तन्मय हो जाना ही तप है परन्तु जिसको इतनी शक्ति न हो तिसके लिये तप शब्दसे अपने बर्ताना वर्म अपने कुलका मुख्यधर्म अपने आयस का कर्म समु-
 भूना उनको यही तप है और विद्या यहां कौनसी कि वेदांत में तत्त्वमसि वाक्य से
 त्वंपदार्थके निरूपण करनेवाले व्याख्यानोसे जो ज्ञान उत्पन्न होता है तिसको समु-
 भूना इन दोनोंके उत्पन्न होनेसे भूतात्मा की अशुद्धि मिटि जाती है ज्ञानमें ही विशेष
 धर्म अर्थात् बुद्धिका शोधने वाला ज्ञान है किन्तु बुद्धि जब अनेक यथा एकही किसी
 संशय के भ्रमसे विगड़ि के अशुद्ध हो जाती है तिसको उत्तम प्रज्ञा देकर समुभूने
 समुभूने का ज्ञान प्राप्त होनेसे भ्रम दूर होता है तभी उसको शुद्ध हुई कहते हैं क्षेत्रज्ञ
 स्य ईश्वर ज्ञानात् शुद्धिः अर्थात् क्षेत्रज्ञ जो शरीर के भीतर बैठा हुआ आत्मा है तिसकी
 शुद्धि ईश्वर का स्वरूप ज्ञान होनेसे होती है किंतु क्षेत्र नाम है खेतका तो यह शरीर
 भी एक प्रकार का खेत है जैसे धरती पर खेतोंको किसान खोदने जोतने आदि प्र-
 कारोंसे बने योग्य शुद्ध करता है तैसे पूर्वोक्त तपोविद्याके प्रभावसे शरीररूपी खेत
 भी शुद्ध हुआ सब कहा जाता है कि जब त्वंपदार्थ रूपी ज्ञान संयुक्त होजाय और
 त्वंपदार्थका ज्ञान ही तत्त्वमसि आदि वाक्योंके बोधरो उत्पन्न होता उसी तो ईश्वर
 का ज्ञान ही कहते हैं उर्जाते मुक्ति लक्षणात् रूपी परम अतिशय शुद्ध योग्य की
 होती है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

नियिद्ध हो वह भी आपत्काल में करसक्ता है। गिल्प कर्म जिसको मनेक्रिये सो भी आपत्काल में करसक्ता है। भृति प्रेष्यकर्म है कि चिट्ठी पत्री या संदेशा लेकर जाना आना आदि। विद्या यह ब्राह्मणाको पढाई लेकर पढानी नियिद्ध है पर आपत्कालमें पढाई लेकर पढावै। कुसीद व्याज दंडा खाना नियिद्ध है पर आपत्कालमें करै। शकट गाड़ी छकडा यह भाडेको चलाना आदि स्त्री या वैश्यको भी आपत्काल में कर्तव्य है। गिरि पहाड अर्थात् उसमें से लकड़ी आदि चीजें लाकर बेचना आपत्कालमें। सेवा नौकरी हाजिरवाशी आदिके द्वारा समर्थोंका सेवन करना यह भी आपत्काल में। अनूप नामसे वह धरती कहाती है जहाँ बहुत सा जल वृक्ष लकड़ी कण्ठा आदि प्राप्त होसके तहाँ जा बसना। नृप अर्थात् राजा की सेवा यद्वा याचना करनी। भैक्ष्य भिक्षा वृत्तिकरती स्नातक हो तौ भी आपत्कालमें निषेध नहीं है कोणिक आपत्काल में ये सभी जीवन के हेतु हैं इनके क्रियेबिना निर्वाह नहीं होता ॥ ४२ ॥

४१ अधिकोक्तिः=मनुरपि=विद्यागिल्पभृतिःसेवा गोरक्षाविपणाःकृषिःगिभिर्भेदयंकुसीदंचदशजीवनहेतवः=अर्थात्—विद्या·गिल्प·भृति·सेवा·गोरक्षा·विपणा·दुकान खेती·पहाड·भिक्षा·कुसीद मूदव्याज· ये दश हेतु जीवन के मनुके भी कहे हैं ॥ ० ॥ मनुने ब्राह्मणा को जहाँतक होनके अपनी वृत्ति नियं भी कारणीय आपत्काल में भी कही है=यथा=दक्षधर्मविष्णुगोनपारद्वयःस्वगृहितः परधर्मथयाद्विप्रःसयःपतित जातितः=अर्थात्—अपनाधर्म विष्णुगोहो सो भी अदका परया धर्म अदका हा तौ भी ब्राह्मणाको नहीं चाहिये क्योंकि परये धर्मका आययलकर ब्राह्मणार्गाधरी जाति से पतित होजाता किन्तु ब्राह्मणाव के चिद्व मारि जानत ॥ ४१ ॥ ४३ ॥

(अनाहारपीडितधर्मः)

या शूद्रका न मिले तो वैश्यका या ऐसे किसी क्षत्रीका चुरावे जो धर्म कर्म से हीन हो पंच इस चुराने को सबसे जाहर भी करदेवे कि ऐसी लाचार दगामें यहकरना पडा यद्वा राज का मालिक जो इसको पकड़ि के राज में लेजाय तो वहाँ भी मच्चा वृत्तान्त कहिलुनावै तब राजा इसके चाल चलन कुल शील आदिकी तहकीकात लेकर कसार्किये पीछे उसके लिये कोई सी जीविका वृत्ति कल्पित करावै जो उसकी दशा के अनुरूप समझी जाय ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

४३ अधिकोक्तिः=सनुः=तयैवसहस्रमेभक्ते भक्तानिष्ठतत्त्वता अक्षस्तनविशान्तेन हर्तव्यंहीनकर्मणाः=अर्थात्—सांभ्र सवेरे दो बार भोजन के मार्गसे छे बार किन्तु पूरे तीनदिन जिसने भोजन न पाया हो तो वह सातवीं बारके भोजन गर्ये उतनाही नाश हीन कर्म धर्मका चुरावै जो एकदिन भोजन करलेने के सिवाय दूसरे दिनको न बचे (तिस ऐसे सच्चे चोरकी जीविका राजा कल्पित करावे यह योगीतर के वचन में आचुकाहै) राजा भी जीविका कल्पितकरानेदिना दायी होताहै- तदाहसनु अथवा जस्तुविद्येश्रोत्रियःसीदतिक्षुधा तस्यसीदतित्वांयन्दुर्भिक्षावप्राप्तिपीडितम् = अर्थात् जिस राजाके राजमें ज्ञानज्ञान परिष्ठत भूख में पीडित होता है तिमका यह राज्य भा दुर्भिक्षयोर सहायारी आदि वप्रादिसे पीडित होता है ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

— " —

अथ बानप्रस्थाश्रमधर्म कयने स्वप्नःपरिच्छेदः ७

अमुक मनुष्य किस ठिकाने में गिनती है ब्रह्मचारियों में या गृहस्थियों के ठिकाने में यह तात्पर्य है) सो इन दोनों आयसके सब धर्म कर्म आचार मर्यादा परिपाटी में लिख चुके हैं अब यहाँ उनका तीसरा आयस वानप्रस्थ दर्शाते हैं कि (बनेप्रकृत्ये वा नियमेन च तिष्ठति चरतीति वनप्रस्थः वनप्रस्थ एव वानप्रस्थः संज्ञायां दैर्घ्यं) वन में प्रस्थित रहे सो वनप्रस्थ है उसी को वानप्रस्थ कहते हैं सो यह वानप्रस्थ गृहस्थीने से होता है कैसे होता और कैसे वनमें रहता है तिसके लक्षणा ऊपर अक्षरार्थसे ब्राह्मणके परन्तु अच्छी भाँति समझाने के निमित्त से अभिप्राय अब लिखते हैं कि—गृहस्थ का आश्रम अच्छा भोगि मर्यादा के पूर्वांको जीविका नियत कर देने बाद उन को समर्थ हुआ जानिकर अपनी पत्नी उनको सौंपिदे कि माता को आराम तथा रक्षामे राखना में वनवास को जाता हूँ—यद्यपि भार्या आपही अपनी इच्छा से पति की सेवा करनी चाहिके साथ जाना चाहै तो उसको भी साथ लेकर ब्रह्मचारी होकर है किन्तु पत्नी से रतिविलास न करे अपना वीर्य स्वीचिके साथे पर चढाले—और साग्नि वनको जाय अर्थात् वेतान अग्नि जं वेदं क्त अग्निहोत्र की स्थापन घग्मे हो रही थी तिसको भी साथ लिये जावे तथा सोपाननो व्रजेत् किन्तु उपामन अग्नि भी गृह्याग्नि के नाम से दूसरी अग्नि होती है तिसको भी साथ लिये जावे फिर वन में रहकर अर्थात् कदा-लिस ४६ प्रलोकवाले नियमोंको साथे वह वानप्रस्थ कहाना है ॥ ४५ ॥

४५ अधिकोक्तिः—यहाँ यह संदेह न करना कि प्रायश्चित्तोंके प्रयोगमें आयसके धर्म क्यों कहिये लगे—क्योंकि यह वानप्रस्थका धर्म जो है सो भी आत्मावृत्तिभुक्ति कर देनेवाला एक बहुत बड़ा प्रायश्चित्त है इसके आगे संन्यास वर्गाने कर्मों सो भी यद्यपि चौथा आयस है परन्तु आत्म भुक्तिके प्रभावसे वह भी एक प्रबल प्रायश्चित्त समझना इसी प्रकार जहाँ जहाँ जो कुछ इसकागडमे वर्गाने सो सर्वथा प्रायश्चित्त हीका रूप समझना कि उनका पादमात्र भी उबला करनेसे मनुष्यों के जन्मांता पापशोभन हो जाते हैं फिर साक्षात् साधना करने वा नोंको का क्रिया ॥०॥ वेदाको अपनो भार्या सौंपिदे जाय इसकायनसे यह तात्पर्य भी दर्शाया है कि वनवास धर्मिकालेना चाहिये जिनके गृहस्थी धर्म के द्वारा वेदोंका कर्क और धर्मिक प्रयोग समर्थ करानेमें ही अन्यथा छोटे बालबच्चों वा नारत्यों—सो भी यह नियम इसके नियम सम्भव है कि जिनके कर्मसे सब चारों आश्रम का पद उदात्त होता हो—अन्यथा (अविष्णुतत्र अथवा यमिच्छेत्तत्त्वमेतत् इत्यादि नियम यह भी है कि जिन ब्रह्मचारिने विवाह न करके अपना दीर्घ ब्रह्मचर्यने दांभवात् सो निर्गलित आयसके इच्छाकरे तिसमेवम अर्थात्

गृहस्थी वनेविना भी निज इच्छासे वनवास लेकर वानप्रस्थवने या संन्यास लेकर संन्यासी वने ॥ ० ॥ गृहस्थी को वनवास लेनाकहा सो उम दशममें समूचित है कि जब देह उसकी बुढ़ापे से जर्जर होजाय यद्वा पुत्रों के पुत्र भी उत्पन्न होजाय तब देह जर्जर न होनेपर भी जाना चाहिये अन्यथा नहीं=यथाह मनुः= गृहस्थस्तु यदापश्येद्व लीपलितमात्मनः अपत्यस्यैव वाऽपत्यंतदाररायंसमाश्रयेत्=अर्थात्—गृहस्थ पुरुष जब अपनी देहकी खालमें बल पहिराये ढीली और पकीहुई देखे या संतानके संतानहुई देखे तभी वनवास करै तौ उसके वनवास रूपी तपके प्रभाव से संतान की सदा जय होती वनीरहितो है ॥ ० ॥ पुत्रोंको पत्नी सौंपिके जानाकहा तिसका यह ध्वन्यर्थ नहीं है कि जिसकी पत्नी सरराई हो सो वनको नहीं जासक्ता क्योंकि पत्नी जीती होती तौ सौंपिके वनवासलेते तिससे वह सौंपिजाना नियम केवल उमका है कि जिसकी पत्नी जीवती हो अन्यथा जिसकी सररुकी हो तिसको भी वनवास लेना आपस्तंब आदि अनेक मुनीश्वरों ने कहा है—जब कि वृद्धी अवस्था में स्त्री सररागे पर भी वनवास लेना सिद्ध हुआ—और—आच. २ नर्यादा परिपाटी के ८६ ऽनात्म में यह कहाथा (दाहयित्वाऽग्निहोत्रेणोद्भिद्यं वृत्तवतीं पतिः प्राग्नेहिभिव्यदागानवनीं चै वविलंबयन्) कि जिसकी भार्या सरजाय तौ वह पति अपने अग्निहोत्र की अग्नि में सुलक्षणी स्त्री को जलाय कर देरी न करके शीघ्रता से विधि पूर्वक अपना विवाह करै और अग्निहोत्रों का (पुनराधान) फेर स्थापन करे तौ भार्या को न रहने में मित राईथीं—सो इस वचन से यह विरोध न संसक्त लेना कि आचार धर्म में विवाह करना आवश्यक लिख चुक्ये अब क्योंकि भार्या सरजाने बाद विवाह क्रिये विना वनको जासक्ता है—

पंचम मास के उपरांत श्रावणमास अग्नि के आधान में उनका भी अधिकार देख पड़ता है इस बातका प्रमाण अगिला वचन वशिष्ठ का देखो=यथाह वशिष्ठः=वान प्रस्थोजदितप्रचीराजिनवासा नफालक्ष्यमत्रितियेत् अक्षयमूलफलसंचित्तुजध्वरे ताः सनाशयोदद्यादेवनप्रतिगृह्णीयात् ऊर्ध्वपंचशोमासेभ्यः श्रावणमासेनाग्निनावा याऽऽहितारितवृक्षमूलिकोदद्यादेवपितृमनुष्येभ्यः सराच्छेत्स्वर्गसातंत्यं=अर्थात्-वशिष्ठ ने यह कहा कि वानप्रस्थ वनकर जटा रखाये चीरनास कोपीन बांधे या वनके वृक्ष भोजपत्रआदि और अजिन मृगाला दिस्तर क्रियेहुये रहे पर हलकेजुते खेत में न टिके वित बोये जोते जो वन में आपसे उत्पन्न होकर गिरे ऐसे कद गल फलों को अच्छी शुचिता से वीन लेवै वीर्य अपना खींचके साथे में चढाये हुये (ऊर्ध्वरेताः) ब्रह्मचर्यसे धरतीपर सोया करे और किसी से कुछ प्रतिग्रह आदि न लेवै वितु जहाँतक होसके देताहीरहे उपरांत पाँच सहीनाके श्रावणमास वेदिक मार्ग में (किंतु लौकिक से नहीं यह तात्पर्य है) वैदिक विधान में अग्नि का आधान करके आहितारित बनाहुआ वृक्षकी जड़के पास निवान क्रिये पितृगं तथा मातृगं का भी देताही रहे सो वह ऐसा वानप्रस्थ आनंत्य स्वर्ग को जावे पर्याय गंगे स्वर्ग में जाता है कि जहाँ उसकी तपरया का घंत नहीं संभवता उन गंग नियमों का य-गीश्वर अगिले ५६ के श्लोक से विधेयता से दर्शावे ॥ ४७ ॥

(वानप्रस्थेगुणविधिः)

रहे और च शब्द के ध्वन्यर्थ से भिक्षादान भी उसी अन्नसे करतारहे (अधिकोक्तिमेवम्
 केवचनदेखो) और अपि शब्द के ध्वन्यर्थ से भूतों को भी पंचयज्ञ विधान से तत्र
 करता रहे और भृत्य जो अपने शिष्यादिकहों तिनको भी उसी अन्नसे अर्थात् जो कृक
 करै सो सब वन के उत्पन्न नीवार आदि मुन्यन्त्रों से करै किन्तु खेत के उत्पन्नों में
 नहीं—और विशेषता अधिकोक्तिमें ॥ ४६ ॥

४६ अधिकोक्तिः—मूलप्रलोक में दूसरे चकार के ध्वन्यर्थ से उनको भी सत्प्र
 करै जो कोई भूले भटके आयस के पास आपरै=तथाचमनुः=यद्दक्षःस्यात्तोदयात्तलि
 भिक्षाचर्गात्तितः अमूलफलभिक्षाभी र्चयेदाश्रमागतान्=अर्थात्—जो कृक अपना
 भोजन होय तिसमें भूतवलि और भिक्षा भी शक्ति के अतुल्य किन्तु जल मूल फल
 भिक्षा इनसे सत्कारकरै उनका कि जो आयसपर आगयेहों=इसप्रकारपंचमहायज्ञों
 को निपटाइके उसका गेयअन्न आपभी प्रसादभोगै यहतात्पर्य अत्रोक्त मनुके वनचर्ग
 रूपहै=यथा=देवताभ्यर्चतद्दुत्वावन्यमेध्यतरंहविः श्रेयसात्मनिर्मुञ्जीतवयमानस्य
 कृतम्=अर्थात्—वनका उत्पन्न जो अत्यतपवित्र कथ्यहो सो देवताओंके लिये दोगिके
 (चकार से पितरों को भी) फिर वचाहृया अपने उदर में धृत करै और नमक जो
 ऊखर धरतीसे खारी आदि किमोतकका उत्पन्नहो जिनको धोय निवारिके आपसी
 शुद्धिकिया हो सोई वत्तावामें लावे क्योंकि यज्ञोंके लिये वन का मुन्यन्न कदा तेषा
 नमक भी सूचित किया तिसमें सभी वस्तु जो प्राण्य हो किन्तु नगर आदि वस्तीमें
 उत्पन्न हो तिसका आहार करना निषेध दहमा-तदप्याहमनुः मन्व्यन्त्रप्राण्यमात्र
 सर्वैरेवपरिच्छेदम्=अर्थात्—दहमा से उत्पन्न आहार को विन्यन्न व्याप्य को और
 गृहस्थोंवाला सब जाना भी दोगिके वनमें दत्त ॥

(वानप्रस्थेविशेषनियमाः)

दांतस्त्रिषवणस्नायीनिवृत्तश्चप्रतियहात् । स्वाध्यायवान्दानशीलःसर्वसत्त्वहितेरतः४८ ॥

दंतोलूखलिकःकालपकाशीवाश्मकुट्टकः । श्रौतस्मार्तफलस्नेहैःकर्मकुर्यात्तथाक्रियाः ४९ ॥

अर्थः—दांतहो किंतु दर्प से रहित स्वभाव हो-त्रिषवणस्नायी तीनोंकालमें स्नान किया करै- प्रतिग्रह लेनेसे मुंह फेरे रहै चाहें तैसा लोभलालच कोई आकर दिखावै तौभी-स्वाध्यायवान् किंतु अपने वेदके पाठमें अभ्यास आवृत्तियों से करता रहै- दानशीलहोय किन्तुफल मूल भिक्षाआदि देतारहै-सभी जीवोंका हितकरतारहै४८॥ दंतोलूखलिक वने अर्थात् ओखली खल्लड आदि न राखै अपने दाँतों को गाली सूसर आदि मानै और उन्हीं से काटि तोडि के भक्षण किया करै- कालप काशी वने अर्थात् नीवार वेणु श्यासा आदि मुन्यन्न और वेर इंगुद आदि फल भी जो केवल कालहीसे पकते और खाने योग्य होजाते हैं अग्नि की अपेक्षा उनमें नहीं रहती तिनको खाकर समय वित्तया करै यद्वाग्नि सेभी पकाकर किसी अवसर में खाय तौ कुछ दोष नहींहै परंतु अग्निके वशीभूत न होजाय कि उसमें पकाये बिनाखाही न सकै यह तात्पर्य है मनु के वचन से अधिकोक्ति में- यद्वा इसी प्रकार जो केवल दाँतों से न खासकै सो किसीअवसर में पत्थरपर कूटिकेभी खाय पर चक्रीआदिका सग्रह न राखै—एवं श्रौत और स्मार्त कर्म यज्ञ होस आदि तथा भोजन आदि और भी क्रियार्थे जो अवश्य चिकनाई से होते हों सो सब फलोंको मीरसे उपजे स्नेहों से करै दृष्टांत जैसे महुआकी गुठलीका तेल या बडहरकी गुठलीका इत्यादि पवित्र फल चिकनाईवाले वनमें बहुत होतेहैं तिनसे काम चलावै पर घृतादिक स्नेहों का वर्तवान करै ॥ ४६ ॥

४८अधिकोक्तिः—कालपक्व भुगेव वा इतिमनुः=अर्थात्मनुने भी विकल्प दर्शाया है कि अग्निसे पका यद्वा कालहीसे पका भोजन करै ॥ अन्यच्च, मनुगेव=मेदग्रवृक्षां इवानद्यात्स्नेहोष्णफलसंभवाच्च=अर्थात्-पवित्र वृक्षांके फलखाय तथा उनके फलों से उत्पन्न चिकनाइयों को भी खाय ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

(वानप्रस्थस्यान्येषिनियमाः)

चांद्रायणेर्नयेत्कालंरुद्धैर्विवर्तयेन्नवा । पक्षेगतेवाप्यश्रीवान्मानेवाऽनिवागतं ५० ॥

स्वप्याङ्गमौशुचिरात्रौद्विवात्संप्रवर्त्तयेत् । स्थानाननविहारैर्वार्योगान्भ्यानेनवातथा ५१ ॥

अक्षरार्थः—चांद्रायणों से काल दो लेवै या सदा ऋतुओं से वर्त्तै यद्वा पक्ष वर्त्तै

लिकोवास्यात् यद्वाद्यष्टमकालिकः (एतेषां कालनियमानां शक्त्यपेक्षया विकल्पं इति सिताक्षरा=अर्थात्-सनुने यह कहा है कि अपनी शक्ति के अनुसार चाहें राति में भोजन करने का नियम साधै या दिनमेंहीं एकवार थोडा खानेका नियम साधै तिस में भी दिनके चौथे कालमें खानेका नियम राखै यद्वा आठवें कालमें भोजनका नियम राखै (सिताक्षराकार कहिते हैं कि इन सब जुदे जुदे काल नियमों में से अपनी शक्ति के अनुकूल कोई एक नियम साधै फिर चाहै तभी बदलिके दूसरा नियम साधने लगे जो पहिले में अडचल प्रतीत होय इसी लिये विकल्प रखे गये हैं ॥ ५० ॥ इत्या-
उनके मूलप्रलोक में योगाभ्यास का जो चर्चा किया तिसके भी अनेक डौल होते हैं उसके सधये सनुने यह कहा है कि (विविधाश्चोपनियदीरात्मसंसिद्धयेऽश्रुतीः) आत्म सिद्धि चाहनेके लिये विविध भाँतिकी उपनियदी श्रुतियां ११८० ग्यारहसौ अस्सी उपनियदों में चारौ वेदके सारांश रूपसे प्रसिद्ध हैं तिनको भी वानप्रस्थ अपने फालत कालमें विचारै फिर उनके द्वारा मनन करिके प्राणायाम ध्यान योग समाधि पर आरूढ होवै-क्योंकि-उपनियत यह शब्दही वेदके सारांश का नाम है (और ब्रह्म विद्या जो अध्यात्म कहाती है तिसका भी उपनियत नाम है उसकी श्रुतियाँ तत्व मसि आदि वाक्योंको जानना) और भी (अत्रोपनियच्छब्दो ब्रह्मविद्यैकगोचरः तच्छब्दावयवार्थस्य विद्यायामेव संभवात्) ब्रह्म और आत्माके साक्षात्कार एकहीरूप होजानेका अर्थ भी उपनियत नाम कहाता है तिससे विशेषकर उपनियदों की आ-
राधना करै=कदाचित्=यह शंका करी जावै कि वानप्रस्थ के और सब नियम कहे गये परंतु स्नान आचमन आदि नित्यकृत्योंका प्रकार कुछ न कहागया सो कैसेकरै-
तहां ब्रह्मचारी के प्रकरणा आदि स्थलोंपर आचारकांडमें जैसा ब्रह्मचारीके निमित्त पर कहिचुके तैसा यहां इसको भी वही प्रकार समुश्रितलेना-क्योंकि (उत्तरेषां वैत दविरोधीति गौतमः) गौतम ने गौचका विधान ब्रह्मचारीके अब उल्लेख कहिकर यह कहिदिया है कि पिछले आयमें को भी यही विधान अविरंधी जानौ ॥ ५१ ॥

(वानप्रस्थस्य साधनविशेषधर्माः)

शीष्मेपंचाग्निमध्यस्थो वर्षानुस्थंडिले गयः । आर्द्रवान्मास्तुहेमंते गक्त्या वापितपश्चगंत ५:१
यः कंठकैर्वितुदतिचंदनैर्यद्वचलिपति । अक्रुद्धोऽपग्नितुष्टचममस्तस्य चतस्य च ५:२
अग्नीन्वाऽप्यात् स्नान्कृत्वानृक्षावासोमिताशनः । वानप्रस्थशृतेष्वेव यात्रार्थं भेदयमाचरेत् ५:३
अर्थः—शीष्ममें पंचाग्नि बीच बैठे चर्याओं में स्थंडिल पर बैठे लेते हेमंत में भी जो वस्त्र पहिरेहुये तपकरै या शक्तिके अनुकूल तपकरै=अर्थात्-रासी ब्रह्मात जाग

ये तोनिही ऋतु साल भरमें प्रधान होतीहैं इनमें ऐसी रीतिसे वानप्रस्थको तपकरना चाहिये कि चैत से असाढ़ तक चार सहीने पंचारिन तापै अर्थात् जंगल में बैठि के अपने चारों ओर चार अरनी जलावे ऊपरसे पाँचवीं आगि सूर्यका आताप होय यह पंचारिन का स्वरूप है. फिर श्रावणा से कातिक तक चार सहीने जब जब कभी बर्या होय तत्र स्थंडिल एक चक्रतरा जो दिना छायाकी बरती पर जंगल आदि शुने स्थान से बनायाहो तिसपर बैठे लेटे सभी तरहसे बर्याओंको बरसते समय अपने सडपर झले ऐसे चक्रतरे पर किसी पेडकी छाया भी न होनी चाहिये. फिर हेमंत जाड़की ऋतुमें मार्गशिर सहीनासे फागुनतक चार सहीने भर भीजा कपडा पहिने रहाकै. जिसको ऐसा तप करनेवाली शक्ति इतनी न होय सो जिनकी उपसे शक्तिहोय उसीको अनु-रूप तपस्या करै परंतु जिस प्रकारसे शरीर दुबल होसके सो काना चाहिये ॥ १० ॥ दूसरा धर्म कहिते हैं कि-जो कांटों से छेदना है या जो चंदनों से लेप करता है तिस पर न क्रोध करना न संतुष्टि सानना किंतु उसको और उसको भी समान बरि राख्ये अर्थात्-वानप्रस्थ के साथ यदि कोई खोटे दहन कति कर या कुछ खोटा काम करिके उसे ऐसी पीडा देने लगे मानो कांटोंसे छेदना है तिस पर क्रोध भी न करना चाहिये या यदि कोई ऐसी सेवा श्रुत्या आदि भगाई करने लगे जानों भीतल सुगंधिसान् चंदनोंका लेप करता होय तिसपर भी अन्यंत प्रमत्तता अपना न जाहर करै किंतु दोनोंपर एकहीसी प्रकृति अपना उवाचन दर्शाव्ये ॥ ५३ ॥ तामराधर्म कहितेहैं कि -अरिनयों को आत्मामें सजावेग कसिके दोडा भोजन कारतयें नृसही के नीचे वासकरै तहां वानप्रस्थोंकोही दर्शावे

वर्ति तावन्मात्रं भैक्ष्यं वानप्रस्थगृहेष्वेवाचरे दितिःसिताक्षरा=अथर्वि—जिस किसी वानप्रस्थ ने वनमें कुटी आदिकी रचना सहित श्रौतविधि से यज्ञके वितान में अग्निियों का स्थापन किया होय सो कुछ काल सेवन करके सेवा करने से असमर्थ होजाय अथवा कुटी और अन्नोका संग्रह आदि विस्तार जैसा छेयालीस मूलप्रलोक से लेकर पचास तक पाँच प्रलोकों में दर्शाया था तिसका वर्तावा करते करते भी पेट भर जाय जिससे वैराग्य उत्पन्न होने लगे इसीसे सत्रआडंबर छोड़िछाँडिके स्वतंत्र नियम धर्मकी साधना किया चाहें तिनके लिये यही चौवन ५४ का मूलप्रलोक योगीश्वर ने भी कहा और उन्हींके निमित्तपर मनुभी यह कहते हैं कि—वितानकी स्थापन करी अग्निियों को यथोक्त विधि के साथ अपने हृदय रूपी आत्मा में आरोपित करके अनग्निहोजावै और अनिकेत होजावै कि अग्निभी न रक्वै और कुटीआदि स्थान का बखेडा भी न रक्वै और मुनिरूप होकर कंद मूल फल भोजन कियाकरै और वृक्षों के नीचे विग्राम लेकर चाहें तहाँ इच्छा के अनुसार टिका करै (इसपर सिताक्षराकार कहते हैं कि मौन रहनेका व्रतसाधै तिससे मुनि कहावै यह तात्पर्य है) और इन्ही फलमूल आदि के न मिलने में योगीश्वर के मूल प्रलोक वालानियम संसक्तना कि प्राणों की धारणा बनोरहने के अर्थसे भिक्षाको आचरै परंतु भिक्षाभी सर्वत्र नहीं साँगे किंतु केवल वानप्रस्थोंके घर साँगे जो पहिली रीतिके अनुगारकही और अन्नका संग्रह किये स्थानधारी बने वंटे हों (उनका धर्म देखो ४६ । ४७ प्रलोकोंसे) अतिथि को भिक्षा देना उन्हींका यह धर्महै तथा अनिकेतनवानप्रस्थका उन्हींसे भिक्षालेनेकाधर्महै जो अभीवरानहोरहाहै=परंतु=जवसेभी भिक्षा न मिलसके तब क्या करना चाहिये तिसका धर्म दूसरा है सो देखो अगले मूलप्रलोक में ॥ ५५ ॥

(क्वचिद्ग्रामादपि भिक्षाचरणां)

ग्रामादाहृत्यवाग्रासानष्टोभुंजीतवाग्यतः ५५ पूर्वाय

अर्थः—या ग्राम से भिक्षा लाकर आठ प्राणों को मौन साधे वाणी को जितेहृदये भोगे=अर्थात्—पूर्वोक्त फल मूल आदि न मिलने पर वानप्रस्थों के घरभी निकट न होय तिनकी भिक्षा न मिलसके तब अन्य किसी ग्रामही में जाकर भिक्षा लावै ॥ १ ॥ ५५

५५ अधिकोक्तिः—पहिले ४६ छेयातीन मूलप्रलोकों में स्थानधारीवानप्रस्थों के जो धर्म कहे गयेये उनसे नीतार श्यामक आदि मुनियों के अन्न भोजन काना

दिशिको चला जावै=अर्थात्—जिस वानप्रस्थ पर अत्यंत बुढ़ापा या प्रबल रोगहोने आदि कारणों से शास जाकर भिक्षा भी न लाई जाय किंतु चलाफिरी आदि कोई भी काम जिसपर न होसके सो ऐसाकरै कि वायुको भक्षणा करते हुये ईशानीदिशा के पर्वती मार्गों में तहाँतक सीधा तुक्काके समान चलाजावै कि जहाँपर उसकादेह-पात होजाय; यही सहा प्रस्थान कहा जाता है ॥ ५५ ॥

५५ अधिकोक्तिः=मनुः=अपराजितांवास्थायगच्छेद्दिशामजिह्वगः=अर्थात्—मनु ने यहभीकहाहै किजो पहिलेकहे नियम न चलसके तौ अपराजिता नामकीईशानी दिशामें उपस्थितहोकर सीधेपैरों सत बांधेबिना विचारमार्गके देहांतपर्यंतचलाजाय. इसी को सहा प्रस्थान भी कहते हैं—यद्यपि—वानप्रस्थ के लिये सर्वत्र यह विधान होसक्ता है कि वह जिस देशमें उपस्थित होय तहाँ अपने ठिकाने से लेकर ईशानी दिशा को प्रस्थान करै तथापि विशेष कर हिमालय पर्वत इस कार्य के निमित्त में प्रसिद्ध है कि जहाँ पांडव आदि अनेक महात्मा देह त्यागने को पहुँचेक्योंकि उसमें देह त्यागने से सीधा स्वर्गहीमें जाताहै वल्कि हिमालय के उत्तर भागमें स्वर्गरोहणा पंथ इस नाम से मार्गही एक सबसे जुदा प्रसिद्ध है उसी को सहापथ भी कहते हैं उसीको ठीक सहा प्रस्थान जानों क्योकि स्वर्ग पर चढि जाने का मार्ग है इसका ठिकाना भी श्री वद्रीनाथ जी से पचासही साठ कोसके अनुमान अंतर पर सुनाजाता है—वल्कि बहुधा तीर्थ के यात्री लोग अद्यापि उसके दर्शनसाध के निमित्त जाया करते थे उनमें से बहुतेरे अपनी अदासे देह त्यागने को भी आगे बढिजाते थे. कुछ दिनों से अंगरेजी सरकार ने देह त्यागने का नियंत्रण कायम करके वहाँके अधिकर्ता पंडालोगों से इत्तरारभी लेलियेमुनेजातेहैं कि उस मार्गके दर्शनसाधकेनिमित्त यात्री जानेपावै लेकिन देहत्यागनेके लियेवहाँसे आगे न बढने पावै. कदाचित्त उनसेवि-परीत किसीसालमें एक दो यात्री आगे बढिजाय तौ प्रतिकूर्ति उतलाजुर्माना(धनदंड) पंडालोगों को देना पडै. इस लिये दर्शन साधके लिये भी जोकोई यात्री जाना चाह तेहें सो पंडालोगों की जनानत से जाने पाते हैं अन्यथा नहीं. क्योकि धर्मशास्त्र में जो देह त्यागना इसी जघे पर आदेश किया गया सो हर गुरु गुरुपुत्रों को नहीं केवल वानप्रस्थ का यह धर्म है कि जिसने पूर्वोक्त प्रकारों से तपस्या भी कुछ बंधन दारा हो और जिष्ट अपने सब इरादों से निर्वल भी होचुका हो ॥ ० ॥ जब कोई वानप्रस्थ इतना निर्वल होचुका हो जिस पर सहाप्रस्थान की आज्ञा भी न होसके सो जोरों प्रकारोंसे देह त्यागै कि जिन प्रकारों की आज्ञा मानने विधीनाय=तथाच स्मृत्यं

श्राद्धकृतसत्यवादीच गृहस्थोपि विमुच्यते इति गृहस्थस्यापि मोक्षप्रतिपादनंतद्वांतरानु
भूतपरिव्रज्यस्यैवेत्यवगंतव्यं=अर्थात्--वे कहिते हैं कि जैसा व्यौरा ऊपर हमने कहि
समुक्ताया उली सबवसे युति में भी यह भूमिका पहिले कहिकर कि धर्म के तीन
स्कंध (बड़े मोटेबुद्धे) होते हैं--फिर उन तीनोंके रूप जुदे दर्शाये गये कि नित्यनैमित्तिक
आदि यज्ञों का करना और वेद विद्याका अभ्यास राखना और दान करते रहना
यह सब काम गृहस्थी का होता है सो धर्म का पहिला गुहा जानना १ और केवल
तप करना वानप्रस्थका स्वाभाविक काम होता है सो धर्मका दूसरा गुहा जानना २
और ब्रह्मचारी होके सदा अपने आचार्य गुरुके कुलमें वासकरे और निपट आचार्य
के कुलहीमें अपने देहको मरणा पर्यंत खपावे यह नैष्ठिक ब्रह्मचारी का काम है
सो धर्मका तीसरा स्कंध जानै--मिताक्षराकार कहिते हैं कि इस प्रकार धर्मके तीन
स्कंधोंके बहाने से गृहस्थी १ वानप्रस्थ २ नैष्ठिक ब्रह्मचारी ३ इन तीनों का स्वरूप
समुक्ताइके-यह कहा गया है कि ये तीनों आयसी यदि इसी प्रकार अपने कामों
का वर्तवा करे तौ ये सभी पवित्र लोकों से जाते हैं इसगीति से तीनों को पुराय
लोकों का मिलना समझाय के--यह कहना छोडि दिया गया कि ब्रह्म के आरा-
धन में आरूढ होने से मोक्षरूपी अमृत को पाते. सो इसलिये छोडा गया कि चौथा
संन्यास धर्मका आयस जो वाकी रह गया जो परिव्राजकों का ठिकाना बडा प्रसिद्ध
है उसी को अमृतत्व मिलता है अर्थात् उस कथन के छोड देने से भी यह आगय
सिद्ध होता है कि साक्षात् ब्रह्म के स्वरूप का ध्यान योग आराधन करनेवाला
परिव्राजक नाम संन्यासीही मुक्ति रूपी अमृतत्व को पाता है ग्रहर्था आदि तीनों
में और कोई नहीं पासता है (यह कहिकर मिताक्षराकार फिर कहते हैं कि)
यद्यपि आगे २०५ दोसौपाँचवें सूत्र पल्लोक में ओशीचा आयसी अपने मन्वमें यह
कहैवे कि ऐसे लक्षरों वाला गृहस्थी पुरुष भी मुक्ति को पाता है तौ भी यह
उपल्ले लिये समझना जो पहिले जन्मों में परिव्राजक होकर संन्यास धर्मका नाम
कर चुका और उस जराह किनी तनु मे मुक्ति इनकी न हो सकी तौ तौ पुन जन्म में
गृहस्थी होते भी मोक्षफल का अधिकारी होजायता परंतु वाचस्पिजनात्यक्त प्रतिपा
नहीं है=अथ स्यादाप्रियस्तु=सोसन्निहतावगन्तार परिव्राजकाना वानप्रस्थाना प्रमंगसे
बहुत सुंदर यह दर्शन किया जिसके संन्यास धर्मका प्रकण्ठा जो आगे आरभ होनेवा-
ला है तिसकी भूमि जानपडी और नित्यता जातपदने से उनमें विद्वाना जगाने का
उत्साह बढने लगा. तदा यह वार्ता एक नुर्य है कि उन्होंने गृहस्थी आदि किनी

उसके प्रसंग से संन्यासी और गृहस्थों की विशेषता भी चमकाई गई अब इससे आगे संन्यास धर्म के प्रकरणा का प्रारंभ किया जायगा वह बहुत बड़ा है सो अनेक परिच्छेदों में जाकर पूरा होगा क्योंकि उसके साथ अध्यात्म रूपी ब्रह्म विद्या का विस्तार किया जायगा ॥ इतिवानप्रस्थधर्मप्रकरणम् ॥

इत्यापद्धर्म सहितं वानप्रस्थाश्रम प्रकरणं द्वितीयम्

इस प्रकारका सें छटा सातवां दो परिच्छेद हैं कि उनमें एक छटा परिच्छेद आपत्काल के धर्मोंपर आरूढ है कि जहां मुख्य धर्मोंसे निर्वाह न होता हो तहां आपत्कालिक धर्मोंसे निर्वाह किया जाय-उसके बाद सातवां परिच्छेद केवल वानप्रस्थाश्रमके धर्मोंपर आरूढ है कि जहां कहीं आपत्कालिक मर्यादा से भी काल क्षेप न होसके तहां गृहस्थ धर्मका आडंबर समर्थपुत्रोंके ऊपर छोड़ि छाड़िके गनवासी होकर वानप्रस्थ आग्रम स्वीकार करै-इसमें भी यदि पुत्रोंका अभाव देखै तो पत्नी को भी साथ लेजावै या पत्नी भी न हो तो एकाकी चला जाना बहुत उत्तम है ॥

अथ चतुर्थाश्रम धर्मारंभः ॥

—*—

अथसंन्यासग्रहणविधानपूर्वकंपरिव्राजकस्वरूप

निरूपणोऽयंपरिच्छेदः ६

५६ अधिकोक्तिः—सब कोई नहीं इसका यह तात्पर्य है कि गृहस्थी पुरुष पर तीन भांतिके ऋणा होते हैं तिनको प्रथम अच्छीतरह से उद्धार करे वही संन्यासी होकर मोक्ष फल पाता है अन्यथा जिसने तीनों ऋणा उद्धार न कियेहों सो मोक्षपद पानेका अधिकारी नहीं है—यथाह मनुः—ऋणानित्रीशयपाहृत्य सतोसोक्षेनिवेशयेत् अनपाहृत्यसोक्षतु सेवसानोब्रजत्यधः—अर्थात्—तीनों ऋणा शोधिके तब मोक्षमें मनको लगावे क्योंकि ऋणा शोधे बिना मोक्षका सेवन करते हुये भी नरकही को जाता है (तीनों ऋणाका स्वरूप आगे इसी वार्ता में देखना उसमें पुत्र का उत्पन्न करना भी एक ऋणा शोधना रहिरता है) सूतावन ५७ के मूल प्रलोकमें पुत्रवाच जो कहागया तिसका दूसरा अर्थ यह भी है कि संतान उत्पादन किये बिना थोड़ी अवस्थावाला पुरुष जिसके सन्तान होइकनेका भरोसा आगे को होय वह संन्यासी न होजाय क्योंकि अभी इस ऋणा से छुटकारा नहीं मिला परंतु यह नियम केवल गृहस्थी को समुक्तना ॥ ० ॥ यदि कोई पुरुष नैष्ठिक ब्रह्मचर्य में उपस्थित होतेहुये संन्यास लेना चाहै तिसके लिये संतान पैदाहोने आदिका कुछ नियम नहीं है अर्थात् बन् संतान पैदा किये बिनाहीं संन्यासी होजाय तौभी ऋणा नहीं रहा क्योंकि नैष्ठिक ब्रह्मचारी वही कहाता है जिसने विवाह न क्रियाहो तौ फिर भार्याका सग्रह न होने से संतान उत्पादन करने का अधिकारही उसको नहीं रहा (कदाचित् यह कहो कि जन्मतके लिये विवाह करना चाहिये सोभी नहीं क्योंकि विवाह करनेसे उत्तरा रागपे फलजा होगा जिससे विरास जाता रहेगा वैराग्यके न होनेसे संन्यासका लेना भी मारागया) और-- यह शंका न करनी चाहिये कि तीनों ऋणाउद्धारकरनेकी आशापूर्वा विधि प्रसिद्धहै सोई स्त्रियोंका संग्रहकराना स्वीचक्रमिदकरतोहो तिसमें व्रतचारी को भी दार संग्रहकरिके संतानपैदाकरनी चाहिये क्योंकि जहां वैवाहिक में गमाही बानक

न्यायसे समुच्चय पक्षका दर्शाने वाला है कि वनसे वा घरसे वा तीरसे ब्रह्मचर्यही से यदि कोई संन्यास लेना चाहे यह अर्थ सूचन करता है और इसीसे दूसरा मुख्य पक्ष भी संसिद्ध होता है—तिससे यह तात्पर्य पाया गया कि हर किसी आश्रमका मुख्य अपने आश्रम से अनंतरही संन्यास लेसक्ता है—इसीलिये—जावाल मुनिको यु तिमैं दोतरह से विकल्प कहा गया है उसमें एक यही पक्ष जो कर्हिचुके दूसरा मुख्य पक्ष भी उपस्थित है—तथाच्युतिः=ब्रह्मचर्यपरिसमाप्यगृहीभवेत्गृहीभूत्वावनीभवेत् वनीभूत्वाप्रव्रजेत्तद्यदिवेतरयात्र ह्यचर्यदिवप्रव्रजेद्गृहाद्वनाडा = अर्थात्—ब्रह्मचर्य धारणा करै उसको अच्छीरीतिसे पूराकरिके गृहस्थो वने गृहस्थको परा करिके वानप्रस्थ होय वनके आश्रम को पूरा साधन करिके संन्यास धारणा करै (यही मुख्य पक्षवाला कल्प है) पर जिससे यह चारों आश्रम यथा क्रमसे न नतिपरै सो औरही तरह ब्रह्मचर्यही से संन्यास लेलेवै या गृहस्थी बनिके घरहीसे या वीथ में गृहस्थ छोड़ि ब्रह्मचारी से वानप्रस्थ बनिकर उसीके अनंतर संन्यास लेवै (सब तरहसे गुंजाइश मिली अब संदेह जातारहा) परंतु यह भी नियम नहीं कि यवश्यभाव से वानप्रस्थ या संन्यासी होजाना क्योंकि गौतम ने गार्हस्थ्यके सम्मुख उपरालू आश्रमों को रोक वाध भी प्रदर्शित किया है = यदाह गौतम—सक्ताय व्यंत्वाचार्याः प्रत्यक्षविधानाद्गार्हस्थ्यस्य=अर्थात्—जिन आचार्यों ने चार आश्रम दर्शाये उन्हीं ने सक्तायम्य भी गृहस्थ का प्रत्यक्ष विधान होने से कहा है कि जिसके गृहस्थी आश्रम प्रत्यक्ष पूरे विधि विधान से बना चुना देखपड़े जहां किभी धर्मकी न्यूनता न समझ परै तिसको एक यही आश्रम सेवन काना चाहिये जो सबसे जेठा होता है क्योंकि यह सभी आश्रमों की धर्मरक्षा करसक्ता है. उनासे जेठा पन के दो हेतु इसमें होते हैं वानप्रस्थ प्रकरणा के अंत में लिख चुके तहाँ देवों ऊपरली शंका के समाधान पर भी ध्यान करों कि संन्यास धर्म लेने सत्ये. माण्ड्य. विकल्प. और लक्ष्मी सबतरह की गुंजायगदानेपक्ष दर्शाये राये तिससबकी जदवेद से ठहरी उनी च्युति मूलत्व से कर्ताकी इच्छा बनवान ठहरी कि वह जिसमें अपना सुभीता समझै उसीका सेवन करै और जिस रीति से दोसके उभी रीति से करै सभी प्रकारों का प्रसारण एक देवहै तिसमें दिग्देव की संभावना कुछ नहीं है ॥ ७ ॥ तीर्थ विरले विधानों की लसक्त को भरी ज्ञान उतका योग्य प्रकटने के निमित्त से सिताक्षराकार ने एक फाजल उपाख्यान भी आगेपिन किया सो देवों (यन्केप्रियं पर्यायत सान्धैरुहं स्मार्त्स्वाम्नेयिकार्षीनां गार्हस्थ्येन अंत्याधः गार्हस्थ्यार्त्तकृतान्बर्त्नाग

है कि तीनों वर्णोंको वेदपठिके चार आयस होतेहैं इस वचनके प्रभावसे भी द्विजाती मात्र का अधिकार कहिते हैं कि तीनोंवर्णोंमें जिसकी इच्छाहोय सो संन्यास लेसक्ता है केवल शूद्र नहीं ॥ यहां तक संन्यास लेने का ढंगही कहा गया किंतु इसी ढंग से संन्यास लेचुकने वाले को क्या क्या धर्मवर्तने होंगेशो आगे देखो ॥ ५६ ॥ ५७ ॥

(संन्यासिधर्माः)

सर्वभूतहितःशान्तस्त्रिदंडीसकमंडलुः । एकारामःपरिव्रज्यभिक्षार्थीग्राममाश्रयेत् ५८ ॥

अर्थः—परिव्राजकहोके सर्वभूतों का हित होय शान्त होय त्रिदंडीहोय कमंडल सहित होय एकारामहोय भिक्षाके अर्थ ग्रामका आयस लेवै=अर्थात्—संन्यासी सब कर्मों का त्याग करने से कहाता है उसी को परिव्राजकभी इसलिये कहिते हैं कि वह धरती पर फिरने लगताहै कहीं ठिकाना बांधि के नहींठिकता है इस फिरने के उपलक्षणा से संन्यास के आयस को प्रव्रज्याभी कहिते हैं उस प्रव्रज्यापर आरुढ होय सो नित्यंप्रति सभी प्राणी मात्र का हितहोय इसका यह तात्पर्य नहीं है कि उनके साथ कुछ भलाईका आचरण करनेलगे किंतुयही तात्पर्यहै कि जो कोई कुछ अपनेसाथ प्यारका वर्तवा करै या कोई कुछअप्रियवर्तवाकरै उन दोनों से उदासीन बुद्धिवनी राखै इत्यादि बातोंका व्योरा अधिकोक्ति में ॥ ५८ ॥

५८ अधिकोक्तिः—दोनोंसे उदासीन बुद्धि राखै क्योंकि दुख देने वाले का प्रतिकार करने से किसी प्रकारकी हिंसा करनी परैगी तथा सुख देने वाले पर अनुग्रह करनेसे उसके किसी शत्रुको कुछ पीडा देनी परैगी इसी से संन्यासी को इन दोनोंबात का नियेध है=तथाच गौतमः=हिंसाऽनुग्रहयोरनारंभी=अर्थात्—हिंसा और अनुग्रह इन दोनों का आरंभ कभी नकरै शान्त होय यह जो ऊपर कहागया तिसका यह तात्पर्य है बाहरली प्रत्यक्ष इंद्रियां और मनको आदि लेकर भीतर की इंद्रियां दो तरह की होती हैं तिनमें चंचलता न खड़ी होनेदेय त्रिदंडी होनाभी कहा तिसका यह तात्पर्य है तीन दंड उसके पास रहा करै जो बांसके होते हैं और गौत्र आदि गाँव के लियेकमंडलुका राखना कहा सो हरवक्त जलमें भग चाहिये=तथाच मृत्युंतरे प्रजापत्येष्टयंतं रंशीन वैशावांदंडान्मूर्धप्रसागांदक्षिणोत्तराणां धारयेत् सद्यंन सो दकंकमंडलुः=अर्थात्—पूर्वोक्त प्राजापत्य नामका याग कानके अंतर बांस केनीम दंडे जो अपने साथ पर्यंत कनपटी तक लंबेहों तिनको बाहने हाथ में लेकर तर्जनीकमें और बायें हाथमें ज तमे भग कमंडलु होय पन्नु-निर्विकल्प नियम नहींहै कि तीन

ही वंड होय विकल्पसे एकभी होता है (एकवंडीत्रिवंडीवेति वौधायनः) जैसा यह वौधायन का कहा विकल्प है कि एक वंडी वने या त्रिवंडी वने विकल्प उसकी उच्छा पर आरूढ है=एवं=चतुर्विंशति सतनामके गात्र मे भी विकल्प है=यथा=चतुर्थसायसंगच्छेद्ब्रह्मविद्यापरायणाः एकवंडीत्रिवंडीवात्सर्वसंगविवर्जितः=अर्थात्— ब्रह्म विद्या जो वेदांत नाम से अध्यात्म विद्या कहानी है तिसमें निपुणा और तत्पर होकर संन्यास नामके चौथे आयसको पहुँचै किस रीतिसे कि एक वंडी या त्रिवंडी बनिके जाय और सर्व संगों से रहित होके जाय अर्थात् इष्टः सिद्ध संवधी नाते गोते आदि सबकाही संग छोडि उनका सोह सुहृद्वत् तोड़े हुये जाय किसी से कुछ वास्ता अपना न बाकी रखवे=और=गिरवा सूत्र बना रखने या त्यागि देने मध्ये भी ग्रन्थांतरसे विकल्प है कि चाहे बनाखवे या निपट त्यागि देवे सो सब आगे बचनों मे देखो (सुंडःशिखी वेति रीतसः) रीतमने कहा है कि सुंडितहोय या शिखावाउ होय (सुंडाऽससोऽपरिग्रह इति वशिष्ठः) वशिष्ठ ने कहाहै कि सुंडा होय और म-सस होय अर्थात् किसी प्राणी या किसी जगह न्यान या किसी वस्तु पर मामता अपनी न रखवे कि वह मेरा या यह मेरा और अर्थात्सभीहाय अर्थात् चाकीचुल्गा मिलवडाआदि गृहस्थीवाले उपकरणोंकासंग्रहकर्मा न करे-यहतो मंडितयोगिशर्मा का विकल्प दर्शाया आगे यज्ञोपवीतका विकल्प दर्शाते हैं मां देव्यां (मांशयान्कं गाञ्छित्य विसृज्ययज्ञोपवीत सितिकाटकय नि)

कि जिसमें वाकीरहे विधानोंका प्रतिपादन होता है=यथा=अथसन्नोपवीत सप्सुत्र
 होतिभूःस्वाहेति अथदंडमादत्तेसखेसांगोपायेति=अर्थात्-पूर्वोक्तप्राजापत्य यार्गाकिये
 पीछे चलते समय (भूःस्वाहा) इस संवक्रो पढिकर जलकी धाराओं में उपवीतसूत्र
 को होमि देताहै फिर पूर्वोक्त दंडको हाथमें लेताहै इस संवसे कि (सखेसांगोपाय)
 मित्र मुझे वचाइयो संसार के दुःखोंसे=यहां तक सभी वचनों में जनेऊ का त्यागि
 देना सिद्ध हुआ. अगिले देवल के वचन से जनेऊ रखिलेना भी सिद्ध होगा इसीसे
 ऊपर इसका विकल्प कहा गयाथा (और जिसको रुकही वस्त्र से निर्वाह करनेकी
 शक्ति निपट न हो सो जाड़ेआदि की ऋतु में दूसरी कयरी भी साथ रखवै =यथा
 ह देवलः=कायायीमुंडस्त्रिदंडीकमंडलु पवित्रपादुका११सनदंघामात्रः=अर्थात्-संन्या-
 सी मुड मुडायें हुये सिर्फ इतनी चीजें साथ रखवै. गेरुआ आदि कयाय वस्त्र. तीनदंड-
 कसंडलु जल से भरा. पवित्र नाम यज्ञोपवीत सूत्र. पादुका खडाऊं. आसन. कंथाकयरी
 एकाराम होय यह योगीश्वरके मूलश्लोकमें कहा तिसका तात्पर्यहै कि और किसी
 संन्यासी को अपनेसाथ न रखवै न किसी संन्यासिनी स्त्रीको साथ रखवै (यहां यह
 संदेह न करना कि पुरुषही संन्यास लेते होंगे क्योंकि (स्त्रीसांचैके इति बोधायन)
 बोधायन मुनिने विरलैंके मतसे स्त्रियोंको भी संन्यास लेना कहाहै) किसी संन्यासी
 आदिको साथ लेनेमें जो दोयहें तिनको दक्षने प्रकाश किया है=यथा=यकोभिसार्य
 योक्तश्चद्वावेवमियुनंस्मृतम् त्रयोग्रामःसमाख्यात ऊर्ध्वतुनगरायते राजवार्तादितेर्यांतु
 भिक्षावार्तापरस्परम् अपिपैशुन्यमात्पर्यसन्निकर्त्यान्नसंगयः=अर्थात्-भिक्षुकनाम सं-
 न्यासी का जैसा लक्षणा कहागया वो सब उसीमें समुभूता जो एकला असहाय फि-
 रता होय. तिससे जहां दो भिक्षुक इकट्ठे होय तिनको स्त्री पुरुषके तुल्य रें. घूर्नी जोडा
 कहा गया है. जहां कहीं तीन भिक्षुक एकत्र होय तिनको ग्रामके समान जानें. उन
 से अधिक जहां चारि पांच आदि इकट्ठे होय तहां नगर शहर के समान भवभट्ट
 होता है क्योंकि उनके परस्पर समीप होनेसे राजाओं की वार्ता और भिक्षार्की वार्ता
 पिशुनता की वार्ता सत्सस्ताकी वार्ता भी अवश्य होने लगतीहै तिसमें अंकार आदि
 आत्माके स्वरूप ध्यान भक्तिजाते हैं सदेह इनमें नहीं हैं=स न शतोक्त में (पाश्चिध्य)
 यही पद आया था इसको यही अर्थहै कि सब कुछ त्यागिके संन्यासी नवाहोय. ति-
 ससे-भै लेरा आदि जो अभिमान दो स्वरूप हैं तिनको लिये जो कुछ लोकादार्ग कर्म
 होतेहों तिनको त्यागि देवें और वेदमें भी जो नित्य और कान्य रूपी कर्म करने कें
 होय तिनको त्यागि देवें=तथात्र मनुः=सुखाभ्युदयिकंचैवनेः अर्थान्कमेवच प्रवृत्तन

इससे अधिक नहीं परंतु यह नियम वर्या के दिवसों से अन्यत्र सुखेकालमें समझना किन्तु वर्या होतेहुये पाँच दिनसे अधिक भी टिकिजानेमें दोष नहीं बल्कि वर्याऋतु से अति वर्या होता जानिके चारसहीना तक निरंतर भीटिके तोकुछ दोष नहीं (यहां यद्यपि अति वर्याके होनेमें समर्थ को भी निरन्तर टिकनेका दोषनहीं कहा परन्तु खंडवर्याके होनेमें निरन्तर चारसहीने टिकिजाने से दोष प्रकट होताहै तथापि जो असमर्थहोय तिसको खराड वृष्टिके होने परभी चारसहीनाभर टिकनेका दोषनहीं यह देवलकेवचन से भी सिद्ध होचुकाहै ॥ किसरीतिसे भिक्षासांगे यहनियम अगिले मूल प्रतीकसे देखो ॥ ५८ ॥

(भिक्षाचरण प्रकारः)

अप्रसत्तश्चरैर्द्रव्यंसायाहेनभिलक्षितः । रहितेभिक्षुकेर्धमेयात्रामात्रमलोलुपः ५९ ॥

अर्थः—सायाह्न में भिक्षुकों से रहित गाँव में यात्रा मात्रही भैक्ष्य को चरै अतो-
लुप अप्रसत्त अनभिलक्षित होके=अर्थात्—भिक्षा सांगते समय अपने मुँहकी बागी
तथा नेत्रों की निगाह तथा औरही किसी अंगकी समस्या आदि चपलता से रहित
होय सो अप्रसत्तहोना कहाता है और अनभिलक्षित होय अर्थात् ज्योतिष वैद्यक
संघ यंत्र इंद्रजाल आदि किसी विद्या के लक्षणमे लोगों को रिक्ताय के न सांगेऔर
दिनका पिछला पाँचवाँ भाग जो सायाह्न कहाता है तिममें सांगे पहिले से नहीं
और जिस गाँव में भिक्षुक बहुत न होय तिमही से सांगे और उतनाही सांगे जिसमें
शरीर और प्राणों की यात्रा बनी रहे बहुत न सांगे और अलोलुप होके सांगे किन्तु
सीढे खडे आदि पदार्थों को न सांगे जैसा मिन जाय उन्हीमे संतुष्टि माने ॥ ५९ ॥

शीघ्र चलाजाय (इससे भी यह तर्क पैदा होती है कि जब इस तरह के नियेध टाँहने
 तो फिर हाथखाली आदि अवकाशोंको न देखिके तत्काल चलाजाय पर लौटिके
 दुवारा तिवारा फेराकरै सो भी नहीं क्योंकि (एककालंचरेद्विषां एकहोकात भिक्षा
 सांगै इस नियमसे दुवारा आदि फेराकरनेका नियेध सबसे पहिले कहिचुकेऔर इसी
 लिये दूसरे अद्वासे मनुने यह कहाहै (भैक्ष्यप्रसक्तौहियतिर्विषयेष्वपिसञ्जति) कि
 यती पुरुष भिक्षाके मध्ये बहुत लालसा बढ़ाने से संसारी विययों में रचता और फं-
 सताहै जिससे योगभ्रष्ट होजाना दुर्घट नहींहै ॥ योगीश्वर ने मूलप्रलोक में अर्नाभ ल-
 क्षित होके सांगना कहाहै कि भिक्षा के लिये कोईसा विद्याका लक्षणा अपने साथ
 न राखै तिसके मध्ये मनुने स्पष्ट व्यौरा दर्शाया है=यथा=नचोत्पातनिमित्ताभ्यांन
 नक्षत्रांगविद्यया नानुशासनवादाभ्यांभिद्व्यांलिप्सेतर्हिचित्त=अर्थात्— यतीपुरुष
 कभी भी भविष्य उत्पातोंकी उत्पत्ति और फलोंको सुनाइ के भिक्षापर लालसा न
 राखै एवं कभी भी शुभा शुभ शकूनरूपी उत्पन्न हुये निमित्तों के फल कहिकर या
 सगुनीती आदि प्रश्नफल कहिकर भिक्षा न चाहे एवं किसीप्रकारके समुद्रिक आदि
 हाथके लक्षणा कहिकर या कोईसी आज्ञारूपी अनुशासनकी बात देकर भिक्षा न
 सांगै एवंकिसी वाद विवादका तत्त्व निधरिण करिके भिक्षा न सांगै न ज्योतिषकी
 विद्याका वर्तावा करिके (इसका यह तात्पर्य नहींहै कि इनसे उपरालू वैद्यकआदि
 विद्याओं से सांगना दोष न होगा किन्तु सिद्धांत इसका यहीहै कि जिन विद्याओं
 के नाम यहाँ नहींकहे तिनसे भी न सांगै क्योंकि संन्यासीको विद्याओंका त्यागकर
 देना पहिले कहिचुके तिसका यही प्रयोजन है जो यहाँ आकर दृढ़ किया गया
 सायंकाल सांगनेका प्रसंग वर्तमानहै तिसकेमध्ये एक जुदाप्रकार भी देखनेमें आता
 है=तदाहवशिष्यः=ब्राह्मणाकुलेवायल्लभेत तदभुंजीत सायंप्रातर्मासवर्ज्यय (तदगक
 विययमिति मिताक्षरा=अर्थात्—वगिय ने जो कहा है कि नाभत या नवेरेही नव
 कभी किसी ब्राह्मणके घरमें जो कुछ मिलिजाय या विकल्पमें औसी किसी वि-
 जातीके घरमें जो कुछ मिलिजाय जोई भोग में लताजै परन्तु सांभको ज्योतिके यह
 नियम जानना अर्थात् किसी घने देगके निधानी ब्राह्मणायादि विजानी ज्योतिके
 नके सांभ खायाजाता हो वही लाकर भिक्षामें समर्पण करे तो संन्यासीको न खा-
 ना चाहिये—इस वचन से नाभत या नवेरेका जो विकल्प कहा सो नवेरा कहिके में
 दोपहर के पहिलेका समय निश्चितभया (उपपर मिताक्षराकारकाहित है कि यह
 दुपहरसे पहिले भिक्षा भोगनगानेका चर्चा सिद्ध इसकीलिये जानना जो गौरी आदि

होनेसे अशक्तहोय जिसपर सबेरे स्वाडलेने बिना सांभतक न दहिराजाय पञ्च दो-
 नोंब्रार खानेका नियम इसमें नहीं है = भिक्षुकों से खाली रांघमें भिक्षा मांगने जाय
 यह मूलप्रलोक में योगीचरने कहा — इसका यह तात्पर्य है कि पाखराडो आदि न-
 कली भिक्षुक जहां बहुतहोय तहां देनेवालोंको अग्रवा होजाती है तब सब स्वरूपमें
 भी अग्रवा नहीं करते हैं इन्ही बातोंपर अनुते कुछ और भी विगेष नियम क्रिया है =
 तथाच = तथापसैव हिंस्रसौववियोभिरपिवाच्यभिः आक्रोशांभिक्षुक्तेरन्प्रेमगारमुपमत्रजेत =
 अर्थात् — प्रासतो बहुत बढ़ाहेनेसे उसको दगा अत्रानक नहीं भी सालन होसकी है
 तिससे एकटोला मुहल्ला आदि शुद्ध ससक्तै बलिक्त अनुते इन वचन में सकानहीका
 शुद्धभाव देखना कहा है कि भिक्षालेनेको ऐसे घरमें न जावे जो तपसी या संगिता
 ब्राह्मणोंसे गहा हो या काक आदि बहुत पक्षियों से भराहोय या जवानपट्टे लंगारे
 आदियों से डटाहो या कुत्तोंसे रुकाहो या चोंगही क्रितीप्रकार के भिचारियों से
 घिराहोय ॥ मूल प्रलोकमें यह भी कहिचुके है कि उननाही मांगे जिसमें प्राणाकी
 रक्षा होसके उससे अधिक न मांगे तिनका परिभारा भी नवतने दगाया है यथा
 अर्थोभिक्षाः समादाय बुनिःसहचपंचया अदि प्रत्तानिना मर्वान्तोः श्रीयाचवारयत
 अर्थात् — भिक्षाके प्रयोजनवाला एकही शब्द मन्वमें निकानमेंके उपमान मान बना
 हुआ अर्थात् (सौन) चुपसाधे हुये आठ घरमें भिक्षा या मात घरमें लंकार या नरत
 मली दीखै तो पाँचही घरसेलेकर सदको जलाने शंकर निगर्षाते यागीकों जांग
 के भोजनकरै (वाराका जीतना यहाँ यही है कि सौते सौते अग्रकीनरा कठ न कर
 नहाप्रसाद ससक्ति के भोगै इलीलिये मूलप्रलोक में कहिचुके है कि तीसको लंकार
 णता छोडिकर खड़ी जीठी आदि न मांगे देना पावनेजाते भिक्षा मांगे यों
 मूलप्रलोक में देखो ॥ ५६ ॥

मर्यादा परिपाटी में द्रव्य शुद्धि प्रकरणा के द्वारा उसके शोधन की रीति देखनी चाहिये—इसी आशय के अनुसार अगला वचन है सो देखो=यदाह मनुः=अतैजसा निपात्राग्निातस्यस्युर्निर्व्रणानिच तेयामद्भिःस्मृतंशौचंचमसानामिवाध्वरे (चमसदृष्टांतो पादानेनप्रयोगिकीशुद्धिर्दर्शिता इतिसिताक्षरा=अर्थात्—उस यतीके पात्रहोय अतैजस धातुओंसे उपराल काठ आदि के परंतु निर्व्रण होय जिनमें छेद गडहिला आदि कुछ न होय जिसमें मैल भरै किंतु साफ़चिकने घुटे होय तिनका शौच करना सिर्फ जलसे कि जैसे यज्ञों में चमसनामी पात्रों की चिकनाई गरम जल से या टंडेभी जल से दूरकरते हैं (इसमें यज्ञसंबंधी चमस पात्रोंका दृष्टांत स्वीकारहोने से प्रयोगवती शुद्धि दर्शाई गई यह सिताक्षराने प्रकाश किया=सिताक्षराकार फिर कहतेहैं कि जिसके पास दूसरापात्र न होय सो भोजनभी उसी पात्रमें करै यहतात्पर्य देवलके वचनमें प्रतीत होताहै=यदाह देवलः=तत्रैक्ष्यंगृहीत्वै कांतेतेनपात्रेणान्येनवातुष्णीं सात्रग्रामं जीत=अर्थात्—उत्तमिष्णाको लेकर एकान्तमें उसी पात्रसे या और पात्रसे भोगै सोत्त साधिके और नियम किये हुये अपने पेटके अनुमान भरि भोगै अधिकनहीं (इस वचन में और किसी पात्र के कचन से दूसरा पात्र भी सिद्ध होता है इसीसे सिताक्षराकारनेभी यह कहा कि जिसकेपास दूसरा न होय परंतु दूसरा पात्र पास राखने वाला कोई वचन ऐसा नहीं पाया जिससे दोपात्रों की आज्ञा समझी जाय और पहिले जहाँ संन्यास लेनेका प्रारंभ किया तहाँ केवल कमंडलुका साथ होना कहा या सो जलका पात्र है यहाँ जो भिक्षा साँगनेके पात्र कहे तिनमें दूसरे पात्रका प्रयोग जनभी कुछ नहींहै तिससे यहां देवलके वचन में अन्यपात्रके शब्दमें टाकवत्र आदि समझे जातेहैं कि जिससे भिक्षा साँगनेका पात्र भोजन कर्मसे जुटा न करनापरं पन्तु जिसपर टाक पत्र आदि नहीं वह उसी भिक्षा पात्र मेंभोजन करे यह दिष्टांत दृष्टा ॥ यहाँ तक संन्यासी का डौल सात्र कहा गया ऐसे संन्यासी को उपामना सध्य जैसा नियम करना चाहिये सो अगले परिच्छेद में देखना ॥

(अथ संन्यास प्रसंगादेव अध्यात्म प्रकरणं सविस्तरं प्रारभ्यते)

इस प्रकरणा में त्रयोदश १३ परिच्छेद होंगे यह था वरुण ॥

अथ संन्यासाय कारुण्यं हृदि ज्ञानोत्पत्तिसाधनाय त
 कारणासमूहप्रदर्शकोऽयं परिच्छेदः (९) नवमः ॥

इस परिच्छेदमें ज्ञान के उत्पन्न करने कराने वाले सब कारणों का समूह दर्शा-
 या जायगा जिनको मूलशब्दों से संन्यासी के हृदयमें ज्ञानकी उत्पत्ति होय क्योंकि
 ज्ञान के उत्पन्न हुये बिना यह आयत नहीं चलता किंतु जानही इसका मूल है ॥

(यत्तेर्नियमाः)

विशेषकर भिक्षुक यती करके स्वातंत्र्य करने के लिये भी करनी चाहिये=अर्थात्-
वियय भोगोंकी अभिलाषा और अप्रिय विययोंका द्वेषभाव इनदोनोंसे उपजे होयें
करके कलंकित जो आशय नाम अंतःकरणा चतुष्टय अर्थात् मनबुद्धि अहंकार चित्त
इन चारोंमें घुसेहुये पाप कलंकों का क्षयकरना आशय की शुद्धि कहिलाती है से
प्राणायामों के अभ्यास से भिक्षुकको अवश्य करनी चाहिये अपने आत्माके स्वतः
होजानेके लिये. क्योंकि साक्षात् अद्वैत आत्मा का स्वरूपज्ञान उत्पन्न होनेके लिये
अंतः करणाकी शुद्धिहोना बहुत बड़ा कारणा है ॥ ६२ ॥

६२ अधिकोक्तिः—ऊपर लिखी वार्त्ता से यह सिद्धांत निकला कि विययों से
मनका राग लगना एक प्रतिबंध बड़ी रुकावट है तिसके मिटिजाने और तिससे उपजे
हुये दोषरूपी प्रतिबन्ध के मिटिजाने में आत्माका ध्यान धारणा आदि साधन करने
की स्वतंत्रता प्राप्त होतीहै यद्यपि यह सबके लिये उपकारी है तथापि भिक्षुक यती
को विशेषकर ऐसी शुद्धिका अनुष्ठान करना चाहिये क्योंकि मोक्षके अद्विकारियों
में सबसे बड़ा प्रधान वहीहै और मोक्ष जो पदार्थहै सो अन्तः करणाके शुद्धहुये बिना
अन्य उपायों से मिलना बड़ा दुर्घटहै=यथाहमनुः=दह्यंतेधमायमानानांवातूर्णाहियथा
मलाः तथेन्द्रियारणां दह्यंतेदोषाः प्राणास्यनिग्रहात् = अर्थात् --प्राणा वायुका निग्रह
प्राणायाम तिसकी धारणासे इंद्रियों के दोष उस तरह जलिजाते हैं कि जैसे लोहा
आदि धातुओं के धमाते हुये उनके मेल भस्म होजाते हैं--तिसमे अधिकतर प्राणा-
यामों की धारणासाधन कियाकरे. जिसका संक्षेप डील १११ गक्त सौ अक्षर मूल
प्रलोकमें और विस्तार १६८ गक्त सौ अक्षरानवे मूल प्रलोकमें दर्शाया जायगा तहाँ
तहाँ देखिलेना ॥ ६२ ॥

इन्द्रियों के निरोधका उपाय करना चाहिके संसारके स्वरूपको विचारें सो आगे
कहि के समुभातेहैं ॥ ६२ ॥

(संसारस्यानित्यरूपत्वं ध्येयम्)

मन में वैराग्य पैदा करने के लिये नानाभाँति रागों के निदान जो सूत्र और विद्या
 आदि अनेक सडाईय के बीच करने परते हैं गोचने चाहिये (यहाँ चकारके ध्वन्यर्थ
 से जनन और सरसा भी जैसे कष्टों से भोगने होते हैं विचारने चाहिये) तयः तियिद्व
 आचरसा आदि कर्मोंके फलसे उत्पन्न जो महा रौद्र आदि नरकों में गिरना रूपी
 (गतियाँ) चालें भोगनी होती हैं गोचनी चाहिये. तथा मनमें जो नानाभाँति की
 पीडा और चिंतारूपी आवे उत्पन्नहुआ करती हैं गोचनी चाहिये. तथा गरीरों में
 उर्रातिसार आदि बहुभागभेदोंसे व्याधे लगी रहतीहैं गोचना चाहिये. तथा क्लेश
 भी पाँच प्रकार के सदा लगे रहतेहैं (अविद्या अस्मिता रागद्वेषा भित्तियेगःपंचक्ले
 शाः)अयत्तिसदसे पहिलाक्लेश अविद्याअज्ञानहै जिसका स्वरूप लक्षणा अत्रिकोक्ति
 में देखना.दूसराक्लेश अस्मिता अहंता मयता रूपी मोह कहाताहै.तीसराक्लेश राग
 है जो रादत या प्रीति या अनुराग भी कहाता है.चौथा क्लेश द्वेषहै जो रागसे विप-
 रीत होताहै कि अप्रिय चीजोंको न चाहें.पाँचवां क्लेश अभिनिवेश है जो प्रायः
 स्त्री या बालक या अपशिडतमें रहताहै इसकास्वरूप अत्रिकोक्तिमें देखना.इन पाँचों
 से सर्वदाक्लेशहीउत्पन्नहोतेरहितेहैंतिसमेइनदानानाशः की केशवरागया गोचनेचाहिये.
 तथा जरातास है बुढापेका वह सबको अग्नि घेरतीहै जिनमें व्यापक ज्ञानी और
 ढोली होजाती और खाल से सलबट दिन्तु बलभी पण्डितमें है और उनी जगन्त मया
 से मनुष्यों के रूपमें भी विपर्यय अर्थात् उलटापन क्लृपता गुददापन आदि संजाता
 है विचारना चाहिये (६३) तैसेही यह गोचना चाहिये कि थोडा सरसा सूकर मर्ष
 आदि नानाभाँति की थोनियों से जन्म लेता होता

उपस्थित है वही परब्रह्मरूपी परमात्मा के बीचमें संस्थित हो रहा है यह देखें अर्थात् सर्वत्र सबजीवोंमें ऐसाही प्रतीत करने लगे ॥ ६३ ॥ ६४ ॥

६३ अधिकोक्तिः - ऊपरकी वार्त्ता में यह युक्ति भी प्रसारा देती है कि (आत्मा द्रष्टव्यः प्रोक्तव्यो संतव्यो निदिध्यासितव्यः-अत्र द्रष्टव्य इति साक्षात्काररूपं दर्शनमनुभूय तत्माधनत्वेन प्रोक्तव्यो संतव्यो निदिध्यासितव्य इति यत्र सा मनन निदिध्यासनाति विहितानीति सिताक्षराच्च) अर्थात्--आत्मा जो साक्षात्कार ब्रह्मका स्वरूप है वह देखना चाहिये सुनना चाहिये जानना और मनन करना चाहिये निदिध्यासित करना अर्थात् ध्यानयोग में लगाना चाहिये यह श्रुति ने समझाया--इसपर सिताक्षराकार भी यह कहते हैं कि साक्षात्कार देखना बहुत कठिन है तिनसे उसीके निमित्त में ये तीन उपाय युक्ति ने दर्शाये हैं कि १ आत्मा को व्याख्यान अवगा करै २ मनन करै ३ निदिध्यासन अर्थात् ध्यानयोग में धारणा करै--परन्तु--यहाँ पर ध्यानयोग कहने से प्राणागामों की धारणा मत समझो बल्कि जिसध्यान योगका चर्चा यहाँ किया गया तिसका अर्थ उसके स्वरूप से निदिध्यासन जानना. निदिध्यासन के दो तीनक अर्थ होते हैं एक तो अपरायत्त बोध जो केवल अपने ज्ञानही के अधीन बोध होय सो निदिध्यासन कहाताहै (अपरायत्तबोधोक्ति निदिध्यासनमुच्यते) दूसरे एक प्रकार के ध्यानरूपी विचारको निदिध्यासन कहते हैं जो अवगा और मनन दोनों के फलसे आत्मज्ञानका चिन्तन करते समय ध्यान लगाया जाताहै (ताभ्यांनिधि चिकित्स्येथैचित्तस्थस्यापितस्थयत्पकृतानत्वभेदनिर्दिष्ट्यासनमुच्यते) इसी नदगा का यह भी तात्पर्य है कि आत्मा मंदन्धी जो कुछ व्याख्यान गुरु के मुख से पातगा सुनाहोय वही श्रवणा कहाता है फिर सुनेहुये को अच्छी तरह साम्यगामे समझ के विचार सहित प्रसारा सान्त्तिक स्वीकार कियाहोय वही मनन होताहै फिर उपाका रक्ताग्र चित्त से निरंतर ध्यान लगाये सत्यभाव से धारणा चर्चागामे यही निदिध्यासन कहाजाता है

धीः धृतिः दमः संयतेन्द्रियता. विद्या. यह सब धर्म कहा है = ६६ = अर्थात् — संन्यास आश्रम के चिह्न जो बंद कमंडल आदि कर्हिचुके वे चिह्न ही उसके धर्मका विशेषकारण झुझ नहीं हैं क्योंकि ये चिह्न तो करनेमें सुगमता से धारण होसकते हैं कुछ कठिनाता इनमें नहीं है (अर्थात् उन चिह्नों के होतेहुये बीच में इस आश्रम के धर्मका स्वप्न अपने सूक्ष्म रूपसे दूसरा है सो कहते हैं कि) इसकारण से यह चाहिये कि अपनेको जो जो बातें अपथ्य प्रतीत होतीहों दृष्टांत जैसे किसीने खोटा वचन सुनाया सो अपने हृदय में वियके तुल्य जाकर लगता है यह अपथ्य ठहरा इसी प्रकार औरभी अपनेक बातें समझ लेनी सो सब औरों के साथ न करै बल्कि और जो कोई अपने माय कुछ खोटाही आचरण करै सो सब सहिलिया करै तब इस आश्रम का धर्म ठोक होता है तिसके नियम आगे देखौ ॥ ६५ ॥ सत्य बोलै पर ऐसा सत्य न बोलै जिमसे किसी के हृदयको दुःख वा उद्वेग पैदा होताहो. अस्तेय पराया द्रव्य न हरनेका नियमसर्वे क्रोध को अपने स्वभावही से निकालिडारै कि जो कोई अपकारकरै तिसपरभी क्रोध न लावै. हीः लज्जा को अपने स्वभाव में बनीराखै किंतु संन्यास के नियमों से विपरीत आचरण करिके निर्लज्ज न बनै. ग्रीच अपने शरीर और आहारकीभाग्यपर ध्यान राखै. धीः बुद्धि अर्थात् हित अहित दोनों के विचार में बुद्धि को लगी राखै. वीर्य धीरज ऐसे समय पर चाहिये कि जब अपनी चहोती वस्तु में वियोग होय या अप्रिय से संयोग होजाय तभी चित्तचिचल होता है तिसको विवेक में समझाय के ठिकाने करै कि जैसा पहिले सावधान होरहाया तैसा होजाय. दम अर्थात् मदका त्यागदेना दम कहाताहै इसकीभी साधनाकरै. संयतेन्द्रियता अर्थात् संशुद्ध प्रकार से इंद्रियों का यत्न बगमें राखना यहांतक कि जिन विययों की तुच्छता में नाम लेकर प्रतिषेध उनका नहीं किया गयाहो तिनमेंभी प्रवृत्त न होना चाहिये. विद्या अर्थात् अध्यात्म विद्याका अभ्यास करै (अविद्याको निज बुद्धिमें न घुमने देवे) तिससे आत्मज्ञान प्राप्त होताहै. इन्हीं सब नियमों की साधना में संन्यास आश्रम का पूरा धर्म सिद्ध होता है ॥ ६६ ॥

६५ अधिकोक्तिः— ऊपर की व्यवस्था में योगीश्वर ने यह तात्पर्य दर्शाया है कि बंद कमंडल आदि ऊपरके चिह्न जो मन्त्रों के दिये सके हैं तिनके होने हुये भीत भी अन्तःकरणमें सत्य बोलना आदि इनके सुगमता से चाहिये कि जिनके द्वाराविरा केवल ऊपरके चिह्नों से संन्यास नहीं सिद्ध होताहै. परंतु (नाश्रमः कारणा) मन्त्रों इस पदका यह तात्पर्य नहीं है कि बंद कमंडल आदि चिह्नों को न धारण कर

परदर्शादिगई कि जैसा ६४ चौंसठि मूलप्रलोक उत्तरार्द्ध में कहिचुकेहैं कि (ध्यान के योगसे अपनेजीवात्माको परमात्मामें बैठादेखै) सो इसकयनसे दोनोंमें भेदका नहोना यद्यपि दर्शाया गया तौभी वहाने मात्रका भेद सिद्धहोता है क्योंकि जो निपर भेदही न होता तौफिर अभेद किसका सिद्धकिया जाता जब कि भेदकुछ थोडा बहुत प्रतीत होता सौजद है तब उसीका अभेदभी समझाना परा तिससे भेद मानना भी यद्यपि अनर्थक नहीं है तथापि संन्यास धर्मपर आखूढ योगीजनोंको अभेदहीकी उपासना करनीयोग्यहै यह तात्पर्यटहिरा—अर्थात् योगीजनको चौंसठिमूलप्रलोकपर यहशंका न करनी चाहिये कि (आत्मामें जीवात्माको बैठादेखै इससे आपही दो वस्तु देखि परती है कि एकमें दूसरे को बैठादेखै) किंतु शंका दूरकरने को यह ६७ सरसठिमूल प्रलोक देखै कि एकही वस्तुके दो भेद होगये सो उसको, उसीमें मिलाय देनेसे भेद नहीं रहिसक्ताहै ॥ इसी सरसठिके मूलप्रलोकपर दूसरे प्रकारसे भी अर्थ किया जाता है कि—योगीजन कदाचित् यह शंका करनेलगे कि. सुषुप्ति और प्रलय इन दोनोंके समयपर सभी जीवात्मा जो क्षेत्र भी कहाते सो ब्रह्मही में प्रलीन (लय) होजातेहैं तिससे आपही कुछ भेद नहीं रहिता तौ फिर यह चौंसठि मूलप्रलोकमें किसके लिये आत्माकी उपासना विधि कहोगई—यह शंका दूरकरनेकी समाधान रूपी सरसठि का प्रलोक है कि—हाँ—अर्थात् प्रलयके समयपर सूक्ष्मरूप से सबजीव उर्मी ब्रह्म में लयहोतेहैं तथापि उसी ब्रह्मके सकाशसे अविद्याकी उपाधि रूपी भेदसे जूयाई पाइ के अति सूक्ष्म रूपी असंख्य जीवात्मा फिर दृवाग पैदाहोतेहैं कि जब जब कभी दूसरी सृष्टि रची जानेका समय उपस्थित होताहै- तिस पीछे वे सब जीवात्मा कभी निज निज कर्मों के बगीभूत होके म्यूल गरीराभिमानी आकर होतेहैं अर्थात् निज कर्मोंको प्रेरणा से इह संसार दिनागमान से आकर म्यूल कालेवर पातेहैं कि जैसा देह सबके देखने में आताहै ।

समभीजाय ॥ ० ॥ एकशंका और भी उत्पन्न होनेलगी कि ब्रह्मके लकाग से उड़ेहुने असंख्यजीवात्माजवतक सूक्ष्मदेहवाले रहानरतेहंतवतकउन्हेंकोईदेखिनहींपाता वश उससेभी अतिसूक्ष्म होतेहोगे जो सकानकेभूगोखेमे सूर्यकोकिरणोंसे बसरेगादेखिपरते हैं—सुनौ जीवात्माके सूक्ष्मदेह यद्यपि बसरेगाको अपेक्षा बहुत बडेहैं तौभी मनुष्य के तंत्रोंपर ईश्वरकी सायारूपी अज्ञानकापर्दा रहाकरता है जिमसे उसे देखतेहुये भी देखिनहीं सक्ते हैं अर्थात् असंख्यजीवात्मा यद्यपि आंग्रोंके आगे उडाकरतेहैं तथापि प्रायश अतिसूक्ष्म तौ देखिही नहीं पाते किन्तु बिरले विजानी जो उनकारूप देखते हैं वे भी कुछ विवेक नहीं करसक्ते हैं कि यह कितना बडा और मुख्यरूप कैसा है कोकि प्रायश जीवात्मा सूक्ष्मरूपसे मनुष्यों तथा सबजीवोंके समीपही कलअंतरसे विहार करते फिरते और स्थूलशरीर धारिणोंके आचरण द्योलते रहितेहें कि हमको किस देहमें प्रवेश करना चाहिये किसमे अद्विक सुभीता होगा तहां भी निजकर्मोंके वशीभत सायाकी प्रेरणासे जिस प्राणीके मृत्युनगरपर मनका मोह लसाते है उथा योनिके गर्भोंमे (इसीसातसकर्मके प्रभावसे) जाकर जन्मलेते हैं(गर्भोंमे प्रवेश होनेका प्रकार आगे७० सत्तरिके प्रलोकसेदेखीं) जवतक गर्भोंमे प्रवेशनहींकिया तनतक सूक्ष्मरूप उनका ज्ञानीपुरुष को सिफ इतना देखि परता है कि आकाशकीआर अपन मनुष्य दृष्टि धाँभदेसे आकीशी वराके तिनतिले दिव्याई देतेहें जो माँपकी दाँपनी समान हलुके और लम्बे लच्छेदार अनेक भाँति के निरपे देह उड़ते वा लडकने से प्रतीतहोते हैं यदि उनके ऊपर किंचितभी दृष्टिजनाचही तभी उधारे उधर चलता ।

के प्रभावसे करने लगता है—इसका यह दृष्टांत है कि (यद्यपि आत्मा आपतोऽन्वय २
 व्यतिरेक २ (मिलाप और जुदाई) इन दोनोंसे निरपेक्ष वेवास्ता सदा रहिता है तथापि
 इस कालेवर्क की रियाजत से अन्वय और व्यतिरेक दोनोंका स्वीकार करने लगता है
 अर्थात् जैसे जन्मलेतेसारे दूध पीलेना यह मिलापनामका अन्वय ठहिरा तिससे तृप्ति
 मानिके प्रसन्न होजाना या दूध न मिलने के व्यतिरेक (जुदाई) सेंतृप्ति न मानिके
 रोने लगाना इत्यादि बहुत कामों को समझलेना ऐसे ऐसे कुछ कर्मों को पैदाहोने
 के साथही आत्मा अपनी चिच्छाक्तिके प्रभावसे स्वतः करनेलगता है क्योंकि उमी
 चिच्छाक्तिके प्रभाव से पहिले कल्पांतर जन्मों का अनुभव उसकी भावना में भा-
 वित बना रहिता है तिससे मामूली कामोंका तत्काल बोध होआता है—इनके सिवाय
 कुछ कुछ ऐसे भी निरपेक्ष कर्मोंको स्वभावही से करने लगता है जिनकर्मोंसे उसका
 कोईसा प्रयोजनका संबंधनहीं दृष्टांत जैसे चीटीको उठाकर मुहमें रखलेना या मंडी
 खाइलेना इत्यादि बालस्वभाव के बहुधा कामों को समझ लेना. तहाँ स्वभावही से
 करता है अर्थात् बाल चपलताकी स्वतंत्रता से करता है यह अर्थ जानना—इनके सि-
 वाय बड़ी अवस्थाभरसे धर्म तथा अधर्मरूपी दोनों भाँतिके बहुधा कर्म पहिले जन्म
 के अभ्यास से बगहोकर किया करता है ॥ ६८ ॥

(समवाय्य-समवायी) इन दोनोंका निमित्त आपहेताहै इनमें समवायी तो पुरुषका शरीर जानना जो २५ तत्त्वोंके समवायिसिलापसे बनताहै १ और समवाय्य उन्हींतत्त्वोंको जानना जो पंच महाभूत आदि चौबीस २५ तत्व होतेहैं कि जिनका समवायमेल होकर शरीर बनताहै २ तीसरा क्षेत्रज्ञजीवात्मा जो चौबीसतत्त्वोंके साथमें पचीसवां तत्व माना जाता और वही उन चौबीस तत्त्वों का समवाय होसकने में निमित्तरूप होताहै ३ तिससे वह आपही इन तीनोंमें तीन विधकारण है तथापि कार्योंके समूह में वह आपनहीं रहता है इसीलिये मूल प्रलोकी आदि में निमित्त यह लक्षणा पहिले कहागया क्योंकि जिस हेतुसे इतने लक्षण उसमें औरभी हैं कि अक्षर अविनाशी-कर्ता भी वही आपहै क्योंकि बोद्धा होनेसे अर्थात् जीवके उपभोग तथा मुख दुःखोंके हेतु भूत जो अदृष्टनामक परजन्मके कर्मआदि तिनका जानने समझनेवाला भी वही आपहै तथा ब्रह्मस्वरूप है अर्थात् जगत्का सृष्टक विस्तार करसकनेवाला भी आपहै किन्तु दूसरे में यह शक्ति नहीं क्योंकि पुराणी है अर्थात् निर्गुण भी नहीं जिससे तीन गुणावाली शक्तिरूपी अविद्या प्रकृति जो प्रधान ओग अव्यक्त नामोंमें प्रसिद्धहै सोई उसके अधीन एकदासीहै (तिससे यद्यपि आप निर्गुण भी कहाता है तथापि अपनी शक्तिरूपी सायाके द्वारा सतोगुण आदि तीनों गुणका वास्तेदारहै) तो भी केवल सायाही इस जगत्का नहीं कारण है क्योंकि आत्मा आपही अपने वशीभूत स्वतंत्रहै कुछ सायाके वशमें नहीं क्योंकि वह अजहं उपको उत्पत्ति किर्मा औरसे नहीं यद्यपि ऐसे अजन्माका जन्म माझात्कार जाना तो नहीं सिद्ध होताहै तथापिसंसारीशरीरग्रहण करनेवाकी उपाधिमयहकहाजाताहै कि जन्मलिया ॥६॥

भला किसमार्गसे किनप्रकारोंसे शरीर ग्रहणाकरताहै सो सब आगेसमझातेहैं ॥

(शरीरग्रहणप्रकाराः)

सर्गादौसयथाऽऽकाशंवायुंज्योतिर्जलंमहीम् नृजत्पेकोत्तरगुणांस्तथाऽऽदत्तेभवन्नपि ७०

अर्थः—वहजैसे सर्गकी आदिमें आकाश वायु तेज जल धरती. इनको एकोगुणा सहित सृजा करताहै तैसे आपसंसारी होतेहुयेभी इनको साधलेता है=अर्थात्—वह आत्मा परब्रह्म जब जगत्की उत्पत्ति किया चाहताहै तब सबसे प्रथम आकाश आदि पाँचों महाभूतरूपी सामग्री प्रघट करताहै कि इसी मशाले से सब संसारबनता रहाकरेगा (तहाँ इन पाँचों में पाँचगुणाभी एकोगुणा संख्यासे निरूपणाआप करदेता है अर्थात्आकाशमें शब्दही एक गुणाहै पवनमें शब्द और स्पर्शभी दो गुणा होतेहैं अग्नि तेजमें शब्द और स्पर्श और रूपभी ये तीन गुणाहोतेहैं जलमें शब्द और स्पर्श और रूप और रसभी ये चारिगुणा होतेहैं धरती में शब्द स्पर्शरूप रस और गंधभी ये पाँचों गुणाहोतेहैं) जैसे सृष्टिके प्रारंभ समय पाँचों गुणासहित पाँचों महाभूत रूपी इन्हीं तत्वोंको परमात्मा रचिलेता है तैसे जब आपही जीवरूप होकर संसारी शरीरों में बैठना चाहताहै तबहू किसी गर्भमें जाकर अपने रहिनेका शरीरबनातेहुये भी अपने रचे पाँचों गुणा सहित पाँच तत्वोंमेंही कूटकूट मशाले निज अनुमानके योग्यलेकर गर्भमें घुसता और शरीरको बनाता रहाकरताहै ॥ ७० ॥ धरती आदि पाँच महाभूतों से क्योंकर शरीर बनता होगा यह वृत्तान्त अब कहते हं ॥

(पृथिव्यादीनांशरीरारंभकृत्वं)

पहुँचती हैं तिनको लेकर जीवात्मा रमभवताताहै (क्योंकि मभी शरीर बलिक मद्रसंसारही पंच महाभूतोंसे बनाहुआ होता और शरीरों में सदाही ये पाँच तत्व रहा करते हैं जिनमें शरीरों की मरम्मत होती रहतीहै) भला माता पिताके शरीरों में किसमारासे मट्टी आदि पाँचो तत्व पहुँचते होंगे सो मसकते हैं कि—संसार मे यज्ञोंके यजमान लोग जो घृत आदि उत्तम पुरोडाशोंकी आहुतें प्रायः अग्नि में छोड़तेहैं तहाँ अग्नि और सूर्यमें कुछ भेद नहीं किन्तु सूर्यही अग्निका मुख्य तेजोरूप होताहै तिससे अग्निका त्वष्ट करता भी सूर्यहीका त्वष्टकरना सिद्धहुआ तिसका यहडोलहै कि आहुत अग्नि में जलिकर उनका सारभूतरस उडिकर सूर्यलोकमें पहुँचताहै उसीसे सूर्यकी त्वष्टि और तेजोबलकी त्वष्टि हुआ करतीहै फिर कालचक्रके दग होकर समय उपस्थित होनेपर सूर्यके पाससे घृतादि त्वष्टियोंके पहुँचेहुयेरस परिष्कृत होजानेसे बर्षा होने लगतीहै फिर वही बर्षा त्र्योयधिरूप होजातीहै (त्र्योयधितानमे सभी वस्तु जो मनुजीवोंके खानेमें आसक्तीहैं ससकतीचाहैं जो धान आदि अन्नहों या गोंटिपीपरि न्यादि या लौन घीतेल आदि या सांसादि कुछही बर्षा न हो(नव दशक चीजमें कजकृत् पाँचोतत्व रहाकरते हैं वही) सब त्र्योयधि कहतेहैं और त्र्योयधिका अन्नभी नामहै) वही अन्न जीवोंके पेटमें जाके रसपैदाहोजाताहै तहाँ रसकीका रूप रंग बदालके रक्त फिर उर्मा से गाढाहोके सांस फिर सांसकी दशा बदलिजानेसे मेदा और मेदामें गाढापनर्णकर श्राव फिर हाडोंका परिष्काक होके उनके भीतर सज्जा फिर सज्जाका पार गियोंनदं शुक्र अर्थात् पुंस्यके दीर्य पैदाहोता और (स्त्री के शरीर में गूथ अन्न है कि अन्नके पानि स्थानमें रहनेवाला रक्तही दीर्यके मुख्यकारण देनाहै (आर्वातमें सूर्य सर्पाकया जाताहै इसवातका विशेष व्यौरा १२४ तदासौहृदिस आर्वात २२ त्र्योयधिरूपवना नामने परिच्छेद मे ॥ ७१ ॥

रहा करता है उसीसे गर्भका शरीरभी बनजाता वल्कि श्रेय चारों तत्त्वभी उस गर्भ में जितनी चाहीजायगी सो सब स्त्रीके शरीर में अधिकता से मौजूद है केवल वीर्यही में इनतत्त्वोंको हंडनेकी अपेक्षा श्रेयनहीं क्योंकि पुरुषका वीर्य और स्त्रीकारक्त दोनों मिलिकर गर्भका पहिला अंडरजनताहै सो अगिलेकई प्रलोकों में समझिलेना=क-
 दाचित्त=यहशंका आरोपित करीजाय कि स्त्रियोंके उदरभीतरजीवात्मा अपनाशरीर जो बनाता है सो यह नवेहुये कामोंका करना बहुत सुगम है कि उसी पहिले शरीर का मशाला लेलेकर अपनाघर बनानेलगा-किन्तु जब एक भी स्त्री या पुरुषोंके शरीर पहिले नहीं थे केवल सूक्ष्म रूपी जीवात्माही असंख्य फिरते होंगे तब किनकरक्त और वीर्यसे बनाताहोगा--सुनो धरतीसे आकाशतक पंचमहाभूतभी पहिले निपटनहीं थे जिस परसात्माने उन पाँचोंकी उत्पत्ति एक साथही अपनी इच्छासे प्रकाश करी तिसको स्त्री पुरुष का एक जोड़ा अपनी इच्छा से उत्पन्न करदेना क्या दुर्घट है कि जिसके द्वारा सब जीवात्मा अपने शरीरों को सुगमतासे बनानेलगे इसके लिये मनु-
 स्मृतिसे स्वायंभूसनुकी उत्पत्ति को देखो पहिले उसीसे सब सृष्टि पैदा होनेलगी सो भी यह चर्चा केवल गानुयो देहों का होरहा है इसके उपरालू सृष्टिकी दशा पर भी ध्यान करी कि दीनक आदि लाखों प्रकारके जंतु एक साथही धरतीको फाँव के उत्पन्न होते हैं वे कहाँ आते हैं क्या उनके भी उतने माता पिता नाचेबेटे हैं जिसमें जीवात्मा को उतने शरीर धारण करनेकी सुगमता है--उसको सभी दशामें सुगमता है कठिनता उसकोकहींभी नहीं क्योंकि जब सर्वगत्तिसानहै तो फिाचाहें तबचाहें जैसेप्रकार से कारतता है उसकेलिये कोई सा एक नियम नहीं कि उगीगीतमें च न (कर्तुं अकर्तुं अन्यथाकृतं नश्यति मदेच्छतः) तिनसे कहीं शंका काना कुछ आपश्यक नहींहै-जिनप्रकारोंमें गर्भमें जीवात्माकास बनताहै सो अगिले मूलउपनिषत्मेंश्रद्धा ३१॥

साथही किसी गर्भ में प्रवेश करते हुये यह सब सामग्री इंद्रि आदि उसके अत्मा में ही आपसेआप पैदा होजातीहै-अर्थात्-ज्ञानेन्द्री कर्मेन्द्रीपाँच पाँच और ग्यारह सन भी जो सबका प्रेरक अधिष्ठाता है। प्राणा जो पाँच प्रकार की प्राणा वायु जुदे शरीर में स्थान भेदसे रहती सो पंच प्राणा कहाते हैं नाम उनके प्राणा १ अपान २ उदान ३ समान ४ व्यान ५ ये पाँच हैं और ज्ञान जो पद पदार्थोंका बोध करानेवाली एक वृत्ति कपाल में होतीहै उसके भी अनेक शाखा भेद होते हैं। आयु जो एक प्रकारका काल नियम है कि इतने काल तक यह शरीर बना रहेगा। सुख जो आनंदरूपी एक गुण कहाताहै। धृति यर्हचित्तकी स्थिरता कहातीहै। धारणा यह प्रज्ञा औरमेधा भी कहातीहै अर्थात् सरस्वती रूपा बुद्धि और उस बुद्धिको धारणा कहते हैं जिसकी सुनी समझी बात कभी न भूलै। प्रेरणा अर्थात् मनका यह धर्महै कि दशों इंद्रियों पर अधिष्ठाता बनके उन्हें उनके जुदे कामों में लगाता या हटाताभी रहताहै मनकी प्रेरणा बिना इंद्रियां अपने भले बुरे कामों को नहीं करसक्ती हैं। दुःख यह प्रसिद्धहै कि चित्त को उद्वेग घबडाहट दिलानेवाला होताहै यह भी जितना भोग्यहो सो गर्भ के साथही आकर शरीर में प्रवेश होता है। इच्छा यह एक प्रकार की वृत्तिप्रतःकरणा में रहती है उन बातों या चीजों को चाहना करवाती है जो चहती अबतक नहीं मिलीं और मिलचुकीं तिनकी वारम्बार अधिक मि नलेको चाहना क्रिया करतीहै। अहंकार यह भी अन्तःकरणा में रहनेवाला एक वृत्तिहै जो अपने स्वरूप का बोध कराताहै कि मैं इस प्रकारका हंप्रयत्न यहपुण्यका गुण कहाताहै कि व्यवहारोंकी क्रिया करने में युक्ति शौचिके प्रवृत्तहोय। आकृति यह शरीर का आकार डोलडोल ओछापूरा आदि जो कुछ हो। वर्ण यह देह का रंगहै रोग काला आदि जो कुछ हो। स्वर यह वाणी का गुण है और गान विद्या में यद्वज्र ऋषभ सांभार आदिनाम तथा स्वरूपों का विस्तार है। देय यह देर का स्वरूपहै। भव यह पृथ्वीपद्म आदिकी वृत्ति कहाती जितनीउसके प्रारब्धमें आई हो। अभव उसमें विपर्यितहै कि दोग पशु पुरादि की सृष्टि न होनीजैसी प्रारब्धमें आई हो। यह सबसामग्री उमीअर्थात् जिन्यअपरा के शरीर इच्छा करतेहुये आत्म जनिन होताहै अर्थात् पहिले जन्म कर्मगरी बीज से उत्पन्न होता वह साथही आया करताहै ॥ ७३ । ७४ ॥

ये सबचीजें जिस देर जिस क्रममें पैदाहोनी है सो अगिले श्लोकों में दर्शाते ॥

(संयुक्तशुक्रशोणितस्यकाय परिणतिक्रमः)

प्रथमेमासिसंक्षेदभूतोधातुविमृच्छितः । मास्यनुद्वंद्वितीयेतुतृतीयंगेन्द्रियेभ्यः ७५
 आकाशाहायवंसौक्ष्म्यंशब्दंश्रोत्रवलादिकम् । वायोश्चस्पृशनेच्छेष्टां व्युहतरौढ्यमेवच ७६
 पित्तानुद्वर्गनंपक्तिमौण्यंरूपंप्रकाशिताम् । रसानुरसतंगैत्यंस्नेहंहेमंलमादिवम् ७७
 भूमेर्गंधं तथाप्राणंगौरवंमृत्तिमेवच । आत्मागृह्णात्यजःसर्वतृतीयसंदनेततः ७८

अर्थः—गर्भके पहिले सहीनाभर (छटा धातु रूपी चेतन जीवात्मा) व्याप धातु विमृच्छित (अर्थात् पृथिवी आदि पाँच धातुओंमें दृढ पानीकी तरह परस्पर सिला) होके अच्छा लोद भूत अर्थात् गीलाही ढलकसा रहाकारताहै कडापनको नहीं पक-
 दता फिर—दूसरे सहीना से अर्बुद होजाताहै अर्थात् कुछकठिन कुछ कोमल मांसकी
 पिण्डोरूप कीलसी होजाती है—तीसरे सहीने में अंग और इन्द्रियों से भी युक्त होता
 है (अर्थात् धडके सिदाय सह और चारोहाय पंजे के चिह्न साव येही पाँच अंग
 उपजि आते और इन्द्रियोंके आकारकेवल गर्भके भीतरमे उभरनेवाये लगतेहैं तिनका
 द्यौरा अगिले प्रलोक से ससभ्ती ॥७५ ॥(आत्मागृह्णाति)आत्मा ग्रहणा करतारै यह
 अष्टत्तरिके प्रलोक बाला पद सुवके साथ ससभ्तेर्गतिना)किंच इमीतीसरे मासमें इतने
 काम होतेहैं—आकाशधातुके हलुकापन प्रभावसेगर्भमें लायव हलुकापन पूर्णोत्पन्न
 होतीहै और उसी आकाश के प्रभावसे नृदनता भी होतीहै

रहिकर भोजनका स्वाद बताया करता है और उसी जल धातुसे अंगोंमें शैत्य दंडापन और स्नेह जोवसाआदि चिकनाई देहके भीतर हुआ करती हैं तथैव चिकनापन जो देह केऊपर दरकीलीखाल होजाती है और उसी जल धातुसे समार्दवंक्तेदं अर्थात्को-सलतासहित गीलापन भी इसी तीसरे मासमें उत्पन्नहोताहै ॥ ७७ ॥ एवं भूमि धातु के प्रभावसे गर्भ को भीतर तरह तरह के गन्ध तथा घ्राणा जो संघनेवालीइन्दी नाकमें रहितो है तथा गोरव अर्थात् चूतर आदि कुछ अंगों का विशेष भारापन तथा मूर्ति अर्थात् कठिनता कडापन और देहका आकार डौल भी इसी तीसरे मासमें यह सब आत्मा आपही ग्रहणा करताहै अजन्मा होतेहुये भी—ततःस्पंदते अर्थात् तिममे आगे चौथे मासमें कुछ कुछ हिलताचलता है ॥ ७८ ॥=७५ । ७६ ॥ ७७ ॥ ७८ ॥

७५अधिकोक्तिः—पचहत्तरिका प्रलोक देखौ मांसकी पिराडी भी होजाती कही तहाँ यह सिद्धांत नहीं है कि दूसरा महीना लगतेसार एकही दिन में पिराडी बनि जायगी अर्थात् क्रमक्रम से तीसदिन में सुखतेसुखते कठिनताको पहुँचती है—अथाह सुयुतः=द्वितीयेगीतोयार्गिनलेरभिपच्यमानो भूतसंघातोघनोजायते—अर्थात्—मय तने कहाहै कि दूसरे महीनेमें नारीके पेटमें रहने वाले दंडे गरम दो भाँति के पथरों के भूकोरे लगिलगि पकता सुखताहुआ पूर्वाक्त महाभूतोंका दलकमा मपद क्रमक्रममें कडापन पकड़ लेताहै(दो तरहका वायु कडा तिमको यह तात्पर्यहै कि नारीके पेट में वात पित्त कफ तीनों जो रहते हैं तिनमें पित्तहै अग्निका रूप और कफ जनका रूप ठंडा होता है तहाँ वातजव कफकोमाय मिलाप करताहै तथा दगदा और अग्नि रूपी पित्तसे मिलापकरताहै तब गरम होजाताहै तिमक्त दोनोंभाँति के दंडे गरम भू-कोरे लगने से गर्भगाढा होजाकर पिराडीबनताहै) उसी हेतुमें वात पित्त कफ तीनों उसी गर्भ को मजदत करनेवाले सहायक दहिरेडमकाप्रमागर्भा अगिलात्रयत तयो

अंग पतरा ढरकना होय सो नत्र जलही का गुणा जानना तथा जीवों के देह में जो शुक्र वीर्य होता है सो भी जलका गुणा जानना ४ ॥ तथैव धरती के मृत्तिका तन्त्र में गुणाके जानने वालों ने इतने गुणा कहे हैं कि गन्ध देनों भौतिकी चाहे सुगन्ध वा दुर्गन्ध होय धाराण्डी जो गन्धको पहिचानिकके नाकहै स्थौल्य जो शरीर या किसी वस्तु में सोटापन देखिपरै काठिन्य करीपन गौरव भारापन ये धरती में होते हैं ५ ॥ (जहाँ बातके गुणाकहे तहाँ रोह्य भी समझना कि लखा पन वायु का गुणा होता है जैसा अग्रोक्त गर्भापनियतके वचन में देखौ—शौर्यामर्यरोक्षप्रापत्तयोप्रायश्चित्तानाम् मन्तापवर्गारूपेन्द्रियारिा तैजसानि इति) यह सब तीसरे महीना में उत्पन्नमात्र होता है अर्थात् इन्हीं बातों का प्रकाश पन चौथे मास में जाकर होता है (तस्मात्तर्षेमासि चलनादावभिप्रायं करोतीति शारीरकैपि) शारीरक शास्त्रमें भी यह कहा है कि त्रिसरेसे आगे चौथेमासमें गर्भचलने उकलने आदि मध्ये अभिप्राय प्रकट करने लगता है इसी आदि गहदमे वे बातें भी समझनी जो ८० अश्ली की अविनोक्ति में भाव-प्रकाशके शारीरक द्वारा लिखी जायगी—इसीलिये आशीषर के अद्वैत ७८ मूल प्रलोक के अंत में (स्पन्दनेनतः) यही कहा है कि ततः तीसरे के बाद चौथे मास में फरकने लगता है—इसका विषय वर्योग अर्थात् मूल प्रलोक वाली अविनोक्ति में समझलेना ॥ ७५ । ७६ । ७७ । ७८ ॥

अब चौथे महीना को आदि लेकर सहीनों की व्यवस्था अगिले प्रलोक्यों से प्रारम्भ करते हैं ॥

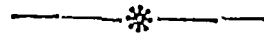
(चतुर्थ मासादेः)

स्थैर्यचतुर्थेत्वंगानांपंचमेशोणितोद्भवः । पृष्ठेवलस्यवर्णस्यनखरोम्यांचसंभवः ८०
मनश्चैतन्ययुक्तोसौनाडीस्नायुसिरायुतः । सप्तमेचाष्टमेचैवत्वक्सांसस्मृतिमानपि ८१
पुनर्धात्रीपुनर्गर्भमोजस्तस्यप्रधावति । अष्टमेमास्यतोगर्भोजातःप्राणैर्वियुज्यते ८२
नवमेदशमेवापिप्रबलैःसूतिमारुतैः । निःसार्यतेवाण्डवयंत्रच्छिद्रेणसज्वरः ८३

अर्थः—चौथे मास भरमें उन्हीं अंगों की स्थिरता होती है कि जिन अंगों का सह तीसरे मासमें उत्पन्न हो चुका अर्थात् उस महीनामें केवल इंद्रु मात्र उपजे और इंद्रियों के सूक्ष्म रूप गर्भके भीतरसे उत्पन्न हुयेथे वही सब यहाँ आकर स्थूल हुये। इसीसे हलना चलना उछलना आदिभी इस चौथे मासमें होता है—पाँचवें मास गर्भ के शरीर में लोहू की उत्पत्ति होती है—छठे मास बल का वर्णाका नख रोमाओं का कुछ कुछ संभव होआता है (चपुनः) और ॥ ८० ॥ इसी छठे मासमें यह गर्भ मनके चैतन्य भाव से चेतना से भी युक्त होता और नाडीं, स्नायुनसै, सिरा, इनसे सातवें में युत होता हुआ सातवें और आठवें दोनोंही में त्वचा, सांस की मजबूती और स्मृति यादगारी बाला होजाता है ॥ ८१ ॥ तहाँ आठवें मासमें उस गर्भका ओजस् अर्थात् उसके प्राणों का बल स्मृति में आकर अपने को घिरा रुका देख देख फिर धात्री को फिर गर्भ को प्रकर्ष से दौडता है तिससे आठवें मास में जन्म पाया गर्भप्राणों से जुदा होजाता है—अर्थात् यहाँ धात्री नाम (धरती और जननी दोनों का होते हुये भी) धरती को जानना और (ओजस् प्राणों का बल होतेभी) उसी गर्भ का रूप ओजस् जानना क्योंकि प्राणाबल भी उसीके भीतर होता है, तिससे खुजासा यह अर्थ है कि गर्भ अपनी स्मृति और प्राणों का बल पायके चंचलता से कभी द्वाश हूँडता हुआ धरती की ओर भाँकने लगता और वहाँसे चौंकना होकर कभी फिर गर्भही की तरफ किंतु गर्भ रहने के स्थानही को शीघ्र दौड जाता है इस प्रकार से बारंबार किलोलै किधाकरता है (दृष्टांत जैसे हालका बछेडाकभी घोडीसे दूरभाग जाता कभी लौटकर माता के पास आजाता है) परंतु इस चंचलता से यहदोगवाभी मुदा लगा रहता है कि धरती की तरफ भाँकते कभी गिर न जाय बल्कि इसी हेतुने विरला गर्भ जो इसीआठवें मासमेंवाहरनिकसआता है सो जीतानहीं क्योंकि पूरे नौ

लगता है साता पुत्र दोनोंके तरफ फिर फिर बारंबार क्रमसे अर्थात् एकवार सातामें फिर एकवार पुत्रमें फिर सातामें इसीतरह बारंबार ओजस् एकही सो लौटपौट किया करता है तहां दोनों इसीक्रमसे म्लान या मुदितहोते रहिते हैं अर्थात् जिससमय जिसकी तरफ ओजस् दौड़िगया वही मुदित प्रसन्न सुहखिलासा होगया किन्तु जिसकी तरफसे ओजस् हटिगया वही म्लान उदास कुम्हिलायेसुख होगया यहतात्पर्यदहिरा-विवेक्तालोक समझेंगे—ओजसकी व्याख्या जो कुछ८२ ब्यासी मूलप्रलोकवालेअर्थ में लिखिचुके उसके जोड़ तोड़पर बुद्धि ठीकजमती है—अत्रोक्त व्याख्या यद्यपि प्राचीन ग्रन्थकारोंका लेख है तो भी इसपर बुद्धि न जमनेका हेतु केवल यही है कि उन प्राचीनोंने स्पष्ट निर्णय कुछ नहींदिया कि ओजस् किसको जानना था वह ओजस् किनकारणों से दो तरफ दौड़ता है—अन्यथा (पुनर्धात्रीपुनर्गर्भसोजस्तस्यप्रधावति) इस ब्यासीके प्रलोकमें भी यहीअर्थ होता है कि उसगर्भका ओजस् फिर साताको फिर गर्भको दौड़ता है—और—ओजसका लक्षणा जो शारीरक व्यवस्था में प्रसिद्ध है सो यही है कि सातवांघातु शुक्रवीर्य पकने से उसका सारभूत अंतर खिंचकर ओजस् पैदाहोता है वह आठवंदमात्र हृदय में रहिता है वही सब देहमें बल पुष्टि चंचलता रूप रंग चमक दमक चैतन्यता आदि बढाता रहिता है उसका पीलावर्ण कुछसुपेदी कुछ सुखीलिये होता है वही जीवका आधार है उसका नाशहोने में देहनाश होजाता है इत्यादि बहुत बातोंका विस्तार इसका लिखना नहीं चाहते हैं संक्षेप यहाँपर कहा गया ॥ ० ॥ चेतना जो चैतन्य परमात्माका चिदाभास रूपी एकशक्ति होती है जिसका थोडासा आभास गर्भमें इंद्रियाँ उत्पन्न होनेके साथही तीसरेमास फिर दृढतासे चौथेमासमें आचुकाया उसीका परापरा प्रकाश छठेमासमें आकर हुआ सो सबकहा गया (जहाँतहाँ ऊपरकेपाठोंमें देखिलो) इसचेतनाका अर्थ यद्यपिज्ञान और बुद्धिपर भी आरूढहोता (बल्किविशेषकर बुद्धिकानाम भी चेतना कहाजाता है) तथापि जैसाज्ञान और बुद्धिसे विचारकियाजाता है तैसाचेतनाके द्वारा कोई शोचविचारवालाकामनहीं चलता है तिससे यहाँज्ञान और बुद्धिसे भी जुदी चेतना एकतीखरीशक्ति जाननी—किन्तु इसचेतनाकेहोनेसे शरीरके छोटेबड़े सब अंगोंमें गरम ठंडागीला सूखानरम कठोरआदि कुछ जानेका बोध या काँटा आदि चुभि जानेका बोधमात्र होजाता है पर और किसी शोचविचारकी समर्थ इसमें नहीं है अर्थात् शीत उष्ण पीडा आदिका बोध इसके ढाग होजानेसे अनंतर तत्काल उसीबोधका प्रभाव जाकर अंतःकरणमें आयथलिया करता है तहाँ फिर बुद्धि उसका निर्णय अपनी शक्तिसे करलेती है कि यह क्या था और

स्मरति पूर्वजन्मसमराणां कर्म च शुभाशुभम्—अर्थात्—पैदाहोके वहवायुसे हुआ गया पहिला जन्म और सररा और भलेबुरे कर्मोंको भी नहीं याद रखता है ॥ ८० ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ ८३ ॥
 ऐसे उत्पन्न हुये गर्भके देहमें क्या क्या गुण होता है सो सब अगिले परिच्छेद भरमें देखना ॥



अथैवमुत्पन्नस्य गर्भस्य देहे संक्षेपतः शारीरकव्यवस्था

विज्ञापकोऽयं परिच्छेदः (११) एकादशः ॥

इस ग्यारहवें परिच्छेद में उत्पन्न हुये गर्भके देहमें संक्षेप से शारीरक व्यवस्था कही जायगी कि उसके देहमें भीतर बाहर क्या क्या वस्तु होती है—शारीरक व्यवस्था वही कहाती है जो शरीरका संबंध व्यवस्थापन करै—संक्षेपसे इसलिये कहा कि वैद्यक शास्त्र में शारीरक बहुत विस्तार वाला है यहाँ उस का थोड़ासा लेकर जसूसी मात्र संन्यासी को समझावेंगे ॥

(अंगादीनां प्रदर्शनं)

तस्य षोडशरिराणि पदत्वचो धारयन्ति च । षडंगानिथास्थानां च तह पश्चात् तत्रयम् ८४

अक्षरार्थः—उसके छ प्रकार के विभक्त शरीरों को छे त्वचा धारणा करती हैं तथा छे अंग भी होते हैं और हाडोंकी संख्या साठ ऊपर तीन सौ ॥ ८४ ॥

अभिप्रायः—इस अक्षरार्थ का अभिप्राय सिताक्षराकार दर्शाते हैं कि उस आत्मा के सिर्फ जरायुज अण्डज दो भेदों के शरीर जितने संसारमें होते हैं उन्हींका यह चर्चा है (अर्थात् स्वेदज उद्भिजोंका नहीं) चर्चावाले प्रत्येक जुदे शरीर भी यदुप्रकारके होते हैं क्योंकि रक्त आदि घटधातुओंको पकानेवाले छे अग्निओंके स्थान छे होते हैं एकही शरीरमें तिससे एक शरीर के छ प्रकार माने गये—इस बातका यह व्यौरा है कि भोजन किये अन्नका रस पैदा होकर उदर के अग्निसे पचिके लालरक्त होता है एक इस अग्नि का स्थान टहिरा १ रक्त अपने ठिकाने की अग्निसे पका हुआ मांस बनजाता है यह दूसरा टहिरा २ मांस अपने ठिकानाके अग्निसे पका हुआ मेदा हो जाता है तीसरा टहिरा ३ मेद अपने ठिकाना के अग्निसे पका हुआ हाड बनजाते हैं चौथा टहिरा ४ हाड अपने अग्निसे पके हुये सज्जा बनती है पाँचवां टहिरा ५ सज्जा अपने अग्निसे पका हुआ शुक्र होजाता है छटाभया ६ इस पिछले धातु का रूपान्तर

कुछ नहीं होता और वही आत्मा का पहला कोश है यही इसप्रकार से छे कोशों की अग्नि के संबंध से शरीरों का छ प्रकार होना समझा गया और अन्न का रस भी यद्यपि सबसे पहला धातु कहाता है जिससे मातृधातु गिने जाते हैं परन्तु वह अनियत है तिससे उसके भी स्थानकी अग्निसे मातृधातु प्रकार शरीरोंका नहीं माना जानता है इसीसे केवल छे प्रकार टहिरे--और उन्हीं छे शरीरों को जुदे जुदे पर्दे में छे त्वचाये धारणा करती हैं—फिर कहिते हैं कि. रक्त. मांस. मेद. हाड. सज्जा. शुक्र. इन नामोंके छे धातुही आप केलेके खम्भकी त्वचाओंकी तरह बाहरभीतरके डोंतमें परस्पर मिले हुये टिके हैं और (त्वचा कहिते हैं खालको) खालकी तरह तर ऊपर ढांकने का डोंत होजानेसे वेही त्वचा टहिरे (किन्तु त्वचा कोडे जुदी नहीं) वेही यद्धान्तरूपी त्वचाये शरीर को थाँभती हैं (सो यह आयुर्वेद में प्रसिद्ध है) तथा उमी शरीरमें छे अंगभी जुदे जुदे होते हैं अर्थात् दोहाय दोपैर एकशिरसकछाती आदि निचलागात्र तथा उमी शरीर में तीन सौ साठि ३६० हाड छोटे बडे सभी मिलिके होते हैं जिनका व्यौरा आगम प्लोकींमें आवैसा=सिताक्षराकार तै यह व्याख्या कही परन्तु आयुर्वेदका कोटिनचम इसमें नहीं प्रसादा दिया जिस के देखने से रंदिह सिदिजाता जो आयुर्वेद में विचार इसमें सौजद है ॥ ८४ ॥

कारोंने अभ्यन्तर इसका नहीं पाया होगा यद्यपि यह कहिसक्ते हैं कि मिताक्षरा के सिवाय टीका इसके और भी अनेक हैं तिनके रचकोंने अभ्यन्तर पाया होगा तिसका यही प्रत्युत्तर है कि विज्ञानेश्वरने पुरानी टीका सब देखिभालि उनको सारांश लेकर पीछे मिताक्षराका निर्माण किया है यदि उनमें कोई जुदा आशय होता तो इसमें भी अवश्य धरा जाता किन्तु यद्भाँतिके शरीर कहे तिनकी कोई ठीक सीजाँ नहीं मिलती है यहाँपर गर्भ जो पूरा होकर जन्मले चुका उसकी कायाके भीतर बाहर जो कुछ होता है सो सब यथाक्रमसे दर्शाना चाहते हैं यही सब चक्र सुग्रत शाङ्गधर भावप्रकाश आदि आयुर्वेदके शारीरक वर्गोंमें विस्तारसे मौजूद है तिसके देखनेसे विरोध इसमें आता है कि प्रथम रसधातु जो रक्त आदिसबहीको प्रत्येक समय बढ़ाता रहिता है तिसको अनियत कहिके सातधातोंकी गिनतीसे निकालि डाला फिर अनपेक्षित अग्निओंके स्थानभेदका प्रसारामाना तिसते शुक्रके स्थानवाली सातमी अग्निको यह कहिके छोड़ि देना परा कि शुक्र नहीं पकता है न उसका कुछ रूपांतर होता है यथार्थसे शुक्रके स्थानपर भी अग्नि होता है और शुक्र भी पचिकर परिणाम को पाता है तिसते ओजस की उत्पत्ति होती है यह भी एक विरोध टहिरा और शरीरके ऊपर जो खाल इसी नामसे सब से बड़ा आवेद्यन है तिसमें सात पर्त होनेसे त्वचा भी सातही गिनी जाती है (योगीश्वरने किसी हेतुसे इन सातोंकी छे त्वचा कहीं) मिताक्षराने उन सातोंका चर्चा निपट छोड़िके (यदृत्वचो) इसी पदका अर्थ केवल छे धातोंके परस्पर पर्त माने हैं कि जैसे केलाके लकड़में अनेक बकल तर ऊपरहुआ करते हैं यह भी बड़ा विरोध टहिरा कि मुख्य खालोंको नहीं माना जिनसे सब शरीर थँभा रहिता है और उनका चर्चा कहीं आगे नहीं आवैगा तिससे (यदृत्वचो) इस पदका अर्थ वेही सातखालें माननी चाहिये क्योंकि पाँचके सिवाय ऊपरली वारीक दोखालोंकी एक मानी जिससे सातकी छे टहिरनेपर भी मुख्य गिनतीमें सातकी सातौरहीं ॥ शारीरक व्यवस्था आयुर्वेदमें और अध्यात्म वेदमें भी होती है यद्यपि दोनोंके बीच विरलीवात में कुछ अंतर इस हेतुसे होता है कि अध्यात्म विद्यावाला केवल संसारको त्यागनेके हेतुसे उसका डौल समझानेके लिये शारीरक दर्शाता है (जैसा यहाँपर योगी पुरुषको समझाय रहे हैं) आयुर्वेदवाला वैद्योंको इसलिये समझाता है कि शारीरक जाननेसे रोगी या निरोगी के भीतरले बाहरले सब अंग पहँचाने जायँ जिनसे अच्छीतरह चिकित्सा करसकें--तथापि वह अन्तर कुछ अंतर नहीं कहाता किन्तु दोनों शास्त्रका सिद्धांत एक है इसीलिये मिताक्षराकारने भी (तदिदं आयुर्वेदप्रसिद्धं) यही कहा

कि यह शारीक वृत्तांत वैद्यक शास्त्रमें प्रसिद्ध है अथवा आयुर्वेदहीका सहारा लिया
 तिसमें किंचित् विरोधरहा=इन्हीं कारणोंसे=आयुर्वेद और अद्यात्मज्ञानोंके मिलाप
 से दूसरा अर्थ जो अविरोधी देखिपरा सो हम लिखतेहैं (अपरोक्षः) तस्ययोडागरीरा
 णि अर्थात् उस आत्माके शरीर योडा छ प्रकारके स्थान भेद वाले होतेहैं। इसी अर्थ
 के अनुसार शरीरोंके भीतर आत्मा के टिकने योग्य छे स्थान ढूंढने चाहिये जिनमें
 जीवात्मा रहा करताहै—तहाँ सबसे मुख्यस्थान हृदय कसलहै=यथा=हृदयपुराडरीके
 रामदृशंस्यादधोमुखम् जाग्रतस्तद्विकशतिल्लपत्स्नुनिमीलति आशयस्तत्तु जीवस्य चे
 तनास्थानमुत्तमम्=अर्थात्-मनुष्यका हृदय भीतर कसलके आकार नीचेको मुहकिये
 लटका होताहै वह जागते समय मुहखोले रहाकरता और सोतेहये मुहको मींचिलेता
 है वही जीवके रहनेका स्थान प्रधानहै और वही चेतनाके रहनेकाभी मुख्य स्थान
 है (चेतना उषी जीवकी चिच्छायाख्या प्रधान गत्वृत्तिहै कि जैसे ईश्वरकी प्रधान
 सायावृत्ति होतीहै वह चेतना भी जीवके तनीपही तदा रहितो और सबदेहमें प्रभाव
 अपना फैलातीहै कि जैसे राजाकाप्रधान मंत्री उनके निकट रहि के देगभरगे आज्ञा
 फैलाताहै) इस बातको ८० अस्तीकी अद्विक्तोक्तिमें देख्यो कि तत्रोक्त मयचेतनायां
 पर अत्रोक्त सबसे बडी यही चेतना उनकी अद्विद्याताः)

शरीरकी ऊपरली से भीतरली तक त्वचाओं का स्पष्ट है कुछ रक्तादि धातुओं का तात्पर्य इसमें नहीं क्योंकि सब कुछ आगे कहेंगे पर त्वचाओंका चर्चा आगे कहीं भी न आवैगा और इसी जघे इसका कहाजाना भी योग्यथा यद्यपि इतना अंतर है कि आयुर्वेद में सर्वत्र पूरी सात खालों का नियम घंटा घोष है और यहाँ एक न्यून कही तिसका यही तात्पर्य है कि ऊपरली दोकी एक मानी कुछ इससे दोय नहीं है। इसी प्रकार वैद्यक में अंग भी कुछ अधिक हैं पर यहाँ छे अंगोंको मुख्य जानि (यडंगानि) यह कहा गया इसी प्रकार आयुर्वेदी शल्यतंत्र शारीरकमें तीन सौ हाडों का नियम यद्यपि ठीक है पर यहाँ तीन सौ साठिकहे सो इन साठि अधिक होनेका हेतु आगे ६० नब्बेकी अधिकोक्तिमें समझना (अपरोऽप्यर्थः) मूलश्लोक देखौ उसीके अन्वय से तीसरा अर्थ ऐसे सिद्ध होता है (तस्योत्पन्नस्यवालस्य अस्थनांशतत्रयं यद्यधिकं योढा शरीराणि शेषयत् धातवस्य धारयति तथा यत्त्वचोपि तमेवास्थिपंजरं यत् धातुसहितं धारयति आवेष्टयंतीत्यर्थः एवं सर्वं मिलित्वा यडंगानि शिरः प्रभृतीनि तस्य देहे सिद्ध्यन्तीत्यभिप्रायः) अर्थात् उसके देहमें तीन सौ साठि हाडों का बना एक पंजर जो प्रधान है ताहि बाकीके छे शरीर धारण करते हैं अर्थात् (रस·रक्त·मांस·मेदु·मज्जा·शुक्र) येही धातुएँ थाँभे रहिती हैं किन्तु इनके बिना हाडों का पिंजरा नहीं थभिसक्ता तथा छे खालें भी उसी हाडों के पिंजरे धातुओंसहित को लपेटेहुये धारण किये रहिती हैं क्योंकि खालोंसे लपेटे बिनाभी ये सब चीजें कभी न थभिसकें तिससे ऐसे यह सब मिलिके जो देह बना तिसमें छे अंग हैं शिर छाती चारौ हाथपैर ॥ ६४ ॥

(अब नीचे तीन सौ साठि हाडों का व्यौरा समझावेंगे)

(अस्थनांसंस्थितिः)

स्थालैः सह चतुःषष्टिर्देता वैविंशतिर्नखाः । पाणिपादशलाकाश्च ते पांस्थानचतुष्टयम् ८५
षष्ठ्यंगुलीनां द्वे पाण्योर्गुल्फेषु च चतुष्टयम् । चत्वार्यरत्निकास्थानि जंघयोस्तावेदवतु ८६
द्वे द्वे जानुकपोलोरुफलकांससमुद्रवे । अक्षतालूपकश्रोणीफलके च विनिर्दिशेत् ८७
भगास्थ्येकं तथा षष्ठे च त्वारिंशच्च पंचच । श्रीवापंचदशास्थी स्याज्जत्र्यैकैकं तथा हनुः ८८
तन्मूले द्वे ललाटाक्षिगडेनासावनास्थिका । पार्श्वकाः स्थालकैः सार्द्धमर्बुदे च द्विसप्ततिः ८९
द्वौ शंखकौकपालानि च त्वारिंशिरसस्तथा । उरःसप्तदशास्थानि पुरुषस्यास्थिसंग्रहः ९०
अर्थः—स्थालों सहित चौरसठि दांत नख बीस निश्चय जानौ क्योंकि बीस अंगुरियों में होते हैं हाथ पाओं की शलाका भी बीसही अर्थात् बीस अंगुरियोंके नीचे आका

(ये सब चौंसठि हुये तिनमें १६२ एकसौ बानवे ऊपरके जुडिकर कुल २५६ दो सौ छप्पन हाड ठहरे ॥ ८८ ॥ उसके मूलमें दो अर्थात् ठोंडीकी जडमें दोहाड और होते हैं तथा ललाट माथे पर दोहाड अक्षि नेत्रों के दो हाड गंड अर्थात् कपोल और अक्ष स्थान दोनों का बीचहै सो गंडस्थल कहाता है दोनों गंडस्थलों के दो हाड समुझने (अक्षस्थान का चिह्न पहिले सत्तासी के प्रलोक में कहि चुके वही जानना) और नासा घनास्थिका कहलाती अर्थात् नाक में एकही हाड घन संज्ञा वाला जिसके षड्भार में चारों तरफ छिद्रमार्ग हैं होता है वहत्तरि ७२ हाड दोनों पाँसुओं में होते हैं अर्थात् बगल के नीचे पँसुरियोंके हाड अपने स्थालों सहित और अपने अर्बुद नामके सहायक हाडों सहित छत्तीस छत्तीस दोनोंतरफ होते हैं (इन छत्तीसमें तीन भाँति कहीं तिससे बारह पसुरी बारह स्थाल बारह अर्बुद ठहरे) स्थालोंका अर्थ जैसा पचासीके प्रलोकमें कहा गया तैसा यहाँ भी समुझना (ये सब ८१ इक्क्यासी ठहरे इनमें दो सौ छप्पन २५६ ऊपरके जुडिकर कुल ३३७ तीन सौ सैंतीस हाड हुये ॥ ८९ ॥ दो हाड शंख नामके कनपटियाँ कहाती हैं अर्थात् भौह और कानोंके बीचमें अक्षस्थान से कुछ ऊपर जो पटियासी चौड़ा हाड होता है वही दोनों ओरके दो शंखजानौ तथा शिरमें चारि कपाल खोपड़ीके टीकरेसे निकसते हैं उरस् के सबह अर्थात् छाती से हृदय तक समस्त हाडों की तादाद १७ सबहसंख्यासे होती है (ये सब तेईस ठहरे इनमें ३३७ तीनसौ सैंतीस ऊपरके जुडिकर कुल ३६० तीनसौ साठि हाड पुरुष के देह भरमें कहेगये = यद्यपि चिकित्साशास्त्र के शारीरक में तीनिहीसै हाडों का नियम सर्वथा ठीक और प्रसिद्ध है तथापि यहाँ साठि उपरालू कहेगये तिसका यहीकारणा है कि वैद्यक में बत्तीस दाँतही गिनेजाते हैं यहाँ उनके स्थाल भी गिनती किये गये तथा पसुरियों के साथ उनके स्थाल भी गिनती में लेलिये गये इसी तरह और भी कुछ भेदहै तिससे कुछ दोष वा विरोध नहीं आता है केवल मुख्य प्रयोजन पर दृष्टि राखनी चाहिये कि संन्यासीको संसार का स्वरूप समुझाते हैं (अब अगिले प्रलोकों से इंद्रियों की व्यवस्था कही जायगी ॥ ९० ॥

(स्वविषयसहितानिज्ञानेन्द्रियाणि)

गन्धरूपरसस्पर्शशब्दाश्चविषयाः स्मृताः । नासिकालोचनेजिह्वात्वक्श्रोत्रेचेन्द्रियाणि च ०१

अर्थः—गंध•रस•रूप•स्पर्श•शब्द•ये पाँचौ विषय यथा क्रमसे पाँच इंद्रियों के भोगरूप होते हैं अर्थात् नासिका•जीभ•नेत्र•त्वचा•कान (इन्हीं इंद्रियोंके द्वारा ये

पांचौ विययपुरुष के बंधन हेतु होते हैं क्योंकि इनको ये इन्द्रियांही जुदे जुदे निज निजविययको जानती पहिँचानती और चाहना क्रियाकरतीहैं और कोइनहीं ॥६१॥

६१ अधिकोक्तिः—यह संदेह न करना कि इन्द्रियोंकी उत्पत्ति पहिले कहि चुके थे दुद्वारा यहां क्यों कहिने लगे-क्योंकि वहां पचहत्तरि आदि प्रलोकों में गर्भका भीतरला प्रसंग था उसमें यह चर्चा क्रिया गया था कि गर्भ के तीसरे महीना में आत्मा आपही सब अंग और इन्द्रियोंको चाहना करिके उत्पन्न करिलेता है तिससे गर्भकी पिंडीमें इन सब चीजोंके अंकुर आपसे आप होआते हैं=यौर=यहां जो गर्भ पूरा होकर जन्म पानेसे बाहर आया तिसके सब अंगोंका विस्तार व्यारे बार समु-
भाते हैं कि उसके शरीर में भीतर बाहर क्या क्या वस्तु होतीहै सो हाडोंका पिंजरा खाल मांस आदि से बंधा हुआ पहिले चौगनी के प्रलोक में दगाया तिसके मन हाडों की व्यवस्था ६० नव्वे प्रलोक तक समुभाइके यहां उसकी इन्द्रियां भी दो भांतिकी समुभाते लगे क्योंकि इन्द्रियों के होने बिना नाट नामके पिंजरा से कुछ काम नहीं चलसक्ता ॥ ६१ ॥

(कर्मेन्द्रियाणित्र)

के साथ (सल्लिलेवार) नहीं कहें कि जिससे यह जानाजाय पहिले भीतर के फिर बाहर के या पहिले बाहर फिर भीतर के अथवा पहिले ऊंचे ऊपर ले अंगके फिर निचलेके हों सोभीनहीं—अर्थात् केवल अंगों वा स्थानों के नामों को आगा पीछा समुझाने बिना कहिते चले जायेंगे—तहां विरले अंग वा ठिकानों के नाम दो दोबार भी कहिने में आजायेंगे तिसका आशय यद्यपि मूलकार और टीकाकारने भी नहीं खोला तौभी तात्पर्य उसका यही है कि देहके भीतर और बाहर के भेद से दो बार नाम लिया गया इसी का दृष्टान्त जैसे (६३ । ६४) प्रलोकोंमें नाभि शब्द दो बार कहा जायगा तहां एकबार जो पेटके बीच में तूंदी कहलाती है तिसको समुझिलेना और दूसरी बार उसी तोंदी के भीतर जो नाभि कछुआ के डौल सम होती है तिसको जानना इसी प्रकार हृदयको दो बार समुझना कि एकबार छातीके बीचमें जो हृदय का ठिकाना है तिसका नाम और दूसरे बार उसी छातीके भीतर जो कमल फूल के डौल सम हृदयका आकार होताहै सो दर्शाया है—इसी प्रकार और भी वृक्क आदि जो दो दो बारकहे जायंतिनको मूलप्रलोकोंके अर्थवाला पाठयहां मिलाकर समुझिलेना ॥

(शरीरस्य बाह्याभ्यंतरज्ञानं)

नाभिरोजोगुदंशुक्रंशोणितंशंखकौतथा । मूर्धासकंठहृदयंप्राणस्यायतनानिच ९३
वपावसाऽवहननंनभिःकोमयकृत्स्निहा । क्षुद्रांत्रवृक्कौवस्तिःपुरिपाधानमेवच ९४
ग्रामाशयोऽथहृदयस्थूलांत्रंगुदएवच । उदरंचगुदौकौष्ठ्यौविस्तारोयमुदाहृतः ९५
कनीनिकेचाक्षिकूटेशकुलीकर्णपत्रकौ । कर्णौशंखौभ्रुवौदंतवेष्टावौघौककुंदरे ९६
वंक्षणौवृषणौवृक्कौश्लेष्मसंघातजौस्तनौ । उपजिह्वास्फिजौवाहजंधोरुपुचपिंडिका ९७
तालुदरवास्तिशोर्षेचिवुकंगलशुंडिके । अवटश्चैवमेतानिस्थानान्यत्रशरीरके ९८
अक्षिवर्णचतुष्कंचपद्मस्तहृदयानिच । नवछिद्राणितान्येवप्राणस्यायतनानितु ९९

अर्थः—नाभि•ओजस्•गुदा•शुक्र•रक्त • दोनों शंख कनपटी•सर्वाशिर• अंस दोनों कांधे•कांठ•हृदय•ये अंग उयअंग है और प्राणाक्षेभी स्थानहै—अर्थात्—पंचप्राणोंमें एक मसानवायुजो सर्वशरीरमें फैलतारहितहै तिसकानिवास इनस्थानोंमें अधिकहै ॥६३॥ फिर भी इसका विस्तार दर्शाते हैं कि—त्रया•मेदा—वसा जो मेदमांसकासार एकभांति की चिकनाई होतीहै—अवहनन•फुफ्फुस कहाताहै—नाभि•यहदुवाराकही सो भीता बाहर दो जगह के तात्पर्य में समझना—होम•यह फुफ्फुस का दूसराभेद पुष्कसकहाताहै—यकृत्•यह कालेयक भी कहाताहै—प्लीहाभी उसीका दूसरा भेदहै—शुद्रांत्र नामछोटीपतरी आँतें—वृक्कको अर्थात् वृक्क वृक्क नामोंके दो शाले पेटमें होतेहैं—वस्ति

१०७ की अधिकोक्ति में देखना) ये नव छिद्र भी प्राणों का स्थान होते हैं तबवे
 ऋहानवे प्रलोक से कनीजिका आदि यहाँतक जितने उपसंग समुभाये गये उनसेभी
 बहुतेरे स्थानप्राणवायुका निवासरूप होतेहैं। इसवात्तका विशेषव्यौरा १०२ सक्तसौ
 दोकी अधिकोक्तिमें समझना जहाँ सर्वस्थानोंकी व्यवस्था कही जाय ॥ ६६ ॥

६३ अधिकोक्तिः— इन्हीं सातप्रलोकों में जितनेअंग भीतर बाहरके सिर्फनामोंसे
 प्रकाश कियेगये उनमें जोभीतरले अंगहैं तिनका व्यौरा अच्छीतरह तभी जानाजास-
 काहै जब यहाँ समस्त शारीरक लिखाजाय और शारीरकहै सो चरक वाग्भट आदि
 ग्रन्थोंमें बहुतबड़ा विस्तारहै क्योंकि यहाँ लिखनेका अवकाश उसको मिलै.ती भी
 उन्हीं ग्रन्थोंका संक्षेप चुनिकर थोड़ेसे वचनमात्र लिखते हैं कि जिनसे वृक्क प्लीहा
 आदि विरले अंगोंका स्वरूप पहिँचाना जाय ॥

॥ प्र०१ ॥ जीव और चेतनाका मुख्यस्थान हृदय कमलमें होताहै तिनकाव्यौरा
 चौरासीकी अधिकोक्ति में किसीप्रसंगसे लिखि चुके तहां देखीं. फिर उसी हृदय में
 रस कफ रक्त जलआदि जैसे रहितेहैं तिनका व्यौरा आगे संग्रहवचनोंसे देखीं उसीमें
 वृक्कआदि भी समझलेना ॥

॥ द्वि०२ ॥ अत्राहुःप्राचीनाः ॥ उरोरक्ताशयस्तस्मादधःप्रलेप्माशयःस्मृतः आमा
 शयस्तुतदधस्तल्लिंगंचरकोऽवदत् ॥ नाभिस्तनान्तरेजंतोराहुरामाशयंबुधाः । नाभे
 विंतिस्तिमात्रंचक्रंठदेशात्पंडंगुलम् । उरुस्तद्विजानीयाच्छेयेतुहृदयंसतम् ॥

॥ तृ०३ ॥ यद्वत्प्लीहाचरक्तस्यमुख्यस्थानंतयोःस्थितम् ॥ शोशिताज्जायतेप्लीहा
 वामतोहृदयादधः रक्तवाहिसिरासांसमूलंख्यातोमहर्षिभिः ॥ अधोदक्षिणात्प्रचापि
 हृदयाद्यद्वत्स्थितिःतत्तुरंजकपित्तस्यस्थानंशोशिताजंसतम् ॥

॥ च०४ ॥ सर्वदेहचरस्थानिपित्तस्यहृदयंस्थलम् समानसरुतापूर्वयदयंहृदयेधृतः ॥ य
 दारक्षोयद्व्यातितत्रंचक्रपित्ततः रागंपाकंचसंप्राप्यसभवेद्रक्तसंज्ञकः ॥ हृदयादाम
 तोऽधश्चघुण्दासोरक्तफेनजः ॥ रक्तादनिलसंयुक्तात्कालेयकमगुद्रवः (कालेयकःकौ
 सडत्यप्र) अदस्तुदक्षिणीभागेहृदयात्कौसडित्यति जलवाहिसिरामूलंतप्माच्छादनक
 न्सतम् (कौसडित्तलकांफुःफुसः) ॥

॥ पं०५ ॥ कफशोशितयोःशाराद्वृक्षयोरुंगलंभवेत् तौनुपुष्टिकरीप्रोक्तौजटस्यस्यमेदम् ॥
 ॥ अ०६ ॥ वृक्षशोशिततःसारात्कफासृग्भ्यांचमेदतः वीर्यवाहिसिराधारांतोमतीतोरुयाव
 न्नी ॥ शंखनाभ्याकृतिर्योनिःश्यावर्तिसाचकीर्तिता तस्यास्त्वतीयेत्वावर्तेगर्भगठ्याप्रति
 थिता ॥ गुदस्यमानंसर्वरयसार्धस्याच्चतुरंगुलम् तद्वल्युर्बल्यस्तिस्त्रःशंखावर्तनिभास्तुता ॥

॥ स० ७ ॥ कक्षा २२ सपित्तवातानासान्यासत्तनूद्भयोः ॥ पुरुषेभ्योऽधिकप्रचान्ये
नारीणां शय्याशयः शरत्तर्भाग्यः शोक्तः पित्तपक्षात्तन्त्रे स्तनीप्रवृद्धोतावेवबुधेः
रत्न्यागयोदतो ॥ स्तनीपुंजस्तया नार्याविशेष उभयोन्मद यौवनागमने नार्याः पीवरो
भवतः स्तनी रक्षित्याः प्रमृताचारतावेवकीरूपरितो ॥

॥ अ० ८ ॥ यात्रायाशयनाहारपूर्वप्राणादिलेखिनः जादुयं फेनभावं च यद्भूमोऽपि
लसेत्सः ॥

॥ नव० ९ ॥ आसाशयादधः पक्षान्यादूर्ध्वं नुयाकता ग्रहणीनामक्रासैवक्रयितं पा
चक्राशयः ॥ ऊर्ध्वसन्ध्याशयोनाभेर्दध्यभागेऽवस्थितः तस्योपरितिलज्जेयंतदधः प
वनाशयः ॥

॥ दश० १० ॥ पाचक्रंतिलसारं स्यात्क्रादिन्यान्नास्यवेयता ॥ पित्तपंचात्मकतन
पक्षा २२ साशयसध्यगं पंचभूतात्सकत्वेऽपि च जगुणोदयस्य त्यक्तप्रवत्प्रपाकारिक
संज्ञा २२ तलशब्दितस्य पचत्यर्द्धदिभजते मारिकर्होऽप्युक्तन्यातवन्त्यमेव पित्तानां गेयागा
सप्यनुग्रहसकरोत्तिलदानेन पाचक्रंतासत्तन्मृत्त ॥

॥ एका० ११ ॥ अरिर्भिन्नगुरोर्द्युक्तः पित्तंभिन्नगुरोर्द्युक्तं श्रवणान्नसद्योगं नार्पित
वाद्भिरतोऽन्यथा ॥ तरसात्तेजोसद्यं पित्तपित्तोऽयत्तनक्तिमान् ॥ वामपार्श्वीयनगर्भः
किंचित्सोमस्यमंडलस्य तन्मध्ये मंडलं तौर्ध्वं तन्मध्येऽग्निर्न्यर्ध्वं गन्धर्व
काचक्रोशस्थदीपवत् ॥

फिर उसके नीचे कफका आशय फिर उसके नीचे आमाशय कच्चे अन्नका टिकाना तिसका डौल चरक्यों कहि गये कि नाभि और स्तनोंके बीच जो गडहिला देखि परता है उसी के भीतर आमाशय होता है इसकी माप भी वाग्भटने यों कही है कि नाभिसे एक बिलौंद ऊपर और कट से एक बिलौंद नीचे वही गडहिला प्रत्यक्ष है तिसके भीतर छे अंगुर की चौड़ी घैली होती है बाकी यही टिकाना हृदय ब्रह्मा है ॥

॥ ३ ॥ हृदय की तरहहीमें यकृत प्लीहा दोनों रक्तके स्थान हैं इन दोनोंमें मुख्य टिकाना बाँधे रक्त रहिता है इसी जगहसे सब देह में पहुँचता है ॥ यकृत•प्लीहा•क्या चीज है सो देखो ॥ प्लीहा एक भीतर का अगस्थान है जो रक्तहीसे उत्पन्न होता किन्तु बायी चूचीके नीचे उसका टिकाना जो वातपित्तों के योग से गाली रक्त की शादिका छोड़डासा कुछ कोमल कुछ कठोर होता उसमें रक्त भरा रहिता है उसी में रक्त पहुँचाने वाली सिरा नाडियों की जड गडी रहित है तहां से लेले कर अपनी पोरियों से सब देहमें सींचती रहित है तिससे देह सुखने नहीं पाता ॥ ऐसेही दूसरा यकृत है सो दाहनी चूचीके नीचे रहिता और इसमें भी सब लक्षणा उसी के समान हैं कि रक्तहीसे उत्पन्न भया रक्तही इसमें रहिता तथा रंजक नामी पित्त भी रहिता जो अग्नि का प्रभाव है उसी पित्तसे रसका रंग बदलिके रक्त बन जाता है यह चौथे अंक से देखो ॥

॥ ४ ॥ खाये पिये अन्नों का रस जो पैदा हो वह यद्यपि सब देहमें फैलता रहिकर देहको सींचता है तौभी उसके रहने का मुख्य टिकाना हृदय होता है कि जहां रक्त याउले में भरा रहिकर सब अंगोंमें जाता है क्योंकि इसको पैदाहोते सार समान नामी पवन ऊपरको खींचि पहिले हृदय पास रखदेता है ॥ जब समानसे खींचाहुआ रस यकृतके स्थानतक जाता है तहां रहिने वाले रंजकपित्तसे पकायाहुआ लाल रंगतिको घाकर वही रक्त कहाने लगता है ॥ देहको सिंचाई अही सुषेद रस अपने जुदे तौर से करता और पूर्वोक्त लालरक्त अपने जुदेप्रकारसे करता है (उसके स्थानपर जानेसे यह भी लाल होता है परंतु जो अपनी जुदी सिंचाईवाले कुराडमें रहिता है तिसका स्थान उससे नीचे उसीके लगना जानना क्योंकि ऐसे कर्डटिकाने सब हृदयके समीप ही हैं) सो भी देखो ॥ हृदयसे वामे को झुंक्ता हुआ प्लीहासे नीचेके टिकाने पर पुष्कस होता है वह पकने हुये रक्तके फेना से वायु मिलिके बनता है इसी में आकर सुषेद रस टिकता है इसी जगह से नाडियों के मार्गसे सब देह में जाता और इसीसे अद्विक लाल होनेके लिये यकृत प्लीहमें भी जाता है ॥ इसीका दूसरा भया रक्त और पवन के योग से अर्थात्

कहाती है बाक़ी इन वचनों का अर्थ लिखना यहाँ पर आवश्यक नहीं है सातवें अंकस्थल के श्लोकों पर ध्यान करो ॥ स्त्रियों के तीन आशय और भी पुरुषों से अधिक होते हैं तिनमें एक तो धरिया जो गर्भ धरने का यंत्र है तिसके रहने का स्थान ही गर्भाशय कहाता वह पित्त और पक्वाशय के बीच होता है और दो आशय दो स्तनों के दूधभरे कहाते हैं उसी दशामें कि जब दूधसे भरे किंतु स्तन अद्यपि पुरुष स्त्री दोनों के एक ही से होते हैं पर दोनों में जुदाई सिर्फ़ यही है कि नारी के यौवन अवस्था में बड़े मोटे पुष्ट होके गर्भिणी होने पर दूधसे भरते हैं ॥

॥ ८ ॥ आमाशय जो बताया गया पहिले उसीमें भोजन किया हुआ आहार प्राणवायु से प्रेरित किया धक्का दिया पहुंचता है पहुंचके उसजघे रहनेवाले क्लेदन कफके जोर से ढीलाहोके फेनसा सीटा सीटाहोजाता है चाहें खट्टा सीटा कटुकआदि कैसाही भोजनकिया हो ॥ अब नाभिस्थान के आशयोंका व्यौरा देखौनवमें अंकसे ॥

॥ ९ ॥ ऊपर सातवें भेदमें आशयोंकी स्थितिका क्रम शोचिके फिर यहाँ देखौ— आमाशयसे नीचे पक्वाशयसे ऊपर दोनोंके बीचमें जो ग्रहणीनामकी कला एकभि-ल्ली है वही पाचकपित्तका आशयनाम ठिकाना जानौं— पाचकपित्तसे ऊपर अग्निका ठिकाना है वह नाभिके बीचों बीच स्थापन होरहा है तिसके ऊपर अग्निके रूपसे तिल रहिता है (तिलकाव्यौरा अगिले भेदोंमें समझलेना) उस अग्निके नीचे समान वायुका स्थान है वही उस अग्निको प्रचण्डकरता रहिता है जैसे भट्टीके नीचे धौंकनी लगी रहिकर अपने पवनसे अग्निको बढ़ाती है ॥

(अग्निपित्तनिर्णयः)

दशवेंसे बारहवें पाठक अग्नि और पित्त इन्हीं दोनोंका स्थान और स्वरूपआदि भेदभी दर्शाये जायेंगे क्योंकि इनके परस्पर वैधोंको बड़े बड़े संदेह और भ्रमप्रतीत होते हैं किसी वचनसे पित्त अग्नि दोनों एकहीरूप किसी वचनसे दोनों जुदेजुदे प्रतीत होते हैं तैसा तीनोंपाठके श्लोक जहां लिखेगये सो सबदेखौ तहाँ यहभी शोचौ कि ये दोनोंवात ठीकही हैं अर्थात् दोनों जुदे हैं परन्तु दोनों एकही रूपसे जुदे हुये हैं तिससे सिद्धांतमें एकही मानेजाते हैं यहवार्ता केवल विद्वानोंके समझने योग्य है कि जैसा जगत् और ईश्वरका परस्पर संबन्ध अकथनीय है तैसा पित्त और अग्निका भी समझें उन्हीं वचनोंके अर्थ नीचे देखौ ॥

॥ १० ॥ पाचक (पकानेवाला) जो पित्त है वह एक तिलके समान है और कहा

है उसके कड़ापनसे उसको दोगतानहीं अर्थात् वातादि दोगत्रयकेसाथ उसकीगणना नहीं करीजातीहै (इसका यहीतात्पर्य टहिरा कि उसकडे तिलको अग्निही जानना) तिलका ठिकाना ऊपर नववेंपाठमें गोचो ॥ पित्तकास्वरूप कफमें भी पतरा ढरकना कृच्छ्र चिकना भी है परन्तु कफटंडासुषेदहै पित्त पीला अति गरमहै यही तीनों दोगमें गिनती होताहै इसीहेतु तिलके कड़ापनसे रीलापनका विरोधरहा ॥ पित्त पंचात्मक पाँचरूपों वालाहै वहभी एक मुख्यरूपसे आसागय पक्कागयको बीच रहाकरताहै • यद्यपि पृथिवी आकाश आदि पाँचोभूत तिलेहूयोंकारूप उसकाहै तो भी उसमें जो अग्निके गुणाका उदय गरसाई अदिकहै सो इदकेसाथ मिलारहितेही पकानायादि कर्मसाधन करताहै तिससे अग्नि कहाजाताहै वहीअन्नको पचाताहै फिर उसकारस रूपीसार और सैलरूपी कीट जुदा जुदा करवेना है और आप उनी जये बैटा यानी दूरस्थ चारपित्तोंको दलपहुँचाते रहिकर उहायना देता रहिताहै इसीमें पाचकनाम कहागयाहै ॥ यहपाठ यद्यपि पित्तकी प्रधानता महित कहागया तो भी पित्त और अग्नि दोनों जुदे सिद्धहोकर फिर अंतमें एकता सिद्धहुं • इसीकारिर्गाय फिर अग्रारह के अंकसे देखो ॥

सबकुछ करने में समर्थ हैं वही अपने अग्नि रूप को सूक्ष्म तेजीसे रसों को आकर्षण करते हुये जब अन्नको पचाते हैं उस समयकी विलक्षण दशा व्यौरेवार नहीं विवेचन करो जासक्ती है (क्योंकि पकाते समय कोई भीतर घुसके नहीं देखिपाता है ॥ शरीर की नाभिके भीतर जुदाई के साथ सोसका मंडल है उसी मंडलके बीचमें फिर सूर्यका मंडल जानौं (सोम मंडल ठराढा • सूर्यमण्डल उसके बीच गर्मस्थान है) तिसमें प्रदीप ज्योतिकी तरह अग्नि बैठा है ॥ जैसे सूर्य आकाशही में बैठाहुआ अपने तेजकी भी किरणों से छोटे बड़े सब तलावोंको जल खींचके सुखाता है उसी तरह छोटेबड़े हरसक शरीरधारी का भोजन किया पदार्थ है सो नाभिमैं बैठाहुआ अग्नि अपनी तेजकिरणों से शीघ्रही पचाय देता है चाहें नानाभाँतिके शाकादि व्यंजन सहित सिद्ध भोजन होय या चाहें कोई कठोर कड़ी चीज खाईहो तिसकोभी पचाता है ॥ (पित्त गोला ढरकना द्रव रूप है • यद्यपि द्रवरूपी एक तेज का समुदाय मिला झुला उसमें होता है तथापि उसके तेजका भाग जितना होय वही अग्निका तेज है इसी कारणासे पित्तभी अग्निके तुल्य मानाजाता है जैसे लोहका गोला जब अग्निसे अत्यंत तपाया जाय तब अग्नि के तुल्य होजानेसे अग्निही कहाजाता है यह सबहीका सिद्धांत दाहिरा इसी धोरखासे कोई पित्तको अग्नि और कोई अग्निको पित्त जाननेलगातेहैं) उस अग्निका कितना बड़ा रूप है सो आगे लिखते हैं ॥ हाथी आदि जो बड़े मोटे डीलडौल वाले प्राणी होयें तिनमें एक जौकी बराबर अग्नि होता है • मनुष्य आदि छोटे पतरे डीलडौल वालेहों तिनमें एक तिलकी बराबर अग्नि होती है • कृमि कीटपतंग आदि तुच्छ देह वाले जीवों में वार को नोक बराबर अग्नि रहता है ॥ यहाँ तक वारह भेदों में अधि-
कोक्ति परीभई जो ६३ से ६६ तक सात श्लोकों मध्ये लिखी गई ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ ६९ ॥

(अन्यच्च शरीराभ्यंतरज्ञानं)

सिराःशतानिसप्तैवनवस्त्रायुशतानिच । धमनीनांशतेद्वेतुपंचपेशीशतानिच १००

एकोनत्रिंशद्विंशतानिच । पद्मपंचाशच्चजानीतसिराधमनिसंयुताः १०३

त्रयोलक्षास्तुविज्ञेयाःश्मश्रुकेशाःशरीरिणाम् । मतोत्तरंमर्मगतंद्वेषसंधिगतेतथा १००

अर्थः—सिरा नामकी नाडीं जो नाभि से निकलती हैं ७०० सातसौ जाननी • तथा स्त्रायु नामकी नसें जिनसे सब अंगों के बंधान बंधे रहते हैं सो नौसे ६०० जाननी • तथा धमनी नामकी नाडियाँ जो नाभि से उत्पन्न होती हैं सब दोसौ २०० जाननी • तथा पेशी नाम सांशकी मुटियाँ पिंडीं सब देहमें ५०० पांच सौ होती हैं ॥ १०० ॥

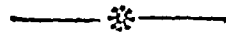
हे ऋषयः० उन्तीस लाख नौसौ छप्पन २६००६५६ संख्या होती है सब अंगों में सिरा और धसती ताल की नाडियाँ मिलकर यह जानें ॥ १०१ ॥ औरभी शरीरमें बड़ी सछ तथा गिरके बाल मिलकर तीनलाख जानने चाहिये और सबशरीरों में एकदो सात समस्थान हैं तथा दोसौ संधि मिलाप भी होतेहैं ॥ १०२ ॥

१०० अधिकोक्तिः—सिताक्षराकार इसपर कहते हैं कि नाभि में संबंध रखने वाली सिरायें जो संख्या से चालीस होती हैं उन्ही की बड़ी छोटी अनेक शाखाये बढ़िकर सर्व शरीर में फैलतीं और वात पित्तकफों की भर्ती क्रिया करतीहैं वेही सिर्फ चालीस की शाखा वृद्धिसे सातसौ होती हैं—तैसेही अंग प्रत्यंगोंके हाड मांस बांधदे वाली नसें नौसै होतीं—और धसती जोनाभिसे उत्पन्नहुई चौबीसहोतीहै प्राणान्दि १-चवायुश्री बहने वालीं तिनकी शाखा अनुगण्यवृद्धि होने सेदोसौहोजातीहै ॥१००॥ और (२६००६५६) इतनी संख्या जो कहीगई नौभी सिर्फ नाडियोंकी नहीं किंतु ४४ चौरासी सल प्रतीकसे लेकर यहाँतक जो कुछ अंग प्रत्यंग वर्गाना क्रियेगरेतिनके भी सूक्ष्म अंग जो नहीं बरान क्रियेगये सो सब जोडिके मनभरती ॥ १०१ ॥ योगी रामे जो बताई सो भी केवल बड़े छोटे हाड हाडियोंके अंग्यालीं नाथ जाननी किन्तु नाभि सिरा स्यायु आदि के मिलाप वालीं सुधे अतिशय बहन गंग में अनन्त है तिसमें उन की गिनती कुछ नहींदारीजासहीहै ॥ एकसौठान जो समस्थानको गिनका आयागा प्योगे यहाँ लिखते हैं

विशेष रहा करते हैं ॥ १ ॥ वे सर्माभी १०७ एकसौ सात हैं इस हिसाब से कि ग्यारह सर्मा सांस के ठिकानों पर दृष्टांत जैसे गुदा या चूतर ये उन्हीं ग्यारहमें गिनती है तथा हाडों में आठ सर्मा होते हैं दृष्टांत जैसे कान के समीप कनपटियों के दो हाड उन्हीं आठ में गिनती है ॥ २ ॥ संधियों में बीस सर्मा होते हैं दृष्टांत जैसे मूडमें कपालों की संधि उन्हीं बीसमें गिनती है तथा स्नायु नाम नसोंमें सत्ताइस सर्मा होते हैं दृष्टांत जैसे वास्त मूत्रकोश है सो बारीक खाल और नखोंका संघात एक सर्मा है वह उन्हीं सत्ताइस में गिनती है • चालीस और इकतालिस हैं सिरामर्मा जो सिराओंके मिलापोंके स्थलों पर होते हैं दृष्टांत जैसे नाभि सिरामर्मा यह उन्हीं इकतालिसमें शामिल है • देखो (११ सांसमर्मा—८ अस्थिमर्मा—२० संधिमर्मा—२७ स्नायुमर्मा—४१ सिरामर्मा) इन सबका जोड़ १०७ एकसौ सात सर्मा ठहरे ॥ ३ ॥ (उन्हीं की व्यवस्थासमझो) इनमें से ग्यारह ग्यारह बार्डिस दोनोंटांगमें इसीतरह बार्डिस दोनोंबाहूमें और हृदयसे ऊपर तथा दोनों कोष्ठ में तीनों जगह के कुल्ल बारह सर्मा होते हैं पीठ में चौदह सर्मा जानने तथा घाँच और मूडमें कुल्ल सैंतीस सर्मा होते हैं (वही १०७ एकसौ सातवाला जोड़ इसतरह से भी ठहरे) इन सब अंगोंमें जितने जितने होते हैं कहेगये तिनका वह नियम नहीं है कि एक अंगमें एकही प्रकार के सर्मा हों किंतु सब अंगों में सबतरह के मिले भुले कुछ सिरा मर्मा • कुछ सांस मर्मा कुछ संधिमर्मा आदि जानने ॥ ४ ॥ फिरभी इनके पाँच भेद होते हैं कि) उन्नीस मर्मा चोट लगने पर शीघ्रही प्राणाहरनेवाले १ ॥ और तैंतीस मर्मा के ठिकाने ऐसे हैं जो कुछ काल के अंतर से मारने वाले २ ॥ और चवालिस मर्मा ऐसे जो थोड़ी भी चोट लगने से विकलता पैदा करते हैं मारते नहीं ३ ॥ और आठ मर्मा ऐसे हैं जो चोट लगने से कुछ रोग विगाड उनमें घुसि जाता है ४ ॥ विशल्य घ्नंत्रिकंमतं—तीन मर्मा स्थान विशल्यघ्न होते हैं कि उनमें घुसा हुआ दारा आदिकोई शस्त्र जब खींचि के निकास जाय तभी तत्काल प्राणाहरें या विरले के सातदिन के भीतर तक हरे (ऐसे पाँच प्रकारों से भी वही १०७ एकसौ सात सर्मा ठहरे मव जोड़ देखो) ५ ॥ जो सद्यः प्राणाहर कहेगये वे भी सात दिन के भीतर तक हरे और कान्तर से मारने वाले पखवारे से ऊपर महीना के अंत तक मारते हैं—इस वार्ता का विस्तार अभी बहुत बड़ा वाकी है कि किस अंगमें किस ठिकाने पर के अंगुका लंबा चौड़ा किंतु प्रकारका मर्मा है वह कितने दिनमें मारता है इत्यादि एकसौ सातवार्ता विस्तार भयसे नहीं लिखीं सो वैद्यक शास्त्रमें देखना ॥ १०० ॥ = १०० ॥ १०१ ॥ १०२ ॥

१०३ अधिकोक्तिः—पूर्वादितसिराकेशादिसहितानां सकलशरीरसुधिरादिरोम्णां परमारावः सूक्ष्मसूक्ष्मतररूपाभागाः स्वेदग्रवणसुधिरैः सहचतुःपंचाशत्कोट्यः तथा सप्तोत्तर घट्टिलक्षाःसार्धाःपंचाशत्सहस्रसहिताः वायवीर्यैर्विभक्ताः पवन परमाराभिः पृथक्कृताविगणयन्ते इतिमिताक्षरा=अर्थात्—शरीरके जितने बड़े छोटे भाव जुड़ेजुड़े समझायेगये सो सब क्या चीज हैं इसका उत्तर कहतेहैं कि वायुके अतिसूक्ष्मभाग जो पवनके परमारा होतेहैं अत्यंत भिन्नीसंधों में घुसि जाइसक्ते हैं उन्हींसे पृथिवी आदि के विकार घुसि घुसि जुदे क्रियेहुये बहुतसे परमाराओंका संघात गिनाजाताहै नैयायिक मतसे इसके सिवाय और कुछ नहीं प्रतीत होता है जो कुछ शरीर में दर्शाया गया सिद्धांत इसका यहीहै तिससे ऐसे निःसार शरीरसे मोक्षपाने का प्रयत्न करना सार है ॥ १०३ ॥ १०४ ॥ १०५ ॥ १०६ ॥ १०७ ॥

यहाँतक थोडाथोडा संक्षेप शरीरक समझाया गया•इसी शरीरकी परमगति होने का उपाय भी अगिले परिच्छेदसे दर्शावेंगे ॥



अथब्रह्मोपासनायांज्ञेयस्यध्येयस्यतत्साधनफलस्य

चस्वरूपानिरूपणोयंपरिच्छेदः(१२)द्वादशः॥

इस परिच्छेदमें यह निरूपणा क्रियाजायगा कि योगी पुरुष को क्या जानना अ किसका ध्यान किस रीतिसे करना चाहिये और उसकी साधनापूरी करिपानेसे व फलहोता है सोभी कहाजायगा ॥

(उपासनीयस्वरूपस्य आत्मनिध्यानं)

दासततिसहस्राणिहृदयादभिनिःसृताः । हिताहितानामनाड्यस्तास्तांमध्येऽग्निप्रभम् १०८

मंडलंतस्यमध्यस्यआत्मादीपडवाचलः । मन्त्रेयस्तंविदित्वेहपुनर्गजायतेननु, १०९,

अर्थः—हिता हिता नामकी नाडियाँ ७०००० वहत्तरि हजार जो हृदयमें सम तात् निकसीं=अर्थात्—(नाभि में मूल रखने वाली) हृदय समीप में मन्त्रग्रह और हर तरफ हृदय को अभिव्यापन करि घेरि के निकसीं किंतु मन्त्रक तक चर्नागई

उस प्रकार से कि जैसे कदम के फूल में सुवन केसरी का गुच्छा देखिपरताहो तिनके बीचमें चन्द्रकांतिके समान एकमंडलहै तिनके बीच आत्मा देताहै अचल दीपजाति के समान वही ज्ञेय है अर्थात् उसीको ध्यान हाग आराधन करना चाहिये तिसको अच्छेजानिके फिरकभी यहांसंसारी देहमें आकर नहींजन्मताहै ॥ १०४ ॥ १०६ ॥

१०४ अधिकोक्तिः—अपरातिशोनाड्यस्तासादिडा पिंगलाख्येहेताड्यो मव्य दक्षिणा पाश्वर्गतेहृदिविपर्यस्तेनासाविवरसंबडे प्राणापानायतने सुयुक्ताख्यापुन स्तृतीया दंडवन्मध्येब्रह्मरंध्रंविनिर्गता तासांताडीनामध्ये मंडलंचंद्रप्रभं तस्मिन्नात्मा निर्वातदीपइवाचलःप्रकाशसान आस्तेइतिनिताक्षरा=अर्थात्—सिताक्षराकारकहिते हे किमूलश्लोक में कही ७२००० ब्रह्मरि हजार नादियोंमें उपरालनाडी तीन गों हैं • इडा • पिंगला • सुयुक्ता • योगशास्त्र के अनुसार • इनमें इडा नामे नयुता गोंपिंगला दाहने नयुता तक हृदयसे जाकर दोनों छिद्रों में वंहीहैं यही दोनों प्राणा अपानदोनों वायुका स्थान हैं और तीसरी सुयुक्ता नाडी हृदय में निकली हुई लाठी के समान सीधी नासाकेबीच होकर कपालमें ब्रह्मरंध्र तक चली गई • इस सब नादियोंके बीच उसी सुयुक्ता की मूलपर एक चंद्रसा के समान उज्य न कार्नाख्याला मंडल है तिसमें आत्मा रूपसे परमात्मा विराजमान है अचल जांतिके समान तिसमें प्रयत्नमें निर्गत गदिर में दीपक निरन्तर एक रत अचल रक्ता हया प्रकाश देता है तिसके ध्यान में लगना चाहिये ॥ १०४ ॥ १०६ ॥ इसी ध्यान दो युक्त गोंचे दर्शाते हैं ॥

जो हृदयबीच पूर्वोक्त मराडल में दीपक तुल्य प्रकाशमान बैठा है सो इस रीतिसे ध्यान करिवे योग्य है कि मन को बुद्धि को सब इन्द्रियों को यादिको सभी कामों और सभी बातोंकी तरफसे खींचिके केवल उसी आत्मामें समर्पण करै ॥ १११ ॥

११० अधिकोक्तिः—(योगं अभीप्सता) इस पद में योग शब्दका यह अर्थ है कि संसारके सभी विषयरूपी बंधोंको छोड़ि उनकी उपेक्षासहित अपने चित्तकी वृत्तियाँ उनकी ओरसे खींचि एक मनही में आत्मा के ऊपर उन वृत्तियों को लगाना जोडना यही योग है तिसकी सिद्धि चाहने वाले योगी को आरायक विचारना चाहिये जो वृहदारण्यक नामसे भी वेदही का अंग ब्राह्मण विशेष कहा जाता है जिसको योगी-श्वर याज्ञवल्क्य ने (अरण्यस्थान) वन में रथ चलते हुये मूर्यनारायण से पढा था ॥ ११० ॥ योगी के योगरूपी ध्यान का कर्तव्य रूपयही है कि चित्तकी वृत्तियों को सब ओरसे ऐसे खींचिके आत्मा में एकत्र करै जैसे प्रज्वलित दीप ज्योतिका प्रकाश दूरफैला हुआ भी दीपकपर शरावा ढाँकि देनेसे खिंचिकर उसी ज्योतिमें समाइ जाता है इस रीतिसे उस आत्मा के ध्यान में लयलीन होवै जो यह अनंतरोक्त १०६ श्लोक में कहा गया प्रभु दीपके तुल्य अपने हृदय में प्रकाशमान है ॥ १११ ॥

(अशक्तौ तु शब्द ब्रह्मोपासनं)

यथाविधानेन पठन्सामगायमविच्युतम् । सावधानस्तदभ्यासात्परंब्रह्माधिगच्छति ११२

अपरांतकमुल्लोप्यमद्रकंमकरीतथा । औवेणकंसरोविन्दुमुत्तरंगीतकानिच ११३

ऋगाथापाणिकादक्षविहितब्रह्मगीतिका । गेयमेतत्तदभ्यासकरणान्मोजसंज्ञितम् ११४

अर्थः—सावधान संन्यासी यथाविधानसे सामगायको अविच्युत पठन करते हुये उसी अभ्याससे परंब्रह्मके समीप जाता है—अर्थात्—सामवेदकी श्रुतियाँ स्वरके साथ गाई जाती हैं तिससे उसको सामगान और सामगाय भी कहिते हैं उसी सामगाय को जैसा उसके गानेका विधान सामवेदमें उपस्थित होय उसी विधानसे संन्यासी आप सावधान होते (अविच्युतनास) नित्यं प्रति अखण्ड नियमसे पठच अर्थात् रान करते करते उस अभ्यास के प्रभावसे परंब्रह्म के समीप तक पहुँचता है (मोक्ष चर्या अत्रिकोक्ति में देखौ ॥ ११२ ॥ अपरांतक • उल्लोप्य • मद्रक • मकरी • औवेणक • सरोविन्दु • उत्तर • गीतकानिच सात अपने प्रकारों में कहे गीतोंके भेद हैं (और चकारके ध्वन्यर्थसे आनामिन् ध्वन्यमानता आदि महागीत भी इसका किये जाते हैं मिताक्षराकारने यह कहा ॥ ११३ ॥ ऋगाथा • पाणिका • दक्षविहिता • ब्रह्मगीतिका • ये चारों गीतिका कर्तार हैं उनका

हाथ या पैर या घंटा या थपकी वा अंगुरी या लकड़ीआदिसे हरकोईसुननेवालाभी तालमिलाया करताहै तिसका भी स्वरूप संन्यासीजन जानताहो (तात्पर्यअधिकोक्ति में देखौ ॥११५ ॥ यह गीतज्ञ संन्यासी यदि गीतरूपीयोगसे कदाचित्त (चित्तविक्षेप आदि कारणोंसे लयभंग होकर) परम पदको नहीं पावै तौभी रुद्रका अनुचर होके उसीके साथ सुख भोगता है ॥ ११६ ॥ एवंप्रकार तुम सबको आत्मा का अनादि होना कहिसुनाया फिर उसकी आदि जो शरीर है सोभी कहा•आत्मासे सब जात होताहै सोभी कहा फिर जगत सेभी आत्मा की उत्पत्ति कही=अर्थात्—सरसदि मल प्रलोकसे लेकर अनादि आत्मा का स्वरूप और उनहत्तरि प्रलोक उत्तरार्धसे उस की आदि भी शरीर धारणा करनेसे कहिकर आगे सत्तरि मलप्रलोकसे ८३ तिरासी तक उसी परमात्मा के सकाशसे आकाश पृथ्वी आदि समस्तभुवनों की उत्पत्ति कही और उससे उत्पन्न हुये पंच महाभूतों के मिलाप से स्थूल शरीर बनने के द्वारा सब जीवों की उत्पत्ति भी कही ॥ ११७ ॥

११५ अधिकोक्तिः—श्रुतियों तथा जातों में प्रवीणा होना यह कि•वेदोक्त गान विद्यामें सातस्वरोंकी अठारह जाति और बाईस श्रुतियाँ होतीहैं (यद्ज•ऋषभ•गांधार•मध्यम•पंचम•धैवत•नियाद) ये सात स्वर होतेहैं येही सात इनकी मुख्यजाति कहाती हैं फिर इनमें से दो दो आदि के मिलाप से ग्यारह जातें और भी होजाती हैं वह संकरजाति कहाती हैं तिससे शुद्ध ७ और संकर ११ दोनों मिलकर अठारह जातें स्वरोंकी ठहेरती हैं—यथा—यद्ज•मध्यम•पंचम•इन तीनों स्वरमें चार चार श्रुतियाँ होतीहैं सो बारह ठहिरीं ऋषभ•धैवत•इन दोनोंमें तीन तीन श्रुतियाँ होतीहैं बारह में जोड़िके अठारह ठहिरीं•गांधार•नियाद•इन दोनोंमें दो दो श्रुती लगतीहैं सब जोड़िके बाईस २०हुई—इन्हीं सर्वश्रुति जातिमें प्रवीणाहोय अर्थात् इनके स्वरूप उत्पत्ति स्थान आदि सब जानै—दृष्टांत—जैसे नाभिके भीतरसे उदायाहुआ स्वरकराटमें निकसतेहुये वृषभके शब्दसम गरजताहै इसीलिये ऋषभ स्वरनाम उमका धरागया क्योंकि वृषभको ऋषभ कहिते हैं—जैसी यह ऋषभ स्वरकी उत्पत्ति कही तैसेसातोंकी जुदी जुदी फिर ग्यारह संकर जातोंकी जुदी जुदी फिर बाईस श्रुतियोंके जुदे जुदे लक्षण उत्पत्तिआदि जानै और दीर्गा सहित अपने कंठके द्वारा सबकारान भी यथा विधि से कर सकताहो तौ श्रुति जातिमें विगारद कहलाता है—इस प्रकारसे गवदरूपी व्रथ की उपासना मे सुरामता सेही चित्तकी वृत्ति आगेपित होजातीहै क्योंकि स्वतान आदि भंग होजानेके भयसे चित्तकी वृत्तियाँ अवश्य रोकनीपरतीं और स्वर्गार्थीव-

(मोहजाल) अज्ञान का माया जाल है सो सब जुदा मानिके उसके उपरालू जो कोई एक पुरुष प्रतीत होता है वही सहस्रों अर्थात् असंख्य हाथ पैरोंवाला असंख्य नेत्र मस्तक वाला और असंख्य सूर्यों के समान तेज वाला भी है (अर्थात् देव राक्षस मनुष्य आदि सभी जीवोंके हाथपैर मस्तक आदि की संख्या जो कुछ तीनों भुवनमें हो सकती हो सो सब अंग उसी एक पुरुषके हैं किन्तु उसीके प्रत्यक्ष जो उसकी शक्ति उपस्थित रहती है तिसके आधार सहारेपर ये सब तीनों भुवनके हाथपैर नेत्रआदि इन्द्रियाँ कामदेती हैं) परन्तु वह पुरुष किसीके सम्मुख आकर नहीं दिखाई देता है (११६) वही पुरुष सब जीवों में आत्मारूपहोके उपस्थित और वही यज्ञों का रूप है अर्थात् नित्य निमित्तिक तथा काम्यभेद वाले सभी यज्ञोंका स्वरूप वही आप है इसीसे यज्ञ पुरुष भी उसका एक नाम है और विश्वरूप अर्थात् समस्त जगत् का आत्मारूप है क्योंकि विराज रूप होनेसे अर्थात् मस्तक जिसका स्वर्ग आदि ऊपर के लोक और पाताल पैर और भूतल मध्यम अंग है इत्यादि लक्षणों से ब्रह्माराडमात्र सब स्थूलरूपी देहका अभिमानी वही पुरुष है जो विराट भी कहा जाता (एकसौपचीम १२५ मूलप्रलोकसे १२८ तक चारिप्रलोक देखो) और प्रजापति वही आप है अर्थात् प्रजाकी उत्पत्ति या वृद्धिकरनेवाले चतुर्मुख ब्रह्मा और दक्ष आदिरूपोंसे आपही वर्तमान है तथा राजा महाराजा आदि नरपाल भी प्रजापति होते हैं तिनके भी रूपोंसे आपही वर्तमान है तथा विश्वकर्मा और सूर्य और अग्नि भी प्रजापति कहाते हैं तिनके भी रूपोंसे आपही वर्तमान है (इसवार्ताके निमित्तसे गीतामें विभूति अध्यायभी देखना चाहिये) वही पुरुष आप अन्नरूप होकर तिल घृत खाँड मेवा आदि अन्नोंका पुरोडाश बनिकर अपनेही अग्निरूप में मिलि के यज्ञरूप बनजाता है (फिरभी उसी यज्ञसे वर्यारूप बनिकर उसीवर्यसे अन्नादि औषधियोंका रूप लेकर उन्हीं अन्नोंमें रस धातुकेद्वारा शुक्रधातुका रूपलेकर गर्भों में जाकर फिर प्रजारूप होजाता है बहुतेरी जीवोंकी संतति केवल वर्यके होनेसेही पृथ्वीसे आपही आप शुक्रधातुके बिनाही उत्पन्न होजाती है तिससे संपूर्ण विश्वरूप होना उम पुरुषका प्रत्यक्ष है) इस वार्ताका विशेष व्यौरा ७१ इकहत्तरि के मूलप्रलोक में भी देखो तथा यहाँ भी अगिले प्रलोकोसे दशाति हैं ॥ १२० ॥ = १२८ ॥ ११६ ॥ १२० ॥

१२१ ॥ १२२ ॥ १२३ ॥ उसी (जलसे उत्पन्न हुये) अन्न से (कि जो सब तरह के अन्नादिक पदार्थही प्रजाकी उत्पत्ति पालन करनेमें कारणा हैं तिनसे) फिर यज्ञहुये • फिर भी (पर्वाक रीतिके द्वारा) उन्हीं यज्ञों से बर्षा होकर अन्न पैदाहुये फिर उन्हीं से क्रतुयज्ञ होने लगे • एवं इसी प्रकार से यह समस्त संसार एक चक्र बडे चाक के अनुरूप खूब घूमता रहता है कि इसका परिवर्तन वेग (घूमना चक्कर खाना) कभी थकता नहीं (अर्थात् कभी अगिला भाग पीछे कभी पिछला भाग सम्मुख आजाता रहता) इसी कारण यह संसार अपने उत्पत्ति और विनाश इन दोनों से विहीन रहता है क्योंकि परमात्मा का स्वरूपही विराट रूपसे संसार टहिरा तो फिर उस अविनाशी के रूपका विनाश नहीं होसकता न कभी उसकी उत्पत्ति होनी कही जासकती क्योंकि सदा सर्वदा से यह इसी प्रकार वर्तमान चला आता है फिर उत्पत्ति किसकी कहीजाय ॥ १२१ ॥ १२२ ॥ १२३ ॥ १२४ ॥

१२४ अधिकोक्तिः—अपने भूमरूपी संदेहमय प्रश्नोंको याद करो कि जगत में आत्मा कैसे उत्पन्न होता है—सो सब समुझाया गया कि इस अनंतरोक्त क्रमसे आत्मा आपही जगत् रूप है और इसी क्रमसे आत्मा के सकाशसे संपर्क जगत की उत्पत्ति होती है और इसी जगत् में वह आत्मा (सरमटि ६७ प्रलोकसे चर्चा कियेहुये विदग्ध रूपोंसे) निज कर्मानुरूप शरीरोंका परिग्रह करता है ॥ संसार यद्यपि उत्पत्ति और विनाशसे विहीन है तथापि इसके प्रलय और उद्भव जो प्रसिद्ध किये गये मो केवल सूर्यके उदयास्त सब कल्पित किये कहाते हैं—अर्थात् जैसे सूर्य कभी न अस्त होता है न उदय होता है सदा सर्वदा प्रकाशमान रहता है परंतु जिस समय जिनदेशों में पर्दतकी आड़ होजानेसे देखि नहीं परता तब उतने समय तक राति कहिके सूर्य का अस्त हुआ मानि लेते हैं इसी प्रकार जिस समय जिन देशों के मरुभूमि आजाता है तहां उतने समयतक दिनकहिकर सूर्यका उदयहुआ मानिलेते हैं (त्योंकि जो ऐसी कल्पना न करीजाय तो दिनरातिके व्यवहार केमेचने तिससे नामसावही के निमित्तसे उदय अस्त कल्पितमानेगये) तैसही संसार जब उद्भव की शक्तिलपी सायाके आड़में होजाता तब उतका प्रलयकहाने लगता है • तब उतनाया की आड़से निरालाहोता तब उत्पन्नहुआ कहाने लगता है किन्तु यद्यार्थमे न उसकी उत्पत्ति है न प्रलय • तिससे भक्तकी साहको त्यागी ॥ ० ॥ मरुमी तडेनप्रलोकमे मरु सतों के बोधेद प्रकार कल्पके निमित्तमे अगतात्म अतगतान्म ये दो विगोयगा दिग् गयेहें तहां अगतमंज्ञा खानेकी ओर आत्ममंज्ञा रूपकी ये दोनों नितिके यह अर्थ

इसका आदि अंत नहीं यह सदासे ऐसा चला आता है—तौ फिर निर्मुक्ति कहाँसे हो-
सकती है क्योंकि प्रथमतः इस संसार के जंजालसे उसीकी निवृत्ति कभी नहीं है फिर
और कोई मुक्तिकाभरोसा उससे क्या करै—इसके समाधान मध्येनीचेका वचन देखो ॥

(समवायीपुरुषः)

अनादिरात्मासंभूतिर्विद्यतेनांतरात्मनः । समवायीतुपुरुषोमोहेच्छाद्वेषकर्मजः १२५

अर्थः—आत्मा अनादि है अंतरात्मा की संभूति नहीं विद्यमान होती है—मोह इच्छा
द्वेष कर्मों से उत्पन्न समवाय वाला पुरुष होता है—अर्थात्—यह बात यद्यपि सत्य है
कि आत्मा के अनादि होनेसे अंतरात्मा की संभूति नाम (जन्म लेनेसे) उत्पत्ति उस
आत्मा अनादि को नहीं व्यापती है (यही उसकी समर्थकी विचित्रता है कि मिला-
र है अरु नामिले तासे कहा वसाय) यहाँपर (आत्मापरब्रह्म को समझना अंतरात्मा
उस चिदंश को समझना जो संसारी देहों के भीतर आके प्रविष्ट होता है) और (सं-
भूति केवल देहों के उत्पन्न होने को समझना तथा और सब संसार की वस्तु जो जो
हैती हैं तिनके भी उत्पन्न होजाने मात्र को संभूति समझना अर्थात् यह संभूति उस
आत्मा के अंतरात्मा को भी नहीं व्यापती है अनादि होने के हेतु से) यद्यपि नहीं
व्यापती है तथापि पुरुष देहमात्र से समवायी होता है किन्तु (समवाय भी दो
भाँतिसे कहाता है एक तौ सूधीरिति से यह समझ लेना कि अनेक वस्तुओं का
संग्रह इकट्ठा होना समवाय कहाता है जैसे देहरूपी कलेवरमें ८० अस्मी प्रलोक से
लेकर १०७ एकसौ सात प्रलोकतक जो कुछ दर्शाया सो सबका जमाहोना समवाय
संबंध समझना) दूसरा नैयायिक मतसे यह ठंग है कि (नित्यद्रव्यादियु जात्यादीनां
संबंधभेदः समवायः अर्थात् जो वस्तु अनित्य नहीं नित्य है जैसे पृथ्वीआदि पाँचतत्त्व
नित्यहैं यद्यार्थसे कलेवरमें भी येही पाँचतत्त्व हैं छटा आत्मा आप हें ७० वदतरि
प्रलोकमें देखौ सो उन्हीं नित्यद्रव्यों में नामजाति रूपों से अनेक संबंध भेद कारेना
समवाय कहाता है जैसा इसीजघे ७३ । ७४ तिहतरि चौहतरि प्रलोकों में देखौ कि
छटे आत्माने उन्हीं पाँच तत्त्वोंसे कितने संबंध भेद कारेदिये जिनको अनेका नाम भेद
काहने परे) दो भाँतिसे समवाय होता दर्शाया को दोनोंका एक ही तात्पर्य क्रोध
समझने मात्रके निमित्तसे दो भेद कहेगये अब ऊपर ध्यान करो कि पुरुष देहमात्र में
समवायी कहा तिसका यही तात्पर्य है कि वह चिदंशरूपी पुरुष जगत्में सबत्रा
इकट्ठा करनेवाला रहिरता है अर्थात् उसको अपने जन्मने या मरने आदि में कुछ

(जगतःप्रारम्भेचतुर्वर्णोत्पत्तिः)

सहस्रात्मामयायोवआदिदेवउदाहृतः । मुखबाहूरुपज्जाःस्युस्तस्यवर्णयथाक्रमम् १२६

अर्थः—(वःयुज्जान्प्रति मैने जो सहस्रात्मा आदिदेव तुमसे उदाहृत किया तिसके मुखबाहु जंघा पादसे यथाक्रम वर्णहोतेहैं=अर्थात्—ब्राह्मणा आदि चारोवर्णा इमक्रम से उत्पन्न होते हैं कि मुखसे ब्राह्मणा भुजाओं से क्षत्री जंघाओं से वैश्य चररोंसे शूद्र ये उसीसे कि जो पहिले मैने तुम सब ऋषीचरों को सहस्रात्मा आदिदेव समुभाया था (सहस्रात्मा कहिने का यह तात्पर्य है कि सब जीवधारी उसीका रूपहैं तिसमे बहुरूप है अर्थात् असंख्य सहस्रों रूप वाला सहस्रात्मा के नामसे कहा) आदिदेव इससे कहा कि जगत का सबसे पहिला हेतु रूप वही आप है ॥ १२६ ॥

(समस्तजगदुत्पत्तिप्रपंचः)

पृथिवीपादतस्तस्यशिरसोद्यौरजायत । नस्तःप्राणादिशःश्रोत्रात्स्पर्शाद्वायुर्मुखाच्छिखी १२७
मनसश्चंद्रमाजातश्चक्षुपश्चदिवाकरः । जघनादंतरिक्षंचजगच्चसचराचरम् १२८

अर्थः—उसके पैरसे पृथिवी उत्पन्न शिरसे स्वर्गनाकसे प्राणाकान से दिगाद्ये स्पर्शसे वायुमुखसे अग्नि १२७ ॥ मनसे चन्द्रमा उत्पन्न हुआ नेत्रसे सूर्यजांघ से अंतरिक्ष और चराचर सहित जगत भी=अर्थात्—उसी आदि देव के इन अंगों से ये वस्तु भी उत्पन्न हुईहैं कि पैरोंकी पगतलीसे धरती जो मनुष्यों का आधारभूत लोक है--और मस्तकसे स्वर्गलोक जो देवतों का देगहै और नाक से सामान्य प्राणों की उत्पत्ति हुई कि जो सबजीवोंमें वही प्राणा होतेहैं उनके बिना कोई जीव न जीसके और उसीके कान छिद्रसे दगौ दिगा भी उत्पन्न हुई कि जिनके बीच बड़े तीनों भुवन और चतुर्दश लोकोंकी स्थिति रही आतीहै (कदाचित्त ये दिगायें न होतीं तो बड़े बड़े लोकों का स्थान किस दिक्काने पर होसकता था)—स्पर्श नाम है छुईजाने वा छुई सकने योग्य का इसीसे त्वचा भी स्पर्श नाम रक्त दृष्टी दाही जानाहै कि उसमें वायु का स्पर्श होनेसे वायुका स्वरूप जाना जाताहै सो वायु उनी आदिदेव के स्पर्शसे उत्पन्न हुआहै कि जगत के कोई काज उनके बिना न चल सकते-और उनी आदिदेव के मुखसे अग्निकी उत्पत्ति हुई कि जिनमें होम कानसे उसी आदिदेव के मुखसे पहुँचजाता है=उसी आदिदेव के मनसे चंद्रमा की उत्पत्ति हुई कि चंद्रमा की असृतमय गीतलता जो प्रकाशमान है वही उदके मत का स्वरूप है और उसी आदिदेव के नेत्र की ज्योति अर्थात् कोई रक्त किरणों की आभासाय से सूर्य

(उत्तर स्वरूपं)

अंत्यपक्षिस्थावरतामनोवाक्कायकर्मजैः । दोषैःप्रयातिजीवोऽयंभवंयोनिगतेषुच १३१
अनंताश्चयथाभावाःशरीरेषुशरीरिणाम् । रूपाण्यपितथैवेहसर्वयोनिपुदेहिनाम् १३२

अर्थः—मन वचन कर्म इनसे उपजे दोषों से यह जीवही सैकरों योनिमें भवजन्म से अंत्योनि पक्षीयोनि स्थावरत्व को जाता है—अर्थात्—तुम्हारे संदेह के अनुसा यद्यपि यह सत्यहै कि वह आत्मा ईश्वर होने से अपने स्वरूपही से सत्यरूपी लक्ष्मी और ज्ञानरूपी लक्ष्मी और आनन्दरूपी लक्ष्मीसे संपन्नहै तौभी यहसब शुद्धलक्ष्मी उसी एक परब्रह्म के स्वरूप में समझना (जिसका सरसिंह ६७ के प्रलोक से चर्च आचुका है कि उसमें से फुलिंगे उड़ते हैं सो सब जीवरूप कहे जातेहैं) सो यहजीव जो उसीका किंचित्त मैलरूपी अंश उड़िकर जन्म लेताहै उसीका संबन्ध यहाँ समझ लेना कि जीवही शक्तिहीन होकर उसकी अविद्या माया के आवेश में बगहोक सोहरारा आदि भावों से लिप्त होताहुआ उन कर्मों का आचरणा करने लगता है त्रिजिनके प्रभाव से अवश्यही नाना भाँति नीच योनियों में जन्म लेना परताहै (केवल मानस कर्मोंका आचरणा उस दशा में भी समझना कि जबतक कोई गक्रभी जन्म उस जीवने न पायाहो किंतु उसी मानस कर्मके प्रभाव से मग्ये पहिला जन्म लेना परैगा चाहें किसी योनि में नो तहाँ फिर कार्यात्मक और वाचिक भी भले नुरे जैसे कर्मोंका आचरणा होने लगा होगा उन्ही के अनुरूप उसको ऊँच नीच योनिमें जाना परता है) इसीलिये मूल प्रलोक में ये कर्म तीनों भाँति के दर्शाये गये कि गक्र मन से जैसा भला बुरा विचार साव कियाहो १ दूसरे वाणी से भला बुरा जो कुछ प्रचारणा कियाहो २ तीसरे काया से कि जैसा किसीके बुरी तरह धक्का सारा या भली तरह स्नेह प्यार किया हो ३ इत्यादि—इन्हीं कर्मों से उत्पन्न हुये जो कुछ दोषउर्मा जीवके ठहरतेहैं तिन दोषों के प्रभावसे वह जीवही सैकरों हजारों योनि में भवजन्म को पहुँचता है तहाँ यह भेदभी अवश्य आनिपारता है कि दुरे मानस कर्मों के दंयमें अंत्ययोनि अर्थात् चंडाल आदि जातिमें जाना परताहै और वाणीसे उत्पन्न कर्मों के दोष से काक उलूक आदि पक्षियों की योनिमें या पशुओं की योनिमें भी जन्म लेना परता है और काया से उत्पन्न कर्मों के दोषसे ग्यावर वृक्षादिक योनिमें उत्पन्न होना परताहै (अर्थात् की अशुभकृतिये मनुष्यता वचन से जो दोषों) ॥१३१॥ और शरीरियोंके शरीरोंमें जैसे अक्षय भाव होहै तयैव अर्थात् मन योनियों में जन्म

सेही उत्पन्न हुआ और इसमें भी इच्छा उसी ब्रह्म की बलवानहै=कि=जिन फुलिते रूपी जीवोंका प्रथम कोई संसारी देह जब तक नहीं मिला केवल उसी सूक्ष्म रूप शरीर में रजोगुरा तमोगुरा सतोगुरा इनके प्रभाव से जो जो मानसिक भाव उत्पन्न होते रहे सो भी अत्यन्त सूक्ष्म रूपसे केवल बीजमात्रही अंकुर उठते हैं कि जिनके प्रभाव से प्रथम कोई न कोई सी एक योनिमें देह उनको मिलजाती है फिर ती स्मृत देह पाकर उन्ही पहिले बीजोंकी वृद्धि भी हरतरह होती रहती है कि जिस योनिमें पहिला देह पाया तहां थोड़े बहुत पाप या पुण्य रूपी और भी कुछ कर्म किये तिनसे फिर और कोई योनि पाई तहां फिर और भाँति कर्मोंकी वृद्धि हुई इसी प्रकार फिर फिर आवागमन की शृंखला बँधि जाती है ॥ १३१ ॥ १३२ ॥

कदाचित्त यह शंका आरोपित करी जाय कि जब कर्मही को प्रधानता ठहरी कि वह सूक्ष्मरूपी जीवह कर्मसे खाली नहीं तो फिर कर्मका फल भी तत्काल मिलना चाहिये कि जब कर्म किया गयाहो अर्थात् देहांतर वा जन्मांतरका चर्चा आप क्यों करतेहैं—सो इसका नियम नीचे बर्णन करते हैं ॥

(कर्मविपाकनियमः)

विपाकःकर्मणांप्रैत्यकेपांचिदिहजायते । इहवाऽमुप्रवैकेपांभावस्तत्रप्रयोजकम् १३३

अर्थः—किन्हींएककर्मोंका विपाकप्रैत्य होताहै•किन्हींकायहाँ•औरकिन्हीं का इहाँ या वहाँ भी•तिस में प्रयोजक भाव है=अर्थात्—कूछ ती कर्म ऐसे हैं कि जिनका विपाक फल प्रैत्य ही (अर्थात् हमरे जन्मों के देह में जाकर) मिलता है (इसका दृष्टांत जैसे ज्यातियोन आदि बहुधा यज्ञों का फल इस देह में नहीं किन्तु दूसरे देहमें जाकर होता यही नियम है) और किन्हीं बिरले कर्मोंका फल उहाँउसी देहसे मिल जाताहै (दृष्टांत जैसे कारीरी नाम गुरु याग होता है कि बर्षा देना आदि जिस कासनासे ठीक ठीक कियाजाय सो फल बर्षा आदि उसी देहमें तत्काल प्राप्त होता ऐसे और भी अनेक कर्म होते उनका यही नियम है कि जैसे दशाग्रते एव कामेष्टि यज्ञ किया या चाण्डुव इसी देहमें फल मिले) और बहुधा कर्म ऐसे भी होते हैं कि जिनका विपाक फलचाहे उही देहमें होनाय यदा उहाँ किर्मा हेतु से न मिले तो अनुव वहाँ दूसरे देह में ही जाना मिलताहै अर्थात् उनमें कोई एक नियम नहीं किन्तु जैसा कर्मोंका प्रभाव होगा उनके अनुसार चाहे यहाँ फल मिले या वहाँ जाकर मिले ॥ तिसमें यहतर्कना अतुचितहै कि कर्मपूराहोते जागनकावरी

तत्परहो और (पिण्डुन) जो पराये कानमें धीमे बोलिके पराई चुगली चाई की बात बहुधा किया करै जो बातें सुनिके किसीको उद्वेग या क्षोभ होता हो और (अनिबद्ध प्रलापी) वह पुरुष जो विना टीक जोड़के असंगत बातें बनाकर पुकारता फिरै कि जिन बातोंका संसर्ग भी सम्भव नहीं था ऐसा पुरुष पशु आदि मृगजीवोंकी योनिमें या किसी प्रकारकी पक्षी योनिमें जाकर जन्म लेता है—वहां भी ये भेद उसमें जुड़े हैं कि जिसने उक्त बातें जानि ब्रह्मके बनाई और बोली होंगी सो अति नीच पशु पक्षी की योनि पावै या जिसने विना समुझे कुछ धोखेसे उस भाँतिकी बात बोलीहोगी सो कुछ अच्छे पशु पक्षीकी योनिपावै इत्यादि नानाभाँतिसे असंख्य भेद होतेहैं ॥ १३५ ॥

विनादिया लेनेमें निरत और पराईदाराका उपसेवक और अविधान से हिंसक सर्वथा स्थावरोंमें जन्मता है—अर्थात्—ये काया कर्म होतेहैं जो हाथआदि कायासे कियेजायँ किंतु जो विनादिये विराना धन हरनेमेंतत्परहो और विरानीस्त्रियोंके भोगने में लगा रहता हो और विना विधान के हिंसा करता हो अर्थात् शास्त्रोक्त बलिदान या शास्त्रोक्त प्राणादाड या शास्त्रोक्त धर्मयुद्ध इनसे उपरालू जो जीवोंकी निरर्थक हिंसा यद्वा इन्हीं कामोंमें विधिको छोड़ि विना विधिके हिंसा करता हो सोभी वृक्षादि रथाव सृष्टिका जन्म जाकर पाताहै उसमें भी असंख्य भेदहैं कि यहाँ जिसने जैसा बड़ा छोटा दोष उत्पादन किया होगा तैसे बड़े छोटे उत्तम मध्यम नीच स्थावरों में जन्म उसको मिलता है कि आँव या दवर आदि वृक्षहो या लताबेलिहो या प्रतान कुतरीला पेड़हो इत्यादि—क्योंकि विना दिये धन हरनेमें भी नाना भेद होते हैं कि जैसे कौसलता में पुसिलाकर हरा या कटोरतासे सारि पीटिकर छीना या चोरीसे हरा या धाँखा धंका या सौंपा हुआ नहीं दिया इत्यादि सभी बातों में असंख्य भेद होते हैं ॥ १३६ ॥

के उपभोग या विना दिये धन हरनेकेद्वारा कायाकर्मभी उत्पन्नहुये तिनसेफिर प्रभु पक्षीकी योनि और स्थावर वृक्षादिकों की योनिमें भी जानेलगे तब क्रमसेऔर सृष्टि भी उत्पन्न हुई•तौ इसक्रमसे बड़ा विलम्ब बीताहोगा तब संसार पूरा वनाहोगा किंतु यहभी एकसंदेहरूपीदूयसापायागया कि एकसाथही सबसृष्टिकी उत्पत्ति न होसकी होगी क्योंकि कर्म बीजों के आधीन होकर इसी क्रमसे रुद्ध हुई=समाधान•सुनौं सृष्टिके उत्पन्नहोने मध्ये कोईसा एकहीमार्ग ऐसा नहींहै कि जिसका भेद सुगमता से हर कोई पासके (नेतिनेति) ऐसा कहिकर वेदकी श्रुतियाँही अपनी अशक्ति दर्शाती हैं फिर औरोंकी क्या सत्ताहै जो ईश्वरके निःशेष मार्गों का भेद होसके—सब से पहिली सृष्टि की आदि में विशेषकर कर्म बीजोंकी आवश्यकता ईश्वरको नहीं भी होतीहै जैसा मनुका अश्रोक्त वचन है=मनुराह=यंतुकर्मरायस्मिन्सनिधुंक्तप्रथमं प्रभुः सतदेवस्त्रयंभजेसृज्यमानःपुनःपुनः=अर्थात्—वह समर्थ प्रभुने सबसे पहिले कल्प में जिस जीवको जिस कामके धन्धे में अपनी सामर्थ्य से लगादियाया वहीजीव फिर बरंबार कल्पोंकी रचना समय जब जब सृजाजाता है तब तब आपही उसी कर्मको भजने लगता है (जैसा इसवचनमें कर्म बीजोंका प्रयोजन कुछ आवश्यक नहींठहिरा तैसे और भी सृष्टिके अनेक मार्ग हैं) इसी मनुवचन के अनुकूल अरसटि का प्रतीक और उसी की अधिकोक्ति में जो वचनहैं सोभी देखौ कि केवल कर्म बीजोंका नियम उसमें नहीं है—और भी—एक सौ तरेसटि १६३ का प्रतीक आगे देखना कि उसमें कर्म बीज से उपरालू अन्य कारण भी दर्शाये जायेंगे तिससे ऐसी शंका न करनी चाहिये—और—यथार्थ में सबसे पहिला कल्प ही कोई नहीं है क्योंकि जो सब से पहिला कोई कल्प ठहिरै तौ परमात्मा की आदि भी जानीजाय उसके आदि नहीं है वह अपनी प्रभुताकी सामर्थ्य सेही एक साथ सबकुछ उत्पन्न करसकति (उनके प्रसारा मध्ये एकसौछवीस आदि श्लोकोंको देखौ कि सबकुछ एक साथही उत्पन्न किया) और भी वहत्तरि सूक्तश्लोक से दुराप्त शब्द के अर्थों को दिचायें कि उगने अपनी शर्य सेही एकसाथ गर्भमें सब अंश और अनेक भौतिकी मानसी तथाइन्द्रा आदि का समवाय इकट्ठाकिया और सदा करता रहिताहै कि निश्चय आगार्थीया कोई नहीं जागिसकति केवलिया केले किया•और भी चौहत्तरि सूक्तश्लोकमें नम्ये तदात्मजंसर्व सनादेरादिसिच्छतः) इस अर्थ से अर्थ देखौ कि इतना सर्व समवाय उसके पासही से उत्पन्नहुया कितनी नगाले की उत्पन्न उसको नहीं होती=यथायं से=यहां जो एकसौ पचास आदि श्लोकों में कर्मों का विषय वर्तन कियागया

की साधना करताहो—वेद विद्यावित् वह किजो वेदोंके अर्थको जानताहो—इतने लक्षणांसे पहिंचाना जाताहै कि यह सतोगुरा वाला सात्विक पुरुषहै और ऐसा सतोगुरा देव योनिमें जाकर जन्मलेता है—वहाँ भी सासान्य वा उत्तम अति उत्तम आदि देवता योनि उसके अनुसार मिलतीहै कि जैसा छोडा बहुत या उत्तम आदि सतोगुरा संचय हुआहो ॥ १३७ ॥ जो असत्कार्योंमें लीन•अधीर•आरंभी•और विषयीभी हो सो राजस जानौं वह सराहुआ फिर मनुष्यों में जन्म को पहुँचता है=अर्थात्—गाने बजाने नाचने आदि बहुधा असत्काम तिनके करने या करवाने में जो तत्पर बना-रहिता हो और अधीर किन्तु व्यग्रचित्त रहिता हो कभी सावधानी को न पावै और आरंभी किन्तु सदाही संसारी विषयोंके टंठ घंठ जिसको लगे रहितेहो—इतनेलक्षणांसे पहिंचाना जाताहै कि यह रजोगुरा वाला राजस पुरुष है और ऐसा रजोगुरा मरे पीछे फिर भी मनुष्य योनियें जन्मताहै वहाँ भी अति हीन वा हीन वा उत्तम अति उत्तम आदि मनुष्योंमें होताहै कि जैसा कुछ अच्छा बुरा राजसगुरा संचय होचुका होगा १३८ निद्रालू•क्रूरकर्सा•लुब्ध•नास्तिक तथा याचक•प्रमादवान्•भिन्नवृत्त•तामस जानौं वह तिर्यक् योनियोंमें होयहै=अर्थात्—निद्रालू जो सदा दिनमें भी सोता रहिताहो—क्रूरकर्सा जो प्रार्थियोंको पीडा देनेवाले काम करता हो—लुब्ध जो अति लोभी किन्तु अनुचित मार्गसे भी लोभ करताहो—नास्तिक जो धर्म आदि की निंदा में तत्परहो—याचक जो सदैव मांगनेका स्वभावही रखताहो—प्रमादवान् जो करने न करने योग्य कामका विचार करसकने में सदा गाफिल रहिता हो अर्थात् विचार की शक्तिसे विहीनहो—भिन्नवृत्त जिसने अपना जातीधर्माचार आदि कौटुिके कुछ विरोधी आचरना श्रंगीकार कियाहो—इतने लक्षणां से पहिंचाना जाताहै कि यह रजोगुरा वाला तामस पुरुषहै और ऐसा तमोगुरा तिर्यक् तिरछी योनियोंमें अर्थात् पशु पक्षी आदिमें जाकर जन्मपाताहै—वहाँ भी उत्तम मध्यम नीच आदि गरोर उस के अनुसार मिला करताहै कि जैसा कुछ तामसगुराका संचय होचुका होगा ॥ १३९ ॥

॥ एकशौ वत्तीस तेंतीस श्लोकसे आदि लेकर यहाँ तक जो कुछ वर्णिया तिसको याद दिलातेहुये सबका उपसंहार नीचे कहेगे ॥

(पूर्वोक्तस्योपसंहारः)

रजसात्मसाचेदं तन्माविष्टो भ्रमन्निवृत्तः । भावैर्गन्ति संयुक्तं तन्मन्त्रनिश्चयं ॥ १४० ॥
अर्थः—एवं रज तम दोनों से संयुक्त आविष्ट हुया गन्ति भावों से संयुक्त उपां

भ्रमते हुये संसारको पहुँचता है—अर्थात्—एकसौ उनतीस प्रलोक में शंकाकरीगई थी कि जा इंचरहे तो कैसे अनिष्ट भावोंसे संयुक्त होता है—तिसका उत्तर यहां उपसंहार में तोड़ करिके समझाते हैं कि—एवं इसप्रकार जैसा छे सात प्रलोकों में कहागया तैसे रजोगुरा तमोगुरा इनदोनों से लिप्तहुआ यह आत्मा का चिदंशमात्र इहाँसंसारही मे भ्रमता घूमता हुआ नानाभांति दुःख देनेवाले अनिष्टभावों से संयुक्तहोकर (संसारंप्रति पद्यते) देहरूप संसार को पाताहै—तिससे उक्त शंका को अवकाश नहीं है १४० ॥ इसीका श्रेयउत्तर आगे सुनौ ॥

(पुनप्रचाह)

मलिनोहिययाऽऽदर्शोरूपालोकस्यनक्षमः । तथाऽविपक्वकरणआत्मज्ञानस्यनक्षमः १४१ ॥

कट्वेर्वारोयथाऽपक्वमधुरःसन्स्वोपिन । प्राप्यतेह्यात्मनितथानापक्वकरणेज्ञता १४२ ॥

अर्थः—मलीन दर्पणा जैसे रूप देखाने में समर्थ नहीं तैसे विनापके करणावाला आत्मा अपने ज्ञानको समर्थ नहीं—अर्थात्—एकसौतीसके पूर्वार्ध प्रलोक से यह शंका करीगई थी कि मन बुद्धि आदि अंतःकरणासे संयुक्त होतेहुये भी उस आत्माको अपना पूर्वजन्म संबन्धी ज्ञान क्यों नहीं आता• तिसका व्यौरा बीच में समझाने पीछे अब कहिते हैं कि—हाँ ठीक यद्यपि आत्मा मन बुद्धि आदि अंतःकरणा से संपन्नहै तथापि जन्मांतर के बीते वृत्तांत आदि करने में समर्थ नहींहोता क्योंकि भीतरले मन बुद्धि आदि करणा औजार जोहैं सो पके नहीं अर्थात् राग द्वेषआदि मलोंसे जटितहुआ चित्त रहितहै कि जैसे दर्पणाका शीशा मलसे जटि जाताहै (और यही अपनी साया की आड उसने रक्खीहै कि कोई उसका भेदखुल्लस करिके न पाइसके) इसीका दृष्टांत आगे देखो ॥ १४१ ॥ जैसे कडुवे सर्गारु फलमें मिठास होते हुये भी कचचे में रसमीठा नहीं प्रायाजाताहै तैसे विनापके करणा के आत्मामें भी ज्ञता विज्ञता नहीं प्राप्तहोती है—अर्थात्—कदाचित्त यह शंका भी आरोपित करीजाय कि जन्मांतरों का न जानि सकता जीवधर्मसे भी ठीक प्रायाजाताहै कि जब उसको जीवसंज्ञा मिली तभी उसका जन्मांतर ज्ञान जातारहा•परंतु जबतक जीव संज्ञा नहीं मिली सबसे पहिलाही निज रूप जो उसीआत्माका स्वरूपया तिसका ज्ञान तो होनाचाहिये क्योंकि वैसे आत्मा का स्वरूपज्ञान ठीकठीक आत्मामेही प्रकाश होसकता और यह अपनीवात आपही उसको सिद्धहोती तिसमे यह कहिनाठीक नहींहै कि वह अपने भी स्वरूपको नहीं जानि सकता है—दोसे त्रितर्कहपी शंकाके समाधान मध्ये यह दृष्टांत देतेहैं कि—जैसे कडुवी कचडी कचरिशा आदि फलों में यद्यपि मीठा रस वर्तमान है तथापि उनके

पके बिना सीठा रस नहीं जाना जाता है तथैव बिनापके करण के (अर्थात् अंतःकरण का शोधन हुये बिना) आत्मा में ज्ञता सर्वज्ञता उपस्थित होते हुयेभी पहिले स्वरूप का ज्ञान पाया नहीं जासक्ता है ॥ १४२ ॥

(पुनरप्याह)

सर्वाश्रयानिजेदेहेदेहीविंदतिवेदनाम् । योगिसुक्तरचसर्वासांयोगमाप्नोतिवेदनाम् १४३

अर्थः—सब में आश्रित हुई वेदना को देही निज अपने देह में पाता जानता है। सुक्तगुणावाला योगी सब मूर्तियोंकी वेदनाको योगमें प्राप्तकरि जानताहै=अर्थात्—एकसौ तीस के उत्तरार्ध मूल प्रलोक से जो प्रश्न किया गया था तिसका जुदा उत्तर यहां देतेहैं कि—सब मूर्तियों में टिकीहुई वेदना पीडाको देही जो आत्मा क्षेत्रज्ञहै सो उसी अपने जुदे जुदे देह के द्वारा जानता पहिचानता है कि जो जो उसके भोगों के जुदे जुदे स्थान कल्पित हुये अर्थात् एक देहसे दूसरे देहकी पीडानहीं पहिचानता क्योंकि भोगस्थान बनने का हेतुरूप जो पहिले कर्म अदृष्ट होतेहैं तिनका विलक्षणा स्त्रभाव यही है—परंतु योगी पुरुष (जिसके लक्षणा पहिले बहुत बरान होचुके हैं) जो अहंकार आदिके त्याग से निर्मुक्त हो सो इस एकही देहसे सब मूर्तियों में घुसी हुई वेदना पीडा को अपने योग रूपी ध्यान में ठीक ठीक पाता और जानता पहिचानता है। इसमें संदेह नहीं ॥ १४३ ॥

कदाचित् यहाँ यह शंका खडी होय कि आत्मा एकहै एकही आत्मामें सुर नर असुर आदि नाना देहभेद होनेका प्रमाणा कोईनहीं समझमें आया— तिसका समाधान आगे कहेंगे ॥

(एकस्यैवनानाघटभेदाः)

आकाशमेतंहियथाघटादिपुष्टयग्भवेत् । तथात्मैकोह्यनेकश्चजलाधारेप्विवांगुमान १४४

अर्थः—जैसे आकाश एकही है घटादिकों से जुदा होजाय तैसे आत्मा एक वा अनेक भी है जलाधारों से सूर्य की भांति=अर्थात्—जैसे महा आकाश एक होत हुये भी कुछ बड़े सक्ताओं के भीतर घिरके कुछ कुछ वादडोंसे घिरके कुछ मटके घड़े ढोलक आदि वस्तुओंसे घिरके जुदा जुदा दीख परते लगा और उन्हीं नाना भांति की उपाधियोंसे आकाशके अनेक भेद होकर वैसे नानाभेद भी होजातेहैं कि महाकाश घडाकाश वज्राकाश इत्यादि ऐसेही आत्मा भी एकते अनेक दीखतेलगा और उन्हीं

नानाभांति की उपाधियोंके भेदसे देव नर दैत्य आदि नामभेद भी कहानेलगा अथवा दूसरा यह दृष्टांत है कि जैसे सूर्यका प्रतिबिम्ब एक है वह नानाभांतिके जलाशय कूप तडाग नदी आदिमें आभास जुदा जुदा देखिपरनेसे अनेक रूपसा होजाता है या कांच आदि बहुधा चमकीली चीजोंमें आभास परनेसे अनेक सूर्य देखि परतें हैं तथैव आत्मा यद्यपि एक है तथापि नाना देहोंमें अंतःकरणा रूपी उपाधियों के भेद से अनेक रूप देखिपरता है ॥ आकाश और सूर्यके दृष्टांतोंसे पूर्वोक्त पारस्पर्य की दोनों बातें यहां पर दर्शाई गई कि आत्माके बीच में सृष्टि और सृष्टिके बीच में आत्मा इन प्रकारों से परस्पर लीन हो रहे हैं ॥ १४४ ॥

पहिले जो वहत्तरि ७२ श्लोकसे आदि लेकर गर्भद्वारा सृष्टिकी उत्पत्ति कही गई थी कि पृथ्वी आदि पाँच जडधातु और छठा चैतन्यधातु आत्मा का चिदंश ये सब एकसाथही लेकर प्रभु आप रचना करवाता है इत्यादि और जो कुछ कहा था—सो सब खींचिकर फिरभी यहाँ व्यौरेवार ईश्वरकी ईश्वरता द्वारा अगिले परिच्छेदमें समु-
भावेगें कि जिससे उसका कर्तृत्व जानाजाय ॥

—*—

अथपरमात्मनोजगदुत्पत्तौबीजवापादिकर्मानन्तर

मेवसर्वव्यापित्वविवेकोनामषोडशःपरिच्छेदः १६

इस परिच्छेदमें यह ज्ञान बरानहोगा कि जगतकी उत्पत्तिमें बीज बाने आदि कर्मोंके साथही परमात्मा सबसृष्टिमें व्याप्तहोजाता है तिससे कोई वस्तु या कोई जीव ऐसा नहीं देखि परता कि जिसमें उसका निवास न हो ॥

(जगदुत्पत्तिबीजवापः)

ब्रह्मखानिलतेजांसिजलभृश्रेतिधातवः । इमेलोकाएपचात्मातस्माच्चसचराचरम् १४५

अर्थः—ब्रह्मआत्मा खन आकाश अनिल वायु तेज अग्नि जल पानी भूः धरती माटी ये धातु लोकनीय और यह आत्मा चैतन्य तिसके योग से चर अचर सहित जगत होता है—अर्थात्—इन पाँचों धातुकी उत्पत्ति इसी क्रमसे होती है कि ब्रह्म जो आत्मा है तिसमें उसकी इच्छासे प्रथम आकाश उत्पन्न हुआ फिर उसी आकाशमें

वायु उत्पन्न हुआ फिर वायुसे अग्निहुआ फिर अग्निसे जल उत्पन्नभया फिर जल में से मृत्तिका उत्पन्न हुई वही जमते जमते क्रम क्रमसे धरती होजाती है (परंतु उसकी इच्छामें यह भी सामर्थ्य है कि बिना क्रमके एकसाथ अचानक भी उत्पन्न होय) अब तात्पर्य यहां यह लेनाहै कि ये पाँचौवस्तु शरीरोंमें व्याप्त रहिकर शरीर थाँभे रहितोहैं थाँभना जो कासहै सो धारना कहातीहै इसीलिये इनका नाम धातू कहा गया कि जो धारणा करसके सो धातु कहातेहैं तथापि (इमेलोका) ये धातूलोकनीय हैं अर्थात् देखि परने योग्य जडवस्तु हैं यह तात्पर्य ठहिरा और यह आत्मा जो चैतन्य ब्रह्म कहा सोई छटा चिदातुहै इन पाँचौके बीचमें तौ इसभाँतिसे जड चैतन्य दोनों का योग मिलाप ठहिरा उसी योग के समुदाय से चराचर मय जगत की उत्पत्ति होता है ॥ १४५ ॥

(केनप्रकारेणात्माजगत्सृजति)

मृदंडचक्रसंयोगात्कुंभकारोयथाघटम् । करोतितृणमृत्काष्ठैर्गृहंवागृहकारकः १४६

हेममात्रमुपादायरूपंवाहेमकारकः । निजलालासमायोगात्कोशंवाकोशकारकः १४७

कारणान्येवमादायतासुतास्विहयोनिषु । सृजत्यात्मानमात्माचसंभूयकरणानिच १४८

अर्थः—झुंकार जैसे साठी डंडा चाक्र इनके संयोगसे घटको (नाना भाँति सिद्ध) करताहै—यद्वा गृहकार (घरानी आदि कारीगर) फूस मट्टी लकड़ीके संयोग से घर बनाताहै (तैसे आत्मा भी ॥ १४६ ॥ यद्वा क्लेवल सीना लेकर सुनार नानारूप गहने बनाता है—यद्वा कोशकार नाम कीडा अपनी लार (से जाला उत्पन्न करि उसी) के अच्छे योगसे कोशको बनाताहै (अर्थात् आपही अपनी लारके जाले से अपने बंध फसे रहिने योग्य सुन्दर कोश घर बनाके उसमें गुप्त रहिताहै तैसे आत्मा भी ॥ १४७ ॥ ऐसेही आत्मा भी कारीगोंको लेकर तथा कारीगोंको भी उत्पन्न करिके इहसंसार में उन्हीं उन योनियोंमें अपने आत्मा को सृजता है—अर्थात्—देव नर असुर पिशाच आदि नाना भाँति योनियोंमें वैसेही जुदे जुदे रूप अपने आत्मा को बनाकर उनमें रहिताहै (तहां कोई दस्तु या घर बनानेकी सामग्री सर्वत्र दोतरह की प्रसिद्ध होती है कि एक तौ ईंट गारा लोहा लकड़ी आदि मुख्य मगाला और दूसरे काम करने के औजार हाथियार फिर तीसरे बनाने वाले कारीगर भी अवश्य होतेहैं तब कोई कार्य सिद्ध होताहै) इसका नियम यादि रक्खौ कि मुख्य मगाला तौ कारणा कहाताहै और उससे बना दाल जो नदान या राहिना आदि कुकटो नो कार्य कहाता है और काम करने के औजार हाथियार जोहें नो करणा कहातेहैं और बनानेवाला

कर्ता कहाता है—सो यहाँ जगत रूपी कार्य के बनाने वाला कर्ता आपही आत्मा ब्रह्म है मुख्य मशाला वही पृथ्वी आदि पाँचों धातु हैं सो कारणा समझने और शब्द स्पर्श रूप रस गंध ये करणा किंतु औजार हैं—इसीसे प्रलोकमें यह कहा गया कि धातु रूपी कारणों को लेकर तथा औजार रूपी करणों को भी सम्हालि के आत्मा अपने आत्मा को संसार में अनेकधा सृजता है ॥ १४८ ॥

१४६ अधिकोक्तिः—कुम्हार के दृष्टांत में माटी मुख्य धातु या मशालाकहो सो कारणा है—डंडा और चालू सूत थापी उसके करणा औजार हैं कुम्हार आपही उसका कर्ता है और नानाभाँतिके पात्र जो जो बनते हैं सो सबकार्यरूप कहाते हैं ॥ इसी प्रकार माना धातु कारणा है और हथौडा फुंकनी आदि औजार सब करणा कहे जाते हैं तथा बनेहुये आभूषण आदि सब सोनेका कार्य कहिलाते हैं अर्थात् सर्वत्र कारणासे कार्य की उत्पत्ति होती है—और कार्य भी कर्ता बिना नहीं सिद्ध होता है कि जैसे इसमें कर्ता मुनार है ऐसेही सर्वत्र सब सृष्टिकी उत्पत्तिको समझना ॥ १४६ ॥ १४७ ॥ १४८ ॥

फिरभी यहाँ यह तर्कना खड़ी होती है कि शरीरों की उत्पत्ति जैसी पहिले वर्णान हो चुकी तिससे प्रत्यक्ष जाना जाता है कि बुद्धि आदि अंतःकरणों की वृत्तियाँ और ज्ञानेन्द्री सब अपने जुदे कामों में प्रवृत्त रहते हैं तिससे शरीरके सबवर्ष कर्म चलते रहते हैं अर्थात् शरीर के भीतर बुद्धि आदि करणों के सिवाय आत्माका निवास नहीं समझा जाता और जो है भी तो उसहोने का प्रसारण क्या—इसका समाधान आगे बहुत बड़े प्रमाणों से विस्तार करते हैं ॥

(आत्मनः शरीरस्य रय प्रमाणानि)

महाभूतानि सत्त्वानि यथात्मापितथैव हि । कोऽन्यथैकेन त्रेण दृष्टमन्येन पश्यति १४९
वाचं वाक्कोविजानाति पुन संश्रुत्य संश्रुताम् । अतीतार्थस्मृतिः कस्यको वास्वप्नस्य कारकः १५०
जातिरुपवयो वृत्तविद्यादिभिरहंकृतः । शब्दादिविषयोद्योगं कर्मणामनसागिरा १५१
न तं दिग्धमतिः कर्मफलमस्ति न वति वा । विष्णुतः सिद्धमात्मानमसिद्धोपि हि मन्यते १५२
ममदाराः सुतामान्या अहमपामिति स्थितिः । हिताहितेषु भावेषु विपरीतमतिः सदा १५३

अर्थः—महाभूत जैसे सत्य है तैसेही आत्मा भी अन्यथा कौन एक नेत्र से देखे को और से देखता है—अर्थात्—शरीरों से पृथ्वी आदि पाँच महाभूत जैसे प्रमाणों करके सत्य मनभजे जाते हैं तैसे आत्मा भी प्रमाणोंसे सत्य है—अन्यथा यदि उसका होना न जानौगे तो यह शरीरके भीतर ऐसा कौन है जो गक्रवार आँख से देखी हुई वस्तु को ठीक मनभजे बिना फिर और किसी इन्द्रो से देखता किन्तु पहिंचानने

का प्रारंभ करदेता है दृष्टांत जैसे हाथ से टोलना या नाक से सूंघना या जीभ से चीखना इत्यादि अलटा पलटी कौनकरवाने लगता किन्तु उसी आत्माका यह काम है ॥१४६॥ यद्वा सुतीवातको फिर अच्छे सुनिके विशेष कौन समझता है और बीतेहुये प्रयोजनकी यादि किसको आती है या सोते हुये स्वप्ना दिखानेवाला कौन है और सोतेसे जागने पीछे उसी स्वप्नको समझानेवाला कौन है—अर्थात्—जो शरीरों में बुद्धि आदि करणोंके सिवाय आत्मा कोई न हो तो फिर यह किसका काम है कि एक-वार किसीकी बातको सुनिके फिर दुबारा कहिलाता तब अच्छीतरह तत्त्वको पहि-चानता है अर्थात् बुद्धि और कान उसके वही हैं कि जिनसे पहिलीवार सुनी तब अच्छी तरह नहीं समझपाई थी—और भी यदि आत्मा इसके भीतर न हो तो फिर पहिलेकभी देखीसुनी बातको बहुतकाल पीछे कौन यादि करावे अर्थात् वही आत्मा यादि क-राता है—और भी जो आत्मा इसमें न हो तो बुद्धिआदि सर्वइन्द्रियों के निपट सोइजाने पर नानाभाँति स्वप्नोंका दिखानेवाला कौन ठाँहरै या सोतेसमय देखीसुनी स्वप्नेवाली बातोंको जागतेसमय यादिकराने तथा दूसरेको समझानेवाला कौन ठाँहरै किन्तु उसी आत्माका यह काम है ॥१५०॥ जाति•रूप•अवस्था•चरित्र•विद्या•आदिसे अहंकार कौन होता है—शब्दआदिविषयोंका उद्योग कर्मसनबारासीसे कौन करता है—अर्थात्—जो आत्मा सब शरीरों में न होता तो इस अहंकारका बोध किसको होता कि हम ऐसी उत्तम जातिये•हमसेसेरूपवाले•हमसेसे यौवन वयसवाले• हमसेसे वृत्तचरित्रोंके विगता करनेवाले•हम ऐसी विद्यावाले धनवाले राजवाले इत्यादि हम कहिनेवाला कौन होता—और—शब्द•स्पर्श•रूप•रस•गंध•जो प्रत्येक इन्द्रियोंके सुखदेनेवाले भोगप्रसिद्ध हैं कि जिनके प्राप्त होनेका उद्योग उपाय हरकोई मनसे शोचता तथा मुहमे कहिकर करवाता और निज हाथ पैर आदि कायकर्म से भी करता है सो कौन करनेवाला है अर्थात् ये सब उसी आत्माके उद्योग हैं जो सब इन्द्रियोंको निजप्रयोजन में प्रवृत्तकिये रहिना है ॥ १५१ ॥ सो विप्लुतहुआ संदिग्ध बुद्धि होता है कि कर्मका फल मृत्यु है या नहीं और असिद्ध होताहुआ भी अपनेको सिद्धही माने है—अर्थात्—वही पूर्वोक्त आत्मा यदि विप्लुत (अहंकार के व्यसन से दूषित) हो तब संदेहभरी मति से युक्त होजाता है अर्थात् भलेबुरे कर्मोंके फलमें बुद्धि ठीकठीक स्थिर नहीं रहितो कि फलका ज्ञाना मृत्यु है या नहीं (क्योंकि जो फलका होता मृत्युलक्ष्ण तो दुर्गकर्म न करे दोषन भन्ने करै सोनहीं) इसी हेतुसे बहुधा अहंकारवाले कर्मोंको करनेहुये उत्तम सिद्धिके न ज्ञाने पर भी अहंकार से यह समझिलेता है कि अवहान मन निद्र क्रिया अत्र मे सिद्ध

सनोरय हुआ ॥ १५२ ॥ मेरे स्त्रियां सुत अमात्य में इनका यहस्थिति (उसकीहोती और) हित अहित भावोंमें सदा सति विपरीत (रहती है) = अर्थात्—उसी अहंकार ने दूयित आत्माके सनमें इसप्रकारकी धारणा (स्थित) होती है कि ये मेरे स्त्रियां ये पुत्र ये स्त्री गुमापते दूत आदि और मैं इनका प्रतिपालक स्वामी—और भी—कार्योंके (हित अहित) भलेदुरे भाव जो आगेको उत्पन्न होनेवाले हों तिनमें सदा उसकीसति उलटी रही आती है (तिससे जो कुछ और भी फल होता है सो अगिले प्रतीकों से देखना ॥ १५३ ॥

(अहंकारेणविधुतात्मनःफलानि)

जेयज्ञप्रकृतौ च विकारे वाऽविशेषवान् । अनाशकाऽनलापात् जलप्रपतनोद्यमी १५४ ॥

एवं वृत्तोऽविनीतात्मा वितथाभिनिवेशवान् । कर्मणा द्वेषमोहाभ्यामिच्छया चैव वध्यते १५५ ॥

अर्थः—जेयज्ञ ये और प्रकृतिमें और विकार से भी अविशेषवाला • अनशन • अनलापात् • जलपतन • इनमें उद्यमी होता है = अर्थात्—जेयज्ञनाम है आत्मा ब्रह्म का और प्रकृतिनाम है प्रधानलायाका जिसमें तीनों गुणा बराबर मिले होते हैं (किन्तु तीनों गुणाका बराबर होना ही प्रकृतिका स्वरूप है) और विकारनाम है उसी प्रकृतिका रूपांतर होजाना किन्तु उन्हीं तीनों गुणाका परिणाम (जैसे दूधसे दही) होकर अहंकार १ सन २ बुद्धि ३ चित्त ४ ये चारि अंतःकरणा उत्पन्न होते हैं—सो वही पूर्वोक्त आत्मा जो अहंकारके उपद्रव से दूयित होकर विप्लुतबुद्धि कहागया वह इनतीनों में अविशेषवान होता है अर्थात् ब्रह्म १ और प्रकृति २ और विकार ३ इनके भेदोंकी विशेषता नहीं सतति सदाता है—फिर इसी सूखता के हेतुसे अनाशक अन्नछोडि लंघनकारिके दूसरे पर अपनेप्राणा दे देने या अनलापात् अग्निमें कूदिके जलजाना या जलप्रपतन कूप नदी आदिमें गिरिके डूबना या विग्रभक्षणा करना आदि और भी अनेक ढंग हैं तिनमें उद्यमी उपाय करनेवाला होजाता है ॥ १५४ ॥ ऐसे प्रवृत्त हुआ वही अविनीत बुद्धि आत्मा वितथों में अभिनिविष्ट होकर कर्म से या द्वेषमोहों के हेतु निज इच्छासे भी बंधे फँसे और मारा भी जाय = अर्थात्—जैसा ढंग ऊपर कहागया तैसे न करने योग्य कामोंमें प्रवृत्त होके (अविनीतात्मा) खोटी बुद्धिवाला (वितथों) कृकर्मोंका (अभिनिवेश) आराधन करतेकरते कभी अपनेदिने खोटे कर्मसे ही अन्य पुरुषके द्वारा कहीं बंधता और मारा जाता है या कभी द्वेष मोहों करके निज इच्छासे ही फँसता या मरता है कि वे नाजलजाना बुद्धिजाना आदि यदिले कश्चिके मोनिज इच्छासे मसभता १५५ ॥

मेरे - पद्यों में विप्लुतहृय पुस्तककी सति उनी देहसे या और किसी देहसे फिर

भी कभी विश्वास पूर्वक होतो है या नहीं सो नीचे वर्णन करते हुये एक और भी उपासना का प्रकार सूचन करेंगे ॥

(विप्लुतात्मनोपिकालान्तरेण उपासनाभेदेःसद्गतिःइयात्)

आचार्योपासनं वेदेशास्त्रार्थेषु विवेकिता । तत्कर्मणामनुष्ठानसंगः सद्भिर्गिरः शुभाः १५६
 स्यालोकालं भविगमः सर्वभूतात्मदर्शनम् । त्यागः परिग्रहाणां च जीर्णकापायधारणम् १५७
 विषयेन्द्रियसंरोधस्तंद्रालस्यविवर्जनम् । शरीरपरिसंख्यानं प्रवृत्तिष्वधदर्शनम् १५८
 नीरजस्तमतासत्त्वशुद्धिर्निःस्पृहताशमः । एतैरुपायैः संशुद्धः सत्त्वयोग्यमृती भवेत् १५९

अर्थः—आचार्य की उपासना वेद शास्त्र के अर्थों में विवेकिता • तिनके कर्मों का अनुष्ठान • सत्पुरुषों का संग • सुशीलवाराणी = स्त्रियों को देखने वा छूने का त्याग • सर्व भूतों को निज आत्मातुल्य देखना • परिग्रहों का भी त्याग • जीर्ण वा कपड़े वस्त्रों का पहिरना = विषयों से इन्द्रियों का अच्छा निरोध • तंद्रा वा आलस्य का छोड़ना • शारीरक विद्या का विचार • प्रवृत्तियों में पापका पहिंचानना = निकास देना रज तम के भाव का • सत्व का शुद्ध करना • निकास देना (स्पृहा) अभिलाष का • स्वभाव में शमता • इतने उपायों से शुद्धाहुआ सत्त्वयोगी असृती होय = अर्थात्—पूर्वोक्त विप्लुत हुआ (उपद्रवयुक्त) आत्मा जब कभी कालान्तर में चाहें इसी देहसे या और किसी देहमें जाकर इतने कर्मोंकी साधना करे तब इन उपायों से शुद्ध होकर (सत्त्व योगी असृती भवेत्) वही अयोगी योग साधेविना भी असृती होय किन्तु मोक्ष लक्ष्मी असृत का भागी होता है (यहाँ सत्त्वके साथ तु अव्यग्र अवधारणा और प्रगंसा में ससक्तनी) = उन कर्मोंकी साधना जो ऊपर सब लिखी गई तिसका अभिप्राय लक्ष्मी अर्थ यह है कि—प्रथम तो विद्यापढनेके निमित्तसे विद्यागुरु आदि अच्छे आचार्यों के पास रहिकर निष्कपट उनकी सेवा करे—फिर घातंजल योगशास्त्र वेदांत आदि शास्त्रोंमें अच्छाअर्थ ससक्तने का बितेक बढावे—फिर उन्हीं शास्त्रों में निश्चय हुये कर्मोंका अनुष्ठान करे—और अनेक सत्पुरुषोंसे सत्संगविकारिके उनमें जो जो अच्छी प्रकृति या कोईसा उत्तमगुण देखे सोभी नचतासे रंअहकरे—और अच्छी मूर्शीचना की वाराणीसीखे कठोर दारणी क्रिडीसे न बोलै—और परती का वेदना नया अत में स्पर्श करना त्यागै—और सर्वज्ञत चर अचरकोभी दु ब्रह्मते सबसे अपनी देहके समान शोचकरे कि जैसी अपनी देहमें पीडाहोती है किन्तु गवतीने आत्मानां विराजमान देखे—और परिग्रह जो बड़े विकार कर्मों के निमित्त से बहुत सगुणों का संग्रह करना

परताहै तिन दखेदेवाले परिग्रहैं काभी त्याग रखवै—और जो वनिआवै तो यहाँतक गरीरको बगमें करे कि फटेपुराने वस्त्रोंको गेरूआदि से रंगेहुये धारणा करे इससे यह तात्पर्य दर्शाया है कि अवसर मिलै तो संन्यासीभी होजाय जैसा संन्यास धर्म वर्णान करचुके—औरविययजो•शब्द•स्पर्श•रूप•रस•गन्ध•ये पाँच इंद्रियोंको भोग हैं तिनसबसे निज इंद्रियोंको रोकै—और तंद्रा जो निद्राकी छोटीबहिन एकप्रकार की भुस्ती होती है तथा आलस्य जो काहली प्रसिद्धहै (कि जो काम अवश्यकरनाचाहिये जिसके करने साफिक समर्थ सौजूदहै तथापि अनुत्साहसे न करना यह आलस्य होताहै) इनदोनोंको दूरिहीसे बचाता रहै पास न आनेदे—और (शरीरकापरिसंख्यान)गारीरक हिसाब जो ७० सत्तरि प्रलोकसे आदि लेकर १०९ एकसौनौप्रलोकतक वर्णान होचुका तिसको अच्छे समझिके यादिकरै—और सर्वत्र प्रवृत्तियों में अथ पाप का देखना अर्थात् प्रवृत्तिनासहै कहीं जाना चलना हाथपाँवका दौडाना या किसी कार्यका प्रारंभ करना या किसी कार्य में बुद्धिका विचार दौडाना आदि तिन सब तरहकी प्रवृत्तियों में सबसे पहिले किसी जीवकी हिंसा होजानेका पाप हुंढता रहै कि इस प्रवृत्तिमें अमुक पापहोरा सो न होनेपावै—और रजोगुरा तमोगुराका स्वभाव जैसा (१३८।१३९)दो प्रलोकोंसे वर्णान होचुका सो न राखै—और सत्त्वकी शुद्धि अर्थात् मनका भावहै वह मत्त्व कहाताहै तिसको अनेक प्राणायाम आदि उपायों से शुद्धराखै—और निःस्पृहता किन्तु विशेषभोगोंकी अभिलाष छोडिदेना यही बहुतबड़ी तपरयाका बीजहै—गम अर्थात् भीतरली चित्तकी वृत्तियोंको जीति के शांत राखै यही गम कहाताहै—ये सब आचार्य की सेवा आदि जो कुछ उपाय कहेगये तिनकी साधनासे अच्छा शुद्धहुआ आत्मा अर्थात् अयोगी (किन्तु संन्यास आदि योग नहीं किया) हो सोभी इतने उपायोंसे अमृत मोक्षका भागी होजाताहै ॥ १५६ ॥ १५७ ॥ १५८ ॥ १५९ ॥

१५६ अधिकोक्तिः—तकनों उनसठि प्रलोकमें (सत्त्वयोग्यमृतीभवेत्) यह चौथा पादहै तिसका अर्थान्वय दो तरहसे होताहै एकतो (मत्त्वअयोगी अमृती भवेत्) यह पदच्छेद है तिसका अर्थ ऊपर लिखा गया—और दूसरा (सत्त्वयोगी अमृती भवेत्) यह पदच्छेदहै इसकाअर्थ ऐसे होताहै कि मत्त्व जो सतोगुरा है वही मनके भावकी शुद्धि समझना तिसका साधनेवाला मत्त्वयोगी टहिरा सो अमृतका भागी होताहै—यद्यपि अर्थ दोनों मत्त्व हैं तथापि अर्थ वही समझना जो ऊपर अर्थों में लिखा गया क्योंकि सत्त्वका योगी पूरा संन्यासी होताहै तिसका प्रसंग पहिले संन्यास धर्म में

आचुका—किन्तु यहां यह दूसरी भाँतिकी उपासनाविधि उसके लिये कही गई जो सत्वका योगी पूरा न हो केवल इन्हीं चारप्रलोकों में कही हुई उपासना के सामान्य उपायों से अपने आत्मा का शोधनसात्र कर सकें सो अयोगी भी मोक्षभागी होता है चाहें कोईहो कुछ योगी संन्यासी का नियम नहीं यहतात्पर्यहै ॥ इसतात्पर्यके ठीक होने पर भी याद रक्वौ कि दोनों अर्थ समझना क्योंकि यह ऐसा पुरुष भी कदाचित्त साधना करते करते पूरा योगधारी संन्यासी होजाय तौ वह दूसरे अर्थके अनुसार सत्वहीका योगी समझा जायगा—इसीलिये अगिले दो प्रलोकोंको विचारौ कि याज्ञवल्क्यजीने योगी अयोगी दोनोंका तात्पर्य उनमें दर्शायाहै ॥ अगिले दो प्रलोकों में यह नियम सिद्धकरैगे कि मोक्षपद कैसे मिलता है ॥ १५६॥१५७॥१५८॥१५९॥

इसी प्रसंग में जो कहिना कुछ शेषरहा सो अब अगिले परिच्छेद में देखना ॥

—*—

अथ—सत्कर्मदिहेतूनां परिपाकात्जातिस्मरत्वं देवयोनि

त्वंवागच्छंतीत्यादिविवेकीनामसप्तदशःपरिच्छेदः १७ ॥

इसपरिच्छेद में वह विवेक जाना जायगा कि सत्कर्म आदि विरले अन्य हेतुओं से भी बहुधा प्राणीजातिस्मर होते यद्वा देवयोनिमें जातेहैं इत्यादि और बातेंभीदर्शावैगे

(कथममृतत्वप्राप्तिःजातिस्मरत्वं च)

तत्त्वस्मृतेरुपस्थानात्सत्त्वयोगात्परिक्षयात् । कर्मणां सान्निर्कर्याच्चसतांयोगः प्रवर्तते १६०

शरीरसंक्षयेयस्यमनःसत्त्वस्थमीश्वरम् । अविष्टुतमतिःसम्यग्जातिसंस्मरतामियात् १६१

अर्थः—तत्व के स्मरणा से उपस्थान (प्रणाम) से सत्वके योगसे कर्मोंके लय होने से सत्पुरुषोंके संगसे योग वर्तमान होताहै कि जिसकासन सत्वस्थ होके गरगर नाग होतेसमय ईश्वरमें लगै—अथवा) अचिप्लुतवृद्धि हो सो अच्छे जातिस्मरत्व को पहुँचें =अर्थात्—अब यादकरौ•पूर्वाक्त दोनों अर्थका तात्पर्य यहाँ दर्शातेहैं कि—तत्त्वरूपी जो आत्मा है तिसकी यादगारी खूबकरतेकरते और उसकोनिरंतर प्रणाम नसम्कार (उपस्थान) उसकेसमीप चित्तलगाते लगाते और सत्त्वनाम जो सतो गुणा(किन्तु अपने मनका) शुद्धभाव तिसके योग मिलाप से कृत्स्नता के बीच नाग होजाने में मात्र

मनुष्योंका संग सेवन करते करते (योगःआत्मयोगःप्रवर्तते) आत्मा से योग नि-
लापहोजाताहै सो यह उसीको कि जिसकासन सतोगुरामें स्थिर होते होते ऐसा नि-
पुत्रलहोजाय जो मरतेसमय ईश्वरमें लीनहोसकै यह तौ पूरे योगी संन्यासीका चर्चा
क्रिया—अथवा—जो इतना पुरानहोसकै केवल अविप्लुत बुद्धि होजाय अर्थात् १५२
गक्रमों वासनके प्रलोकवाली दशमात्र मिटिजाय जिससे आत्मा की पहिंचान में
बुद्धि स्थिर होने लगी पुरी उपासनावाले योगमें होशियारी न होसकै तौ भी इतने
उत्तम कर्मके प्रभावसे ऐसा पुरुष मरनेके बाद जहाँ जन्मलेता है तहाँ पहिले जन्मों
के अपने सब दुख सुख आदि यादि करसकनेवाला जातिस्मर होताहै फिर उस जा-
तिस्मरत्व से भी अच्छा ज्ञान होकर सोझका रास्ता ढूंढिलेता अर्थात् ग्रैह कर्मों में
मन लगाताहै ॥ १६० ॥ १६१ ॥

(अजातिस्मरत्वेपिइयंगतिः)

यथाहिभरतोवर्षैर्विर्षीयत्यात्मनस्तनुम् । नानारूपाणिकुर्वाणस्तथात्माकर्मजास्तनूः १६२
कालकर्मात्मवीजानांदोषैर्मातुस्तथैवच । गर्भस्यवैकृतं दृष्टमंगहीनादिजन्मतः १६३
अहंकारेणमनसागत्याकर्मफलनच । शरीरेणचनात्माऽयमुक्तपूर्वःकथंचन १६४

अर्थः—जैसे (भरत) नट नाना रूपों की लीला करते समय अनेक रंगों से अपने
शरीर को (वर्णयति) रचता है तैसे आत्मा भी कर्मोंसे उत्पन्न भोगोंके लिये शरीरों
को नाना रूपसे धरताहै ॥ १६० ॥ तहाँ काल कर्म अपना बीज तथा माताका रक्त
इनके दोषों में अंशहीन आदि गर्भ का विकार जन्म से भी देखा जाता है—अर्थात्—
अंग भंग आदि रूप केवल कर्मों से नहीं किंतु इन दोषोंके मिलापसेभी होते हैं कि
गकती उस वर्तमानकाल का स्वभाव दूसरे पर्यजन्मके कर्मों का प्रभाव तीसरे अपने
पिता के दोष का दोष चौथे माता के रजोरक्त का कुछ दोष इन सबके या विरलों
के संयोग से गर्भमें अत्रा लूना आदि विकार पैदाहोता है यदा जन्म होनेबाद कर्मा
विकार उदयहोतेहैं ॥ १६३ ॥ अहंकारके जनने० रति (सखार के उत्पत्तिसार्ग) से०
कर्मा के फलसे भी० शरीर धरनेसेभी० यह आत्मा कैम हू नहीं कभी छूटता है जब तक
सोझ पदको न पहुँचे—अर्थात्—यहाँ यह प्रज्ञा ब्यधीहोतीथी कि राहाप्रलय होजाने
से (महत्त्व) बुद्धि आदि सभीविकारों का नाश होकर कर्मोंकेबीजभी नागहोजाते
रंगों लीला प्रलयकेपीछे जब दुबारा जन्मदृष्टि रचीगडे तहाँ सबसेपहिले मिले गरीर
केकर्मों का संबंध कलामें नामका है कि जिनके अंग भंग आदि कुछीलक्षण पैदाहैं -

इसी शंका के समाधान मध्ये यह उत्तर दिया गया है कि आत्मा कभी भी अत्रोक्त अहंकार आदि कर्म के बीजों से नहीं छूटता अर्थात् प्रलय से पीछे दूसरी सृष्टि में भी पहिली सृष्टि के कर्म बीज संचित बने रहिते हैं कि उन्हींके प्रभावसे दूसरी सृष्टि में भी योनि भेद या अंग भंग आदि रूप भेद उसी आत्मा को मिलता है कि जिसके बीज धरे रहे थे—परंतु उस दशा में बीजनाश हो जाते हैं कि जब उत्तम योग साधना से मोक्षभागी क्रिया जाय ॥ १६४ ॥

१६४ अधिकोक्तिः—कर्मोंके बीज नहीं नाश होते इस बातका दृष्टान्त (राजविप्लव) गदर है कि जैसे किसी समर्थ राजाके राज्यमें महाभयंकर गदर होने लगता है तब तक अच्छे बुरे सब कर्मोंवाले मनुष्य अपना अपना प्रतिकार पानेसे रुकजाते हैं अर्थात् धन प्राणों को लूटने मारने वाले आगि लगानेवाले आदि भी दण्ड नहीं पा सकते और प्रजा अथवा राजाकी भलाई करने वाले भी अच्छा फल नहीं पासकते क्योंकि दोनोंको फलका दाता जो राजा है सो अपने होशमें नहीं रहिता तब जो चाहें सो भलाई या बुराई करै उसकी बृद्ध नहीं रहिते है। ऐसी दशा देखिके अज्ञानी यही समुक्तता है कि ऐसे समयपर सबके कर्म बीज जो कुछ पहिले से भलाई बुराई चली आती थी वह भी सिटिजाती है—परंतु—वही राजा जब राजका प्रबन्ध ठीक करि पाता है (कि इस प्रबन्धको दूसरी सृष्टि कहिना चाहिये) तब यथा क्रमसे सबके कर्मबीजों को टोलता है कि इन मनुष्योंके कर्मबीज गदर के साथ या गदर से पहिली दशा में क्या क्या संचित हुये थे तिनका भला बुरा फल भी उदको देता है—अथवा उस राजा से राज छुटिजाय तभी जो दूसरा कोई विवेकी राजा राज्यपर आरूढ होता है सो भी प्रजा लोगोंके उन कर्मोंको टोलता है कि जो कुछ पहिले राजाके असलमें कर्मबीज संचित क्रियेहों भले या बुरे दोनों भाँतिके—तो इस प्रकार से कर्मों के बीज कभी प्रलयके पीछे भी नहीं नाशहोते हैं—संसारमें भी देखिलो दारह महीना के बीच में अकाज बर्षा चाहें तैसी होजाय बीज नहीं जमता है धरती उसको ग्रंभे रहिते है पर वर्षाकृतके प्रारंभमें थोडी बूंद परनेसे भी वही बीज सब जमते हैं कि तिनका काल वर्तमानहो ऐसेही सृष्टिके प्रारंभ में भी ॥ १६४ ॥

एक यह तर्कना खडी होती है कि जिन जीवोंके कर्त्तव्यकी प्रधान दृष्टि नो फिर उनको नियत कर्मोंके समयपरही नीत होनी चाहिये किन्तु यह विपरीत लक्षण कैसा है कि युद्धस्थान आदिमें एकही राय अनेक प्राणी मरजाते हैं उनका नमानान व्यद कहिते हैं ॥

(यौगपद्याकालमरणविवेकः)

वर्त्याधार.स्नेहयोगायथादीपस्यसंस्थितिः । विक्रियापिचदृष्टेवमकालेप्राणसंक्षयः १६५

अर्थः-दीपकी स्थिति जैसे चिकनाईके योगसे बत्तीके आधारपर होतीहैविकार भी उसमें देखाहुआ दोषहै ऐसेही अकाल में प्रारों का नाश होता है=अर्थात्-जैसे तेलकी भीजी अनेक बत्तियों के सहारे पर अनेक जोति अपने अपने जीवन को तब तक याँभ सकती हैं कि जितना जितना तेल उनमें है (ऐसेही प्रारों अपने कर्मों के समान जीसकतेहैं) परंतु जब बड़ी तीव्र वायुका भक्रोरा रूपी विपत्ति जितने दीपकोंपर एकसाथ आपरतीहै तब तेलके शेष रहते भी अनेक दीपक एकसाथ बुझ जातेहैं तिनमें भी जिनको कुछ आगे पीछे विपत्ति लगी सो आगे पीछे बुझतेहैं (यह वायुकी विपत्तिरूपी कारणा देखाहुआ प्रत्यक्ष हेतु कहाताहै) ऐसेही प्रारोंभी आयु शेष होतेहुये युद्ध आदि देखीहुई विपत्तिमें अकालमृत्युसे सरताहै अर्थात् कर्मों का बीजरूपी बिना देखा कारणा अदृश्य कहाताहै सो तौ नियत कालहीपर मौतहेतु माना जाताहै यह युद्ध आदि देखाहुआ हेतु अनियत कालमें भी मौत करदेताहै तिससे अकालमृत्यु भी भंठीनहीं है ॥ १६५ ॥

१६५ अधिकोक्तिः (प्रतिनियत काल विपत्ति हेतु भूतादृश्यस्य-तद्विरुद्ध कार्या करदृश्यहेतुपनिपातेनप्रतिबंध इत्युक्तंचशास्त्रांतरे) अर्थात्-अन्य शास्त्रों में यह प्रमाणा भी लिखाहै कि मनुष्य की लिखी हुई आयुके ठीक समय पर मरने का हेतु जो बिना देखा नियत होचुका है तिसकी रोक भी होजाती है उसके विरोधी कर्म देखे हुये विद्यरूप आपरने से तभी अकाल मौत होजाती है ॥ १६५ ॥

(मोक्षस्यमुख्योमार्गः)

अनंतराश्मपन्नस्यदीपवय म्यितोदृदि । मितामिताःकट्टनीलाःकपिलानीललोहिताः १६६
ऊर्ध्वमेरु स्थितस्तेषापोभित्वागूर्यमंडलम् । ब्रह्मलोकमतिक्रम्यतेनयातिपरांगतिम् १६७

अर्थः-(१०८। १०९ इन प्रलोकोंमें जो लिखिचुके सो देखौ फिर उसीको यहाँ चाकर मोक्षो कि) जो चैतन्यरूपी जीव दीपकी गिर्या तुल्य हृदय में विराजमान है तिसकी अमृत अमरत्व रस्मी जो नाडियाँहैं सुषेद काली चितकवरी नीली मुत-रंगी गुलाबी लाल काले मितापके रंगोंवाली हर तर्फको जातीहैं=तिनमें से (सुयुम्ना रस्मी) रक्त रस्मी ऊपर कपाल तक नहींहै जो बड़ी डोरी सूर्यके संडल में घुमती

हुई फिर ब्रह्माजीके लोकहको उल्लाँघती हुई सदा रहती है (और वेही सब जीवों को डोरियों के छोर उस नटिनी के हाथ में रहिते हैं जो परमात्मा की माया उसकी इच्छा मात्रसे आप नाचती फिरती और सबजीवोंको हरवक्त नचातीहै कि जैसे कठपुतरीके स्वाँगमें पर्दा बीचदेकर कोई नटिनी सुब्रधार बनिके आड में बैठती और डोरियों के इशारेसे पुतखियोंको नचायाकरतीहै) उसी ब्रह्मलोकसे पार पहुँचीहुई नाडी डोरीके मार्गसे परमगतिको जीव जाताहै उस भूपती के साथ जैसे तार विजली बिना रोकरोक जातीहै इसी भूपती में उसमायाके हाथसे भी रूमी छीनिके लेजाता है सो यह वही जीव ऐसा करसकताहै कि जिसने पूर्वोक्त मार्गोंसे माया को खूब जीति रक्खाहो परमगतिका यह अर्थहै कि जहाँ पहुँचिके फिर संसारी जन्म मरणा आदि दुःखोंमें नहीं आने सकता है यही मोक्षका स्वरूपहै ॥ १६६ ॥ १६७ ॥ तात्पर्य इस आशयसे यह दर्शायाहै कि जिसके प्राणा कपाल फटिके निकसैचाहै योगाभ्यास के द्वारा कपालफटे या योगसाधे बिना भी किसी पूर्व पुरायके प्रभावसे ऐसा वानक स्वतः बनिजाय दोनोंतरहसे मोक्षभागीहोता है—इसी प्रकार अगले प्रलोकों में लिखे हुये मार्गसे जीव निकसनेवालेको स्वर्ग आदि मिलतेहैं सो आगेदेखो ॥ १६६ ॥ १६७ ॥

(स्वर्गप्राप्तिमार्गः)

यदस्याऽन्यद्रश्मिशतमूर्ध्वमेवव्यवस्थितम् । तेनदेवशरीराणितैजसानिप्रपद्यते १६८ ॥

अर्थः—जो इसके रश्मिशतक और भी ऊपरहीको स्थितहै तिससे तैजस देव शरीरोंको पहुँचताहै—अर्थात्—पूर्वोक्तमोक्षके मार्गवाली एकडोरीकेसिवाय जो औरभी रश्मियाँ (नाडियों) का सैकरा इसदेहके भीतरहै कि उसके भी सो छोर ऊपरहीको रहिते और स्वर्गतक जातेहैं कि उसके द्वारा जिसका मरते समय जीव निकसे वद (स्वर्गहीको जाताहै अर्थात्) तैजस जो रजोगुणा सतोगुणा दोनोंके मारसे उत्पन्न गक बडा उत्तमधातु सुवर्णसे भी अनंतगुणा प्रकाशमान स्वर्गलोक में खानिसे उपजताहै उसी तैजसधातु से इमारतें वहाँ बनती हैं सो बहुत चमकती होतीहैं—और दूसरा गक अदृश्य तैजस जो तेज बल पराक्रम कांतिका बीजरूप सब देवताँके शरीरमें बढी मत्ता रहती है कि जिससे उनकेरूप अतिशय कांति युक्त होतेहैं क्योंकि यह शक्ता भी रजोगुणा सतोगुणा के सूक्ष्मसारसे उत्पन्न होतीहै—यसे तैजनरूपी देवताँके शरीर नया रहनेको वैसे तैजसमय सक्तान सर्व भोगोंसे भरे हुये जाकर पावताहै कि जनों सुख भोगनेके सिवाय दुःखोंका चर्चा नहींहै ॥ १६८ ॥

मिताक्षरा म० प्रायश्चित्तकांड ।
(मर्त्यलोकप्राप्तिमार्गः)

येन कृपाश्राधस्ताद्रमयश्चमृदुप्रभाः । इह कर्मोपभोगाय तैः संसरतिसोऽवशः १६९

अर्थः—तिलके नीचे जो अनेकरूप रश्मियाँ मृदुप्रभा होती हैं तिनके द्वारा इहां (मत्सरहीमें) कर्मोंके उपभोग के लिये अवश हुआ संसरशा पाताहै=अर्थात्—पूर्वोक्त मंत्रके नीचे जो और भी अनेक भाँति नाडियाँ कोमल प्रभावाली हैं तिनके द्वारा जीव निकलनेसे फिर उसी संसार में अपने कर्मोंके वशीभूत जन्मलेताहै कर्मोंका भोग भोगनेके अर्थसे ॥ १६९ ॥

(अनीश्वराऽपिसंति)

नास्ति शुभाशुभयोः कर्मणोः फलदातेश्वर । इतिवादिनोऽपि बहवोऽनीश्वराः सन्तीह लोके

अर्थः—भले बुरे दोनों कर्मका फल देनेवाला ईश्वर नहींहै ऐसा वाद करनेवाले (जो अनीश्वर कहते सो) अनीश्वर भी बहुत इसी संसार में हैं और होतेहैं ॥

ईश्वर कोई नहीं यह कहनेवाले भी उसी ईश्वरने रचेहैं कि निज सृष्टि में जो नाना भाँति विचित्रता रची तिनमें एक यह भीहै•अर्थात् थोड़ेसे विद्वान भी तार्किक अर्हत स्वभाववादी आदि अनीश्वरलोक सदासे होते चले आये जो सृष्टिकी उत्पत्ति केवल स्वभावही से अपने आप होती रहित यह कहते हैं•कि इसका कर्ता कोई एक ईश्वर नहीं किन्तु वह स्वभावही अपने आप ईश्वर होताहै•विरले तार्किक यह कहते हैं कि आकाशको छोड़ि गेय चारों तत्त्वके जुड़े जुड़े परमाणु आदि बहुत छोटे अंशों से आकाश परिपूरित रहाकरता उन्हीं परमाणुओं की गाँठें बनि बनि समवाय इकट्ठा होकर तत्त्वः सृष्टि उपपन्न होती रहितहै•तिसमें चारों तत्त्व अपने आपही चैतन्य रूप हैं अर्थात् उनको चैतन्य करनेवाला कोई ईश्वर नहींहै•क्योंकि जो होता तो देखने में जाता किन्तु जो देखने में नहीं आसक्ता तो कुछ भी नहीं केवल बुद्धिमानों की कल्पनाहै ऐसे हठवादीयोंका विचार बोधा दर्शने के निमित्त ये अंगिले कई प्रती-कों से अनेक मांखार्थ भी दर्शते हैं जो उनको पराविस्तार देना चाहाजाय तो वर्यों एक गिणतारा न होकर तिनके मूके संक्षेप अर्थ लिये जायये कि हरकोई भीवसमर्थ तो यह अंगिले परिच्छेद में देखना ॥ ॥

अथ-अनीश्वरवादिनां मतखंडनपूर्वकमीश्वरस्य च सर्वम

तस्य प्रत्यक्षलक्षणविवेको नाम अष्टादश परिच्छेदः १८ ॥

इस परिच्छेद में अनीश्वरवादी लोगोंका मत झूठा दशाति हुये समर्थ ईश्वर को प्रत्यक्ष पहिंचानेवाले चिह्न भी समझाये जायेंगे कि जो चर अक्षर सृष्टि में सर्वत्र परि व्याप्त है ॥

(पंचभूतानां अचैतन्यत्वं)

वेदैः शास्त्रैः सविज्ञानैर्जन्मनामरणेन च । आर्त्यागत्या तथाऽऽगत्या सत्येन ह्यनृतेन च १७०
श्रेयसासुखदुःखाभ्यां कर्मभिश्च गुभाशुभैः । निमित्तशाकुनज्ञानग्रहसंयोगजैः फलेः १७१
तारानक्षत्रसंचारैर्जागरैः स्वप्नैरपि । आकाशपवनज्योतिर्जलभूतिमिरैस्तथा १७२
मन्वन्तरैर्युगप्राप्त्यामंत्रौपधिफलैरपि । विनात्मानं वेद्यमानं कारणं जगतस्तथा १७३

अर्थः—याज्ञवल्क्यजी सब समाज के सम्मुख कहिते हैं कि ये मुनीश्वरों—जगत के कारणाभूत आत्मा को इन सब प्रमाणाओं से समझे और समझाते हुये को सत्य जानों (किन प्रमाणाओंसे) वेदोंसे कि वेदकी श्रुतियाँ जैसा उसको जपती हैं (दृष्टान्त जैसे नेतिनेति आत्माकारूप इतना ही नहीं किन्तु वह स्थलभी नहीं वह सूक्ष्मभी नहीं उसके हाथ पैर असंख्य वह बिना हाथ पैरोंका इत्यादि श्रुति वचन हैं)—शास्त्रों से कि वेदांत सीमांसा आन्वीक्षिकी आदि शास्त्र उसका लक्षणा जैसा कहिते हों—विज्ञानों में भी सत्य जानों कि यह शरीर मेरा इत्यादि बातोंका बोलनेवाला साफ जताता है कि मैं शरीर से जुदा इसका सालिक हूँ शरीर मेरा माल है (इन्हीं विज्ञानों में समझि देखो कि आत्मा शरीर से उपराल दस्तु है या नहीं)—तैसे ही जन्म और मरणाये भी समझि देखो कि जिसमें से वह आत्मा निकसि जाता है तिस देहके पाँचों तत्व जड़ होके निरर्थक परे रहिजाते हैं फिर वही आत्मा जिस किसी रश्मि से जाकर विद्यान करना है तिसके पाँचों तत्व चैतन्य होकर एक नया प्राणी पैदा होजाता है (इस प्रमाणान भी आत्मा जुदीदस्तु और देह जुदीदस्तु निश्चित है)—आर्त्ति जो पीडा है तिममें भी लक्ष्म देखो कि जबतक देह से आत्मा का निवाल रहित तभीतक सुईकी नोक से भी पीडा होने लगती है आत्मा के निकसि जानेदाइ हुये घुसने से भी कण पीडा नहीं—तयैव (वृत्ति आवृत्ति) जाना आना इन दो में भा लक्ष्म देखो कि जीवना हुया देह भी जो कहीं जाता या कहीं नै लौटि आता है जो भी जान और उच्छा

और प्रयत्न से खाली कहीं न जाता है न आता है अर्थात् प्रथम तौ उस ठिकाने का ज्ञान चाहिये फिर इच्छा भी जाने तथा आने की चाहिये फिर उसके लिये सवारी आदि कोई ना प्रयत्न भी अवश्य किया जाता है सो इन तीनों बात का अधिकर्ता उन आत्मा के सिवाय कोई नहीं क्योंकि देह उसकी इच्छा बिना कुछ नहीं कर-सक्ता-सत्य असत्य से भी गोचरी कि सत्यवादी होने की प्रतिज्ञा वा असत्य छोड़ देनेका नियम कौन चलाता है शरीर तौ आपही जड है इसकी यह सामर्थ्य नहीं कि-मम आत्माही यह करता है-ऐसेही ऐथस् अपनेहित कल्याणका विचार और यहाँ वा परलोक से सुख दुख प्राप्त होनेका विचार भी आत्मा आप किया करता है जड देह का यह काम नहीं-ऐसेही शुभ अशुभ कर्मों के विचारको भी आत्मा कर्ता है गरीर की सामर्थ्य नहीं क्योंकि ये बातें ज्ञानके आधीन हैं और ज्ञानका विवेक उषी आत्मा के आधीन है-तथा • निमित्त • शाकूनज्ञान • ग्रहसंयोगफल • इनसे भी समझ देखी कि निमित्त जो भृक्षरूप उल्कापात आदि बहुधा शुभ अशुभकी मचना करानेवाले प्रसिद्ध होते हैं तिनका उत्पन्न करनेवाला आत्मा के सिवाय ऐसा कौन है क्या यह भी जडदेहोंका काम है • यद्यपि शाकूनज्ञान जो प्रक्षियोंकी बोलीसे या उनके उड़ने बैठने के भेदमें गणन कहे जाते और (गकूनवमन्तराज आदिग्रन्थोंसे) ठीक उनके फल होते हैं सो प्रभाव उलमें लिखने उत्पन्न किया क्या आत्माके बिना जडदेहोंका यह काम है • यद्यपि मूर्त्य आदि वज्रहोले परस्पर संयोग वा दृष्टि आइपरने से जो जो फल गणाक विद्याओं के द्वारा विचार किये जाते और ठीक प्रमाणा देते हैं क्या उन ग्रहों के भी प्रभाव आत्मा से उपराल कोई उत्पन्न करने वाला जड देहोंमें से होसक्ता है-तथैव तारा और नक्षत्रोंके संबंधसे भी गोचि देखी कि नक्षत्र तौ अश्विनी आदि रेवतीपर्यंत और ताग इनसे उपराल जो आकाश में असंख्य वांग्व परते हैं जिनके (संचार) चलने घूमनेका आकार जो मिशुमार चक्र है आकाशी पुलके तुल्य तिसपर फिरते रहिते हैं सो किमने रचा क्या आत्माके सिवाय जडदेहों की यह दारीगरी होसक्ती है-तथा जागर और स्वप्नज पलों से भी गोचि देखी कि जागर नास जागते समय जो कोई ना गहन या अपगहन देखा जैसे मूर्त्य के सगडलमें छिद्र देखि परनेलगा या काक-सेवृत्तहोने देखागया या जाया पृथय अंग भंग देखि परनेलगा इत्यादि और सोते हुये स्वप्नों में दाराह गर्हवने दुडेहुये स्थले अदिक चरना आदि अनेक भाँत से देखना चाहे अल्पे लिये चाहे किती राजा आदि अपने प्रियतम के लिये सो मंत्र तद्रूप फन देवता से आयेते नास कसो कि जो आत्माको ईन नहीं है तौ उन चरियोंके रचनेवाले क्या

येही जड़शरीर हैं—तथा जीवोंके उपकार के लिये जो•आकाश•पवन•जोति•(अग्नि और उज्जीता) जल•पृथ्वी (जो रत्नोंसे भरी और नाना वस्तु उत्पन्न करनेवालीधरतीहै) अंधेरा (यह भी एक पदार्थ है) ये सब जिसने रचे सो कितना बड़ा समर्थहै क्या उस आत्माके दिना जड़देह भी ऐसेकामकरसके—तथा युगों की वृद्धि से मन्वन्तर काल फिर उनकी वृद्धिसे कल्पान्तरआदि बड़े लम्बे कालके विस्तारों को शोचि देखौ जो देहोंमें नहीं समायसक्ता वरत उसके बीच असंख्य देह चलेजातेहैं यह किसने रचा— तथा संत्र और औषधियोंके फल शोचिदेखौ उनमें बड़ेबड़े अनूटेप्रभावहैं सो किसने रचे क्या यह भी जड़ देहोंका काम था—तिससे समस्त जगत का रचनेवाला कारणा उसी आत्मा को जानौ ॥ १७० ॥ १७१ ॥ १७२ ॥ १७३ ॥

१७०अधिकोक्तिः—एक सौ सत्तरि आदि प्रलोकमें जो (पंचभूत जड़द्रव्योंसे बने हुये) देह को जड़ कहाराथा तिसके मध्ये एक यह भी शास्त्रार्थ है=यथाह विज्ञाने चराचार्यः=नहिदेहस्यचैतन्यादि संभवति यतःकारणा गुणाप्रक्रमेणा कार्यद्रव्ये वैशेषिके गुणास्मोदृष्टः नचतत्कारणा भूत पार्थिव परमाणवादियु चैतन्यादि समवायः संभवति तदारब्धस्तंभुंभादि भौतिकेष्वनुपलभात् नचसदशक्तिवदुदकादि द्रव्यांतर संयोग इतिवाच्यं शक्तेः साधारणागुणात्वात् अतोभौतिक देहातिरिक्त चैतन्यादिसमवायुंगी कर्तव्यः=अयत्ति—नहीं देह का चैतन्यादि लक्षणा संभव होता है क्योंकि (असली गुणाके शुद्धिकिये अवसर से उत्पन्न कार्यरूपी द्रव्यमें उसीके विभेय गुणा का आरम्भ देवाराथा है पर) उस देहके असली कारणा पृथ्वी आदिके परमाणुओं में चैतन्य आदिका समवाय इकट्ठा होना संभव नहीं है क्योंकि उन परमाणुओं में बनेहुये लल्लड मटके आदि अनेक देखौ जो पृथ्वी आदि भूतोंकी उत्पत्ति है तिनमें वह चैतन्यका समाज नहीं मिलता है (इस प्रसारासे देहोंको भी समझलो) और यह युक्ति भी न कहिनी चाहिये कि जड़ शक्तिवाले उदक आदि अन्य द्रव्यों के संयोग से उत्पन्न होता होगा क्योंकि शक्ति जो पदार्थ है सो साधारणा गुणों का रूपहै•तौ इसहेतुसे ही भूतोंसे उत्पन्न देहके उपरालू चैतन्य आदि समवायको इकट्ठा करने वाला समवायी उसका अधिष्ठाता (वही परमात्मा) भी है यह सम्रा अंगीकार कर्तव्य ठहिरा ॥ १७० ॥ १७१ ॥ १७२ ॥ १७३ ॥

(पुनरप्याह)

अहंकारःस्मृतिमंधाद्वेषोबुद्धिःसुखभृतिः । इंद्रियांतरसंचारइच्छाधारणजीविते १७४

स्वर्गःस्वप्नश्चभावानाप्रैरणमनसोगतिः । निमेषश्चेतनाचक्षुआदानंपांचभौतिकम् १७५

यत्नएतानिदृश्यन्तेलिंगानिपरमात्मनः । तस्मादस्तिपरोदेहादात्मासर्वगर्भेश्वरः १७६

अर्थः—परमात्मा के इतने चिह्न ये प्रत्यक्ष देखि परते हैं कि—अहंकार(मैं हों मैं होता इत्यादिरूप अहंकार के प्रसिद्ध हैं) स्मृति यादि पुरानी बातों की जरूरत के समय स्मरना करिलेना कि पहले जन्मों में पैदाहोकर मैं दूध पीने और मांगने लगता या यहां भी वही जन्मकाल फिर वर्तमान हुआ है दूधके लिये रोकर याद दिलानी चाहिये मेधा उस बुद्धिका नामहै जो समझि पाई हुई बातोंको हर वक्त यादिरखि सके—हेय यद्यपि वेर को भी कहिते हैं परन्तु ठीकनाम उस लक्षणाकाहै कि दुःख या दुःख देनेवाली वस्तु को न चाहै कि यह मेरे निकट न आवै यह द्वेष कहाता है सो अतिगय छोटे शिशुमें भी यह लक्षणास्वतः विना सिखलाने के उत्पन्न होताहै—बुद्धि उग जानका नामहै कि ये मेरे साता पिताहैं ये और सब गैरहैं ऐसी बुद्धि छोटे शिशु में भी उत्पन्न होजातीहै—सुख आगम इसको पहिचानना कि यही प्राप्त होय ऐसा बोध अज्ञान वालकों में भी होताहै (रुपया पैसा कौडी आदि सन्मुख डालिके देखौ कि उनमें जो अच्छा होगा उसी को उठावेंगे) धृति धीरज का नामहै कि बालक यद्यपि अकेला पडारोहाहो कि साता किसी बंधेमें लगीहै कदाचित् कोई गैर गोद से लेनाचाहै तो न जावेगा साताचाहै विलम्ब से आवै तो भी उसीके निमित्त धीरज किये रहितहै—इन्द्रियांतर संचार यह कहाता है कि चाहें तैसा अज्ञान बालक हो वहभी एक इंद्रि से समझी बात को पाने के लिये दूसरी इंद्रि पसारता है (दृष्टांत जैसे अज्ञान बालक ने आँख से चन्द्रमा देखा तो उसके लेनेको हाथ या मुँह पसारता है तात्पर्य इसका यह कि चन्द्रमा तक हाथनहीं जासकताहै इस बातकी अज्ञानता होते हुये भी इतना बोध होताहै कि हाथही या मुँहसेभी कोई वस्तु पकडी जायगी) इच्छा वह कहाती है कि किसी उपाय पर बुद्धि को दौडाना जैसा अभी जो दृष्टांत लिख चुके है कि चन्द्रमा को देखिके तोडने की इच्छा उत्पन्न करी—धारणा कहते है ध्यान को दृष्टांत जैसे बच्चाभी कहीं से फिमिलि के गिरने लगे और उनको मा-लन हो जाय कि मैं गिराऊ हुआ तो उनी नमय यह धारणा उत्पन्न होजातीहै कि उनी गल हो सके अपने गरीब को आभना है कि न गिरने पाऊं—जीवित नाम है

प्राणों की धारणा का कि जिसको थोड़ा भी ज्ञान होगा अर्थात् पशु पक्षी आदि भी प्राणों के थाँभने को समझते और थाँभने का उपाय भी जहाँ तक होसके सो करते हैं अर्थात् मारने वाले को सामने आया देखिके आड में होजाना आदि अनेक प्रकार हैं जीवित को=स्वर्ग अर्थात् ऊँची पदवी की पहिचानि और उसकी चाहना अपनी योग्यता के अनुरूप यह बालकों वा पशु पक्षी आदि में भी स्वतः बोध होता है—स्वप्न भी ऐसी चैतन्य वस्तु है जो बालक और पशुपक्षी आदि में भी उत्पन्नहोता है तब नाना प्रकार की विलोकीदेखने में आती है यह भी पूरे चैतन्य का काम है—भाँवोंकी प्रेरणा अर्थात् इंद्रि आदि जो जो देहके भावहैं तिनको यथायोग्य जैसीजैसी ज़रूरत के समय पर घुमाने चलाने फेरने आदि की ताक़ीद अज़रबुद होती रहित्ती है यह भी पूरे चैतन्य का काम है—मनको चालि को देखौ कि सरामात्र में लाखों कोस हज़ारों संजिल की खबरलेता और सैर करिआताहै यह कैसी पूरी चेतना का काम है—निमेष अर्थात् नेत्र और पलकों का मीचना खोलना जो प्रसिद्ध है वहभी कैसी पूरी चेतना के आधीन है कि उनके इशारों से अनेक बात कही जाती हैं तिनको दूसरेलोगविना कहे समझ लेते हैं—पंचभूतों का आदान भी देखौ अर्थात् पृथ्वी जल तेज वायु आकाश ये पाँच भूत जो सामान्य भावसे जुदे जुदे उत्पन्न किये गये तिससे इनके पाँच समूह मात्र ठाँहरे तिनका आदान उपादान किंतु सृष्टिकी रचना में लेकर लगाने की बारीकी शोचौ कि बड़े छोटे सब जीव चर अचर जो बने और सदा बनते रहिते हैं तिन सबही में ये पाँचों महाभूत हाते हैं अर्थात् इन्हीं पाँचों के मेल से सब जीव हातेहैं तहाँ यह बारीकी शोचने के योग्यहै कि अति सूक्ष्म जंतुमें कितना कितना भाग इन पाँचों का पहुँचता होरा फिर उन भागों के पहुँचानेवाले की शक्ति शोचौ कि थोड़ा थोड़ा पाँचों में से लेना और यथायोग्य सब जीवों के बोला तब पहुँचाना फिर बड़ी युक्तियों की चुनाई करिके असंख्य सूतें दिखलाय देनी कि जो सबसे दूसरी कुछ अनूठी होगी=जबकि परमात्मा के इतने चिद्धप्रत्यक्ष देखे जातेहैं तिससे वह आत्मा देहसे उपरालू जुदा रूपहै पर सबही के देहों में सर्वत्र घुसा रहित्ता क्योंकि ईश्वर है अर्थात् सामर्थ्यमान है जो कुछ जिम रीति में होना या करना चाहै सो सब संभवहै तिससे उसके होनेमें सदेह नहीं ॥ १ ५५॥ १ ५५॥ १ ५६ ॥

(चेत्रज्ञस्यस्वरूपं)

बुद्धिन्द्रियाणि नार्थानिमनः कर्मेन्द्रियाणि च । अहंकारश्च बुद्धिश्च पृथिव्यादीनि चैव हि १७७

अव्यक्तमात्मा क्षेत्रज्ञः क्षेत्रस्यास्य निगद्यते । ईश्वरः सर्वभूतस्यः सन्नसन्सदसञ्चयः १७८

अर्थः—अर्थों सहित जानेन्द्री और कर्मेन्द्री तथा मन और अहंकार और बुद्धि और पृथिवी आदि भूतभी=अर्थात्—बुद्धिवाली पाँच इन्द्रियाँ (श्रोत्र त्वचा चक्षु जीभ नासिका ये पाँच जानेन्द्री) अपने विषय रूपी अर्थों (शब्द स्पर्श रूप रस गंध इन) सहित और मन जो सब इन्द्रियोंका राजा है और कर्मेन्द्री जो काम करनेवाली पाँच इन्द्रियाँ (मुख हाथ पैर गुदा लिंग ये) प्रसिद्ध हैं और अहंकारको पहिले भी लिख चुके हैं तिसका गुप्त रूप यहाँपर समझ लेना प्रकाशमान चेष्टा नहीं और बुद्धि जो निश्चय करनेवाली महात्त्व कहाती है और पृथिवी आदि पाँच भूत भी प्रसिद्ध हैं और=अव्यक्त नामसे प्रकृति यह सब सामग्री मिलिके देह रूपी क्षेत्र (खेत) कहाता है सो इस क्षेत्र का जानेवाला क्षेत्रज्ञ वही आत्मा कहा जाता है जो सर्व शक्तिमान् इंद्र तथा सर्व भूतोंमें संस्थित और है या नहीं इन दोनों लक्षणासे सपन्न है क्योंकि (सब अस्तवर्षाओंमें परिचयात्त है प्रमारों से पहिचाना जाता है तिससे है इस लक्षणा से संपन्न रहिरा और प्रत्यक्षरूप देखने में कभी नहीं आता तिससे नहीं इस लक्षणा से युक्त रहिरा १७७ ॥ १७८ ॥

अब इस बुद्धि और इन्द्रियाँ और अहंकार आदि छिपेहुये पदार्थों की उत्पत्ति जैसे परमात्मा के सकाग से होती है सो भी अगिले परिच्छेद में देखना • क्योंकि अब तक पृथ्वी आकाश आदि महाभूत और अन्य भांतिकी सृष्टि का उत्पत्ति क्रम जहाँ तहाँ वर्गाया गया • परन्तु बुद्धि और इन्द्री आदि भीतरी समवाय का उत्पन्न होना अब तक कहा गया—अद्यपि तिहत्तरि के प्रलोक से यह कहाया कि गर्भमें युगपत्त उसी आत्मा के पानसे उत्पन्न हो जाता है फिर उनी जघे ७५ पचहत्तरि प्रलोक से यह भी कहा कि गर्भमें तीसरे सहीना से इन्द्रियोंका प्रकाग होने लगता है फिर सातवें आठवें सहीना तक मन बुद्धि आदि सब चैतन्य समूह उसमें आजाता है परन्तु यह शरीरों में आजाता जेदी वान है जो सदाजारी रहिता है अर्थात् सृष्टिके प्रारम्भ समय जो समष्टि रूप से बुद्धि आदिका चैतन्य समवाय पैदा होता है तिसका अर्थोत्त अब तक नहीं कहा गया हो करे ॥

अथ-बुद्ध्यादीनामुत्पत्तेः स्वर्गमार्गादीनांचोत्पत्तेर्विवे

क्रोनाम-ऊनविंशःपरिच्छेदः१९ ॥

इस परिच्छेद में बुद्धि आदि समवाय की उत्पत्तिसाधाके पाससे जिस क्रमसेहुआ करतीहै सो जानी जायगी और स्वर्ग जानेवालों को मार्गजैसा सिद्धताहै सोभी कहा जायगा और पुनरावर्त्ती भी मुनीश्वर जो दूसरी सृष्टिमें फिर आकर वही अपना जन्म पातेहैं और सत्यलोक में जानेवालोंके विग्राम स्थान भी दर्शावेंगे ॥

(सृष्ट्यारंभकाले बुद्ध्यादीना मुत्पत्तिक्रमः)

बुद्धेरुत्पत्तिरव्यक्तात्ततोऽहंकारसंभवः । तन्मात्वादीन्यहंकारादेकोत्तरगुणानिच १७९

शब्दःस्पर्शश्चरूपंचरसोगंधश्चतद्गुणाः । योयस्मान्निसृतश्चैपांसतास्मिन्नेवलीयते १८०

यथात्मानंसृजत्यात्मातथावःकथितोमया । विपाकात्तुतिःप्रकाराणांकर्मणामीश्वरोपिसन् १८१

सत्त्वंरजस्तमश्चैवगुणास्तस्यैवकीर्तिताः । रजस्तमोभ्यामाविष्टश्चक्रवद्भ्राम्यतेह्यसौ १८२

अनादिरादिमांश्चैवसएवपुरुषःपरः । लिंगेन्द्रियग्राह्यरूपःसविकारउदाहृतः १८३

अर्थः—अव्यक्त से बुद्धिकी उत्पत्ति•तिससे अहंकार का जन्म•अहंकारसे तन्मात्रों की उत्पत्ति•फिर उनसे आकाश आदि एक एक गुण अधिक वाले भी होते हैं और चकार के ध्वन्यर्थ से दश इंद्रियाँभी=अर्थात्—सत्त्व रज तम ये तीनों गुण एक साँवरावर तुल्यात्मक मिले हुये प्रकृति कहातीहै उसीका नाम शक्ति भी होता है वही न देखिपरने के हेतु से अव्यक्त कहा जाता है•उस अव्यक्त में से प्रथम बुद्धि उत्पन्न होती है (यहाँ पर बुद्धि केवल इसको न समझना जो सिर्फ एक मनुष्य के हृदय में होतीहै अर्थात् उस महत्त्व को समझना जो सृष्टि की आदिमें सबसे पहले अव्यक्त में से महाबुद्धि उत्पन्न होती है उसी की छाया सब जीवों के हृदय में आकर उस तरह से परती है कि जैसे जलमें सूर्यका आभास) उस महाबुद्धिमें से अहंकार उत्पन्न होताहै उसी अहंकार की छाया सब सृष्टि के जीवों पर परतीहै•उसी अहंकार में से आकाश आदि पाँच भूतों के पाँच बीज उत्पन्न होते हैं सो तन्मात्र कहलते हैं उन्हीं के ये नाम हैं (शब्द तन्मात्र १ स्पर्शतन्मात्र २ रूपतन्मात्र ३ रसतन्मात्र ४ गंधतन्मात्र ५) ये अति सूक्ष्म रूपी बीज होते हैं पाँच तन्मात्र कहेजातेहैं कि उन्हीं मेंसे जुदे जुदे अपने बीजों से आकाश आदि स्थूल रूपी पाँच तत्व भी उत्पन्न होतेंहैं अर्थात् (शब्द तन्मात्रके बीजसे आकाश) (स्पर्श तन्मात्र बीजसे वायु) (रूपतन्मात्र

बीजसे अरिनेत्र) (रसतन्मात्रबीजसे जल) (गंध तन्मात्रबीजसे मृत्तिका पृथ्वी) इसी हेतु जिन बीजोंसे उत्पत्ति हुई उन्हीं बीजोंवाले गुणा आकाशआदिपाँचोंभूतमें प्रत्यक्ष होते हैं सोभी एक एक पिछलेमें अधिक गुणा होता है अर्थात्((आकाशमें अपनेही बीजका गुणा एक शब्दसात्र होता है १-वायुमें अपने बीजका गुणास्पर्श और अपने वाप आकाशकाभी शब्द गुणाहोताहै २-इसीतरह अरिनेत्रमें अपनेबीजका गुणा रूप भी और दोनों वाप दादा के गुणा स्पर्श और शब्द भी ३-जलमें अपने बीजका गुणा रस भी और तीनों पुरुषाओं के गुणा शब्द स्पर्श रूप भी ४-मट्टी में अपने बीजका गुणा गंधभी और चारों अपनेबड़ों के गुणा शब्द स्पर्श रूप रसभी ये पाँच होतेहैं५)) उर्मा मूल प्रलोक में च कारसे दश इंद्रियाँ तथा और भी विशेषता कहिनी शेष रही सो अधिकोक्ति में देखना ॥ १७६ ॥ शब्द•स्पर्श•रूप•रस•गंध•ये उन्हीं आकाश आदि पाँच भूतों के गुणा होते हैं सो अभी पहिले प्रलोकमें लिख चुके और यहभी एक नियम है कि उन बुद्धि आदि मभी में जो जिसमें से निकसा है सो उसी क्रमसे प्रत्येक के मनय पर उर्मा में लीन होजाता है ॥ १८० ॥ याज्ञवल्क्य जी पहिली सब सुनाई हुई व्यग्रथा का याद दिनाकर कहिते हैं कि ये योता मुनीश्वरो आत्मा जो ईश्वर है सो जैसे जैसे अपने आत्मा को सृष्टि में सृजता है सो पहिले मैंने सब कहिकर तुमको सुनाया कि यद्यपि वह ईश्वर है तथापि मानस १ वाचिक १ कार्यात्मक ३ तीन प्रकार के कामों का विपाक फल स्वीकार करनेसे नाना रूप धरताहै (इसी प्रयोजनसे सबसे प्रथम इतनी मानसी को तैयार करताहै कि अव्यक्त से बुद्धि आदि फिर आकाश से धरती पर्यंत रचिकर फिर उन्हीं से सब जीवों को उपजाताहै ॥ १८१ ॥तहां सत्त्व रज तम ये तीनों गुणा जो तुमसे कहे गये सो उर्मा परमेश्वरके समझनेको कि उसकी एक अविद्या सायाके तीनों भावरावर तीन गुण कहतेहैं(कि जैसाएकसौ उनासीप्रलोक में अव्यक्त का स्वरूपकहा उनी को अविद्या समझी) तीनोंगुणाकहेतिनसे रजोगुणा त्तोगुणाइन दोही के आवेश करके यहपरमेश्वर आपही सृष्टि रूपहोकर मदापहिया कीतरह चक्कर खाताहुया घूमता रहितहै यहभी तुमकोमें समझाय चुका एकसौ चौबीस का प्रयोगदेखो ॥ १८२ ॥ वही अर्थात् पुरुष परमेश्वर आदि वाला भी शरीर धारणा करनेसे कहाता है कि जब प्रकृति के परिणामसे विकार सहित होताहै और लिंग तदा इंद्रियों से देखने लुड सकने योग्य रूप होता है यह भी तुम से पहिले मैं कहिकर तहां फिर फिर जाके उन्हीं प्रकारों को शोचो समझो (यहां लिंग और इंद्रियों से निरवो गई तहां इंद्रियाँ नो प्रसिद्धे कि उन्हीं से सब रूप देखे सुने

हुये जाते हैं और लिंग नाम है चिह्नका और इसी हेतु से देह को भी लिंग कहते हैं कि वह जीवका स्वरूप समझने योग्य एक चिह्न है क्योंकि जो देह रूपी चिह्न कुछ न हो तो फिर जीव का लक्षणा भी किसके सहारे से समझा जाय ॥ १८३ ॥

१७६ अधिकोक्तिः—ऊपर लिखी हुई उत्पत्ति में यह विशेषता भी समझने के योग्य है कि तीनों गुणा मिले हुये बराबर का नाम अव्यक्त कहा गया तो बुद्धि जो अव्यक्त से उत्पन्न हुई तिसमें भी तीनों गुणा का प्रभाव होता है परंतु इतना अंतर होजाता है कि बुद्धि में तीनों गुणा होने पर भी सतोगुणा अविद्य होता है क्योंकि अव्यक्त नामकी प्रकृति में चैतन्य परमात्मा की छाया घुसने से अव्यक्त उसडि चलता है (जैसे किसी नाद या गडहिले भरेहुये में कोई चीज और भी डारने से उसका जल उसडि के वहि चलता है तैसेही तीनों गुणा से बराबर भरे हुये अव्यक्त में चिच्छाया का प्रवेश होने से सतोगुणा बढि जाता है क्योंकि चैतन्य की छाया केवल सतोगुणामयी होती है तिसके प्रभावसे अव्यक्तका भी सतोगुणा उसडि चलता है) इसी हेतुसे बुद्धि जो उसमेंसे उत्पन्न हुई तिसमें रजोगुणा तमोगुणा तो बराबर हैं सतोगुणा सबसे अधिक और उसी सतोगुणाके प्रभावसे बुद्धिमें ज्ञानकी शक्ति रहाकरती है और इसी हेतु से बुद्धि परमात्माकी इच्छारूप कहाती और प्रसारा इसका ध्वन्वन्तरिजा बचन है—
 यथा=ततोऽभवन्सहस्रत्वं बुद्धितत्त्वापराभिधस त्रिगुणांस्तत्र बहुलं निर्मलं रूपादिकोपमस्य
 चिच्छाया प्राप्त चैतन्यं तदिच्छासथसो रित्तु=अर्थात्—तिस अव्यक्त नाम प्रकृतिसे सहस्रत्वं पैदा होती हुई कि जिसका दूसरा नाम बुद्धि तत्त्व भी होता है वह तीनों गुणा मे युक्त है पर तीभी उसमें सतोगुणा बहुत है क्योंकि चैतन्य पुरुष की चिच्छाया प्राप्त होनेसे चैतन्य होजाती और बडी निर्मल साफ बिल गौरी पत्यर के गुसान अणुकार और उसी चैतन्य पुरुष की इच्छासत्र कहाती है कि जिधर को वह इच्छा योचना चाहे उधरीको दौडता है=इसी त्रिगुणामयी बुद्धिका परिणाम (जैसे देवतादत्तात्ता जाना) जो विकारभी कहाता है तिसका तेज खिंचिकर अहंकार की उत्पत्ति होती है यामे वह अहंकार भी तीन भाँतिजा सात्त्विक राजस तामस जुवा जुदा होता है (परन्तु अहंकारको उत्पन्न करनेवाली बुद्धिमें सतोगुणा अधिकतोनो जो कतिचुके को नहीं रीतता किन्तु रजोगुणा का तेज खिंचि होजाता है) इन तीनिमें जो तामस अहंकार कहा तिसके तेजसे पांच महादेवों की उत्पत्ति होती है फिर उन्हीं के आक्राम आदि पांच भूतोंकी उत्पत्ति भोगे काली उनाली मूलश्लोक मे सर्वमे पीठे जो चकार आया नि-
 उक्तो ध्वन्वन्तर्य से अहः जो गेय रहे दो भाँतिके अहंकार सात्त्विक तथा राजस इन दोनों

के विकारमे परिणाम होकर जो तेज खिंचा तिससे दो भाँतिकी इन्द्रियाँ पैदा हुईं अर्थात् नास्त्विक अहंकारके तेजसे पाँचज्ञानेन्द्री और राजस अहंकार के तेजसेपाँच क्रमेन्द्री (यहाँ भी अहंकार और इन्द्रियोंको केवल एक पुरुषके देहमध्ये नहीं समझना किन्तु सृष्टिके प्रारंभ में समष्टिरूपसे जो अहंकार और इंद्रियाँ सब सृष्टिका एक भगाला पैदा कियाराया तिसका यहाँ चर्चाहै फिर उसी समष्टिकी राशिमें से व्यष्टि रूप करि करि सब सृष्टिकी रचना करीजाती है) ॥ १७६ ॥ अब स्वर्गजानेवालोंका मार्ग उनके कर्मोंके आधीन आगे कहेंगे ॥

(स्वर्गगामिनांमार्गः)

पितृयानांऽजर्वाथ्याश्रयदगस्त्यस्यचान्तरम् । तेनाग्निहोत्रिणोयांतिस्वर्गकामादिवंप्रति १८४
पंचदानरताः सम्यगष्टाभिश्चगुणैर्युताः । तेपितृनैवमार्गेणसत्यव्रतपरायणाः १८५

अर्थः—अजर्वाथी का और अगस्त्य का जो अन्तर है सो पितृयान है तिससे अग्निहोत्री स्वर्गको जातेहैं स्वर्ग की कामना रखनेवाले=और जे दानमें रत रहनेवाले तथा आठगुणोंमें संयुक्त भी और सत्यके व्रतमें परायणहों वे भी उसीमार्गसे जातेहैं=अर्थात् अजर्वाथी अमरमार्ग जो आकाश में देवतोंकी सड़कहै बुद्धिमानोंको दिखाई देतीहै कि रूप उसका आकाश दक्षिणामार्ग में (मूलपूर्वायाहउत्तरायाह) इनतीनों के उदयवाले सब तारे मिलकर अजर्वाथी बनी कहाती यह तारागण के शास्त्रोंका सिद्धांतहै। इस अजर्वाथीमे लेकर अगस्त्य के उदय होने योग्य ठिकानेतक बीचका जो अंतरहै वही (पितृयान) पितृगं का रास्ताहै कि जहाँसे पितृलोक में जाते आते रहितेहैं। उसी पितृगं के रास्ते होकर अग्निहोत्री लोग स्वर्ग में जाने पातेहैं कि जिनहोंने स्वर्ग देखने या भोगने की कामना से वेदोक्त अग्निहोत्रोंकी उपासना करी है ॥१८४॥ और जे कोई सत्यपुरुष दानदेना आदि म्मार्त कर्मोंमें अच्छे ढंगसे दम्भछोड़ि के निष्कपट तत्पर हुयेहो उसीमार्गसे जातेहैं। और वे भी कि जो आठगुणों सेवन करने वालेहो अर्थात् (दया•ज्ञानि•अतमूया•गौच•अनाश्राम•मंगल•अकार्पण्य•अस्पृहा) ये आठ गुणों जो सौम्य आदि ऋषीश्वरोंके आदेश क्रिये प्रसिद्ध हैं सो जिनमें हों वे भी उसी मार्गसे जातेहैं। और वे भी कि जो लोग सत्य बोलनेके व्रत में रंगे रहिते हों उसी मार्गसे जातेहैं ॥ १८५ ॥

जब नीचे उन सिद्धोंकी व्यवस्था कही जायगी जो दारुदार अपना वही उत्तम जगत् आकर लेनेहैं अर्थात् किसी और ओरिसे कभी नहींजानेपातेहैं यहभी शर्काविशेष

हंग उसी सर्व शक्तिमान् की इच्छा से नियमात्मक जानों केवल कर्मोंकी प्रधानता इसमें नहीं क्योंकि ईश्वर की सत्तामें एकसे एक नई अनूठी बात होती है इसी हेतु से कोई उसकी इच्छाका अंत नहीं पाता है और इसीसे वेदोंकी युतियां भी नेति नेति की पुकार क्रिया करती हैं ॥

(पुनरावर्ति नोलोकाः)

तत्राष्टाशीतिसाहस्रामुनयो गृहमेधिनः । पुनरार्वात्तनो वीजभूता धर्मप्रवर्तकाः १८६

अर्थः—तहाँ अठ्ठासी हजार मुनीश्वर गृहमेधी सर्वधर्मोंके प्रवर्तक वीजभूत होके रहते जो पुनरावर्ती होते हैं—अर्थात्—यह संदेह खड़ा होता था कि प्रलय के होजाने बाद पढ़ानेवालों के सिद्धिजाने से नवीन सृष्टि में नवीन देहोंको वेद विद्या आदिका बोध कुछ न होने से अग्निहोत्र आदिकर्म कैसे होसकते होंगे कि जिन धर्मोंके होने बिना कैसे स्वर्ग मिलिसक्ता होगा—इसका समाधान समझाते हैं कि—तहाँ पूर्वाक्त पितरोंके मार्गवाले देशमें (प्रलयके समयपरभी) अठ्ठासी सहस्र मुनीश्वर जो गृहस्थ धर्मके जाननेवाले (पंचयज्ञ आदि नित्य नैमित्तिक धर्मोंकी साधना करनेवाले) सब सामग्री साथलिये तबतक वहाँ टिकते हैं कि जबतक दूसरी सृष्टिका प्रारंभहोय • फिर वहाँसे आकर अपना वही जन्म यहाँ पाते हैं कि जैसा कुछ पहिली सृष्टिमें था उसी हेतुसे पुनरावर्ती कहाते हैं कि फिर फिर लौटि आना होता है • वही आकर सृष्टि के नवीन लोगोंको वेद विद्या आदि सिखलाकर धर्म मार्गमें प्रवृत्त करते हैं (फिर क्रम क्रमसे पढ़ने और पढ़ानेवाले और भी उत्पन्न होते रहते हैं कि जैसे एक दीपक में असंख्य दीपक जुड़ते रहते हैं) इसीलिये धर्मरूपी नवीन वृक्षको उपजानेवाले वीज भूत वे अठ्ठासी हजार मुनि कहाते हैं क्योंकि जो येही अठ्ठासी हजार वीज मंचित न रहते तो फिर अग्निहोत्र आदि कर्म यहाँ क्यौंकर जारी होसकते और धर्मरूपी वृक्षोंकी बढवारी भी वीजोंबिना कैसे होती ॥ १८६ ॥

इसी भाँतिके और भी मुनि होते हैं सो अगिले श्लोकों में देख्यो ॥

(अन्येष्विस्वर्गामिनो मुनयः)

तसर्पिणागवीथ्यंतर्देवलोकंसमाश्रिताः । तावन्त एव मुनयः सर्वाग्निभविर्जिनाः १८७

तपसा ब्रह्मचर्येण संगत्यागेन मेधया । तत्र गत्वा वनिष्ठन्त्यावदानुत्तमं ब्रह्म १८८

यतो वेदापुराणानि विद्योपनिषदन्तथा । श्लोकाः नृत्वापि भाष्यापि यच्च चिन्तयाद्यद्यम् १८९

वेदानुवचनं यज्ञो ब्रह्मचर्यं तपो व्रमः । श्रद्धोपदान् ज्ञानं त्रयमान्मनसं ज्ञानं तदः १९०

अर्थः—सप्त ऋषि जो आकाश में उदयहोते देखिये—नागर्वाणी अर्थात् सर्प-

उन द्वार्याका समता जो अग्निनी भ्रगी कृत्तिका नक्षत्रोंके सब तारे मिलि के उत्तर
 मार्ग में नागद्वीयी कहाती है वीयियोंका वृत्तान्त अधिकोक्ति में) सप्त ऋषि और
 नागद्वीयी का जो वीचरहा स्वर्ग लोकमें तहाँभी उतनेही अट्ठासीहजार दूसरे मुनिलोग
 जाकर टिकते हैं कि जवतक प्राकृत क्रिस्म का प्रलय होतारहिताहै ये मुनिलोग भी
 गृहस्थी भगवोंमें बनेहुये केवल ज्ञानके स्वरूप और तपस्या ब्रह्मचर्यसे संयुक्त होते
 हैं सब संन छोड़े हुये और सेवा नामकी बुद्धिसे संयुक्त होतेहैं कि जो कुछ पहिलेदेखा
 मना तिमकी भांगगा बनी राखें किन्तु भूलें नहीं॥१८७॥१८८॥जिससे फिर अगिली
 सृष्टिके प्रारम्भमें • चारो वेद • पुराणा • विद्यायें • उपनिषद • प्रलोक • सत्र • और भाष्य जो सृष्टी
 की व्याख्यारूप होतेहैं • और भी जो कुछ वाणीरूप शास्त्र होतेहैं सो मांसा वैद्यकज्योतिष
 आदि सो सब इन्ही मुनिसमूहमें प्रवृत्त होताहै अर्थात् जो एकसौ छहासीके प्रलोकमें
 गृहस्थी धर्म जाननेवाला एकमुनि समूहकहा दूसरा जो गृहस्थी जंजालोंसे बचाहुआ
 समूह इसी ज्येपर दर्गाया गया इन्हीं दोनों समूह से सब धर्म कर्म और वेदविद्या
 आदिजाये होतेहैं इसीलिये ये सब धर्म प्रवर्तक भी कहाते हैं॥१८६॥इसी हेतुसे वेद
 अनित्य नहीं कहाजाता क्योकि प्रलय कालमें भी नाश उसका नहीं होताहै—इसी
 लिये जो कुछ वेदों के वचनानुसार है • यज्ञ • ब्रह्मचर्य • तप • दम • यद्वा • उपवास • स्वा-
 तन्य अर्थात् मुक्ति मार्गकी माधना • सो सब आत्मज्ञानके हेतुहैं—अर्थात् जो वेदनित्य
 और मनातन टहिरा तो उनके द्वारा जो जो धर्म कहा गया सो उसवेदकी प्रबलता
 नहीं परमात्मका स्वरूप दर्शनकरानेवा ना सत्यहै सदेहको टिकाना इसमें नहीं १६०॥

तथैव=पुष्याश्लेषातथादित्यावीथीचैरावतीस्मृता=अर्थात्-पुनर्वसु पुष्य श्लेषा इन तीनों के जितने तारे हैं आकाश में सो सब मिलिके चैरावती वीथी कही है=एवं= मलायाढोत्तरायाढाअजवीथ्यभिषाब्दिता=अर्थात्-मूल पूर्वाषाढ उत्तराषाढ इन तीनों के सवतारा मिलि के अजवीथी कही गई सो यह एकसौ छहासी के प्रलोक में आईथी इत्यादि अनेक और हैं पर यहां केवल नागवीथी का प्रयोजन है सो ऊपर लिख चुके ॥ ० ॥ यद्यपिसंदेहों को सिराते चलेआते हैं तथापि यहां औरभी नवीन शंकार्ये खड़ी हुई कि जन ईश्वर आपही सर्व शक्तिमान् है तत्र उसको धर्म कर्म और वेद विद्या आदि के बीज संचित करनेकी क्या भीडपरी और क्या ऐसी जह्नात ठहरी जो संसारी किसानों की तरह वह बीज संचय करवाता है क्या जैसे और बडी दुर्लभ चीजें उसकी इच्छा से उत्पन्न हुईं और होतीहैं तैसे इनको नहीं उत्पन्नकरसक्ता व- लिक बीजतौ असंख्य सब चीजों के उसीकी इच्छा से कारणा विनाभी उत्पन्न होते हैं-और दूसरी यह शंकाहै कि प्रलय के होजाने में सब सृष्टि निरातोक होजाती है कि जिसके पीछे दिशार्ये और आकाश वायु आदि सब उत्पन्न क्रिये जाते हैं तत्र जाकर कहीं दूसरी सृष्टिका प्रारंभ होताहै तौ फिर क्या ऐसी दशामें स्वर्ग बनारहता है कि जिसमें अठ्ठासी हज़ारसे दूने मुनीश्वर जाकर टिकतेहैं-और तीसरी यहशंका है कि ये मुनीश्वर पुनरावती कहे गये जो पुनः पुनः सृष्टियों के प्रारंभ में सदेह केमे लौटि आते हैं क्या ब्रह्मा की आयुसे भी अधिक इनकी आयु होती है जो सदा नव सृष्टियों की आदि तें येही लौटि आते हैं-समाधान मुनों ईश्वर वही कहाता है जो (कर्तुं अकर्तुं अच्यथा कर्तुं वा असर्थः सईश्वरः शक्तित्रय ससन्वितः) उन तीन भाँति की शक्तियों से सदा पुराहो अर्थात् जो किसीसे भी न होसके तिम अपूर्व कर्म के करने को ससर्थ होय-और जो होनेवाली असिद कोई बात है तिम सति देने को स- सर्थ होय-और अल्पथा कर्तुं वा क्लिप्त तीसरी यह शक्ति है कि जो कोई दान गक्रही प्रकार से होती है तिसको भी अल्प प्रकार से करसके और वा गदशमे के विकल्पमे उस मुख्य प्रकार सेभी करसके अर्थात् जिसमें दोनों तरह ल्वाचीन होवे कि चाँ नव और तरहसे करनेलगे या उ ती एकप्रकार से होने देवे-उपक्ता यह इष्टान्त यादिकरों कि जैसे मनुष्यके शरीर तें लोंग और पूंछ नहीं होतीहै यह गक्रही प्रकार नियमा-त्मक और सबको मालूम है परंतु ईश्वर ने अपनी अमर्यादा काया शक्ति के प्रभाव में शृङ्गीच्छयि आदि मनुष्यभी नीरावाले वनाकार दिवलाये यह कयन बाकी न रक्ता कि सींग होही नहीं रहते है ऐसेही विले देगों में पूंछ बाकी भी मनुष्य उदरे व-

और वेदों की नित्यता पालन करने के हेतुसे सुनीचर जराहकर्ता की इच्छासेही जाते हैं तो ये एक प्रकार के सरकारी कारपर्दाज ठाहरे उनके लिये ठिकाना देना किसको इन्कार होगा—तीसरी शंकाका यह उत्तर है कि प्रयत्न तो चिरंजीवी सुनियोंकी आयुष् अधिक होना भी असंभव नहीं है सार्कडेय जी की उत्पत्ति आदि पुराणों में देखो कि प्रलय काल में सब सृष्टि जलमय होजानेपर भी सार्कडेय जी अस्यवट के ऊपर वैठ के बचि जाते हैं और वह अस्यवट भी साक्षात् परमेचर की इच्छा और सत्ता रूपी पदार्थ है क्योंकि प्रलय कालिक सकाराविरूपी भयंकर जल से कोई संसारी वृक्ष नहींठहरसक्ता • तिससे उस परमात्मा की इच्छा से बहुत बडी गुंजायश है जो जो कुछ इच्छा करे सो सब होसकता है—अन्यथा उसवार्ताका यही तात्पर्य नहीं है कि सदा वेही सुनीचर उसी देह से आते जाते रहिते होंगे किंतु यह तात्पर्य है कि एक प्रकार की सत्ता जाकर टिकतीहै वही सब धर्म और वेदोंको थांभे रहा करतीहै फिर वही आकर सृष्टिकी आदिमें वैसेही जन्म स्वतः लेतीहै कि जैसे पहिले कल्प में सुनीचर हुयेथे उन में आपही सब धर्म और वेदों का बोध ज्ञानरूपसे उत्पन्न होता और पहिले कल्पोंकी व्यवस्था सब याद रही आतीहै (जैसेनारद औरव्यास और शुक्रदेव आदि को शोचौ) फिर उन्हीं के द्वारा आगे को वृद्धि होती जाती है इस रीति से वे लोग धर्मों का बीज कहेजातेहैं ॥ १८७ ॥ १८८ ॥ १८९ ॥ १९० ॥

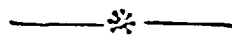
(वेदएवात्मज्ञानस्यमूलं)

सद्याश्रमैर्विजिज्ञास्यःसमस्तैरेवमेवतुः । द्रष्टव्यस्त्वथमंतव्यःश्रोतव्यश्चद्विजातिभिः ११,१
यएनमेवंविदंतियेचारण्यकमाश्रिताः । उपासतेद्विजा.सत्यंश्रद्धयापरचायुताः ११,२

अर्थः—वही वेद सबआश्रमोंके विजाती लोगोंकरके जाननेकी इच्छा उपनयनके योग्यहै (अर्थात् ब्रह्मचारी गृहस्थ वानप्रस्थ संन्यासी जो ब्राह्मण वर्ण वेदप्रकरणों के हों इन सबको अच्छे प्रश्नोत्तरों से जानना उचित है) फिर देवना भी उचित है कि यातौ अपनी वासधर्म हो तो एवही संताकर बैठे या उठें वही वेद वेदोंका व्याख्यान होताहो तहाँ जाकर उनका चाहिये मुने पीठे वेदोंको वचनोंका निर्णय अर्थात् सतनभी करनाचाहिये निरुद्धवाद उद्धवा कष्टों प्रमाणों से जाननाचाहिये (अर्थात् युक्तियों से विचार करके प्रमाणों में हुए कल्प ११८२ में कोईउजातीलोग अतिशयदाने दुक्तहुये वरुण कर्ता सदांतमें पचासी वैदिक (सप्त स्यात्पारं) इस परमात्मा सत्यरूपको ऐसे पूर्वोक्त प्रकारों से जानना चाहिये व ५५ उपनयनके

में• फिर दक्षिणायन के लोकमें• फिर पितरों के लोकमें• फिर चन्द्रमा के लोकमें (इन सब देवताओंसे सत्कार पाने पीछे) फिर वायुके लोकमें जाकर वायुरूप होताहै• फिर वर्षाके लोकमें जाकर वृष्टिरूप होताहै• फिर जलके लोकमें आकर जलहीका रूप होके पृथ्वीपर आजाता है• फिर उस जलसे धरती में नानाअन्न औषधीकारूप होकर जीवोंके आहारद्वारा वीर्यरूप होजाता है• फिर वीर्यभी संसारी योनिमें पडिके कोईसा गर्भरूपहोजाताहै• फिर वह गर्भ इसी संसारमें पैदाहोकर वेहीदुखसुखभोगता है कि जो कुछ शेषकर्मोंके प्रभावसे उस योनिमें भोगनेयोग्य ठाहरेहों॥ १६५॥ १६६॥ जोकोई अच्छी होशियारी से ये दोनों मार्ग नहीं जानता किन्तु दोमें से किसी एक मार्गमें जाने योग्य उपायरूपी धर्मोंको नहीं सम्हारता है सो दंड शूकनाम सर्पआदि की योनि में जाताहै या पतंग तीड़ी आदि की योनि में या कीट छींगुर आदि की योनिमें या हामि जो विद्याआदिमें संडी परजातीहैं तिनकी योनिमें होताहै ॥ १६ ॥

अतंतरोक्त नीचयोनि में जानेको बचाना चाहें तिनके लिये उत्तम योग साधनेकी उपासना अगिले परिच्छेद में दर्शावेंगे ॥



अथ-अग्निमाद्यष्टविभूतिप्रापकयोगाभ्यासनिरूपणादि

मौलस्वरूपविवेकीनामविंशःपरिच्छेद २० ॥

इस परिच्छेद में योगाभ्यास रूपीसोसका प्रकार जानाजायगा कि जिसके सिद्ध होजाने में अग्निआदि विभूतें भी मिलसकती हैं—और योगाभ्यास के उपरालू इतर प्रकारोंसे भी सोसहोताहै वो भी बरान होंगे

(उपासनायाःप्रकारःयोगाभ्यासः)

उत्स्योत्तानचरण.सत्त्वे न्यस्योत्तरंकरम् । उत्तानंकिंचिदुन्नान्यमुत्वंविष्टन्यचांग्मा १०८
निमीलिताक्ष.सत्त्वस्योदतैर्वन्तानसंस्पृगान् । तालुन्याचलजिह्वश्चमंष्ट्रनान्य मुनिश्चम् १०९
संनिस्थोन्द्रियग्रामंनातिनीचोच्छ्रितासनः । द्विगुपंत्रिगुपंवापिप्राणाशानमुत्तमम् ११०
ततोध्येय.स्थितोयोऽसौहृदयेदीपवत्प्रभुः ॥ धारयेन्नत्रचात्मानंयाग्यांयाग्यन्युद १११

अर्थः—दोनों जाँघपर उत्ताने दोनों चरणा न्याणित किये जो (पल्लोयोमागना) पद्मासन बाँवनाभी कहाता है•वाले हाथ चितक्रिये हुये पर दाहनाहाथ चित क्रिया

रकी बजाई जाती है उतनी पंद्रह मात्राओं से प्रारायास अधस कहाता है मध्यम उससेदूना कहा और श्रेष्ठ उससे तिगुना होताहै तैसेही उत्तम मध्यम नीच धारणाभी कहातीहैं कि जैसे प्रारायासों से साधी गईहों किंतु तीनतीन प्रारायास से एकएक धारणा कही गई है तैसी तीन धारणा से एक योगभी तैसाही उत्तम या मध्यम या अधस योग होता है कि जैसी धारणा योगीने निज शक्तिके अनुसार साधीहो•ऐसा योग एकद्वार भी जो रोज रोज साधै सो योगी पुरुष कहाताहै•जो बारंबार अहर्निश सेसे योगों का अभ्यास क्रिया करताहो वही पूरा पूरा योगाभ्यासी होगा ॥२०१॥

पूरे पूरे योगाभ्यास के सिद्ध होजाने में जो शक्ति आदि फल हेते हैं

तिसके लक्षरा आगे कहेंगे ॥

(योगस्यसंसिद्धिलक्षणं)

अंतर्धानंस्मृतिःकांतिर्दृष्टिःश्रोत्रज्ञतातथा । निजंशरीरमुत्सृज्यपरकायप्रवेशनम् २०२

अर्धानांछंदतःसृष्टिर्योगसिद्धिर्हिलक्षणम् । सिद्धेयोगेत्यजन्देहममृतत्वायकल्पते २०३

अर्थः—अंतर्धानं•स्मृति•कांति•दृष्टि•श्रोत्रज्ञता•तथा अपने शरीरको छोडि के पराये शरीर में प्रवेश होजाना•और इच्छासे अर्थोंकी सृष्टि करलेना• यह सब योगसिद्धि का लक्षराहै और योगसिद्ध होजाने में देहको त्यागतेहुये अमृतत्व के लिये भी हक्रदार होताहै=अर्थात्—अणिमानामकी विभूति जिसका यह लक्षराहै कि अत्यंत सूक्ष्म रूप धर सकताहै जिसको और कोई न देखिसके वह सबकोदेखे यह अंतर्धान सिद्धि कहातीहै•स्मृति भी एक विभूतिहै कि जैसे मनुआदि महाऋषीचर उन पदार्थों को यादि करसकते थे जिनका यादि करना या देखना सुनना इन्द्रियोंके बगका न हो क्योंकि इन्द्रियाँउन्हीं वस्तुओंको ग्रहणकरसकतीहैं जो प्रत्यक्ष हो किन्तु स्मृतिरूपी सिद्धिवाला गुह्यपदार्थोंका स्मरण करसकताहै•कांति नामकी विभूति जिसको सिद्ध होजाय सो चाहै तैसा लक्षण होनेपरभी अति सुन्दरकांति जैसी देवतादी

अपने शरीरको चाहै तैसा (गुरु) गरुआभारी बोझिल बनाइलेता है जैसे हनुमानजी लक्ष्मणाके जिवाउनेको सजीवन मल लेनेगये तब असंख्य औषधियों में उसको नहीं पहिंचानि सके तिससे अपने शरीरको इतना भारी बोझिल बनाय। कि समस्तपर्वत को उखाडि के अपने शरीरपर धरिलासके—४ लघिमा विभूतिवाला अपने शरीरको चाहै तैसा (लघु) हलुका बनाइलेता है जो उडिकर चाहै तिस ऊंचेसे ऊंचेलोकमें जासके— ५ ईशिता विभूतिवाला ईश बनिसक्ता है अर्थात् चाहै तहाँ किसी समाज में या किसी प्रबल मनुष्यके ऊपर भी ईशकी तरह आज्ञा चलाइ सक्ता है कि उसके ईशत्वके प्रभाव से हर कोई आज्ञा मानलेता है यहाँ तक कि स्यावर वृक्ष पत्थर आदि भी आज्ञा उसकी मानते हैं कि जिनपर चलाना चाहै केवल आपही नहीं किन्तु जिस किसी को चाहै तिसके ऊपर भी ईशत्वका प्रभाव आरोपित करके आज्ञा दायक बनादेवे और इसी प्रकार अन्य विभूतियोंवाले भी अपने समानशक्ति औरोंको देसकते हैं जितनी देसतक देना चाहै—६ वशिता विभूतिवाला अपने वशित्व के प्रभावसे चाहै तिसको वशीभूत करसक्ता पर आप किसी के वश में नहीं आता किन्तु सदा स्वतंत्र बना रहिता है—७ प्राप्ति नामकी विभूतिवाला चाहै तहाँ अति दूर स्थानतक शीघ्र पहुँचि सक्ता है—८ प्राक्तास्य नामकी विभूतिवाला जैसी कासनाकी इच्छा करे सो इच्छा पूरी होती है ॥ पहिले प्लोक में कासावसायिता नाम जो आद्यों विभूति सबसे अधिक प्रतीत होती है तिसको अधिक नहीं समुक्तता किन्तु इसीद्वारे प्रतीकमें जो गरिमानाम तीसरी विभूति कही सोई अधिक समुक्तता द्यैकि गरिमा ऐश्वर्यों में शिजती नहीं मानो गई है— और कासावसायिताका प्रयोजन यद्यपि प्राक्तास्य के समानही देखिपरता है तथापि दोनोंमें भेद है कि प्राक्तास्य तो केवल उर्मीकी इच्छा पूरी करनेवाली विभूति है और कासावसायिताका यह तात्पर्य है कि मिद पुन्य जो श्रेष्ठ अन्य जीदोंके लिये अपने संकल्पसे (अवसाय) निश्चय करार देवे कि अमुक प्राणी को मैं धनी या राजा या पुत्रवान् या दाना या दाढी करदेना चाहनाहूँ सो अवश्य करि दिखाऊंगा वही करि दिखाता है चाहै निपट दंडयाकं पृथ पदा करवाये इत्यादि अपनी बुद्धिसे समुक्तता—ये आदौ विभूतियाँ कासाव परमेस्वरके शिष्य हैं इसी हेतु महादेव आदि बड़े बड़े उद ईश्वर इन विभूतियों से सर्वथा आदौ अंग भंग पुरे होते हैं और इन्द्रादिक लोकपाल आदि उद देवता इन विभूतियोंसे बहूत या अंग-डाही यथायोग्य भरे रहिते किन्तु उनसे जन्मके नायही ईश्वरकी दीहुँट न्नाभाविक सिद्धि आती है—इतके सिवाय संन्यासी आदि पूरे योगीश्वर अग्नी योग नाचना कं

प्रभावसे यदि कोई एक बोहीको सिद्ध करिपातेहैं सोउनमें भी अद्यापिहोतीहै दृष्टांत जैसे मैकरोँ वा हजारों की सामग्री उधार मगाकर बडा भंडारा क्रिया फिर पीछेसे खाली तुंबी कमराडलको औंधा करिके रूपये उलटादिये वह सभी सौदावालों को दे-दियेगये पर आप उसी तुंबी और लँगोटीके सिवाय कुछ आडंबर साथ नहीं राखते- दूसरा दृष्टांत जैसा किसी दुखियाने बूझा कि बाबाजी मेरे पुत्रको सोरहवर्ष बीते कि वह घरसे निकसि गया कभी उसकी खबरतक न मिली जानै कहां होगा-उत्तरादिया कि वच्चा तेरापुत्र अमुक विदेशमें था अब फलाने शहरमें आगया है बारहवेंदिन तेरे पासभी आवैगा सोई सब सत्यहुआ इत्यादि परे सिद्धलोग पृथ्वीपर अनेकहैं पर ऐसे लोग अपने आपेको छिपाये रहाकरते हैं क्योंकि संचारी लोग एकहू का भला होता देख सिद्धोंकी वाराी सत्यजानिके उनको चैन नहीं लेनेदेते किन्तु घेरते और अपने अपने दुखहेतुसे सताते हैं—योग साधना के बिनाभी ईश्वरकी इच्छासेही बिरले लोग सिद्धियोंको साथलिये पैदाहोतेहैं उनकी पहिले जन्मकी तपस्या साथ आकर यहाँ सिद्धिका फल देतीहै यद्यपि मलप्रलोकों में योगीश्वरके उच्चारणा क्रिये नाम अत्रोक्त आटीसे मिलते नहींहैं तथापि वेनाम भी सब इन्हीं आठ विभूतियोंका विकार हैं सो इन्हींसे उत्पन्न होतेहैं संदेह न करना चाहिये ॥२०२॥२०३॥

पूर्वोक्त प्रकारोंसे यज्ञ दान तपस्या आदि जिन लोगोंने नहीं क्रिया और योग साधना भी करनेकी शक्ति जिनसे न हो तौ ऐसे लोग जो अपने सत्त्वकी शुद्धि क्रिया चाहें तिनकेलिये सुगम उपाय भी दर्शावेंगे सो अगिले प्रलोकोंसे देखना ॥

(उपायां तरंच)

अथवाप्यभ्यतन्वेदंन्यस्तकर्मायनेवसन् । अयाचिताशीमितभुक्परांसिद्धिमवाप्नुयात् २०४

अर्थः—अथवा (जोपूर्वोक्त नियम योग आदि न होसकै तौ) न्यस्त कर्माहोकर (अर्थात् सब कर्मों का त्यागी और विशेष कर निश्चिद कर्मों का त्यागी होकर) वन में निरुपद्रव स्थानपर बसता हुआ और शक्तिके अनुसार वेदको अभ्यास करते हुये बिना मागे जो प्राप्त होय उसीको परिमान से (थोडा थोडा क्षुधा तिवारणा के अनुमान से) भोजन करिके आयुको वितारै जिसमे सत्त्वकी शुद्धि होजाय औरयथा शक्ति पूर्वोक्त आत्मा की उपासना में भी चित्तको लगायेरहै तौ यह पुस्त्यभी मुक्ति के लक्षणा वाली परम सिद्धि को पावता है ॥ २०४ ॥

शक्ति जो पदार्थ है सो केवल संन्यासी योगीको नहीं किन्तु गृहस्थी भी साक्षपद

को जाते हैं सो अब नीचे कहेंगे—इसी लिये अध्यात्म ब्रह्मकी उपासना वाले प्रकार ध्यान योगआदि जो जो कुछ वर्णन किये तिनकी साधनाका अधिकारी गृहस्थी सब से प्रथम है जो उससे बनिआवे—अर्थात् संसारी सामग्री छोड़िके संन्यासी होजाने से ही ब्रह्मकी उपासना का अधिकारी नहीं किंतु गृहस्थ में रहतेभी अधिकारी होता है—तिससे अध्यात्मविद्याका प्रकरणा जो ६२ वासठिके प्रलोकसे लेकर अब तक संन्यासी के प्रसंगमें दर्शाया गया सो सब गृहस्थीकोभी पढ़ना और अभ्यास करना चाहिये॥

(गृहस्थस्यापि मुक्तिर्भवति)

न्यायागतधनस्तत्त्वज्ञाननिष्ठोऽतिथिप्रियः । आद्वकृत्सत्यवादी च गृहस्थोपि हि मुच्यते २०५

अर्थः—गृहस्थो कि जिसके न्यायमार्ग से ही धन आता हो अन्याय से नहीं और अतिथि प्रिय हो किंतु आये हुये अभ्यासों का सत्कार नित्य निरंतर करता हो और आद्वकर्ता हो अर्थात् नित्य आद्व और नैमित्तिक आदि आद्वों के अनुष्ठान में तत्पर बना रहता हो और सत्यही बचन बोलने का स्वभाव हो और तत्त्वज्ञान (जैसा चौंसठि श्लोक से लेकर अभी तक वर्णन होतारहा तैसे आत्मतत्त्व के ध्यान) में भी विचार पूर्वक लगा रहता हो ऐसा गृहस्थो पुस्यभी मोक्षपद को पहुँचता है—तिससे यही न समझ लेना कि ऊपर जो अध्यात्म विद्या संन्यासी के प्रसंग में कही गई उससे केवल संन्यासी मुक्ति पाता होगा ॥ २०५ ॥

इति अध्यात्मप्रकरणं यह प्रकरणा बहुत बड़ा है कि आठवें परिच्छेदमें लेकर यहाँ तक बारह तेरह परिच्छेदों में पूरा हुआ ॥

आचार कांडके प्रारंभ में यह कहाया कि छे प्रकारके स्मार्त धर्मों को सबतीनों कांडमें वर्णन किये जायेंगे (वरा धर्म आग्रस धर्म वराग्रिस धर्म गुणधर्म माधारणा धर्म निमित्तधर्म) अर्थों सहित लक्षणा इनके आचार कांडके प्रथम उक्तमें देखो इन से पाँच धर्म तो अब तक वर्णन हो चुके केवल निमित्त धर्म जेकरना सो अब आगे से प्रायश्चित्तों के लक्षण द्वारा दर्शावैये किंतु निमित्त धर्म का यह अर्थ है कि जो करना चाहिये सो न किया जैसे उचित कदमि पर चलोपवीत नही किया यदा उचित सबप्रपर दान्यादा हिरासन करना रोक्तिदिश इत्यादि नावप्रकारके नियमों न करने का दोष अथवा जो न करना चाहिये सो निमित्त कर्म किया जैसे अथवा यत्न आदि नावा प्रकार हैं जिनके करने का दोष ये न सो भौतिक दोष कहेंगे सोई निमित्त माने जाते हैं कि इनको स्मरण के निमित्त में जो कुछ प्रायश्चित्त करना

आवश्यकहो वही प्रायश्चित्त का नियम है सो निमित्त धर्म कहा जाता है तिसका प्रांभ अगिले परिच्छेद से होगा—तहाँ प्रथम उसके अधिकारी लोग बरान होंगे कि प्रायश्चित्त कितको करना आवश्यक है ॥

—*—

अथ-प्रायश्चित्तपेक्षायां कर्मविपाकस्वरूप

विवेकीनाम् एकविंशः परिच्छेदः २१

इस परिच्छेद में प्रायश्चित्तों का प्रारंभ करना चाहिके उसके योग्य अधिकारियों का कर्म विपाक बरान होगा जो प्रायश्चित्त करनेसे बचिगये हों ॥

(कर्मविपाकः)

महापातकजान् वारान्नरकान्प्राप्यदारुणान् । कर्मक्षयात्प्रजायन्ते महापातकिनस्त्वह २०६

अर्थः—महापातकों से उत्पन्न घोर दारुण नरकों को पायके कर्म भोग नाश होने से वेही महा पातकी यहाँ जन्मतेहैं—अर्थात्—ब्रह्महत्याआदि पाँच महा पातक जो आगे कहे जायेंगे तिनके करने वाले महापातकी कहातेहैं तिनके जुदे कर्मों के अनुरूप जो जो नरक स्थान महाघोर भयंकर दारुणादुख मिलनेवाले नियत होतेहैं तिनमें जायके निज निज अवधितक भोगने से कर्म भोगों का अंत होजाने पीछे शेष पापों के प्रभावसे वेही नारकीलोग इहाँ संसार में फिर आकर शूकर शृगाल आदि खोटी योनियोंसे वाग्धार जन्मते रहिते हैं अर्थात् अनेक जन्मोंतक पीछा उनका नहीं छूटने मरनातै—तथैव उपपातकी आदि भी निज कर्मोंके अनुरूप योनि पाते हैं सो सब आगे बरान करेंगे ॥ २०६ ॥

(कर्माधीन योनि भेदाः)

सृगवज्रदंष्ट्राणां ब्रह्महायोनिमृच्छति । ग्वरपुल्कनवेनानांसुरापोनात्रसंशयः २०७

अग्निरीटपतंगत्वं मर्षाहाग्निमाप्नुयात् । तृणगुल्मलतान्वांचक्रमशोगुरुतल्पगः २०८

अर्थः—ब्रह्महत्याआदि पापों के योग्य नरकों को भोगे पीछे सृग हरिणा आदि वनजीवोंकी योनि या कुत्ता सुकर ऊँटों की योनि पाता है अर्थात् जिसके जैसे कर्मोंका प्रभाव उंच नीच होता है तैसीही योनिभी उन्ही में से ऊँचीनीची उसको मिलतीहै—

एवं मदिरा पीने वाला अपने योष्य नरकों को भोगे पीछे रादहा की योनि में या पुल्कस प्रतिलोम जाति (जो निषाद नाम एक सछेहरे के बीज से शूद्रीके पेटमें उत्पन्न होती है तिसके) यहाँ जन्मता तथा ऐसेही वेन एक सहानीच जाति होती है तिसमें जन्म पाता है इसमें संदेह नहीं ॥२०७॥ सोना हरनेवाला अपने योष्य नरकों को भोगे पीछे क्षसि कीट पतंग रूपपाता है अर्थात् सांस विद्या गोवरआदिमें वारीक सुंडी जो अनेक तरह की उत्पन्न होते सो क्षसि कहाते और उनसे कुछमोटे बड़े बिना हाड बिना परों के तुच्छ जीव चींटी दीमक आदि अनेक भाँति के सब कीट कीडे कहाते हैं और टीडी तलैया आदि अनेक तरहके परवाले जीव उडने वाले पतंग कहाते हैं तिन में जन्म पाता है—एवं गुरुतल्परा जो गुरानी आदि पूज्य स्त्रियाँ गमन करनेवाला महापातकी है सो अपने योष्य नरकों को भोगने पीछे क्रमसे तरा गुल्म लता तीनोंका रूप जाकर होता है अर्थात् काँस डाम आदि अनेक तरा होते हैं तथा गुल्म भी गुच्छाके आकार वृक्ष जैसे सरो या सृज आदि बड़े छोटे अनेक भाँति होते हैं तथा वनमें लता बेलिभी बड़ी छोटी अनेक भाँति होती हैं इन तीनों में क्रमसे जन्म पाता है (इसी प्रकार ऊपर के ब्रह्महत्यारे आदिमें क्रमसे सब योनि मिलनी समाप्त लेना जो उनके लिये कहिचुके किंतु जैसा विकल्प उनमें लिखा गया तिसका नियम नहीं रहा क्योंकि क्रमसे यह कथन उन सबही का अध्याहार है ॥ २०८ ॥

२०७ अधिकोक्तिः—दोनों प्लोक में योगीश्वर के कहे नियम सर्वथा उस दशा पर आलूठ कियेगये कि जो इच्छा बिना ऐसे महापातक हुयेहो—अन्यथा इच्छा सहित इन्ही पापों के करनेवाले इनसे भी अधिक दुखदाइ योनियोंमें जन्मते हैं यथाह मनुः=असूकरखरोष्ट्राणां गोशुजाविसृगपक्षिणां चंडालपुल्कमानां च वृषदायां निमृच्छति ॥ क्षसिकीटपतंगानां विड्भुजां चैव पक्षिणां हिंसाणां चैव मत्स्यानां मृगयां ब्राह्मणो व्रजेत् ॥ लूताहिसरदानां च तिर्यचां चानुचरिणां हिंसाणां च पाशाचानां स्तेनो विप्रः सहस्रशः ॥ तरागुल्मलतानां च क्रव्यादां दष्टिणां पिच्छरकर्महानां चैव गतया गुरुतल्पराः=अर्थात्—जानि वृष्णिके इच्छा पूर्वक सहा पाप करनेवालों को चपेला मनु कहिते हैं कि उन से ब्रह्म हत्यारा अपने योष्य नरक भोगे पीछे नत्ता • मृगर • रादहा • ऊर • दैल • वक्रा • मेढा • और वनके वृष • पत्नी • और चण्डाल • पुष्कस • डग मठ की योनि अनेक बार पाता है ॥ एवं मदिरा पीनेवाला ब्राह्मण भी • क्षसि • कीट • पतंगों से और विद्या खानेवाले कावा आदि पक्षियों को हिंसक जीवोंमें जाकर जन्मता है ॥ एवं चोरी करने वाला ब्राह्मण भी • मृगी आदि जान पडने वाले जीव • मांष •

मरु अर्थात् गिरिगिहत् और तिरछे उडनेपैरनेवाले जलचर जीव और हिंसा करनेवाले अनेक जीव और पिशाच इनमें हजारों बार जन्मता है ॥ एवं गुरुतल्परा पुरुष तृणा गुल्म लताओं में और मांसभक्षी क्रव्याद राक्षस गिह आदि में और दाढ़ वाले सिंह व्याघ्र बाराह आदि में भी और कसाई आदि क्रूर कर्म करनेवालों में सैकड़ों बार जन्म लेता है ॥ ० ॥ ये चार भाँतिके महापातकी होते हैं सो कहे गये पाँचवाँ इनका सदद्वार भी महापात की होता है यह दोसौ सत्ताइस के प्रलोक में विवेचन होगा तहाँ ससक्त लेना ॥ ० ॥ येही महापातकी लोग इतने खोटे जन्म पाने पीछे जब कभी फिर मनुष्ययोनिमें आते हैं तहाँ भी इनपापोंका बचाहुआ अंशांश पीछा नहीं छोडता है अर्थात् उसकी यह पहिचान है कि जन्म के साथही कोई महारोग लगाआता है सो दूसरे बार अगिले प्रलोकैसे दर्शावेंगे ॥ २०७ ॥ २० ८ ॥

(मानुष्येपिजन्मनिदुरितशेषेणैव क्षयरोगादियुक्ताजायन्ते)

ब्रह्महाक्षयरोगीस्यात्सुरापःश्यावदंतकः । हेमहारीतुकुनखीदुश्चर्मागुरुतल्पगः २०९

योयेनसंबसत्वेपांसतद्विगोऽभिजायते । अन्नहर्ताऽऽमयावीस्यान्मूकोवागपहारकः २१०

धान्यमिश्राऽतिरिक्तांगःपिण्डुनःपूतिनासिकः । तेलहृत्तेलपायीस्यात्पूतिवक्रस्तुसूचकः २११

अर्थः—ब्रह्महत्यारा फिर मनुष्य योनिमें आनेपर जन्मके साथही या थोड़ी उमरमें सयी रोगसे संयुक्त होता है जो प्रायश किसी औषधी से जीता नहीं जासक्ता है इसीको जन्म रोगी कहा करते हैं—ऐसेही नियिद्ध मद्योंका पीनेवाला पूर्वोक्त रीति से नरक आदि भोगने पीछे मनुष्य योनि में फिर आकर जन्म के साथही श्यावदंत होता है अर्थात् काला पीला मिलेहुये भद्देवर्णोंके दाँत उसके राक्षसी दाँतोंके समान होते हैं इसीसे पहिचाना जाता है कि पूर्व जन्मों में नियिद्ध मदिरा पानकरी थी—इसीप्रकार जन्मांतर में ब्राह्मण का सुवर्ण हरनेवाला फिर मनुष्य योनि में आनेपर कुनखीहोता है अर्थात् उसके दोसौ नख कोठियों के समान बुरे विराडे होते हैं—इसी प्रकार गुरुदारागासी अपने कर्मोंके नरक भोगने और उक्त योनियोंमें रहिआनेपीछे मनुष्य योनि में फिर आनेपर दुष्टचर्मा होता है अर्थात् सब देहकी खाल उसकी बुरे कोठसे विगडीहुई होती है ॥ २०८ ॥ पाँचवाँ वह कि जो इनचारोंमें जिस किसीके साथ महायता देने आदि प्रकारों से दसा हो सोभी उन्हींके समान नरक जन्म राजरोग आदि भोगने वाला होगा है (यहाँतक स्थूल रूप में जो पाँच महापापी कहे उन्हींमें चारों के कुछ और भी विवेच भेद आगे दर्शाते हैं कि) चारों में जो अन्न का हरनेवाला

होय सो जन्मांतरमें आमयावी अर्थात् मंदारिन से संयुक्त महारोगी होताहै कि जिस को अन्न कभी पचता नहीं—एवं वारागी हरनेवाला जो किसी की अति प्रयोजनवाली वार्त्ता चुपके सुनिके चुरावै और विद्या संबंधी पुस्तक चुरावै या कोईसी मूल रूपी विद्या गुरु के दिये बिना किसी औरही के द्वारा वार्त्ता प्रसंगसे चुराकर सगावै ऐसा वाग पहारक पुरुष जन्मांतर में गूंगा होकर जन्मता है ॥ २१० ॥ धान्यमिय जो मिलेहुये धान्य सतनजा आदि का हरनेवाला है सो अति रिक्तांग होता है अर्थात् यातौ कोई अंग उसका हीन हो या कोई अंग अधिक हो जैसे छे अंगुरी आदि का होना—एवं पिशुन द्युलीखोर जो पराये सच्चे दोगको भी जहाँ तहाँ सुनाते फिरने का स्वभाव राखै सो प्रतिनासिक रोगी होता है कि उसकी नाक से पीनसुकी दुर्गंधि आयाकरै यह पहिँचान है—एवं तैल हरने वाला जन्मांतर में तैलही का पीनेवाला जन्तु विशेष होताहै जैसे दीपक में तैल पीनेको बहुतेरे जन्तु आतेहैं यद्वा मनुष्य ही के शरीर में कोई कर्म ऐसा कि जहाँ बारंबार तैलही मुहमें देनापरै सो समझलेना—एवं सूचक जो तर्कना की युक्तियों से पराये में दोगों की कल्पना सूचित करता था सो प्रतिवक्तू होके जन्म लेताहै अर्थात् सदा उसके मुहमें से दुर्गंधिआया करती है कि जिसपर कोई औषध भी नहीं चलि सक्ती है ॥ २११ ॥

२०६. अधिकोक्तिः—ऊपर श्लोकों में जो भाव वर्तान किया तिसका प्रमाण मनुके अग्रोक्त वचनसे भी ठीकहै=यथा=यद्वातद्वापरद्रव्यमपहत्यवलान्नरः अग्रग्रयया तितिर्यक्तंजरुध्नान्यैर्वाहुतंहविः=अर्थात्—जो कुछ हो सोई सही पराया द्रव्य केमाद् प्रबलता से हरिके वह अदृश्यही तिरछी योनियों में जन्मता है तथा अंगों का होमाहुआ हविष्य खाइके भी तिर्यक् योनियोंमें जाता है (इसमें हविष्य कानिने में हर किसी तरहका धर्म संबंधी या पूजा संबंधी धन समझलेना

का भी अलट पलट होजाता है तथापि उसको कभी न भी अंत में मनुष्य योनि भी अत्रग्य आकर मिलती है तभी उसके कर्मविपाक भी पहिचाने जाते हैं और भाग्यवशात्तत्कार उनका उपाय भी इसी मानुष्य योनिमें होसकता है अन्यत्र नहीं क्योंकि कर्मों का उत्पन्न करने योग्य धरती एक यही मानुष्य देह होती है कि जैसा पहिले भी इसी मानुष्य देह से पाप कर्म हुयेये ॥ २०६ ॥ २१० ॥ २१२ ॥

(मनुष्योत्तरयोनिष्वपि दुरितचिह्नानिभवन्ति)

परन्ययोपितंहृत्वात्रह्रस्वमपहृत्यच । अरण्येनिर्जलेदेशेभवतिब्रह्मराक्षसः २१२

हीनजातोप्रजायेतपररत्नापहारकः । पतशाकंशिखीहृत्वागन्धान्छुच्छुन्दरीशुभान् २१३

मृपकोधान्यहार्गस्याद्यानमृगःकपिःफलम् । जलंष्टवःपयःकाकोगृहकारीद्युपस्करम् २१४

मथदंशःपलंगृथ्रोगांगोथाऽग्निवकस्तथा । शिवत्विस्त्रंश्वारसन्तुचिह्नोलवणहारकः २१५

अर्थः—पराई लुगाई को हरिके या ब्राह्मण का धन कोई सा सोनेके बिना हरिके रोमे वन में जाके ब्रह्मराक्षस (एक भूत विशेष जो किसीको न देखि परै) होता है कि जहाँ पीने को जलभी नहीं ॥ २१२ ॥ पराये रत्नोंको हरनेवाला हीन जातिमें उत्पन्न होता है—मार जो अनेक पत्तोंका होताहो तिसको हरनेवाला मारहोता है—उत्तर अतर आदि सुगन्धों की वस्तु चुगनेवाला छच्छंदरि होता है कि वेही सुगन्धें उसकी देहसे दुर्गन्धि होकर फैलती हैं ॥ २१३ ॥ धान्योंका हरने वाला मूसा होता है—सवारी को हरने चुराने वाला ऊँटका जन्म पाताहै—फलहरने वाला बानर का जन्म—जलहरने वाला जलचर पक्षियोंका जन्म—दूध हरनेवाला कौवेका जन्म—घर की नासरी चलनी चाको आदि हरनेवाला गृहकारी नामकीडा होताहै कि जोगीली मारी लाकर कुम्पीके समान बरचिनताहै कुम्हारी और लखहरी भी कहाताहै २१४॥ मधुसूत आदि हरने वाला दंग डोंग साछड की योनि पाता है—पलंग्रांस को हरने वाला सिद्ध होता है—गऊ आदि हरनेवाला शोधा गोही का जन्म पाता—अरिनको हरनेवाला वसलेकी योनि में जाताहै—कपडा हरनेवाले प्रिवची अर्थात् उनकी देह में नुपेवको हडोउद्वेहोतेहै—गाँडे आदिकारस हरने वाला कुत्ता होताहै—नसकहरनेवाला भित्ती किंकारवास भीगुरहोताहै जो रातिमें बड़े ऊँचे स्वरसे चिल्लायाकरता ॥२१५ ॥

ढरे आदि वर्णसंकर जातियों में उत्पन्न होता है ((यही मनुका वचन प्रसारा देकर प्राचीन टीकाकारने ऐसा अर्थ किया है कि (हीनजातों हेमकाराख्यायांपक्षिजातौ) अर्थात् हेमकारी नाम से कोई एक पक्षी चिडिया की जाति में उत्पन्न होगा)) परंतु इस व्याख्या को आधुनिक लेखक अपने ध्यान से प्रसारा में नहीं लासका आगे जो कुछ हो सो सही ॥ २१३ ॥

(अभिप्रायविशेषाद्येपिकर्मविपाकाः)

प्रदर्शनार्थमेतनुमयोक्तंस्तेयकर्मणि । द्रव्यप्रकाराहियथातथैवप्राणिजातयः २१६

अर्थः—प्रदर्शन के लिये मैंने भी यह इतना चोरी सधये कहा द्रव्योंके प्रकार जैसे अनंत हैं तैसे प्राणियों की जातें भी=अर्थात्—शरीर या जवल्क्य (जिनके मुख मे थोड़े अक्षरोंवाले थोड़े शब्द निकसेहैं जिसका अर्थ बड़े विस्तार वाला बड़े विज्ञानियों के समझने योग्य होता है) आपही सब शरीरोंको समझातेहैं कि मैंने यह थोड़े ही श्लोकों से प्रदर्शन एक नमूना सात्र समझाने के लिये केवल चोरी सधये कहा (किंतु चोरीके सिद्धाय पाप और भी अनेकहैं) और चोरी में भी केवल यही द्रव्य या येही प्राणी नहीं हैं जो मैंने कहि सुनाये द्यौं कि संसारमें जैसे द्रव्योंके प्रकार भेद असंख्य तैसे प्राणियों की जातें भी अनंत हैं जो सब के सब नहीं सुनाये जासकते हैं तिसके इसी नमूना के अनुसार अपनी बुद्धिसे समझते रहना यद्वा और भी स्मृतिया जो संसार में अनेक हैं तिनमें से जो जो बातें विशेष हैं सो लेते रहना ॥ २१६ ॥

२१६ अधिकोक्तिः—इसी नमूना के अनुसार समझते रहना • इसका दृष्टान्त जैसे काँसा हरनेवाला हंस होना • अथवा इतदंतसे कि जिन कासकी वस्तु जिनने हरता (जिस कासकी हानि किसी को पहुँची हो) उही कासके भंग होजाने वाला लकड़ा उसको प्राप्त होता • वृष्टान्त जैसे घोड़ा हरनेवालेकी दाँस लूनीहोगी या जूना हरनेवाला उसका घोड़ा जाकर वनैरा इत्यादि बहुधा भेद अपार हैं ॥ स्मृतियों में जो जो बातें विशेष हैं सो लेते रहना इसका भा • दृष्टान्त जैसे मंत्रस्मृति में मंत्रनामा मंत्र ने टिरली बातों पर विशेषता दर्शाई है = नयाचाहमव्यः = द्रव्यताकृष्टी मैत्राण्यारो जपडली वेदब्राह्मणसामवेद खलति • तस्वस्तिवावन्सतो सुप्रतिहताः प्रसारी रोचन प्रचांज • धर्मपत्नीपुत्रत्वाऽन्यवप्रवृत्त मवदेदीप्रतिविनेय कुण्डामी नमभसो देवब्राह्मणसचहरः पांडुरोगीन्यासापहारीचक्रात् क्षीपतयेणवीवीथत कैसावतन्यासीदुर्ग रा सियैकाशीनातगुल्मी अभस्य भक्तको जपडसानी द्रावणीपानीनिर्वाणी कृत्कर्मा

वामनः ब्रह्मापहारीपतंगः शय्यापहारीक्षपराकः शंखशुक्तयपहारीकपालीदीपापहारी
 कोशिकःसिद्धशुक्लयो मातापित्रोराक्रोशःखराडकार इति=अर्थात्-शंखमुनिने कहा
 है कि ब्रह्महत्यारा कोढी भी होता है (तात्पर्य इसका यह कि जैसा ब्रह्महा को
 क्षयरोग होना में कहिचुका सोई नियम नहीं किन्तु बिरला कोढी भी होता है ऐसे-
 ही सबके साथ विकल्प भेदोंको समझते रहना) धातुओं का हरनेवाला मराडती
 होता अर्थात् उसकी देहमें चक्रमराडल के आकार कोढ होता है (धातुकाहनेसेसिर्फ
 सोना आदि लोहा पर्यंतही न समझनी किन्तु पारा फिःकरी हरिताल हिंगुल गेरु
 मनमिल आदि भी अनेक जो जो पर्वत की खानिसे उत्पन्न हैं सो सब समझलेनी)
 देवता या ब्राह्मण को खोंटा बचन कहिने वाला गंजा होता है-विषदेने वाला और
 आगि लगानेवाला टोनों भ्रष्टबुद्धि सिडी विक्षिप्त होतेहैं-गुरुओंके बचन को अपनी
 तर्कसे काटने उडानेवाला अपस्मारनाम मृगी रोगसे संयुक्त होता है (कि जिसमिरगी
 के आते समय सब शरीर को सावधानी भूलिजाती है यथार्थ से यही उसका प्रति-
 कार टीकटीक है) गऊको मारनेवाला अन्धा होता है-विवाहिता पत्नी को निपट
 छोड़िके और द्वियों में प्रवृत्ति करनेवाला शब्दवेधी नामसे कोई नीच जन्तु होता है
 जो शब्दही के प्रभाव से वेधा जाता है-कूराडाशी पुरुष अर्थात् पतिके जीवते जिस
 खाने जारके बीजसे जो पुत्र पैदाकिया हो सो कूराड कहाताहै ऐसे किसी कूराड के
 हाथसे जो कोई अन्नभोजन करै या कूराड की छटी दसूटनि आदि में भोजनकरै सो
 कूराडाशी एक प्रकारका पापी होताहै वही जाकर जन्मांतर में भगभक्ष प्राराी होता
 है अर्थात् (भगनाम यहाँ योनि और शुदा का भी समझना तथा भगनाम स्त्री और
 पुरुषों के वीर्यका भी होता है तहां) भगंर आदि दुष्ट रोगों में कीड़े जो परते हैं सो
 भगभक्ष कहाते हैं क्यौंकि सड़ेगले वीर्य को या रक्त मांसको भक्षणा करतेहुये उमी
 जये रहितेहैं ऐसा जन्म उस कूराडाशी को मिलता है-देवता का द्रव्य और ब्राह्मण
 का द्रव्य हरनेवाला पाण्डुरोगी होताहै-न्यास धरोहरिका हरनेवाला काना होता है
 (धरोहरि भी दोभांतिकी होतीहै सकृतीदिवाइके सौंपीहुइ दूसरी सुदीढ की जो चीत्र
 सौंपी जाय या कहिकर कहीं गाडिदीजाय तिनका हरनेवाला न्यासापहारी कहा-
 ता) द्वियों को बेचिबेचिकर या बिकवाइकर दलालीमें जीविका रोजिगार करने-
 वाला निपट नपुंसक होताहै-कौमार अवस्था (मोरह चर्यकेलगभग) वाली भार्या
 को त्यागनेवाला दुर्भग होता है अर्थात् महादग्घिनी कृष्ण कुबुद्धी आदि सब तरह से
 दुर्भागी-सीटा आछी दशुको अकेजादी दिग्वायकर खानेवाला तथा स्वकीय वच्चं

आदिसे छिपाइकर खानेवाला वायगोलाके असाध्य रोगसे अत्यंत पीडित होताहै—
 अभक्ष्य वस्तु जो खाने योग्य नहीं तिनको खानेवाला गराडमाली अर्थात् कंठमालाके
 रोगसे संयुक्त होताहै (इन बातों में ये भेद भी सर्वत्र लगे हुये हैं कि जिसने थोडा ही
 अभक्ष्य खाना खाया हो तिसकारोग दवा करने से दविजायगा पर जिसने अच्छा
 निर्भय होके सदा सेवन कियाहोगा तिसका रोग भी असाध्य होकर सदा बनारहिता
 है) क्षत्री आदि अन्य वर्गों का मनुष्य जो ब्राह्मणी से गमन करनेवाला हो निर्वीजी
 अर्थात् वीर्य से विहीन और वंशसन्तान से विहीन होता है(सर्वत्र केवल यही नियम
 नहीं है कि जन्मांतर में जाकर फलहो किन्तु बहुधा पाप ऐसे तीव्रहोतेहैं कि जिनका
 इसी देहमेंफल होताहै फिरअगले जन्मोंको भी सायजाताहै इसबातका वृत्तांत पहले
 एक सौ तेतीस के प्रलोकमें लिखचुके तहाँ देखो सोसर्वत्र समझते रहिना) क्रूरकर्म
 जो अनेक भाँति के सब जीवों को दुखदेना आदि भयंकर होतेहैं तिनका करनेवाला
 बीना होता है अर्थात् विलंदिया डील जो सबकामों में निकम्मा और किसी की
 निगाह में कुछ नहीं जँचता है—बस्त्रों का हरनेवाला पतंग जाकर होता है अर्थात्
 टीडी ततैया आदि उड़नेवाला जन्तु—पलंग विछीना आदि शय्या सेजकी सामग्रीहरने-
 वाला क्षपराक होता है अर्थात् नंगा निर्लज्ज फिरा करता है कि जिसके घर टों
 ठिकाना कपड़े आदि कुछ भी नहीं—शंख सीपी आदि चीजोंका हरनेवाला कपाली
 होताहै अर्थात् नकली अघोरी जो मनुष्यकी खोपडी लिये फिरता और उनी में मंत्र
 जातिकी जूटखाया करताहै—दीपापहारी जो देवताके म्यानपर या कहीं पथिकोंका
 आशमको प्रकाश किये हुये दीपक उटालेजाने का हमेशाही अभ्यास रखताहै सो
 उल्लू चिडियाका जन्म पाता है जो दिनभर अंधेराभोगै—सियों में द्राह तथा धांग्या
 बड़ी करनेवाला क्षयी रोग से संयुक्त होता है—माता पिताको नाना देने और दूर
 बचनों से घुड़करे वाला खराडकार के घर जन्म पाता है अर्थात् दीवार बनाना या
 धरतीखोदना या लकड़ी पत्थरकाटना आदि नीचसंघेवाले मद्यगृहकार कर्माने
 यह सब शंखजीने कहा॥०॥इसके सिवाय जो कुछ गौतमने विनियता कही सो अत्र
 आगेसे दशति हैं—यथाह गौतम.—अचृतवाशुल्ब न सुहुंहुं म नरनदका ज्योदगीदग
 त्यागी कूत्साक्षीश्लीपदी उच्छिन्नजंघाचरता विदाहविद्वक्तादिर्लक्ष्मि अथरुक्ता
 चिह्नहस्त मातृशोःश्वः स्तुयागानीवानृचरा चतुर्गुणे विगतृचनिर्मर्जना सुप्रहृष्टो
 कथ्याद्वयकःशंठः ईष्यालुर्भगक न्यासापहारीजनपठ नरपहारीकर्मठमोह विप्र
 विक्रयीपुस्यभृगः वेदविक्रयीदीपी वृद्धाजकोसलभ्य न्यासयथाज्ञोवता नान-

संवित्प्रेतीत्रायस.निष्टैकभोजीवन्तरः यतस्ततोऽपुनन्माजारिःकक्षवनदहतात्स्वद्यौतः
 दारुकाचार्योमुखविगन्विः पर्युयितभोजीकृमिः अदत्ताऽऽदायीवलीवर्दः मत्सरीभ्रसरः
 अर्युन्मादीमराडलकृष्टी गूद्राचार्यःचपाकः गौहर्ताक्षर्पः स्नेहापहारीक्षयी अन्नापहारी
 अजीर्णा ज्ञानापहारीमयकः चराडालीपुल्कलीगामी अजगरः प्रव्रजितागमनेमरुपि-
 गात्रः गूद्रागमनेदीर्यक्रीडः सवर्गाऽभिगासीदरिद्रः जलहारीसत्स्यः क्षीरहारीवलाकः
 चार्धुयिकोऽरहीतः अविक्रेयविक्रयीगृध्रः राजमहिथीगामीनपुंसकः राजाक्रोशको
 गदभः गोयामी मराडकःअन्नाध्यायाध्ययनेसृगातः परद्रव्यापहारीपरप्रेष्यःमत्स्यववेग
 भंगामीइत्येतेऽनर्ध्वगवताः इति=अर्थात्—गौतमजी कहिते हैं कि—मिथ्यावादी पुरुष
 गिनविली वी भीमे संयुक्तपैदा होताहै पर जो झूठबोलनेका वारंबार अभ्यास रखताहो
 मोनिष्ट हकला पैदाहोताहै—स्त्रीकात्यागनेवाला जलोदर महारोगसे पीडित होताहै—
 कृतमाक्षी जो जानमाजीमे गवाहीदेतारहा वह प्रलीपद रोगीहोताहै कि जिसकापाव
 नाथीके पैर समानरोगीहो और जाँघपैरभी कटाटूराहोताहै—जिसने किसीके विवाहमें
 भंगलाना हो सोफटे आँट या गालकटा होताहै—अवगोरगी जो घुडकी साथ मारनेको
 नाथ या टंडायादि उगावनेका अभ्यास रखताहो तिसकाहाथ लुंज या कटाहोगा—
 सानाकासारनेवाला आँखों से जंवा मराहोताहै—पुत्रकीबधूगमनकरनेवालेकेआँडोंमें
 गोजाकआदि वातरोग सहाभयंकर होतेहैं—चौराहासे विष्टा मूत्र करने वा फेंकनेवाले
 को मूत्रहाचरुसो चिनिग प्रलेह—कन्यादूय जो कन्यादूयितकरै वा दूयगालगावै सो
 जन्तही से नपुंसक पैदा होताहै—इयलू जो पराई उन्नति आदिको देखि मुनिके न
 गहिसले सो मगद दोनिते साहर होताहै—माता पिता से विवाद रखनेवाला अप-

जो तेलको बहुधा पियाकरता है सुखमें उसके दुर्गंध बहुत आती है जो किसी चीजमें सुहलगावै तो तत्काल उस चीजमें दुर्गंध आने लगती है इसी हेतु उस कीड़े के चाल भी तैलपायी सुखविद्या आदि कहे जाते हैं—पर्युषित भोजी जो पक्वान्नों के सिवाय धरे दासी आदि दुसे अन्नभोजन करै सो दक्षिणा जन्म पाता है—अन्न आदायी जो बिना दई वस्तुको आपही लेले सो वैल होगा—सत्सरी जो अति क्रोधी और ईर्ष्यावाज है सो भैंरा होगा—अशुभनादी जो दत्री हुई अग्नि को उवाडि के छेदि कोचि त्रिगाडे जो संडल कोठी होगा—गूदों को आचार्य बनिके वेदोक्त अनुकरावै जो च गारुजाति होता है कि जंगलों में रहिते हुये कुत्तोंको पकाकर खाते हैं—गजहरनेवाला सांप होगा धी तैल आदि चिकनाई हरनेवाला क्षयीरोगसे असाध्य होता है—अज्ञोंको हरनेवाला संदाग्निरोग से अजीर्णवाञ्छ होगा—ज्ञानापहारी जो किसी को उचित मतप्रपन्नान देना बोधकराना योश्चया सो जानि दूस्त्रिकर न दे तो निपट गुंगा पैदा होगा—चांडाली और पुल्कसी नीच स्त्रियों का रासन करनेवाला अजगर होगा—मंत्र्यातिनी के राय भोग करने से सरुतदेश से पिशाच होगा जहां शंक्षावायु तथा रेत आदिके सिवाय जल फल फूल वृक्ष आदि कुछ न हो—गूद्रीके साथ सैगुन करनेसे बडाकीर होगा अपने बर्राकी स्त्रियाँ रासन करनेसे दरिद्रो होगा—जलहरनेवाला बडासत्स्यसससपघटिग्रान आदि होगा—दूधहरने वाला दधुला होगा—बाधुयिक जो बहुतकडा विअज्ञ किम्पि आदिसे लेकर जीविका करै सो अंगहीन होगा—जिनवस्तुकां का बेचना निपेर्दाक प्रा

बाली जाकर होती है ॥ अतिक्रान्ति पूरी हो चुकी तथापि इसके साथ एकशास्त्रार्थ
रूपी निर्गम्य करना गौरवहा सो जुदा नीचे लिखते हैं ॥ २१६ ॥

गृहामिप्रायानान्निर्गम्यः—दोस्रै नौ (२०६) प्लोकपर ध्यानकरौ वहाँसे लेकर
ब्रह्मर्षिक्रमोंके विपाकसे क्षयीरोग आदि जो अनेक दोषोंके चिह्न होने लिखेगये
को न्यस्तिये कि ब्रह्महत्यारे आदिअनेकपापी लोगोंकोभय सूक्ष्मपरनेसे प्रायश्चित्तों
पर द्वाय पड़ेचे—अन्यथा यह प्रयोजन उलका नहींहै कि क्षयी आदि रोगोंवाले म-
नस्त्रांकां वे प्रायश्चित्त करायेजायँ जो (द्वादशवार्यिकव्रतआदि) बारहवर्थ आदि के
विधान आरे आवेंगे. और यह प्रयोजन भी नहींहै कि उसभांतिके रोगियोंको पापी
सर्शिकके संनर्त छूनाआदि उनसे न कियाजाय—क्योंकि—प्रायश्चित्त के विधान जो
आरे कहेजायँगे सो पापोंका क्षय होनेके निमित्त होंगे किन्तु इसके लिये नहींहै कि
पहिले पापोंका खोनाफल प्राप्तहुआ सोभी नाशहोसके या बिनादेखे बिनाजाने
करके पूर्वजन्मोंके अदृश्य पापहू नागहों—क्योंकि इसपर एक न्यायका दृष्टांतहै कि
जैसे किसी धनयसे छुटाहुआ वागा निशानापर लगानेमध्ये न उमधनुय और धनुयवाले
से काठवाला रखताहै न उसके क्रिये और उपायोंसे छूटे पीछे कोईभी अपेक्षा रख-
ताहै (अर्थात् ठीक निशानाके लक्षणव्य छोडि दिये पीछे जो चाहै कि अब निशाने
पर न लगे या गैर निशाने से छूटे हुयेको चाहै कि यह ठीक निशानेपर लगे इसका
कोई उपाय उसके कावमें नहीं रहता यह तात्पर्य है) और यह भी नहीं कि उससे
प्राप्तहुये खोटे फलका विनाश चाहिकर धनुय का तोड़ना शोचा जाय क्योंकि
कुम्हारके चाक हथेला तरगा आदि (जो न्यायमतसे निमित्तकारण कहाते हैं तिन)
का विनाश करनेसे भी वे करवा और हाँडी आदि नहीं नाग होसकते हैं जो उन्हीं
निमित्त कारणोंके प्रभावसे बनिचुके. और इसीप्रकार नैसर्गिक स्वाभाविक महारोग
जो घरे नख होना आदि जन्महीमें उत्पन्नहोचुके तिनका प्रत्यानयन वापिस होजाना
गर्हितमे वाह्यहै—क्योंकि—बिना देखेहुये पहिले महापापोंका प्रतिकार नरकभोगना
और तिरछी चीनियों से बहूतेरे जन्मलेकर उनके दुःखों को भोगे पीछे सबसे अवीर
यतीफल नियहा सो दुःखद होने आदिमे प्रत्यक्षमेंआया तिसके उत्पन्नहोनेसावमेही
उसकेउत्पन्न कारणेवाले कारणभूत पहिले पापोंका नाशहोजाताहै. कि जैसे लकड़ि-
योंके बेवरीमे सदिक्क बलिकर अग्नि उत्पन्नहोताहै उसके उत्पन्न होतेही लकड़ियां
बलिकर नाग होजातीहै (अर्थात् उल्लकड़ियोंके विनाशके लिये कोई दूसरा उपाय
करना नहूँ) तैसेही जिन बिनादेखे पापोंकाफल प्रत्यक्षमें आचुका तिनका वि-

नाश चाहिदर कोईसा प्रायश्चित्त करना आवश्यक नहीं है और न इसके लिये प्रायश्चित्त है कि लोकाचार परस्पर जाति विरादरों के व्यवहार वतत्रि उन कुनखी आदि रोगियों से होसके क्यौंकि प्रायश्चित्त किये बिना भी अच्छे विवेकी लोग कुनखी दुश्चर्सा आदि रोगियोंसे व्यवहार नहींत्यागतेहैं यह परंपरासे चलान्नाताहै किन्तु अभी अनंतर जैसा कहिचुके कि लकाडियों की तरह पहिले पापोंका नाश होचुका तो फिर विरादरी के व्यवहार में भी क्या दोष रहा जिसके लिये प्रायश्चित्त की जरूरत होय ॥ ० ॥ कदाचित्त यह तर्कना उदाईजाय कि वशिष्ठ मुनिने कुनखी आदि रोगियों को प्रायश्चित्त करना क्यों कहा जैसा यही आगे वचन है=तथाच वशिष्ठः=कुनखीश्यावदंतपूचक्षच्छं द्वाद परात्रं चरेत्=अथत्ति—खोटे नखोंवाला कुनखी और दूरे दाँतोंवाला श्यावदंतभी दारह दिनका छच्छव्रतसाधै=सो यह वशिष्ठजी का कहा नियम एक नैमित्तिक धर्महै उस भाँतिकी कि जैसे क्षामवती आदि यज्ञों का करना केवल शांतिदायक होताहै अथत्ति वशिष्ठका यह वचन कुछ पहिले पापोंके विनाशमध्ये नहींहै न जातीय व्यवहारोंके निमित्तहै ॥ ० ॥ क्षामवती इष्टि उमनाम से देवों में यज्ञ विशेष कहाहै वलिक उसप्रकारके और भी सामान्ययज्ञ जुदे नागोंमें कहेहैं इस्का प्रसंग प्रायश्चित्ततत्त्व में भविष्यत्पुराणाके प्रसारासे दृष्ट्यांतदेकर आया है=यथा=क्षामवत्यादिनाय इत्कर्मसांपृतनापते देवदोषादकराणां जातेदोषकदवकेहोमे नैकेनदोषाणां सर्वेषां क्षयसादिशेदिति भविष्ये—एवं च एकप्रायश्चित्तनाते कदापि अथाय क्षामवतीष्टिः सर्वत्र दृष्ट्यांतः इति प्रायश्चित्ततत्त्वं=अथत्ति—हे राजन् देवयोगानि जिन किर्मा को नित्य नैमित्तिक धर्म कर्मोंके न करने में अनेक दोषों का समूह पैदा होजानेपर क्षामवती आदि कोई एक इष्टिकरनेसे सब दोषोंकी नांति एकसाय जैमे होजातीहै तैसे सब ग्रहोंके दोष एक होससेही क्षयतोते हैं यह आदेशकरे • यह भविष्यत्पुराणा में कहाहै—इसीप्रकार जहां एकही प्रायश्चित्त से अनेक पापोंके क्षयहोनेका प्रसंग हो तहां तहां सर्वत्र क्षामवती इष्टि अदृष्ट्यांतहै यह प्रायश्चित्ततत्त्वमें कहाहै ॥ ० ॥ इसी प्रकार वशिष्ठका वहवचन एक नांतिरूप कल्पना ॥ २५६ ॥

(वशिष्ठस्यैवात्र लारांशः)

होतेहैं कलत्रगा से कुरूप और दरिद्री=तिससे निष्कलत्र हुये बड़े कुल में भोगी जन्मतेहैं जो विद्यासे संपन्न और धनधान्यसे भरेपुरे होतेहैं=अर्थात्-कर्मोंका विपाक जो अतक मृतातेरहे उसी सबका तोड निचोड यहां इकट्ठाकरिके समझातेहैं कि- जैसा जैसा जिनका खोंटाकर्मया तिसकाफल नरकभोग और तिरछी योनिका जन्म भी पाडकर कालकी चालिसे अतिकालमें पापकर्मोंके क्षीणहीन होजानेसे मनुष्य की योनि में भी आकर अवस ओछे पुरुषोंका जन्म लेतेहैं कि जहां दरिद्री धनहीन और कृमव दुष्टचर्म आदिखोंटे चिह्नोंसे कुरूपभी होतेहैं ॥२१७॥ ततः तिसके भी अनतर (उक्तभोगोंकेभोगनेसे) पापोंसे छुटकारा पाये हुये बेही प्रारणी (अपने किसी पूर्व जन्मांतर के संचित पुण्यकर्म जो प्रशंसित पापों के वेगसे रोकमें आगये थे तिनकी आड विद्विजाने और सत्प्रभाव उदय होनेसे) फिर अगले जन्मसे बड़े किसी उत्तम कुलमें भोगी पुरुष होके जन्मलेते हैं कि जहाँ विद्या आदि गुरोंसे संयुक्त और धन धान्यसे भी संपन्न हों=परन्तु=यह नियम सिर्फ उन्हींका समझना जिनका पहिला पुण्य अधिक होतेहुये पापोंके उत्पन्न होनेसे रोक में आगया हो• अन्यथा जिनका पहिला पुण्य भी सचय नहीं केवल पापी हों वे फिरभी अगले जन्मोंमें दरिद्रीआदि मंद पुरुष होतेहैं कि जबतक वीचमें कोईसा सत्कर्म उनसे न बने ॥ २१८ ॥

इतिकर्मविपाकानांसंज्ञानिलक्षणानि ॥

— — * — —

अथ-प्रायश्चित्तनाधिकारिलक्षणविशेषानाम्

द्वैविधःपरिच्छेदः२२ ॥

इस परिच्छेद में उन पुरुषोंके लक्षण कहे जायेंगे कि जो तत्काल प्रायश्चित्त करनेको अधिकारी होतेहैं ॥

दोषी होता है—तिससे उसको इहाँ इसी देहमें पापोंसे शुद्ध हो जानेके लिये प्रायश्चित्त करना चाहिये ऐसे प्रकार से इस मनुष्यका भीतरला आत्मा भी प्रसन्न रहता और संसार भी इसके ऊपर प्रसन्न होता है—अर्थात्—मनुष्योंको लोकरीतिसे और शास्त्रकी आज्ञासे भी नित्य नैमित्तिक धर्म जो कुछ करना उचित है (दृष्टांत जैसे संध्योपासन आदि पंचयज्ञ जो हैं सो नित्य धर्म हैं तथा तीसरां प्रलोकसे आदि लेकर अशुद्धों का स्पर्श हो जाने में स्नान आदि करना कहा सो नैमित्तिक धर्मया या उससे पहले मत्तकोंकी शुद्धि करना जो कहा गया वह भी नैमित्तिक धर्मया या कन्याका विवाह और गौनाभी उचित समयपर कर देना कहा सो भी नैमित्तिक धर्मया इत्यादि और भी समझने) सो विहित कहाता है तिसके न करनेसे मनुष्य दोषी होता है तथैव निन्दितकर्मोंके करनेसे भी दोषी होता है) निन्दितकर्म सब शास्त्रोंमें और लोक में भी प्रतिष्ठ हैं अभद्रय भक्षणा या चोरी या जोरी आदिवुरेकर्म) और इन्द्रियोंको वगमें न राखनेसे भी दोषी होता है ॥ २१६ ॥ तिसकारणसे उस दोषीको तत्काल उसी देहसे कि जिसमें दोष खडा हुआ हो दोषको मिटानेके प्रयोजनसे प्रायश्चित्त करना चाहिये जिससे उसके भीतरले आत्मा की शुद्धिसे प्रसन्नता और संसारी लोग भी प्रसन्न होते हैं ॥ २२० ॥

हुयेकोभी चारतीहै तिसकी योनिमें वांताशी जन्मपाताहै और विद्वान विप्र जो अपने धर्म कर्मसे शिरिजाय सो प्रेतयोनि होताहै अर्थात् प्रेतों में उल्कामुखप्रेत जिनका मुख अग्नि के तुल्य जलता रहता है तिसते अधिक पीडा उनको मिलती है इसी से वह प्रेत भी औरोंकी वसन चादि चादि मंहठंडा करते फिरते हैं तिसकी योनिमें वह विप्र जाताहै जो नित्य और नैमित्तिक धर्म कर्मों का त्याग करदेताहै और क्षत्रीका धर्म यद्यपि उचित सांस खानेका नियत है तथापि जो कोई क्षत्री अशुद्ध जीवों के सांस या सरे जीवों के सांस खानेलागै वह सरने वाद मुर्दा ढकेलने वाली चाराडाल जाति या सरेजीवोंको खानेवाले शिद्ध काक आदि योनि में जन्मता है और गुदा से व्यवहार प्रकाश करनेवाला वैश्य या सिद्धोंसे कपटका व्यवहार फैलानेवाला वैश्य या ब्राह्मण से द्यूत खेलिके धन हरनेवाला वैश्य भी सरने पीछे पीवरद भोगनेवाला कीडा या सलिन प्रेत जाकर होताहै और शूद्र अपने मुख्य धर्म से च्युत हुआ सरने के बाद जाकर विलासक वा विलास नाम एक अशुभजाति विग्रेय (वैश्याओं का भड्का जो प्रसिद्ध है) सो होताहै = ये सनुके सर्व वचन विहित के न करने का दोष जतानेवाले हैं सो कैसे घटन होतेहैं—कहते हैं—जैसे रू क्रिये को खाते हुये ऊँक से जलते मुखवाले दुःख तैसे इसको भी विहित (उपदेग क्रिये हुये शास्त्रोक्त) के न करनेवालेका परुषार्थ सिद्ध न होनेसे सो यह न करने की निन्दा अनृत्यान करने में सच्चि उत्पन्न होनेके लिये ससक्तनी तिसते कुछ विरोध नहीं है अथवा पर्य जन्म के खोटे आचरणोंके भेजेराग आलसआदि जो उचित अनृत्यानके विरोधीहोके वांतागी और उल्कामुख प्रेतत्व आदि दुःख पैदाकराते हैं तिनसे भावही सिद्ध दहग क्रान्त वही भी अभाव का कारणात्व कोई नहीं यह जानना चाहिये क्योंकि यह जानना चाहिये सो साना परन्तु पुंश्चली वंर सर्वभ इतका देखाहुया और भुंदापिय लताय हुये आदि औरोंमें भी उचितका न करना आदि निमित्तोंमें सेकिसी प्रकारके अभावके लिये दोष लगताहै और उसके अभाव में प्रायश्चित्त का विधान किया गया जानने से हुना इससेही पापक्षय होनेके लिये प्रायश्चित्त के विधानमें जन्मान्त में आचरण क्रिये निच्छिन्न सेवन आदि तिससे पैदा पाप अर्थ प्रेरित हुया लिये आचरण आदि तिसके निमित्त प्रायश्चित्तसे दूरीकरना हेतु जलनी अदृष्टि हुया यह न जानना हीय है क्योंकि पुस्तक के प्रयत्न से उपेक्षा नहीं रखने में कार्यमें पापकी क्षति लगत नहीनेसे और न पुंश्चली आदिने इत इतक अर्थ पुस्तकमें पापकी क्षति हे कर्तव्य केवमूक्त दोष नियत से ही न धर्म दोषों का हीन है तिससे प्रायश्चित्त

मे तीन निमित्त जो गिनाये सो गिनना ठीकही है जैसा मनुका वचन यह प्रमाण है—तदाह मनुः= अकृर्वन्विहितं कर्त्तुं निन्दितं च समाचरन् प्रसक्तप्रचेन्द्रियार्थेषु प्रायश्चित्तान्यनेनः=अर्थात्—विहित कर्म कोनकरते हुये और निन्दित कर्मको आचरणा करते हुये और इंद्रिय भोगोंमे लगाहो सोभी नर प्रायश्चित्त होता है=इसमें नरशब्द कहनेसे ब्रह्मा और अनुलोकां के सिवाय प्रतिलोक जातियोंको भी प्रायश्चित्त का अधिकार पहुँचता है क्योंकि साधारण धर्मोंमें अहिंसा आदि जो जो धर्म उनके लिये उचित है तिनका व्यतिक्रम उनसेभी होना संभव है (प्रायश्चित्तका शब्दभी पापोंके क्षयहेतुक जो नैमित्तिक कर्म विग्रेह है तिनमें रहै है) और प्रायश्चित्तका समस्त प्रकार सामान्य भी नैमित्तिक धर्म माना जाता है • तिसमे अर्थवाद के द्वारा किसी पापका क्षय सिद्ध हो जाने परभी प्रायश्चित्त स्वीकार किया जाता है उसन्यायसे कि जैसे पुत्रजन्मके होनेसेही पितरों की मृत्यु हो जाती है तथापि जातेहि कर्म करना स्वीकार किया जाता है कि अतिशय मृत्यु होय परंतु ऐसा नियम होनेपरभी यह तात्पर्य नहीं है कि कोई इस कामना से भी प्रायश्चित्त करे कि उसके करने से मुझसे कोई पाप आगेको नहोने पावे तो यह आशंकु पापों की रोक उससे नहोगी न इस अपेक्षा से प्रायश्चित्त कराना चाहिये क्योंकि यह फिर कानना का वियय ठहर सकता है सो नहीं केवल नैमित्तिक धर्म मरझना चाहिये और करना भी अवश्य चाहिये क्योंकि न करने से यह दोष है—यथा=चरितव्यसतो नित्यं प्रायश्चित्तं विशुद्धये नित्यैर्हिलक्षणीयुक्ता जायंते नित्यं तैर्नरः इत्यक्षरौ दोषः=अर्थात्—पाप करने वाले प्रायश्चित्तों के बिना जा कर नित्य लक्षणीय रहित जंतु भंश होके जन्म पाते हैं इस हेतु से नित्यही कि जब जब कभी पाप होयार्थ नभी उनकी शुद्धि के लिये प्रायश्चित्त करना चाहिये यह बहुत जगदश्वन जानो ॥ २५६ ॥ २७० ॥

अथाशुभप्रायश्चित्तानां श्रेयैर्नरकाभवत्तितेषां नामप्रकाश
 कायं परिच्छेदः त्रयोविंशः २३ ॥

इत परिच्छेद में उन्हीं नरकोंके नाम और स्वरूप भी प्रकार क्रिये जायेंगे जो प्रायश्चित्त न करनेवालोंको होतेहैं और प्रायश्चित्त करनेके फल विशेष भी जो लाभ होतेहैं सो भी इसके बीचमें दर्शावेंगे ॥

(प्रायश्चित्ताकरणोदोपः)

प्रायश्चिनमकुर्वाणाः पापेषु निरतानराः । अपश्चान्तापिनः कष्टान्नरकान्यांतिदारुणान् २२१
 अर्थः—पापों में निरत नर पछितावा न करके प्रायश्चित्त न करते हुये दारुणानरकों को जातेहैं=अर्थात्—शास्त्रके अर्थोंसे विपरीत कर्मों के द्वारा उत्पन्न हुये पापोंमें लगे भये सनुष्य उनपापोंके होजानेका उद्देग सात्तिकर ऐसा पछिताउ भी नकरें कि हमसे यह दुष्कर्म हुच्या और पीछे उसका प्रायश्चित्त भी नकरें तो सब लोग महाभयंकर नरकोंको भोगतेहैं जो सहे नहीं जासक्ते ॥ इसते यह तात्पर्य ठहरा कि धर्मवान् को यही पहिचान है जब उसते कोई पापलाचारी शोखे आदि से होजाय तब तत्काल उसका पछितावा करै और धर्मशास्त्र के विचारसे प्रायश्चित्तका निर्गम्य करायें कि हुससे यह घण्टुना इसका क्या प्रायश्चित्त है सो कर्तं ॥ २२१ ॥

(नरकनामत्वरुपाणि)

भनाहो—२० अक्षिपत्रवन वहनरक्त है कि एकत्रन से तत्रवारकी धारावालेपत्ते टपकते रहते हैं तिसमें यमके दूत उन पापियों को लेजातेहैं जिन्होंने वेदकासार्ग अपना धर्म छोड़ि के पाखराड मतलियाहो वहाँ उनको चसडेकी रस्सियों से पीटते हैं तत्र जहाँ तहाँ भारते हुये ऊपरसे वनके पत्ते गिरगिर सांस काटतेहैं तत्र अत्यंत विजाप करता है—२१ तापन वह नरक है जहाँ नीचे धरती भी तथाये लोहे के सजान तथा रेत ताल भी भाड के समान और ऊपर से करोड़ों सूर्य के सजान घान और लुंकी लपट सी वायुके क्षत्तारे जिसमें गरम रेत बरसताहोताहै—येइकीसनास नलना नात्रसे दर्गाये इनसे उपरालुभी अनेक नरक होतेहैं सो सब सखुस्तलेने ॥ २२३ ॥ २२४ ॥ इनमे वेही अवन लोरा जाते हैं जो सहा पातक या उपपातकों से उत्पन्न दोषों से टुक्रा होकर प्रायश्चित्त नहीं आचरते हैं ॥ २२५ ॥

प्रायश्चित्त करनेसे दौल पातकी नरकनहीं जाता यह विनयेना चागेकहिते है ॥

(प्रायश्चित्तस्यविशेषफलं)

निर्णयक्रियाजाताहै कि (नकृत्र्यादित्येकेनद्विकर्मक्षोयते) विरलेमुनि कहतेहैं न करे
 क्योंकि पापकर्मका नाशही न हुआ तो करनाफूलहै और(कृत्र्यादित्यपरे)करे यह
 अनेक मुनि कहते हैं—क्योंकि (पुनः स्तोमेनेष्वापुनः नवतन्नायांतीतिविजायते) फिर
 भी प्रायश्चित्त के बाद स्तोम नासक यज्ञ साधन करने से उक्त पापी लोग फिर भी
 सवन को आइ पहुँचतेहैं अर्थात् द्विजाती के धर्म से सिताये जासकते हैं कि जिससे
 ज्योतिषोस आदि कर्म करनेके अधिकारी होजातेहैं ऐसा विचार यह सीमांसा से
 जानाया है इसका प्रमाण और भी अयोक्त वचन है कि (ब्राह्मःस्तोमेनेष्ट्वात्रह्य
 चर्य्यचरेदुपनयनत इतिसर्वपाप्मानंतरति प्रगाहत्यांयोऽद्यमेवेनयजतइति) ब्राह्म जो
 पंचायती कर्म धर्मों से गिरगयाही वह स्तोमयज्ञ करके यज्ञोपवीत करके तिससे
 अन्तर फिर ब्रह्मचर्य्यका आचरणा क्रियाकरे तो इन प्रकार से सब पापोंकी तरि
 जाता है जैसे अशुद्ध करने वाला अशाहत्या को पार उतरता है—यह वर्तान केवल
 अर्थवाद मात्र नहीं है किंतु विरले किसी योग्य अधिकागी का विगेषता ठुठने के
 लिसित्तमें रात्रिसत्र नासक न्याय की रीतिसे अर्थवादके फलहीकी कल्पनाहै इससे
 योगीश्वरके सब प्रतीकमें वह पद दीकहै कि प्रायश्चित्तोंसे पाप नागहीताह ॥ अत्र
 तितर्कः—क्योंकी कामनासेकियेपापमें प्रायश्चित्तके अभावनेकेमेवप्रवहारयोग्यहोगा
 औरप्रायश्चित्तका अभाव अगिले वचनोंसे प्रत्यक्ष प्रतीत होताहै—यथा (अर्नाभर्मात्र
 कतेऽपराधेप्रायश्चित्तं इतिदशियुः) तथा (इयंविशुद्धिहविना प्रमाथ्याकानतीति
 कासतोब्राह्मणावधेतिष्ठातिर्नविधीयते इतिजनुः) अर्थात्—विशुद्धि ने यह कदाहै कि
 प्रायश्चित्त उस अपराध से चाहिये जो दिकी प्रतिज्ञा ने न किया हो नैपारा मग
 ने यह कहा कि यह दिशुद्धि उसको कही गई जो ब्राह्मणा को उच्छा निरा सासिं
 पायी हुआहो किन्तु इच्छासे ब्राह्मणा का कर्मकेने निष्ठाति नहींहोती है ॥ असा
 धान-सुनो जैसा तुमने समझा सो नहीं है क्योंकि अतिते वचनों को समझो
 यथा (यःकालतोमहापापं नःकृत्यत्किग्रंचन नतःप्रतिष्ठातिर्ह्यशुभ्रर्गनप्रमादो
 तथा (विहितंयदकालानां कालासतद्विष्णुत्वेत्त अर्थात्— जो कालमें किसीप्रकार
 भी कालना से महापाप करे तिकही विष्ठाति नहीं देली गई है निष्ठाति देनाया व
 कि यातो बहुत जंघे पर्वत से गिरे या जंगल के गहरे वृद्धि परे तो यह सब सा
 सांतिक प्रायश्चित्त देनापडा है नदेंद हूत यह उचन है कि जो प्रायश्चित्त के पाप
 करने वालों को प्रायश्चित्त दान से दहा उचन से दाने या दे दाने दाने दाने
 यह कामना से पाप करने वालों को प्रायश्चित्त दाने दाने दाने दाने दाने दाने दाने

जाना अयुक्त नहीं है यदि प्रायश्चित्त होजाय—और जो अयोक्त मनुका वचनहै कि
 (अक्रासतःकृतेपापे प्रायश्चित्तंविदुर्बुद्धाः कासकारकृतेप्राहुरेकेयुतिनिदर्शनात्)
 बिना चाहे पाप होजाने से परिडतो ने प्रायश्चित्त कहा और कामता से किये हुये
 पाप से भी बिरले लोग युति की आज्ञा से बचते हैं—तो इन वचन का भी प्रतीता-
 त्पर्य है कि इच्छा सहित किये पाप से भी प्रायश्चित्त पहुँचताहै परन्तु यह तात्पर्य
 नहीं है कि पाप भी नाश होसकेगा—फिरभी अपनी ऊपरको पहिलीवार्तापर ध्यान
 करौ कि—गौतम के सिनाय पतनीय कर्मों के दो भेद जो कहिचुके तिनको छोडि
 के उनसे उपरालू जोजो अपतनीय पापकर्म होते हैं कि जिनसे संतारी व्यवहार
 नहीं रुकता हो तिनको यदि इच्छा से भी कियेहो तोभी प्रायश्चित्त करने से पाप
 नाश होजाता है इसका प्रमाण आगे सक्का यह वचन है कि (अक्रासतःकृतपापये
 दाभ्यासेनशुध्यति कासतस्तुक्तसोहात्प्रायश्चित्तेःपृथक्स्वै ।) अपतनीय कर्मों में जो
 बिना चाहे पाप किया हो सो वेदका अभ्यास पाठकाने से गुधि जाताहै कदाचिन्म
 सोह के अंधेरे से इच्छा सहित किया हो सोभी उन पापों के जुदे लिखे प्रायश्चित्त-
 त्तों से दिनाश होता है—फिर भी अपने ऊपरले मुख्य प्रयोजन पर ध्यान करौ कि
 पतनीय कर्मों के दो भेद जो गौतम के वचन से कहिचुके उनका बहुत बड़ा भेद जो
 इच्छा सहित किये पापोंका ठहर चुका—तिसमें सो बिले प्रायश्चित्त से पापों का
 क्षय होता है कि जो जो सरसांतिक प्रायश्चित्त किये जाय त्योंकि वेद व्यास दो-
 जाने से सकारी व्यवहार आदि कीइहा दूसरा पद निरुक्त होय कर्मांडा तिसके पाप
 का नाश ही फल उत्पन्न होता है—तदाह आपस्तंब = नारदविरच्यते इत्याद्यंनियं-
 यते कस्तयत्तुनिर्हरयते=अर्थात् वेदव्यासहो प्रायश्चित्त से फिर लोकमें दीर्घायु
 प्राप्ति उसकी किये नहीं विद्यमान रहती है तिनसे पाप भी नाश जायत ॥ २५६ ॥
 महापातकजादि पापोंके वेद जाते बरतते होरे निम्न परिने एवमेवमेवमेव ।

सहापातक समझ लेना—कदाचित्त कहो कि आपस्तंब के वचन में नहीं है इसका उत्तर योगीश्वर के वचन में सोना भी नहीं है। किंतु सुवर्णा शब्द नक्रशेका भी वाचक है ॥ ब्रह्महत्या आदि पापों को पातक इस हेतु से कहा कि (पातयन्ति इतिपातकाः) मनुष्य को लोक धर्मसे गिराय देतेहैं इसलिये पातक इनका नामहै औरमहा शब्द जोड़ने से उनकी बड़ाई जाहर होती है कि महापातक बहुत बड़े होते हैं तिनका उत्पन्नकर्ता महा पातकी कहता है और उसको सहायता देने आदि कारणों से या बिना कारणके भी जोकोई उसके साथवसे सोभी महापातकी होताहै यह न्याय भी उस भांति से समझना जैसा २६१ दो सौ इकसठ सूत्र प्रलोक में (एभिस्तु स्वमेद्योवैवत्सरंसोपितत्समः) यही अर्थात् आवैगा कि इनके साथ जो कोई एक भालभर निवासमात्र करे सो भी इनके समान दोषीहोजाताहै ॥ ० ॥ सूत्रप्रलोक में तथा शहर जो आयाथा सो और प्रकारसे भी पापके कर्ता लोग अनुग्राहक प्रयोजक आदि होते हैं तिनका भी संग्रह मानलेने के लिये आया था तिनके लक्षणा यहां समझाते हैं कि—अनुग्राहक उसका नामहै जोधनप्राणोंके भयसे भरोहुयेको याबिनाभगेर्हाकिमीको धेरिके मारनेवाले के तर्फ पहुँचावै जिसमे मारनेवाला उसको मारिके अथवा गेसाकरै कि मारनेवालेको बचावै या उसको अपनी रक्षामेंराखै कि जिसमे मारि सकनेकी दृढता उसकी होजाय तो भी अनुग्राहकने सहायताकरी कहाती है। इसी लिये मनुने फौजदारी के व्यवहार में उनको भी मारनेका फलभागी होनाकहाहै जो मारनेवालेके साथ पकहने धरनेवाले आदि ग्राहक हों (ग्राहक अर्थात् अनुग्राहक) यथा=ब्रह्मनासेकक्षापरिणांउर्वेयांशस्त्रधारिणाः यद्यं क्रोधानयेतदप्येतेयत्तका मृदा अर्थात्—बहुत मनुष्य एकही साथ कार्य करनेवाले शस्त्र धारिहों तिनमे यथापि कोई एकही शस्त्र चलाकर घातकरै तहां सब साथवाले भी घातक दाह्ये। अतः अनुग्राहकलक्षणा—इसीप्रकार प्रयोजक आदि सहायकोंको फलभागी होना आपस्तंब ने दर्शायाहै=यथा= प्रयोजयिताऽनुसंताकृतीचेनिघ्नतेनखफलंयुद्धसंभारिणां यो भूयश्चारभतेतस्मिन्कृत्विशेषः=अर्थात् प्रयोजक और अनुसंता और मद्यकतां भी ये तीनोंही जैसा कर्मही तैसे फलके भागीहोतेहैं कि स्वर्गफल सिद्धेदाता कर्मज्ञानिसमें स्वर्गभागी या नरक फलनिर्जनेवाला कर्मही तिसमें नरकभागी और जो कोई मूर्खयावृत्तिके कर्मका आरम्भ कराना या कल्याण है तिसको मूलप्रकार विशेषकरै होना है—इस वचन से जो समझ करे तिनके भी लक्षणा समझाने से कि प्रयोजक या प्रयोजकजान उसकाहै जो अपने प्रयत्न से किया वी तने किसी कार्यसे प्रयत्न

तो भी उस प्रवृत्ति के भंग होजाने के भयसे यद्वा दण्ड आपरनेके भयसे अपने कर्त-
 त्वमें शिथिल ढीला होके राजा आदि स्वामी से या उस प्रकार के औरही किसी
 समर्थ से हिंसाति बाँधने की अनुमति चाहता हो तहां (यह काम तुमने अच्छा
 सोचा बेखटकेकरी) इतनी हिंसाति के बाँधने से उसका ढीलापन जाता रहिता
 हे कि जिस ढीलापन से उस कामके करनेतक हाथ उसका नहीं पहुँचता इसी
 हेतुसे हिंसा कर्म का फल भी हिंसाति बाँधने वाले अनुमता को पहुँचता हे ॥ ० ॥
 इनके सिवाय एक और भी निमित्ती नाम अरावी होताहै अर्थात् यद्यपि साक्षात्कार
 अपने देहसे हत्या नहीं करता है पर हत्या हेनेका निमित्त हेतु वही उत्पन्न करता हे
 इसदंगसे कि ब्राह्मणाका अपमान बड़ी क्रूरतासे करना या घुडकीदेनी ताडनाकरनी
 या धन छीनिलेना आदि प्रकारों से इतना क्रोध पैदा करावै कि वह जिस के ऊपर
 अपघात करिके आपही सरजाय तो यह क्रोधका दिलानेवाला निमित्त कर्त्तानामक
 ब्रह्मघाती उहेरता है और उसी क्रोधके दिलानेद्वारा हिंसाका फलभागो भी होता हे
 क्योंकि उसके सरजाने का हेतुरूप निमित्त इमीने उत्पन्न किया=यथाह विष्णाः-
 आक्रुयस्ताडितोवापिधनेर्वापिप्रयोजितः यमुद्दिश्यत्यजेत्प्राणांस्तमाहूर्ब्रह्मघातकम-
 तथा=ज्ञातिमिवकलत्रार्थसुहृत्सेवार्थमेवच यमुद्दिश्यत्यजेत्प्राणांस्तमाहूर्ब्रह्मघातकम
 =अर्थात्-जब कोईगालीगलीज या खींचाखाँची कियाहुआ या पीटाहुआ या धनों
 से विमुख कियाहुआ जिसके नाम निशानपर अपने प्राणां न्यासिदेवै तिमको ब्रह्म-
 घातक कहितेहैं=तैसेही=कुछजाति कलंक लगने आदि प्रयोजनोंमें या प्रिय मित्रके
 बाबत या स्त्रियों के निमित्त से या प्यारे खेत आदि न्यूनो के निमित्त से भगणा
 उठनेमें जिसके ऊपर नामलेकर अपनेप्राणाखोदेवै तिमको ब्रह्मघातक कहितेहैं इस
 वार्ता में=यह विचार करना आवश्यकहै कि जब किर्त्तिका अपमान गान्ता आदिमें
 कियाजाय या धनसे दुर्भारी कियाजाय तब उजले प्रत्यक्षमें क्रोध न होव्यपरनेमें भी
 यहनहीं कहाजासक्ता है कि क्रोधना कारण कोई नहीं या वह नृवादा मर्यादा
 क्योंकि मनुष्योंके स्वभाव नाना भाँतिसे विचित्र होनेहैं विरजे एतद् अविद्यया या
 कारणसे भी

में आपत्तिरूपी दोष माना जाता है) अत्र संदेह का निवारण कहिते हैं सुतो-शास्त्रोक्त फल कार्यने लगाने वाले प्रयोक्ता को होय इस न्यायमे अविकर्ता स्वामीको पहुँचने योग्य फल उत्पन्न करने के हेतुसे कृप तद्भाग देव मंदिरका बनाना आदि होता है पर दोगा या सिस्तरी आदि कारीगर इन कामोंके बनाने आदिमें स्वर्गफल प्राप्त होने आदिके मालिक नहीं होते क्योंकि स्वर्ग आदि फल पानेकी कामना से काम नहीं किया मजरी मिलने की कामना से करतेहैं वही फल मिलताहै और इनमेंभी यही दूसरा भेदहै कि दोगा और कारीगर आदि भी विराने प्रयुक्त क्रियेहुये अहिंसा के अधिकारी होतेहैं कि किसी प्राणीकी हिंसा नहोने पावे इस दंगमे कामकरना तहाँ जो उन लोगोंमे व्यतिक्रम होजाय किंतु क्रिमी समुप्यके प्राणा श्वोणजाय तो उस व्यतिक्रम करने के दोषमें फलभारीभी होतेहैं यह न्यायभी समाप्तप्रा-ग्व-य-नुसंता पुरुषको प्रयोजकों से भी थोड़ा फल प्रायश्चित्त पहुँचना उचित है क्योंकि प्रयोजक वाले व्यापारसे वह बाहर गिनाजाना है तिसते और इसमे भी कि उसका अनुसंत रूपी कर्म जो है सो उन सबके कामोंसे छोटाहै गव-निमित्तकर्ता जो विष्णु के वचनमे उपरालू ब्रह्मघातक टहिरायये कि यद्यपि हाय्यार मे नहीं सारा परन्तु कुवचन सुनाना आदि कोई उपद्रव रूपी निमित्त पैदा क्रियाहो जिनमे आपही अपने प्राणा उसको त्यागि देने परे-गेसे निमित्तकर्ता भी अपराधी अंक होते त-रंग निमित्त कर्ताओंको अनुसंतासेभी थोड़ा फल प्रायश्चित्त पहुँचनाहै-क्योंकि यद्यपि मानेपर उताहू होने योग्य क्रोधरूपी कारणा उसने उत्पन्न क्रिया परन्तु निपट साधारण के विचार से नहीं उद्यत हुआ था तिसते यह ठँका शिषा घातक टहिरा यही न्याय निश्चित क्रियागया इससे लुहू सदेह योग्य नहींहै-नद्यापि-यार्थ अपनी वाचानतासे वितर्क दाद खडा करता है कि-भला उव ठँके हुये दोनी दुन्या होने का कारणा पहुँचिगया तो फिर उसको सत्ता पिताकीही दुन्या परन्तु प्रेय कानेहें म-म्बन्धद्वारा हत्या करलेका प्रसंग दोष

टहिरै पर उसका नहीं कि जिसका उसने वृथा नाम धरा हो-तयैव-जहां ठीकही गाली गुपतार आदि कोई सा कारणा क्रोध उपजानेवाला उत्पन्न क्रियागयाहो जिस के हेतुसे हुरी आदि अपने अंगमें घुसेड़कर जबतक सरा न हो उसके क्रोधका उपजाने वाला पुरुष धनदेने आदि किसी प्रकारसे प्रसन्नकरि संतुष्ट करिलेवै कि जिससंतुष्टि के प्रभावसे बहुत सनुष्योंके सामने ऊँची आवाजसे पुकारिके सुनाय देताहै कि अब मेरे सरजानेमें भी खोंटावचन सुनानेवाले अमुक सनुष्यका कुछ दोष नहींरहा मैं सं- तुष्टहुआ फिर चाहें वह सरजाय या जीतारहै दोनों दशामें उसको दोष नहीं लगता सो यह दोषका न रहिनाभी वचनके प्रभावसेही जैसा यह आगे विप्राका वचन है =यथाह विप्राः=उद्दिश्यकृपितोहत्वातोयितःआवयेत्पुनः तस्मिन्मृतेनदोषोऽस्तिदयो रुच्छावरोक्षते=अर्थात्-क्रोध करायाहुआ कोई जिसका नामलेकर अपने प्राणोंको विनाश कर संतुष्ट कियाहुआ सबोंको सुनाइ देवै कि मैं सन्तुष्ट हुआ और वह अप- राधीभी अपने अपराधको सुनाइदेवै कि मैंने इसका यह अपमान किया था लेकिन अब अमुक प्रकारसे सन्तुष्ट करदिया तो इनदोनों के ऊँचे स्वरसे सुनाइ देने वाद जो सरजाय तोभी हत्याका चिह्न उसमें नहींरहा ॥ २०९ ॥

इसअधिकोक्तिमें सहापातकियोंके प्रसंगसे ब्रह्मघातार्थक नाथी लोग अनृग्राहक प्रयोजक आदि जो जो कहेंगए तिन सबको बड़ाई छोटाईके अनुसार प्रार्थाग्रचनां ग न्यूनधिक विशेषता जैसी चाहिये सोसोतेता तिन २१३ की आधिकोक्तिमें देवता व्यौरे दार वर्णन करैगे ॥ २२७ ॥

॥ जैसा ऊपरले परिच्छेदसे सहापातकों का मूल्य समझाया तैसा निचले परि- च्छेदसे अतिपातक और पातकोंका स्वरूप कहा जायगा अर्थात् सहापातक सबमें बड़े प्रधानहै अतिपातक उनसे कुछ नीचे केवल उन्नीस बीस को अतः समान माना जातेहै तथा पातक अतिपातकोंसे भी कुछ नीचेहो या बराबर सिर्फ नामहीका भेदहै। इन सबकी बड़ाई छोटाईका विवेक भेद आगे दोऔरयातिस २१३ की आधिकोक्ति में देवता क्योंकि वहांपर अनेक कहियोंके वचन अनृ विवेकांशों तिनमें आठह तक भेद इन्हीं पापोंके होजायेंगे ॥



जो आपही सबलोग जानि जायँ और संसारी व्यवहारसे गिराने लगें तो फिर सबके साथसे शिष्यादिक दीयी न टहिरेंगे अन्यथा जो शिष्यही पहिले प्रकाश करने लगें या व्यवहारसे गिराने लगें तो वह शिष्य ब्रह्म हत्या करनेका पातक माना जाकर उससे प्रायश्चित्त कराया जाय तथा प्रायश्चित्त करने से पहिले व्यवहारों से भी त्याग दिया जाय—अब ऊपरकी बातपर ध्यानकरो कि गुरुका दीय यद्यपि सच्चा है परन्तु जब तक सबलोगोंने नहीं जाना तब तक भूँटेकी बराबर है तो इस दशा में जो शिष्य प्रकाश करै सो भूँटा दीय प्रकाशकिया कहाता है इसी लिये (अनृताभिगं सत) यह नाम धरासया ॥ २२८ ॥

॥ अब आगे सुरापान महापापके समान पाप कहे जायँगे इसके मध्ये यहभी याद राखना कि जो जो पाप समानके नामसे दगिये जातेहैं उन सबका एक मुख्य नाम अति पातक समझते रहिना जो परिच्छेदके प्रारम्भसे लिख चुके हैं ॥

(सुरापानसम पापानि)

ही कृतिवता रूपी निमित्त में बडाई कल्पित करना योग्य है ॥ और छोटी मोटी कु-
तिलता का प्रयोजन आगे उपपातकों में देखना ॥ २२६ ॥

(सुवर्णास्तेयसमपापानि)

अश्वरत्नमनुष्यस्त्रीभूयेनुहरणंतथा । निक्षेपस्यचतर्वेहिनुवर्णस्तेयसंमितम् २३०

अर्थः—घोडा•रत्न•सनुष्य•स्त्री•धरती•हालकी विच्र नी दूदवाली राज•इनकाहर-
ना तथा धरोहरि का हरना यह सब सुवर्ण की चोरीनुल्य सहापातक ह ॥ २३० ॥

२३० अधिकोक्तिः—इस वचन में रत्न शब्द जो है तिसका अर्थ उतरत्नों से नहीं
मिलना जो हीरा लाल आदि जवाहिरान पत्थर की जाति में प्रकृत चौर मोने की
अपेक्षा उतका बहुत सोल होता है इतका यह दृष्टान्त देते हैं कि चौर सागियों से
सोनेद सिया घोडे मूल्यकी होती है तिसकाभी यदि बहुत उत्तम किम्सका होता मोने
से दूना सोल होता है या सुंसा के सोल बराबर (गृहस्यसोनेद सगोस्त मूल्य सुवर्ण
तो द्वैशुरासाहुरेके अन्येतथा दिद्रु मूल्यमूल्यं) तिससे उतरत्नोंकी चोरी तो मुख्यम-
हापापों से समझना जो २२७ प्रलोक वा नी अधिकोक्ति से कहिचूके—और यहां
इसी रत्न शब्दको उस अर्थ में लगाना कि जो वस्तु अपनी जिन्म जातिमें अति उ-
त्तमहो सोई रत्न कहाती है जैसा (अश्वरत्न) कहिने से चोरों में अति उत्तम घोड़ा
समझा जाय—और जो यह अश्व घोडेका नाम कहा तिसके उपलक्षणा में शार्दा भी
समझ लेना बल्कि सवारी सात्र जो उत्तम होतीहो तिनकी भी चोरी सुवर्णकी चोरी
नुल्य ठहिरानी क्योंकि घोडा आदि ये भी सब चीजें नगदीके समानहें यद्यपिशका
कार ने ऐसा अर्थ दियाहै कि घोडा आदि ये सभी चीजें यदि ब्राह्मणकी लगजायें
और धरोहरि जो सुवर्ण से उपराल हरीजाय तभी सुवर्णकी चोरीनुल्य पातक राश-
राना परंतु इससे यह भांति भी होती है ।

की चोरी तुल्य पाप समझना अन्यथा जो येही चीजें बहुत कीमती या अति उत्तम न हों और ब्राह्मण से उपरालू किसी की हों तौ उनको चोरीका पापइससे अगले परिच्छेद में जाकर देखना जहां उपपातक वर्णन होंगे ॥ अब दोसौ इकतीसके प्रलोक में गुरुभार्या भोग महापाप के समान पातक दर्शावेंगे ॥ २३० ॥

(गुरुतल्पसमपापानि)

तखिभार्याकुमारीपुस्वयोनिष्वंत्यजासुच । सगोत्रासुसुतस्त्रीपुगुरुतल्पसमंस्मृतम् २३१ ॥

अर्थः—सखा मित्र होताहै तिसकी पत्नी में•कुमारी कन्याओं में जो उत्तम जाति हों•स्वयोनि अपनी बहिनमें•अंत्यजाचांडालियोंमें•सगोत्रा अपने समान गोत्रवालियोंमें•सुत स्त्री पुत्र बधुओंमें•जो कोई संगम करे तौ यह गुरुतल्पगमनके समान महा पातक होते कहें ॥ २३१ ॥

२३१ अधिकोक्तिः—कुमारीके प्रसंगसे व्यवहारकांडमें यह वचन आया था (स कामाखनुलोमासुनदीयस्त्वन्यथादमः—दूयरातुकरच्छेद उत्तमायांबधस्तथा) कि जो कन्या कामसे पीड़ित होके निज इच्छासेही पुरुषको चाहै और अनुलोम जातिहो अर्थात् पुरुषसे नीचेवर्गा कीहो तौ इस दशामें उस पुरुष का कुछदोष नहीं है परन्तु जहां इमते अन्यथा डीलहोय कि पुरुष नीचा और कन्या उत्तमजाति की या नीची जाति होनेपर भी कन्याने कामपीडा और इच्छा अपनी न उत्पन्न करीहो तहां पुरुष दोषी होकर दराडपादैं=और हाथसे दूयित करनेमें हाथ कटायाजाय जो उत्तमजाती कन्या में रोमा दियाहो तौ उस पुरुषको बधदराड दियाजाय—जिस अपराध में दंड बड़ा होताहै उससे प्रायश्चित्त भी बड़ा कराया जाता है यह तात्पर्य ठहिरा—इन्हीं दो वचनोंके आशयसे विज्ञानेश्वरने सूत्रप्रलोकमें भी उत्तमजाती कन्या ठहिराई ॥०॥ सूत्रप्रलोकमें जिन स्त्रियोंका वङ्गस गुरुतल्पके समान कहा सोभी उसदशामें समझना जहां योनिमें वीर्यभी सींचाहो•अन्यथा जो वीर्यपात होनेसे पहिले लौटियायाहो तौ वत पाप भी गुरुतल्पकी बराबर नहीं द्वािन्तुयोडाही प्रायश्चित्त कराने योग्य ठहिरै वयोक्ति सनुने वीर्यपातकेही लक्षणसे गुरुतल्प के समान पाप ठहिराया है=यथा= नैकेक स्त्र्योतीदुसुतारीअंत्यजातुच्च सख्युःपुदस्यचन्नीयुगुरुतल्पसमंविदुः=अर्थात् वीर्य सींचना अपने बहिनमें•कुमारियों में•चांडालियों में•मित्र की स्त्रियों में•पुत्र का पियमें•गुरुतल्पके समान कहिते हैं ॥ ० ॥ योगेश्वरने सूत्र प्रलोक में सगोत्रा स्त्रियों कहीं पुत्रकी बधुकी बसोवाहोतीहे उनको फिर दुनारा पुत्रबधुके नामसेकहिना

कुछ आवश्यक नहीं था परंतु आशानामकरणसे उसको मध्ये बहुत बड़ा दोष और बहुत बड़ा प्रायश्चित्त दर्शाया है ॥ ० ॥ एकसौ उन्तीस श्लोकसे आदि लेकर ब्रह्म हत्या आदि के समान समझाने वाले जो वचन हैं तिनका यही तात्पर्य है कि गुरुओं का अधि क्षेप आदि जो जो कर्म यहाँ तक बताये गये तिनमें वही ब्रह्महत्या आदि का प्रायश्चित्त कराना समझा जाय तहाँ यह शंका खड़ी होती है कि वेदकी सिंदा आदि जो छोटे छोटे दोष हैं तिनमें ब्रह्महत्या आदि के बहुत बड़े प्रायश्चित्त कराने योग्य नहीं समुक्ति परते हैं—इसका यह समाधान है कि ऐसा उतटा मत्स्यभुक्तौ किंतु बड़े प्रायश्चित्त का उपदेश होनेसे उपदेश की प्रवलासे ही दोषका बड़ा-पन पाया जाता है—क्योंकि वह वचन केवल ब्रह्महत्या आदि प्रायश्चित्त ही के अतिदेश मध्ये नहीं किंतु दोषों की बड़ाई खिद कराने केभी निमित्त है—जिनसे कि जो केवल वही दर्शाना अभीष्ट होता तो जुदा जुदा ऐसे भेदसे न कहिते कि ब्रह्महत्या के समान या गुरु तल्पके समान या सुवर्गस्त्य के समान या सुरापान के समान अर्थात् सभीको सामान्य भाव सेना कहिते कि ये सभी महा पातक हैं ॥ ० ॥ और भी यह विशेषता है कि सम शब्दसे उपदेश किये प्रायश्चित्त भी सर्वत्र कुछ कमती करिके आदेश किये जाते हैं बराबर नहीं—इसपर यह दृष्टान्त है कि जैसा न्याय और व्याकरणाके प्रयोगों में यह नियमरक्त्वागया है कि (लोकगज मनीसंत्रो) इत्यादि शेषे अन्यवाक्यों में भी जिसकी उपमासस कहिके दी जाती है वह प्रधानसे कुछ न्यून होता है जैसे इष्टीवाक्यमें देखो कि यद्यपि मंत्रीको लोकराजके समानकहा तो भी प्रधान लोकराजके साथ मंत्री कहाँ तक बराबरी करसकता है मंत्री और राजाको बराबरी कर्थाप नहीं—इसी प्रकार महापातक और उनसे दूसरे वज्रके पातकोंमें परस्पर तुल्यता हीना अनुचित है तिससे इनमें कुछन्यून अर्थात् यत्कणाद कसकरिके प्रायश्चित्त देना चाहिये (इसका विशेषव्योरा २५२ की अविज्ञोक्तिके प्रारंभमें देखना) यह व्यवस्था हम प्रकारसे निश्चित हुई तो फिर इसके विरोधी वचन शोधने चाहिये कि यादवक्य ने जिनपापोंको ब्रह्महत्याके समान कहा तिनको

समान कर्हिचुके०को इस द्विविधा में यह तात्पर्य है कि चाहें ब्रह्महत्यावाला प्रायश्चित्त कराया जाय या सुरापान वाला प्रायश्चित्त हो दोनोंका विकल्प है कि जैसी दगा देवीजाय तिनके अनुसार दोसेसे कोई एकप्रायश्चित्त किया जाय० इसी प्रकार अन्यवचनभी जहाँ कहीं विरोधी मिलिजायँ तहाँ ऐसी युक्तियोंसे विरोध दूरकर देना बुद्धिमानोंका काम है ॥ इसके सिवाय जो वशिष्ठका यहवचन है कि (शुरोस्तीकनिर्वं धृक्छन्दोद्गादगवात्रं चरित्वासचैलस्नातो गुरुप्रसादात्पूतो भवति) गुरुके सामने भूटे वा अप्रिय वचनोंसे चाग्रह करनेके पापमध्येवारहदिन का कछुव्रत करिके पीछेसचैल स्नान किया हुआ गुरुके चरणोंमें सायाधरने और गुरुको प्रसन्नकरि आशीर्वाद लेने से पवित्र होता है— सो यह छोटा प्रायश्चित्त उसदशापर समझना जब धोखासे बिना जाने सिर्फ एकवार ऐसापापहुआहो ॥ २३१ ॥ इनसे उपरालू अभी और भी गुरुतल्प के समान महापातकहै तिनका अतिदेश अगिले प्रलोकों में दर्शाते हैं ॥

(पुनश्चगुरुस्तल्परुमपापातिदेशः)

पितुःस्वयनारंमातुश्चमातृजनानिस्नुयामपि । मातुःसपत्नीभिर्गिनिमाचार्यतनयांतथा २३२

आचार्यपत्नीरवमुतांगच्छस्तुगुरुतल्पगः । लिंगंछित्वावधस्तत्रसकामायाःस्त्रियाअपि २३३

अर्थः—पिताकी बहिनकी० माताकी बहिनकी० मामीकी० और इन सबकी पुत्र बधुकी० जो नातेसे बहिन होती हो तिसकी० आचार्यकी बेटीकी० तथा आचार्यकी पत्नीकी० अपनी बेटीकी० गमनकरना हुआ (गुरुतल्पग) शरानीगामी टहरताहै तहाँ निपट लिंगेन्द्रो काटिके राजा उसका प्राणवधकरे यहीदण्डरूपी प्रायश्चित्तहै और कुछ नहीं । देवन पुरुग्रही को दंड उसी दगामें जब उसने प्रबलता या धोखा आदि प्रकारोंसे सेसाकिया हो अन्यथा) जहाँ उन स्त्रियोंने भी अपनी काम इच्छा आदि प्रकारोंसे इन पुन्योंकाभोग अंगीकार कियाहो तो उसस्त्रीकाभी बधकियाजाय यही दंड और उही प्रायश्चित्त है ॥ २३२ ॥ २३३ ॥

सास० सासी० पिताकी बहिनुआ० चचाकी स्त्री० मित्रकी स्त्री० शिष्यकी स्त्री बहिन० बहिन
 की भिनेली चाहें वह किसीकी कन्या वा स्त्री हो० पुत्रकी बधू० देटी० आचार्यकी पत्नी० सरोत्रा
 अपने गोत्र भरकोई स्त्री सात्र हो० घरसागता जो कहींसे भरी बहीरक्षा समुक्तिके अपनी
 छायामें कुछ समय बितानेकी ठिकी हो० रानी जो राजकरनेवाले राजाकी भार्या हो
 (किंतु सामान्य क्षत्राणी जातिसात्रन समझनी क्योंकि उसके गमन मध्ये जुदाप्राय-
 श्चित्तकहा गया है) प्रव्रजिता संन्यासिनि आदि साधिनी० वात्री वाय जिसने दूर्वापलाकर
 पाला हो० साध्वी जो किसी व्रतादिक नियमोंकी साधनामें तत्पर हो० वर्योत्तमा ब्राह्मणी०
 इनमें से किसी एकहीको गमन करता हुआ पुरुष गुरुभार्यागामी कहाता है लिंग उस
 का कट्वाय डारने के सिवाय कोई और बंड ऐसा नहीं है जिससे उस के प्राणवचन=
 परन्तु= यह लिंगच्छेद और बधरूपी ब्यड ब्राह्मणा से उपरालू मनुष्यको सूचित हुआ
 है- क्योंकि (नजातु ब्राह्मणां हन्यात्सर्वपापेष्ववस्थित मितितस्य बधनि येषात्) ब्रा-
 ह्मणा को कदापि न सारै सब तरहके पापों पर आरूढ होने में भी यह उसके सारने
 का निषेध सर्व शास्त्र में उपस्थित है तिससे० तथापि उक्त कृत्तमों का प्रायश्चित्त
 यही बधरूपी जो लिख चुके तिसका विरोध दूर करने वाली व्यवस्था आगे उसस्थल
 पर लिखी जायगी जहाँ गुरु तल्पीके प्रायश्चित्त का प्रकरणा आवै (२५६ प्रलोक
 पर देखना) ध्यान करौ कि २२८ दोसौ अष्टादश सूतप्रलोक से लेकर यहां तक छ
 प्रलोकों में गुरुओं का अधिक्षेप आदि पुत्री राजन पर्यंत जो कृत्तम वर्गानहुये सो सब
 सहापातकों का अतिदेश है (सद्यही पतन का हेतु होने में पातक कहे जाते हैं) त-
 दाह यसः= मातृप्वसासात्स्वीदुहिताचपितृप्वसा जानुनानीन्द्रमायध्रुगान्यामद्यः प-
 तेन्नरः= अर्थात्— सातृप्वसा सावली० साताकी सखी भिनेली० देटी० पिताकी बहिन०
 सासी० बहिन० सासु० मनुष्य इनको गमन करिके सद्यन्तदान नी पतित होय अर्थात्
 जाते और लौकिक धर्मकर्मों से रिराया जाय ॥

वचनं=महापातकतुल्यानिपापान्युक्तानियानितुतानिपातकसंज्ञानितन्यूनमुपपातक
 म्=अर्थात्—जो पाप महापातकों के तुल्य या केवल पापही के नाम से दर्शाए होंवे
 सब पातक नाम कहातेहैं उनसे भी जो न्यून हों सो उपपातक जानौं=यह नियम अं
 गिरा के वचन से भी सिद्ध होता है=यथाहंगिराः=पातकेयुसहस्रंस्यान्महत्सुद्विगुणं
 तथा उपपापेत्तृतीयस्यान्नरकंवर्यसंख्यया=अर्थात्—नरकोंकी अवधि जाननेमध्ये वर्षों
 की संख्या से० पातकों में हजार वर्ष नरक भोगें तथा महापातकों में उससे दूना दो
 सत्र वर्ष और उपपापों में चौथा भाग २५० दोसौ पचास वर्ष नरक होता है यह
 नियम जानौं ॥ २३२ ॥ २३३ ॥

उस प्रकारसे चौबीसवें परिच्छेदमें महापातकोंका स्वरूपकहाऔर पचीसवेंपरिच्छेद
 मेंपातकोंकास्वरूपकहाअवअगिलेपरिच्छेदमेंसबसेछोटेउपपातकजुदेनामोंसेदर्शावेंगे॥

अथ उपपातकादीनां स्वल्पपापानां विवेक विषयोऽयं परिच्छेदः षड्विंशः २६ ॥

—*—

इस परिच्छेद में तीसरे दर्जावाले उपपातक और उनसे भी छोटे
 अनुपातक आदि दर्शाए जायेंगे ॥

(गोवधाद्युपपातकानि)

गोदधाद्रात्यतास्नेयमृणानांचानपाक्रिया । अनाहिताग्निताऽपण्यविक्रयःपरिवेदनम् २३४

देव ऋषिपितरोंके ऋणा उद्धारन करने—अनाहिताग्नित्व अर्थात् जिसके कुलमें अग्नि स्थापनका अधिकारहै सो अग्निको नहीं स्थापै तो यह भी उपपातकहै—अपराध जो नहीं ब्रेचने योग्य चीजें कि जिनका नियंत्र छत्तीसवें मूलपूलोकसे आदि लेकर हो-
चुका तिनको ब्रेचै तो यह उपपातक होताहै—परिवेदनद्वय उसकानामहै कि जेठेभाई का विवाह न होकर पहिले छोटेभाईका विवाह कियाजाय और जेठेभाईके अग्नि का स्थापन न होतेहुये छोटाभाई अग्नि स्थापनकरै तो छोटेको परिवेदन पापहोता है—ये सब एक एक उपपातक होतेहैं ॥ २३४ ॥

२३४ अधि शोक्तिः—मूलपूलोक में यहकहाया कि स्थापनाका अधिकार कुलमें होते हुये जो अव्याधान को न राखै सो उपपातकी होताहै—इसमें एक तर्कना है क्यों जो ज्योतिषोस आदि यज्ञोंकी अनुज्ञा देनेवाली युतियां अपने अंगभूत अग्नि की सिद्धि होने के लिये अग्निका आधान स्थापन अवश्यही प्रयुक्तकर वातीरहित-
तीहैं यहवात सीमांसा में प्रसिद्ध है—तो इसनियममें यह वातभी स्वतः पाईजाती है कि जिसके कुल में अग्निर्थासे प्रयोजनहोगा तिसको उनके उपायरूपी आधान में स्वतः प्रवृत्ति होतीरहेगी जैसे हरतरहकेधन संचय करनेवालों में जिनको नाजलेनेकी रजहै वह नाजहीपर उतारूहोगा•और जिसके कुलमें अग्निर्थासे प्रयोजन कछनहीं है तिसकी प्रवृत्ति उसके आधानपर न होगी•तो फिर कैसे अनाहिताग्नित्वकाद्वय ठहिरायागया= समाधान—सुनो इसी मूलपूलोकरूपी वचनमें(कि जिसमें उपपातना दशनिद्वारा आधानकी आवश्यकता ठहिराईगई तिसमें नित्ययुतियांभी और अधि-
कारवाला पुत्र्य भी अविशेषता से आधानके प्रयोजक होते हैं अर्थात् स्थापनाका प्रवृत्ति करवाते और करते भी रहिते हैं यही स्मृतियोंके ब्रह्मदेवानों का अभिप्राय पायाजाताहै ॥ २३४ ॥

दन्के नामसे उपपातक होता है सो २३४ केषुलोक में कहिचुके) वार्धुष्य कर्म जो उस प्रकारसे व्याजवृद्धि की जीविका करै जिसका नियेध है—लवणा क्रिया अर्थात् खानिसे नसक सोरा आदि अपने हाथसे बनाना एक उपपातकहै ॥ २३५ ॥ स्त्रीका वध करना चाहें ब्राह्मणी आदि कोईजातिहो (परंतु रजस्वला आदि आवेयी स्त्रियों को छोड़िके यह नियम समझना आवेयीके ठीकलक्षणा दोसौ इक्यावन की अधिकोक्तिमें देखना) शूद्रका वधकरना एक उपपातकहै—वैश्य या क्षत्री जो किसी यज्ञ आदि दीक्षा से दीक्षित नहीं तिनका वध करना उपपातक है—निंदित अर्थसे उपजीवन करना अर्थात् जीविका करनेका जो प्रकार राजाने नहीं स्थापित किया और लोकमें भी निंदितहो तिसके द्वारा—नास्तिक्य उसका नामहै कि हठपूर्वक ऐसा कहे कि परलोक आदि भंडी कल्पना है—व्रत का लोप करना दृष्टांत जैसे ब्रह्म चारी होकर स्त्रीसे प्रसंगकरे—सुतानां विक्रय अर्थात् लडका लडकी आदि संतान बेचना—ये सभी बातें एक एक उपपातक हैं ॥ २३५ ॥ २३६ ॥

(अन्यानिच उपपातकानि)

धान्यकुष्पपशुस्तयमयाज्यानांचयाजनम् । पितृमातृसुतत्यागस्तडागारामविक्रयः २३७
कन्यानंदृषणंचैवपगिर्विक्रययाजनम् । कन्याप्रदानंतस्यैवकौटिल्यं व्रतलोपनम् २३८

अर्थः—धान्य सब तरह के नाज की चोरी—कुष्प सीसा राँग पीतल आदि छोटी धानुओं की चोरी—उन पशुओं की चोरी जो दोसौ तीस २३० मूल क में लिखे हुये कीमती घोड़ा हाथी आदि या हाल की बियानी दूध देती उत्तम गऊ से उपरालू गऊ आदि हर किस्मके पशु जो दसकोसत समझे जाते हैं—अयाज्य शूद्र आदिया द्रात्य दोष वाले त्रैवरिक्त भी हो अथवा जाति या कर्मों से दूषितहों तिनकोयज्ञ करावे अर्थात् उनको पुरोहिताई पाधाई करै तो यह भी उपपातक है—अपतिनाता पिता या पुत्रों को पालनाने न्यारे अर्थात् घरसे निकालिदेवे तो यह उपपातक है यज्ञान वारीचा धर्मशाला आदि जो पुराय के निमित्त से बनाये गये यज्ञ यज्ञका नाम रहिते के दिये बनाये हों तिनका बेचिदेना ॥ २३७ ॥

कन्या को दूषित करना अथवा भोग दिनाही अंगुरी आदि से योनि विगाना या ओरही किसी प्रकार से छेद दाड करना उपपातक है और यह भी कि यदि किसी कुमारी कन्या को ऐसा कोई दोष लगावे जिससे विवाह कठिजाय (कुमारी से कसोरा कन्या इस वाप से बड़ागतकहे किमको २३९ श्लोक से गुरुनल्पक्रममान

काहिचुके हैं)—परि विन्दक पुरुष को विवाह कर्म आदि कोई सा यजन कराना (परिविन्दक उसको समझता जो जेठे पुत्रको विवाहे विना छोटेका विवाह करै या जेठे पुत्री विवाहे विना लघुरी का विवाह करै तिनको विवाह करानेवाला परिसदत भी उपपातकी होता है)—परिविन्दक पुरुष को कन्यादान करिके देना भी उपपातक है—कौटिल्य कुटिलता के लक्षणा पहिले दोसौ उक्तोस सूत्र प्रलोक में लिखि चुके तहां देखो परंतु वहांपर बहुत बड़ी कुटिलता का प्रयोजन या कि जिसका न्याय निर्णय उसी की अधिकोक्ति में बधायिा गया किंतु यहां छोटी सीटी कुटिलता करै सो उपपातक है बल्कि इस प्रकार से भी भेद किया गया है कि वहांपर अपने गुरु के साथ कुटिलता करने का तात्पर्य या यहां जो औरों के साथ कुटिलता करै सो उपपातक है छोटी बड़ी से कुछ भेद नहीं पर विवेकी पुरुष दोनों प्रयोजनके सीतान से न्याय करै—व्रत का लोप करना उपपातक है यद्यपि दोसौ छत्तीस सूत्रप्रलोक में व्रत लोप करना काहिचुके परंतु यहां पर अशिशु और अप्रतिशिद्ध सामान्य छोटे व्रतोंका प्रयोजन है दृष्टान्त जैसे श्रीहरि चरणां के दर्शनकिये विना तांबूलआदि कुछ नहीं खाताहूँ यह मेरा नियम है इसको बहुत दिन माधने पीछे छोडि देना आदिम-सम्भने किंतु २३६ के प्रलोक में स्नातक ब्रह्मचारी आदिके व्रतभंग होने कहेये यहां स्नातक व्रतवाले स्वल्प नियमों की भी पहुँच नहीं जानी गइने क्योंकि स्नातकों के छोटे व्रतलोप होजाने सधये मनुने छोटा प्रायश्चित्त ही जुदा कदा है कि एक दिन भोजन का त्याग राखै यही प्रायश्चित्त है ॥ २३८ ॥

यातौ किसी औरही आग्रस का सहारा लेवै या गीघ्र अपना विवाह करिके गृहस्थ का आग्रस साधै परन्तु यह नियम केवल उसके लिये है कि जो विवाह करने का अधिकारी सच्चाहोय अर्थात् पुत्र लाभकी कामना शेषहोय या रति भोग की इच्छा शेषहोय अथवा गृहस्थवाले धर्मोंका आराधन करना चाहे किंतु इनमेसे कोई बात जिस के चित्तमें नहो अर्थात् जिसके पुत्रपौत्र आदि सौजुबहों या इनके सौजुद न होने पर भी शरीरसे बूढा शिथिल होय या शिथिलताके न होनेपर भी कामभोग की इच्छा शेष न होय अथवा किसी विगोय परसधर्मरूपीकार्यसे संलग्नहोनेसेगृहस्थकाआडंबर नहींरोपाचाहै तौ वहपुस्तकविवाहकरनेका अधिकारीनहींहै जोअधिकारीनहीं उसको उपपातकशी न है॥ तथाचविज्ञानेचराचार्यः—अगृहीताग्रसत्त्वंसत्यधिकारे॥ २४१ ॥

(अन्यानिच उपपातकानि)

असच्छास्त्राधिगमनमाकरेप्वधिकारिता । भार्याविक्रयश्चेरामेकैकमुपपातकम् २४२

अर्थः—असत् शास्त्रोंका विचारनाअभ्यासकरना(असत्शास्त्र उनजानामहें जो चा-
दािक आदि नास्तिक जनोंके शास्त्र हैं जिन से विरोधीरीते होती हैं) आकार खानि जो लुब्धा आदि सब चीजों के उत्पत्तिस्थान कहाने हैं तिनमें राजकी आज्ञासे देका आदि अधिकार करना—भार्या का देदना—उन नवमें कि जो जो कर्म कर्म गोनध आदि दोसो चौंतीस प्रलोक से लेकर यहां तक वर्तान क्रिये सो गक गका चुं उप-
पातक हैं ॥ २४२ ॥

वारिगाज्य और गड़की सेवा करना ये सब अपात्रीकरणा पाप होतेहैं जैसे असत्य बो-
 लनेकी भांति—हासि कीट पक्षी इनकी हत्या और मद्यानुगत भोजन अर्थात् जो चीजें
 बनाने वा परम्पर मिलानेसे मद्यके अनुरूप होजातीहों तिनका भोजन करना फलकी
 चोरी ईवन की चोरी फूलोंकी चोरी और धीरज राखनेके स्थलपर धैर्य छोड़िदेना ये
 सब मलावह नामके पाप कहातेहैं (इनके सिवाय जो पापरूपी निमित्तकोई उत्पन्न
 हों सो प्रकीर्णक कहातेहैं) ॥ ० ॥ वृहद्विष्णुने सभी प्रायश्चित्तों के निमित्त रूपी
 पाप यथाक्रमसे (उत्तरोत्तर) पीछे पीछे छोटे करिके झूदे संज्ञा भेदोंसे दर्शाएहैं जोसब
 चौदह भेदहोते हैं=तथाच वृहद्विष्णुः=ब्रह्महत्यासुरापानं ब्राह्मणसुवर्णापहरणं शरणा
 रामनसिति महापातकानि तत्संयोगश्च—मातृगमनंभगिनीगमनं दुहितृगमनंस्नुयाग
 सन मित्यतिपातकानि—शरणागतस्यवधोवैश्यस्यच रजस्वलायाश्चांतर्वत्स्याश्चा
 धिरोत्रायाश्चाविजातस्यगर्भस्य शरणागतस्यचघातनं ब्रह्महत्यासमानि—कौटसाहय
 मुहह्वय इत्येतासुरापानसमो—ब्राह्मणस्यभूमिहरणं सुवर्णास्तेयसमं—पितृव्यमातामह
 मातृनृपपत्न्याभिरगमनंगुरुवारगमनसमं—पितृत्वस्य मातृत्वस्य गमनं श्रोत्रियत्वंगुरु
 णाध्य त्रिपत्न्याभिरगमनंचातिपातकसमं—स्वसुः सख्याः सगोश्याया उत्तमवर्णाधार
 स्वलाया शरणागतायाः प्रव्रजितायानिक्षिप्तायाश्च गमनमित्येतान्यनुपातकानि—अ
 नृत्यचनंसमुत्कर्ये राजगामिच पेशुन्यंगुरोश्चालीकनिर्वन्धो वेदिनिंदाश्चधीतस्यत्यागो
 ऽग्निपतसाहस्रद्वाराणांच अभोऽयानांभस्त्राणां परस्वापहरणं परदारानुगमनमयाज्या
 नांचयाजनं ब्राह्मणाभृतकाव्यापनं भृतादध्ययनादानं सर्वाकरेष्वधिकारो महायंत्रप्र
 र्त्तनंद्रुमगुल्मवल्लीलतौयधीनां हिंसयाजीवनसभिचार मूलकर्मसुच प्रवृत्तिरात्मार्थ क्रि
 याभोऽनाहितारिन्ता देवार्थं पितृणां नृणांस्यानपाक्रिया असच्छास्त्राधिगमनं ना
 स्तिवाता कृगीहवता मद्यप स्त्री निषेधरामित्युपपातकानि—ब्राह्मणस्यरजःकरणा
 द्येयमद्ययोर्घातिजै ह्ययंपगुपुंसिच नैयुनाचरणा मित्येतानिजातिधन्वशकगणि—ग्राह्या
 रायपगनांहिसनं संकरीकरणां—निदिनेभ्योऽधनादानं वारिगाज्यं कृसीदजीवनसमत्यभा
 यणा भृद्रसेवतान्यपात्रीकरणाति—पक्षिणांजलचराणांचघातनं हासिकीटघातनं म
 द्यानुगतभोजनंमलावहानि—यद्वृत्ततत्प्रकीर्णकं=अर्थात्—विष्णुशृनि की दही स्मृति
 में कर्म में सभी पापों के बड़े छोटे इतने भेद किये गए हैं कि—ब्राह्मण की हत्या •
 नृपार्थीण • ब्राह्मण का सोना हरना • गुरु की दारा भोग करना • ये महापा-
 तक हैं ९ और इनकी मिलाने वाला भी महापातकी होता है—माता या भगिनी या
 देवी या पुत्रकी दण्ड गमन करना दण्ड अतिपातक है अर्थात् महापातकों में कृच्छनीचंश्

यज्ञ में लगे हुये क्षत्रीका वध करना तथा वैश्यभी यज्ञ में लगे हुये का वध करना या रजस्वला नारीका वध करना या गर्भवती का वध करना या अत्रिसुनि के गोत्र वाली किसी प्रकार की स्त्रीका वध करना या बिनाजाने गर्भका वध करना या अपने शरणागत का घात करना ये सभी पाप ब्रह्महत्या के समान हैं ३ जालसाजी की गवाही या मित्र का वध करना ये दोनों पाप सुरापान के समान हैं ४ ब्राह्मण की धरती हरना मुदर्या की चोरी के समान है ५ चचा या नाना या सासा या राजा इनकी पत्नी से अभिगम करना गुरुदार गसन महापाप के समान है ६ पिताकी बहिन या माता की बहिन से गसन करना तथा श्रोत्रिय जो वेद की किसी शाखा के पढने में तत्पर हो रहा यद्वा पढिचुके पीछे उसके अनुसार यदुक्तमें में निरत ब्राह्मणहो या ऋत्विक् या गुरु जो अपने मुख्य गुरु से उपरालू कोई सामान्य गुरुमाना हो या उपाध्याय या मित्र इनमें किसीकी पत्नी से अभिगम करना ये अति पातक के समान हैं ७ बहिन की सखी या अपनी सगोत्रा किसी स्त्री से या अपना से ऊँचेदरगात्राली स्त्री से या रजस्वला चाहें निज अपनीही भार्या हो तिससे या शरणामें आई टिकी हुई किसी स्त्रीसे या संन्यासिनि आदि साधिनी से या किसीने कोई स्त्री अपने धरोहर की रीति से सौंपी तिसके साथ भी गसन करना ये सब इतने अनुपातक हैं ८ उत्कर्ष के स्थान में असत्य बोलना (उत्कर्ष के स्थान यज्ञ मंडप राजद्वार तीर्थ ग्यान सभा पंचायत आदि अनेक हैं सो समझ लेने) वह पिगूनता जो राज तक पहुँचें गुरुके साथ प्रतिज्ञा पूर्व हठकरना • वेदकी निंदा करना • पढ़ेहुये वेदका झोड़ि देना • अग्नि की सेवा झोड़ि देनी • पिता या माता या पुत्र या भार्या इनको झोड़ि देना • नखाने योरथ चीजों को खाना • पराया धन हरना अर्थात् चोरी करना और अपने भागी या साझी आदि का उचित भाग न देना • पराई भार्याका भोग • अयाश्रयोंको

त्व आदि मंत्र यंत्र होते हैं तिनमें प्रवृत्तिकरना भी पाप है। अपने आत्माके निमित्तमे
 र्नेडेआदि क्रियाका आरम्भ। अधिकारके होतेहुये अग्निको नहीं स्थापन करना।
 देवता या ऋषियों वा पितरों का ऋणा नहीं शोधना। अस्त शास्त्र नास्तिकजनों के
 बनाये हुये तिनको पहना विचारना। कुशीलवता अर्थात् कुशील खोंटे स्वभाव के
 द्वारा नष्ट तर्क आदि वाली जीविकावृत्ति धारणा करनी मद्यपीनेवाली स्त्रीसंभोग
 करना ये सब उपपातक हैं ९ ब्राह्मण के देहमें घाव करना या चोटलगाना। नसंधने
 योग्य सैली चीज औ मद्य इतका संघना। जैह्म्य कुटिलता। पशु में या पुरुष में सै-
 यन करना ये सब इतने पाप जातिभ्रंशकर कहाते हैं १० गाँवके या वनके पशुओं
 को हिंसा करनी यह संकरीकरणा पाप कहाता है ११ निंदित कसाई। चंडालआदि
 मनुष्यों से और निंदित प्रकारों से धन लेना या चोर आदि दुष्टों से धन लेना और
 उनके साथ बर्णाडय करना। व्याजसे जीविका करनी। असत्य बोलना। शूद्रकी सेवा
 करनी ये सब इतने पाप अपात्री करणा कहाते हैं १२ पक्षियों वा जलचर जीवों
 का घात करना तथा कृमि कीट इन जीवों का घातकरना। मद्यानुगत भोजन करना
 जो चीजे क्रिया रीतिसे बनाने या परस्पर मिलाने से मद्यके अनुरूप होजाती हों ये
 सब इतने पाप सत्तावह कहाते हैं अर्थात् सलके धारणा करानेवाले १३ जोकुछ इस
 पाद में न बताये और वही उपरालु शूराड़ा आदि परे ती प्रकीर्णक उलका नासकहा
 जाता है १४ ॥ ० ॥ कात्यायन ने सब पापों के मुख्य पांचही भेद कहे उनका भी
 वर्गीना इसजगह पर आवश्यक है कि ऊँच नीच का भेद ससभ्जाजाय=यथाह का-
 त्यायन = महापाप१ अतिपाप२ पातक३ प्रासंगिक ४ उपपाप५ यह पांच भेदोंसे उलका

किं यद्यपि पातकोंमें तत्कालही पातित्य उभ तरहसे नहीं होता है कि जैसे महापातक और उनके समानपातकोंमें सद्यही पतन हो जाता है तथापि बारंबार अभ्यासकी अपेक्षा से उनमें भी पातित्य (गिराइ देने) का हेतु होना कुछ विरुद्ध नहीं है क्योंकि उमी पूर्वोक्त गौतमके वचनमें (निन्दितकर्मस्थिती) निन्दितकर्मका अभ्यास बारम्बार करने वालाभी गिनती हुआ है तिससे यह समाधान क्रिया करते हैं सो ऐसा नहीं माना जा सकता है क्योंकि अभ्यासका भी निरूपण उसकी तौलके द्वारा करना उचित है अथवा जो तौलकी विशेषता बिना ऐसीही साधारण अंगीकार क्रिया जाय कि एकवारके सिवाय जब दोवार क्रिया तौभी अभ्यास है तैसा सौवार क्रिया तौभी अभ्यास है तौ इस अंगीकारमें यह दोष आता है कि जैसे (दिनमें सोना या राजका बंधकरना दोनों बराबर होते हैं) जो दिनमें दोवार सोया और जिसने सौवारमें सौ गौमें मारीं तिनदोनों का एकहीसा बराबर पातित्य होवे ॥ समाधान इसका मुनी-धर्मशास्त्रमें बहुधाकरके अर्थवाद खडा करनेसे भी एक प्रकारका पाप लगता मृतेहं (जैसा आचारकांडमें मनु के दो वचनहीं सो देखौ कि० १ श्रुतिस्मृती उभेनेत्रे इत्यादि और २ ते उभेयोऽवमन्येत हेतुशास्त्राग्रयात् इत्यादि) अर्थात् नास्तिकता दोष लगता है—और—उस निन्दितकर्म रूपी छोटे दर्जाके पापमें जो बड़ा प्रायश्चित्त पहुँचने का तर्क तुमने उठाया तिसका यह तात्पर्य है कि बारबार अभ्यास करते हुये जबतक महापातकमे तुल्यता होजाय उतना अभ्यास पातित्य (गिराइ देने) का हेतु ठहिरता है तभी उसको बड़े प्रायश्चित्त का अधिकार पाया जाता है अन्यथा छोटे प्रायश्चित्त का अधिकार—और दिनमें सोना आदि जो छोटे उपपातक हैं कि जिनसे केवल क्षतीवही पुण्य पराक्रमकी क्षति होती है किसी दूसरेकी कुछ हानि या पीडा होती नहीं मन्भव में छोटे उपपातकों में सहस्रबारभी अभ्यास करनेसे महापातकमे तुल्यता नहीं होती है उभेनु उनमें पातित्य नहीं होता है—और विरले उपपातक आदि देखे हैं कि उनमें दोही चार या दस पांच बारके अभ्यास होनेसे पातित्य लगिजाता है—इसका दृष्टान्त जैसे दूने मानार्पण या नवान पुत्र पुत्री या सुशीला भार्या धर्म निकामिदैन उपपातक कहलयात यद्यपि वचन प्रभावसे तौ यही अर्थ है कि निकामिदैनैव सत्कालही पातक मया तौ भी महापातकमे तुल्यता होनेकी अपेक्षासे यह तात्पर्य है कि सदा दो दिनके तिसके निकामिदैनैवमायते पातित्य नहीं लगि सन्नाह उपपातकमे गिनती रहिगया है यन्तु जो बारम्बार सदा सर्वदा ऐसा क्रियाकरे या दो दिनके तिसके निकामिदैनैव तौ यद्य भी परापातक होजायगा कदाचित् निन्दितकर्म सिद्ध होवे कि तिस मृतेहं पाप न आने

दे तो यह भी महापातक तुल्य होजायगा इत्यादि प्रकारों से अभ्यास का निरूपण क्रियाजाता है और यही उसकी तौल है। तिससे वही नियम ठीक है कि उपपातक आदि छोटे दर्जाके पापोंमें अभ्यासकी अपेक्षासे पतन [गिरजाने] का हेतु पैदा होता है ॥ २४२ ॥ ध्यान करना चाहिये कि योगीश्वरने पापोंके मुख्य तीनही भेद कहे जिनके तीन परिच्छेद जुटे किये गये ऐसेही कात्यायन ने पांच भेद कहे वृहद्विष्णुने उन्हींका विस्तार करिके चौदह भेद कहे परंतु तात्पर्य सबका एक है प्रायश्चित्त के विचारनेमें मुख्य योगीश्वरका बांवा क्रम देखना चाहिये कदाचित्त उसमें सन्देह या भ्रमवादा वाकी रहजाय तब अधिकोक्ति में चौदह प्रकारों का मीलान करिके संदेह मिटाडलेना विवेकियोंका काम है क्योंकि जिन ऋषीश्वरोंने बहुतसेना भेद किये सो केवल उसलिये हैं कि पापोंकी बड़ाई छोटाई शीघ्र समुझीजाय ॥ २४२ ॥

यहांतक व्यवहार बतविकी सुगमताके लिये प्रायश्चित्तों के निमित्तरूपी पापों को संज्ञा भेद से वर्णन करचुके अब आगे उनके नैमित्तिक रूपी प्रायश्चित्त कहे जायेंगे तिनमें ये सब संज्ञा काम आवैगी ॥

अथ ब्रह्महत्यायाः प्रायश्चित्तविवेकानां प्रदर्शकोऽयं परिच्छेदः सप्तविंशः २७

—*—

इसपरिच्छेदमें ब्रह्महत्यारूपी महापापके प्रायश्चित्तवर्णन हेांगे और ब्रह्महत्याके अनेक भेद हैं कि गच्छही ब्राह्मण मारा या अनेक मारे या धोखासे मारा या जानिवृत्ति के मारा या बंदिके मारा और प्रथम मारा कर्त्तवार पहिले भी ब्रह्महत्याकरचुका इत्यादि कर्ताओं के भेदसे भी नियम किये जायेंगे ॥

(ब्रह्महत्यायां प्रायश्चित्तस्य द्वादशवार्यिकादि नियमाः)

लाठी आदिके सिरेपर बाँधिके ध्वजा बनानीकही तिसकोभी ऊँची किये बगल में द्वायेरहै— यह खोपडी उसी ब्राह्मणाकी लेनी कही जिसको मारिके हत्याराबनाहो (कृत्वाश्वशिशोर्ध्वजसितिमनुः) मनुने यहकहाहै कि मुर्दाके शिरकी ध्वजाबनाकर लेजाय= ब्राह्मणोब्राह्मणांघातयित्वात्स्यैर्वाशिरः कपालमादायतीर्थान्यनुसंचरेदिति शातातपः=अर्थात्—ब्राह्मणा ब्राह्मणाकोमारिके उसीकेसूङकाखपरां हाथलेकर तीर्थों में विचरै यह शातातपनेकहा—परन्तु जो उसका शिर न मिलै तो औरही किसी मरे ब्राह्मणाका लेआवै उसकी ध्वजाबनावै (खड्वांगकपालपाशिरितिगौतमोपि) गौतमने भी कहाहै कि खड्वांग और कपाल हाथमें हो—खड्वांगनाम यद्यपि खाटकेपात्रे पट्टी आदि किसी एक आंकाहै परंतु यहाँ केवल ध्वजाका प्रयोजन है तिससे गौतम ने यह तात्पर्य दशाया है कि खाटकी पाटी में खोपडी बाँधिके ध्वजाबनावै (खड्वांग यद्यपि समस्त नरपंजर अथत्ति मनुष्यकी साजरिकाभीनामहै पर उससे कुछ प्रयोजन यहाँ नहींहै) (कपालआदिका धारणा करना यह केवल हत्यारेका तुक्रमा चिह्न है अर्थात् उस खोपडी के खपरा में न भोजन करनेका प्रयोजन है न भिक्षा मागनेका क्योंकि (मृन्मयकपालपाशाभिर्क्षायैग्रामंप्रविशेदितिगौतमः) गौतमने उन्हीं गौतम ने यहभी कहाहै कि सड़ीका ठीकरा हाथमेलेकर भिक्षाकेलिये वन्तीमेंघुमै अन्यथा जंगल आदिमें रहाकरै=तथाचमनुः=ब्रह्महा डादगाव्दानिकृतिंकृत्वायनेवमेव कृतवा पनोवानिवसेद्ग्रामांतैरोव्रजेऽपिवाआयमेवृक्षमूलेवासर्वभूतहितेतरतः=अर्थात् मनुने ये नियमकहेहैं कि ब्रह्महत्यारा बारहदर्यतक कुटी बनाइके वनमेंवमै अथवा यत्र संभय न हो तो बालमुड़ाये वा जटारखाणहुये किसीग्रामके नमीपरहै या गोव्रजमें कि जहाँ बहुत गौओं की चराईवाले जंगल में निवास हो या किसी प्रसिद्ध जंगलके वनमें आग्रसों में टिके अथवा वृक्षके नीचे रहिके सर्वभूतों की भलाईवाले आचरना के (उक्तवचनोंमें कृतवापनोवा) इसविशेषसे कि सूडमुडाणहुये

क्रि=स्थान वीरासनी मौनी मौजी द्यडकसंडलुः भिक्षाचर्याग्निकार्यचकूप्सांडी
 भिःसदाजणः—तस्यभवेदितिशेषः=अथति—स्थानपर वीरासन जमाये मौनसाधे मौजी
 धारणाक्रिये दंड और कसंडलुभी लियेहुये भिक्षासांगि निर्वाहकरना और अग्निकार्य
 भी होस आहुति करना कूप्सांडियोंसे सदाजणकरै=ऊपर मौनसके वचनसे यह कहा
 गया कि वनोंमें सर्वत्रजलाशय पाकर स्नानकरनेका नियमराखै•तहाँ स्नानके विधान
 से उसके अंगभूत संज्ञादिकी प्राप्ति सम्भवी जातीहै कि जो स्नानकरै तौ मंत्रांका भी
 उच्चारण करै—तथैव(शुचिनाकर्मकर्तव्यं)पवित्र होके सबकर्मकरने चाहिये यहवचन
 सर्वत्र सब कर्मोंपर साधारण भावसेआखडहै तिससे भी यहवात पाईजातीहैकिप्राय-
 ष्चित्तखपीव्रतचर्यामें तत्पर होनेसे अनुव्रतकी अंगभूत जो शौचकी संपत्तिहेतिसकेजिये
 स्नानोंकी तरह संध्योपासन भी करना चाहिये तिसका भी यह प्रसारा है कि संध्या
 करना सबकर्मोंके साथ पहिलेही आवश्यकहै जिसपर दलका यह वचन प्रसारा है
 क्रि=संध्याहीनोऽशुचिर्नित्यमनर्हःसर्वकर्मसुयत्किंचित्कृस्तेकर्मनतस्यफ नभाभवेत्-
 अथति—संध्याकर्मसे विहीन जो पुरुष है सो नित्यप्रति अशुद्ध रहिता और सब तरह
 के कर्मोंमें अयोग्य होताहै अथति जबतक संध्या कर्मनकरै तबतक देव पितर आदि
 स्वस्वकी कोई कर्म करनेका अधिकारी नहीं दहेरता है क्योंकि गेया पुरुष जो नक
 कर्मघोड़ा बहुत करै भी तौ उस क्रियेका फलभागी नहीं होताहै यह ईश्वरकी आज्ञा
 खपी वचनका प्रभावहै (तौ इसके बिना हत्यारे का ब्रह्मचर्य आदि व्रतभी निर्याग
 जासक्ताहै) और इसमें यह शंका खटी न करनी चाहिये

करने में निस्तार नहीं होता=अत्राप्यर्थवादः-इसमें यह शोचना चाहिये कि बिना इच्छा सारडारने सधये जो विशुद्धि कही गई तहां क्या दो तीन ब्राह्मणों के सारने में प्रायश्चित्त का (तंत्रत्त्व) एकीभाव कहिके (आवृत्ति) उनके फेरेशी टहिराए कि फिर फिर क्रिया जाय० तहां कोई ऐसा मानते हैं कि (ब्रह्महावाद्शाब्दानि) इसमें ब्रह्मशब्द है सो एक और दो और बहुत भी ब्राह्मणोंपर जाति वाचकता से साधारण आरूढ है तिससे जो एक ब्राह्मणके बधमे प्रायश्चित्त है वही दूसरे और तीसरे से भी समुक्ताजाय० तहां एक ब्राह्मणके सारनेनिसित्तसे एक प्रायश्चित्तका अनुष्ठान होनेसे यह क्रियागया यह नहीं ऐसी तद्वत्पर यह कहिकेको नामयं क्रिसीकी नहीं है कि० तरह तरहके देश जुदे जुदे प्रभाओंवाले काल अनेक लक्षकोंवाले हत्याके कर्ता लोग नानाभाँति उनके किये कर्सेंकी युक्तियां जिनसे बिलक्षणा चिह्नोंसे जुदे अनेक दोष फिर इच्छा या बिना इच्छासे सारनेका अनुबंध यह उपरालू है तहां यह विशेष कारणसे तद्वत्से जुदाहै कि इन सबके जुदे भेदों से निराय क्रियेबिना या इस अवेदामे कि भेद के बिनाही उन सबका विशेष कोई चिह्न हाय आजाय सो नहीं हाय आता है तिस कारणसे (तदनुष्ठानहीसे अर्थात् एकही वार दारहवयंकी व्रतचर्याकरणसे पापनाश होजानेवाले कार्य की सिद्धि ठहराती दीकहै० तेना इनपर यह दृष्टान्त है कि तत्र रूपी (अर्थात्दोयातीनोंकेएकहीवार) अनुष्ठानोंसे प्रयाज आदि यज्ञोंके द्वारा अग्नि सं- दधी आदि देवताओंसे तंत्ररूपहीसे अनेकोंके उपकारवाले कार्योंकी सिद्धिहोती है- और ऐसा न कहिना चाहिये कि दो तीन ब्राह्मणों के बधमे पाप के सारआपन न गीतसदा बधन लेनाहोगा एथाहर्षोत्सः (एतन्निगुत्तमागृह्णात्तन्निगुत्तान्, अर्थात् बड़ेपापसे बड़ेप्रायश्चित्त औरछोटेसे छोटेइसबधननेहिद्वारातिद्वारातीजदेप्रायश्चित्तों

हानिका जो वचन है सो जहां उसके प्रयोजनकी प्राप्ति देखीजाय तहां मानाजासक्ता है कि—हत्यारेसे न कोई पद न उससे किसी कर्मकी आज्ञा ब्रह्म न उसके द्वारापूजन आदि कोई कर्मकरै न उसको दानदेवे (यहां भी फिर वही विचार करनाहोगा कि उसको दानदेनेकी नियेध से भिक्षा देनेका नियेध न समुक्ति लेना, क्योंकि भिक्षा का विधान उसके निमित्तपर लिखिचुके हैं तिससे भिक्षा देना एक वाचनिक धर्म है) इसी प्रकार न कोई हत्यारे को पढावै न यज्ञ आदि कोई सा कर्मट विधान उसको करावै न करनेकी आज्ञादेवै न संभाषणाकरै न रामरसौअरि का सम्बन्ध राखै न उस से कृच्छदान लेवै न विवाह आदि सम्बन्ध उससे करै—अब ऊपरकी प्रकृति वार्ता पर ध्यान करौ कि—हत्यारेकी व्रतचर्या जो मनु और याज्ञवल्क्य और गौतम आदि ऋषीचरोंकी नियत करीहुई वारहवर्य की अवधिसे एकही है कुछ जुदे जुदे ग्रन्थों में जुदी तरह नहीं है किंतु अविरोधी मत परस्पर सबका एकही है—तिसका यह उदाहरण समुक्तिलेना चाहिये कि जैसे इसी २४३के प्रलोकमें (भिक्षाशीकर्मवेदयन्) यह योगीचरने कहा कि अपना कर्म पुकारते हुये भिक्षा भोजन करै और कुछ नहीं कहा तौ यह अपेक्षा गेयरही कि भिक्षा माँगनेका कैसा पात्रहो या किनके घर माँगनीचाहिये या कितने घरोंमें • तहां यह गेय अपेक्षा आपस्तंब आदिके उन वचनोंसे परीहोजाती है जो (लोहितकेनखंडशरावेरा इत्यादि) पहिले लिखिचुके हैं सो यह कोईसा विरोध नहीं है—इसीलिये सब ऋषीचरों का एकही कल्पना रूपी उपदेश होनेसे विरले संग्रहकारोंने अपने ग्रन्थमें यह लिखा है (मनुगौतमाद्युक्तोक्तकर्तव्यतायाः परस्पर सापेक्षत्वेपिविकल्पइति तदतिरूप्यैवोक्तमिति संतव्यमिति विज्ञानेचरः) अर्थात् मनु गौतम आदिकी कही इस कर्तव्यताके परस्पर एकही होने परभी विकल्प समुक्ताजाता है • सो यह विकल्प समुक्तने वालोंने व्यवस्था निरूपणा किये बिनाही कहि दिया है यह समुक्तिलेना ऐसा विज्ञानेचरने कहा कि जिनका निरूपणा कियाहुआ मिताक्षरा नाम ग्रन्थ है—अब ऊपरसे वर्णन किये हुये सबका तोड़ यहां करते हैं कि—इसी उक्त प्रकारसे वारह वर्यकी व्रतचर्या परीक्षरके ब्रह्महत्यारा शुद्धिको पहुँचै अर्थात् फिर भी पहिलेकी तरह अपने सब धर्म कर्मोंमें लगायाजाय ॥ ० ॥ यह व्यवस्था जोकही गई सो इच्छा बिना किसी धोखा आदि औरही कारणासे ब्राह्मणा सारदारने मध्ये समुक्तनी क्योक्ति—मनुका यह वचन पहिले लिखि चुकेहैं (इयं विशुद्धिरुचिताप्रसाध्या कामनोविजय दानतो ब्राह्मणानवेनिष्कानिर्विदीयते) कि यह विशुद्धि उसके लिये कर्तव्यहै जो कामनाके बिना ब्राह्मणा तारिके ह्यारा हुआहो किन्तु कामना से व्र

करने में निस्तार नहीं होता=अत्राप्यर्थवादः—इसमें यह शोचना चाहिये कि विना इच्छा सारदारने सधये जो विशुद्धि कही गई तहां क्या दो तीन ब्राह्मणों के सारने में प्रायश्चित्त का (तंत्रत्व) एकैभाव कहिके (आवृत्ति) उसके फेरेभी ठहिराय कि फिर फिर क्रिया जाय० तहां कोई ऐसा मानते हैं कि (ब्रह्महावादशाब्दानि) इसमें ब्रह्मशब्द है सो एक और दो और बहुत भी ब्राह्मणोंपर जाति वाचकता से साधारण आरूढ है तिससे जो एक ब्राह्मणके बधमें प्रायश्चित्त है वही दूसरे और तीसरे में भी समुक्ता जाय० तहां एक ब्राह्मणके सारनेनिसित्तसे एक प्रायश्चित्तका अनुष्ठान होनेमें यह क्रियागया यह नहीं ऐसी तदकारण यह कहनेको सामर्थ्य किसीकी नहीं है कि० तरह तरहके देश जुदे जुदे प्रभावोंवाले काल अनेक लक्षणांवाले हत्याके कर्ता लोग नानाभांति उनके क्रिये कर्मांकी युक्तियां जिनमें बिलक्षणा चिह्नोंसे जुदे अनेक दोष फिर इच्छा या विना इच्छासे सारनेका अनुबंध यह उपराल है तहां यह विशेष कारण सबसे जुदा है कि इन सबके जुदे भेदों से निर्णय क्रियेविना या इस अपेक्षासे कि भेद के विनाही उन सबका विशेष कोई चिह्न हाथ आजाय सो नहीं हाथ आता है तिस कारणसे (तत्रानुष्ठानहीसे अर्थात् सकही बार बारहवर्षकी व्रतचर्याकरानेसे पापनाश होजानेवाले कार्य की सिद्धि ठहरानी ठीक है० तैसा इसपर यह दृष्टांत है कि तंत्र रूपी (अर्थात् दोघातीनोंकेसकहीबार) अनुष्ठानोंसे प्रयाज आदि यज्ञोंके द्वारा अग्नि संबन्धी आदि देवताओंमें तंत्ररूपहीसे अनेकोंके उपकारवाले कार्योंकी सिद्धि होती है—और ऐसा न कहना चाहिये कि दो तीन ब्राह्मणों के बधमें षाप के गरुआपन से गौतमका वचन लेना होगा यथाह गौतमः (सनसिगुरुशिष्यापुत्र्यालद्युनिलयूनि) अर्थात् बड़े पापसे बड़े प्रायश्चित्त और छोटेसे छोटे इस वचनसे द्विवारातिवाराही जुदे प्रायश्चित्तों का करना ठीक होगा इसहेतुसे कि (बिलक्षणा) अर्थात्) जिनके लक्षण आपस में एकसे नहीं ऐसे दोकार्योंकी सिद्धि एकसाथही कभी नहीं होती—ऐसा किर्त्तिये न कहना चाहिये कि यह गौतमका वचनहीं (आवृत्तिविधायक) फेरे करवानेवाला नहीं अर्थात् दो तीनवार जुदे प्रायश्चित्त करानेकी आज्ञा इसमें नहीं है० किन्तु एक समयपर एकसाथ बैठेहुये बड़े छोटे पापोंकी व्यवस्था दर्शानेवाला ठीक है और यह भी न कहना चाहिये कि दूसरा ब्राह्मण सारने से बिलकर पहिले षापमें वडापन होसकता है सो नहीं क्योंकि इसनातका प्रसार कहीं नहीं है० बल्कि जो सनु और देवताका सकही यह वचन है (विधेः प्रथमिनादस्ताद्वितीये द्विगुणं भवेत् तृतीये त्रिगुणं प्रोक्तचतुर्थेनारित्तानिष्कृतिः) कि इसपहिले अपराधपर कहे विधानसे दूसरेमें हुना होय

नीमरेमें तियुना करनाकहा चौथानारने में अपराधीका निस्तार किसीप्रकारसे भी न है। जो इमनियमका यह तात्पर्य है कि प्रत्येक पापके निमित्तपर पहिलेकी अपेक्षा अगिलेमे प्रायश्चित्तकी आवृत्ति बढ़ती जाय कि जितना प्रायश्चित्त पहिले पापमें कराया गयाहो तिससे दूना उन्नीपापके दुबाराहोनेमें इसीतरह तिवारामें सबसे प्रथम की अपेक्षा तियुना करायाजाय० यद्यपि एकसाथ एकही प्रायश्चित्तवाला पहिला अर्थ इममें नहीं सिद्धहुआ परन्तु जैसे इसमें नैमित्तिक दूना आदि बढ़ताढहिरा तैसा उन्नीके न्यायसे अर्थात् यही वाक्यभेदका दृष्टांत लेकर दो तीन ब्राह्मणा एक साथ भी जो नैमित्तिक शास्त्र का विचार है तिसकी आवृत्ति के अनुवादसे यह निश्चित भया कि चौथा ब्राह्मणा सारने मध्ये उस प्रायश्चित्त का न करना आया गया क्योंकि करनेसे निस्तारनहीं होताहै तथापि यह वचन उसवार्ता मध्ये नहीं है कि कालान्तर से दूसरा ब्राह्मणा सारनेमें प्रायश्चित्तका अनुष्ठान पहिलेकी अपेक्षा दूना आदि कराया जाय० क्योंकि मनु और देवल के उक्तवाक्य से इसवात्त में वाक्य भेद रूपा प्रसंगोप प्रायाजाताहै तिससे—दोतीन ब्राह्मणा सारनेमें भी बारहवर्ष आदि कीइसा प्रायश्चित्त एकहीवार कियाजाय यही लक्ष्ममें आताहै क्योंकि (यहाँएक सीसांसाका दृष्टांतहै कि) जैसे अष्टाकपाल होमहै जो आठ सड्डीके खपरोंमें चरुधरि के होसहोताहै इसकासनासे कि मेरे सब घरोंमें कभी आगि न लगे उसमें यह नियम नहींहै कि अनेक घरोंके जलजानेके निमित्त उतने जुदे होम किये जायँ किन्तु एक साथ अनेकघर जलने मध्ये एकहीवार अनुष्ठान कियाजाता है ऐसे कामवती आदि और भी अपेक्षाप्रज्ञहै जो इसीप्रकार एकजातिके अनेक निमित्तोंपर एकहीवारकिये जातेहै—तथाच सिताक्षरा(यथा—अनयेकामवतेपुरोडाशमष्टाकपालनिर्वपेत्—इत्यादि वृत्तवातादिनिमित्तेषुचोदितानांकासदत्यादीनांयुगपदनेकेष्वपि गृहदाहादिनिमित्तेषु ज्ज्वेदानुष्ठान) तैसे यहाँ भी दो तीन इत्याका प्रायश्चित्त एकहीवार किया जाय= लजादान— इसका निर्णय सुनो—वचनके विशेषमें न्यायनहीं सिद्धहोताहै और वचन जो मनु और देवलका लिखा गया वह दो तीन ब्राह्मणोंके सारने से प्रायश्चित्त के अनुष्ठानकी आवृत्ति बढ़ाने परही आखुद्धहै परसेमा होनेमें न्यायलभ्य जो(तंत्रानुष्ठान) एकसाथ व्रतचर्याका करना तिसमें रोकाहुआ आवृत्तिका विशेष करनेवाला न्याय नोआवे और इमने अन्यथा जात्रोंकी पहुच का अनुवाद खडाकरने से अनर्थक लक्षण होजाने सकताहै और वाक्यभेदका चर्चा जो चनाया मोक्षुछ वाक्यभेदभी नहीं है परोंकि गनुदेवतके उस वचन में चौथे ब्राह्मणाको आदिलेकर जो बहुत सारेजायँ

तिसवधका चर्चाछोड़िकर जहाँ दोहीतीन सारेजायँ तिनका दूनातिगुना आवृत्तरूपो प्रायश्चित्तका विधानहै(क्योंकि चौथेको आदिकर चौगुना पचगुना छोगुनाआदि होसकनेकी शक्तिसे भी बाहरहै) तिससे वचनोंमें एकहीअर्थ समझने योग्य तात्पर्यहै कुछ भेद नहींहै अर्थात् (चतुर्थेनास्तिनिष्कृतिः) चौथेके सारनेमें प्रायश्चित्त से उद्धार नहींहोता इस कथनसे पांचवां छटा आदि सब समझेजाते हैं कि बहुतों के सारने में दोष बहुत बड़ाहै जो प्रायश्चित्त से नहीं भेदाजासक्ता है यही आशय देवल आदि ऋषियोंके इसवचनसे भी ठीकहै कि (यत्स्यादनभिसंधायपापं कर्मसंकृतकृतस्य तस्ये यंनिष्कृतिर्दृष्टाधर्मवद्भिर्मनीषिभिः) जो पाप एकवार कियाहो और बिना कामनाके इच्छारहित होगयाहो तिसका यह प्रायश्चित्तरूपी निस्तार बहुतसेधर्मज्ञ बुद्धिमानों ने निर्णय किया और प्रायश्चित्त में ऐसाही वर्ताव देखा—और बिलक्षणा दोष जिनके परस्पर लक्षणा एकसे नहीं और बड़े छोटेहों तिनका क्षयहेतु प्रायश्चित्त एक साथ नहीं सिद्ध किया जाता है—इन सब कारणोंसे इस प्रकारके अपराधों में दोष के बड़ा पनसे और कार्यों के बिलक्षणा भावसे भी प्रत्येक पापके निमित्त पर जुदे जुदे प्रायश्चित्तकी फेरी होनी ठीकहै—औरसासवती आदि विधान जिनका स्वरूप और प्रयोजन दोसौ सत्तरह २१७की अधिकोक्तिमें कहिचुके कि एकही बारकरनेसे अनेक पाप क्षय होतेहैं, तिनमेंभीउनअनेक कार्योंकी बिलक्षणताके बिनाही एकसाथविधान होनायोग्यहै कि जब एकही लक्षणवाले अनेक पाप हों(इसका भी दृष्टांत जैसे पंच यज्ञोंके त्यागरूपीपापके निमित्तपर सासवती आदि नैमित्तिक विधान करना चाहा तहां यद्यपि पांचयज्ञोंके स्वरूप सबजुदे जुदेपांच होतेहैं तथापि लक्षणसबका एकही माना जायगा क्योंकि वे सभी नित्यकर्म कहातेहैं) यहचर्चायहां प्रसंग मात्रसे किया गया=और जोवचनअभीलिखिचुके, चतुर्थेनास्तिनिष्कृतिः)चौथासारडारनेमेंनिष्कृति नहींहोतीहै सोयह महापातकोंके विषयपरआखडहै क्योंकिपापकेअतिबड़ापनसे प्रायश्चित्तका अभाव इससे कहागया तिससे—और इसीसे दूद्रका अन्नखाना आदि छोटे पापोंमें चौथीदारसेभी अधिकबहुतवारके अभ्यासकरनेपरभी उसकेअनुरूपप्रायश्चित्त की पुनः पुनः (आवृत्ति) फेरी से कल्पना होनी चाहिये किंतु प्रायश्चित्तका अभाव इतमें न चाहिये ॥ २ ॥ बारह वर्षका व्रत दर्शन किया सो यह मुख्य सारनेवाले के निमित्तमें कहा गया क्योंकि ब्रह्महा नास उसीका कहिचुके हैं—अर्थात् अनुग्राहक प्रयोजक आदि हत्यारे के सहायक जो दोसौ सत्तरह २२७ वाली अधिकोक्ति के प्रारंभ में दर्शासराये तिनका जैसा दोषहो या जितनी सहायता हत्यारे को मिली हो

तिसके अनुसार उनके प्रायश्चित्तोंकी बडाई छोटाई कल्पित करनी चाहिये अथवा जहाँ सहायता की विशेष तौल नाप न होसके तहाँ यह सामान्य एकनियम है सो लेना चाहिये कि अनुग्राहक पुरुष हत्यारेके प्रायश्चित्तसे चौथाई कम करे तिससे जहाँ हत्यारेको वारहवर्ष नियतहों तहाँ उसको नौवर्ष की व्रतचर्या करनी चाहिये और प्रयोजक पुरुष हत्यारेसे आधा कमकरे तिससे उसके वारह वर्षके नियम साथ छेवर्षकी व्रतचर्या करनी चाहिये और अनुमन्ता पुरुष को अढाई पाद कम करके डेढ़पाद करना चाहिये तिससे उसको वारह वर्षके स्थलपरध॥ साढेचार वर्षकी व्रत चर्या करवाई जाय और निमित्ती पुरुष हत्यारेसे चौथाई तीनवर्ष की व्रतचर्याकरै= अतरावमुमन्तुः—तिरस्कृतोयदाविप्रोहत्वाऽऽत्मानंमृतोयदि निर्गुणाःसाहसात्क्रोधाद्गृहक्षेत्रादिकारणात् वैवार्यिकं व्रतं कुर्यात्प्रतिलोमां सरस्वतीस गच्छेद्वापि विशुद्ध्यर्थं तत्पापस्येति निश्चितम्=अत्यर्थं निर्गुणो विप्रो ह्यत्यर्थं निर्गुणोपरि क्रोधाद् प्रियतेयस्तु नि निमित्तं तु भर्त्सितः वत्सरव्रतं कुर्यान्नरः कच्छुं विशुद्ध्ये (गुरावद्वा ह्यग्रास्तु वर्षमात्रेणैव शुद्ध्यति तदपि मुमन्तुः) केशप्रमथुनखादीनां कृत्वा तु वपनं वने ब्रह्मचर्यं चरन् विप्रो वर्षेणैव केन शुद्ध्यति=अर्थात्—मुमन्तुने निमित्तीके भी कई भेद कियेहैं कि—जब कोई गुरावान् ब्राह्मण अपमान किया हुआ देहको विनाश के जिसके निमित्तसे मरजाय या निर्गुण ब्राह्मण घर खेत आदि छिन जानेसे साहस करि क्रोधसे जिस किसी के निमित्त पर मरजाय सो निमित्ती पुरुष तीन वर्ष का व्रत करे या इस पापकी शुद्धिके लिये सरस्वती नदीकी धारके सन्मुख उतने वर्ष यात्रा करे यह निश्चित हुआ=यद्वा=अतीव निर्गुण ब्राह्मण हो सो अत्यन्त निर्गुणी किसी मनुष्यके ऊपर क्रोधसे मरजाय जो घर खेत आदि किसी भगडेवाले निमित्त के विनाही घुडकी ताडना आदिसे सताया वा लज्जित किया गया तो जिसके ऊपर यह मरजाय सो पुरुष अपने पापकी शुद्धिके लिये तीनवर्षतक कच्छुनासक व्रतकरे तो शुद्ध होय (कदाचित्त गुरावा ब्राह्मणके ऊपर किसी निमित्तसे निर्गुण ब्राह्मण अपघात करे तो निमित्ती गुरावान् ब्राह्मण गृहहीवर्षमें ब्रह्महत्या का व्रत करिके शुद्ध होजाता है यह भेदभी मुमन्तुने कहाकि) विद्वान् क्रियासाह विप्र गुरुवर्षमे पवित्र होताहै बाल दाढी मूछ नख आदिका मुंडन करायके वस्त्रमें ब्रह्मचर्य से आचरणा करतेहुये ॥ ० ॥ जैसा यह अनुग्राहक प्रयोजक आदिकों का क्रम कक्षातया इसी नार्गने यथाचोरथ उनकी भी प्रायश्चित्त कल्पना करनी चाहिये जोकि इन प्रधान अनुग्राहक प्रयोजक आदिके साथी अनुग्राहक प्रयोजक आदिकेवतेहो • इस व्यवस्थाका मूल नहीं आपन्तंत्रका वचन है जो २७ दोसो

सत्ताइस की अधिकोक्ति में द्यौरैवार अर्थोंसे लिखिचुके केवल मूलमात्र यहाँफिर भी लिखे देतेहैं कि (प्रयोजयिताऽनुमंताकर्त्ताचेति स्वर्गनरकफलेषु कर्मसु भागिनो यो भयआरभते तस्मिन्फलविशेषः) ॥ ० ॥ तथैव प्रोत्साहक उत्साह दिलाने वाले आदि कुछ औरभी अपराधी होते हैं तिनको भी दंड और प्रायश्चित्त दोनों विधि कल्पना करनी चाहिये=तदाह पैठीनसिः=हंतासंतोपदेशाच्च तथासंप्रतिपादकः प्रोत्साहकःसहायप्रचतत्रसार्गानुदेशकःआश्रयःशस्त्रदाताचभक्तदाताविकर्मिणाम् उपेक्षकःशक्तिमांश्वेदोषवक्ताऽनुसोदकः अकार्यकारिणास्तेषांप्रायश्चित्तंप्रकल्पयेत्त यथाशक्त्यनुरूपं चदण्डं चैषांप्रकल्पयेत्=अर्थात्—हंता•मंता•उपदेशा•संप्रतिपादक(औरकुर्मियोंका) प्रोत्साहक•सहायक•सार्गानुदेशक•आश्रयदाता•शस्त्रदाता•भक्तदाता•उपेक्षक जो शक्तिमान् हो•दोषवक्ता•अनुसोदक•ये सब अकार्य कारी होते हैं तिनका जुदाजुदा प्रायश्चित्त निरूपणा करे और उनकी यथाशक्तिके अनुरूप तथा कर्मोंकी गुरुता लघुता के अनुरूप उनको दण्ड भी निरूपणा करे=यहाँ=पैठीनसि के बताये अपराधियोंकी जो नाम संज्ञा लिखीगई तिसके अर्थ समझने चाहिये कि—सबसे प्रधान हंता मारनेवाला ठहिरता है—और मंता अनुमंता कोभी कहते हैं कि जिसके दो भेद पहिले २२७ दोसौ सत्ताइस की अधिकोक्ति में लिखिचुके तथापि अर्थान्तर से इसमें कुछ विशेषता है कि वह अनुमंता प्रवृत्त हुये को प्रवृत्ति करता है सोभी अपने या परायेमतलबकेलिये किंतु यह संतापुरुष बिना प्रवृत्तकोभी प्रवृत्तकराताहै सोभी उपेक्षासे किजिस से न अपना मतलब न अपने किसीमित्रकाहो(इसका यहदृष्टांतहै किदो गकदुर्जनोंने आकर सेसाकहाकि आपकेसमीपही अमुक देवदत्तका निवासहै हमलोग उसके साथ ऐसा उपद्रव किया चाहतेहैं जोआप इसमें दखतदेकर हरज नकरें अर्थात् निण्ट कुछ दखल न करें बल्कि गुलगफाडा के होनेपरभी चुपचाप होके अजानबनि जायें तो हमारा यह कास अच्छा बनिजाय बलसेही प्रार्थना को जिसने मानिलिया वही संता मानने वाला कहाया सो अनुमंता से कुछ विशेष अपराधी जानों द्योक्ति धर्म सूर्यादि के अनुसार इसको यह चाहिये था कि प्रार्थनाकरने वालोंको नियेधकरता और साफ कहदेता कि मैं ऐसे अनर्थ को नहीं मानि सक्ता बल्कि उनकोकिसी प्रकार भय सुनाकर हिंसाति तोड देता और यसर्यो के सन्मुख उसका प्रकाशभी करदेता कि ऐसा उपद्रव मेरे समीप न होने पावै तो कदापि न होसक्ता)—उपदेशाके लक्षणा २२७ की अधिकोक्ति में लिखिचुके है कि वह तीनि भांति के प्रयोजकों में एक उपाय का उपदेश बताने वाला होता है—संप्रतिपादक उनका नामहै जो मारने

बाले को जल्दी उपाय नामग्री आदिका अवसर और ठिकाना तैयार करें जैसे जहरमि-
 ली सिटाई बनाकर लादेना या जिसको मारना चाहते हैं तिसको किसी बहाने से बु-
 लाकर मौजूद करदेना आदि सिद्धि को अनेक ढंग होते हैं—प्रोत्साहक तर्गीवदेनेवाला
 क्रहाता जो हता को अतिशय उत्साह दिलाकर बुरा करने पर उताह करे इसको
 प्रयोजिता भी कहतेहैं—सहायक जो साथ रहकर सहायता करे इसीको २०७वा-
 ली अधिकोक्तिमें अनुग्राहक इस नामसे लिखिचुके हैं ठीक वगैरह उसी जगह देखो—
 सारानुदेशक जो सारने बातों को साथलेकर मार्ग बताने अर्थात् जिसको लूटा मारा
 चाहते हैं तिसके ठिकाने तक पहुँचावे—आययदाता जो घातियों को उनको घात
 ठीक लगने के लिये अपने पास ठिकावे—शस्त्रशता जो तलवार छुरी या फांसी जहर
 आदि सौत के औजार घातियों को देवे—भक्तदाता जो विकर्मियां घातियों को भो-
 जन देकर उनको मजबूत करे—उपेक्षक जो आप शक्तिमान् बलवाचहोकर ठीकअव-
 यम्पर पुकार सुनिके उपेक्षा करके चुपकारहिजाय उद्वहोते देखे बालुने परधावा
 करिके दुष्टों को मारे भगावे नहीं—दोषवक्ता जो घातियों को भेदबतावेकि जिस
 को मारना चाहते हो वह अमुक समयअमुक ठिकानेवैठताहै तहां अमुकहोशियारी
 आदिदोषके प्रभावसे तुम्हारा काबू न चलैगारातिको या दिनमें अमुकठिकानेवहनशा-
 पीके सोताहै तभी तुम्हारा कार्य बनैगा इत्यादि याइसरीति से दोषों को सुनावै कि
 उसके वेडा या भाई से इन दिनों परा वैरहै जो तुम उनको अपनी राहमें मिलालो तो
 पड़ी सुगमता से कार्य बनि सकाहै इत्यादिकोईसा दोषभेद बतावे सो दोषवक्ताहोता
 है—अनुमोदक जो घाती का अनुमोदन इस प्रकार से करे कि जो काम तुमने करना
 विचारा वह बने भी पसंद किया अवश्यकरौ—ये सभीविकर्मी अक्राजकरनेवालेहोतेहैं
 यथा औरप्र सबके लियेदण्ड और प्रायश्चित्तका निरूपण करैयहपैठीनसि का कथन
 है॥ इन्हीं पूर्वोक्त नियमोंके अनुसार जहां बालक बूढ़े आदि अपराधी यदि सा-
 कात्कार आपही कर्ता बने हों तौभी उनको नृचित प्रायश्चित्त से आधा करने की
 आज्ञा देनी चाहिये=तदाहंगिराः=अग्नीतिर्ग्रथवर्थागा बालोवाप्यूनयोडगः प्राय
 श्चिनादंनर्हति त्रिद्योगेगिरासवच=तथा१३३चनंतरन्तु=तथा१४वांश्र्वादशाद्वर्यादगी
 तेष्वर्हमेवया अर्हतेवभवेत्पुंसां नृगीयंतद्योयितात्=अर्थात्—अंगिरा ने कहा है कि
 जिसकी अवस्था अर्धीवर्ष पूरी होचुकी सो बूढ़ा लसकना और बालक सो१४वर्षसे
 कम के दिवसको लसकना यदा दिक्कल्पसे चारह वर्षके भीतर भी बाल अवस्था होती
 तो वे लोग यावा प्रायश्चित्त करने के योग्यहैं और स्त्रियां जो पूरी अवस्था की हों

बालक बूढ़ी नहीं सोभी अर्ध प्रायश्चित्तके योग्यहैं तथैव रोगी पुरुष भी बूढ़ेके स-
 मान आधा करने के अधिकारी होतेहैं=ऐसाही दूसरा यह वचन है कि—तद्वत् बारह
 वर्षके भीतर और अस्सी वर्षसे ऊपरभी पुरुषोंको आधा प्रायश्चित्तहोय तहां स्त्रियों
 को चौथाई करवाया जाय क्योंकि पहिले वचनमें स्त्रीपनसे आधा कहाथा अब यहां
 उनके वृद्धापन और बाल्यनसे आधेका आधा रहिगया (बालकपनके दोभेद इस हेतु
 से कहेगए कि सोरह वर्ष पूरे होनेपर गृहस्थी के व्यवहारभार सौंपे जातेहैं तबसे पूरा
 पुरुष गिना जाता है सोरहके भीतर बाल अवस्था मानी जाती है क्योंकि संसारी व्यव-
 हारोंकी निपुणता नहीं आती है परन्तु बिरला सोरहके भीतर भी डीलडौल और बुद्धि
 को चतुरतासे अति निपुण होजाता और व्यापार आदिके धंधे साधन करता है तिससे
 ऐसा सोरहके भीतरभी पूरे प्रायश्चित्तके योग्य माना जासकता है तिससे यह बारहवर्ष
 के भीतर बालक मानाजाता है और बारहके भीतरही आधे प्रायश्चित्तकी योग्यता
 इसको रहित है किन्तु बारहवर्ष पूरे होनेसे ऊपर यह पूरे प्रायश्चित्तका भागीहोता
 है)=और भी यह भेद है कि=बारहवर्ष के पहिले जिसका उपनयन कर्म जनेऊ आदि
 न हुआ हो तिसके लिये आधेका आधा सिर्फ चौथाई व्रतचर्या प्रायश्चित्त की चा-
 हिये=तदाह विष्णुः=स्त्रीणासर्वप्रदातव्यं वृद्धानांरोगिणांतथा पादोवालेषुदातव्यःस
 र्वपापेष्वयंविधिः=अर्थात्—निरोगानि पूरी स्त्रियों को आधा प्रायश्चित्त देना कहा
 तथा बूढ़े पुरुष औ रोगी पुरुषों को आधा कहा बालकों को चौथाई देना चाहिये
 सभी पापोंमें यह विधि जानो (यहां चौथाईकी अपेक्षामें बालक उन्हींको समुक्तना
 जिनका संस्कार न हुआ हो क्योंकि पहिले वचनों में आधा देना कहि चुके हैं तहां
 उपनीत बालक समुक्तना होगा) इस प्रश्नकी अपेक्षामें कि अज्ञान बालकोंसे कोंकर
 प्रायश्चित्तकी साधना होगी यह उत्तर है कि अशिला वचन देखौ=यदाहशांखः=ऊ
 नैकादशवर्षश्चपंचवर्षात्परस्यच प्रायश्चित्तंचरेद्भातापितावाऽन्यःसुहृजजनः (इत्येवं
 प्रतिपाद्यपष्टचाहुक्तंच) अतोनालतरस्यास्य नापराधोनपातकश्च राजदशडोनतस्यास्ति
 प्रायश्चित्तंनद्विद्यते इति (तदापि कल्पपूर्णा प्रायश्चित्ताभाव प्रतिपादनपरं न पुनः सर्व
 त्मना तदभाव प्रतिपादनपरं इति सिताक्षराकारः) अर्थात्—शांखने कहा है कि पांच
 वर्षसे ऊपरका बालक जो सोरह वर्षके भीतर अवस्थामें हो तिसके किर्त्त अपराध
 के होनेसे प्रायश्चित्त उसका भाई या पिता या कोई और हितूहो सो करै (यहकहि
 कर पीले यह ही कहा कि) अतः इस पांच वर्षसे भी नीचे अति बालक जो कोईसा
 पापकरै तौ उसका न अपराध कोईजुर्महै न पातक (उसको जातिसे गिराना) है न

उसके लिये राजदंड है न प्रायश्चित्त है (इसपर मिताक्षराकारने यह भी लिखा है कि यह नकारावाला शंखका वचन है सो भी संपूर्ण प्रायश्चित्तका अभाव दर्शानेवाला शंखक है परन्तु यह नहीं कि विलकुलही प्रायश्चित्त न कियाजाय क्योंकि) शास्त्र में एक यह वचन है कि ब्राह्मण कहीं न साराजाय जहां सारेजाने के समय पुकार हो उसको मुनि कर भी सबलोग दौड़िके बचावें किन्तु जहाँतक पुकार की आवाज पहुँचतीहो उस टप्पेके भीतर जे कोई कहीं सौजूदहों यह उजर नहीं कर सक्ते हैं कि हम इतनी दूरथे या हम अमुक आयस संन्यासी आदि कोई थे हमको कुछ सम्बन्ध न था • दूसरा यह वचन है कि तिससे ब्राह्मण क्षत्री और वैश्य भी सुरा न पीवें इत्यादि ऐसे और भी वचनहैं इनमें अवस्था की विशेषता लिये बिनाही जातिमात्रके अधिकार प्रकट किये हैं तिससे उस पांचवर्षसे नीची अवस्थाके अपराधी वालोंके बदले प्रायश्चित्त उनके पिता भ्राता आदि को करना चाहिये कि जिससे पापों के द्वारा उनका प्रारब्ध न विगडने पावै (किन्तु पिता या भ्राताको अपराधी का प्रतिनिधि होना कहा तिसका यह कारण है • वेद और धर्मशास्त्र में पिता का अधिकार है कि पुत्रोंको जन्म देकर पाले फिर संस्कार करे वेद विद्यामें चतुर बनावै और सदाकेलिये उनकी जीविका वृत्ति भी कायम करदेवै • जहां पिता नहो तहाँ जेठे भाईको यह सब करनेका अधिकार होता है क्योंकि पिताके पदपर जेठा पुत्र स्थापित होता है • जहां जेठा भाईभी न हो तहाँ बालकों की रक्षाके अधिकारी उनके कुटुंब या नाते रिश्तेके लोग रक्षक होतेहैं कि जिनको तन धन आदि सर्वथा रक्षा करनेका अधिकार न्याय मार्गमें पहुँचता हो) जहाँपर प्रायश्चित्तों का सन्निपात आनि परे तहाँ का निर्वाह आगे लिखते हैं ॥०॥ सन्निपातका यह उदाहरण है कि जैसे किसी पुरुषने एकजगह एक ब्राह्मण सारा तिसका पूरा प्रायश्चित्त उसको लगा और दूसरीजगह वही अपराधी किसी ब्रह्मघाती का प्रयोजक आदि सहायक बना तिस अपराधका पूराप्रायश्चित्त नहीं है अर्थात् आधा तिहाई चौथाई जो कुछ विचार से उसके जिम्मे टहिरै सो ऊना प्रायश्चित्त भी करना चाहिये तो यह बड़े छोटे प्रायश्चित्तों का सन्निपात कताता है तहाँ बरह बर्य आदि का जो बड़ा प्रायश्चित्त है तिसके बीच आइ परने वाला प्रयोजयिन्व आदिसे सहायता संबन्धी जो छोटा प्रायश्चित्तहो सो बिनाकिये भी प्रसंग नामक न्यायाने कियेके समान माना जाना है अर्थात् एकही अनुष्ठान से दोनों कार्यकी सिद्धि होजाती है (धर्मशास्त्रमें प्रसंगन्याया इमीका नामहै कि एक प्रधान कार्य करनेसे उसका प्राणविक भी दूसरे पुरुषका सम्बन्धी कार्य बिना किये

भी सिद्ध हुआ माना जाय) परन्तु इससे यह शंका न करनी चाहिये कि जब यही निर्वाह की मर्यादा ठहरी तो इसके प्रभाव से सामान्य विशेष के समुझे बिना भी छोटे कल्पका अनुष्ठान करनेसे बड़े भी प्रायश्चित्तकी सिद्धि बिना किये होजायाकरै • क्योंकि इसी शंका की अपेक्षा से इस निर्वाह के और भी तात्पर्य पास जाते हैं कि प्रथम तो जहाँ देशकाल दोनोंके कुछ अन्तरसे बड़े छोटे दो प्रायश्चित्त लगेहोंगे तहाँ दोनोंही भिन्न भिन्न अनुष्ठान कराए जायँगे तिससे यह निर्वाह की मर्यादा केवल उसी जगहपर समुझनी चाहिये कि जहाँ एक साथही दोप्रायश्चित्त किसी पर आरूढ हुयेहों अर्थात् अति स्वल्पकालके बीचमें कुछ आगे पीछे आरूढ हुयेहों तहाँभी उन के निर्वाहका विचार आगे पीछे लगाने के अनुसार नहीं किया जासक्ता है कि जो पहिले छोटा लगाहो तो पिछला बडा भी उसके करनेसे सिद्धहुआ मानाजाय किन्तु यही नियम सिद्ध होताहै कि बड़े प्रायश्चित्तके करनेसे छोटा प्रायश्चित्त प्रसंगसात्र से सिद्धहुआ माना जायगा चाहें कोईसा पहिले या कोईसा पीछे उत्पन्न हुआहो कुछ इसपर नियम नहीं है—और—यह भी तर्क न करनी चाहिये कि चैत्रके वध करने से उपजे पापके दिनाशको अनुष्ठान किये हुये से कैसे उस पापकी निवृत्ति होगी जो विष्णुसिद्धका मरवाना चाहने से उत्पन्नहो—क्योंकि चैत्र आदिकी अपेक्षा यहाँनहीं है—इससे यह समुझना चाहिये कि जैसे कामनाके नियोगोंकी सिद्धि के लिये और स्वर्ग प्राप्त होनेके लिये भी अनुष्ठान किये आग्नेय आदि कर्माँ से नित्य नियोग भी सिद्ध होजातेहैं तैसे यहाँ भी बड़े प्रायश्चित्तमें छोटे प्रायश्चित्तका करना सिद्धहोता है ॥ अब इससे आगे दो एक पंचायती व्यवस्था कही जायँगी क्योंकि यहाँ तक तो मनु याज्ञवल्क्य आदिके वचनों में विरोध कुछ नहीं था परन्तु अंगिरा आदि कुछ ऋषियों के से से वचन आगे आवेंगे कि जिससे परस्परभी कुछ विरोध देखने में आता है और अबतक जो व्यवस्था सिद्ध होचुकी तिससेभी निरालाभार्ग उनका प्रतीतहोता है उन सबको इसीव्यवस्थाके अनुकूल सिद्ध करनेकेलिये सब ऋषियोंकी पंचायती तोड मरोडसे व्यवस्था कही जायगी कि जिससे सबकी रियाजत कुछ कुछ बनी रहे॥०॥पंचायती अनुकल्प—ये अनुकल्प उनके लिये कहे जायँगे कि जो कोई प्रायश्चित्त की साधना में अशक्त हों परंच धनसे कुछ संपन्न हों—तहाँ—एक अंगिरा का वचन है (गवांसहस्रंविधिवत्पात्रेभ्यःप्रतिपादयेत् ब्रह्महाविप्रमुच्येतद्वर्षपापेभ्यःसर्वत्र) अर्थात्—एक सहस्र गौँँ जुदे योर्यपात्रों का द्विवि से समर्पणा करे तो ब्रह्मघाती ब्रह्महत्या से और सबतरह के पापों से छूटि जाय—तो यह सहस्र गौँँ का

दान उस दशापर आरुह है कि जहां गुरावाच ब्राह्मणा यज्ञमें बैठा हुआ माराजाय जैसा २ दोस्रो वाचन प्रलोकमें योगीचर कहेंगे (द्विगुरांसवनस्थेतुब्राह्मणोवतमादि गोत्र) कि वारह वर्य से हुना चौबीस वर्यका व्रत उसको आदेश करे जिसने यज्ञस्थ ब्राह्मणा माराहोय) तहां जो चौबीस वर्षकी व्रतचर्या करसकनेमें असमर्थहो तिसको पूर्वोक्त हजार गऊका दानकरना सूचित हुआ है क्योंकि वह प्रायश्चित्त बहुतबड़ा है—अन्यथा जहां सिर्फ वारह वर्य का व्रतप्रारंभ किये पीछे कभी पूरा करनेमें असमर्थ पाई जाय तहां सहस्र गऊदान करना नहीं सूचित है क्योंकि उसके लिये केवल ३६० तीनसौ साठि गोदान की योग्यता पाई जाती है क्योंकि वहां वारहवर्य की व्रतचर्या में वारह वारह दिनोंके अनुष्ठान वाले अनेक प्राजापत्योंके फल सिद्ध होतेहैं तिनकी सब गिनती जोड़नेसे ३६० तीनसौ साठि प्राजापत्यहोते है तिनकी साधनाअगति से न होसकने से तीन्सौ साठि गऊदानकी योग्यता पाई जाती है (प्राजापत्य क्रियाऽगतीधेनुंद्याद्विचक्षणः गवासभावेदातद्यंतन्मूल्यंवानसंशयः) यह भी एक नियम है कि जिसको कितने हेतुने प्राजापत्य करनेकी आवश्यकता दहिगीहो और वह करने में अगक्त हो तहां विवेकी पुरुष दूध और बच्छा सहित गऊदान करे तो प्राजापत्य करने का फल पाये जो गऊ ना मौजूद हों तो निःसंदेह उनका मूल्य देना चाहिये—इस न्याय के अनुसार जो प्रत्येक प्राजापत्यके बदले एक गोदान कियाजा तो तीन्सौ साठि प्राजापत्यों के प्रतिस्थान तीन्सौसाठि गऊ चाहिये पर एक हजार गऊ देना इसमें नहीं चाहिये क्योंकि न्याय वही कहाताहै जो जिसके योग्यकाम या वस्तु हो उसीमें योग उसका किया जाय (यह तर्कना इसमें शेष रही कि प्राजापत्य के विधान में इतना विशेष नियम है कि वारह दिन में पूरा करिके पीछेतोन दिन उपवास भी होता है और यहां जो न्याय अभी लिखिचुके तिसमें वारह वर्यके सभी दिव विज्ञाप में जोड़े गये उपवासों के निमित्त से तीन्सौ धर्ये और चाहिये तब तीन्सौ साठि प्राजापत्य पूरेहों सो किललिये अबूरे गिनती किये गये० इसका यह असाधान है

समझ लेना उचित है=यथाह शंखः=पूर्ववदमतिपूर्वचतुष्टुर्वर्णोयुविप्रंप्रमाप्य द्वादश
 वत्सरात्र षट्त्रिंशत्सार्धसंवत्सरंचव्रतान्यादिशोत्तेषामन्ते गोसहस्रं तदर्धतस्यार्धं तदर्धद
 द्यात्सर्वेषां वर्णाणां मानुषैर्योति=अर्थात्—पहिले नियम के समान अज्ञानतासे हो-
 गये पापों मध्ये चारों वर्णोंमें समझना कि ब्राह्मण को सारिके बारह वर्षे क्षत्री को
 सारिके छः वर्षे वैश्य को सारिके तीन वर्षे शूद्रको सारिके डेढ़वर्षकेव्रत आदेश करें
 तिनकेसमाप्त होनेके अंतमें उसीवर्षा क्रमसे हजार गऊतिसकी आधी पांचसौ तिसकी
 आधी अढ़ाई सौ तिसकीआधी सवाउसौ गऊदान करें•सो यह व्रत और गोदानदोनौ
 कर्मकी आज्ञाआचार्य कुलप्रधान आदि उत्तमपुरुषोंको मारनेमध्ये समझनीक्योंकि
 दो बात मिलके बहुत बड़ा कर्म ठहिरा तिससे उत्तम पुरुषों का विषय समझना—
 इस वचन में जो प्रायश्चित्त को बड़प्पन से उत्तम पुरुष के मारने मध्ये पापका बड़ा
 पन प्रकटकियागयातिसके प्रसाराकी अपेक्षापरदान और हिंसाका फलपुरुषहीकी
 उत्तमता से दक्षनेभी दर्शाया है तिसको यहां लिखते हैं=यथाह दक्षः=समसब्राह्मणो
 दानं द्विगुणांब्राह्मणाब्रुवे आचार्यं शतसाहस्रंसोदर्ये दत्तमक्षयम्—समं द्विगुणांसाहस्रमानं
 त्यंचयथाक्रमम् दानेफलविशेषः स्यात्तहिंसायांतद्वदेवहि=अर्थात्—दक्षने कहाहै कि
 अब्राह्मणको देनेसे समानफल और ब्राह्मणाब्रुव को देनेसे दूनाफल और आचार्य ब्रा-
 ह्मणको देनेसे सैकड़ों हजारफल हेतेहैं और सहोदर भाईको देनेमें अक्षयफलअर्थात्
 जिसका अंतनहीं होता ऐसा बड़ा फल मिलता है इसी वचनकी व्याख्या आगे अ-
 र्थांतर से फिर होगी क्योंकि दो अर्थ इसमें होते हैं) समान और दूना और हजारों
 और अनंत ये चारों भाँतिके फल यथा क्रमसे दानमें विशेषता रखते हैं तैसेही यथा
 क्रमसे हिंसा करने में भी विशेषता रखते हैं कि जैसे उत्तमको मारा होगा तैसा अ-
 धिक पाप होगा उसीके अनुकूल प्रायश्चित्त भी अधिक ठहिराया जाताहै (इस
 वचनमें अब्राह्मण और ब्राह्मणाब्रुव जो कहेगये•तहां छः भाँतिके अब्राह्मण कहाते
 हैं=तदाह शातातपः=अब्राह्मणास्तुष्टुप्रोक्ता ऋषिरातत्ववेदिना अद्यौराजभृतस्तेयां
 द्वितीयः क्रयविक्रयी तृतीयोबहुयाज्यः स्याच्चतुर्थोग्रामयाजकः पंचमस्तुभृतस्तेयांग्राम-
 स्यनगरस्थश्च अनादित्यांतुयः पर्वीसादित्यांचैवपश्चिमास नोपासीतद्विज.संध्यांसयद्यो
 अब्राह्मणाः स्मृतः=अर्थात्—तत्त्व जानने वाले ऋषियों ने छः अब्राह्मण कहे तिनमें प-
 हिला तौ राज का पलाऊ भृतक दूसरा क्रय विक्रय करने वाला तीसरा बहु याजक
 जो बहुत से सनहों से पाढ़ाई करे चौथा ग्रामयाजक जो गाँवमें सब जातियों की
 पुरोहिताई रखे पाँचवां जोग्रामया नगरमें सजूरीकरे छटा वहकि यद्यपि इनकामों

को नकरताहो परन्तु सांस्क सत्रेरे संध्या कर्मकी उपासना न रखताहो येछहअब्राह्म-
 गाकहातेह और ब्राह्मण ब्रह्म उसका नाम है जो ब्राह्मणात्व के संस्कार चिह्न आदि
 सब राखता हो तथापि नित्य नैमित्तिक धर्मोंका आचार नकरताहो और आचार्य
 अनेक तरहके होते हैं जैसे संज्ञोंकी व्याख्या सहित युति स्मृति का पढाने वाला
 अथवा किसी उत्तम संप्रदाय का आचारी जो अन्य लोगों को भी आचार के सार
 पर चलावे इत्यादि=औरभी=आपस्तंबने बारह वर्ष की व्रतचर्या सामान्य कहिकर
 पाँडे गऊ विशेष वचन कहाहै=यथा=अस्मिन्नेत्रविषये० गुरुंहत्वा योत्रयंवा सतदेव
 व्रतमुत्तमाद्गच्छलाचरेत् (तत्र यावज्जीवभावत्यसनेव्रते यदा त्रैगुरायं चातुर्गुरायं वा
 सम्भाव्यते तदा तत्रासमर्थस्य बहुधनस्यायं दान तपसाः समुच्चयो दृष्टव्य इति मिता-
 क्षराकारः) अर्थात्-आपस्तंब ने यह कहा कि इसी बारहवर्ष की अपेक्षा में गुरुको
 सारि के या श्रोत्रिय को सारिके यही पहिले दर्शाया हुआ व्रत उत्तम आसापर्यन्त
 आचरे अर्थात् जब तक जीवन की श्वासा बनी रहे तब तक करे केवल बारहवर्ष से
 प्रयोजन नहीं है परन्तु सतदेव यही व्रत बारह वर्ष वाला जो इशारा किया तिसते
 बारहवर्षों काभी तात्पर्य कछलेना चाहिये० इसी गूढहेतुसे मिताक्षराकार ने व्यवस्था
 इसपरलिखीहै कि(तहां जबतक जीवे तब तक बारह बारह वर्षों की कई आवृत्तियां
 करतेहुये आयुको वितावे इसी हिसाब के अनुसार जहां ऐसा सभव देखि परै कि
 प्रायश्चित्त की अवस्थाइतनी गेय है तिसमें दो या तीन या चार आवृत्तिहोसबैंगी
 इसकादृष्टांत जैसे अगुप्तानहै कि छत्तीसवर्ष अभीजीवैगा तो बारह तिया छत्तीस इसमें
 तीन आवृत्ति होसकेंगी तहां प्रायश्चित्त एकही दो आवृत्ति पूरी करिके असमर्थ
 होजाय और बहुत धनवानहो तिसके निये यह दान और तपस्या दोनों का समुच्चय
 सहभला चाहिय कि गऊ दो आवृत्ति जो करिगुजारी सो तपस्या ठहरी और उसकी
 शेष अवस्थाके अहसानसेदो या तीन आवृत्ति जो करने योग्य बाकी रहों तिनके पलट
 ने दान करनेना चाहिये पावे० यह सब तात्पर्य आपस्तंब और पूर्वोक्त शंख तथा दक्ष
 के इन तीनों वचनके सीवानसे ठहरी० पूर्वोक्त वर्तमान आपस्तंबके वचनमें दानका
 चर्चा नहींहै अर्थात् ऊपरके दो वचनयोंनि व्रत तात्पर्य लिखागया कि शंखने ब्रह्म-
 तथापर एक हजार राज दान करवा कहा और दक्षने यह भेद किया कि अब्राह्मणा
 नामके को ब्रह्महत्या से पसान पाव कता या चाहिये कि जो हजार राज शंख ने वनाई
 और अब्राह्मण द्रु दक्षे साननें इना दान देनजार राजन्ता और आचार्यके नामके में सो
 हजारही संखदाने यह नरे हुयेके उहीकर भाईको दियाजाय तो यह दान अक्षय ही

जाता है। सो यह इतना बडादान केवल इसी दशा पर ठहिराया गया है कि जहां प्रा-
यश्चित्तो पुरा धनवानहो और आपस्तंब के वचनानुसार (जनमदौरी क्लेशमान) जन्म
भरेका यावज्जीवन प्रायश्चित्त ठहिरै जिसको वह पूरा पूरा न कर सकाहो तब यह
विचार किया जाय—इस व्यवस्थाकी रियाजतसे पूर्वोक्त दक्षका वचन यहाँ दुबारा
अर्थान्तर से दशातिहैं कि (सप्तसंब्राह्मणोदानं द्विगुणंब्राह्मणान्बु वे आचार्यैश्चात्साहस्रं सो
दर्येदत्तमक्षयं) इसका अर्थ अभी इसी जगह लिख चुकेहैं कि अब्राह्मणों की हत्या में
समदान करना कि जितना शंखने कहा हो और ब्राह्मणों की हत्यामें उससे दूना
दान करना और आचार्य की हत्या में सौ हजार की संख्यावाला दान जो उन्हीं के
सगे भाइयोंको दियाजाय तो अक्षयफल करताहै (यह संदेह न करना कि जो अर्थ
इसका पहिले लिख चुके सो ठीकथा या यह ठीकहै क्योंकि दोनों सत्यार्थ हैं पर
वहां उसी अर्थसे प्रयोजन था यहां इसीसे प्रयोजनहै) ॥०॥ व्यवस्था पंचायत—
व्यवस्था की पंचायत वाद विवाद से इस लिये यहाँ लिखते हैं कि सुमंतु और
पराशर आदि अनेक मुनीश्वरों के वचन जो कुछ पहिले लिख चुके और बहुधा
दोस्रो पचास २५० की अधिकोक्ति तक देखते रहिना लिखे जायेंगे तिनमें बारह
वर्ष की अर्वाध छोड़ि के औरही और लियस पायेजाते हैं • तिनकी व्यवस्था
विषय भेदसे कल्पना करी जायगी— तहाँ— उस पंचायत में सबसे प्रथम नैयायिक
वाचालता से यह तर्कना खडी होती है कि—प्रायश्चित्तों में बारहवर्ष आदि अनेक
तरह के कल्प जो जो मानेगये तिनकी व्यवस्था कहाँसे जानीगई और किसकारणा
से बाँधीगई • लेकिन यह उत्तर इस न मानैगे कि बारहवर्ष आदिका विधान बताने
वाले वचनों से जानी और बाँधीगई क्योंकि उनमें प्रतीति नहीं लासकते हैं • और
यह भी न कहिना चाहिये कि परस्पर प्रसाराओं से जानेहुये बडे छोटे कल्पों में
रुक्तावट रुपीबादखडा न होसके इसकारणा से व्यवस्था में विषयभेदकी कल्पना
करीजाती है यह उत्तर इस हेतु से न मानैगे कि जिसबाध की रुक्तावट दूरकरना
चाहते हौ सो अछछीतरह इन प्रकारों से भी दूर होसकता है कि चातो विकल्प या
समुच्चय या अंगांगीभावका सहारा लियाजाय • अर्थात् (विकल्प इतका नासहै कि
बडे छोटे सभी कल्पों में चाहै इसको करो या उसको करला) और (समुच्चय
यह कहताहै कि सभी कल्प ठीकहैं इसको भी करो फिर उसको भी करला) और
(अंगांगीभाव दो शब्द मिलिले अंग और अंगीका संबन्धहै तो अंगांगीभाव कहता
है दृष्टान्त जैसे देहमें शिर या बड प्रधान अंगीहोता और योग हाथपैर आदि सब उनी

अंगीका अंगहें तैसे यहाँ भी समझना कि सबसे बड़ा वारहवर्षरूपी कल्प जो है सो प्रधान अंगी और उसमें निचले कल्प सब उसी अंगीके अंगहें तौ भी प्रथम बड़ेका अनुष्ठान करिके छोटेभी सब अंगमानिके साथे जायँ) इन तीनोंमें कोई एक मार्गभी स्वीकार करने से उक्त बाध नहीं खड़ा रहिसक्ता• तिससे विषय भेदपर व्यवस्था की कल्पना व्याटाहिरैगी—सुनो उत्तर कहितेहैं व्यवस्था भेदोंमें कुछ वारहवर्षवाले और सुमन्नु आदि के दगाये वियस कल्पोंका विकल्प नहीं कल्पित होताहै कि चाहें उनको करो या उसको करो क्योंकि विकल्पका सहारा लेनेमें बड़े कल्पोंका अनुष्ठानहोना संभव न रहिनेसे अनर्थक दोयका प्रसंग आताहै कि जब इच्छाके आधीन होजाय तौ फिर बड़े कल्पका करना कौन चाहै• और ऐसा भी न कहिना चाहिये कि चन्द्रग्रहणा की तरह छोटे बड़ेदोनोंकी वियसता में भी विकल्प की सिद्धि पाई जासक्तीहै क्योंकि उसकी उपसादेना तौ दूररहा प्रथम उस ग्रहणा में भी विकल्प का होना ठीक नहीं है अर्थात् जो किंचिन्मात्र भी ग्रहणा का देखिपरना संभव हो फिर चाहें पीछे न देखि परो तौ भी ग्रहणा होगा ऐसा मानिके मृतक आदि का स्वीकार करना उचित है विकल्प नहीं माना जासक्ता है कि चाहें मृतकमानौ या मृतमानौ (इस उपसाको भंटी कहिनेका यह तात्पर्य है कि जब एक ग्रन्थके गारातसे चन्द्रग्रहणाका न देखि परना सिद्धहोताहै दूसरे गारातसे कुछ समीक्षा देखि परने की टहिरती है तहां दोनों की वियसता टहिरती है और इसी में विकल्प का संदेह खड़ा होताहै तथापि विकल्प नहीं माना जासक्ताहै अर्थात् जहां दोनोंके विचारसे चन्द्रग्रहणाका देखि परना सिद्ध होजाता या दोनों से न देखि परना पाया जाता है तहां वियसता के न होनेसे आपही विकल्प का प्रसंग नहीं आताहै) अथवा उसी चन्द्रग्रहणा में पूराकरनेकी दृष्टिसे प्रारम्भ किया जो अतिरावनामा यज्ञ हो तिसके लिये यह कल्पना करनी चाहिये कि ग्रहणा देखिपरनेसे शीघ्रही स्वर्गादिफल सिद्ध होगा कदाचित न देखि परा तौ भी कुछ विलंब से वही स्वर्गफल प्राप्त होगा किच और किसी तरह से विकल्प अंगीकार करने में अनर्थ होजायेका प्रसंग खड़ा होताहै कि यदि प्रथम से उनका न देखिपरना मानिके मृतकआदि विधिके त्याग पूर्वक भोजन आदि क्रियागया और भोजन करते ग्रहणा देखि परने लगा तब कितना बड़ा अनर्थ होगा या अतिरावयज्ञ निकला दोनों दगा में अवश्य फलहोता तिसको विकल्पका सहाय नैका न करना आदि अनर्थ खड़े होते हैं—और—समुच्चय से काम चलसक्ता नैका नैका यह समुच्चय भी उसमें ठीकनहीं किन्तु उपदेश और अतिदेशके द्वारा प्राप्ति

हुये बिना समुच्चय नहीं संभव होता है क्योंकि उपदेशके द्वारा समझी हुई जो निरपेक्षा हैं तिसके वाचका प्रसंग आता है—और—तीसरा अंगांगी भावका सहारा लेना तुमने जताया सो अंगांगी भावहू इसमें नहीं है क्योंकि श्रुति आदिसे उसका भाव विनियोग करनेवाले कोई नहीं है अर्थात् किसी ने अंगांगी भावका स्वीकार करना कहा नहीं—इसीसे उन सब कल्पोंके परस्पर उपसर्द होना जो संभव है तिसका परिहार कर देनेके लिये विषय व्यवस्था की कल्पना करनी उचित है वह भी विशेषकर जाति और शक्ति और गुण धन आदि की अपेक्षा से कल्पना होनी चाहिये क्योंकि इसी विधि का प्रमाण भी देवलने कहा है=यथा=जातिशक्तिगुणापेक्षंसकृद्बुद्धिद्वतंतथा अनुबंधादिविज्ञायप्रायश्चित्तंप्रकल्पयेत्=अर्थात्—अपराधी तथा जिसके साथ अपराध किया गया इनकी ऊंच नीच जातिके विचार से तथा उनकी शक्ति और गुण की अपेक्षा से और यह भी कि अपराध यही सकवार हुआ या पहिले भी कर चुका है तथा यह अपराध सिर्फ धोखे में होगया यद्वा बुद्धिसहित किया और भी अपराधी के अनुबंध अवस्था आदि भेदों को जानि के विज्ञानी परिणत प्रायश्चित्त कायम करै क्योंकि इन भेदोंके समझे बिना प्रायश्चित्त बताने में अवश्य कुछ अनर्थ खड़ा होगा ॥ २४३ ॥

इसी दोसौ तैत्तिरीय २४३के प्रलोक और उसकी अधिकोक्ति में यहां तक ब्रह्म हत्या के प्रायश्चित्तमध्ये जो कुछ नैमित्तिक दर्शाया गया तिसके मध्यमकालमें भी समाप्त होजानेवाली अर्वाधि समझाना चाहते हैं सो अगिले परिच्छेदमें देखना ॥

अथ असंपूर्णद्वादशवार्षिकेऽपिकालितत्फलसिद्धिवि

वेकाविषयिकोऽयंपरिच्छेदःअष्टाविंशः२८

—*—

इसपरिच्छेद में यह विवेक जाना जायगा कि जो अर्वाधि बारह बर्यकी कहि चुके जिसका किसी प्रायश्चित्तने प्रारम्भ कर दिया हो वह बीचमें भी किसी समय पूरी होजाती और पूरे किये का फल देती है ॥

(आरब्धनैमित्तिकस्यसमाप्त्यवधिः)

ब्राह्मणस्यपरित्राणाद्द्वादशकस्यच । तथाश्वमेधावभृयत्नानाद्वाशुद्धिमाप्नुयात् २२२

अर्थः—एक ब्राह्मण के परिवारा से या बारह गौओं को प्रारारक्षा से भी यद्वा

अश्वमेधमें भी अवभृथ नाम का स्नान करनेसे भी शुद्धि को पावै—अर्थात्—जहां किसी प्रायश्चित्तीने वाराह वर्यका प्रायश्चित्त या दूनी अवधि चौबीस वर्यका प्रारम्भ किया हो और उसके बीचमें किसी समय देवकी इच्छासे ऐसा वानक बन जावै कि वनमें किसी ब्राह्मण को चौर बटसार मारे डारते हों या सिंह बाघ वन वाराह आदि कोई फाड़ डारता हो और प्रायश्चित्ती ऐसा देखि के तत्काल अपने प्राण का लालच छोड़ हुये उसके ऊपर जाइ गिरै और किसी कठिनता के साथ उसके प्राण बचावै तो वह उर्मासमय शुद्ध होजाता है अर्थात् जो कुछ वर्य वाकी रहि गई तिनका पर्यटन किये बिना ही पूरा फल सिद्ध होजाता है वह अपने घर लौटि आवै—इसी प्रकार जो वाराह गीशों के प्राण चाहें एक बार या दो तीन बार में बचावै तो वह भी पूरी अवधि का फल उमी समय पाकर शुद्ध होजाता है (इसकी जो विशेषता है सो अधिकोक्ति में देखो) अथवा जहाँ किसी राजा आदि ने अश्वमेधका प्रारम्भ किया हो तिसका अंगभूत जो अवभृथ नामका स्नान विधान उसके यजमानको कराया जाता है तिसके ठीक समयपर यदि प्रायश्चित्ती पहुंचकर आपभी उस विधिसे स्नान करै तो भी अवधि पूरी हुये बिना ब्रह्महत्या से छुटकारा मिलजाता है (इसका भी विशेष ध्यान अधिकोक्ति में देखना ॥ २४४ ॥

२४४ अधिकोक्तिः—ब्राह्मण या गीशोंकी रक्षा करनेमें जो अपने प्राण खोये सभिक के उताह हुआ कदाचित् रक्षा न करि पाई पर उसके साथ आप भी मरि गया हो तो भी शुद्ध होजाता है अर्थात् गेय प्रायश्चित्तका पातक उसके साथ नहीं जाता है • यही अभिप्राय सन्तके वचनमें प्रत्यक्ष है—यथाहमनुः=ब्राह्मणार्थे गवार्थे वा सद्यः प्राणा न्परित्यजेत् नुच्यते ब्रह्महत्याया गीशा गीश्विरास्य वा=अर्थात्—ब्राह्मण के अर्थ या गीशोंके अर्थ जो गीश अपने प्राण खोदेवे सो ब्रह्महत्यासे छुटकारा पाइजाता है और वह भी जो राजा या ब्राह्मणकी रक्षा करिके आप मरा या बचि गया हो (इसमें जुदे जुदे दो दोहोत दाहे गयेहै कि आती रक्षा करके हुये अपने भी प्राण खोदेवे चाहें रक्षा न करि सक्ता सो भी अपने पातकसे शुद्ध होके नराटकरता है अन्यथा जो रक्षा भी करि पावै और आप नाराजाय या बचिजाय सो भी शुद्ध होता है ॥ ० ॥ विराने अश्वमेध में नारा करना कहा सो भी अपने पातको छिपाये बिना उजागर करिके और यज्ञके यजमान आदि से आज्ञा पाकर कान्ता कहा है—तदाहमनुः=गिण्द्वावाभिसिद्धानां नराटकरतासे स्वदेतोऽवभृथेऽज्ञान्दा न्यगोदी विवृच्यते (भलिदेवा ब्राह्मणोऽर्थात् यज्ञ के यंत्रके रक्षादाय नमाने नमदाये स्वीयकेन पापं गिण्द्वा विरुद्रा प्य अश्वमेधावभृथे

स्नात्वाशुभयेत् यदितैरनुज्ञातोभवतीत्यभिप्रायः) अर्थात्—यज्ञकरनेवाला नरदेव राजा
 तिसके और सबनौते में आयेहुये राजालोग तथा भूमिदेव ब्राह्मण जो यज्ञका विधान
 करवाने वाले ऋत्विज आदि इन सबके समाज में अपने पापका वृत्तांत और इतने
 दिन प्रायश्चित्त करते बीते इतने बाकी रहे सब खुनाइ के स्नान की अभिलाषामात्र
 मनसे प्रकट करै किन्तु मुखसे न उच्चार करै इस दशामें यजमान और विद्वान् अपनी
 धर्मज्ञा संमति से इसका कल्याण सोचिकरस्वतः स्नानोंकी आज्ञा देदेवें तौ उस अश्व-
 मेध में अवभृथ विधिसे स्नानकरिके शुद्ध होताहै=यही नियम शांखने दर्शाया है=
 यथा=अश्वमेधावभृथंगत्वात्तत्रानुज्ञातःस्नात्वासद्यःपूतोभवति=अर्थात्—अश्वमेध में अव-
 भृत के ससथ पर जाइ के तहाँ अनुज्ञा पाया हुआ प्रायश्चित्ती स्नान करिके सद्यही
 तत्काल शुद्ध होताहै=इन वचनोंमें अश्वमेधावभृथकी समस्या कहीजानेके उपलक्षणा
 से और भी अनेक यज्ञ जैसे अग्निष्टुत नाम जो अग्निष्टोमका रूपांतर विशेष होताहै
 और अग्निष्टुत के अंतर्गत पंचदशरात्र आदि यज्ञ जो अग्निष्टुत की समाप्ति पर्यंत
 उसके अंगभेद हों तथा सर्वमेध आदि जो वेदमें प्रसिद्ध हैं तिनमें से किसी एक यज्ञमें
 जाकर अवभृथ स्नान करिके पवित्र होसक्ता है जो देवकी इच्छा से वानक ऐसा
 मिलिजाय किन्तु अश्वमेधसे उपरालू यज्ञों में शुद्धिपाने का प्रसारा गौतमका वचन
 है कि (अश्वमेधावभृथेवान्ययज्ञेऽप्यग्निष्टु दंतप्रचेदित्यादिः) अश्वमेध के अवभृथ में
 वा और किसी यज्ञमें भी जो अग्निष्टुत अंत कहाता हो स्नान करै=यह सब नियम
 उसीकेलिये समझना जो वारह वर्षकी व्रतचर्याकरनेमें लगिरहाहो और बीचमेंकदा-
 चित् ब्राह्मणकी रक्षा आदि दैवयोगसे बनिपरै तौ उसव्रतचर्याकी अवधिपूरीहोजा-
 यगी—परन्तु यहतात्पर्य नहींहै कि प्रायश्चित्तका आरम्भ न करिके अपनीस्वतंत्रतासे
 इन्हींज्ञानोंकोहुंहे कि यहभी एक प्रकारके प्रायश्चित्त होंगे—क्योंकि—शांखनेकठेह
 सिताइके स्पष्ट बही कहाहै=यथा=द्वादशैवर्षेशुद्धिंप्राप्तोत्यंतरावा ब्राह्मणामोचयि
 त्वारावांवाद्वाद्धानांपरिचारात् सद्यस्वाश्वमेधावभृथस्नानाद्वापूतोभवति=अर्थात्—
 वारहवाँवर्ष पूरा होने में शुद्धिको पाताहै अथवा बीचमें भी ब्राह्मणकी सौतसे हुडा-
 कर शुद्धहोताहै अथवा वारह गौनोंकी रक्षा करने से यद्य अश्वमेध से अवभृथ विधि
 का स्नान करने से सद्यही पवित्र होताहै=इसी लिये=सनुने यह डोल नांवा है कि
 प्रथम तौ हुंडन करार के वनमें वसै इत्यादि वारह वर्षकी गुरा दिधि में तत्पर कराने
 पीछे वह विद्वानकहा जो अदिद्रोहितके शुक्लमें लिखि चुकेहैं कि ब्राह्मणके अर्थ या
 गौनों के अर्थ अपनेप्राण खोदेवै इत्यादि अश्वमेधके स्नान पर्यंत बीचमेंकहिद्वर तिस

पीछे यह दर्शाया है कि जिसको बीचमें ब्राह्मणकी रक्षा आदिकोई प्रकारन बनिआवे सो वारह वर्षपूर्वकरे=यथा—एवंदृढव्रतोनित्यंब्रह्मचारीसमाहितःसमाप्तोद्वादशवर्षेव्रह्म हत्यान्यपोहति=अर्थात्—इसप्रकारव्रतको मजबूतीसे थाँभेहुये नित्यंप्रति ब्रह्मचारी ब्रह्महत्या चित्तको सावधानरखिकर वारहवां वर्षसमाप्तहोनेमेंब्रह्महत्या दूरकरदेताहै ॥ ० ॥ जो नियम अभी कहिचुके उसपर वादी तर्क उठाता है कि ब्रह्महत्या से क्षुति कर शुद्धि पावै यह उसी लपेट के साथ कहागया है जो ब्राह्मणकी रक्षाकरना आदि कई प्रकार या वारह वर्षकी व्रतचर्या करना सबदशा में शुद्धि पासक्ताहै तिससे सब कार्योंमें एकही तुल्य फल टाहिरा इसन्यायसे अपराधी को स्वतंत्रताहोनी--योरथ है कि वह चाहे तिस प्रकार से अपना पीछा छुडासके अर्थात् निज इच्छा से कोई एक प्रायश्चित्त इनमें से करे परन्तु ऐसा नहीं उचित है कि ब्राह्मण की रक्षा आदि प्रकारोंको वारह वर्षोंका अंगत्व माना जाय कियेभी उसी प्रधानकर्मका अंगहैं और अंगत्वभी नहीं मिट्ट होताहै क्योंकि प्रधान कर्मका विरोधी (बीचही मेंरोकिदेनेवाला) होने से भी अंग नहीं कहा जासक्ता है किन्तु अंग वही होता है जो प्रधान का अनुग्रहक (पीछा पकड़ने वाला साथ देने वाला) हो और यह विधान भी वारह वर्ष आरम्भ करने वाले का नहीं है जिससे कि उसी कार्य का जुदा विधानपायाजाता है इसपर यह दृष्टान्त भी सीमांसा के अनुसार है कि जैसे सब नामक यज्ञ करने पर उताख होकर विश्वजित यज्ञमें यजनकरे यह सबके प्रयोगमें प्रवृत्तहुये का उसके पूरे करने से असमर्थ का विश्वजित विधान एकदृष्टान्त है इससेभी स्वतंत्रता का होना ही युक्त पायाजाताहै कि जैसा (आगे दोस्रोमेंतालिस २४७ प्रलोक से आदिलेकर) अग्नि के तिरके सरजाना • तीरन्दाजों का निगाना बनिके सरजाना आदि जो कल्प कहे जायेंगे तिनमें भी यह अंक्षा न करनी चाहिये कि वेभी वारह वर्षके प्रारम्भ और समाप्ति के बीचसे लिये पढे गयेहैं तोवेभी वारहवर्षोंका एक एक अंग होंगे इससे वे सभी कल्प वारह वर्ष के बीचमें करने होंगे इससे कि यद्यपि पाठबीच में आया पर उसके बीचसे होनेपर भी उनका प्रयोजक (लगानेवाला) जो नहीं जाना जाता और प्रयोजक की आकांक्षा भी वारह वर्षों में जुदा देखि परतीहै तिससे परस्परउनका अंग और समाप्ति नहीं सावित होसक्ताहै जबकि अंगोंगित्व सावित नहुआ तो वारह वर्षोंके बीच उनका साधन भी आवश्यक नहीं टाहिरा—उसपर भी सीमांसामें दृष्टान्त है कि जैसे देवसे सावित्री ऋचाओं के प्रकरण में अग्निवित्कर्म की ऋचाओं भी बनिगए तिनके दो भांति के कर्महै कि अग्निप्रसिध्द और अग्निप्रकाशने दोतां

कर्म अग्निहीके साथहोते हैं तहांभीअग्नि रूप एकही कार्यके हेतुसे सामिधेनी ऋ-
चाओं के साथ उनका अंगत्व नहींमाना गया है—और बारह वर्ष की व्रतचर्या मध्ये
ठीकठीक उनका पाठहू बीचमें नहींहै जो अग्निमें प्रवेश होजाना आदि जुदे कल्पहैं
क्योंकि वशिष्ठ गौतम आदि अनेक ऋषियों ने बारह वर्ष का चर्चा छेडनेसे प्रथमही
उनको लिखाहै और यही स्वतंत्रता जाहर करदेने के लिये मनुने हरएक वाक्यों के
साथ विकल्प दर्शानेवाला वा शब्दभी लगाया है कि (लक्ष्यंशस्त्रभृतांवास्यात् प्रा
स्येदात्मानसर्गौवा)या तौ शस्त्रधारियोंका निशाना वनै या शरीरको अग्निमें भस्म
करै इत्यादि और उन्हींमनुजी ने प्रत्येक प्रायश्चित्त के साथ एवमेव ऐसेही ऐसे यह
प्रकार साथै यह ऐसा उपसंहार भी लगाया है तिससे भी सब जुदे जुदे प्रतीत होतेहैं
और यहभी साफरूहा है कि (अतोऽन्यत्तसमास्थायविधिंविप्रःसर्माहितः ब्रह्महत्याकृ
तेपापंच्यपोहत्यात्सवित्तथा) इनमें से किसी एक विधिपर आरूढ हो ब्राह्मण अपने
चित्तको सावधानरखै आत्मवेत्ता होके रहै तौ ब्रह्महत्या के निमित्त का पाप जो है
सो दूरहोजाता है—बादी सबका तोड करताहै कि इनसब कारणोंसेदेरी समझमें यह
आता है कि अग्नि मेंजलजाना आदि प्रायश्चित्तोंमें स्वाधीनता प्रत्यक्ष बहुतठीकहै
कि अपनीइच्छाके अनुसार कोई एकविधान साथैऔर इसीसे ब्राह्मण गऊकीरक्षा
आदिवाले विधानों में भी बारहवर्षका अंगत्व नहीं सिद्धहोता है क्योंकि उनका और
उनकाभी फल एकहीठहिरा कि ब्रह्महत्यासे छूटिजाताहै तिससे भेद मानना नचाहिये—
उत्तर कहते हैं छुनों=परिहृतमेतदंतराब्राह्मणांसोचयित्वा इत्यादिनाशंखवचनेनांगत्वा
वगसाह अंगस्यैवसतःप्रधानद्वारेणाफलसंबंधः नचप्रधानविरोधः यतोब्राह्मणावाराव-
धिकस्यैववृत्तानुष्ठानस्य फलप्राधनत्वंविधीयते इतिविरोधः=अर्थात्—सबकूठ कहा
पर यहतौ छोडिही दिया जो शंखके वचन में कि बारह वर्ष के बीचही में ब्राह्मण
को शौत से दचाइ के इत्यादि व्यवस्था कही तिससे साफ साफ बारह वर्षों का यह
अंग पाया जाता है और अंगहीके होते हुये प्रधान के द्वारा उसमें फल होता है और
बीचहीमें प्रधान कर्ष का त्याग होजानेपरभी प्रधानका विरोध इसमें नहीं है क्योंकि
उस अनुष्ठान का पूरा फल ब्राह्मण के प्राण वचने की ही अवधि तक विधान किया
गयाहै तिससे कोई विरोध इसमें नहींहै ॥ २४४ ॥ ब्राह्मण गऊकी रक्षा तथा अश्वमेध
का ज्ञान जैसेकहेगये तैसे उनकेसाथी लूच औरभी शीयहे सो अगिले श्लोकोंमें देखना॥

(पृथ्वोक्तानांशेषप्रकाराः प्रायश्चित्तभेदाः)

वीर्यनीत्रामयग्रमंत्राह्वणंगामथापिवा । दृष्ट्वापथिनिरातंकंठत्वावात्रह्यहाशुचिः २४५

आनीयविप्रमर्षस्वंहृतंयतितएववा । तन्निमित्तक्षतंशस्त्रेर्जीवन्नपिविशुध्यति २४६

अर्थः—यदा अतिलंबे और तीव्र रोगसे ग्रसे ब्राह्मणको अथवा ऐसी गऊको मार्ग में देखि निरोग करिके भी ब्राह्मण शुद्ध होता है—अर्थात्—कुष्ट आदि महारोगों से यदि कोई ब्रह्मण या गऊ दुखी देखे उसको औषधी भस्मबूटी आदि किसी अपनी युक्ति से चिकित्सा करिके निरोगी करे तो वहभी तत्काल शुद्ध होकर छुटकारा पाये किन्तु वारह वय परे क्रमेसे अपेक्षा कुछनहीं रही ॥ २४५ ॥ और भी यदि ब्राह्मणके हरे हुये सर्वस्वको ल्याइकर देवे या चाहे घायलहोके मराजाय या उसधनके निमित्त गऊ से घायल होकर जीतारहे तोभी शुद्ध होजाता है—अर्थात्—ऊपरले प्रलोक में दो प्रकार से शुद्ध होना कहा इसमें तीनप्रकार से कहा है कि जिस किसी ब्राह्मणका कोई माधनद्योग आदि किसी बलवान ने हरा हो तिससे दुःखी देखि के यातौ सवराधन लानके ल्यादेवे या उनधनकेलिये युद्धकरिके प्रायश्चित्ती आप माराजाय या घायल होके मरनेके समान होजाकर भी जीतारहे चाहे धनको नहीं लासका तोभी शुद्ध होजाता है ॥ २४६ ॥

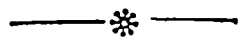
२४६ अधिकोक्तिः—बादी ने फिर इसमें भी यह तर्क उठाया है कि एकसीच-वालिसके प्रलोकमें ब्राह्मण गऊकी रक्षा करनी कहिचुके थे अत्र यहाँ दुवारा फिर बोकाहा—तिसका यह उतर है कि हाँ मत्यकहा वहाँ और यहाँ भी इसका यह तात्पर्य है कि वहाँ तो अपने प्राण खोड कर भी रक्षाकरनी कही थी और यहाँ केवल चिकित्सा या मंत्र यंत्र आदि उपायोंसे रक्षाकरनी कही कि जिसमें अपने प्राणोंको संदेह नहीं यह दोनोमें विरोधता है—इसी अभिप्राय से मनुने यह कहा है कि (विप्रमर्षतन्निमित्तेवाप्राणालाभेविमुच्यते) ब्राह्मण के प्राण बचाइ के या उसके निमित्त अपने प्राण खोडके छुटकारा पाजाता है ॥ २४५ ॥ दोसौ छहालिम में जो शस्त्रोंका उल्लेखनहै सो इसलिये कि गऊकी घावव्याकर भागिपरें तो यह प्रायश्चित्ती वारह वयकी अवधि परी किये बिना शुद्ध न होगा अर्थात् जो बहुत से घाव अपने देह पर व्याकर भी न भारा और मरने के मुन्य होकर देवकी उच्छ्वा में जीना रहिगया हो तिसकी अवधि अभी पूरी होगई बादी जायगी—इसीहेतु मनुने ऐसा बचन कहा है कि (अथर्वप्रतिरोजायासुर्वस्वदित्यया तीन वा तीनसे अधिक डाकूओंको रोकनेवाला

वने अर्थात् बहुतों को रोकने लड़ने से साराजाय या बहुत घायलहोके दैव योग से व्रिचजाय फिर चाहें धन को न छीनि पावें तौ भी शुद्ध होजायगी क्योंकि छीनि पाउनेवाला काम उसने सजावसे किया अथवा चाहें सकबासा वा ईंट तक भी देहमें न लगीहो और डाकू चाहें अनेक वा सकही हो परन्तु सबधन उनसे छीनके ब्राह्मण को ल्यादेवै कि जिसका जितना चोरों ने लूटा था तौभी यह प्रायश्चित्ती शुद्ध होजावै ॥ ये पाँचौ भाँतिके कल्प भी ऐसेहैं कि इनमें अपराधीकी इच्छासे स्वाधीनता नहींहै कि बारह वर्षोंकी व्रतचर्या प्रारम्भ किये बिना प्रथमसेही गऊ ब्राह्मण की चिकित्सा या लूटा हुआ धन छीनि कै शुद्ध होजानेका अधिकारी बनै किन्तु दो सौ चवालिस की २४४ कीअधिकोक्ति के अंत में जो कुछ निपटारा सिद्ध होचुका सो यहाँभी समझ लेना ॥ २४६ ॥

अगिले परिच्छेदमें प्रायश्चित्तके अनुकल्प कहेजायँगे कि जो बारह वर्ष की व्रतचर्या करना न चाहै सो इनको करै ॥

अथ प्रायश्चित्तांतरानुकल्पप्रदर्शकौऽथपरिच्छेदः

२६ जनत्रिंशः ॥



इसपरिच्छेदमें ब्रह्मणके कुछ और भी प्रायश्चित्त कल्पनाहोंगे कि उनमें प्रायश्चित्ती को स्वाधीनता भी ठहिरैगी कि चाहें यह करौ या वह करौ—यद्यपि बारहवर्षके स्थानी भूतकल्प कहेजायँगे तथापि उनमें भी अपराधीकी विशेषता अनुसार विषय भेदसे विचार करना होगा सो अधिकोक्तियों में देखना ॥

(अग्निप्रवेशरूपंप्रायश्चित्तांतरं)

लोमभ्यःस्वाहेत्येवंहिलोमप्रभृतिवैतनुम् । मज्जांतांजुहुयाद्वापिमंत्वेरेभिर्यथाक्रमम् २१७
अर्थः—यद्वा (लोमभ्यःस्वाहा) इत्यादि से से इलमंत्रों से यथाक्रम रोस आदि मज्जा पर्यन्त तनुं (शरीर) को होमही करै=अर्थात्—इस वाक्यमें वापि यद्वा शब्द उस पक्ष से दूसरा पक्ष दर्शाने वाला है कि जो बारह वर्षका पक्ष पहिले कहि चुके और हि शब्द इस निमित्त है कि अन्य स्मृतियों में त्वचा आदि जो व्योरेदार प्रसिद्धहै सोभी

समभिल्लेना क्यौंकि यहाँ केवल रोमा आदि कहिके संक्षेप किया गया है—इससे यह अभिप्राय दर्शित कि यदि ब्राह्म वर्यकी व्रतचर्या न करना चाहै तो यह करे कि अग्नि में अपने शरीर को होमै सो किस विधान से कि (रोमा• त्वचा• रक्त• सांस• मेदा• मूत्राद्युत्तमै• हाड• मज्जा) ये आठ वस्तु होम की सामग्री मानै और इन्हीं से प्रत्येक जूटे द्रव्यका स्थाईत संव बनावै सो अधिकोक्ति में देखो ॥ २४७ ॥

२४७ अधिकोक्तिः—शरीरके धातुरूपी होम की सामग्री से जुदे जुदे आठों संव बनाकर ब्रह्मिणे प्रक्राय किये हैं=यथाह वशिष्ठः=ब्रह्महारितमुपसमाधाय जुहुयात् लोमानिमृत्योर्जुहोमि लोमभिर्मृत्युंवाशय इति प्रथमां १ त्वचंमृत्योर्जुहोमित्वचामृत्युं वाशय इति द्वितीयां २ लोहितंमृत्योर्जुहोमिलोहितेन मृत्युंवाशय इति तृतीयां ३ सांसामिमृत्योर्जुहोमि सांसैर्मृत्युंवाशय इति चतुर्थीं ४ मेदामृत्योर्जुहोमि मेदसामृत्युं वाशय इति पंचमीं ५ ह्यायुनिमृत्योर्जुहोमि ह्यायुभिर्मृत्युंवाशय इति षष्ठीं ६ अर्यो निमृत्योर्जुहोमि अर्युभिर्मृत्युंवाशय इति सप्तमीं ७ मज्जामृत्योर्जुहोमि मज्जाभिर्मृत्युंवाशय इत्यष्टमीं ८ =अर्थात् वशिष्ठ ने यह कहा है कि ब्रह्महत्यारा पुरुष आत्मे का व्रत पालन अपने समीप नियत करिके इन आठों चीजके आठ संवों से आठ होम करे (इसी हेतु मूल श्लोक में योगीश्वर ने (लोमप्रभृति) रोम आदि आठ वस्तु बताये और (लोमभ्यःश्वाहा) रोम संव बताये तिनको भी इन्हीं वशिष्ठ के बताये संवों में इस शक्ति ने जोड़े कि) लोमानिमृत्योर्जुहोमिलोमभिर्मृत्युंवाशय लोमभ्यःश्वाहा १ यह एक संवना इसी प्रकार आठों संवना लेवे=इस पर एक विचार है कि लोमभ्यःश्वाहा कहिके से रोम आदि द्रव्यही देवता समझे जाते हैं क्योंकि जैसे (सर्पशयश्वाहा सर्पायश्वाहा इत्यादि) चतुर्थी विभक्ति से देवता को संबोधते हैं कि रोगी के निये श्वाहा या सूर्यके अर्थ श्वाहा—तेसे यहाँ रोमोंके अर्थश्वाहा या श्वाहा श्वाहा इतमें रोमखाल आदि आठों धातु देवतारूप प्रतीत होते हैं तथापि देवतात्त्व नहीं हैं क्योंकि (रोम आदि शरीर को होमै) इस कथन से उनको द्रव्यरूपही कल्पित किया है और द्रव्यही से होम सिद्ध होता है बिना द्रव्यके नहीं और (लोमभिर्मृत्युंवाशय) इत्यादि वशिष्ठ के संक्षेप में मृत्युही को हवि की आहुति बताने से देवता नहीं मृत्यु इतमें इवान है जो अग्नि के द्वारा रोमादि हवि स्वायमी-यमीसे—यह लक्ष्य दर्शित कि यन्मा गंधामा आदि शब्दसे अपनी सामर्थ्यके अनुमान कर रोमा आदि अपने शरीर से जुदे करि करि मृत्यु के नामसे आठों होम करिके पीछे हरे शरीर अग्नि से भोजित हवे (इतना यह स्पष्ट अभी भेय है कि एक संवसे एकही

आहुति वा अनेक या अष्टोत्तर शत आदि कोई संख्या भी नियत करै क्योंकि आठ होम करने कहे पर इसकेमध्ये कोईसंख्या नहींबाँधी तिससे एकहोम एकहीआहुति का प्रतीत होताहै) इसका समाधान यहहै कि (संख्या का नियम बाँधना कर्ता के स्वाधीन रहा कि प्रत्येक मंत्रकी आहुति जितनी करसके वही संख्या आठोंकी जुदी जुदी राखै इसीलिये यह लिखिचुकेहैं कि अपनी सामर्थ्यके अनुसार लोमखालआदि उपाड़ै=यहाँ श्रीमद्विज्ञानेश्वर कहिते हैं कि रोम खाल आदि का हवि रूपी द्रव्य टोकटोक सिद्धहुआ इसमें कुछ संदेहनहीं परंतु किसीविरले टोकाकारोंने प्रथमसेसा अर्थ लगायाथा कि मूलमें होमकेलिये कोईद्रव्यनहीं अदेशकिया तिससे इनमंत्रोंसे धीका होम करना चाहिये•सो वह निरूपणा किये बिना धीका होम कहा तिससे उस अर्थका आदर न करना चाहिये ॥ ० ॥ मूलप्रलोक में (जुहुयात्) होमै इसप्रयोग सेही अग्निका नाम लिये बिना उसका प्रयोजन सिद्ध होजाता है कि होम करै तौ अग्नि भी अवश्य चाहिये परन्तु बशिष्ठ के वचन में जुहुयात् होने पर भी (अग्निं उपसमाधाय)यहदुबारा कहागयाहै कि अग्निकोपासरखिके होमकरै तौ इसदुबारा के लेखसे लौकिक अग्निकी ध्वनि पाई जातीहै कि उसमें होम करै और यही बात उचितहै क्योंकि जो पुरुष अग्निमानहोके पतितहुयेहों तिनके अग्नि भी पतित हो जातेहैं तिससे वे पतितअग्निपुरुष कहाते और उनकेलिये एकविधानकहागयाहै कि जिसके हेतु से उनकोभी लौकिकाग्नि सेही प्रयोजन आपरैगा=यथाहोशना=आ-हितार्ग्निस्तुयोविप्रोमहापातकभारभवेत् प्रायश्चित्तैर्नशुध्येत्तदग्नीनांतुकागतिः वै तानंप्रक्षिपेत्तोयेशालाग्निंशमयेद्बुधः =कात्यायनस्तु =महापातकसंयुक्तोदैवात्स्यादग्निमान् यदि पुत्रादिःपालयेदग्नीन्युक्तप्रचादोषसंक्षयात् प्रायश्चित्तं कुर्याद्यः कृर्वन्वा प्रियते यदि गृह्यनिर्वापयेच्छ्रौतमप्स्वस्येत्सपरिच्छदम्=अर्थात्—जो ब्राह्मण (आ-हितार्ग्नि) अग्निमान् है वह महापात की होजाय और प्रायश्चित्तों से न शुद्धहोवै तिसके अग्नियों की क्यागति होगी (सो कहिते हैं कि) उसका वैतान जो वेदकी विधिसे स्थापनकिया दिस्तारहै सामग्री उपकरणा औजार आदि सो सब जलप्रवाह में हत्यारा या कोई और जानी छोडि आवै तथा शाला के अग्निको बुझाड डारै= कात्यायन भी कहिते हैं कि=जो अग्निमान् है वह देवयोगसे यदि महापातकी हो-जाय तौ उसका कोई पुत्र वा शिष्य आदि अग्नियोंको पालै फिर दोयी भी अपना दोष सिताने के वादिसे पालै•अथवा यदि ऐसा हो कि प्रायश्चित्तको न करै यद्वा प्रायश्चित्त प्रारम्भ करिके सरजाय तौ गृह्य अग्नि को बुझावे और यौत को जल में

मर्माभिलेना क्योकि यहां केवल रोमा आदि काहिके संक्षेप किया गया है—इससे यह अभिप्राय दहिरा कि यदि बारह वर्यकी व्रतचर्या न करना चाहै तो यह करे कि अग्नि में अपने शरीर को होमै सो किस विधान से कि (रोमा • त्वचा • रक्त • मांस • मेदा • म्नायु नमै • हाड • मज्जा) ये आठ वस्तु होम की सामग्री मानै और इन्हीं से प्रत्येक जुदे द्रव्यका स्वाहांत संव बनावै सो अधिकोक्ति में देखो ॥ २४७ ॥

२४७ अधिकोक्ति:—शरीरके धातुरूपी होम की सामग्री से जुदे जुदे आठौं संव बनाकर वशिष्ठ ने प्रकाश किये हैं=यथाह वशिष्ठः=ब्रह्महारिणमुपसमाधायजुहुयात् लोमानिमृत्योर्जुहोमि लोमभिर्मृत्युंवाशय इतिप्रथमां १ त्वचंमृत्योर्जुहोमित्वचामृत्युं वाशय इति द्वितीयां २ लोहितंमृत्योर्जुहोमिलोहितेन मृत्युंवाशय इति तृतीयां ३ मांसानिमृत्योर्जुहोमि मांसैर्मृत्युंवाशय इति चतुर्थीं ४ मेदोमृत्योर्जुहोमि मेदसामृत्युं वाशय इति पंचमीं ५ ह्यायुनिमृत्योर्जुहोमि ह्यायुभिर्मृत्युंवाशय इतियथीं ६ अस्थो निमृत्योर्जुहोमि अस्थिभिर्मृत्युंवाशय इति सप्तमीं ७ मज्जामृत्योर्जुहोमि मज्जाभिर्मृत्युंवाशय इत्यष्टमीं ८ =अर्थात्—वशिष्ठ ने यहकहा है कि ब्रह्महत्यारा पुरुष अग्नि का बहुत बड़ा झण्ड अपने समीप नियत करिके इन आठौं चीजके आठ संवों से आठ होम करै (इसी हेतु सूत पल्लोक में योगीश्वर ने (लोमप्रभृति) रोम आदि आठ द्रव्य जताये और (लोमभ्यःस्वाहा) रोम संव बताये तिनको भी इन्हीं वशिष्ठ के बताये संवों में इस रीतिसे जोड़े कि) लोमानिमृत्योर्जुहोमिलोमभिर्मृत्युंवाशय लोमभ्यःस्वाहा १ यह रक्त संववना इसी प्रकार आठौं संव बना लेवै=इस पर एक दिचार है कि लोमभ्यस्वाहा कहिने से रोम आदि द्रव्यही देवता समझे जाते हे क्योकि जैसे (रोगोशाशस्वाहा सर्यायस्वाहा इत्यादि) चतुर्थी विभक्ति से देवता को संव कहेजातेहे कि रोगोश के लिये स्वाहा या सूर्यके अर्थ स्वाहा—तैसे यहाँ रोमों के अर्थस्वाहा खालके अर्थ स्वाहा इनमें रोमखाल आदि आठौं धातु देवतारूप प्रतीत होते हे तथापि देवतारूप नहींहे क्योकि (रोम आदि शरीर को होमै) इस कथन से उनको द्रव्यरूपही कल्पित किया है और द्रव्यही से होम सिद्धहोता है विना द्रव्यके नहीं और (लोमभिर्मृत्युं वाशय) इत्यादि वशिष्ठ के संवोंमें मृत्युही को हवि की आहुति बताने से देवता वही मृत्यु इसमें प्रधान है जो अग्नि के द्वारा रोमादि हवि स्वायगी-प्रसीसे—यह तात्पर्य दहिरा कि फरमा गंडासा आदि शस्त्रसे अपनी सामर्थ्यके अनुसार उक्त रोमा आदि अपने शरीर से जुदे करि करि मृत्यु के नामसे आठौं होम करिके पीके रुदे शरीर अग्नि में क्षोक्ति देवे (इतना यह संदेह अभी शेष है कि एक संवसे एकही

आहुति वा अनेक या अष्टोत्तर शत आदि कोई संख्या भी नियत करै क्योंकि आठ होम करने कहे पर इसकेमध्ये कोईसंख्या नहींबाँधी तिससे एकहोम एकहीआहुति का प्रतीत होताहै) इसका समाधान यहहै कि (संख्या का नियम बाँधना कर्ता के स्वाधीन रहा कि प्रत्येक संत्रकी आहुति जितनी करसकै वही संख्या आठोंकी जुदी जुदी राखै इसीलिये यह लिखिचुकेहैं कि अपनी सामर्थ्यके अनुसार लोमखालआदि उपाड़ै=यहाँ श्रीमद्विज्ञानेश्वर कहिते हैं कि रोम खाल आदि का हवि रूपी द्रव्य ठीकठीक सिद्धहुआ इसमें कुछ संदेहनहीं परंतु किसीबिरले टीकाकारोंने प्रथमसेसा अर्थ लगायाथा कि मूलमें होमकेलिये कोईद्रव्यनहीं अदेशकिया तिससे इनसंत्रोंसे घीका होम करना चाहिये•सो वह निरूपणा किये बिना घीका होम कहा तिससे उस अर्थका आदर न करना चाहिये ॥ ० ॥ मूलप्रलोक में (जुहुयात्) होमै इसप्रयोग सेही अग्निका नाम लिये बिना उसका प्रयोजन सिद्ध होजाता है कि होम करै तो अग्नि भी अवश्य चाहिये परन्तु ब्रशिष्ठ के वचन में जुहुयात् होने पर भी (अग्निं उपसमाधाय)यहदुबारा कहागयाहै कि अग्निकोपासराखके होमकरै तो इसदुबारा के लेखसे लौकिक अग्निकी ध्वनि पाई जातीहै कि उसमें होम करै और यही बात उचितहै क्योंकि जो पुरुष अग्निमानहोके पतितहुयेहों तिनके अग्नि भी पतित हो जातेहैं तिससे वे पतितअग्निपुरुष कहाते और उनकेलिये एकविधानकहागयाहै कि जिसके हेतु से उनकोभी लौकिकाग्नि सेही प्रयोजन आपरैगा=यथाहोशना=आहिताग्निस्तुयोविप्रोमहापातकभाग्भवेत् प्रायश्चित्तैर्नशुध्येत्तदग्नीनांतुकागतिः वै तानंप्राक्षिपेत्तोयेशालाग्निंशमयेद्बुधः =कात्यायनस्तु =महापातकसंयुक्तोदैवात्स्यादग्निमान् यदि पुत्रादिःपालयेदग्नीन्व्युक्तप्रचादोषसंक्षयात् प्रायश्चित्तंनकर्याद्यःकुर्वन्वा प्रियते यदि गृह्यनिर्वापयेच्छ्रौतमस्त्वस्येत्सपरिच्छदस्=अर्थात्—जो ब्राह्मण (आहिताग्नि) अग्निमान् है वह महापात की होजाय और प्रायश्चित्तों से न शुद्धहोवै तिसके अग्नियों की क्यागति होगी (सो कहिते हैं कि) उसका बैतान जो वेदकी विधिसे स्थापनकिया विस्तारहै सामग्री उपकरणा औजार आदि सो सब जलप्रवाह में हत्यारा या कोई और जानी छोडि आवै तथा शाला के अग्निको बुझाड डारै= कात्यायन भी कहिते हैं कि=जो अग्निमान् है वह दैवयोगसे यदि महापातकी होजाय तो उसका कोई पुत्र वा शिष्य आदि अग्नियोंको पालै फिर दोयी भी अपना दोष सिराने के वादिसे पालै•अथवा यदि ऐसा हो कि प्रायश्चित्तको न करै यद्वा प्रायश्चित्त प्रारम्भ करिके सरजाय तो गृह्य अग्नि को बुझाडै और यज्ञ को जल में

सर्व सामग्री सहित छोड़ि आवें ॥ ० ॥ पूर्वोक्त होमका श्रेय कार्य अब कहिते हैं कि शक्तिके अनुमान होम क्रियेपीछे अग्निमें सबशरीर भक्षकना कहासी तीनवार उठि उठि के आंधे मुख गिरना चाहिये=तदाह मनुः=प्रास्त्रेदात्मानमरतो वाससिद्धेविरवा कशिराः=अर्थात्—जो पूर्व कल्पोंको न करे तो अच्छे प्रज्वलित अग्निमें शरीरकोही आंधे मुख तीनवार भक्षे=गौतम ने कुछ और भी विशेषता इसमें करी है कि (प्रायश्चित्तमरतो सक्तिव्रह्मघ्नस्त्रिवस्थातस्य) ब्रह्मघ्न को प्रायश्चित्त यह है कि अवस्थात नाम लंघन क्रिये हुये का अग्नि में प्रवेश करना तीन वार उठि उठि कर (लंघन इस लिये कहा कि शरीर दुर्बल और शुद्ध होजाने से अग्नि उसको शीघ्र भस्म करसके) तैसेही काठकी शाखावालोंकी यह श्रुतिहै कि (अनशनेन कर्पितोऽग्निमारोहेत्) लंघन से दुर्बल होकर अग्निपर सवारहोवै=अब यह विचार भी कर्तव्य है कि यह मरजानेका प्रायश्चित्त उसकेलियेहै जिसने कामनासे इच्छासहित महापाप क्रिया हो जैसा अंगिराकी विचली स्मृतिका वचन है=यथाह मध्यसांगिराः=प्राणांतिकंचयत्प्रोक्तंप्रायश्चित्तंमनीषिभिः तत्कामकारविययंविज्ञेयंनावसंशयः=तथा =यःकामतोमहापापंनरःकुर्यात्कथंचन नतस्यशुद्धिर्निर्दिष्टाभृग्वग्निपतनादृते=अर्थात्—अंगिराने कहाहै कि जो जो मरणांतिक प्रायश्चित्त बुद्धिमानों ने कहे सो सब कामकारोंका वियय समझना इसमें संदेह नहींहै=तैसे=एक यह वचनहै कि जो आदमी किसी तरह कामना से चाहकर महापाप करे तिसकी शुद्धि नहीं होती कहीहै सिवाय पर्वतके गिखर आदि ऊंचेसे गिरने के या अग्निमें गिरनेबिना=यह प्रायश्चित्त जो इसी २४७ भद्रमें कहा गया सो बारह बर्योंके बिनाही स्वप्न क्रिया जाताहै अर्थात् इससे पहिले परिच्छेदमें जो ब्राह्मराकी रक्षा आदि कहेगये तिनकी तरह बारह बर्योंके साथ करना नहीं सूचित हुआहै ॥ २४७ ॥

(शस्त्रसंपातमध्ये स्थितिरूपंप्रायश्चित्तान्तरं)

नग्नामेवाहतोलक्ष्यभूतःशुद्धिमवाप्नुयात् । मृतकल्पःप्रहार्तोजीवन्नपिविशुद्ध्यति २४८

अर्थः—अथवा लडाइका बीच लक्ष्यभूत होके माराजाय तौभी शुद्धि को पावै या शस्त्रोंके प्रहारसे अतिपीड़ित मरनेके तुल्य होजाकर देवयोग से जीवता रहि कर भी शुद्ध होताहै=अर्थात्—जहां कहीं दुतरफा युद्ध होताहो या शीश्वनेवाले निशाना लगातेहो उन्हादि जिस दिक्काने पर बहुतमे दारा आदि शस्त्रों का पात होता हो उर्षा लगे प्रायश्चित्तनी जाकर युद्ध बानोंका निशाना बनिके बीचमें बैठे कि जिसमे दुतरफा चले हुये दारा आदि शस्त्र उसके ऊपर लगे तहां मरजाय तो यह शुद्ध होजाताहै अथ

बहुत घायल होकर सरनेके समान मूर्च्छा पाकर पीछे देवकी इच्छा से यदि होश में आजाय तो यह जीता रहिजाने पर भी शुद्ध होजाता है ॥ २४८ ॥

२४८ अधिकोक्तिः—निशाना बनिक्के बैठे इसमें राजा आदि किसी प्रबल की प्रबलता रूपी आज्ञासे प्रयोजन नहीं है अर्थात् आपही अपनी इच्छासे धनुष आदि शस्त्र विद्याके योद्धाओंसे प्रार्थना प्रकट करै कि मैं प्रायश्चित्तीहूं इसलिये तुम्हारा निशाना बना चाहता हूं—यथाह मनुः—लक्ष्यंशस्त्रभृतांवास्याद्विदुष्यामिच्छयात्मनः= अर्थात्—शस्त्रधारी विद्वानोंका लक्ष्य बनै अपनी इच्छासे ॥ यह प्रायश्चित्त जो सरसांतिक रूप टहिरा तिससे यह सबके लिये नहीं किन्तु उसके लिये समझना जो प्रायश्चित्ती आप क्षत्रीही और इच्छा सहित ब्राह्मणको मारा हो बल्कि जिस क्षत्री में यज्ञ करनेकी समर्थता हो तो अश्वमेध आदि यज्ञोंसे विकल्प भी होसकताहै क्योंकि मूल श्लोक में अपि शब्द जो आया तिसके ध्वन्यर्थसे ऐसा क्षत्री अश्वमेध आदि यज्ञों से भी शुद्ध होताहै—तदाहमनुः—यजेतवाश्वमेधेनस्वर्जितारोसवेनच अभिजिद्विजिदभ्यां वात्रिवृत्ताग्निषुत्तापिवा=अर्थात्—पर्व कहे कल्पोंको न करसकै तो अश्वमेधसे यज्ञ करै या स्वर्जित नाम यज्ञकरै या रोसव यज्ञ करै या अभिजित यज्ञ या विजित यज्ञोंसे यज्ञ करै या त्रिवृत्त नाम यज्ञसे या अग्निषुत्त नाम यज्ञसे प्रायश्चित्तकरै— इनमें एक अश्वमेधका यज्ञ केवल सार्वभौस क्षत्रीको सूचितहै जो सब धरतीके राजाओं पर आज्ञाकारक महाराजाधिराजहो—क्योंकि पराशर ने ऐसा कहा है (यजेतवाश्वमेधेनसर्वत्रियस्तुसहीपतिः) कि जो क्षत्री सब धरतीका पति होय वह अश्वमेध से यज्ञ करै (नाराधर्भौसोयजेतेत्यसार्वभौसस्यप्रतिषेधदर्शनाच्च) और जो सार्वभौस न हो सो अश्वमेध न करै क्योंकि हरकाई अश्वमेधका अधिकारी नहीं यह प्रतिषेध भी देखा जाताहै—सार्वभौस को यह अश्वमेध रूपी प्रायश्चित्त उस दशा में कि जहां इच्छा सहित हत्या आदि करने से सरसांतिक प्रायश्चित्त टहिरा हो (इससे यह बात भी स्पष्ट होगई कि सार्वभौस से उपराल राजाओंको अश्वमेधके सिवाय जो अन्ययज्ञों के नाम कहे सो सब सक्तकरने) सार्वभौसके सध्ये यह वचनभी यमस्मृति का प्रमाण है कि—महापातककृतरिषुद्वारोसतिपूर्वकस्य अस्मिन्प्रविश्यभुञ्जंतिस्थित्वावामह तिक्रतौ=अर्थात्—चारो महापातकी जो जानि बूझिके पाप करने वाले हुये हों सो अग्निमें प्रवेश करिके शुद्धि होतेहैं कि जैसा २४७ में दर्शाव होचुका अथवा महायज्ञ जो अश्वमेधहै तिसमें दौटके शुद्ध होते हैं सो यह अधिकार सार्वभौस को कहिचुके तिससे उसको अस्मिन्में प्रवेश करना आवश्यक नहीं रहा किन्तु जिनको अश्वमेधक

अधिकार नहीं तिनको अग्निका अधिकार ठहिरा—क्योंकि यमस्मृतिके वचनद्वारा अग्निमे सरजाना और अश्वमेध करना दोनों फल बराबर सिद्धहुये ॥ ० ॥ और अनेक यज्ञ जो स्वर्जित आदि ऊपर दर्शासंगस तिनका अधिकार तीनोंवर्गमें जो आहिताग्नि पुरुयहां और पहिले भी यज्ञ कर चुकेहों उन्हींको आवश्यक है (सबको नहीं) सो उनके लिये बारह बर्योसे विकल्पहै कि चाहें बारह बर्य की व्रतचर्या करें या वही यज्ञकरें जो पहिले कभी किया हो—परन्तु ऐसा नहीं कि प्रायश्चित्तही के निमित्त पर स्वर्जित आदि यज्ञ करना चाहिके अग्निका स्थापन करें या पहिला यज्ञ करें• क्योंकि जोपतित होचुका उसको द्विजातियोंवाले कर्मका अधिकार नहींरहा• और तर्कभी न करनी चाहिये कि जैसे दोसौ तैत्तलिस २४३ की अधिकोक्तिमें संध्योपासन करनेका अधिकार सिद्ध किया था तैसे उसकी तरह अग्निका स्थापन और प्रथम यज्ञका करना भी अविरोध ठहिराया जाय• सो यह तर्क इस हेतुसे न करनी चाहिये कि वहां तो यह तात्पर्य था कि सभी कर्मोंके प्रारम्भमें शरीरकी शुद्धि करनी आवश्यक होतीहै वह शुद्धि स्नान और संध्यासे होतीहै जब कि प्रायश्चित्तकी स्नान करना उस अधिकोक्तिमें कहागया तो यह बात आपही सिद्ध होजाती है कि शुद्ध होनेके लिये स्नान करना कहा तिससे स्नानकी अंगभूत संध्याभी अवश्य करनी शेष रही सो करनी चाहिये—और यहां यह प्रयोजनहै कि अग्निका स्थापन और पहिला यज्ञ ये उस पिछिले यज्ञके अंगभूत नहींहैं जो प्रायश्चित्त रूपी करना कहा तिससे उसका शेष कर्मभी ये नहींहैं जो संध्योपासनकी भाँति तत्काल करिलेना जातीकर्म से अविरोध माना जासके•क्योंकि यहां यही तात्पर्यहै कि जिसके अग्निकी स्थापना का अधिकार होनेसे नित्यंप्रति अग्निहोत्र कर्म होता रहा और दोगी होजानेसे पहिले कोट्टेया यज्ञ भी उसने किया हो तिसको यह अधिकार पाया जाता है कि बारह बर्य वाले प्रायश्चित्त के बदले उसी यज्ञ को फिर करें जिसको पहले कभी किया था—अश्वमेधके उपरालू जिन यज्ञोंका करना जिन लोगों पर ठहिराया गया तिनके लिये यह विचार भी करना आवश्यक है कि साक्षात् हन्ता पुरुय को बारह बर्य के बदले पूरी दक्षिणा से कराया जाय और उसके सहायक आदि जिस किसी को आधा प्रायश्चित्त के बर्यका ठहिराहो तिसको आधी दक्षिणा से और जिसको चौथाई तीनबर्य के बदले यज्ञ ठहिरा हो तिसको चौथाई दक्षिणासे कराया जाय इत्यादि अपनी बुद्धि से व्यवस्था कल्पित करि लेनी चाहिये ॥ २४८ ॥

(अन्यच्चप्रायश्चित्तान्तरम्)

अरण्येनियतो जप्त्वा त्रिवेदेस्यसंहिताम् । शुद्धयेतवामिताशीत्वाप्रतिस्रोतःसरस्वतीम २४९

अर्थः—वनमें नियताहार होके वेदकी संहिता को तीनवार जपिके भी शुद्ध होय यहा सित्तहारी होके स्रोत स्रोतके प्रति सरस्वती को जाइके भी शुद्ध होय=अर्थात् थोड़े भोजनका एकसा नियम बाँधिके निर्जन वन में किसी पुनीत स्थानपर वेद संहिताकी तीन आवृत्ति पाठकरै या उसी तरह थोरे प्रसारा का भोजन भिक्षा खाते हुये पर्व देशमें प्लक्ष्णाम उपद्वीप के क्षरने से यात्रा प्रारम्भ करिके पश्चिम समुद्र तक पहुँचै फिर वहाँसे क्षरने और स्रोतोंके सहारे रास्तालेकर सरस्वती नदीको पहुँचै तो शुद्ध होजाता है इसमें बारह आदि वर्षोंका कुछ नियम नहीं रहा किन्तु जितने दिनमें उक्त कार्य होसकै वही नियम है ॥ २४९ ॥

२४९अधिकोक्तिः—इसप्रायश्चित्त बालेको वह भिक्षालेनीचाहिये जो हविष्य में गिनती हो जैसे हेमंतिका आदि मुन्यन्न बहुधा होतेहैं क्योंकि (हविष्यभुग्वानुचरेत्प्रतिस्रोतःसरस्वतीम्) मनुने यह कहाहै कि हविष्य भोजन करते हुये स्रोत स्रोत के द्वारा सरस्वतीको चलाजाय अथवा इस वचनका यह अर्थहै कि नित्यंप्रति हवन करिके उसका शेष वचाहुआ हविष्य भोजन करै किन्तु भिक्षा मध्ये कुछ हविष्य का नियम नहीं ॥ वेद संहिताका जप करना कहा तीन बार सो मंत्र और ब्राह्मणरा रूप संहिता समझनी और संहिता लेनेसे वेदका पद क्रम इसमें नहीं सूचित किया किन्तु केवल मंत्र ब्राह्मणरा रूप संहिता का पाठ करना चाहिये सो यह प्रायश्चित्त केवल उसी पर आरुढ है जो वेद पढा हुआ विद्वान् हो और निर्धनी भी हो जिसने आप गुरावान् होकर निर्गुरा ब्राह्मणका बध किया हो और इच्छा बिना धोखा से बध कियाहो ॥ दूसरा सरस्वती को जाना कहा सो निर्गुरा विद्या विहीन हत्यारा जो धनसे भी हीनहो जिसने किसी निर्गुरा ब्राह्मणको मारा हो तिसके लिये आवश्यक् जानी क्योंकि (तिरस्कृतोयदादिप्रोनिर्गुरोऽभियतेयदीत्यादिनामुदन्नुवचनस्यदर्शितत्वात्) ये कुसंतु के वचन पहिले २४३की अधिकोक्ति से लिखेराये तिनको भी देखौ=और जो मनुका यह वचनहै (जपित्वाऽन्यतसंदेद्व्योजनानांगतंत्रजेत्) कि अन्यतत्र किसी एक वेद को जपिकर सौ योजन (चारसौकोस) की यात्रा भी करै सो भी यह वही प्रकारहै जो वनमें संहिता जपना कहागया मनुके इस वचन में सौ योजनकी यात्रा अधिकहै सो चलसकने में समर्थहो तिसकेलिये समझना तहाँ वेद

का जप गकही आवृत्ति है अर्थात् जहाँ मात्रा करनी नहीं कही उसमें तीन आवृत्ति पाठ करना कहा ये दोनों बात एकसी बराबर हैं कुछ भेद नहीं ॥ अब जो बड़े धनवान् हों तिनके लिये विकल्प नीचे कहेंगे ॥ २४९ ॥

(धनाढ्यानांप्रायश्चित्तान्तरंच)

पात्रेधनंवापर्यासिंदत्त्वाशुद्धिमवाप्नुयात् । आदातुश्चविशुद्ध्यर्थमिष्टिर्वैश्वानरीतथा २५०

अर्थः—यद्वा पात्रमें ठीक धन देकर शुद्धि को पावै + तथा उस धनका प्रतिग्रह लेने वाली विशुद्धि के लिये वैश्वानरी इष्टि करनी चाहिये अर्थात् वैश्वानर देवता है जिसका ऐसा यज्ञकरे ॥ २५० ॥

२५० अधिकोक्तिः—पात्र ब्राह्मण वह कहाता है जो दान देने योग्य पात्र हो जिसके लक्षणा शास्त्रों में प्रसिद्ध और आचार मर्यादा में कहिचुके हैं तैसेको धन धरती गऊ आदि उसके जीवन पर्याप्त ठीक ठीक देवै कि जिसते वह अपनी अवस्था भरका निर्वाह विधिपूर्व करसके ॥ + ॥ जिस पात्रने इस हत्याका प्रतिग्रह अंगीकार करिके लिया हो उसको भी अपने आत्मा की शुद्धि के अर्थ वैश्वानर यज्ञ करना चाहिये सो यह नियम अग्नि होत्रीपात्र का समझना किन्तु जो अनाहितारिणपात्र होय सो अपने उस देवता का होमकरै जिसकी उपासना रखता हो (यथावाहितारणे धर्मःसर्वोपासनिकस्येतिगृह्यकारवचनात्) क्योंकि गृह्य सूत्रके संग्रहकार ने लिखा है कि जो आहितारिण अग्निहोत्री काधर्म है वही उपासनीय देवतावाले का धर्म है बराबर समझो ॥ पात्रेधनं वा यह विकल्प वाची वा शब्द जो मूल प्रलोक में आया तिसके ध्वन्यर्थ से यह सूचना है कि इतना धन नहीं तो सामग्री सहित घरही दान करै=यदाहमनुः=सर्वस्ववावेदविदेब्राह्मणायोपपादयेत् ' धनंवाजीवनायालंगृहंवास परिच्छदत्=अर्थात्—मनु ने तीन कल्प कहे हैं कि याती अपना सर्वस्व जितना धन घरमें संचितहो सब वेदवेत्ता ब्राह्मण को समर्पण करै या उस ब्राह्मण की जिंदगी भरके अनुमान धनदेवै या निज सकान घरकी सामग्रियोंसे सयुक्त भरापुरा दान करै तब शुद्ध होय=इसमें भी यह वियय व्यवस्था करनी आवश्यकहै कि सुपात्रको धन का देना कहा सो उस विययमें समझना जहाँ मारनेवाला निर्गुण और धनवान् हो तथा निर्गुणको माराहो और इसी हत्यारेके यदि पुत्रादिक वंश न होतो जैसा मनुने सर्वस्व दान कहा सोभी उचित है और जो उसके पुत्रादि वंश हो तो सामग्री सहित दान देना उचितहै सर्वस्व नहीं पर ब्राह्मणकी आयु भरके योग्य धनदेना यह वंशके

उपस्थितहोते भी उचितहै ॥ पराशरस्तु=चातुर्विद्योपन्नस्तुविधिवद्ब्रह्मघातके समुद्र
 सेतुगमनंप्रायश्चित्तंविनिर्दिशेत् सेतुबन्धपथेभिक्षांचातुर्वर्ग्यात्सिमाहरेत् वर्जयित्वा
 विकर्मस्थान्छत्रोपानद्विवर्जितः अहंदुष्कृतकर्मवैमहापातककारकः गृहद्वारेषुतिष्ठा
 सि भिक्षार्थीब्रह्मघातकः गोकुलेषुचगोष्टेषुग्रामेषुनगरेषुच तपोवनेषुतीर्थेषुनदीप्रस्रव
 रोषुच सतेषुख्यापयन्नेनः पुरायंगत्वातुसागरस ब्रह्महाविप्रमुच्येत स्नात्वातस्मिन्महो
 दधौ ततःपुतोऽगृहंप्राप्यदत्त्वाब्राह्मणभोजनस्य दत्त्वावस्त्रपवित्राणि पतात्माप्रविशेदगृ
 हस=गर्वावापिशतंदत्त्वा चातुर्विद्यायदक्षिणास्य एवंशुद्धिसवाप्नोति चातुर्विद्यानुमो
 दितः=अर्थात्—जहां चारों वेद आदि विद्यासे संपन्न ब्राह्मणाही किसी विधि विधान
 के विज्ञाता ब्राह्मणाको घातक करै तहाँ यह प्रायश्चित्त आदेश किया जाय कि स-
 मुद्रके पुल तक यात्राकरै और सेतुबन्ध रामेश्वरके मार्गमें चारों बर्गोंके घरोंसे भिक्षा
 मांगै परन्तु खोटे कर्म करने वालोंसे न मांगै और उनको साथ नलेकर और सत्री जुता
 छोड़े हुये इस रीतिसे मांगै कि मैं महापातकी कुकर्मा ब्रह्मघाती हूं घरके द्वार खड़ा
 हूं भिक्षा पानेको और भिक्षा मांगनेके समयसे उपरालू भी जहाँ तहाँ गौओंके समूह
 पास जंगल और गौओंकी रहायसके स्थानों पास तथा ग्रामों वा कसबों और बड़े
 शहरों में होकर जहाँ निकसनाहो और तपोवन जहाँ वनमें तपस्वी रहिते हों तिनमें
 तथा तीर्थके स्थानोंमें और नदीके घाट वा झरना सोता आदि कोईसा आश्रमहो तहाँ
 सर्वत्र अपना पाप सुनाते हुये पुनीत सागर समुद्र सेतुबन्धको पहुँचिके उस महोदधि
 में स्नान करिके हत्यारा मुक्तिपावै वहाँसे पवित्र हुआ अपने घर जाइके ब्राह्मणभो-
 जन कराइके पवित्र वस्त्र आदि दान देकर शुद्ध हुआ अपने घर में घुसै=अथवा=यह
 न होसकै तौ सकसौ गौसे विधि विधानसे चारवेदके विज्ञाताको दक्षिणा देकर भी
 शुद्ध होताहै क्योंकि चातुर्विद्य दानपात्र के आशीर्वचनों से शुद्धि प्राप्त होती है—सो
 यह दोनों कल्प भी उसीके समान समुझने जैसा योगीश्वरके मूलश्लोकमें कहागया
 कि जो धनवान् और विद्यासे हीनहो तौ धनदान करै तैसा यहाँ विद्वान् हत्यारे का
 चर्चाहै कि यातौ समुद्रकी यात्रा करै या सकसौ गौसे दानकरै ॥ ० ॥ जोकि सुमन्तु
 का यह वचन है कि=ब्रह्महासंबत्सरं द्वाचष्ट्यं चरेदधः शायी त्रियत्राणि कर्मावेदको
 भिक्षाहारो विद्य नदीपुलिन संगमाश्रम गोष्ठ पर्वत प्रस्रवणा तपोवन त्रिहारीस्यात्स्था
 नवीरामनी संबत्सरे पूर्णो हिरण्यक्षरिणो वीधान्य तिलभूमि सर्पी यि ब्राह्मणोभ्योददन्
 पूतो भवति—तदापिहंतुर्मूर्खस्यवनवतो जाति स्नात्त्वापादनेद्रयन्त्रं=अर्थात्—सुमन्तु ने
 जो कहा कि—ब्रह्महत्यारा एकवर्ष भर ऋचकृत करै धरती में सोवै तीनों संध्या में

स्नानकरे अपना कर्म मुनाता रहै भिक्षा भोजन करै दिव्य नदियों के किनारे और नदियों के संगम स्थानपर और जहां तपस्त्रियोंके आयस हैं गौओंका निवास हो पर्वत के आयस और झरने और तपोवन हैं सबमें विहार करता रहै स्थानपर तिके तहां आसन का वीर होके रहै इत्तरह एकवर्ष पूरा होनेपर सोना चाँदी मणिगज अन्न तिल धरती घी ये चीजें ब्राह्मणों को दान करता हुआ पवित्र होजाता है— सो यह नियम भी ऐसे विययपर समझना जहां मारने वाला सुख और धनवाच्य हो और अपने बर्ता जाति मात्र की हत्या करीहो ॥ और जो वसिष्ठ का यह वचनहै (हाद-गरात्रसम्भक्षोद्वाद्गारात्रमुपवसेत्) कि बारह दिन जलपीके रहै फिर बारह दिनकोरा उपवास करै • सो यह कल्प ऐसे वियय पर आरूढहै कि जहां मन से ब्राह्मण का मारडालना चाहि के मारने गया फिर आपही कुछ शोचि के बिना मारे लौट परा हो जैसा २५२ सूत्रलोक में कहेंगे तहां देखना ॥ और जो षट्त्रिंशत् सतका वचन है (यदंतुब्राह्मणांहत्वाशूद्रहत्याव्रतंचरेत् चांद्रायणांवाकुर्वीत् पराकद्वयमेववा इति तदप्रत्यानेय पुंस्त्वस्यसप्रत्ययवधेद्रष्टव्यं) किनपुंसवाह्मणाको मारि के शूद्रकी हत्यावाला व्रतकरै या चांद्रायण करै या दो पराक साधै— सो यह उस वियय पर विचारना कि जहां सरे ब्राह्मण की नामदी निपट असाध्य हो अर्थात् पुंसत्व चिकित्सा आदि से न होने योग्य ठहिरै और प्रत्यय सहित वध किया गया हो— इसी विययपर अप्रत्यय वध होने सधये वृहस्पतिकी वचन है (अरुणाद्याःसरस्वत्याःसंगमलोकवियुते शुद्धेत्त्रियवशास्त्रायीत्रिरात्रोपोयितोद्विजः) अर्थात्— अरुणा और सरस्वतीके संगमका स्थल जो लोकमें प्लक्षद्वीप से विख्यात है तिसमें त्रिकाल ज्ञान करके और तीनरात्रि निराहार व्रतकरनेसेद्विजाती शुद्धहोताहै— इसीप्रकार और भी नृतिगोदे वचन हुँदिकर जो वियस हों तिनकी व्यवस्था बुद्धिसानीसे कल्पित करनी चाहिये जो परस्पर समान हों तिनका विकल्प मानना चाहिये ॥ ० ॥ ध्यान करो कि बारह बर्षको आदिलेकर धनदान पर्यंत जो प्रायश्चित्त लिखे गये सो सब दोषज ब्राह्मण हत्यारे के लिनित से समझने किन्तु सभी आदिके लिये दूना आदि विषय समझना जो अंगिराके वचनसे देखो—अवाहंगिराः=पर्यद्याब्राह्मणानांनुसारा नोविदुस्तास्ता वैश्यानांविद्युताप्रोक्तापर्यहचव्रतंस्मृतम्=अर्थात्—ब्राह्मणोंकीपर्यंत सुभार्या परिज्ञान जितताहो उदमे दूना राजाओंकी यशाक्ता और त्रिगुणा साहकार वैश्योंकी समासधरे कर्ताहै और पर्यहके समान रात्रका व्रत भी होय दूना त्रिगुना— इतदर्थी से यह तात्पर्य ठहिरा कि जिस दशा में दो ब्राह्मणों के परस्पर एकमारा

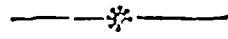
जानेमें दोनोंके गुणा लक्षणा आदि विचार से जो प्रायश्चित्त ठहिरै वही प्रायश्चित्त उसी गुणावाले क्षत्री को हुना उपदेश किया जाय जिसने उसी गुणा वाला ब्राह्मणा मारा हो तथा वही प्रायश्चित्त उसी गुणावाले वैश्यको तिसुना उपदेश किया जाय जिसने उसी प्रकारका ब्राह्मणा मारा हो और इसी मर्यादासे यहभी नियम निश्चित हुआ कि जो जो प्रायश्चित्त ब्राह्मणोंके परस्पर नियतहोचुके वही प्रायश्चित्त उत- नही परिसारासे उक्त दशासे क्षत्री आदिको भी दिये जाय कि जब उनके अपने वर्गा- मात्रमें परस्पर कोई उसी वर्गाका अनुष्ठान साराजाय (इसका विशेष व्योरा नीचे चतु- विंशतिके वचन से भी समझना) और इसी मर्यादासे जहाँ क्षत्री वैश्य या वैश्यऔर शूद्र में ऊंचे नीचे के विरुद्ध से ऊंचा सारा जाय तहाँ भी हुना आदि आदेश करना जैसा ब्राह्मणा और क्षत्री आदिके मध्ये अभी कहिचुके—यह सब दोष की बड़ाई के अनुसार प्रायश्चित्तों की कल्पना होतीहै जहाँ कहीं दोष की बड़ाई छोटाई पहि- चानने में संदेह खडा होय तहाँ दराडकी बड़ाई से भी दोषकी बड़ाई समझी जातीहै जैसा व्यवहार में कहचुके हैं कि (प्रतिलोमापवादेषु द्विगुणास्त्रिगुणोदमः वर्गानामा- नुलोम्ये च तस्मादर्धार्धानितः) अर्थात् प्रतिलोम अपवादोंमें कि जहाँ नीचावर्गा ऊंचे वर्गा का अपराध करै तहाँ हुना तिसुना दराडहै अर्थात् शूद्र जो वैश्यका अपराधी होय तिस पर हुना जो क्षत्री का अपराधी होय तिसपर तिसुना इसी तरह वर्गोंके अनुलोम अपराध से कि जहाँ ऊंचा वर्गा नीचेका अपराधी होय तहाँ आधा आधा दराड घटजाताहै यह व्यवहार मर्यादा परिपाटीमें देखौ ॥ ० ॥ और जो चतुर्विंशति मतका वचन है कि (प्रायश्चित्तं यदास्नातं ब्राह्मणस्य सहर्षिभिः पादोत्क्षिप्यः कुर्या- न्ववैश्यः सत्वाचरेत् शूद्रः सत्वाचरेत् पादमशेषेष्वपि पाप्मसु इति तत्प्रतिलोमानुष्ठितचतु- र्विंशतिहसंख्यतिरिक्तद्विषष्ट्य सितिविज्ञानेष्वरः) अर्थात्—चतुर्विंशति मत वालोंने कहाहै कि सहर्षियोंने जो प्रायश्चित्त ब्राह्मणाको बताया वही प्रायश्चित्त चौथाई कमकरिके क्षत्री करै और वैश्य आधा करै शूद्र चौथाईकरै यह अशेषसभी पापोंमें समुक्तना • इसपर विज्ञानेश्वर व्यवस्था देते हैं कि यह नियम उन पापों को छोडि के समुक्तना जो अपराध प्रतिलोम छोटी जातोंने ऊंची जातोंकेसाथ कियेहैं और उनको भी छोडिके समुक्तना जो चारभाँति के साहस व्यवहारकांड में लिखे गये क्योंकि जो ऊंची जातोंके साथ किये गये तिनका प्रायश्चित्त ऊपर अङ्गिरा के वचन से हुना तिसुना ठहर चुका और साहस चाहें किसी के साथ किये जायँ तौभी बडे अपराध हैं उनका भी हुना तिसुना ठहिराना चाहिये इनसे उपरालू और सब अशेष पाप जो

अपनी जाति के साथ किये जायँ या छोटी जातों के साथ किये जायँ उनके मध्ये चौथाई आदि कम करिके सत्री आदिका नियम इन वचनमें टीकरहा (चार प्रकार के माहस मनुष्य मारडालना १ प्रबलता से चोरी करना लूटना आदि २ पराई स्त्री के साथ प्रबलता करनी ३ प्रतिलोम गालीदेना आदि कुवचन ४) इन अपराधों में चौथाई आदि कमका नियम नहीं होसक्ता यह तात्पर्य है ॥ ० ॥ तथैव मूर्धावसिक्त आदि अनुलोम जातों का प्रायश्चित्त उनके दंडके अनुरूप विचारना चाहिये (दंड प्रगायनं कार्यं वर्णा जात्युत्तरादरैः) यह वचन व्यवहारकांडमें आचुका है इसीसे उनका दण्ड विचार होता है प्रायश्चित्त इस रीतिसे विचारा जाय कि जहां मूर्धावसिक्त ने ब्राह्मणका वध किया हो तो उसको ब्राह्मणसे अधिक और सत्रीसे न्यून प्रायश्चित्त चाहिये तिसमे बारहवर्ष के जराह अठारह वर्ष निश्चितहुये इसी नमनासे औरोंकी भी समुक्ति लेना और स्त्री बालक बूढा रोगी होने आदिके विचार सबके साथ करने जो पहिले लिखिचके हैं ॥ १ ॥ मी मारसे प्रतिलोमोत्पन्न जातोंका प्रायश्चित्त बढ़ाकर ऊहा करलेना चाहिये ॥ तथैव आयसके निवासियों को अंगिराने विशेषता दर्शाई है = यथा हांगिराः = गृहस्थोक्तानि पापानि कूर्वात्यायमिगो यदि शौचवच्छेधनं कुर्यु र्वारिव्रह्मनि दर्शनात् = अर्थात् - गृहस्थोंके मध्ये कहे पाप जो ब्रह्मचारी आदि आयसी लोगभी करें तो अपने अपने शौचके नुत्य पापोंका शोधन प्रायश्चित्त करें यह ब्रह्मनिदर्शन से पहिले समुक्तना (ब्रह्मके निदर्शनसे अर्थात् ब्रह्मज्ञानसे पहिले) इसवातका यह तात्पर्य है कि जब तक अपने आयस धर्मोंकी साधनासे पूरे सिद्ध न होचुकेहों केवल अभ्यास किया करतेहों तभी तक अपने शौचके अनुसार वेही प्रायश्चित्त करें जो गृहस्थोंके निमित्त कहेगा और आगे कहेजायँगे परन्तु जो बिरला कोई ब्रह्मचारी या वानप्रस्थ य यती सन्यासी अपने धर्मकी साधना अति कालसे करते करते योग धारणा आदि पूरी सिद्धिको पहुंचिले ब्रह्मज्ञानमें पूरा और ब्रह्मस्वरूप की तन्मयतामें दृढ होगया हो उसके लिये यह गृहस्थोंदाले प्रायश्चित्त नहींहैं क्योंकि प्रथम तो ऐसे महात्मा से महापाप होना भी सम्भव नहींहै तथापि जो कदाचित्काल जगदीश की इच्छामे कोई ना निमित्त आनि पने तब उनका नैमित्तिक प्रायश्चित्त भी उन्हीं के हाथ में दायक रहिता है कि बहुतर प्राणायाम आदि योगोंकी धारणा से विशुद्ध होंगे और अपने आप विशुद्धि कार्नेपर आनंदहोंगे यडा अपने आप उपेक्षा देखिपरनेमें उन्हीं के परिकर बालोंकी प्रेरणा उनपर होगी कि जैसे गृहस्थी की गृहस्थी पतित कदि का त्याग देनाहै तथैव गृहस्थी नाशकी प्रेरणा उनपर उचित नहीं) उस प्रकार के

विशिष्टोंको छोड़कर शेष आश्रमियोंको शौच के तुल्य कहा तिसका यह तात्पर्य है (सत्तच्छौचगृहस्थानां द्विगुणां ब्रह्मचारिणां त्रिगुणां तु वनस्थानां यतीनां तु चतुर्गुणां) इस वचन से आचार सत्यादि में कहि चुके हैं कि यह शौच का प्रसारा कहा सो गृहस्थोंका जानना और ब्रह्मचारियों को इससे दूना चाहिये वानप्रस्थों को तिगुना चाहिये यती संन्यासियों को चौगुना—इसी के तुल्य प्रायश्चित्त भी दूना तिगुना चौगुना समुझलेना ॥ परन्तु ब्रह्मचारीको सोरह वर्षकी अवस्था उपरान्त दूना चाहिये क्योंकि (बालोवाप्यूनघोडशाः) सोरहसे कम अवस्थामें बालक कहाता है (प्रायश्चित्ताह मर्हति) बालक बूढ़े आदि आधे प्रायश्चित्तके योग्य होते हैं यह पहले कहि चुके ॥ ० ॥ यह शंका न करनी चाहिये कि यती को बारह वर्ष का चौगुना अर्तालीस वर्ष करनेका अवकाश मिलसकना सम्भव नहीं क्योंकि इतनी अवस्था उसकी कहां रही बीचहीमें देह छूटिकर प्रायश्चित्त पूरा न होगा तिससे प्रारम्भ न करना चाहिये—सुनौ प्रारम्भ करना चाहिये क्योंकि प्रारम्भ करिके मरजाने पर भी पापका विनाश होजाता है—तथाच हारीतः=प्रायश्चित्तेव्यवसितेकर्तायदिविपद्यते पूतस्तदहरेवासा विहलोकेपरत्रच=व्यासोप्याह=धर्मार्थयत्तमानस्तु नचेच्छक्रोतिमानवः प्राप्नोभवतितत्पुराय सन्नैवास्ति संशयः=अर्थात्—प्रायश्चित्त करने पर निश्चय से उताह होनेमें जो कर्ता मरजाय तौ वह उसी दिन पबित्र होजाता है इसलोक और परलोक में भी यह हारीतनेकहा और=व्यासभी कहिते हैं कि=धर्म के निमित्त यत्न करता हुआ यदि कोई पुरुष न करसके तौभी उसके किये तुल्य पुराय फल मिलता है इसमें संदेह नहीं ॥ २५० ॥

॥ अब निचले परिच्छेद में और भांतिके पातकमें भी इसी ब्रह्महत्या वाला प्रायश्चित्त अति देय किया जायगा ॥

अथ क्वचिद्ब्रह्मवधादन्यथापि ब्रह्मवध प्रायश्चित्तना तिदेशप्रदर्शकोऽयं परिच्छेदः त्रिंशः ३० ॥



इस परिच्छेदसे पूर्वोक्त ब्रह्महत्याका प्रायश्चित्त विरले उनपापों पर भी अतिदेश दिया जायगा जो साक्षात् ब्रह्मवध नहीं है ॥

(यागस्थचत्रियघातकादिष्वतिदेशः)

यागस्थक्षत्रियविद्यातीचरेद्ब्रह्महणिव्रतम् । गर्भहाचयथावर्णतथाऽऽत्रेयीनिपूदकः २५१

अर्थः—यज्ञकर्म पर आरूढ क्षत्री या वैश्यको घात करनेवाला ब्रह्महत्या का व्रत करे एवं गर्भका मारनेवाला यथा वर्णाके अनुसार तथा (आत्रेयो) रजस्वला आदि स्त्री का वध करनेवाला भी वर्णाके अनुसार प्रायश्चित्त करे ॥ २५१ ॥

२५१ अधिकोक्तिः—यहां याग शब्दसे सोमयाग लिया गया है कि सोमयाग की दीक्षा प्रारम्भ होनेसे लेकर समाप्ति पर्यन्त मध्यकाल में जो क्षत्री या उस भांति यज्ञमें लगे हुये वैश्यको मारे सो ब्रह्महत्यारे मध्ये वारह वर्ष आदि व्रत कहा गया वही करे (ब्रह्महृत्नापुण्येयद्व्रतमुपदियंद्वादगवार्यिकादितदेवचरेत्)—यद्यपि याग शब्दसे सब यज्ञ समुक्त जातेहैं तथापि यहां सोमयागही मानागयाहै क्योंकि (सवन गतीचराजस्यदेश्यादितिवाप्तियु सवनत्रयसंपाद्यस्य सोमयागस्यैवनिर्दिष्टत्वात्) वसिष्ठ की स्मृति में सोमयागही का निर्देश इस रीतिसे हुआ है कि सवन में लगे हुये क्षत्री वैश्यको इत्यादि दाहिकर तीन वचनसे पूरा होने योग्य सोमयाग दर्शाया है—इसमें भी—बड़े छोटे व्रत वारहवर्ष आदि के जैसे ब्रह्महत्या पर कहेगए तैसे बड़े छोटे आदि यज्ञों की व्रतव्रती जाति शक्ति गुणा आदिकी अपेक्षासे विचार कर लेने चाहिये—जैसेही गर्भका वध करने और आत्रेयीका वध करनेमें भी समुक्तता—परन्तु—इसविषय पर कोई प्रायश्चित्त वह नहीं आरूढहै जो मरणांतिक अग्निमें जलजाना आदि कहे गए वे व्रतोंकी औषीशब्दों मूलश्लोकसे व्रत कर्त्ता कहागया है उसी कारणसे यह व्रतव्रती सिद्ध नहींहै कि जिसने बिना इच्छाके वध कियाहो तिसको वारह वर्षका व्रत मारा और जिसने इच्छा से चाहिके वध किया हो तिसको मरणांतिक प्रायश्चित्त करने वरने वारहवर्ष का व्रत औषीश शब्दों व्रतही आदेश कियाजाय सोभी

इसमें परा व्रत करना चाहिये (अर्थात् मूलश्रुतियोंमें योगीश्वरने अतिदेश लक्ष्मी धर्म कायम किया है तिससे अद्यपि एक पाद कम करिके नौवर्ष और दूने के स्थान पर अठारह वर्षका औचित्य पाया जाता है तथापि ऐसा न करना किन्तु परा ही व्रत करना चाहिये) क्योंकि यह केवल अतिदेशिक नहीं बल्कि आपस्तंब के वचना-नुसार औपदेशिक धर्म सिद्ध होता है जो सब आगे देखौ कि आपस्तंबने (पूर्वयोर्वरा योर्वेदाध्यायिंहत्वा इतिप्रक्रम्यापस्तंबेनद्वादश वार्षिकाभिधानात्) प्रथमके दोनों वरामें वेद पढ़नेवालेको सारिके इत्यादि कहिकर पीछे ब्राह्मवर्षका अभिधानकिया है तिससे यह उपदेश ठहिरा ॥ ० ॥ गर्भ जो विवाहिता और सुरक्षिता स्त्रियों में हो तिसको हनन करिके अथवा वरों के अनुदार प्रायश्चित्त करै अर्थात् जिस वरों का पुरुष मारने में जो प्रायश्चित्त कहा हो वही प्रायश्चित्त उस वरोंका गर्भहतकरणमें भी आचरै सो यह नियम इसलिये है कि जब तक गर्भ पैदा न हुआ हो तबतक स्त्री पुरुष नपुंसकया पैदा होगा यह नहीं मालूम होसकता और इसी लिये (हत्वागर्भ मविजातं इत्यादि) यह मनुने विशेष नियम किया है कि बिना पहिचाने गर्भ को सारिके अहुक प्रायश्चित्त करै—इसमें अद्यपि यह कहिसकते हैं कि जो गर्भ ब्राह्मण का प्रत्यक्ष है उसके वध करने में ब्राह्मणत्व से ही ब्राह्मणके मारने का प्रायश्चित्त पहुंचता तौभी यह शंका है कि शायद कन्या पैदा होती यह मारने बाद मालूम होजाय तौ यह उपपातकों में गिनती होना चाहिये क्योंकि (स्त्री शूद्र विट क्षत्र दधौ) यह दोसौ छत्तीस मूलश्रुतियों से उपपातक वताइचुके हैं तिसका थोड़ा प्रायश्चित्त पहुंचता है इस हेतु से बिनाजाने गर्भको पुत्रही मानिके उसके मारनेका वही प्रायश्चित्त करार दिया है जो ब्राह्मण के मारने में होता कहिचुके हैं परंतु जो गर्भ उत्पन्न होने बाद माराजाय या सारि गिराय देने बाद मालूम होजाय कि पुरुषया स्त्री या नपुंस है तौ फिर उसी के अनुसार जैसा चाहिये सो प्रायश्चित्त करायाजाय ॥ ० ॥ जिसने आवेयी स्त्री का वध किया हो सो भी गर्भको रीतिसे वतकरै अर्थात् आवेयी का जो वरोंहो उसी वरोंको वध करने का प्रायश्चित्त करै (आवेयी नाम से ऋतुसती कही जाती है जिसको सारिक ऋतुकाल(वत्तमान हो)तदाह वशिष्ठः= राजखलाश्रुतज्ञाता सात्रेयीसाहुस्त्र्येन्द्रदपत्यसंभवति=अर्थात्—रजस्वला स्त्री जिउने ऋतुकाल का ज्ञान कियाहो तिसको आवेयी शब्द से कहिते हैं इसमें संतान होने की संभावना पाई जाती है अतन्तर दीर्घवान पहुंचने से इसीलिये इसके मारने का अधिक पातक है जिसको जुदा करिके शोरीचर आदि अनेक ऋषियों ने दर्शाया

हे (अत्रि मुनि के गोत्र की सब स्त्रियों कोभी आवेयी कहितेहैं रजस्वला होनेबिना भी उनके मारने का विशेष पाप लसभना जैसा रजस्वलाका कहिचुके) यथाह वि-
 प्या=अत्रिगोत्रजावानारीस=यह बातभी अगिले वचन में स्पष्ट है=यथा=ब्राह्मराग-
 भंवे ब्राह्मरायात्रेयीववेचब्रह्महत्याव्रतं (अत्रिस्त्रियगर्भवधे स्त्रियाः१०वेयीववेचसत्र
 हत्याव्रतमेवमन्यत्रापि) अर्थात्—ब्राह्मरा का गर्भ वध करने में और ब्राह्मराणी जो
 आवेयी रजस्वला या साक्षात् अत्रिके कुलकी हो तिसके वध करने में ब्रह्महत्या का
 व्रत करे (इसमें इसी रीति से यह भी जोडि लेना कि स्त्री का गर्भ वध करने और
 स्त्राराणी जो आवेयी रजस्वला हो तिसके वध करनेमें स्त्री की हत्या वाला व्रत करे
 उर्मा तरह वेश्याआदि मेभी जोडि लेना) यह प्रयोजन यहां नहीं है कि रजस्वला मारी
 गईहो क्योकि यद्यपि ऊपर के वरानमे आवेयी ऋतुस्त्राता मात्र प्रतिपादन करीगई
 तथापि गेमा मत समझना किंतु इस वार्ता का यह तात्पर्य है कि जितनी अवस्था
 तक रजो धर्म होता बना रहे उस अवस्था के भीतर जो वध करे तौ यह आवेयी वध
 कहावे क्योकि अनेक संतान होनी सम्वधीं अर्थात् जिस स्त्री का मासिकधर्म निपट
 बंद होगया हो सो आवेयी नहींहै उसके वधकरने में सामान्य स्त्री वध कहावे और
 प्रायश्चित्त भी उपपातकों वाला करना टाहरे क्योकि निपट कोई भी संतान होने
 की आशा नहीं रही यही न्याय दाय भाग के अनुसार ठीक ठीक है • अन्यथा जो
 केवल उन्हीं तीनि दिवसों में गर्भ होना सम्भव जानि के आवेयी टाहिराओगे तब
 यह अत्यंत प्रबल दृश्या खडा होरा कि यदि रजस्वला होने से पांच दिन पहिले
 उसकावध किया जाता तौभी अनेक गर्भ होना संभव थे क्योकि अभी दश वर्यतक
 जीवतीरही आती उनमे १२० गन्तसौ बीम वार रजोधर्म होता और अनेक संतान
 होसक्ती फिर क्येकर उसके इन्ता को छोटा सा प्रायश्चित्त कराया जाय) इस
 व्यवस्था की सुसमता पर दृष्टि वेनी चाहिये कि यद्यपि स्त्रियों की हत्या पुरुषोंमे
 आधी कहिचुके तथापि आवेयी वध करने से पुरुषकी बराबर हत्या होती है ॥० ॥
 योर्गीहर के लक्षणोक्त से (गर्भहाच) यह अकार जो पालतू रहा तिसके ध्वन्यर्थ
 से भूंदी सवाही वेने वाले आदि भी समझने=यथाहमनुः=उत्काचेवाचृतंसाष्टये प्रतिर
 भयएन्वदा अपत्यवनिसेपहत्याहर्षाश्चुद्वधं=अर्थात्—जिन गुह्रहमात से अनन्य
 दोषोंसे किसी दण्डके समुच्चको तौन दण्ड मिलना सम्भदहो गेसी सवाहीमें अनन्य
 दोषोंके और गुह्रके साथ दोष कर्मके और द्राह्मराकी धरोहरिहजस कारिके औ
 की गवा सिलका तक करिके दृश्यतन्त्राका व्रतकरे—इसमें जैसे अमत्यकी विशेषता

बहुत बड़ी कही और गुरुसे क्रोध करना भी विशेष है और धरोहरि भी ब्राह्मण की टहिराई तैसे स्त्रियां भी विशेष लक्षणावाली समझनी क्योंकि प्रायश्चित्त बहुत बड़ा है तिससे आहिताग्नि पुरुष अग्निहोत्रीकी भार्या और पतिव्रत आदि गुरासे संयुक्त जो स्त्री हो और सबसस्था जो यज्ञपर समुद्यत होरहीहो तिसका वध समझौ सब स्त्रियों का नहीं (क्योंकि आत्रेयीकी अभी ऊपर कहिचुके और उससे उपरालू अनार्त वा स्त्रियां उपपातकों में गिनतीहैं तिससे इन दोनोंसे उपरालू जो विशेष लक्षणा वाली हों तिनका वध मनुने दर्शाया है तिसका स्पष्ट ब्यौरा आगे अंगिरा और पराशर के वचनों में देखो) यथाहंगिराः=आहितारनेर्द्विजाग्रयस्यतथापत्नीमनिंदिताम् ब्रह्म हत्याव्रतंकुर्यादात्रेयीघस्तथैवच=सवनस्थांस्त्रियंहत्वाब्रह्महत्याव्रतंचरेदितिपराशरोपि =अर्थात्—द्विजातियोंमें अग्रगण्य अग्निहोत्री की पत्नी तथा और जो पतिव्रत आदि गुरासे अनिंदितहो तिसको और आत्रेयीको मारने वाला ब्रह्महत्याका व्रत करै यह अंगिराने कहा=सवनस्था जो किसी प्रकारके यज्ञ पर उतारूहो ऐसी स्त्रीको मारिके ब्रह्महत्याका व्रतकरै यह पराशरने कहा=इन वचनोंसे यह तात्पर्य टहिरा कि सवन-स्था स्त्री और अग्निहोत्रीगी और पतिव्रता और आत्रेयी इनको मारने वाला ब्रह्म हत्याका प्रायश्चित्त करै यह अतिदेश कहागया इसी से यह बातभी स्पष्ट हुई कि दोसौ छत्तीस २३६ मूलश्लोक में जोस्त्रियों का वध कहाथा सो इन उत्तम स्त्रियों से उपरालूका समझना=यहांभी=वादी तर्क उठाता है कि (ब्राह्मणानिहंतव्यः) ब्राह्मण न मारना चाहिये यह निषेधका वचन जो नियत है तिसमें कोई ऐसा चिह्न नहीं है जिससे लिंग वचन आदिकी विशेष विवक्षा जानीजाय और ब्राह्मणकी जातिभी स्त्री पुरुष दोनों मिलिके बिना विशेषताके होती है उस निषेध का अति क्रम करने के निमित्त पर प्रायश्चित्त की विधि जो (ब्रह्महादादशावदानि) इत्यादि पहिले कहि चुके सो स्त्री पुरुष दोनोंकी जुदी जुदी हत्यापर पहुँचतीहै तौ फिर किसलिये आत्रेयी को मारने वाला यह अतिदेश वचन कहागया—सुनौ—इसलिये कहा गया कि ब्राह्मणीमें ब्राह्मणत्व के होते हुये भी जो ब्राह्मणी आत्रेयी लहो तिसके वध होने में महापातकोंका प्रायश्चित्त निश्चासि देनेके लिये वचन कहागया इसीसे दोसौछत्तीस श्लोकसे उपपातकोंमें उल्लेख पाठ और प्रायश्चित्तभी उपपातकों वाला सूचितहूआ है (और अतिदेश वाले जो अपराध हैं तिन में केवल प्रायश्चित्तही का अतिदेश दिया गयाहै किन्तु पातित्य का अति देश नहीं इससे पतित का त्याग आदि कार्य करने नहीं होता इति द्विजानेचराचार्यः ॥ २५१ ॥

अत्र नीचे यह कहेंगे कि सारनेको जाइके लौटि आवै सोभी व्रतकरै
और विरली हत्यामें दूना व्रत करना होगा ॥

(अहननेपिकचित्प्रायश्चित्तंहननेतुक्कचित्तद्विगुणं)

चंद्रमहत्त्वापियातर्यवेत्समागतः † द्विगुणं सवनस्थेतुब्राह्मणेव्रतमादिशेत् २५२

अर्थः—न सारिके भी व्रतकरै जो घातके लिये पास आयाहो † सवनस्थ ब्राह्मणा
के सारनेमें द्विगुणा व्रत आदेश करै=अर्थात्—यथावर्षाके अनुसार यह संबन्ध पहिले
प्रतीक में से चना आताहै कि यदि कोई किसीको शस्त्र लेकर सारने उसके समीप
तक गया हो और बिना सारे कुछ सोचिके लौटिआवै या उसके न मिलने से घात
ग्याली चलाजाय तो यह हत्यारा टहिरा तिससे जिस वर्षाके मनुष्य को सारने गया
उसी वर्षाकी हत्या में जो प्रायश्चित्त का व्रत लिखा हो सो इसको करना चाहिये
व्रतहत्या या सवनहत्या आदि के प्रायश्चित्त करै शेष अधिकोक्तिमें देखौ † सवनस्थ
अर्थात् मासयारा से ग्यित होते ब्रह्मरा को जिसने सारा हो तिसके लिये बारह वर्ष
आदि का दूना व्रत बनाया जाय ॥ २५० ॥

२५२ अधिकोक्तिः—न्यग्रचेद्ब्राह्मणावधे अहत्वा पीति गौतमः=अर्थात्—गौतमने
भी कहा है कि जो ब्राह्मणा के वध करने में गयाहो फिर चाहें किसी हेतुसे न सारि
पावै तोभी वही पाप है जो सारने में होता—अवधितर्कः—क्यों जो सारडारने और
न सारनेमें भी एकही प्रायश्चित्त तो नहीं ठीक है—यह सत्य कहा इती लिये औ-
पदेशिकों से अतिदेशिकों की न्यूनता अनुसार उनमें चौथाई कम करिके ब्रह्म-
हत्या आदि के व्रत होते हैं जो बारह वर्ष आदिके कहे गये यह प्रथम पहिले २३१
लौटिआविस की अधिकोक्ति में लिखि चुके तहाँ देखौ (औपदेशिक विषय वे
कहाते हैं कि जिनके ऊपर मुख्यतासे उपदेश किया गया हो जैसे ब्रह्महत्याके ऊपर
बारह वर्ष आदिके अनेक उपदेश किये गयेहैं और अतिदेशिक विषय वे कहातेह
जिनके ऊपर मुख्यता से उपदेश नहीं कियागया किमी और का उपदेश लेकर उम
पर भी उधार दिया गया सो अतिदेश होताहै उसी अतिदेश के प्रभाव से वह विषय
भी औपदेशिक कहाता है जैसे २५१ के प्रतीक वाले विषय पर ब्रह्महत्या का
अतिदेश उधार दिया गया तिसने यह विषय अतिदेशिक टहिरा यह पूर्वार्ध की
अधिकोक्ति पूरी हुई अब आगे उत्तरार्ध की कहेंगे † सवनस्थ के सारे जाने से दूना व्रत
करना करागया तहाँ मृगलोकेमें अर्थात् सवनस्थ ब्राह्मणाके साथ कीर्तविगयणा

हेमा नहीं है कि जिससे उसका गुणवान् या निर्गुण होना आदि विशेष चिह्न पायाजाय या हंताके विशेषरा जाति आदि कुछ समझे जायँ० तथापि दोसौतेता-
 लिस २४३की अधिकोक्ति और दोसौ सताइस २०७की अधिकोक्तिमें पहिलीकही
 रीतोंसे यहांभी सबनस्थ ब्राह्मण और उसके हंताकी जाति शक्ति गुण विद्या आदि
 और बड़े छोटे व्रतों की अपेक्षासे व्यवस्था निर्णय करनी चाहिये क्योंकि मुख्यनिय
 जो एक स्थलपर कहाजाता है वही सर्वत्र काम आता है० इन बातों का दृष्टान्त जैसे
 अति बूढ़े या बालकने सारा तौ उनको बूढ़ापन और बालपनके हेतुसे चौबीस वर्य
 की आधी बारहवर्ष रहगई इत्यादि=इसी दोसौवावनके प्रलोकमें उपदेश और अति-
 देश दोनों सबजुद्ध हैं तिनकी सोचौ कि उत्तरार्द्धमें सबनस्थके सारनेपर जो हुना प्राय-
 श्चित्त बताया सो तौ साक्षात् उपदेशहै किसीका अतिदेश इसमें नहीं है तिससे यह
 पूराही प्रायश्चित्त कराया जायगा केवल सारनेवाले की अवस्था आदि के अनुसार
 रिआयत होगी और नहीं-और इसी मूलप्रलोक पूर्वार्द्धमें जो सारने को पहुंचि के न
 सारिपावै तिसके लिये जो ब्रह्महत्या वाले व्रतका आचरण कहा सो उपदेश नहीं है
 अर्थात् अतिदेश उतार दियाहै तिससे यद्यपि परे बारह वर्यका अतिदेश कहा तौ भी
 पूरा नहीं कराया जाय किन्तु चौथाई कम करिके नौवर्य का व्रत कराना होगा यही
 तात्पर्य दोसौ इकतीसकी अधिकोक्ति में दर्शाइ चुके सो सर्वत्र समझते रहना ॥ ० ॥
 दूसरी यह व्यवस्था याद रखवौकि ब्रह्महत्या के समान जो पाप दोसौ अट्टाइस मूल
 प्रलोकसे गुरुओंका अधिक्षेप आदि कहेगए सो सब आतिदेशकों से भी कुछ हलुके
 पापहैं तिससे उनमें बारह वर्य आदि का आधा कम करिके व्रत करायाजाय क्योंकि
 एक चौथाई तौ आतिदेशिकमें कम होचुकी ये उनसे भी हलुके छोटे पातदाहैं ॥ २५२ ॥

इति ब्रह्महत्यायाः प्रायश्चित्त प्रकरणां ॥

इस प्रकारका ये ससप्त दश परिच्छेद हैं इस्सीसे तीसतक तिनमें तेईस तक तीस
 परिच्छेद परलोक और नरक आदि के स्वरूप लक्ष्ये नियत हैं चौबीसवें परिच्छेद से
 पांच सहापातकियों के लक्षणा कहि कर उहां तक ब्रह्महत्या का निपटारा किया
 गया—अब आगे लुहापान सहापात का प्रायश्चित्त और यथा क्रमसे सभी पापोंके
 प्रायश्चित्त कहे जाइंगे ॥

अथ सक्राम सुरापान महापातक प्रायश्चित्त विवेको नाम परिच्छेदः एकत्रिंशः ३१

—*—

इस परिच्छेद में उन महापापों के प्रायश्चित्त जाने जायेंगे जो निषिद्ध मदिराके इच्छा सहित पीने से होते हैं अर्थात् उत्तम और मध्यम और सुरा इनसे उपरालुसभी मद्यों के ॥

(सुरापान प्रायश्चित्तानि)

सुगम्बुवृतगोमूत्रपयनामग्निसंनिभम् । सुरापोऽन्यतमं पीत्वामरणच्छुद्धिमृच्छति २५३

अर्थः—मदिरा•जल•वृत•गोमूत्र•दुग्ध•अग्निके समान तपेहुये इनमें किसी एकही को पीकर सुरा पीनेवाला मरजाने से शुद्ध होता है=अर्थात्—जिसने सुरापान किया हो तिमका यही प्रायश्चित्त है कि मदिरा आदि पांच द्रव्यों में से किसी एकही को गरम करि खूब तपाइके पीजावे जिससे हृदय जल के मरजाय तब शुद्ध उसकी होय ॥ २५३ ॥

२५३ अधिकोक्ति—गोमूत्र के साथ कहिने से घी दूध भी गायके लेने चाहिये तथा मूत्र गरमका हो बैलका नहीं—यह पीना उसको भीगे बख पहिन के करना चाहिये=तदाह पैटीनमिः=सुरापआर्द्रवामाश्च अग्निवर्गांसुरांपिवेत्=अर्थात्—सुरापानेवाला पापी भीजे बख पहिने हुये अग्निके समान खूब तपी हुई सुराको पीवे=प्रचेताने लोहेका पादभी कहाहै=यथा=सुरापोऽग्निवर्गां सुरामायसेनपावेरावापिवेत्=अर्थात्—सुरा पीनेवाला अग्निके रूपसमान तपाइ हुई सुराको लोहेके वासनसे पीवे तब शुद्ध होय=यह प्रायश्चित्त भी उसको है कि जिसने एकही बार सुराप हो=तदाहं गिरा=सुरापानं नृहृत्त्वा अग्निवर्गां नृगं पिवेत्=अर्थात्—एकही बार सुरा पीकर यह प्रायश्चित्त करे कि अग्नि के समान सुरापाने=और जो वशिष्टका यह वचन है कि (अभ्यासेतु नृगद्या अग्निवर्गां नृगं पिवेत् द्विजः) अभ्यास से बारम्बार सुरा के पीने से डिजाती अग्नि के तुल्य सुरा पीवे मो यह वचन सुन्दर सुरा से उपरालु मद्यों के अर्थात् गौरी और मादरी के पीने मध्यम मनभूता ॥ सुरापान का प्रायश्चित्त जो

कहा गया सो उस दशापर आरूढ़ समझना कि जिसने इच्छा सहित सुरा पी हो क्योंकि अगिले वृहस्पति के बचन से यही तात्पर्य है=यथाह वृहस्पतिः=सुरापाने कामकृतेज्वलन्तींतांविनिक्षिपेत् मुखेतयाविनिर्दग्धे मृतः शुद्धिसवाप्नुयात्=अर्थात्— इच्छा से सुरापान करने में जलती हुई सुराकोही मुखमें छोड़े तिससे हृदय जलित जाने से मरिक्के शुद्ध होय=और जो मनु का बचन है कि (सुरांपीत्वाद्विजोमोहादग्निवर्गांसुरांपिबेत्) इसमें जो मोहसे पीकर ऐसा कहा सो इसलिये कि शास्त्रार्थके तात्पर्य को न जानिके जिसने पीहो ॥०॥ इसमें यह विचारना चाहिये कि सुराशब्द जो है सो सभी मद्यमात्रपर आरूढ़ है या गौड़ीयुड़की बनी साध्वी महुआकी बनी पैथी धान आदि पिसान की बनी केवल इन्हीं तीन मद्यों पर अथवा इनमें भीकेवल पैथी पर आरूढ़ है—तहां—कितने एक बिरले ऐसा कहिते हैं कि सुरा शब्द सभी मद्योंका बोधक है इस तर्कसे कि वशिष्ठ का बचन जो ऊपर लिखि चुके तिसमें सुराका अभ्यास जो बार बार का पीना कहा वह गौड़ी १ साध्वी २ पैथी ३ तीनों से उपराल छोटे मद्यों परभी प्रयुक्त ठहिरा—तिससे बड़े छोटे सभी मद्य सुरा कहिते से समझे जासके हैं—और यह शंका नकरनी चाहिये कि वह प्रयोगहीगौरा मध्यम है क्योंकि सभी मद्यों से मद पैदा होनेकी शक्तिरूपी उपाधिसे सर्वत्र मुख्यताही सिद्ध होनेमें गौरात्व कहितना अन्याय ठहिरता है सो यह न्याय अयुक्त है ठीकनहीं क्योंकि पुलस्त्यमुनि के बचनों को देखौ=यथाह पुलस्त्यः=पानसंद्राक्षमाधूके खार्जूरंतालमैक्षवस मधुजंसैरमारिष्टंसैरेयंतालिकेरजस समानान्विजानीयान्मद्यान्येकादशैवतु द्वादशन्तुसुरामद्यंसर्वेयामव संस्मृतस=अर्थात्—ये मद्योंके नाम हैं कि पानस जो कटहर के दूधसे बनता हो १ द्राक्ष जो दाखसे बनै २ साधूक जो महुआसे बनै ३ खार्जूर मद्य छुहारे खजूरसे बनता है ४ ताल मद्य जो ताडीसे बनता है ५ ऐक्षव जो ईख गन्नेका बनता है ६ मधुज सहतसे ७ सैर जो सीरासे बनै ८ आरिष्ट जो मट्टा और अनेक फल फूलोंके अरिष्टसे बनता है ९ सैरेय जो मिरादेशकी प्रक्रिया से धात की फूल आदि कई चीजों से बनता है १० नालिकेरज नारिअर के दूधसे बनता है ११ इन द्यारह मद्योंको एकसां वरावर जानें कोई इनमें कस दर्जेका नहीं है और बारहवां सुरा मद्य है जो सबसे अधम ओछा कहा गया है इस प्रकारसे पुलस्त्यने सुराको एक प्रकारकी विशेषता निर्देश करी है इसमें भी सुरा शब्दका प्रयोग मद्यमात्र सभीमें गौरा पायाजाता है=दूसरे लोग यों कहिते हैं कि=पैथी गौड़ी साध्वी ये तीन भाँति मुख्य जो प्रसिद्ध हैं इन्हींमें सुराशब्द निरूढ़ है सर्वत्र नहीं क्योंकि यह तर्क देखौ (यद्यप्यनेकत्रसुराशब्द प्रयोगोदृश्यते तथापि

लिये यह वचन है कि=सुरावैमलमन्त्रानांपापमाचमलमुच्यते तस्माद्ब्राह्मणाराजन्यो
 वैश्यश्चनसुरांपिवेत्=अर्थात्—निश्चय हुआ कि सुरा जो है सो अन्नोका मलहै और
 मलहै सो पाप कहाताहै तिससे ब्राह्मणा क्षत्री और वैश्य भी सुराको न पीवें—इस वचन
 में केवल पैसी सुराका निषेध तीनों वर्गों के लिये किया गया है परन्तु गौड़ी आदि
 सुराओं और मद्यों का निषेध केवल ब्राह्मणा के संबंध पर नियत है क्षत्री वैश्य को
 नहीं निषेध है • क्योंकि मनुका यह वचन देखौ (यक्षराक्षसपिशाचानांमद्यमांससुराऽऽस
 वस तद्ब्राह्मणो न नात्तद्व्यं देवानामश्नताहविः) अर्थात्—यक्ष राक्षस पिशाच इनका आ-
 हार है मद्य मांस सुरा आसव सो यह चीजें ब्राह्मणाको न खानी चाहिये जो देवताओं
 का हवि खानेवाला प्रसिद्धहै—इसमें भी सुरा आदि चीजों का निषेध मनुने केवल
 ब्राह्मणाकी विशेषता पर कियाहै तिससे—और अग्रेकृत वृहद्विष्णु का वचन है कि
 (मधुकर्मैक्षवंसैरंतालंखार्जूरपानसे मधूत्थं चैवमाध्वीकं सैरेयं नालिकेरजस्र अमेध्यानि
 दशानिमद्यानि ब्राह्मणास्यतु) अर्थात्—ये दश मद्य हैं कि माधुक १ ऐक्षव २ सैर ३
 ताल ४ खार्जूर ५ पानस ६ मधूत्थ ७ माध्वीक ८ सैरेय ९ नालिकेरज १० ये दश मद्य
 ब्राह्मणाको सदाही अपवित्र हैं—इसमें भी ब्राह्मणाकोही प्रतिषेध किया गया है—एवं—
 वृहद्व्याजवल्क्यने भी क्षत्री वैश्य दोनोंको दोषका नहोना दर्शाया है=यथा=कामा
 दर्पिहराजन्यो वैश्योवापिकथञ्चनमद्यमेवसुरांपीत्वा न दोषं प्रतिपद्यते=अर्थात्—क्षत्री
 या वैश्य ये किसी प्रकार कभी इच्छासे भी चाहिकर मद्य वा सुरा पीकर दोषी नहीं
 होतेहैं=अब इस व्यवस्थाके तोड़पर ध्यान धरौ कि इसप्रकार उक्त वचनोंमें ब्राह्मणा
 के लिये मद्यमात्रका निषेध ठहिरा तथापि यह मनुका जो वचनहै कि (गौड़ीमाध्वी
 चपैसीच विज्ञेयात्रिविधासुरा यथैवैका तथा सर्वा नपातव्याद्विजोत्तमैः) इसमें जैसी
 सक तैसी सर्वे यह कहिके जो गौड़ी और माध्वी दोनोंका जुदा निर्देश ठहिराया सो
 उनके दोषकी वडाईसे सुरा केही समान दर्शाने के लिये ठहिराया और द्विजोत्तम इस
 में ब्राह्मणाहीको समुभन्ना किन्तु तीनों वर्गोंको नहीं ॥०॥ सुराका निषेध जो ब्राह्मणा
 आदिको ठहिरा सो विना जनेऊ के लड़कों तथा विना विवाही कन्याओं को भी
 होताहै कि लड़का लड़की भी न पीवें क्योंकि यह वचन है (तस्माद्ब्राह्मणाराजन्यो
 वैश्यश्चनसुरांपिवेत् इतिजातिमात्रवच्छेदेननिषेधात्) अर्थात्—ब्राह्मणा क्षत्री वैश्य
 भी सुराको न पीवें इसमें जातिमात्रको निषेध कियाहै कि ब्राह्मणा या क्षत्री या वैश्य
 न पीवें तौ उनके लड़का लड़की भी उसी जातिमें शामिल हैं—इसीलिये अग्रेकृत मनु
 का वचन है कि (सुरांपीत्वाद्विजोमोहा दग्निवर्णासुरांपिवेत्) इसमें द्विज शब्द

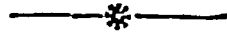
कृत्रानादित्त्वं इति संदेहे गौडी साध्वी च पैथी च विज्ञेया त्रिविधा सुरा इति मनुवचनात्
 शुड पिष्ट नधु विकारेष्वनादित्वनिर्धारणात् तत्रैव मुख्यत्वं युक्तं) अर्थात् (सुरा शब्द
 का प्रयोग यद्यपि अनेक मद्यों पर लिखा है देता है तथापि जो ऐसा संदेह किया जाय
 कि ठीक ठीक अनादित्व किन मद्यों पर मिलता है तहां यह सोचना चाहिये कि मनु
 ने गौडी पैथी साध्वी तीन भाँतिकी सुरा दर्शाई हैं तिससे शुड पिष्टान सहुआ इनके
 नले विकारों में आदित्व प्राचीनता स्वीकार करने से उन्हीं तीनों पर मुख्यता ठीक
 आती है) परन्तु ऐसा होनेसे भी सद उत्पन्न करनेवाली शक्तिकी कल्पना अनेक मद्यों
 पर करना कुछ दोष नहीं है क्योंकि मदशक्ति की उपाधिका सहारा लेने से मद्य का
 त्याग करना और कराना बहुत सुगम है इसीलिये यह वचन है (यद्यैकातया सर्वात्
 पातव्या द्विजोत्तमैः) कि जैसी एक तैसी सब द्विजोत्तम लोगों को न पीनी चाहिये
 यह वचन तीनों सुराका बराबर दोष जताता है पर गौडी साध्वी दोनों को कुछ पैथी
 के बराबर नहीं जताता है वचनमें द्विजोत्तम शब्द जो है सो द्विजाती सात्रका उपलक्षणा
 है—यह दूसरोंका मत भी ठीक नहीं है क्योंकि पुलस्त्य का वचन ऊपर लिख चुके उस
 में सुरा मद्यको सबसे अधम कहिकर गौडी साध्वीसे भी जुदाई प्रकट करी है तिससे—
 तत्रैव (सुरा वै सलसन्नानां पाप्मा च सलमुच्यते) यह वचन है कि सुरा निश्चय करिके
 अन्नोंका सल है और पाप भी सल कहाता है इस वचनसे यह तात्पर्य पाया गया कि
 सुरा उदीकी कहिना चाहिये जो धान आदि अन्नके कीट से बनती हो किन्तु गौडी
 साध्वी जो शुड और सहुआसे बनती है तिसमें सुरा शब्दकी प्राप्ति इसी हेतुसे नहीं टहेर
 सकती है कि ये दोनों वस्तु रस रूपहें कुछ अन्नमें मिलती नहीं बल्कि सौत्राश्रमी नाम
 एक यज्ञ वेद विहित है कि जिसमें ब्राह्मणको भी सुरा पीनी कही है पर वहां भी अन्न
 हीके रसमें सुरा शब्द युतियांने कहा है इन सब तर्कोंसे यह निश्चित भया कि पैथी
 जो है सोई मुख्य सुरा है और गौडी साध्वी दोनोंमें सुरा शब्द गौसा मध्यम है—और
 यह तर्क जो ऊपर लिखा था कि मनुके वचनसे गौडी साध्वी पैथी तीनोंमें सुरा शब्द
 की प्राचीन निर्धारणा स्वीकार करे सोभी ठीक नहीं है जिससे कि यह विषय कुछ
 शब्दानुशासन की तरह अर्थ संपादन करनेका सम्बन्ध नहीं रखता है केवल प्रयोजन
 की बातसे सम्बन्ध रखता है इससे प्रायश्चित्तकी बड़ाई पर ध्यान करी कि प्राय-
 श्चित्त बहुत बड़ा दाहा गया है तिससे गौडी और साध्वीमें सुरा शब्दका प्रयोग गौसा
 रूपसे समझना इसरीतिसे नती अनेक जयशक्तिकी कल्पना रूपी दोष रहा न उपाधिका
 आयय लेना परा न इसमें द्विजोत्तम शब्दमें द्विजाती सात्रका उपलक्षणाटिहा—इसा

लिये यह वचन है कि=सुरावैमलमन्त्रानांपापमाचमलमुच्यते तस्माद्ब्राह्मणाराजन्यो
 वैश्यश्चनसुरांपिवेत=अर्थात्-निश्चय हुआ कि सुरा जो है सो अन्नोका मलहै और
 मलहै सो पाप कहाताहै तिससे ब्राह्मणा क्षत्री और वैश्य भी सुराको न पीवें-इस वचन
 में केवल पैसी सुराका निषेध तीनों वर्गों के लिये किया गया है परन्तु गौड़ी आदि
 सुराओं और मद्यों का निषेध केवल ब्राह्मणा के संबंध पर नियत है क्षत्री वैश्य को
 नहीं निषेध है•क्योंकि मनुका यह वचन देखौ (यक्षराक्षसपिशाचानांमद्यमांससुराऽऽस
 वस तद्ब्राह्मणो ननात्तद्व्यं देवानामश्रुताहविः) अर्थात्-यक्ष राक्षस पिशाच इनका आ-
 हार है मद्य मांस सुरा आसव सो यह चीजें ब्राह्मणाको न खानी चाहिये जो देवताओं
 का हवि खानेवाला प्रसिद्धहै-इसमें भी सुरा आदि चीजों का निषेध मनुने केवल
 ब्राह्मणाकी विशेषता पर कियाहै तिससे-और अगोक्त वृहद्विष्णु का वचन है कि
 (साधकसैक्षवंसैरंतालंखार्जूरपानसे मध्वत्थंचैवसाध्वीकं सैरेयं नालिकेरजस्र अमेध्यानि
 रथैतानिमद्यानिब्राह्मणास्यतु) अर्थात्-ये दश मद्य हैं कि साधक १ ऐक्षव २ सैर ३
 ताल ४ खार्जूर ५ पानस ६ मध्वत्थ ७ साध्वीक ८ सैरेय ९ नालिकेरज १० ये दश मद्य
 ब्राह्मणाको सदाही अपवित्र हैं-इसमें भी ब्राह्मणाकोही प्रतिषेध कियागयाहै-एवं-
 वृहद्व्याजवल्क्यने भी क्षत्री वैश्य दोनोंको दोषका नहोना दर्शाया है=यथा=कामा
 दर्पाहिराजन्यो वैश्योवापिकथञ्चनमद्यमेवसुरांपीत्वा नदोषंप्रतिपद्यते=अर्थात्-क्षत्री
 या वैश्य ये किसी प्रकार कभी इच्छासेभी चाहिकर मद्य वा सुरा पीकर दोषी नहीं
 होतेहैं=अब इस व्यवस्थाके तोड़पर ध्यान धरौ कि इसप्रकार उक्त वचनोंमें ब्राह्मणा
 के लिये मद्यमात्रका निषेध ठहिरा तथापि यह मनुका जो वचनहै कि (गौड़ीसाध्वी
 चपैसीच विज्ञेयात्रिविधासुरा यथैवैकातथासर्वा नपातव्याद्विजोत्तमैः) इसमें जैसे
 एक तैसी सर्वे यह कहिके जो गौड़ी और साध्वी दोनोंका जुदा निर्देश ठहिराया सो
 उनके दोषकी बड़ाईसे सुरा केही समान दर्शाने के लिये ठहिराया और द्विजोत्तम इस
 में ब्राह्मणाहीको समुभक्ता किन्तु तीनों वर्गोंको नहीं ॥०॥ सुराका निषेध जो ब्राह्मणा
 आदिको ठहिरा सो विना जनेऊ के लड़कों तथा विना विवाही कन्याओं को भी
 होताहै कि लड़का लड़की भी न पीवें क्योंकि यह वचन है (तस्माद्ब्राह्मणाराजन्यो
 वैश्यश्चनसुरांपिवेत इतिजातिमात्रवच्छेदेननिषेधात्) अर्थात्-ब्राह्मणा क्षत्री वैश्य
 भी सुराको न पीवें इसमें जातिमात्रको निषेध कियाहै कि ब्राह्मणा या क्षत्री या वैश्य
 न पीवें तौ उनके लड़का लड़की भी उसी जातिमें शामिल हैं-इसीलिये अगोक्त मनु
 का वचन है कि (सुरांपीत्वाद्विजोमोहा दग्निवर्णांसुरांपिवेत) इसमें द्विज शब्द

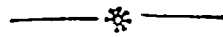
तीनों द्विजातियों पर आवश्यक है कि ब्राह्मण या क्षत्री या वैश्यभी सुरा पीकर यह प्रायश्चित्त करें क्योंकि जब ऊपरले निमित्तरूपी वचनमें ब्राह्मण आदि तीनों वर्गों का नाम लेकर सुरा पीनेका नियेध करचुके तौ फिर यहां भी उसके वास्ते दार नैमित्तिक विधिके वचनमें द्विज शब्द तीनों वर्गोंके प्रायश्चित्त पर आरूढ हुआ। जब कि इस रीतिसे दोनों संबंध में जातिमात्र को नियेध प्रकाहुआ तब लड़के लड़कियां क्योंकर जातिमात्रसे बाहर समुझे जायँ—इसपर—एक सीमांसाका दृष्टांत है कि (यथा अभ्युदितेष्ट्यांयस्यहविर्निरूप्त्तंपुरस्ताच्चन्द्रमा अभ्युदेति इतिनिमित्तवाक्ये हविर्मात्रा अभ्युदयस्य निमित्तत्वावतौ तत्सापेक्षनैमित्तिकवाक्ये सूयसाणामपित्रेधा तन्दुलान्त्रिभजेदिति तन्दुलग्रहरां तन्दुलादिस्वरूपहविर्मात्रोपलक्षणां) अर्थात् (जैसे अभ्युदय रूपी यज्ञमें जिसके हविस् यथा विभागोंसे धरागया तिसके आगे पूर्वाचन्द्रमा उदय होता है इस फलके जतानेवाले निमित्तरूपी वाक्यमें सकल हविमात्र चन्द्रमा उदय होनेका निमित्त होता है यह समुभिलेनेमें इसीके संबंधी नैमित्तिक वाक्य में यद्यपि ऐसा कहाजाय और मुनिपरै कि तन्दुलोंको तीनजघे विभागकरौ तौ यह केवलतन्दुल कहिना भी तन्दुल आदि सभी साकल्य हविमात्र का उपलक्षणा होता है कि तन्दुल तिल जौ घृत शर्करा मेवा आदि मिलेहुये साकल्यको तीन जघे विभागकरनाचाहिये) क्योंकि तन्दुलोंमें सभी चीज शामिल हैं और तन्दुल नाम अनेक चीजोंके संघको भी कहते हैं तैसे तीनोंवर्गों कहिनेसे उसीजातिमें लड़कालड़कीभी शामिल हैं कुछ जुदा नाम धरनेकी जरूरत नहीं थी। परन्तु जातिमात्रके पुरुषोंमें लड़का लड़कियोंमें इतना भेद है (पादोवालेपुदातव्यःसर्वपापेष्वयंविधिः) सभी पापों में यह विधि है कि बालकों को एक चौथाई प्रायश्चित्त देनाचाहिये—इसवचनके तात्पर्य से बालकोंको सरसांत्तिक प्रायश्चित्त उस दशामेंभी नहीं है कि जब उन्होंने इच्छा से चाहिकर सुरापान किया हो परंतु सरसा के पलटे उस चौथाई को दूना करिके छःवर्यका व्रत करानाचाहिये कि जैसा आगे २५४की अधिकोक्तिमें दर्शावैगे तैसा यहांभी समुभिलेना और दूना कराने मध्ये अंगिराका वचन है कि—विहितंयदकामानांकासातर्द्धिगुणांचरेत्—अर्थात्—बिना इच्छा किये पापवालों को जो कुछ प्रायश्चित्त कहागया हो वही उनको दूना करवाया जाय जिन्होंने इच्छा से पाप किया हो। यही व्यवस्था बूढ़े आरोगी आदि में जोडलेनी चाहिये—तथैव (यत्सरसःपिशाचानांसद्यंसांसुराऽऽसवसत्प्राणाननात्तद्यदेवनात्तत्तद्दिवि) इस वचन में सद्य भी ब्राह्मण की जातिमात्र को नियेध है तिससे दिनाजनेरु के बालक सुरा और सद्यभी न पीवै यह व्यवस्था सिद्ध

होचुकी—तथापि थोड़ासा तर्कवाद है कि—कैसे बिना जनेऊको दोष बताया (प्रा
 गुपनयनात् कामचार वादभक्षाः इति गौतम वचनात्) तथा मद्यसूत्रपुरीषारांभक्षारो
 नास्तिकश्च न दोषस्त्वापंचसाद्वर्षाद्ब्रह्मविप्रयोः सुहृद्गुरोरिति कुमारवचनाच्च दोषाभावा
 वगतेः) अर्थात्—गौतम का वचन है कि बालक जनेऊ से पहिले चाहें तैसे हटें फिरें
 चाहें सो मुखसे बर्कें चाहें सो भक्षणा करें तो कुछ दोष नहीं है) तथैव (कुमारकावचन
 है कि मद्य या सूत्रया विद्या इनके भक्षणा करनेमें कोई दोष नहीं है पांचवर्षके भीतर
 और पांचके उपरांत जो खेसा करें तो उनके पिता माता बड़े भाता आदि मित्रजनों
 तथा गुरुओं को दोष है • तो यह कैसे कहा कि बालक भी मद्य पीवें तो दोष है प्राय-
 श्चित्तभी कराना होगा—इस का समाधान कहिते हैं—सुनो सुरा और मद्य इनके नि-
 येध वाले वचन में जातिमात्र के लिये जो निषेध होचुका तिससे वह निषेध की
 प्रवृत्ति रोकी नहीं जा सकती है जिससे बालकों वाले नियम स्वीकार किये जायँ—
 ऐसाही स्मृत्यंतर में यह निषेध का वचन है कि (सुरापाननिषेधस्तुजात्याश्रयइति
 स्थितिः) सुरा पीने का निषेध जो है सो समस्त जातिमात्र के आश्रयभूत है यही
 मर्यादा जानौ अवस्था भेदका प्रयोजन इसमें नहीं है—इसी हेतुसे (पादोवालेषु दातव्य
 सर्वपापेष्वयंविधि रितिसर्वपापेषु सुरापानादिषु इति वचनात् पादसवसुरापाने प्राय-
 श्चित्तं) चौथाई बालकों को देना चाहिये सुरापान आदि सभी पापों में यह विधि
 जानो इसवचन से चौथाई प्रायश्चित्त सुरा पीने में ठीक रहा • इच्छा सहित पीने में
 चौथाई का दूना कर्तव्य होगा—तथैव—सुरा से उपरालू मद्यपीने में भी जातूकराणि
 प्रायश्चित्त कहा है—यथाह जातूकराः—अनुपेतस्तुयोवालो मद्यसोहात्पि वेद्यदि तस्य क
 च्छूयं कृत्यान्माताभ्रातातथापिता—अर्थात्—बिना जनेऊका बालक जो अज्ञानता से
 मद्य पीलेवै तिसका पिता या माता या भ्राता तीन कच्छू व्रत करें—तिससे यह बात
 सिद्ध हुई कि (चाहें सो भक्षणा करें) इत्यादि गौतम का वचन जो अभी ऊपर
 लिख चुके सो कुछ विशेष कर सुराके नास से भी नहीं है न सुरा और मद्यके ऊपर
 उसका तात्पर्य कुछ पहुँचता है अर्थात् सुरा और मद्य आदिसे उपरालू नियिद्ध अन्ना-
 दिक जैसे सूखी और बासी भोजन आदि के विषयपर आरूढ है—और कुमार का
 जो वचन कहा सो केवल इस आशय पर आरूढ है कि जो पांचवर्षके भीतर अनि-
 शय अज्ञानता में यदि कोई वस्तु मलीन भक्षणा करि बैठे तो अत्यन्त दोष नहीं है
 पर थोड़ा दोष उसमें भी अवश्य होता है—इसीलिये मजुने यह कहा है कि उपनयन
 कर्मसे पहिले जो कुछ बालक से दोष हुआ हो तिसका प्रायश्चित्त वही उपनयन

संस्कार होता है=यथाह मनुः=गर्भेर्होमैर्जातकर्मचूडामौञ्जीनिबंधनैः वैजिकंगार्भिकं चैर्नोद्विजानामपसृज्यते=अर्थात्—द्विजातियों के गर्भ में आतेहुये जो गर्भ संस्कार संबंधी होस होते हैं तिनसे और जन्म होनेसे जातकर्म और मंडनआदि चूडाकर्म और मौजीवन्धन आदि यज्ञोपवीत कर्म इन कर्मोंके होनेसे पिता के बीज का दोष और माताके गर्भरक्तका दोष और बालपनकी अज्ञानतासे जो कुछ पाप लड़के ने किया हो सो भी दूर होजाता यह द्विजाती लोगोंका विधानहै ॥ अधिकोक्तिफलं—अब समस्त अधिकोक्तिका निपटारा यह समुझना चाहिये कि पैथी सुरा का निषेध तीनों वर्णोंको जन्महीसे लेकर निश्चितहुआ और ब्राह्मणोंको जन्मही से लेकर सभी मद्य मात्रका निषेधहै परन्तु स्त्री और वैश्यको पैथीसुरा छोड़िके गौड़ी आदिका निषेध किसी भी अवस्थामें नहींहै और शूद्रको न सुराका प्रतिषेधहै न किसी मद्यमात्र का निषेधहै—इसी के अनुसार प्रायश्चित्तों का विचार करना चाहिये ॥ २५३ ॥ यहाँ तक इच्छा सहित सुरा पीनेके प्रायश्चित्त सब कहे गए अगिले परिच्छेद में इच्छा विना धोखे आदिसे पीने मध्ये कहेंगे ॥ २५३ ॥



अथ अक्रामतः सुरा मद्यादीनां पाने प्रायश्चित्त विवेको द्वाविंशः परिच्छेदः ३२



इसपरिच्छेदमें कामना और इच्छाके विना धोखे आदिसे सुरा पीजाने के प्रायश्चित्त कहे जायेंगे ॥

(सुरापानेप्रायश्चित्तांतराणि)

बालवासाजटीवापिव्रह्महत्याव्रतचरेत् † पिण्याकंवाकरणान्वापिभक्षयेन्नित्तमानिश्चि २५४

अर्थः—यहा वालों का ब्रह्म वारणा किये जटा रखाये ब्रह्महत्या का ही व्रत आचरे † अथवा तीनवर्ष रात्रि में पीना या अन्न के करों कोही भक्षण करै=अर्थात्—दोमौत्रेषु २५ ३५ नोकसे कहे प्रायश्चित्त यदि होने संभव नहों तो राज बकरी आदि के ऊन से बना कंबल ओढ़ि के जटा रखाकर इस विधेय चिह्न के साथ पूर्वोक्तव्रह्म-

हत्या वाला व्रत बारह वर्षका करे ॥ + ॥ अथवा तीन वर्ष तक तिलों की खलि पीना तिसके पिराडवना के रात्रि में खाया करे दिन में निराहार व्रत किया करे यद्वा चावलों की कनकी या ससा आदि मुन्यन्न को रात्रि में चबाकर तीन वर्ष काटे ॥ २५४ ॥

२५४ अधिकोक्तिः—ऊन वस्त्र के उपलक्षणा में चीर और बकल भोजपत्र आदि भी समझने क्योंकि प्रचेता का वचन है—यथा—सुरापगुरुतल्पगौ चीर बकल वाससौ ब्रह्महत्याव्रतंचरेयातास—अर्थात्—सुरापीनेवाला और गुरु भार्या गामी ये दोनों चीर वस्त्रयाबकल देह में लपेटे हुये ब्रह्महत्या वाला व्रत बारह वर्षकरे (चीरफटे पुराने वस्त्रों के चीथड़े कहातेहैं) जटा रखाना कहा तिससे बाल मुडाने का नियेध पायागया—ब्रह्म हत्या का व्रत करना कहा तिसके साथ बालों का वस्त्र आदि जो अधिक दर्शाया तिसका यह तात्पर्य है कि ब्रह्महत्या में खोपडी की ध्वजा बनानी जो कहिचुके तिसका वर्जित करना इसमें सिद्ध हुआ—यह प्रायश्चित्त भी उसके लिये आवश्यक है जिसने सुरा मद्यकी इच्छा विना जल के धोखे पीलिया हो क्योंकि (इयंविशुद्धि-रुदिता प्रमाण्याकासतोद्विजं) ब्रह्महत्या के स्थलपर इस नियम से बारह वर्ष कहे गयेथे कि जिसने विना इच्छाके ब्राह्मणा मारा हो उन्हीं बारह वर्षों का अतिदेश यहां उतारा गया तो यहां भी वही उपाधि लगी रही कि जिसने इच्छा विना मद्य पियाहो—यहां यद्यपिव्रतका अतिदेश उतारागया तिससे दोसौवावन २५२ अधिकोक्ति के प्रारंभ में चेताई हुई दोसौ इकतिस २३१ की अधिकोक्ति वाले नियम से चौथाई कसकरिके प्रायश्चित्त ठहिरता परंतु सुरापान महा पातकों में गिनती हो-चुका है तिससे अतिदेशके होनेपर भी पीना नहीं किंतु पूराही बारह वर्षका व्रतकराया जाय। इसपर बृह हारीत का यह वचन भी प्रमारा है कि (द्वादशभिर्वर्षैर्महा पातकिनःप्रयंते)सवतरह के महापातकी बारह वर्षों से शुद्ध होतेहैं तिससे यह उपदेश ही रहा अतिदेश नहीं ठहिरा जो पीना किया जाता ॥ + ॥ तीवि वर्षवाले प्रायश्चित्तमें जो पीना या कनकी चावनी कही सो रात्रि में एकहीवार का नियमहै वारंवार नखाय यही बात अशिले वचन में स्पष्ट है—यथासनुः—करान्वाभक्षयेद्वर्दापरायाकं वास्त्रक्षिप्रि—अर्थात्—रात्रि में एकहीवार वर्षमात्र भर पीना या तंदुल के किनके भक्षण करे—यह पीना आदि उसका भोजन कहा गया है तिससे और कोई वस्तु न भोजन करे। यह प्रायश्चित्तभी उसीके निमित्त मे समझना जिसने जलके धोखे सुरा पान किया हो। सो यह सावना भी तब करे कि पहिले उलटी रह करिके हृदय शुद्ध करचुके क्योंकि व्यासका यह वचन है कि—एतदेवव्रतंक्षुयन्मद्यपशुर्द्धनेकृते पंचरा-

व्यंतुतस्योक्तंप्रत्यहंकायशोधनम्=अर्थात्—यही व्रत मद्यपकरै छर्दि किये पीछे और पंचगव्य उसका शरीर शुद्ध करने को रोज रोज पीना कहा है—परंतु ऐसा तात्पर्य सम्भना अच्छा नहीं है कि यह पंचगव्य का पीना साक्षात् सुराके पीने मध्ये ठीक है परन्तु जिसने उस वासनमें धरा हुआ या डारिके जल पियाहो जिसमें कुछ थोड़ी सुरालगी लिपटी गंधभी आतीहो तिसके लिये छर्दि करना और पंचगव्य पीना कुछ आवश्यक नहीं—क्योंकि जलके संसर्ग मे होजाने से भी सुरा का सुरापन नाश नहीं होता है तिससे • इसपर यह दृष्टांतहै कि जैसे दहीमिलायेहुये घीमेंसे घी का भावनहीं सिटि जाता है (इसीलिये न्याय जानने वालोंने कहा है कि दही के छींटे लगा घी पीने वालों को घृतपान करै या निप्रचय करने किन्तु पृथदाज्यके पीवै या न कहिने चाहिये अर्थात् पृथदाज्य उसी घी का नाम है जिसमें दहीकेबूंद छींटे गयेहों ॥ ० ॥

और जो आपस्तम्ब का वचन है कि=स्तेयंकृत्वासुरांपीत्रा गुरुदारावृगत्वा ब्राह्म-
 राहत्यांकृत्वा चतुर्थकालमिति भोजनोयोभ्युपेयात् सवनानुकल्पं स्थानासनाभ्यां
 विहरन्स्त्रिभिर्वर्यैः पापंव्यपनुदति=संव्यत्वंगिरोवचनं=महापातकसंयुक्तावर्यैःशुद्धाति
 तेत्रिभिः=अर्थात्—आपस्तम्बने यह कहा कि चोरी करिके सुरापीके गुरुभार्या गमन
 करिके ब्राह्मराका वध करिके तीनिवर्यमें पाप नाश होता है जो पापी सवनयज्ञ के
 अनुकल्पको पहुँचै अर्थात् स्थान और आसनकी बैठक सब छोड़ेहुये तीनि वर्य तक
 विचरता हुआ निरन्तर नियमसे चौथेका संध्यासे पहिले थोड़ासा भोजन प्राणधारणा
 मात्र किया करै तो यह एक यज्ञही का अनुकल्प होजाता है • अथवा ऐसा अर्थ
 लगताहै कि (सःपापात्मापुरुयःवनानुकल्पंअभ्युपेयात्) वह पापी अपना स्थान आ-
 सन छोड़े हुये वनके अनुकल्पको अर्थात् वनको नहीं परन्तु वनके अनुरूप वेहड़ गो
 ब्रज आदि जंगलोंमें तीनि वर्यतक सायंकाल थोड भोजन करिके पापमोचन परमेश्वर
 का भजन कियाकरै • तीभी उसी अर्थके समान टाँहरा क्योंकि पहिले अर्थमें भी सवन
 यज्ञ करनेका उपदेश नहींहै यह आपस्तम्बका कथन है=ऐसाही अंगिराका यहकथन
 है कि=महापातकोंसे संयुक्त हुये पापीलोग तीनिवर्योंसे पवित्र होतेहैं—इन दोवचनों
 में जो तीनि वर्योंका नियम वाँदागया सोभी उसीके अनुरूपहै कि जैसा मूलश्लोक
 मे योगीचरने पीना आदि खानाकहा तिससे सिर्फ मूलश्लोककी विवक्षा वाले पापों
 पर इन वचनोंको जोड़िलेना पर सर्वत्र नहीं ॥ ० ॥ जोकि यमने दो प्रायश्चित्त और
 भी कहेहैं सो देखो=यथा=वृहस्पतिसवनेनेष्वासुरापोब्राह्मरा पुनः समत्वंब्राह्मरागैर्गच्छे
 दिव्येधावेदिकीयुतिः (तथा) भूमिप्रदानंयःकुर्यात्सुरांपीत्राद्विजोत्तमः पुनर्नक्षपिवेतां

तुसंस्कृतःसविशुद्धति=अर्थात्-वृहस्पतिके नामसे सवन करिके सुरापीनेवाला ब्राह्मण
 फिर भी ब्राह्मणोंके साथ बराबरी दर्जेमें आजाताहै यह वेदकी श्रुतिसे प्रसिद्ध है=
 तथैव=जो ब्राह्मण सुरा पीकर संस्कार कराइके भूमिदान करे और फिर कभी उसको
 न पीवे तौ यज्ञोपवीत संस्कारसे संयुक्त होके शुद्ध होजाता है-सो ये दोनों भी उसी
 पहिलेके साथ मिलिकर एकही विषय समझना कि तीन वर्ष पीना आदि भक्षणा
 किये पीछे यह सवन या संस्कार और भूमिदान करना होगा (अथवा वृहस्पति स-
 वन करना जो कहा तिसका बारहवर्षोंके साथ बदल भी होसक्ता है कि जैसा पूर्वार्द्ध
 मलप्रलोकमें योगीश्वरने बारहवर्ष ब्रह्महत्याके व्रतवाले को कहे और उन्हीं बारहवर्ष
 की योग्यता जिसको ठहरे और वही अपराधी बहुत धनवानहो तौ अधिक दक्षिणा
 वाला वृहस्पतिसवन करिके छुटकारा पासके यह तात्पर्यहै ॥ ० ॥ इस व्यवस्थामेंभी
 स्त्रियां और बालक बूढेआदिको तीनवर्षकाआधाडेहवर्ष व्रतदेनाचाहिये और बालक
 जो बिना जनेऊका अनुपनीतहो तिसको चौथाई अर्थात् नौ महीने का व्रतदेना चाहिये
 इत्यादि पहिली रीतोंसे कल्पना करलेनी चाहिये ॥ ० ॥ एक जो मनु का यह वचन
 है कि (करान्वाभक्षयेददं पिण्याकवासकन्निशि सुरापानापनुत्यर्थंबालवासाजटी
 ध्वजी) छरे कूटे अन्नकी कनकी या पीना एकवर्षभर एकही वार सदा रात्रिमें भक्षणा
 कियाकरे सुरापानका दोष मिटानेके लिये) इसमें जो एकही वर्षकहा सो यह प्रा-
 यश्चित्त उसके लिये समझना जिसने बिना समझे जलके धोखे मुखमें डालिके सिर्फ
 तालूतक पँची हुईको उलटि दीहो=इसपरभी तर्कनाहै कि=द्रवचीजें जो पीनेयोग्य
 पतलीहोती हैं तिनका घंटिजाना पान कहाता है और घंटिजाना कंठ के नीचे उतर
 जाना प्रसिद्धहै कुछ तालूके संयोग मात्रसे पीना या घंटिजाना नहीं सिद्धहोताहै फिर
 कैसे मनुके वचनमें सुरापानापनुत्यर्थ यह कहिके पीजानेके निमित्त प्रायश्चित्त द-
 शया ग्या-सुनौ-जिस तालू आदिमें पहुँचने बिना पीनेकी क्रिया नहीं चलसक्ती
 है तिससे पानक्रियाके निषेधसे तालू आदि में पहुँचना भी नियिद्ध किया है• इसी
 कारणसे यद्यपि ठेठ पीलेने बिना सहापातक नहीं सिद्धहोता तथापि पीलेनेके नि-
 षेधसे उसका अंगभूत तालू आदिका संयोग भी प्रतियिद्ध ठहिरा क्योंकि तालू तक
 पहुँचनेमें भी दोष सौजूद्धै उस दोषके होनेसे प्रायश्चित्त भी अवश्य होताहै इसका
 यह प्रमाण भूत दृष्टांत है कि जैसे (चरेद्व्रतसहस्वापिघातार्थंचेत्समारातः) इस वचन
 में जैसा कहिचुके हैं कि ब्राह्मणको सारडारना लोचिके गया हो फिर चाहें न सा-
 रिपावै तौ भी प्रायश्चित्त करे जैसा सारडारने के नियेध से उसका अंगभूत जो नि-

पचय करिके पहुँचना आदि तिसका भी निषेध होनेसे प्रायश्चित्त कहा गया तैसा पीजानेके निषेध से तालूतक पहुँचाना निषिद्ध हुआ ॥ ० ॥ एक बौधायनका वचन है कि=त्रैसासिक समत्या सुरापाने कृच्छ्राब्दपादंचरित्वापुनरुपनयनमिति=दूसरा यमका वचन है कि=सुरापीत्वाद्द्विजं हत्वास्वसंहत्वाद्द्विजन्मनः संयोगंपतितैर्गत्वा द्विजप्रचान्द्रायरांचरेत्=तीसरा वृहस्पतिक का वचन है कि=गौडीमाध्वीसुरांपैष्टींपीत्वा विप्रःसमाचरेत् तप्तकृच्छ्रं पराकंचचांद्रायरासनुक्रमात् (तत्त्रितयमध्यनन्यौषधसाध्य व्याध्युपशमार्थेपानेवेदितव्यं प्रायश्चित्तस्याल्पत्वात्=अर्थात्—बिना जाने सुरापान में एक वर्ष के कृच्छ्र व्रतकी चौथाई तीन महीने करिके पीछे उपनयन संस्कार करें यह बौधायन का कथन है=और यमस्मृति का यह वचन है कि=सुरा पीकर ब्राह्मण को मारिके ब्राह्मण का सोना दुराथ के पतितों के साथ संयोग संसर्ग में जाइके ब्राह्मण चांद्रायरा व्रतकरै=और वृहस्पति का यह कथनहै कि=गौडी १ माध्वी २ पैष्टी सुरा ३ को पीकर ब्राह्मण यथा क्रम से तप्तकृच्छ्र १ पराक २ चांद्रायरा ३ इनको करै प्रत्येक पर एकसक समझ लेना (सो यह बौधायन आदि के तीन वचन वाले प्रायश्चित्तों को उस रोगी के निमित्त में समझना जिसका रोग सुरा के सिवाय किसी औषध से न जाता देखै और सुरा पीनेसे साध्य जानिके वैद्यने पिलाई हो चाहें बिना जाने या कहिके पिलाईहो क्योंकि इनवचनोंमें प्रायश्चित्त अतिछोटे कहेगये हैं तिससे ॥ ० ॥ जब कहीं सुराका मिला हुआ सुखेही रस का अन्न कोई भक्षरा करै बिनाजाने तिसका फिर उपनयन कर्म यज्ञोपवीत होना चाहिये=यदाह मनुः=अज्ञानात्प्राश्याविरामं सुरासंस्मृत्यैव च पुनःसंस्कारमर्हति त्रयोवराद्द्विजातयः= अर्थात्—बिनाजाने विद्या या सूत्र मुहमें जाय या सुरा से संस्मृत कोई सुखी वस्तु जैसे सुरा के सुखेपात्र में धरीगई हो इत्यादि तिसको मुह में धरिके तीनों द्विजाती लोग फिर संस्कार होने के योग्य हैं ॥ ० ॥ जबकोई सुखे सुराके वासन में धरा हुआ जल पीलेवै तब शातातप का कहा प्रायश्चित्त करै=यथाह शातातपः=सुराभांडोदकपाने कूर्दं ब्रूत प्राशनमहोरात्रोपवासश्च=अर्थात्—सुरा के पात्रमें धरा जल पीनेमें कूर्दि उलटी करै घी चाटे और एक दिन राति का उपवास भी करै=इसी मध्ये बौधायन का जो वचन है कि=सुरापानस्यग्रोभांडेपत्रपःपर्युयिताःपिवेत् शंखपुष्पीविपक्वंतुक्षीग्म तुपिवेत्यहन=अर्थात्—सुरापीने के पात्र में धरा हुआ जल अनेक दिनका जो कोई पीलेवै सो शंखपुष्पी (शंखाहली) में खूब औरि हुये दूध को तीन दिन पीवै—सो यह अतिक विधान इसी हेतु से जानी कि अनेक दिनका धराजल पीने में शातातप

का कहा वसन घी उपवासये तीनों पहिले करिके पीछे दूधभी तीनदिन पीवै=इसी जल को बिना चाहे जिसने कई बार धोखा से पिया हो तिसके लिये मनु ने पांच दिनका प्रायश्चित्त कहा है=यथा=अपःसुराभाजनस्थासद्यभांडस्थितास्तथा पंचरात्रं पिवेत्पीत्वाशंखपुष्पीशृतंपयः=अर्थात्-सुराके पात्रमें धरेहुये तथा सद्यके पात्रोंमें धरे जल पीकर पांचदिनतक शंखपुष्पीका औटाया दूधपीवै तब शुद्धहोय ये पांचदिनभी शातातप की कही विधि करनेसे उपरालू करनेहोंगे=जो कि विष्णुने सातदिन कहे हैं कि-अपःसुराभाजनस्थाः पीत्वासप्तरात्रंशंखपुष्पी शृतंप यःपिवेत्=अर्थात्-सुरा के भाजनमेंधरे हुये जलपीकरशंखपुष्पी मिलाकर औटा दूध सातदिन पीवै•सो यह सात दिन उसके लिये कि जिसने जानिबूझिके पिआहो और शातातपकी कही विधि करिके पीछेउपरालूदूध पीवै=और जिसने जानिबूझिके अनेकवार पिआहो तिसके लियेदृहद्यसकावचनहै=यथाहृहृद्वयमः=सुराभांडस्थितंतोयं यदिकाश्चित्पिवेत्तद्विजः सहादशाहंसोरेणापिवेद्ब्राह्मींशुवर्चलास=अर्थात्-सुराके भाडमेंधरेजलको यदि कोई द्विजाती पीलेवै सो बारह दिन तक दूधमें औटी हुई ब्राह्मी बहनेटीशुवर्चला औषधी जो वही शंखपुष्पीहै तिसको पीवै यह भी शातातपकी विधिसे उपरालू करनाहोगा ॥ ० ॥ सुरा पिये हुयेके मुखकी दुर्गंधि सुंघने मध्ये मनुका वचन है=यथा=ब्राह्मणा स्यसुरापस्य गंधसाघ्रायसोमपः प्राणानप्सुत्रिरायस्य घृतंप्राप्यविशुद्ध्यति=अर्थात्-जहां कोई सोमप सोमयज्ञमें सोमपीने पीछे किसी सुरापियेहुये ब्राह्मणा के मुख की गंधि सुंघै सो जलमें खड़ा होके तीनवार प्राणायाम करिके और घी चारिके विशुद्ध होताहै (इसमें शातातपकी विधिसे कुछ संबंध नहीं) यह नियम केवल सोम यज्ञ करनेवालेका उस दशामे ससक्तता कि जब बिना जाने धोखामें गंध सुंघी हो किन्तु जानि बूझिके सुंघनेमें यही उसकोदूना कर्तव्य होगा-इसीके अनुसार जो सोमयाजी या सोमपीनेवाला न हो तिसने गंधि सुंघीहो उसके लिये कल्पना कर लेनी चाहिये इसरीतिसे कि (घ्रात्तिश्चेयसद्ययोः) इस वचन से सुरा और सद्यकी वास का सुंघना तथा न सुंघने योग चीजोंका सुंघनाभी जाति भ्रंशकर पापोंमें गिनती होचुकाहै तिस से इसमें जाति भ्रंशकर पापोंका प्रायश्चित्त देनाचाहिये जो मनुने कहा है=यदाह मनुः=जातिभ्रंशकरं कर्म कृत्वाऽन्यतममिच्छया चरेत्सांतपनं कृच्छ्रं प्राजापत्यमनिच्छया=अर्थात्-जातिभ्रंशकर जो जो कर्म पहिले कइचुके उनमें से किसी एकही कर्मको जानि बूझिके कियाहो तो कृच्छ्रसांतपन व्रतकरै जिसने बिनाजाने अनिच्छा से कियाहो सो प्राजापत्य व्रतकरै ॥ २५४ यहां तक मुख्य सुरापान के प्रायश्चित्त

कहेगा अत्र अगिले परिच्छेदमें सुरासे उपरालू मद्योंके पीनेमध्ये कहेंगे ॥ २५४ ॥

अथसुरावर्जित मद्यानां पानविषये प्रायश्चित्तांतर प्रदर्श कोऽयंपरिच्छेदः त्रयस्त्रिंशः ३३ ॥

— * —

इस परिच्छेदमें उस भौतिके मद्यपान मध्ये प्रायश्चित्त कहे जायेंगे जो मुख्य सुरासे उपरालू मद्य होतेहैं ॥ मद्य उनका नामहै जिनमें सुराके समान सद तथा होताहै-और मद्यसे उपरालू जो अभस्य वस्तु होतीहैं तिनके प्रायश्चित्त का चर्चा दोसौ छप्पन की अधिकोक्ति में ॥

(सुरेतरमद्यपानप्रायश्चित्तं)

भक्षानासुसुरापीच्वारेतोविष्णुमूत्रमेवच । पुनःसंस्कारमर्हतित्रयोवर्णाद्विजातयः २५५

अर्थः—अज्ञानतासे जलके धोखे जो कोई मद्यरूपी सुरापीवै या पुरुष का वीर्य या मद्यको मुख्यमें जानेदे सो तीनोंवर्णोंके द्विजाती लोग पुनः संस्कार उपनयन होने के योग्य होते हैं ॥ २५५ ॥

२५५ अधिकोक्तिः—मिताक्षराकार इसपर व्यवस्था देतेहैं कि तप्तकृच्छ्रका प्रायश्चित्त करनेके बाद अनन्तर पुनः संस्कार यज्ञोपवीत होनाचाहिये परन्तु तीनोंवर्णोंको यह संस्कार वीर्य और सूत्रहीके पीनेमें समझना किन्तु मद्यपान मध्ये केवल ब्राह्मणोंका पुनः संस्कार होनाचाहिये क्योंकि क्षत्री और वैश्यको मद्यपीने की अनुज्ञा सिद्ध होचुकीहै २५५ की अधिकोक्तिमें देखी तिससे इन दोनोंको केवल तप्तकृच्छ्र करना होगा—और यहां जो मूलश्लोकमें सुराशब्द आया तिससे मद्य समझना मुख्य सुरा नहीं क्योंकि प्रायश्चित्त बहुत छोटाहै तिससे और इससेभी कि अज्ञानतासे मुख्य सुरा पीजानेपर चारहवर्ष का प्रायश्चित्त पहिली अधिकोक्ति में कहिचुके हैं—इसी हेतुसे गौतमने इस विषयपर मद्य शब्दहीका वर्ताव कियाहै कि जिससे सदेह न उठै—यथाह गौतमः=अमत्यामद्यपानेपयोधृतमुद्रकंवायुं प्रतिव्यहंतप्तानि पिवेत्सुतप्तकृच्छ्रः ततोऽस्यसंस्कारो सूत्रपरीयकृत्वापरेतमांप्राग्नेच=अर्थात्—बिना जाने मद्य पान करने में तीन तीन दिन ये चीजें गरम करि करि पीवै कि पहिले तीन दिन दूध फिर तीन दिन घृत फिर तीनदिन जलही गरम पीवै फिर तीनदिन केवल वायु जो सूर्यके आताप

से स्वतः तप्त हुई हो तिसै पीके रहै सो यह तप्त कृच्छ्र नाम का प्रायश्चित्त कहाता है यह करने पीछे इसका उपनयन संस्कार भी किया जाय तब शुद्ध होता है और यही प्रायश्चित्त उपनयन सहित उनको भी कराना कि जिसने सूत्र या विष्टा या पीवराधि वगैरे कोई सड़ाईधि या पुरुषका बीज भक्षरा किया हो—इसी पर और भी वचनांतर है कि (तप्तकृच्छ्रं चरन्विप्रोजलक्षीरघृतानिलाच्च प्रतिच्यहंपिवेदुषानसकृत्स्नायीस साहितः) अर्थात्—ब्राह्मण जो तप्तकृच्छ्र करना चाहै सो जल और दूध और घी और हवा इन प्रत्येकको तीन तीन दिन गरम करिके पीवै तबतक एकही बार स्नान किया करै=पराशरने इन चीजोंका परिमाण विशेषभी कहा है=यथा=घटपलंतुपिवेदं भस्त्रि पलंतुपयःपिवेत् पलमेकांपिवेत्सर्पिस्तप्तकृच्छ्रं विधीयते=अर्थात्—तप्तकृच्छ्रव्रत उसका नाम है जो छेपलकी तौलसे जलपीवै तीनिपल दूधपीवै एकपल घी पीवै आगे तीनि दिना केवल वायुभक्षरा कहिचुके हैं=और जो मनुका यह वचन है कि (अज्ञानादारुणीपीत्वा संस्कारेणाविशुद्ध्यति) विना जाने बारुणी मदिरा पीकर संस्कार होने से विशुद्ध होता है) सो इसमें भी वही तात्पर्य है कि पहिले तप्तकृच्छ्रकी साधनाकरिके तबसंस्कार किया जाय क्योंकि गौतमके वचनसे मुताबिक होना चाहिये (पुनःसंस्कार द्विवारा जनेऊ करना कहाता है) सो यह आश्वलायन आदि कर्मकांडियों के बांधे क्रमसे करना चाहिये कि जैसा (अथोपेतपर्वस्यकृताकृतकेशवपनं मेधाजननंचानिरुक्तंपरिदानं कालश्चतत्सवितुर्वृणीमहे इति सावित्रीम्) प्रथम वेदीके पास बैठारे हुये का मुंडन किया जाय चाहै बाल मुड़े हों या नहों दोनों दशामें रखे और विना रखेबाल सर्वथा कृताकृत पवन किया जाय फिर मेधाजनन कर्म किया जाय जिससे उत्तमवृद्धि उत्पन्न होय फिर अनिरुक्त कर्म किया जाय फिर परिदान कर्म होय फिर कालकर्म तत्सवितुः इत्यादि ॥ ० ॥ जिसने जानि बूझिके मद्यपान किया हो तिसको वसिष्ठोक्त विधिसे प्रायश्चित्त देना चाहिये=यथाहवसिष्ठः=सत्यामद्यपानेत्वसुरायाःसुरायाश्चाजानेकृच्छ्रातिकृच्छ्रौघृतप्राशनं पुनःसंस्कारश्च=अर्थात्—सुरा के बिना उपरालू मद्य जानि बूझिपीने सै कृच्छ्रनामक व्रतकरै और साक्षात् सुराका अज्ञानतासे पीनेमें भी अतिकृच्छ्र व्रतकरै और दोनोंके व्रतकिये पीछे घी चाटे और दुवारा संस्कारकरावै=अथवा (असुरामद्यपायीचान्द्रायरांचरे दितिशंखोक्तं विकल्पं) सुरा विहीन मद्य का पीनेवाला चान्द्रायरा व्रतकरै यह शंखमुनिका कहा विकल्प भी किया जासका है (यहां जिन व्रतोंके नामही केवल कहेगए तिन सबके विधान आगे आवेंगे तहां व्योरा समझिलेना क्योंकि चान्द्रायरा व्रत एकही नामहै उनको चारिभेद होतेहैं एवं

प्रायश्चत्तवारहदिके नियम साथ कृच्छ्र और अतिकृच्छ्र ये दोनों जुदेव्रतभी होते हैं तथा कृच्छ्रातिकृच्छ्र दोनों मिलके एक तीसरा जुदा होता है और भी छे दिन का कृच्छ्राद होता है फिर कृच्छ्रहीके नामसे कृच्छ्रसान्तपन आदि व्रत होते हैं तिससे इनका बिस्तार लिखनेको यहां पर अवकाश नहीं है ॥ ० ॥ जिसके सिर्फ मुखहीमें मद्यपहुंचा हो गलेके नीचे न उतराडो तिसके लिये छे दिनका व्रत आपस्तंबके विधानसे विचारना चाहिये=यदाहापस्तंबः=अभक्ष्यारामपेयाना मलेह्यानंचभक्षरौ रेतोमूत्रपुरीषाणां प्रायश्चित्तंकथंभवेत् पशोदुस्वरविल्वानांपलाशस्यकुशस्यच सतेषामुदकंपीत्वायडा वेणुविशुद्यति=अर्घति-नखानेकी न पीनेकी न चाटनेकी निषिद्ध चीजों के भक्षण करिजानेमें तथा पुरुषका बीज और मूत्र और विष्टा इनके भक्षण करनेमें प्रायश्चित्त कैसे होवै सो कहिते हैं कि० पद्म० उ० वर गलर० बेल० पलाशढाख० कुशा० इनपत्तोंका जल औटिके छे दिन तक पीने से पवित्र होता है-सो यह नियम सिर्फ ताड़ी आदि मद्योंके विययपर समझना कि जैसे गृह मत आदि धोखा से मुहमें जाते सार धृक् दिया तैसे ताड़ी आदि मद्यको मुहमें जाते सार धृक् दिया हो तिसको शुद्धि छे दिन में होजायगी=अन्यथा गौंडी और साध्वीको बिनाजाने मुखमें डारिके बिना घूरेजो धृक्दिदेइ तिसके लिये जैसा वसिष्ठ के वचनमें ऊपर (असुरायाः सुरायाश्चाज्ञानतः) यह लिखि चुके सो कृच्छ्रातिकृच्छ्र सहित दुवारा संस्कार और घृत का चाटना भी कराना होगा (परंतु यह संदेह न करना कि पहिली अधिकोक्ति में तालू तक पहुचने मध्ये मनुके वचन से गक वर्यभर पीना खाना कहाया यहां क्योंकर थोडा रहगया- क्योंकि वहां मद्यसे बड़ी पैथी सुरा का प्रायश्चित्त कहा और यहां उससे छोटी गौंडी साध्वी का प्रसंग है तिससे थोडा रहगया बल्कि (उन्हीं गौंडो और साध्वी को जानि वक्ति सक्वार के निपट पीजाने मध्ये (पिरयाकंवाकसानुवापी तिवैवार्थिकं) यह दोहो चौवन के उत्तरार्ध से कहिचुके तैसा तीन वर्य तक पीना खाकर प्रायश्चित्त करना चाहिये=और जिसने अपनी चाहना तथाकामनासे उन्हीं गौंडी या साध्वी को बारम्बार पीने का अभ्यास कियाहो तिसके लिये वसिष्ठ का दर्गाया सरगांतिक प्रायश्चित्त चाहिये जैसा २५३ दोसो वेपन की अतिकोक्तिमें लिखि चुकेहैं कि (अभ्यासेतुसुराया अग्निवर्णांसुरांपिवेन्मरणात्पूतोभवतीतिवसि यः) सुरा के बारम्बार अभ्यास पूर्वक पीने में यही प्रायश्चित्त है कि अग्नि के म-मान लान तपाई हुई सुराकोही पीवे जो हृदय जलिकर मरजाने से पवित्र होता है- इसमें सुराकाहिनेमें गौंडी और साध्वी सुरामे प्रयोजनहै किंतु पैथी सुराका अभिप्राय

इसमें नहीं है— क्योंकि पैसी धरा सबमें मुख्य होती है तिसके एकही बार पीनेपर
 मरणांतिक प्रायश्चित्त २५ ३ दोसो त्रेपन प्रलोक और उसीकी अधिकोक्तिसे कहि
 चुके हैं तिससे ॥ ० ॥ मद्य धरने के सूखे वासन में भरा हुआ जल बिनाजाने एकही
 बार पीनेमें वृहद्यमका कहा प्रायश्चित्त विचारना=यदाह वृहद्यमः=मद्य भांडस्थ
 तंतोयंयदिक्रश्चित्पिवेत्द्विजः कुशासलविपक्वे लज्जहंसीरेणवर्तयेत्=अथत्वि—मद्य के
 भांडमें धराहुआ जलजो कोई द्विज पीवै सो दूधमें कुशा की जडका काय पकाय के
 तीन दिन पीवै=बिना जाने अनेक बार पीते रहने में वसिष्ठ का कहा प्रायश्चित्त
 विचारना=यदाहवसिष्ठः=मद्यभांडस्थतंतोयंयदिक्रश्चित्पिवेत्द्विजः पञ्चोदुंबरविहवा
 नांपताशस्यकुशास्यचसतेयामुदकंपीत्वात्रिशेत्राविशुद्ध्यति=अथत्वि—मद्यके भांड में
 धराजलजो कोई द्विजपीवै सो पद्म•शालर•बेल•हाखा•कुशा•इनकाकाहा रोजपीकर
 तीन दिनमें शुद्ध होताहै=जानते हुये पीलेनेमें विष्णाकाकहा प्रायश्चित्त विचारना=
 यदाह विष्णुः=मद्यभांडस्थतंतोयं पीत्वापंचरात्रंशंखपुष्पीशृतंपयःपिवेत्=अथत्वि—
 मद्यके वासन का जल पीके पाँच दिनतक शंखपुष्पी का औटाया दूध पीवै—जानते
 हुये बार बार पीने में शंखजीका कहा विचारना=यदाहशंखः=मद्यभांडस्थतंतोयंपी
 त्वापञ्चरात्रंशंखपुष्पीशृतंपयःपिवेत्=अथत्वि—मद्यभांडका जल पीके गोमूत्र लाखये सात
 दिनतक पीवै=जिसने अत्यंत अभ्यास कियाहो किंतु जानतेहुये बहुत दिनतकपिआ
 हो तिसकेलिये हारीत का कहा प्रायश्चित्त विचारना=यथा हारीतः=मद्यभांडस्थ
 तंतोयंयदिक्रश्चित्पिवेत्द्विजः द्वादशाहंतुषयसापिवेद्ब्राह्मीसुवर्चलाप्त=अथत्वि—मद्य-
 पात्रका धरा जल जोकोई द्विज पीवै सो दूधमें ओदिके ब्राह्मी बह्मनेटी नाम सुवर्चला
 का पंचांग बारह दिनतक पीवै तब शुद्ध होय (सभी इन वचनों में द्विज शब्द जो
 आया सो केवल ब्राह्मण का बोधक है) क्योंकि क्षत्री और वैश्य को मद्यका नि-
 वेध नहीं है यह पहिले कहि चुके हैं दोसो त्रेपन आदि अधिकोक्तों में देखी) नद्य
 के पात्र में धरे जलके मध्ये जो जो वचन अहाँपर लिखे गये सो सब गौडी साध्वीके
 पात्र में धरे जलका विषय समुझना क्योंकि प्रायश्चित्त के बड़ापन से यही तात्पर्य
 बहेरता है तिससे ताडी आदि छोटे मद्यों के सूखे पात्रका धरा जल पीने मध्ये कुछ
 न्यून कल्पना करनी चाहिये ॥ २५५ ॥

यहांतक पुरुषों के प्रायश्चित्त कहेगये अब आगे जो स्त्रियां मदिरा पीवै
 तिनके प्रायश्चित्त दर्शावेंगे ॥

(स्त्रीणांसुरापाने प्रायश्चित्तानि)

पतिलोकंनसायातिब्राह्मणीयासुरांपिवेत् । इहैवसाशुनीगृधीशूकरीचोपजायते २५६

अर्थः—जो ब्राह्मणी सुरा पीवे सो पतिके लोक को नहीं जाती है वह इसी लोक में कृतिया गिद्धिनी सुकरी होके जन्मती है—अर्थात्—ब्राह्मणी आदि तीनों द्विजातियों की भार्या यद्यपि पतिकी सेवा आदि अनेकपुण्य करने वाली हो तौभी जो सुरा पीवे सो पतिके पुण्य लोकों को नहीं जाने पाती है इसी लोक में कृत्ता आदि तिर्यक योनियों में बारबार क्रम से जन्म पाती है ॥ २५६ ॥

२५६ अधिकोक्तिः—मूल प्रलोक में योगीश्वर ने केवल ब्राह्मणी शब्द रक्वा है तौभी मिताक्षराकारने व्यवस्थाको अपेक्षा से तीनों वर्गकी भार्या अर्थ किया है इस हेतुसे कि आचार मर्यादा परिपाटीमें ५७ मूलप्रलोक से आवश्यक निर्वाह निश्चित होचुका है कि ब्राह्मणाके ब्राह्मणीआदि चारोंवर्ग की भार्याभी होती हैं सबीके स-बाराँ आदि तीनिवर्ग की भार्याभी होती हैं वैश्यके बनेनी आदि दोवर्गकी भार्याभी होती हैं (गूद्रके केवल गूद्रा भार्या होती है) इसीन्यायसे यहांभी जिसद्विजातीके अतिनी भार्याएँ होनीकरी गईं तिनमवहीका उपलक्षण एकब्राह्मणी कहिनेसे लिया है इसका इसीसे दृष्टांत समझो कि ब्राह्मणी भार्या अर्थात् ब्राह्मणाकी भार्या चाहें सत्रीवर्ग या वैश्यवर्ग या गूद्रवर्ग की कन्या हो तौभी सुरा पीने से पतिका लोक न पावैगी इसी प्रकार सत्री और वैश्य की भार्याएँ समाभिलेना=इसीआशयपर मनुका वचन है कि=पतत्यर्द्धशरीरस्यथस्यभार्यासुरांपिवेत् पतितार्द्धशरीरस्यनिष्कृतिर्नविधीयते=अर्थात्-जिन किसीकी भार्या सुरापीवे तिसके शरीरका आधा भाग पतित होजाता है पति-तहुये आधे शरीर की निष्कृति नहीं होती है—क्योंकि धर्म अर्थ काम इन तीनों में स्त्री पुत्र्य दोनों का साथही अविकार होने से दोनों का एकही शरीर माना गया है तिससे भार्या रूपी आधा शरीर पतित होजाता और इसीसे उसकी मुक्ति नहीं होती है तिससे द्विजाती माध की भार्या ब्राह्मणी आदि को सुरा न पीनी चाहिये यह प्रतिषेध निश्चिद हुआ—यह वचन पहिले आचुका है २५३ की अधिकोक्ति में देखा (तन्नाद्याह्मणापन्नयो वैश्यप्रचनभगंपिवेत्) कि ब्राह्मणा सबी वैश्यभी सुरा न पीवे इससे पुत्र्यही या स्त्री न पीवे यह लिंग भेद नहीं किया तिससे तीनों वर्गकी समस्त नारीमाध को नियेध दहिरा कि पुत्र्य और स्त्री और बालकभी न पीवे • इसी वचन से लोकोपगकी भार्याओं का नियेध निश्चिद होचुका था तौ फिर द्बारा भाट्याओं का

विशेषता यहां इसलिये कही गई समुक्तों कि द्विजातियों के कदाचित् शूद्रों भार्या हो तिसको भी सुरा न पीना चाहिये—इन सब कारणों से यह बात सिद्ध हुई कि द्विजातियों की भार्या चाहें शूद्रों पर्यंत किसी वर्गकी हों सो कदाचित् सुरा पीवें तो उनको भी अपने पुरुषों से आधा प्रायश्चित्त करना चाहिये (२५४ दोसौ चौवन की अधिकोक्ति में भी लिख चुकेहैं कि स्त्रियाँ और बालक बूढ़े आदि को आधा प्रायश्चित्त देना चाहिये वही तात्पर्य सर्वत्र और यहां भी समुक्ते रहिना) परन्तु जो शूद्रकी भार्या सुरा पीवें तो उसके लिये शूद्र के समान सुरा पीने का नियेध नहीं है तिससे प्रायश्चित्त भी आवश्यक नहीं है ॥ ० ॥ और जो २०६ दोसौ उनतीस मूल श्लोक वा उसकी अधिकोक्ति में निषिद्ध चीजों का भक्षणा करना भी सुरापान के समान कहा गया है तिनके भक्षणा करने में सुरापान ही का प्रायश्चित्त आचरणा करना चाहिये अर्थात् सुरा पीजाने मध्ये जो कुछ प्रायश्चित्त जिसके लिये जितना करना कहा हो वही उससे आधा करै जिसने निषिद्धचीजें भक्षणा करीहों यह पहिले कहिचुके हैं ॥ २५६ ॥

इतिसुरापान प्रायश्चित्त प्रकरणं

—*—

॥ इस प्रकरणा में इकतिस से तैंतीस तक तीन परिच्छेदों से मुख्य सुरापान और अमुख्यसुरापान और मद्यपान के समस्त प्रायश्चित्तोंकी व्यवस्था कहीगई अवआगे चोरीकरने मध्ये चोरोंके प्रायश्चित्त कहे जायेंगे ॥

**अथ सकामस्वर्णापहारिप्रायश्चित्तानांभेदविवेचकोऽथ
परिच्छेदःचतुस्त्रिंशः ३४ ॥**

—*—

इस परिच्छेद में उन प्रायश्चित्तों का भेद विवेचन किया जायगा जो इच्छा और कामना से ब्राह्मणाका सुवर्ण आदि हरने के पापों पर आवश्यक होतेहैं ॥

(स्वर्णापहार प्रायश्चित्तं)

ब्राह्मणस्वर्णहारीतुराज्ञेमुशलमर्षेयत । स्वकर्मख्यापयंस्तेनहतोमुक्तोपिवाशुचिः २५७

अर्थः—ब्राह्मणाका सोना हरनेवाला चोर अपने कर्म (चोरी) को सुनाता हुआ (आपहीजाकर) राजाको मूसल समर्पणा करै (उसी मूसल से राजा करके बहचोर)

निपट नाराहुआ या छोड़ दिया हुआ भी पापसे छुटिजाता है=अर्थात्—यहीउसका प्रायश्चन है कि आपही राजाको शस्त्र समर्पणा करे फिर चाहें राजा अपने प्रायश्चित्त विचार से उसको निपट सारिही डारै या दंड देकर छोड़ि देवै तौ भी शुद्ध होजाताहै अन्य या नहीं ॥ २५७ ॥

७५७ अत्रि-क्तोक्तिः—मोना हरनेका शब्द कहिगे से इतनी बातें सूचित करी हैं कि चाहें त्वार्मीके सम्मुख या औरही किसीके सम्मुख हरलिया हो या स्वामी की आंख पीछे हरा हो या जबरदस्ती से छीना हो या चोरों की तरह चुराया हो—परन्तु उन बातोंको छोड़ि के समझना कि उसने खरीदने आदि प्रकारों से हरा हो जिसमें तिन उमीका स्वत्न (हकमालिकियत) किसी हेतु से पहुँचता हो ॥ ० ॥ समन समर्पणा करै अथपि यह सामान्य भाव से किसी लोहा लकड़ी आदि के विशेषता बिना कहागया है तथापि जाहरहै कि मारने के निमित्त देना कहा तिस-से मारनेमें असर्थ लोहे आदि का समल समझना=इसी हेतु मनुने यह कहा है कि—
स्कन्धेनादायमुगलंलकृतंवापिखादित् अस्त्रिचोभयतस्तीक्ष्णा मायसंदंडमेववा=अ-
र्थात् काँवेपर सुसर या खेर का डण्डा लाठी लेकर या तलवार जो दुवारा खांडा दोनों ओरसे तीक्ष्णा पैनी धारवालीहो यद्वा लोहेका डण्डालाहो=शंखलेभी विशेषता अनुपर कही है=यथा=सुवर्णास्तेनःप्रकीर्णकेश्याद्र्वासा आयसंसुशलमादायराजानमु-
पात्त्येदिभयापापंजतननेन मुगलेनमांवातयत्वेति सराज्ञाशिशुःसुपूतोभवति=अ-
र्थात् सुवर्णाका चोरवाला छिठकारा और भीजे वस्त्र पहिने लोहेका सुसरलेकर राजा के पास जाय खडाहो कि यह पाप मैंनेकिया इस सूसरसे मुझे मारडालो यह मुनि

करता है। क्योंकी ऐसा अर्थ क्योंहीं लगाते कि राजा यदि बिना मारे छोड़िदे तौभी शुद्ध होजाय क्योंकि मूल श्लोक में यहभी अर्थ ठीक ठीक होसक्ता है—सुनौ यद्यपि ठीक होसक्ता है तथापि (अघ्ननेनस्वीराजा० इतिगौतमीये ताडनसकुर्वतोराज्ञोदोषाभिधानात्) न मारते हुये पापी राजा हो। यह गौतम के वचन में राजा को दोष कहा है तिससे नहीं वैसा अर्थ लगाते हैं—अच्छा होउ राजा को दोष तौभी नियेध के उलाँघने वाले राजा ने स्नेह दया भाव आदि किसी हेतु से छोड़दिया न मारा तौ कैसे नहीं शुद्ध होगा—सुनौ ऐसा होने में (वृथाही) अकारण अशुद्धि का आपरना होता है—क्योंकर होता है छुटिजाने के पीछे बारह वर्ष आदि के किसी अनुष्ठानसे शुद्धि करना स्वीकार करने से वृथा अशुद्धि न रहेगी। सोभी यह आशय अच्छा नहीं क्योंकि मूल श्लोक में (मुक्तःशुचिः) बचिकर छुटकारा होनाही शुद्धि का हेतु कहा गया है तिससे (मुक्तोवासरगाज्जीवन्नापिबिशुद्धो दितिप्राच्येवद्व्याख्याज्यायमी) वही पहली व्याख्या अर्थ है कि मूल आदि मारने में मरने से बचिगया जीवते हुये भी शुद्ध होजाता है ॥ ० ॥ यह अस्मृतिक प्रायश्चित्त सभी वर्गों के चोर को समझना किन्तु केवल ब्राह्मण हीको नहीं क्योंकि (ब्राह्मणास्वर्गाहारी) यह मूल श्लोक में कहागया सो बिना किसी विशेषता केसामान्य भाव कहा हैकि ब्राह्मण का सोना हरने वाला कोई जाति वर्ग का नियम कुछ नहीं है और महापातकों वाले परिच्छेद में क्षत्री आदि कोभी महापातकित्व अविशेषता से कहिचुके हैं और उनके लिये कोई जुदा प्रायश्चित्त भी वर्ग के अनुसार नहीं कहागया—इस दशाके होनेपरभी जो मनु के वचन में (सुवर्गास्तेयकृद्भिः) यह विप्रही का नाम बरागया सो भी समस्त नरमात्र का उपलक्षणा है कि सबसे मुख्य ब्राह्मण को कहि दिया तब और सबकोई भी न बाकी रहे। वलिक इभी मनु वचन के पहिले प्रधान वर्ग में (प्रायश्चित्तीयतेनरः) यही नर शब्द आचुका है जो सन्पूर्वा मनुष्य मात्रका वाचक होताहै— और भी यह प्रसारा है कि पातकस्त्री निमित्तों का अह वचन है (ब्रह्महत्याह्वरापानंस्तेयंगुर्वगनागसः) इसमें कोई विशेषता न कहीगई कि ब्राह्मण या क्षत्री आदि कौन करै। तिससे सभी मनुष्य मात्रपर आरुह जानो। जब कि इस निमित्तस्त्री वचन में सभी मनुष्योंका तात्पर्य बुनिचुके तौ फिर इसी वचनका संबंधी जो नैमित्तिक वचन है कि (सुवर्गास्तेयकृद्भिः) इसमें विप्र शब्द मना जान परभी सर्व मनुष्यों का उपलक्षणा जाना चाहिये कि जैसा इसके पूर्व संबंधी वचन में बुनिचुके क्योंकि ब्राह्मण सबमें प्रधान है उस प्रधान का नाम कहिने से अप्रधान भी

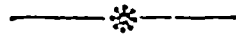
नव ननभि लिये जातेहैं, यहाँ भी सीसांसाका वही दृष्टांतहैं जो २५३की अविकोक्ति में द्योन्वयार निखिचुके तहां देखो कि तदुलका नाम कहिने से होमका सर्वसाकल्य समभि लेते ह) तैसा इसमें भी विप्र के उपलक्षणा से सकल मनुष्यमात्र समझे जाते हैं॥ ॥ समरआदिसे नारना कहा मो ब्राह्मणा चोरसे उपराल समझना चाहिये क्योंकि (नजानुब्राह्मणां हन्या त्सर्वपापेष्वपि स्थित मितिमानवै ब्राह्मणावधनिधिदत्वात्) मनुस्मृति में यह नियेध है कि ब्राह्मणा को कदाचित भी न मारे यद्यपि सबतरह के पापोंपर आरूढ हो—तथापि—जो कभी किसी राजाने नियेध को न मानि के मारि दिया तौभी शुद्ध होताहै• क्योंकि अगिला वचन देखो उसमे वधके द्वारा ब्राह्मणा की भी शुद्धि होनी कहा है=यथा (वधेन शुद्ध्यति स्तेनो ब्राह्मणास्तपसे ववा इति विकल्पा भिधानात्) अर्थात्—वध होने से चोर शुद्ध होताहै पर जो ब्राह्मणा हो तौ तपस्या से भी शुद्ध होता है यह विकल्प कहा गया है कि या तौ वध होने से या तप करने से भी॥ ० ॥ परन्तु तपमेववा इसमें एव शब्द जो हीका अर्थदेता है तिसकीभ्रंतिसे कुछ ब्राह्मणा चोरके वधका निषेध निषट नहींहै कि वह वधसे शुद्ध न होगा केवल तपसे शुद्ध होगा क्योंकि यह गवकार इस लिये है कि जो वध न हो तौ केवल तपसे भी शुद्ध होता है• और भी इस अर्थ की ध्वनि देखो चाहिये कि जो वधसे शुद्ध न होना मानाजाय तौ फिर (तपनागववा) यह विकल्प की या और ही दोनों किसकेसाय जोडी जायें किन्तु केवल एकही विधि में विकल्प नहीं सिद्ध होताहै—और यह भी नहीं कहि सक्त है कि दंड के अभिप्राय से विकल्प माना जाय क्योंकि दंडका आदेशही नहीं किया गया और भी यह विरोध है कि (सकार्यास्तु विकल्पे रन्नितिन्या धेने कार्यानि मेव विकल्पोत्री द्वियवयोरिव न च दंडतपसोरेकार्यत्वं दंडस्य दमनार्थत्वात् तपसश्च पापक्षयहेतुत्वात्) अर्थात्—जिन दोनोंका एकहीना प्रयोजन हो वेहो परस्पर विकल्प से काम आवें इत न्यायमे सक्तही अर्थ वालोंका विकल्प होताहै धान और जौ ती तरह• दंड और तपका एक प्रयोजन नहीं है क्योंकि दंड तौ दमन के प्रयोजन से किया जाताहै तपका पापोंका क्षय करने के लिये होतीहै तिसमे दोनों जा गत अर्थ नहीं टहिरा -और- यह भी इसमें विचार है कि (वधेन शुद्ध्यति स्तेनः ब्राह्मणस्य मेववा) यह पट्टिना पाद सामान्य विषय और दूसरा पाद विशेष विषय है कि जो केवल ब्राह्मणा पर आदृष्ट है तौ भी सामान्य और विशेष दोनों का समरूप विकल्प नहीं सिद्ध होताहै अर्थात् सामान्य विषयिक वधके साथ विशेष विषयिक वधका विकल्प नहीं बनता है किन्तु ऐसा विकल्प वाक्य नहीं होता है कि

ब्राह्मणों को दही देना चाहिये या कौडिन्य मुनिको मट्टा•तिससे दोनोंका सामान्य ही विषय हो ॥ ० ॥ अथवा इसरीतिसे भी व्यवस्था है कि इस चोरीके विषयवाले प्रकृत प्रायश्चित्त में राजाआदि क्षत्रीकोभी ब्राह्मणके वधका नियेध नहीं है क्योंकि (सुवर्गास्तेयकद्विप्रः) मनुने इस वचन में विप्रही को कहिकर पीछे (गृहीत्वामुग्रालं राजासकृद्वन्यात्तुतंस्त्रयं) तं ब्राह्मणां यह सर्वनाम शब्द के द्वारा चर्चा किये ब्राह्मण ही की परामर्श लेकर एकबार मारने का विधान किया है तिससे• इसमें कदाचित्त यह कहो कि ब्राह्मण को मारनेका निषेध वचन ऊपर कहिचुके हैं•तिसका तात्पर्यही कुछ और कि (नजातुब्राह्मणांहन्यात्सर्वपापेष्वपिस्थितं) यह मारनेका निषेध प्रायश्चित्त वावत नहीं किन्तु प्रायश्चित्त से उपरालू दंड देने की रीति से मारने का नियेध सिद्ध होताहै क्योंकि प्रायश्चित्तके मध्ये साक्षात् मूसर आदि लेकर मारनेका आदेशही जो कहा गया ॥ ० ॥ यह मरणा पर्यन्त का प्रायश्चित्त जो कहिचुके सो बुद्धिपूर्व सुवर्गा हरनेपर आरूढहै• क्योंकि अगिराकी विचली मध्यम स्मृतिका यह नियम है कि=मरणांतिकंचयत्प्रोक्तं प्रायश्चित्तंमनीयिभिः तत्तुकासकृतेपापेविज्ञेयं नात्रसंशयः=अर्थात्—बुद्धिमानोंने मरणांतिक जो प्रायश्चित्त कहीं कहा हो सोसर्वत्र कामनासे किये हुये पापमें समझना इसमें संदेह कुछ नहींहै ॥ ० ॥ इस प्रायश्चित्त के प्रसंग में सुवर्गाका हरनाजो कहागया वह सुवर्गा भी एक परिमारा विशिष्ट तौल का नाम है कि इतना सोना हरने से सुवर्गा को चोरी कहावै कुछ सोने की जाति-हीका नाम नहीं तिससे वह तौल भी समझनी चाहिये सो लिखते हैं=यथा= जालसूर्यमरीस्थवसुरेणूरजःस्मृतम् तेऽष्टौलिह्यातुताश्तिस्त्रोराजसर्पपउच्यते गौर-स्तुतेत्रयः षड्भिर्यवोमध्यस्तुतेत्रयः द्वायालपंचतेमायस्तेसुवर्गास्तुयोडश= अर्थात्— आचार मर्यादा के अन्त में जो मान की परिभाषा योगीश्वर आप कहिचुके उसके दोही प्रश्नोंके से यहां प्रयोजन है कि—द्वोंके जालीदार भरोखों में सूर्यको किरणों जो घुाती हैं तिनमें जो बहुत हलुके छोटे अति सूक्ष्म किनु के से उड़ते देखि परते हैं वही बसुरेणू रज कहाते हैं वे आठ मिलि के एक लीख कही जाती है तीन लीख मिलि के राजधर्षण अर्थात् राई कहातीहै तीन राई मिलिके गेली सरसों होतीहै छः सरसों मिलिके एक मध्यम जो कहाता है तीन जो मिलि के एक द्वाया न अर्थात् घुं-घुची की तौल ठहिरती है ऐसी पांच घुंघुची मिलिके एकमाना होता है इन्हीं सो-रह मासे का एक सुवर्गा अर्थात् लोक में अगर्फी कहाती है—इसी तौल के अनुसार इतना सोना हरने से सुवर्गा को चोरी कहाती है (क्योंकि योगीश्वर आपही यह

वैदिनं जपेत् यत्र मात्रे सुवर्णास्य प्रायश्चित्तदिनद्वयम् सुवर्णाङ्गुलं ह्येकमपहत्य द्विजो
 त्तमः कुर्यात्सांतपनं कच्छं तत्पापस्यापनुत्तये अपहत्य सुवर्णास्य मायसात्रं द्विजोत्तमः सो
 मत्र यात्र काहारश्चि भिमसैर्विशुद्धति सुवर्णास्य अपहरणो व्रतं रावकी भवेत् ऊर्ध्वं प्राणां
 तिकं श्रेयस्य वा ब्रह्महा व्रतम् (इदं च वत्सः रावकाशतं किञ्चिन्नूनं सुवर्णापहारविषयं
 सुवर्णापहारे मन्वादि महाभृतिषु द्वादशवर्षिकविधानात्) अथ त्वि-वा तको नो क्र भर
 सोना हरने में प्राणायाम करै तब शुद्ध होय यही प्रायश्चित्त है • तथा एक लीख
 वरावर सोना हरने में तीनवार प्राणायाम करै (बुधः पंडितः) राई वरावर सोना हरने
 में चारि प्राणायाम करै और आठ हजार गायत्री भी जपै उस पापको निवृत्तिके लिये •
 सरसों वरावर सोना हरने में आठ प्रहर भरि गायत्री जपै • एक जौ भरि सोना हरने में दो
 दिनका प्रायश्चित्त करै • एक कृष्णा त घंधुची वरावर सोना हरने में वह द्विजोत्तम सांत-
 पन कच्छव्रत करै उस पापको शुद्धिके लिये • एक सासे भर सोना हरिके वह द्विजोत्तम
 गायत्री जपके सिवाय तीनिमासतक गोमूत्र और यावक अर्थात् त्राखका रस इन दोहो
 का आहार करै तब शुद्ध होय • सुवर्णा अर्थात् सोरह मासे सोना हरने में एक वर्षतक यावक
 खाइके रहै • इससे अधिक सोना हरने में प्राणांतिक प्रायश्चित्त जानो कि जैसे कहीं
 लिखि चुके हों अथवा ब्रह्महत्यावाला व्रत करै (यह एक वर्षतक यावक आहार करना
 कहा सो भी कुछ कमती सोरह मासेके हरने मध्ये समभक्तना • क्योंकि पूरे सुवर्णाके हाने
 मध्ये मनुआदि बडी बडी स्मृतियों में बारह वर्षका प्रायश्चित्त लिखा है तिससे—बल्कि—
 जवर्दस्तीसे छीनने आदि प्रकारों में सुवर्णाके परिमारासे कम सोना भी हरने में सराणांतिक
 प्रायश्चित्त होता है = यथा = वजाद्ये कामकारेणा गृह्णाति स्वन्नराधमाः ते यान्तु वज्रहृत्सां
 प्राणांतिकमिहोच्यते (सुवर्णापरिमाराद्वर्गागपीत्यभिप्रेतं) अर्थात्—जे कोई अत्रम
 नर इच्छासे जवर्दस्ती धन हरते है तिन जवर्दस्ती हरने वालोंको इसमें प्राणांतिकही
 प्रायश्चित्त कहा है (सुवर्णा के परिमारा से भीतर भी हरने में यह अभिप्राय जानो)
 वरन सोनेके उपलक्षणा से चांदी आदि सब समझि लेने ॥ ० ॥ यह चोरी का प्राय-
 श्चित्त जो कुछ कहा गया सो हरा हुआ धन स्वामी को देकर करना होता है विना
 वापिस किये नहीं = तथा च वचनं = स्तेये ब्रह्म स्वभूतस्य सुवर्णादिः कते पुनः स्वामिनेऽपहृतं
 देयं हवति कादशाधिकम् = अर्थात्—ब्राह्मणा के स्वत्वभूत सुवर्णा आदि किनो धन को
 चोरी करने में फिर हरनेवाले करके आपही स्वामीको हरा हुआ दे देना चाहिये (नृ
 अव्ययोऽत्रपक्षांतरे समुच्चये नियोगो विनिग्रहे च तस्मात्) यदि हर्ता च यत्नददाति तदा गृह्णा
 दगुणात्स्वादाप्यज्ञतितात्पर्यार्थः) अर्थात् जो हरनेवाला हरे हुये धनको आपही

न चापि तत्र गजा उसपर ग्यारह गुणा दिवावै परन्तु ऐसा अर्थ नहीं है कि वह आपही ग्यारहगुणा देने लगे क्योकि अपहृतं हर्त्वादेयं यह प्रयोग प्रलोक में साफ है कि दण्ड हुआ धन धनीको देदेवै—बलिक-मनुके भी अप्रोक्त वचन में उतनाही देनेका अर्थ है कि जितना चुराया हो=यथा=चरेत्सांतपनं कृच्छ्रं तन्निर्दाप्यात्मशुद्धये=अ-
 यान- जो दण्डो सो निःशेष देकर अपनी शुद्धिकेलिये सांतपन कृच्छ्र व्रतकरै=और
 ग्यारह गुणा राजा दिवावै यह कहिचुके सो यह एक दंडकी रीति से दिवाना कहा
 कृच्छ्र प्रायश्चित्त का संबंध उसमें नहीं समझना क्योकि दंडके प्रकरणा में भी ऐसा
 काहचुके है (श्रेयैष्वेकादशगुरांदाध्यस्तस्य चतुदशं) कि बाकी सुरतों में उसका वह
 धन भी ग्यारह गुना करिके दिलावे ॥ ० ॥ जहां कहीं अशक्ति से राजा मारने को
 अममय हो तहां वसिष्ठजीका कहा प्रकार करना=यथाह वसिष्ठः=स्तेनः प्रकीर्णके
 जो राजानमभियाचेत ततस्तस्मै राजौ दुर्वंशस्त्रंदद्यात्तेनात्मानं प्रमापयेत् सरणात्पु-
 नो भवतीति विज्ञायते (औदुंबरताम्रमयं) अर्थात्—बाल छिटिकाये हुये चोर राजा के
 पान आकर याचना करे कि मैने यह महापाप किया मुझे प्रायश्चित्त देना चाहिये
 यह मुनिके राजा उन औदुंबर नामका शस्त्र विशेष जो ताँबेका बना समझा गया है
 सो देवे उभीसे वह चोर अपने शरीरको घातकरै मरनेसे पवित्र होता है यह जाना ग-
 आ अर्थात् उन्हीं वसिष्ठने दूसरा भी प्रायश्चित्त कहा है कि=निष्कालको गोघृताक्तो
 शीयर्भास्ननापादप्रभृत्यात्मानं प्रनापयेन्मरणात्पुनो भवतीति विज्ञायते=अर्थात्-
 निष्कालकनान समस्त ज्ञान मुझमें हुये गऊका घी शरीरमें लपेटेहुये गऊके गोबरके
 कण्डोंकी प्रदीप्त अग्निमें पैरोंको आदिलेकर सब शरीर भस्म करै तो मरनेसे पवित्र
 होता है यह जाना गया—सो यह प्रायश्चित्त उसके लिये समझना जिसने गृह या
 श्रावित या यागम्य ब्राह्मण आदिका द्रव्य हराहो यदा सत्री आदि हरने वाला हो
 तिसके लिये भी ॥ ० ॥ तद्यैव अश्वमेध आदि यज्ञ करने से भी शुद्धि होती कही है
 ऐसा प्रचेताने मरणांतिक प्रायश्चित्त पहिले दर्शायकर पीछे से कहा है कि (इन्द्रा
 वाश्वमेधेन गोतवेदवाविशुद्ध्येत) यदा अश्वमेध से या गोमेध से यज्ञ करिके भी शुद्ध
 होय-सो यह प्रायश्चित्त उसके लिये समझना जो वैश्य वा क्षत्री आदि हरने वाले
 इन्द्रा वाश्वमेधेन गोतवेदवाविशुद्ध्येत अतिच्छान्ति हरनेवालोंके प्रायश्चित्त कहेंगे ।

अथ अज्ञानतः सुवर्णापहारादि प्रायश्चित्तानां प्रदर्शकोऽयं परिच्छेदः पंचत्रिंशः ३५



इस परिच्छेद में वे प्रायश्चित्त कहे जायँगे जो अनिच्छा और अज्ञानता से सुवर्णा हरने मध्ये चाहिये और सुवर्णा के उपलक्षणा से चांदी ताँबा आदि सर्व धातु वारतां के हरने मध्ये भी प्रायश्चित्त कहे जायँगे ॥ केवल उन द्रव्यों के प्रायश्चित्त इसमें न होंगे कि जिनका हरना उपात्तक ठहिर चुका है ॥

(अकामस्वर्णाद्यपहारप्रायश्चित्तं)

अनिवेद्यनृपेगुद्धेतुरापव्रतमाचरन् † आत्मतुल्यंसुवर्णैवाद्याद्वाविप्रतुष्टिकृत् २५८

अर्थः—राजामें विना जताये सुरापका व्रत करते हुये शुद्ध होय=अर्थात्—चोर अपने पापको राजा पर सुनाये विना भी शुद्ध होता है जो सुरापान वाला प्रायश्चित्त बारहवर्ष करै जैसा दोसौ चौवन २५४ अलश्लोकपूर्वार्द्ध से कहि चुके + अथवा अपनी देहभरि तौलि के सोना दान करे जो अपहर्ता अति धनी होय अथवा इतना न हो तो ब्राह्मणा की संतुष्टि होने योग्य धन दान करै कि जितने से ब्राह्मणा की आयु भर उसका कुटुंब पालन होसकै ये तीनों प्रायश्चित्त सकही वियय पर यथा सम्भव से विकल्प हैं ॥ २५४ ॥

२५८ अधिकोक्तिः—क्यों जी (सुरापव्रत) सुरा पीने वाले का व्रत क्योंकहा दोसौ चौवन के पूर्वार्द्ध में सुरापान के ऊपर (ब्रह्महत्या व्रतंचरेत्) यह अतिदेश उतार दियाथा कि ब्रह्महत्याका व्रत इसमेंभी करै० तो फिर यहांभी यही कहिनाचाहिये या कि ब्रह्महत्या का व्रत करै जोदोसौ तैंतालीस में कहिचुके—सुनो ब्रह्महत्या केसाथमें मुर्दाके साथेकी ध्वजा और खोपड़ी का खधर भी लेना कहा गया तिसका सुरापान के प्रायश्चित्तसे निराकरसा भी होचुका और यहांभी उनका प्रयोजन कृच्छ नहीं है तिससे ऐसा कहा गया सो संदेह नकरना चाहिये ॥ ० ॥ यह सुराप वाला व्रत जो बारह वर्ष का चोर पर अतिदेश उतारा सो यह अकामकारों का वियय सम्भूना

किं जिमने विना कामना के सुवर्ण चुराया हो क्योंकि (इयविशुद्धिरुदिता प्रसाप्या कामतोद्विजं इत्यकामतो विद्वितस्यैव षादशवार्यिकस्यातिदेशात्) विना कामना केडा द्विज मारने मध्ये जो ब्राह्म वर्य नियत हुयेये उन्हीं का अतिदेश यहां दिया गया तिससे=अत्रापि वितर्कः—क्योंजी विना कामना के अपहारही नहीं संभव होताहै क्योंकि जिमको अपहार करने की कामना नहीं वह अपहारही क्यों करैगा•तौफिर अकामकार का विषय कैसे यहां कहिते हैं—सुनो जब कितोने विना कहे उसके कपडेकी गाँठि में बाँधि दिया यद्वा किसी कपडे में बँधाहुआ सुवर्ण आदि कहींपरा पाइकर लेलिया यद्वा चाँदी आदि अन्य द्रव्य जानिके हरा और तत्कालही किसी ओरको देदिया या खोइदिया परन्तु मालिकको तत्पश्चात् किरके नहीं वापिस किया तब यह कामना के विनाभी अपहार होता है ॥ ० ॥ जो कोई ताँबे आदिको समवेध आदि लारों के योग से बनाये हुये सुवर्ण का रूपमात्र क्वचिन्म कूट को हरे तिसपर यह प्रायश्चन न चाहिये क्योंकि सुवर्ण की मुख्यजातिका समवाय न होनेसे और यह कारण है कि मुख्य दस्तु के सदृश रूप होने मात्र से उस नकली में असलके गुण धर्म नहीं होते हैं• यद्यपि ऐसाही नकली सोना जो सोना नहीं है तिसको सोने की धान्ति में पर्याप्त सोना समझके हराहो तथापि यह सुवर्ण की चोरी वाला प्रायश्चित्त धर्म नहीं चाहिये क्योंकि उसने सोना नहीं चुराया तिससे—और यहभी न कहिना चाहिये कि जैसा दोस्रो ब्राह्म के पर्याप्त से यह कहाया कि (चरेद्वृतमहत्यापि घातार्थचेत्मनागतः) ब्राह्मणके मारने को गयाहो तो न मारि पानेमेंभी प्रायश्चित्त करे तैसा यहां भी दोष मानना चाहिये कि सोना हरने वाला कृत्य उसने किया पर नहीं सोना हरि पाया तौभी दोषी उनी कामका दहिरे• यह इस हेतु से न कहिनाचाहिये कि यह सुवर्ण के हरने पर

नहीं उहिर सक्ता है० परंतु जैसा ऊपर कहि चुके कि चाँदी आदि को ज्ञान से मुख्य सोना हरे या गांठि में बँधा हुआ आदि तौ वह विना कामना का अपहार कहाता है उसमें प्रायश्चित्त भी करना होगा । इसी पहिले विषय पर कि विना कामना के सुवशा जिसने हराहो और विना राजा के जताये शुद्ध होना चाहै और अपहर्ता पुरुषव अतिशय धनवान् हो तौ अपनी देह की बराबर तौलि के सोना दान करै अथवा देह की बराबर सोना जिसके पास न हो और पूर्वार्ध में कही ब्रतचर्या भी बार वर्ष करने की समर्थ जिसको न हो तौ ब्राह्मणा की आयु भर उसका कुटुंब पालनहो सकने योग्य धनदान करै कि जिससे ब्राह्मणा उसपर संतुष्ट होय ॥ ० ॥ जब किसी निर्गुणी स्वामी का इव्य हरा हो तौ व्यासजीका कहा नौवर्षका प्रायश्चित्त करै (सप्तदेवब्रतंस्तेनःपादन्यूनं समाचरेत्) अर्थात् व्यास ने कहा है कि यही व्रतचोर करै चौथाई कम करिके अर्थात् बारह की चौथाई तीनि छोड़ि के नौ वर्ष करै= और जहां कहीं इसी प्रकारका धन सेवा कोई हरे जो भूखों मरते कुटुम्ब की रक्षा हेतुसे हरने गया हो तहां अत्रिमुनिका कहा छेवर्षका प्रायश्चित्त या स्वर्जित आदि यज्ञ या तीर्थों की यात्रा करावै=यथाहात्रिः=अडदंवाचरेत्कृच्छ्रं यजेद्वाक्रतुनाद्विजः तीर्थानिवाभ्रमन्विद्वांस्ततःस्तेयाद्विमुच्यते=अर्थात्—द्विजाती ऐसी चोरी में यातौ छेवर्षका कृच्छ्रव्रत करै या क्रतुयज्ञसे यजन करै या विद्वान् हो तौ तीर्थोंका भ्रमण करै तब चोरी के पापसे छूटे (इसमें लेख विद्विजाने के भयसे आधुनिक लेखक इस तर्कपर आरूढ न होसके कि प्राक्तन संग्रहीताने क्या खोचिके सेवा कहा होगा कि जिसका कुटुम्ब भूखों से मरता था वही स्वर्जित आदि यज्ञभी कर सकैगा—तथापि उत्तर इसका बहुत सुगमहै कि शिर्षक यज्ञही करने नहीं कहे और प्रकार के भी प्रायश्चित्तोंका विकल्प कहाहै कि इनमें से जो कुछ करसकै सोईकरै) ॥ ० ॥ जब कोई अपहर्ता अपहार करने के साथही तत्काल ऐसा पछितावा करै कि मैंने बहुत बुरा किया इस पछितावेके साथ अपना हराहुवा इव्य उसके स्वामीको प्रत्यर्पण करै या छोड़ि भागै सो आपस्तंब का दर्शाया चौथे काण्ड में सप्तवार भोजन तीन वर्ष तक भावैऔर एक ठिकाने पुरश्चरणा की रीति के अनुसार बैठे अथवा अंगिरा मुनि का कहा तीनि वर्ष का व्रज नामक प्रायश्चित्तकरै=यहां भी= वादी तर्क उठाता है कि स्वामी को वापिस करदेने या छोड़ि भागने में अपहार की बातुवाला अर्थ सिद्ध हो जाने अर्थात् हरना सावित होजानेसे कैसे प्रायश्चित्तमें छोटाईकी रिआयत करीगई और जो यों कहो कि हरना सावित न हुआ तौ फिर प्रायश्चित्त का निपट न होना

सब और यावक पीना कहाया • तथापि इतना भेद सधुभिलेना कि वहां तो इच्छा सहित चुराने मध्ये तीनमहीने कहे और यहां एक महीना या बारह दिवस केवल अनिच्छासे हरने मध्ये नियत हुये ॥ ० ॥ सुमन्तुने एक दूसरा भी यह कहाहै कि (सुवर्गान्तेयीद्वादशरात्रं वायुभक्षः पतो भवति) सोना चुराने वाला केवल वायु को पीकर बारह दिनकाटे और कुछ न करे तोभी शुद्धहोताहै • सो यह उसके लिये समझना जो केवल मनके विचारसे अपहार करनेपर उताहसात्र हुआ परन्तु आधही अपहार करने से निवृत्त होगया किन्तु नहीं कियाहो ॥ ० ॥ यहां भी स्त्री बालक बूढे आदि जो चोरहों तिनसे जो जो प्रायश्चित्त कहिचुके सो सब आधे आधे करवाने चाहिये ॥ ० ॥ जिन चोरियोंको दोसौ तीस २३० मूलश्लोक में घोडा रत्न मनुष्य आदि को सुवर्गकी चोरीके समान कहिचुके तिनके चुरानेवालों को अत्रोक्त प्रायश्चित्तों से आधा करवाना चाहिये उनमें भी यदि स्त्री या बालक बूढे आदि चोर हों तिन पर आधेका आधा चौथाई करवाना होगा ॥ ० ॥ और ये वचन चतुर्विंशतिसतकोहें कि—
 रूप्यं हत्वा द्विजो मोहाचरे चान्द्रायणाव्रतस्य गद्याणादशकादूर्ध्वमाशताह्वद्विशुषांचरेत् आ
 सहस्रात्तु त्रिशुषासूर्ध्वहेमविधिः स्मृतः सर्वेषां धातुलोहानां पराकन्तु समाचरेत् धान्यानां
 हरशो कच्छुं तिलानामैदवं स्मृतं रत्नानां हरशो विप्रश्चरेच्चान्द्रायणाव्रतस्य (याद रक्त्वौ
 कि गद्याणा एक बांठहै सो वैद्यक परिभाषा में यद्यपि दवाइयों की तौल मध्ये ६४
 चांसठिगुंजा भरि होताहै तथापि यहां धर्मशास्त्रमें ४८ अडतालिस रत्तीभरि गद्याणा
 कहाताहै सिर्फ चांदी की तौल मध्ये उसका प्रयोजन है कि) जो कोई द्विज मोह
 अज्ञानतासे रूपा चाँदी हरे दश गद्याणके भीतर और पूरे दशगद्याणा हरनेमें भी चां-
 द्रायणा व्रतकरै और दश गद्याणासे ऊपर सौगद्याणा तक चाँदी हरे वह दोवार चांदा-
 यणा करै और सौगद्याणा से लेकर हजार गद्याणा तक चाँदीहरे सो त्रिशुषा चांद्रायणा
 करै इसके ऊपर सोने वाली विधि कही है अर्थात् पूरे हजार गद्याणा या इससे भी
 अधिक चाँदी हरे तिसके लिये सुवर्गकी चोरीवाले प्रायश्चित्त बारहवर्य आदि के
 समझने और तांबा लोहा पीतल आदि सब धातुओं की चोरी करिके पराक नाम
 काव्रत प्रायश्चित्त करै और नाजोंके हरने मध्ये कच्छुं दत्त करै और तिनको हरने
 मध्ये चांद्रायणा व्रत करै तथा रत्नों की चोरी मध्ये ब्राह्मणा चांद्रायणा व्रतकरै—इत
 वचनोंसे जो हजार गद्याणासे अधिक चाँदी चुरानेका प्रायश्चित्त सुवर्गान्तेयक्रेनमान
 कहा सोभी सोनेका वडापन दशानिके निमित्त है पर उनकी निवृत्तिकेलिये नहींहै—
 और जो रत्नोंके हरने मध्ये सिर्फ चांद्रायणा कहा सोभी हजार गद्याणाके कम चाँदी

के दण्ड वाले रत्नों की समझना किन्तु हजार से लेकर ऊपर अधिक मूल्य के रत्नों में सुवर्ण की चोरी सजात प्रायश्चित्त होंगे ॥ २५४ ॥

इति सुवर्णस्तेय प्रायश्चित्त प्रकरणां ॥

—*—

(अष्ट प्रकृत्या केवल चौंतीस पैंतीस दो परिच्छेदों से पूरा हुआ अब आगे गुरु-दार गार्गीके प्रायश्चित्त कहे जायेंगे)

अथ जनन्यादि गुरुद्वार गमन प्रायश्चित्तानां

भेद प्रदर्शकोऽयं परिच्छेदः षट्त्रिंशः ३६

—*—

अन्य परिच्छेद में केवल उन्हीं पातकों के प्रायश्चित्त भेद कहे जायेंगे जो देह जननी या पिता की सुवर्ण यादि भार्या या उनके तुल्य जेकोई अन्य स्त्रियांमानी जाती है किन्तु सजात और अज्ञान गमन करनेसे होतेहैं या भोग करने पर उताह गे कर लोटे जाने से भी जो पाप होतेहैं ॥

(सक्तामगुह्यरूपमानां प्रायश्चित्तं)

२५६ अधिकोक्तिः=लोहेकीस्त्री साथ सोते समय पहिले अपना पापसबलोगों को ऊँची आवाज से सुनाइ देवे कि मैंने गुरुभार्या गमन किया तिसकी शुद्धि को यह प्रायश्चित्त करताहूँ (गुरुतल्पोऽभिभाष्येनः इति मनुः) क्योंकि मनुने ऐसा कहा है गुरुतल्पग अपना पाप सुनाइ के लोह शय्या पर चढ़े =और यह भी एक नियम है कि जैसे स्त्री को आलिंगन किया था उसी तरह लोहे की मूर्ति को लिपटाइके सोवै• जैसा वृद्धहारीत ने कहाहै कि=गुरुतल्पगोमृन्मयी साथसीवास्त्रियाःप्रतिकृति सग्निवर्णां कृतेकाष्णायत्तशयने अयोमथ्यास्त्रीप्रतिकृत्या कृत्वात्तमालिङ्गयूपतोभवति=अर्थात्—काले लोह के बने पलंग तपेहुये पर मिट्टी या लोहेकी स्त्री की नकली मूर्ति अग्नि के वर्ण समान तपी हुई लाल करिके उस लोहे की मूर्ति साथ आलिंगन क्रम करिके नरने से पवित्र होता है=तथा बालों को सर्वथा सुडाइके सब देहमें घी लपेटिके यह शयन करना चाहिये=यथाह वशिष्ठः=निष्कालकोघृताभ्यक्तस्तप्तांस्त्रीं मृन्मयींपरिष्वज्य मरणात्पूतोभवतीतिविज्ञायते=अर्थात्—सब देह के बाल वा रोमा पर्यंतसुडाये और घी लपेटे हुये मट्टीकी तपाईहुई स्त्री को खूब आलिंगन करिके मर-जानेसेही पवित्र होताहै यह जानाराथा(यहां केवल मट्टी कही तौभी लोहे और मट्टी का विकल्प बदल समझलेना क्योंकि लोहा भी मृद्विकार धातु होता है दोनोंमें कुछ भेद नहीं है ॥ ० ॥ अत्रोक्त मनुके वचनमें लोहेके पलंग पर सोना या लोहे की मूर्ति को चिपटाना कि लोल करना ये दोनों बात जुदी जुदी प्रतीत होती हैं=यथाह मनुः= गुरुतल्पोऽभिभाष्येनस्तप्तस्त्रय्यादयोमयेसुमीं ज्वलंतोवाप्रिलप्यमृत्युनासविशुद्ध्यति= अर्थात्—गुरु तल्प पापी अपने पाप को सुनाइ के तपाये हुये लोहे के शयन पर सोवै या जलतीहुई मूर्ति को अंग से लगाय के सौतही से विशुद्ध होता है• इसमें या शब्दके द्विकल्प से साफ दो जुदी बातें होगई कि चाहै यह करो या वह—तौ भी मिताक्षराकार ने व्यवस्था इस पर दीहै कि मनु के इस वचन का अविरोधीमहारा चाहि कर योगीश्वर के मूलप्रलोक में भी ऐसा न अनभि लेना कि दो जुदे प्राय-श्चित्त है क्योंकि (आयस्यायोयितास्वपेत) जब यह कहागया कि लोहे की स्त्री साथ सोवै तब यहभी समझना बाकीरहा कि कहां सोवै तिसका यही संबध है कि लोहेके शयन पर सोवै तिसमें दोनों बातका संबध परस्पर निजाहुआ सकहे सकही प्रायश्चित्त समझना कि जैसा पहिले कहिचुके• यह पूर्वार्ध की व्यवस्था हुई ॥ अब उत्तरार्ध पर ध्यान करौ कि दूसरे प्रायश्चित्त मध्ये मनुने भी लिङ्ग और आंड काटने कहे हैं=यथा=स्वयंवाशिष्ठवृषणावुत्तन्वावायचांजतो नैऋतीदिगनातिष्टेदानिया

तादाजिन्मगः=अर्थात्=जो पहिला कहा न करसकै तौ आपही लिंग और वृथराओंको काटिके अंजुरी में धरिके नैऋत्य कोने की दिशामें टेढ़ी चालिके बिना सूधा चला जाकर गरीर गिरपरनेकी जगह पर यँभै=यह चलाजानाभी पीठि पीछे घूमिके न देखे बिना करना चाहिये=यथाहनुःशंखलिखितौ (सुरेसांशिश्रमवृथरावुत्कृत्यानवेक्षमासो ब्रजेव) अर्थात्—शंख और लिखितमुनि दोनौ भाइयोंने निज निज ग्रन्थमें एकही वचन कहाहै कि० छुरी छुरासे लिंग और आंड काटिके पीछे को न देखताहुआ सूधा चला जाय=तथा यह वशिष्टका अग्रोक्त वचन है कि जहां प्राणा छूटनेलगेँ उसीजघे यँभै कहीं बीच में न सकै=यथा=सवृथसांशिश्रमुत्कृत्यांजलावाधायदक्षिणाभिमुखो गच्छेद्यत्रैवप्रतिहतस्तत्रैव तियेदाप्रलयादिति=अर्थात्—आंड सहित लिंगको काटिके अजलीमें धरिके दक्षिणा दिशाके सन्मुख मरनेपर्यन्त चलाजाय जहांकहीं दीवार टीले आदिके धक्कासे गिर परै उमी जघे प्राणा छूटने तक यँभै=जैसा नारदने दण्ड देने की अपेक्षा में भी लिंग काटना कहा है=तथाच=आसासन्यतसांगच्छन्गुरुतल्पगउच्यते शिश्रस्योत्कर्तनात्तवनान्योदंडोविधीयते=अर्थात्—इतनी स्त्रियां जो मैंने गिनाईं इनमें किसी गकको गमन करते हुये गुरुतल्पग ठहिरताहै तहां शिश्र काटिलेनेके सिवाय और कुछ दण्डभी नहीं दिया जाताहै अर्थात् उसका यही प्रायश्चित्त और यही दंड है ॥ ० ॥ इस प्रकार दण्ड देनेके लिये जो लिंग आदि किसी अंगका काटना होताहै सोभी पापहीके विनाग हेतु होताहै—इसी मरणांतिक दंडका अभिप्राय लेकर मनु ने यह कहाहै कि (राजभिर्धृ तदंडास्तुक्त्वापापानिमानवाः निर्मलाःस्वर्गमायांति स तःसुहृतिनोयथा) पाप करनेवाले मनुष्य प्रायश्चित्त के बिना राजाओंसे ठीक दण्ड दिये हुयेभी निर्मल होकर स्वर्गमें आतेहैं जैसे मुकत करनेवाले सत्पुरुष स्वर्गमें जाते हैं इस नियमसे यह तात्पर्य है कि जहां राजा केवल धनदण्ड जुर्माना लेकर छोड़ दे तहां उस दण्डसे उपरालू प्रायश्चित्त भी लगता है—क्योंकि उन्हीं मनुने यह वचन भी कहा है कि=प्रायश्चित्तं तं कृत्वाः शान्देव पापियोदितव नान्वयागजासालाटेस्युर्दा ध्यास्तनननाहवस=अर्थात्—जिन पापोंपर जैसा प्रायश्चित्त शास्त्रमें कहाहै तिसको ठीक ठीक करनेवाले वनी वर्गों के लोग केवल उत्तम साहस आदि धन दण्ड लेकर छोड़ि दियेजायें किन्तु राजाको उनके साथेपर दामदेनाआदि कोइसा चित्र न करना चाहिये अर्थात् इस चित्रके नियम से ननस्त देहदंडों का उपलक्षणा प्रकार किया है कि नारना पीटना आदि कोइना देहदण्ड न देना चाहिये ॥ ० ॥ मूलप्रतीकमें यो- र्गोचरे जो प्रायश्चित्त कहे दोनो मरणांतिक हैं इनमें कोइसा एक प्रायश्चित्तकरने

से गुरुतल्प गामी शुद्ध होता है=गुरुतल्पगामी कहा इसमें गुरु शब्द जो है सो मुख्य वृत्तिसे पितामें वर्तमान समझा जाता है क्योंकि मनुने बड़े पुरुषोंका गुरुत्व समझाने मध्ये यह कहा है कि=निषेकादीनिकर्म्मणि यः करोति यथाविधि संभावयति चान्नेन सविप्रोगुरु रुच्यते=अर्थात्—निषेक नाम गर्भमें बीज धरना आदि सभी संस्कारकर्म्मों को जैसी उनकी विधि होती है तिसरी तिसरी जो कोई करता है और अन्नसे भी पोषण करता है वही गुरु कहाता है•तो यह मुख्य गुरु पिता ठहिरा—इसी तरह योगीश्वर ने भी निषेक आदि कर्म्मोंके अभिप्रायसे ऐसा कहा है (सगुरुर्यः क्रियाः कृत्वा वेदसस्मै प्रयच्छति) अर्थात्—आचारसर्वादिमें कहिचुके हैं कि वह गुरु है जो सब संस्कारों की क्रियाएँ करिके लडकेको वेद विद्या देता है•ये सभी काम पिताके करनेसे होते हैं—क्योंकी—गुरु शब्दका वर्तवा अन्य पुरुषों में भी देखि परता है जैसा आचार स- र्यादा परिपाटी में (उपनीयगुरुः शिष्यं) इत्यादि मूलश्लोक से आचार्य को भी गुरु कहा था• और भी यह बचन है कि (स्वल्पं वा बहु वा च स्य युतस्योपकरोति यः तत्रपी ह्यसंविद्यादित्युपाध्याये) इसमें उपाध्यायकोभी गुरु ठहिराया है कि थोडा या बहुत जिसका पढ़ने सुनने में उपकार जो करता है तिसको भी गुरु जानो—दयासजी ने भी इसको गुरुओं में गिना है=यथा (गुरु वो मातृ पितृ पत्याचार्य विद्यादातृ ज्येष्ठ धातरः ऋत्विजोऽभयत्राताऽन्नदाताचेति) अर्थात्—माता पिता पति आचार्य विद्या का दाता जेठे भैये ऋत्विज अभय देके रक्षा करने वाला प्राणों के संकट से और अन्नदाता भी कि जिसके सहारे से उदर पूरा होती हो ये सब गुरु हैं अर्थात् बड़े हैं और इसी मान्यता के योग्य हैं•देखौ पिता के सिवाय येभी सब गुरु ठहिरे और अ- नेकों में गुरु के अर्थ की कल्पना होना कुछ दोषभी नहीं क्योंकि जिस मान्यता और पूज्यता के निमित्तसे गुरुशब्दकी प्रवृत्ति ठहिराई गई वह मान्यता और पूज्यता का निमित्त इन सबही में कुछ न कुछ लगा हुआ है बल्कि उस मान्यता का निमित्तत्व योगीश्वर ने आचार सर्वादिमें दर्शाया भी है कि (एते मान्या यथा पूर्वज्ञेय्यो मातागरी यसी) इतने जो गिनाये सोसभी माननीय हैं तथापि जिससे जो पहिले कहा वह उस से अधिक मान्य होता है और माता इन सबसे बड़ी पूजनीय है—इसमें प्रयत्नभी को मान्य कहिकर माता उनसे भी बड़ी ठहिराई—और (उपाध्यायदगाचार्य आचार्या सां प्रतंपिता) जैसा यह बचन है कि उपाध्याय से दया गुणा आचार्य बड़ा और आचार्यों से पिता सो गुना सो इन कथन के अनुसार उपाध्याय से अधिक आ- चार्य है तिससे भी पिता अतिशय बड़ा इससे पिताकोही यदि मुख्य कहा चाहे और

तादाजिह्वराः=अर्थात्=जो पहिला कहा न करसके तो आपही लिंग और वृथराओंको काटिके अंगुरी में धरिके नैऋत्य कोने की दिशामें टेढी चालिके बिना सूधा चला जाकर शरीर गिरपरनेकी जगह पर थँभै=यह चलाजानाभी पीठि पीछे घूमिके न देखे बिना करना चाहिये=यथाहृतुःशंखलिखितौ (क्षुरेसांशिश्रमुत्कृत्यानुवेक्षमारो व्रजेव) अर्थात्—शंख और लिखितमुनि दोनों भाइयोंने निज निज ग्रन्थमें एकही वचन कहाहै कि० छुरी छुरासे लिंग और आंड काटिके पीछे को न देखताहुआ सूधा चला जाय=तथा यह वशिष्ठका अग्रोक्त वचन है कि जहां प्राणा छूटनेलगे उसीजघे थँभै कहीं बीच में न रुकै=यथा=सवृथसांशिश्रमुत्कृत्यांजलाबाधायदक्षिणाभिमुखो गच्छेद्यत्रैवप्रतिहतस्तत्रैव तिष्ठेदाप्रलयादिति=अर्थात्—आंड सहित लिंगको काटिके अत्रलीमें धरिके दक्षिणा दिशाके सन्मुख सरनेपर्यन्त चलाजाय जहांकहीं दीवार टोले आदिके धक्कासे गिर परै उसी जघे प्राणा छूटने तक थँभै=जैसा नारदने दण्ड देने की अपेक्षा से भी लिंग काटना कहा है=तथाच=आसामन्यतमांगच्छन्गुरुत्तल्पगउच्यते शिश्रस्योत्कर्तनात्वनान्योदंडोविधीयते=अर्थात्—इतनी स्त्रियां जो मैंने गिनाईं इनमें किर्मा गकको गमन करते हुये शुरुतल्पग ठहिरताहै तहां शिश्र काटिलेनेके सिवाय और कुछ दण्डभी नहीं दिया जाताहै अर्थात् उसका यही प्रायश्चित्त और यही दंड है ॥ ० ॥ इस प्रकार दण्ड देनेके लिये जो लिंग आदि किसी अंगका काटना होताहै सोभी पापहीके बिनाग हेतु होताहै—इसी मरणांतिक दंडका अभिप्राय लेकर मनु ने यह कहाहै कि (राजभिर्धृ तदंडास्तुकृत्वापापानिमानवाः निर्मलाःस्वर्गमायांतिम तःसुहृतिनोयथा) पाप करनेवाले मनुष्य प्रायश्चित्त के बिना राजाओंसे ठीक दण्ड दिये हुयेभी निर्मल होकर स्वर्गमें आतेहैं जैसे सुकृत करनेवाले सत्पुरुष स्वर्गमें जाते हैं इस नियमसे यह तात्पर्य है कि जहां राजा केवल धनदण्ड जुर्माना लेकर छोड़ दे तहां उस दण्डसे उपरालू प्रायश्चित्त भी लागता है—क्योंकि उन्हीं मनुष्ये यह वचन भी कहा है कि=प्रायश्चित्ततृत्तुर्वाणाःमर्देवर्षाथियोदितम् नांक्षयागजाजलाटेस्युर्दा प्यास्तुतमसाहृदर=अर्थात्—जिन पापोंपर त्रेधा प्रायश्चित्त शास्त्रमें कहाहै तिनको योक्त योक्त करनेवाले उनी वरोंके योग केवल उत्तम साहस आदि धन दण्ड लेकर छोड़ि स्थितार्थे किन्तु राजाको उनके साथेपर दागदेनाआदि कोइसा चित्र न करना चाहिये यद्यपि इस विद्वक्त नियम से मनात देहदंडो का उपलक्षणा प्रकार किया है कि नाना पीठना आदि कोइना देहदण्ड न देना चाहिये ॥ ० ॥ मूलप्रतीकमें यो- नीयाने से प्रायश्चित्त कहे दोनो मरणांतिक है इनमें कोइसा गक प्रायश्चित्तकरने

से गुरुतल्प गामी शुद्ध होता है—गुरुतल्पगामी कहा इसमें गुरु शब्द जो है सो मुख्य वृत्तिसे पितामें वर्तमान समझा जाता है क्योंकि मनुने बड़े पुरुषोंका गुरुत्व समझाने मध्ये यह कहा है कि—निष्केकादीनिकर्म्मणि यः करोति यथाविधि संभावति चान्नेन सर्वप्रोगुरु रुच्यते—अर्थात्—निष्केक नाम गर्भमें बीज धरना आदि सभी संस्कारकर्म्मों की जैसी उनकी विधि होती है तिसरी तिससे जो कोई करता है और अन्नसे भी पोषण करता है वही गुरु कहाता है•तौ यह मुख्य गुरु पिता ठहिरा—इसी तरह योगीश्वर ने भी निष्केक आदि कर्म्मोंके अभिप्रायसे ऐसा कहा है (सगुरुर्यः क्रियाः कृत्वा वेदमस्मै प्रयच्छति) अर्थात्—आचारसर्वादामें कहिचुके हैं कि वह गुरु है जो सब संस्कारों की क्रियाएँ करिके लडकेको वेद विद्या देता है•ये सभी काम पिताके करनेसे होते हैं—क्योंकी—गुरु शब्दका वर्तवा अन्य पुरुषों में भी देखि परता है जैसा आचार स- र्यादा परिपाटी में (उपनीयगुरुः शिष्यं) इत्यादि सूत्रप्रलोकसे आचार्य की भी गुरु कहा था• और भी यह वचन है कि (स्त्रुलपं वा बहु वा अस्य श्रुतस्योपकरोति यः तमपी ह्युक्तं विद्यादित्युपाध्याये) इसमें उपाध्यायकोभी गुरु ठहिराया है कि थोडा या बहुत जिसका पढ़ने सुनने में उपकार जो करता है तिसको भी गुरु जानो—व्यासजी ने भी इसको गुरुओं में गिना है—यथा (गुरु वो मातृ पितृ पत्याचार्यं विद्यादातृ ज्येष्ठ धातरऋत्विजोऽभयवाताऽन्नदाताचेति) अर्थात्—माता पिता पति आचार्य विद्या का दाता जेठे भैये ऋत्विज अभय देके रक्षा करने वाला प्राणों के संकटसे और अन्नदाता भी कि जिसके सहारे से उदर पूर्ण होती हो ये सब गुरु हैं अर्थात् बड़े हैं और इसी मान्यता के योग्य हैं•देखो पिता के सिवाय येभी सब गुरु ठहिरे और अ- नेकों में गुरु के अर्थ की कल्पना होना कुछ दोषभी नहीं क्योंकि जिस मान्यता और पूज्यता के निमित्तसे गुरुशब्दकी प्रवृत्ति ठहिराई गई वह मान्यता और पूज्यता का निमित्त इन सबही में कुछ न कुछ लगा हुआ है बल्कि उस मान्यता का निमित्तत्व योगीश्वर ने आचार सर्वादामें दर्शाया भी है कि (सतेमान्यायथापूर्वज्ञेय्योपातागरी यसी) इतने जो गिनाये सोसभी माननीय हैं तथापि जिससे जो पहिले कहा वह उस से अधिक मान्य होता है और माता इन सबसे बड़ी पूजनीय है—इसने प्रदमनभी को मान्य कहिकर माता उनसे भी बड़ी ठहिराई—और (उपाध्यायाद्गार्वाचार्या राणां शतापिता) जैसा यह वचन है कि उपाध्याय से दया गुणा आचार्य बडा और आचार्यों में पिता सो गुना सो इस कथन के अनुसार उपाध्याय से अधिक आ- चार्य है तिससे भी पिता अतिशय बडा इसमें पिताकोही यदि मुख्य कहा जाहे सो

सिताक्षरा स० प्रायश्चित्तकांड ।

कर्मिणा चाहिये क्योंकि ऐसी अतिशय मुख्यता आचार्यमें भी कही है यथा (उत्पा
 द्कत्रह्यदात्रोर्गरीयाव्रतमःपिता) किंतु देह उत्पन्न करनेवाला और वेद विद्या देकर
 देह को योग्यता देनेवाला ये दोनों पिता होते हैं तिनमें वेदका देनेवाला पिता श्रेष्ठ है—
 तिसमें पिता और आचार्य दोनों में बावरी के शिवाय कोई विशेष लक्षणा किसी
 गुरु में न ढहिरा—वल्कि गौतमने भी आचार्यही को श्रेष्ठ गुरु कहा है (आचार्यः
 श्रेष्ठो गुरुतां) कि सब तरह के गुरुओं में आचार्य ही गुरु श्रेष्ठ है—और भी यह तर्क है
 कि जो ऐसे वचनों के अनुसार अतिशयिस्व से ही पिता को मुख्यता बताते हों
 तो फिर (सहस्रमिति वचनान्मातुरेव गुरुत्वं स्यात्) जिस वचन में ऊपर पिता को
 सौगुना कहा या उसके श्रेय पाठ में साता को हजार गुणा कहा है तिसमें पिता को
 भी छोड़ कर साताको ही मुख्य गुरु मानना चाहिये—भला यह भी कोई नियम नहीं
 ढहिरा किनी वचनमें कोई बड़ा कितीने कोई तिसमें जो जो गुरु कहेगये सो सबही
 गुरु हैं यह मानिके गेसी व्यवस्था लगानी चाहिये कि इन सबही की प्रत्तियों का
 मानन करना गुरु दारगान मानाजाय तो यह व्यवस्था निर्दूषित होजाय=सुतो ये सब
 तर्क तुम्हारी दीक्ष हैं तथापि गर्भ में बीज धरना यह सबसे बड़ी बात है इसीलिये (नि
 येदादीनिदानाणि इत्यादि मनुका वचन जो हस्त लिखिचुके उसमें मनुने बीजबोने
 वाले पिताका ही गुरुत्व प्रतिपादन किया है और किसी का अधिकारही उसमें नहीं
 पहुँचता है और तुमने जो व्याज और गौतमके वचन ऊपर सुनाये सो गुरुओंकी सेवा
 पूजा आदि करने की विवेकता से पिता से उपरालू गुरुओं की स्तुति प्रशंसा पर आ-
 रोह है ॥ तिसमें गर्भमातृकी प्रधानता द्वारा पिताका गुरुत्व दर्शायेवाले मनुके वचन
 से यह दीक्ष गया कि पिताही मुख्यगुरु है औरोंको अनुख्य गुरुत्वभङ्गना—इसीहेउमे
 बसिष्टने (आचार्यं पुत्रात्पुत्राभ्यान्निचेवं) इत्याचार्यदारेष्वातिदेशिकं गुरुतल्पमाय-
 श्वित्तमुत्तं) इ वचनने सब कहिकर आचार्यकी स्त्रियां भोग करने पर गुरुतल्प प्राय-
 श्वित्तका अतिरेम ऊपर दिया है—तेही ज्ञानकर्ता आदि प्रत्यकारोंमें भी (आचार्या
 देवभार्या सुकृतल्प व्रतवर्षे) इत्यादि वचनों से कहा है कि आचार्य आदिकों
 भार्या भोग न करी जाय व्रतवर्ष का व्रत करे कि जेता मुख्य पितास्यही गुरु
 की स्त्रियां भोग करे की उपदेश किया गया—अब सोचो कि जत्र—ऐसी दशापरमा
 आचार्यकी स्त्रियां मुख्य व्रत नमाना जाय तो वही प्रायश्चित्त इसमें पहुँचे जो मुख्य
 गुरु से अतिरेम श्रमगया है—तिसमें यह दोष खडा होता है कि आचार्य आदि
 का भोग परजाते किना जा दारगानया सो गार्थक ढहिरा—इन्हीं सब कारणों से सात

साफ पिता की ही स्त्रियां कहिकर नियम बाँधा है (पितृदारान्प्रमासुह्यमात्त्ववर्ज्यं नराधमः) कि जो कोई अधम नर निज माता को छोड़ि पिता की अन्य दाराओं पर चढिके इत्यादि० सो गुरुदार गामी कहाता है—ऐसाही—यद्द्विंशन्मत में कहा है कि (पितृभार्यातुविज्ञाय सवर्गांशौधिराच्छति) पिता की सवर्गाभार्या को जानि के अधिरासन करे इत्यादि० सो गुरुदार गामी होता है— इन वचनोंसेभी निषेक गर्भाधान करने वाला पिताही मुख्य गुरु ठहरा ॥ ० ॥ यह गुरुत्व जो पिता पर आरूढ हुआ सो चारौ वर्गा में अविशिष्ट एकसां समुभूता क्योंकि गर्भाधान सभी वर्गों में एकसां होताहै — इन कारणों से (सविप्रो गुरुच्यते) गर्भाधान वाले मनु के वचन में यह विप्र शब्द जो आयाथा सो भी एक मुख्यता का उपलक्षणा है ॥ तिससे पिताकी पत्नी रासन करनाही सहापातक है (यहाँ निज जननी से उपरालू विनाता आदि का चर्चा है इसी लिये माता शब्द नहीं कहा पिता की पत्नी शब्द कहा गया) रासनका अर्थ भी चरम धातुके विसर्गतक सिद्ध होताहै कि जिसने वीर्य भी गिराया हो—इसी हेतुसे यह नियम है कि वीर्यपात से पहिले जो लौटि परा हो तौ सहापातक नहीं सिद्ध होता है अर्थात् पातक सिद्ध होता है तिसके भी दो भेद हैं कि एक तौ इच्छासहित पास पहुँचा दूसरे जो इच्छा विना पास जा पहुँचा हो इसभेदके अनुसार आगे इसी अतिकोक्तिमें बारह और छेवर्षके दो जुदे प्रायश्चित्त कहेजायँगे सरणांतिक नहीं अत्रोक्तप्रायश्चित्तानांविभागः—मुख्य गुरु जो पूर्वोक्तव्यवस्था से पिता ठहरा तिसकी अन्य पत्नी में जानिकर वीर्य सींचने से सहापातक होताहै उस सहापातक में वही दोनो प्रायश्चित्त सूचित हुयेहैं कि जिनको इसी दोसौउनस-दि २५६ मूलप्रलोक से कहिचुकेदोनों सरणांतिक विधान हैं दोमें से कोई एक अनुष्ठान कियाजाय० कदाचित्त विनाजाने बोखा आदि से वीर्यपात किया हो तिसके लिये सरणांतिक नहीं किन्तु बारह वर्षकी व्रतचर्या है सो आगे बढिकर शंखजीके वचन में देखो— परन्तु ठेठ जननी में अज्ञानता आदि बोखे से भी वीर्यपात करने पर वही दोनो सरणांतिक प्रायश्चित्त हैं—किन्तु जननी की सौति जो पिता और जननी की सवर्गा हो या केवल पिता की सवर्गा हो या केवल जननी की सवर्गा हो या जननी से उत्तम वर्गा हो या पिता से भी उत्तम वर्गा की हो तिसमें जानि के वा इच्छासे वीर्यपात करनेपर वही दोनो सरणांतिक प्रायश्चित्त हैं (अर्थात् नीचेवर्गा की विसाता के भोग मध्ये अगिली अतिकोक्ति में व्यवस्था कही जायँगी) यहां केवल जननी और सवर्गा तथा उत्तमवर्गा सौतिकी प्रसंगहै इसी मध्ये यद्द्विंशन्मत

कहिना चाहिये क्योंकि ऐसी अतिशय मुख्यता आचार्यमें भी कही है यथा (उत्पत्त्या दक्षत्रह्यदाचोर्गरीयाचब्रह्मशःपिता) किंतु देह उत्पन्न करनेवाला और वेद विद्या देकर देह को योग्यता देनेवाला ये दोनों पिता होते हैं तिनमें वेदका देनेवाला पिता अथवा तिसमें पिता और आचार्य दोनों में बराबरी के सिवाय कोई विशेष लक्षणा किसी गुरु में न दहिना—बल्कि गौतमने भी आचार्यही को अष्ट गुरु कहा है (आचार्यः अष्टगुरुणां) कि सब तरह के गुरुओं में आचार्य गुरु अष्ट है—और भी यह तर्क है कि जो श्रेष्ठ वचनों के अनुसार अतिशयित्व से ही पिता को मुख्यता बताते हैं तो फिर (सहस्रमिति वचनान्मातुरेव गुरुत्वमस्यात्) जिस वचन में ऊपर पिता को सौगुना कहा या उसके श्रेष्ठ पाठ में साता को हजार गुणा कहा है तिसमें पिता को भी छोड़ कर साताको ही मुख्य गुरु मानना चाहिये—भला यह भी कोई नियम नहीं दहिना किसी वचनमें कोई बड़ा किसीमें कोई तिसमें जो जो गुरु कहेगये सो सबही गुरु हैं यह मानिके ऐसी व्यवस्था लगानी चाहिये कि इन सबही की प्रशंसा का गानन कराना गुरु दारगानन माना जाय तो यह व्यवस्था निर्दूयित होजाय—सुनो ये सब तर्क तुम्हारी टीका हैं तथापि गर्भ में बीज धरना यह सबसे बड़ी बात है इसीलिये (निवेदादीनिकर्माणि) इत्यादि मनुका वचन जो हम लिख चुके उसमें मनुने बीजबोने वाले पिताका ही गुरुत्व प्रतिपादन किया है और किसी का अधिकार ही उसमें नहीं पहुँचता है और तुमने जो व्यास और गौतमके वचन ऊपर सुनाये सो गुरुओंकी सेवा पूजा आदि करने की विशेषता से पिता से उपरालू गुरुओं की स्तुति प्रशंसा पर आरुह्य है ॥ तिसमें गर्भाधानकी प्रधानता द्वारा पिताका गुरुत्व दर्शाकेवाले मनुके वचन से यह टीकाया कि पिताही मुख्यगुरु है औरोंको अमुख्य गुरुवत्तमना—दृष्टीहेतु से दक्षिण (आचार्यं पुत्रागप्यन्नायन्निघेवं इत्याचार्यदारेष्वातिदेशिकं गुरुतल्पप्रायश्चित्तनुक्तं) इत्यवदने एवं कहिकर आचार्यकी स्त्रियां भोग करने पर गुरुतल्प प्रायश्चित्तका अतिशय उदार दिशा है—तैसी ही जादकारों आदि शत्रुकारोंभी (आचार्या वैकुण्ठार्या सुहृत्तल्पव्रतवर्ग्य) इत्यादि वचनों से कहा है कि आचार्य आदिकी शत्रुतासे बचने के लिये वात गुरुतल्प का व्रत करे कि जैसा मुख्य पितास्य ही गुरु की शत्रुता भोगने के लिये उपदेश किया गया—अब सोचो कि जत्र—ऐसी दशापर भी आचार्य आदिकी मुख्य गुरुवत्तमना जाय तो वही प्रायश्चित्त इसमें पहुँचे जो मुख्य गुरु गुरु उपदेश किया गया है—तिसमें यह दोष स्वभा होता है कि आचार्य आदि गुरुता पर शत्रुता ही उपागतया सो शत्रुता दहिरे—इन्हीं सब कारणों से मनु

साफ पिता की ही स्त्रियां कहकर नियम बाँधा है (पितृदारान्प्रमासुह्यमाहवर्ज्यं नराधमः) कि जो कोई अधम नर निज माता को छोड़ि पिता की अन्य दाराओं पर चढिके इत्यादि० सो गुरुदार गामी कहाता है—ऐसाही—यद्विंशन्मत में कहा है कि (पितृभार्यातुविज्ञाय सवर्गांशोऽधिगच्छति) पिता की सवर्गाभार्या को जानि के अधिगमन करे इत्यादि० सो गुरु दार गामी होता है— इन वचनोंसेभी निषेक गर्भाधान करने वाला पिताही मुख्य गुरु ठहरा ॥ ० ॥ यह गुरुत्व जो पिता पर आरूढ हुआ सो चारों वर्गा में अविशिष्ट एकसां समुभूता क्योंकि गर्भाधान सभी वर्गों में एकसां होताहै -- इन कारणों से (सविप्रो गुरुरुच्यते) गर्भाधान वाले मनु के वचन में यह विप्र शब्द जो आयाथा सो भी एक मुख्यता का उपलक्षणा है ॥ तिससे पिताकी पत्नी गमन करनाही सहापातक है (यहाँ निज जननी से उपरालू विनाता आदि का चर्चा है इसी लिये माता शब्द नहीं कहा पिता की पत्नी शब्द कहा गया) गमनका अर्थ भी चरम धातुके विसर्गतक सिद्ध होताहै कि जिसने वीर्य भी गिराया हो—इसी हेतुसे यह नियम है कि वीर्यपात से पहिले जो लौटि परा हो तो सहापातक नहीं सिद्ध होता है अर्थात् पातक सिद्ध होता है तिसके भी दो भेद हैं कि एक तो इच्छासहित पास पहुँचा दूसरे जो इच्छा विना पास जा पहुँचा हो इसभेदके अनुसार आगे इसी अविर्कोक्तिमें बारह और छेवर्षके दो जुदे प्रायश्चित्त कहेजायँगे सरगांतिक नहीं अत्रोक्तप्रायश्चित्तानांविभागः—मुख्य गुरु जो पूर्वोक्तव्यवस्था से पिता ठहरा तिसकी अन्य पत्नी में जानिकर वीर्य सींचने से सहापातक होताहै उस सहापातक में वही दोनो प्रायश्चित्त सूचित हुयेहैं कि जिनको इसी दोसौउत्स-दि २५६ मूलप्रलोक से कहिचुकेदोनों सरगांतिक विधान हैं दोमें से कोई एक अनुष्ठान कियाजाय० कदाचित्त विनाजाने घोखा आदि से वीर्यपात किया हो तिसके लिये सरगांतिक नहीं किन्तु बारह वर्षकी व्रतचर्या है सो आगे बढिकर शंखजीके वचन में देखो— परन्तु ठेठ जननी में अज्ञानता आदि घोखे से भी वीर्यपात करने पर वही दोनो सरगांतिक प्रायश्चित्त हैं—किन्तु जननी की सौति जो पिता और जननी की सवर्गा हो या केवल पिता की सवर्गा हो या केवल जननी की सवर्गा हो या जननी से उत्तम वर्गा हो या पिता से भी उत्तम वर्गा की हो तिसमें जानि के वा इच्छासे वीर्यपात करनेपर वही दोनो सरगांतिक प्रायश्चित्त हैं (अर्थात् नीचेवर्गा की विमाता के भोग मध्ये अगिली अविर्कोक्ति में व्यवस्था कही जायँगी) यहां केवल जननी और सवर्गा तथा उत्तमवर्गा सौतिका प्रसंगहै इसी मध्ये यद्विंशन्मत

का यह वचन है कि (पितृभार्यातुविज्ञायसवराण्योऽधिरच्छतिजननीचाप्यविज्ञाय
नामृतःशुद्धिमाप्नुयात्) पिता की भार्या सवरां को जानिके जो गमन करता है या
जननी को विनाजाने सो मरजाने विना शुद्धि नहीं पाता है ॥ कदाचित् कोई जननी
में इच्छासाय गमन करे तिसके लिये वशिष्ठ का दर्शाया प्रायश्चित्त है—यथा=नि-
ष्कालक्रोयुताभ्यक्तोगोमयाग्निनापादप्रभृत्यात्मानमवदाहयेत्=अर्थात्—सवदेहकेरोम
और बाल मुड़ाये घोलगाये गऊ के गोबरवाले कड़ों की अग्नि के समूह में धैरों को
आदि लेकर थोड़ा थोड़ा देह क्रमसे सब जलावे= जननी या जननीकी सौति सवरां
या उत्तम वरां में कामना के विना भी बारबार धोखेसे अभ्यास गमन होने से यही
प्रायश्चित्त है जो वशिष्ठ ने कहा (सवरां और जननी दोनों के शेष प्रायश्चित्त जो
सवरांतिक नहींहैं सो आगे शंखके वचन से देखना) और सवरां विनाता जो व्य-
भिचारिणी ही तिसके मध्ये अगिली अधिकोक्ति के प्रारम्भसे देखो ॥ शंका क्योंकी
(मातुःमपत्नीभगिनीमाचार्यतनयांतयाआचार्यपत्नीरुद्रसुतांगच्छंस्तुशुरुतल्पगः) माता
की सौति•वाहन•आचार्य की बेटी • आचार्य की पत्नी• अपनी बेटी• इनको गमन
करते हुये भी शुरुतल्पग होताहै—इस वचनमें माताकी सौति पर भी अतिदेश उतारा
गयाहै तिसके सौति के गमन में उपदेशिक प्रायश्चित्त ठीक नहीं समझाजाताहै=
सुनो अभी जो यद्विंशन्मतका वचन लिखा गया है उस में माताकी सौति सवरां
कही तिससे इस वचन में हीन वरां सौतिका अभिप्राय ठहिरा तिसपर अतिदेशका
उतारना भी विरोध नहींहै ॥ ० ॥ ये प्रायश्चित्त और नियम जो कुछ कहे गये सो
सब मुख्यही पुत्रपर आरुह है क्योंकि और जो अनेक तरह के बनाये हुये नकली पुत्र
होतेहैं सो केवल पुत्रवाले कार्यही करनेका अनुकल्प होतेहैं ठीक ठीक पुत्रत्व उनमें
नहीं होता=यथाहमनु.=क्षेत्रजादीन्धुतानेतानेकादशयथोदितात् पुत्रप्रतिनिधीनाहुः
क्रियालोपान्मनीयिरा=अर्थात्—क्षेत्रजादि जो ग्यारहपुत्र गिनाये तिनको गनीया
लोप पत्रके प्रतिनिधि इतलिये कहिते हैं कि संसारी कामधये लोप न होजाय ॥०॥
माता और बिलाला आदि जो पिता की पत्नी ऊपर कही गईं तिनमें जो स्त्री पुरुष
दोनोंकी चाहना से परस्पर संगम हुया हो तहां एकही प्रायश्चित्त है जो इसी दोनों
उत्सर्गि =२३ मूल प्रबोध में पूर्वार्ध में कहा गया=जहां पुनय ने आपही उत्साह
दिनाकर उत्सर्ग होने पर स्त्री को उतार किया हो तहां भी एक प्रायश्चित्त है जो
इसी दोनों उत्सर्गि के उत्सर्ग से कहा गया क्योंकि पाप की चाहना से अतिक्रम
होनेसे प्रायश्चित्तका बड़ापन होताहै=जहां=स्त्रीने स्वतः पुरुष को उत्साह देकर स-

राम क्रिया हो तहाँ ऐसे पुरुषको मनु वचनके अनुसार दोमेंसे कोई एक प्रायश्चित्त देना चाहिये यथाह मनुः (गुरुतल्पोऽभिभाष्यैतस्तत्रैस्त्वप्याद्योमये सुमीं ज्वलतीं वाश्लिष्यसृत्युनासविशुद्ध्यति) अर्थात् गुरुतल्प गामी अपनापाप सुनाइ के तपे हुये लोहेके शयन पर सोवै या दूसरा यह कि लोहेकी बनी स्त्री जलती हुईको लिपिटाइ के सौतही से वह शुद्ध होताहै) इन दोमेंसे कोई एक प्रायश्चित्त जो मौजूद दशाके अनुसार जानमानों के विचार में आवै सो कराया जाय ॥ ० ॥ यह व्यवस्था एक जुदीहै कि जैसा शंखने द्वादश वार्षिक प्रायश्चित्त कहाहै=अधःशायी जटाधारी प-
 र्णामूलफलाशनः एककालंसमशीयाद्वर्षे तु द्वादशे गते रुक्मस्तेयीसुरापप्रचक्रह्यहाशुरुत
 ल्पगः व्रतेनैतेन शुद्ध्यति महापातकिनस्त्विदमे=अर्थात्— धरती में लटे जटा रखावै पते
 मूल फल भोजनकरै सोभी नियमसे एकहीवार भोजन करै अन्न आदि कुछ न खाय
 इस रीतिसे बारहवां वर्ष बीति जानेपर इस व्रतसे ये सब इतने महापातकी शुद्ध होते
 हैं कि सोना चुरानेवाला • सुरापीनेवाला • ब्रह्म हत्यारा • गुरुदारगामी भी—सो यह
 शंखोक्त सर्वसामान्य प्रायश्चित्त भी यहाँ गुरुदारगामी के लिये उस दशापर विचा-
 रना कि समवर्णा या उत्तम वर्णा पिता की भार्या इच्छा विना क्रिती धोखे आदि से
 भोगी हो—इसीमें जो कामना से संगम करनेपर उतारू होकर वीर्य सींचने से पहिले
 लौटि गयाहो तिसकेलिये यही प्रायश्चित्त आधा किन्तु छेवर्षका विचारना—और
 इसीमें जो इच्छा विना संगम करने पर उतारू होकर वीर्यपात से पहिले लौटि परा
 हो तिसके लिये चौथाई किन्तु तीन वर्षका यही प्रायश्चित्त देना चाहिये=गौर=
 यही प्रायश्चित्त परा बारह वर्षका उसको देना चाहिये जो अपनी खास जननी में
 कामनासे उतारू होकर वीर्यपात से पहिले घूमि गयाहो • यदि उसी जननी में कामना
 के दिना उतारू होकर वीर्यपात से पहिले घूमि गया हो तिसके लिये यही प्रायश्चित्त
 आधा छे वर्षका देना चाहिये इत्यादि कुछ और भी जैसी ओझी दशा हो तैसी ओझी
 अवधि चाहिये सो सब अगिली अधिकोक्ति में वधारेवार कल्पना करीजायगी बल्कि
 पिताकी सबर्णा भार्या जो व्यभिचारिणी हो तिसके भी संगम का प्रायश्चित्त कहा
 जायगा ॥ ० ॥ जो कि संवर्तने वीर्य सींचने से पहिले लौटिजाने मध्ये बहुत छोटा
 प्रायश्चित्त कहाहै कि (पितृदारान्महत्कारुह्यनाद्वर्जनराधमः इत्यादिनात्मभारिहता
 नाशेत्तत्रैतच्छूउक्तःसहीनवर्णापितृदारेयुरेतःसेकादवगिदृष्टव्यः) अर्थात्—कोई अवसनर
 नातासे उपरालू पिताकी दाराओं पर चढि कर फिरजाय इत्यादि पूरे वचन में चढ़ने
 पात्र में तप्त कच्छू व्रत करना कहाजिसेकी साधना निर्णय चारहदिनमें होतीहै—जो यह

प्रायश्चित्त उसके लिये विचारना कि जिसने पिता से होने वर्रावाली भार्याओंमें संगम करनेपर उताहू होकर वीर्यपातसे पहिले छोडिदिया किन्तु पूरा संगम न करने पाया हो—ये सब नियम व्यौरेवार अगिली अधिकोक्ति में सत्रिया बनेनी शूद्रा जो पितासे ओछे वर्राकी विमाता हों तिनके जुदेजुदे प्रायश्चित्त पूरे और ओछे भोगभेद में तयैवइच्छा और अनिच्छा वा परस्पर इच्छाके भेदसे भी कहे जायँगे—अर्थात् गुरु दारा भोग संबंधी पातक भेद अनेक अभी उपरालुहँ कि जिनके प्रायश्चित्त इस अधिकोक्ति में नहीं कहे सो सबअगिली में दर्शावैगे ॥ २५९ ॥

(गुस्तल्पातिदेशादिप्रायश्चित्तानि)

प्राजापत्यंचरेत्कञ्चनमावागुरुतल्पगः । चांद्रायणंवात्रीन्मासानभ्यसेद्वेदसंहिताम् २६० ॥

अर्थः—अथवा गुरुतल्पगामी कृच्छ्रप्राजापत्य तीन वर्ष करै ॥ या तीन महीना चान्द्रायणा करै और वेदकी संहिता भी अभ्यास करै=अर्थात्—इस ग्रन्थ के अन्तमें सभी अनुष्ठानोंके स्वरूप कहे जायँगे तहां कृच्छ्रप्राजापत्य नामका व्रतभी कहाजाय गा तिसकी तीनवर्ष करै (अथ समाः इत्यमराचार्यमतेन वर्षवहुत्वेज्ञेयः) या तीन महीनामें तीन चान्द्रायणा व्रत यथोक्त विधिसे पूरे करै उन्हीं तीन महीना तक वेदकी संहिता को बारम्बार पाठ करतारहे किन्तु नियत महीनोंमें पाठकी जितनी आवृत्ति होसके सो निरन्तर करै तब शुद्धहोय • विशेष व्यौरा अधिकोक्तिमें देखो ॥ २६० ॥

२६० आधिकोक्ति (इस प्रकारगामें सर्वत्र गुरुशब्द को पिताही समझना) यह तीनवर्षका प्राजापत्य भी इसकेलिये विचारना जो ब्राह्मणीका पुत्र होकर पिताकी शूद्रापत्नी इच्छा सहित भोगै किन्तु अनिच्छासे धोखा आदि में वीर्यपात करने पर सकली वर्षका प्रायश्चित्तहै सो आगे बढिकर मनु और सुमन्तु के वचनों से देखना कांडके वृक्ष वाली शाखा बगल में दाविके मोडना आदि कहेंगे तयैव उसके लिये विचारना जो ब्राह्मण पिताकी बनेनी भार्यामें धोखेसे एकवार गमनकरै (आगेइसी अधिकोक्तिके बीचमें (गमनेगुरुभार्यायाःपितृभार्यागमेतया) यह वृद्धमनुका वचन देखो=उत्तरार्द्धमूलश्लोकमें तीनि महीनेका उसके लिये विचारना जो पिताकी सवर्णापत्नी व्यभिचारिणीहो तिसको बिना जाने धोखामें गमनकरै—जो इसी सवर्णा व्यभिचारिणी में इच्छा साथ चाहिके गमन करै तिसके लिये उगता का निर्मित क्रिया प्रायश्चित्त देखै=यथा=गुस्तल्पाभिगामी संवत्सरं ब्रह्महत्याव्रतं यरामानान्वा मरुच्छ्र दग्ध=यथा=गुस्तल्पाभिगामी मरुच्छ्र भा ब्रह्म हत्या में कहा व्रत करै या

एक कृमाही भर तप्तकच्छु करै ॥ ० ॥ जिसने आप ब्राह्मणोंका पुत्रहोते पिताकी क्षत्रिया भार्या जानिबूझि गमनकरीहो तिसके लिये दोसौ बत्तीस मूलप्रलोक में उतारे हुये गुरुतल्पके अतिदेश हेतुसे बारहवर्षका पौना नौवर्ष प्रायश्चित्त विचारना होगा (इन बारहवर्षों का नियम इससे पहिली अधिकोक्ति के अन्त में लिख चुके तहां देखो अधःशायी जटाधारी इत्यादि शंखके वचनसे) उसीकी पौनी नौ वर्षे यहां समझनी • इसपर सब दलीलहै कि यहांपर क्षत्रिया भार्याके गमनमध्ये नौवर्षे नियत करीगई और (मातुःसपत्नीभिगिनीमाचार्यतनयांतथा) इस दोसौ बत्तीसके प्रलोक में माताकी सौति सामान्य भावसे कहीहै तिसका हेतु यहां क्षत्रिया सौति पर घटाया गया क्या कारणाहै सो कहो—सुनों इस दोसौ बत्तीस वाले प्रलोक में सामान्य वचन होनेपर भी सवर्णा गुरुभार्याका वियय नहीं मानिसक्तेहैं क्योंकि अभी इससे पहिली अधिकोक्तिमें सवर्णा गुरुभार्याके इच्छा सहित गमन मध्ये सरणांतिक प्रायश्चित्त कहिचुके और कामनाके बिना गमनहोनेमध्ये शंख वचनसे बारहवर्षका कथिचुके तिससे दोसौ बत्तीस मूलप्रलोक में जो माताकी सौति कही सो क्षत्री आदि हीन वर्णा की समझनी कि जिसके भोगमध्ये बारहवर्षोंका पौना प्रायश्चित्त कहा (इस बात का निर्णय पहिली अधिकोक्तिमें भी निपटिचुका तहां शंका वाले पाठको देखो) और जो इसी क्षत्रिया विजातामें कामनासे बारम्बार का अभ्यास करै तिसके लिये करावस्थितिके अनुसार सरणांतिक प्रायश्चित्त चाहिये=यथाह करावः=मत्यागत्वा गुरोर्भार्यांपुनःक्षत्रसुतां द्विजः श्रंडाभ्यांरहितंलिंगमुत्कृत्यसमृतःशुचिः=अर्थात्—ब्राह्मण अपने पिताकी भार्या जो क्षत्री की बेटीहो तिसको दुवार इच्छा सहित गमन करै सो पहिले दोनों आँडकाटै फिर लिंग काटै तब मरनेसे शुद्धहोय (यद्यपि इस वचन में ऐसा अर्थभी लगताहै कि पिताकी सवर्णा भार्याको एकवार या पिताकी क्षत्रिया भार्याको अनेक बार जानिबूझि गमनकरै सो इसमें भी पूर्वोक्त नियमोंसे विरोधनहीं है क्योंकि सवर्णाके मध्ये लिंग काटना पहिले भी कहिचुके हैं सो एकवार में समझना जो क्षत्रियाके मध्ये कहा सो अनेकवारके अभ्यासमें समझना और इसीसे प्रयोजन यहाँ विशेषहै) इसी क्षत्रिया विजाताको अज्ञानतासे एकवार वा अनेकवार भोगने मध्ये जो प्रायश्चित्त है सो आगे इसी अधिकोक्ति में उसके और जातूकर्गा के वचनोंसे जुदे दोनोको देखो ॥ ० ॥ इसी व्यवस्थामें यह नियम है कि जब कोई पातकी लिखे प्रायश्चित्तको न करना चाहै तब उस प्रायश्चित्तके बदले यही दंडहै कि जैसा दोसौ इकत्तिस और दोसौ बत्तीस और तैंतीस मूलप्रलोकों में योगीश्वर ने

कहा है (छित्वालिङ्गवधस्तस्यसकामायाःस्त्रियाःअपि) कि उन श्लोकों वाला कोई अपराधी यदि प्रायश्चित्त करना अस्वीकार करे तौभी उसका लिंगकाटिके प्राणांत वव कियाजाय यही दंड और यही प्रायश्चित्त है (यदि स्त्रीने अपनी ओरसे उत्साह देना आदि कामना खड़ी करीहो या दोनोंकी परस्पर इच्छासे संगम हुआहो तहां उस स्त्री का भी योनिच्छेदन पूर्वक वधकिया जाय अर्थात् जहाँ पुरुष जोरावरीसे स्त्री की इच्छा विना कामकरै तहां स्त्री का वध नहीं चाहिये ॥ ० ॥ जहां कहीं पिता के बनेनी भार्याहो तिसको ब्राह्मणी का पुत्र इच्छा सहित भोगे तहां छेवर्यका प्रायश्चित्त चाहिये—इसी आशयसे यह स्मृत्यन्तर वचनहै कि=ब्राह्मणीपुत्रस्यक्षत्रिया यांमातरिगमनेपादहान्याद्वादशवार्यिकमेवमन्यवरांस्त्रिपि=अर्थात्—ब्राह्मणीकापुत्र अपनी विमाता क्षत्रिया में जो गमन करै तिसको चौथाई कम करिके बारह वर्ष वाला नौ वर्ष का प्रायश्चित्त है (मरणांतिक नहीं) ऐसेही अन्य वर्रां की विमाता में समझना कि ब्राह्मणी के पुत्र ने पिता की बनेनी भार्या भोगी हो तहां दो चौथाई कमी करिके छे वर्ष का प्रायश्चित्त कराया जाय • ऐसेही ब्राह्मणा पिता की शूद्रा भार्या हो तिसको ब्राह्मणी का पुत्र भोगे तहां तीन वर्ष का प्रायश्चित्त कराया जाय—यहां तक ब्राह्मणी के पुत्र की व्यवस्था पूरी होचुकी • अब क्षत्रिया आदि के पुत्रों की व्यवस्था जुदी जुदी कही जायगी • तिसके मध्ये सर्वत्र यहयाद राखी कि पहिली अतिकोक्तिमें ठेठ जननी और सवरां विमाता की व्यवस्था जो कहिचुके सो सबके लिये चारों वरां में बराबर है दृष्टान्त जैसे क्षत्री पिता के दूसरी क्षत्राणी भार्या हो तौ वह सवरां विमाताहुई या शूद्र पिताके दूसरीशूद्रा हो तौ सवरां विमाता हुई या वैश्य पिता के दूसरी बनेनी हो तौ पुत्रों की सवरां विमाता हुई इसी दृष्टांत से अनुलोम प्रतिलोम वरांसंकर जातियों में भी समझना यह चर्चा एक याद रखने के प्रसंग से किया गया ॥ ० ॥ जैसी ऊपर ब्राह्मणी के पुत्रकी व्यवस्था कही तैसे जो क्षत्रिया माता का पुत्र होकर ब्राह्मणा पिताकी बनेनी भार्या भोगे तिसको नौवर्ष का प्रायश्चित्त विचारना • जो वही पुत्र अपने ब्राह्मणा पिता की शूद्रा भार्या भोगे तिसको छः वर्षका प्रायश्चित्त है ॥ ० ॥ इसी न्याय के अनुसार बनेनी के पुत्र की व्यवस्था है कि जो बनेनी का पुत्र होकर अपने ब्राह्मणा पिताकी शूद्रा भार्या भोगे तिसको भी नौवर्षका प्रायश्चित्त जानो—परन्तु जो वही बनेनी का पुत्र अपने ब्राह्मणा पिता की दूसरी भार्या बनेनीको वास्वार के अभ्यास पूर्व इच्छा सहित भोगे तिसको मरणांतिक प्रायश्चित्त है=तदाह लौगाक्षिः=पुंगे

भार्यातृयोवैश्यां मत्यागच्छेत्पुनःपुनः लिंगाग्रच्छेदयित्वा तु ततः शुद्धोत्सकिल्वियात् = अर्थात्—जो पिता की वनेनी भार्याको जानि ब्रूमि बारम्बार भोगै सोलिंगका समग्र भाग कटवाइके उस पापसे विशुद्ध होय (यही व्यवस्था अनंतर उक्त क्षत्रिया पुत्र में भी जोड़िलेनी कि जो क्षत्रिया का पुत्र अपने ब्राह्मणा पिताकी दूसरी भार्या क्षत्रिया को जानिब्रूमि बारम्बार भोगै सोभी लिंग कटाय के शुद्ध होय • और यही व्यवस्था इसी रीति से शूद्रों के पुत्र में भी जोड़ि लेनी) और वही वनेनी का पुत्र जो ब्राह्मणा पिता की शूद्रा भार्या को जानि ब्रूमि कामनासे बारम्बार भोगै तिसके लिये बारह वर्ष का प्रायश्चित्त है कि जैसा उपमन्यु ने कहा = पुनःशूद्र्यां गुरोर्गत्वाबुद्ध्याविप्रः समाहितः ब्रह्मचर्यमदुष्टात्मा सचरेत्तद्वादशाब्दिकम् = अर्थात्—बारम्बार पिता की शूद्रा भार्यामें ज्ञान सहित गमन करिके वह बारहवर्ष का ब्रह्मचर्य अच्छाचित्तलगा कर साधै तब शरीर उसका शुद्ध होय (यद्यपि इस वचन में कर्ता का उद्देशक विप्र शब्द है तथापि यहाँ वैश्य का प्रयोजन है क्योंकि ब्राह्मणा के लिये इसी २६० के मूल श्लोक द्वारा तीनही वर्ष नियत होचुके हैं तिससे) और वनेनी का पुत्र होकर पिता की क्षत्राणी भार्या भोगै तिसका नियम पहिली अधिकोक्ति में होचुका है कि सवर्णा या उत्तमवर्णा विमाता भोगै तिसको सरसांतिक प्रायश्चित्तभी उसी अधिकोक्ति में लिखिचुके ॥०॥ ब्राह्मणा का पुत्र होकर जो क्षत्रिया विमाता में अज्ञानतासे दोखमेंगमनकरै तिसकेलिये यमकाकहा प्रायश्चित्तहै = यथाहयमः = कालेश्चमेवाभंजानो ब्रह्मचारी सदाव्रती स्थानासनाभ्यां विचरंस्त्रिरहोभ्युपयन्नपः अत्रः शायोत्रिभिर्वर्षैस्तदपोहेतपातकम् = अर्थात्—तीनिवर्षतक चारघड़ीदिनसेरहेपरआठवां समय होता है तिसमें भोजन का एक बार नियम राखै इन्द्रियों को जीति कर ब्रह्मचारी वने और ब्रह्मचर्यके व्रतभी साधै और स्थान तथा आसन इन दोनों को छोड़ि के विचरते हुये दिन में त्रिकाल स्नान करते हुये धरती में सोवै तब तीन वर्षों से वह पातक दूर होय = कदाचित् = इसी ने एकवार से उपरालू दुवारा आदि अज्ञानता से ही गमन कियाहो तिसके लिये जातूकर्णा का कहा प्रायश्चित्त विचारना = यथाह जातूकर्णाः = गुरोःक्षत्रसुतां भार्यापुनर्गत्वात्त्वक्तामतः अंडमात्रंसमुत्कृत्यशुद्धेज्जीवन्मृतोपिवा = अर्थात्—पिता की भार्या जो क्षत्री की बेटी हो तिसको एक बार से उपरालू दुवारा आदि विना चाहे गमन करै सो अंड पर्यंत मात्र लिंग खूब काटिके अर्थात् आँडों को छोड़ि सिर्फ आँडों के ऊपर से लिंग मात्र काटि के सरजाय या जीवना रहिजाय दोनों दशा में शुद्ध होजाता है—इस वचन में निपट सर जाना नहीं कहा

किन्तु देवेच्छा से जीवते वचिजानेका भी विकल्पहै तिससे आंडोंका जड़से काटना भी नहीं कहा (इसी क्षत्रिया विमाता को जानि वृष्णि इच्छा सहित गमन करने की दोनोंदशा किन्तु एकवार या अनेक बार मध्ये दोनों प्रायश्चित्त इसी अधिकोक्ति की आदि में कहि चुके—और फिर भी आगे इसी अधिकोक्ति में उसका प्रायश्चित्त कहेंगे जो क्षत्रिया विमाता में गमन करने पर उताख होकर वीर्य सींचे विना लौटिगया हो ॥०॥ एवं पिता की बनेनी भार्यामें ब्राह्मणी का पुत्र होकर जो विना इच्छा के बोखा से गमनकरै तिसके लिये याज्ञवल्क्यजी ने जो इसी दोसौसाठि मूल श्लोक पूर्वार्धसे त्रैवार्यिक प्राजापत्य कहा सो करवाना चाहिये और यहीप्रमारा वृद्ध मनुके वचनसे मिलताहै =तथा च वृद्धमनुः=गमने गुरुभार्यायाः पितृभार्यागमे तथा अद्दश यमक्रामात् कृच्छ्रं नित्यं समाचरेत्—अर्थात्=गुरुकी भार्या या पिताकी दूसरी भार्या हीनेवर्णा की इच्छा विना भोगे सो तीनवर्षतक नित्यं प्रति कृच्छ्र व्रत करताहै किन्तु बीच में अन्तर कभी न परने देय तव शुद्ध होय=और जो उसी बनेनी विमाता में अज्ञानता से बार बार गमन कियाहो तो हारीत का कहा जीवन पर्यंत ब्रह्मचर्यरूपी प्रायश्चित्त है=यथा हारीतः=अभ्यस्य विप्रो वैश्याद्यां गुरोरज्ञानमोहितः यडंगं ब्रह्मचर्यं च मचरेद्यावदायुषम्=अर्थात्—ब्राह्मणा अपने पिताकी बनेनी भार्यामें अज्ञानता से भूला हुआ यदि बार बार संगसका अभ्यासकरै और पीछे भेद जाना जाय तब यह प्रायश्चित्तहै कि जयतक जीवै तबतक यडंग वेद पाठ की धारणा राखै और ब्रह्मचर्यसेरहै किसीस्त्रीसे संगम न करै (इसी बनेनी विमाताको इच्छा सहित भोगनेमध्ये छः वर्ष का प्रायश्चित्त ऊपर कहि चुके हैं इसी अधिकोक्ति में स्मृत्यंतरवचनहंठौ ॥०॥ एवं पिता की शूद्रा भार्या में ब्राह्मणी का बेटा विना जाने गमन करै तिसके लिये मनु का कहा प्रायश्चित्त है=यथा=खड्वांगी चीरवासावा प्रमशुलो विजनेवने प्राजापत्य चरेत्कृच्छ्रं मन्वेकं समाहितम्=अर्थात्—मनुष्य की खोपड़ी लाठी आदि लकड़ी के सिरेपर जड़ी हुईका नाम है खड्वांग जो ब्रह्महत्या के प्रायश्चित्त में कहि चुके तिस को लिये हुये और पुराने चौथडे या भोज पत्र आदि बकल पहिरे लपेटे हुये दाढ़ी मूछ आदि सब जटा सवाये हुये निर्जन वन में एकला एक वर्ष तक ठीक ठीक विविध से कृच्छ्र प्राजापत्य व्रत करै तब शुद्ध होय—अथवा—यह नहीं तो दूसरा सुसंतु का कहा प्रायश्चित्त करै=यदाह नुमतुः=गुरुदाराभिगानी संवत्सर कंठकिनीं शारखां परिष्वेद्यावः भार्यावियवताभिज्ञाहाराः पूतो भवति=अर्थात्—गुरु भार्या गमन करने वाला एक वर्ष भरनेरी द्रवर आदि कांठों वाले वृद्ध की लंबी शारखा दहनी बगल में दाबि

चिपटाय के धरती में सोवै त्रिकाल स्नान किया करै भिक्षासे पेटभरै तब शुद्ध होय—
 और—जो एक बार के सिवाय दुबारा तिवारा आदि बार बारका अभ्यास किया हो
 तौ मनुका कहा प्रायश्चित्त है=यथा=चांद्रायणावात्रीन्मासानभ्यनियतेन्द्रियः=अ-
 र्थात्—बार बारका अभ्यास करिके तीन महीना तक निरन्तर चांद्रायणा व्रतकरै तब
 शुद्ध होय (इसमें यह शंका न करना कि एकवारके भोगमध्ये बारह महीनेका प्राय-
 श्चित्त और बारवारके अभ्यास में सिर्फ तीन महीने कहे क्योंकि उस एक वर्ष की
 अपेक्षा ये तीन महीने बहुत कठिन हैं इतत हेतुसे कि चांद्रायणामें एक एक ग्राम अन्न
 बढ़ाया घटायाजाताहै ऐसा निरन्तर तीन महीनेतक साधना उसकी अपेक्षा कठिन
 है जो एक वर्ष तककाँटों की शाखा आदि कहागया) इसी शूद्रा विमाताको जानि
 वृष्णि कामनासे भोगने मध्ये तीनवर्ष का प्रायश्चित्त इसी अधिकोक्तिके प्रारम्भमें
 और पहिलीअधिकोक्तिके अन्तमेंभी कहिचुके तहां देखौ ॥०॥ और जो ब्राह्मणीका
 पत्रहोकर क्षत्रिया विमातामें कामनासे जानिवृष्णि उतारू होकर वीर्यसींचनेसे पहिले
 घूमिगयाहो तिसकेलिये व्याघ्रोक्त प्रायश्चित्तहै=यथाह व्याघ्रपादः=कृच्छ्रं चैवाति
 कृच्छ्रं च तथाकृच्छ्रातिकृच्छ्रकम् चरेन्मासत्रयं विप्रः क्षत्रियागमनेगुरोः=अर्थात्—पिता
 की क्षत्रिया भार्या के पास ब्राह्मणी का बेटा यदि पहुँचै सो कृच्छ्रया अतिकृच्छ्रया
 कृच्छ्रातिकृच्छ्र तीनि महीना करै—इसमें इसरीति से व्यवस्था है कि जिस पुस्त्य को
 स्त्रीने अपनी ओर से उत्साह दिलाकर मोहित किया हो तिसको तीन महीना कृच्छ्र
 प्राजापत्य करना चाहिये जो दोनों की इच्छा से परस्पर प्रीति उठीहो तौ पुस्त्यको
 अति कृच्छ्र व्रत करना तीन महीना चाहिये जहां पुरुषही ने स्त्री को तरणीव दी हो
 तहां सेसे पुरुष को कृच्छ्रातिकृच्छ्र व्रत तीन महीने करना चाहिये•ये सब तीनों
 उसी दशापर कहे गये हैं कि जहां संगम न होने पाया किन्तु वीर्य सींचने से पहिले
 लौटि परेहें=इसी प्रकार—जहां क्षत्रिया विमाता में कामना के विना किसी दोखे
 से सगम करने पर उतारू होकर वीर्य सींचने से पहिले बौध होजाने आदि कारणों
 ने लौटि परा हो तहां कराव बुनिका कहा प्रायश्चित्त है=यथाह करावः=चांद्रायणा
 तप्तकृच्छ्रमतिकृच्छ्रं तथैव च सप्तदशगुरोर्भार्यामज्ञानात्क्षत्रियांहिजः=अर्थात्—ब्राह्म
 णा अपने पिता की क्षत्रिया भार्या के पास विना जाने वृष्णे एकवारभी जाइकेचां-
 द्रायणा करै या तप्त कृच्छ्र करै या अतिकृच्छ्र करै—इसमें भी इन रीतिसे व्यवस्था
 है कि जिस पुस्त्यने आपही स्त्री को उत्साह दियाहो सो चांद्रायणा करै जहां दोनों
 ने बराबर प्रीति उभारी हो तहां पुरुष को तप्त कृच्छ्र करना चाहिये जहां सिर्फ स्त्री

ने उत्साह देकर पुरुष को मोहित किया हो तहां पुरुष अति कृच्छ्र व्रत करे। ये सब उन्नीदशामें समझने जहां संगम न हुआ हो किन्तु वीर्य सींचने से पहिले लौटिपरेहो। उन प्रायश्चित्तोंमें कोई सहीना आदिकी अवधि नहीं कही तिससे इनकी वही अवधि समझनी कि जितने दिनों में एक अनुष्ठान पूरा होता हो जैसा चान्द्रायण एक सहीना भरमें होता है कृच्छ्र अतिकृच्छ्र ये वारह दिनमें होते हैं ॥ ० ॥ जो ब्राह्मण अपने पिताकी वनेनी भार्यामें जानिबूझि संगम करने पर कामनासे उताख होकर वीर्य सींचनेसे पहिले घूमिगया हो तिसके लिये भी करावमुनिका कहा प्रायश्चित्त है=यथाह करावः=तप्तकृच्छ्रं पराकंचतयासांतपनंशुरोः भार्यावैश्यांसकृद्गत्वावुद्धामासच रेतद्विजः=अर्थात्—ब्राह्मण अपने पिताकी वैश्याभार्या के पास एक बार जान सहित जाइके तप्तकृच्छ्र या पराक या सांतपन व्रतकरै—इसमें भी इस रीतिसे व्यवस्था है कि जहां पुरुषने आपही उत्साह दिलाया हो तहां पराक व्रतकरै जिसकी स्त्रीने उत्साह देकर मोहित किया हो सो सांतपन व्रतकरै जहां दोनोंने परस्पर प्रीति उभारी हो तहां पुरुष तप्तकृच्छ्र व्रतकरै। ये सब उसी दशापर आखूढ हैं कि संगम न होने पाया हो वीर्य सींचनेसे पहिले जुदे होजायँ=इसी प्रकार—जो कामना के बिनाही न जानिकर संगम करनेपर उताख होकर वीर्य सींचनेसे पहिले फिरजाय तिसके लिये प्रजापतिकी वचन है=यथाह प्रजापतिः=पंचरात्रंतुनाश्रीयात्सप्ताष्टौवातथैवच वैश्यांभार्यांशुरोर्त्वा सकृदज्ञानतोद्विजः=अर्थात्—ब्राह्मण निज पिताकी वनेनी भार्या पास एकबार बिना जानेबूझे जाइके निपट निराहार व्रत पांच या सात या आठदिन करै—इसमें भी इस रीतिसे व्यवस्था है कि जिसकी स्त्रीने उत्साह दिया हो सो पांच निराहार करै जहां दोनों ओरसे परस्पर प्रीति उठी हो तहां पुरुष सात निराहार करै जिस पुरुष ने स्त्री को उत्साह दिया हो सो आठदिन तक निरन्तर निराहार करै। ये सब उसी दशापर हैं कि संगम न हुआ हो वीर्य सींचनेसे पहिले घूमि जायँ ॥ ० ॥ जो ब्राह्मण अपने पिता की शूद्रा भार्यामें जानि बूझि कामनासे उताख होकर वीर्यसींचनेसे पहिले विचरि जाय तिसके लिये जावालमुनिका वचन है=यथा=अतिकृच्छ्रं तप्तकृच्छ्रं पराकंचतथैवच शुद्रांसकृद्गत्वावुद्धा विप्रःसमाचरेत्=अर्थात्—ब्राह्मण अपने पिता की शूद्राभार्या पास जानिबूझि कामनासे एकबार जाइके अतिकृच्छ्र या कृच्छ्र या पराक व्रत आचरे—इसमें भी इसरीतिसे व्यवस्था है कि जिसकी स्त्रीने मोहित किया हो सो अतिकृच्छ्र करै जहां दोनोंकी दृष्ट्यासे प्रीति उठी हो तहां पुरुष तप्तकृच्छ्र करै जिस पुरुषने स्त्रीको आपही उत्साह दिलाइ हो सो पराक नामा व्रतकरै। ये सब उसी

दशापर समझने कि जहां संगम न होनेपायाहो—इसीप्रकार—जहाँ कामनाके बिना संगम करनेपर उताहू होकर वीर्य सींचनेसे पहिले घूमिगयाहो तहां दीर्घतमस् नाम ऋषिका वचनहै सो देखो=यथा=प्राजापत्यंसांतपनंषष्ठरात्रोपवासकस गुरोःशुद्र्यांस ह्यद्गात्वाचरेद्विप्रःसमाहितः=अर्थात्—ब्राह्मणा अपने पिताकी शूद्री भार्या में कामना के बिना एकवार पहुँचके प्राजापत्य करै या सांतपन करै या सात दिन निराहार उपवास करै—इसमें यह व्यवस्था है कि जिस पुरुष को स्त्रीने उत्साह देकर मोहित कियाहो सो प्राजापत्य करै जहां दोनो ओरसे परस्पर प्रीति उठीहो तहां पुरुष सांतपन व्रतकरै जिस पुरुषने स्त्री को आपही उत्साह दिया हो सो सात दिन निराहार उपवास करै० ये सब उसी दशापर होसकतेहैं कि जहां संगम न होने पाया हो ॥ ० ॥ इन्हीं प्रकारोंसे और भी जो स्मृतियोंके वचन उपरालू मिलै तिनकी भी विषयभेदा व्यवस्था ऊहा करनी चाहिये=और=पुरुषोंकी तरह स्त्रियों को भी महापातक बराबर है अर्थात् जिन स्त्रियोंके साथ जिन पुरुषोंको महापातक होना कहा उनपुरुषों के साथ उन स्त्रियोंको भी बराबर महापातक लगता है=तथाच कात्यायनः=स्यदोष प्रशुद्धिप्रच पतितानामुदाहृता स्त्रीरामपिप्रसक्ताना मेयसर्वविधिःस्मृतः=अर्थात्—यह दोष और उस दोषकी शुद्धि भी पतितों की कही और यही विधि उनमें फँसी हुई स्त्रियोंको भी होतीहै—इस नियमसे कि जो स्त्रियां काम की चाहना से उताहू होकर परे महापापकी दशातक पहुँचीहो तिनको भी सरशांतिक प्रायश्चित्त वही है कि जो पुरुषको कहिचुके इसमें कुछ भेद नहींहै—इसीलिये योगीश्वरने दोसौवत्तीस तैंतीस श्लोकों में (छित्वालिंगवधस्तस्य सकामायाःस्त्रियाअपि) पहिले पुरुष को वध प्रायश्चित्त कहिके कामातुर स्त्रियोंकोभी वही सरशांतिक विधिकहीहै ॥ ० ॥ जो स्त्री कामातुर होने बिना अनिच्छा से इन पुरुषों के फंद में आगई हो तिसके लिये सरशांतिक प्रायश्चित्त नहीं है परन्तु मनु का कहा नियम है=यथा= सतदेव व्रतंकार्यथोयित्सुपतितास्वपीति द्वादशवार्षिकमेवाद्धं कल्पनीयम्=अर्थात्—यही व्रत बारह वर्ष का पतित स्त्रियों को भी कराना चाहिये इस नियम से बारह वर्ष का आधा छः वर्ष कल्पना किया जाय (क्योंकि स्त्री और बालक बूढे आदिको आधा व्रत कराने का नियम पहिले दृढ होचुका है) यह सब नियम यहां तक मुख्य महापातकपर कहा गया जिसका लक्षणा २२७ दोसौ सत्ताइस मूल श्लोकमें गुरुतल्प गामी कहा गयाथा ॥०॥ उसके बाद दोसौ इकांतम २३१ मूल श्लोकमें मित्र की भार्या कुमारी कन्या आदि स्त्रियों में गमन करना भी गुरुतल्प के समान पाप

कहा गया था जो समान कहिने मात्रसे कुछ नीचा समझा गया है तिनमें और दोसौ वतीस तैंतीस श्लोकों में जो जो स्त्रियाँ बूआ सामी आदि गिनाईं जिनका गमन करना गुरुतल्प के अतिदेश में ठहिराया गया वह भी गुरुतल्प से कुछ नीचा पातक है तिनमें भी यदि कोई पुरुष वीर्य सींचे तिसके लिये भी वही बारह वर्षका प्रायश्चित्त है इस हिसाब से कि जिसने बिना जाने धोखा में एकही राति गमन किया हो तिसको बारह वर्ष का आधा छः वर्ष प्रायश्चित्त दिया जाय—और जिसने एक राति से उपरान्त भी जानि वृष्ति बार बार ऐसा किया हो तिसको बारह वर्ष का पूना नौवर्ष दिया जाय—इसमें भी यह विशेष कर विचार है कि यद्यपि इनपापों को गुरुतल्प से कुछ न्यून कहा इसी हेतुसे प्रायश्चित्त भी कम किया गया तथापि जो इन्हीं स्त्रियों में अत्यन्त ही अभ्यास किया हो तौफिर इसमें भी वही सरसांतिक प्रायश्चित्त कराया जाय जो पहिली अधिकोक्ति में कहा गया इसीलिये योगीश्वर ने उसी दोसौ तैंतीसमें यह कहा है कि (लिंगच्छित्वावधस्तस्यसकामायाःस्त्रिया अपि) परन्तु उन श्लोकों से गिनाई हुई स्त्रियों में माता की सौति भी कही गई है तिसकी व्यवस्था पहिली अधिकोक्तिमें और वर्तमान अधिकोक्तिमें भी ऊपरवर्तान हो चुकी है तिससे विमातासे उपरालू स्त्रियाँ जो इन चर्चा किये तीनि श्लोकों में हैं तिनका नियम यहां पर लिखा गया समझना और उनमें अत्यन्त अभ्यास करने वाले को सरसांतिक जो बताया तिसका प्रमाण वृहद्यमका यह वचन है—यथा—रेतःसित्का कुमारीयुस्त्रयोनिष्वंत्यजासुच सपिंडापत्यदारैर्युप्राणात्यागोविधीयते—अर्थात्—कुमारी कन्या चाहें किसी की भी उत्तम जाति हो और अपनी भगिनी और अंत्यजा चांडालियाँ और अपने सपिंडों की पुत्र बधुओंमें वीर्य सींचिके प्राणा त्यागही प्रायश्चित्त है ॥ ० ॥ इस व्यवस्था में अंत्यजाती स्त्रियों का भोग भी गुरुतल्प के समान पातक ठहिराया गया और अंत्यजाके कर्त्तव्य होते हैं तिससे मिताक्षराकार ने व्यवस्था इस पर दी है कि इस गौके पर अंगिरा मुनि के कहे अंत्यजों की स्त्रियाँ समझनी—यथाह मध्यमांगिराः—चांडाल. श्वपचः क्षतासृतेवैदेहिकस्तया सागवाऽऽयोगवौचैव सप्तैतेन्यावसायिनः—अर्थात्—चांडाल. श्वपच. क्षता. सृत. वैदेहिक. सागव. आयो गव. ये मान जाते अंत्यावसायी किन्तु अंत्यज कहार्ती है तिनकी स्त्रियों से भोगकरना अधिक अगुडता के हेतु से गुरुतल्प के समान महापाप ठहिरा. परन्तु (रत्नक र्वसंका प्रचनदोषरुडभवद कैवर्तगदभिना प्रचमत्तै अंत्यजाः स्मृताः) इसवचनमें यम के कहे मान अंत्यज से प्रतिद्व है कि. शोदी. चमा. नट. वरट. कैवर्त. मेद. भिल.

ये सातों अंत्याजाति हैं सो इनको इस ऊपरकी व्यवस्थामें न शामिल करना क्योंकि इनके मध्ये छौरा प्रायश्चित्त है सो आगे उपपातकों के साथ पारदार्य परिच्छेद में देखना—और ऊपर की व्यवस्था में जिन अंत्याजातों का प्रयोजन है तिनके लिये मनुने भी बहुत बड़ा प्रायश्चित्त हेतुगर्भित वचन के द्वारा प्रकाश किया है—यदाह मनुः=चांडालाह्यस्त्रियंगत्वाभुक्त्वाचप्रतिगृह्यच्च पतत्यज्ञानतोविप्रोज्ञानात्साम्यंतुगच्छति=अर्थात्—कोई ब्राह्मण बिना जाने चाण्डाल और अन्त्यजों की स्त्री में गमन करिके या उसके हाथ से कुछ खाइके या उसस्त्रीको घरिणी बनानेके लिये प्रतिग्रह लेके पतित होजाता अर्थात् जाती धरुसे गिरजाता है और जिसने जानि ब्रह्मि के इच्छा सहित ऐसा क्रियाही सोउन्हीं चंडालोंकी ससता को पहुँचता अर्थात् निपट चंडाल होजाताहै—अब इनदोनों बातको जुडीजुदी सोचौ कि जो पतितहोताहै सोतौ प्रायश्चित्त करिके शुद्ध होसक्ता है दूसरा जो निपट चंडालोंमें मिलिगया वह प्रायश्चित्तसेभी नहीं शुद्ध होताहै अर्थात् उसकेलिये कोई प्रायश्चित्त नहींहै मरजाने के सिवाय—तिससे यह व्यवस्था नियत हुई कि जिस ब्राह्मण से बिना जाने धोखेमें ये पापहुये हों सो पतितहोने के हेतुसे पतितों वाला प्रायश्चित्त पूरा बारहवर्ष साधै तब शुद्ध होय० और दूसरा जिसने जानि ब्रह्मि इच्छासहित चण्डालीसाथबहुतदिनोंतक रुगन या खाना पीना या घरमेंरखिलेना विवाह करलेना आदि क्रिया ही वह शुद्ध होनाचाहै तौ बारहवर्षोंसे अधिक मरणांतिक प्रायश्चित्तहै तिसकोकरैक्योंकि प्रायश्चित्तकी अपेक्षासेसौतके बिना उसकी शुद्धि संसारमें नहींहै=परन्तु येदोनों बहुतबड़े प्रायश्चित्त जो कहे गये सो बहुतदिनोंके अभ्यासपर समझना किन्तु सकरात्रिभारके अभ्यासमें यद्यपि कई बार संगम हुआ ही तौभी ये प्रायश्चित्त न होंगे क्योंकि एक रात्रिकेअभ्यास मध्ये मनुने तीन वर्षका प्रायश्चित्तकहाहै=यथा=यत्करोत्येकरात्रे शारयलीसेवनातद्विजः तद्वैश्यभुगजपन्नित्यंत्रिभिर्वर्षैर्वर्षपोहति=अर्थात्—ब्राह्मण जो पापवृत्तीके सेवनसे एक रात्रिभरमें उत्पन्न करता है सो तीन वर्ष भिक्षा खाइके जप कृतेहुये दूर होजाताहै० इस व्यवस्थासे यहतात्पर्यठहिरा कि चंडालीका संगमआदि कोई काम जिसने बिना जाने सिर्फ एक रात्रि भर क्रिया हो तिनको तीन वर्ष का प्रायश्चित्त है और बहुत दिन सेवन करने वाले को बारह वर्ष का प्रायश्चित्त है और जिसके लिये मरणांतिक प्रायश्चित्त कहा उसने जो अतिक्रान्त का अभ्यास न किया हो किन्तु जानि ब्रह्मि के इच्छा से दोही चार दिन अभ्यास करिके पठिताया हो कि पुद्ग को शुद्ध होना चाहिये तौ उनको भी मरणांतिक प्रायश्चित्त के

बदले सिर्फ ब्राह्म वर्णका व्रत करना चाहिये कि जिससे फिर जातिमें मिलिसके और प्राणा हानि भी न हो परंच बहुत दिनोंके अभ्यास में सरशांतिक जो लिखिचुके वही नियम है ॥ ० ॥ यहाँ मनु के वचन में वृथली कही सोभी चांडाली समझनी क्योंकि अन्य स्मृतियों में पांच भांति की वृथली कहीं उनमें चांडाली भी गिनती है) तथाच स्मृतंतरे=चांडालीबंधकीवेश्यारजस्थयाचकन्यका ऊढायाचसगोत्रास्याहृषत्य.पंच क्रीतिताः=अर्थात्-चांडाली १ बंधकी जो स्वैरिणीहो २ वेश्या ३ जो कन्याकुमारी अपनेपिताकेवर कपडोंसेहोनेलगी वह किसीको विवाहीजाय तोभी वृथलीकहातीहै ४ रजस्वला न होनेपरभी जो कन्या अपने सगोत्रीको विवाहीजाय सोभी वृथलीकहाती है ५ ये पांचवृथली कहीगईहैं (परन्तु इनमेंसे केवल चांडालीकाप्रयोजन ऊपरले मनु केवचनमेंसमझना पांचोंकी नहीं क्योंकि योगीश्वरनेभी २ ३ १ मूलश्लोकमें अंत्यजामात्र कहीहै=इसके सिवाय जहाँ सिर्फ एकहीवार चांडाली आदि भोगी अर्थात् एकराति भर नहीं सेवन किया केवल दो घटिकासात्र संगम किया हो तिसके लिये अश्रोक्त यमादिस्मृतियों का वचन देखो=यथाह यमः=चांडालपुल्कसानांतुभुत्कारात्वाचयो यितस कृच्छ्राव्दमाचरेत्तजानादज्ञानादैन्दवद्वयस=अर्थात्-चांडाल और पुल्कसजाति योंकी स्त्रीको जानते हुये पास जाइके या केवल भोगसात्र करिके एक वर्षभर कृच्छ्र व्रतमाथै परन्तु जो बिनाजाने पास गयाहो या केवल भोगसात्र कियाहो तो दोमहीना के दो चांद्रायण करै (व्यवस्थापर ध्यानकरौ कि चांडालियोंके पास जानामात्र या भोगमात्र दो बातें कहीं तिनमें केवल भोग तो मुहूर्त्त भरमें निपटिजाताहै इससे अधिक सेवन कृच्छ्र न कियाहो यह तात्पर्य है और पास जाना भोग के बिना भी बैठने आदि प्रकारोंसे प्रीति जोडना यह अनेकवारके अभ्यास द्वारा एकवारके संगम की बराबर अपवित्र करसक्ता है तिससे दोनोवात एकसी दरावर ठहिरौं इसीलिये दोनो पापका राकही प्रायश्चित्त कहा केवल ज्ञान और अज्ञानताके भेदसे दोतरहके व्रतकहे ॥०॥ ध्यानकरौ कि जिस अंत्यजा चांडाली के मध्ये यह व्यवस्था सब कही तिसके साथ दोमौ इकानिस मूलश्लोकमें (नखिभायांकुमारियुस्वयोजिष्वंत्यजामुच) भगिनी आदि और भी अनेक अस्या लिखी गईहैं तिसमें भगिनी आदिमें संगम करनेमें भी यही व्यवस्था समझलेनी=और इन व्यवस्थाके जहाँ जहाँ केवल सरशांतिक प्रायश्चित्त कहागया तहाँ तहाँ सर्वत्र अरिगर्भे तिसके जलजाना नमस्ति लेना० और इसका प्रयोगा अत्र कात्यायनका वचनहै कि=जत्र प्रयभगिन्यांचस्वसुतायांतयेवच स्रयायां समवेदेषांरि यनतिपातकस अनिजातकिगन्धेते प्रविशेयुर्हुताशनम्=अर्थात्-जननी

या भगिनी या निजबेटी या बेटाकी वध इनमें गमन करना अति पातक जानो सो इतने सब लोग जो अतिपातकी होजायँ वे अग्निमें प्रवेश करें (इस वचनके अनुसार भी यह विचार करना सूचितहै कि जननीके एकही बार गमन करनेसे अग्निमें गिरना और भसिनी आदि श्रेष्ठ स्त्रियोंको कईबार गमन करनेसे अग्निमें गिरना सिद्ध होताहै क्योंकि यह वार्त्ता पहिले कई स्थलोंपर निर्णय होचुकीहै कि सातगमन महा पातकहै और भगिनी आदिका संगम यह उषीका अतिदेश होने से अतिपातक है महापातक नहींहै तिससे दोनोकी तुल्यता एकसी बराबर होनी उचित नहींहै ॥ ० ॥ इसी व्यवस्थाके विचारमें यह भी ध्यान करना कि वृहत्समका एकवचन विशेष्य है यथा (चांडालींपुल्कसींस्लेच्छींस्त्रियांचभगिनींसखीम् सातापित्रोःस्वसारंचनिक्षिप्त्वां शरणागतास सातुलानींप्रव्रजितांस्वगोवांनृपयोषितस शिष्यभार्यांगुरोभार्यांगत्वाचां द्रायसांचरेत्) अर्थात्—चंडाली • पुल्कसी • स्लेच्छनी • पुत्रवध • भगिनी • सखीसहचरी वह कि जिस स्त्रीको जिस पुरुषके साथ एकसी अवस्था होने के हेतु से या औरही किसी कारणा या बिना कारणा भी प्रायश रहिना फिरना होताहो और मित्रकी पत्नी भी सखी होतीहै • साताकी बहिन • पिता की बहिन • निक्षिप्ता जो किसी भयादिक सन्देहसे धरोहरिके तौर सौंपीहुई अपने यहाँ रहितीहो • शरणागता जो देशके उपद्रव आदि कारणासे कुछ दिनके लिये अपनी रक्षा चाहिकर शरणामें आ टिकीहो • मामी • प्रव्रजिता संन्यासिनि आदि • स्वगोवा अपने गोव भर की कोई स्त्री हो अर्थात् तीन पीढी या सातशाख भीतर जहांतक परस्पर एकही पुरुषका कूल मानाजाताहो परंतु उसको स्वगोवा न समझनी कि जैसे एकही ऋषि गर्ग भारद्वाज आदि गोववाले कहीं दूर बसतेहों तिनकी स्त्रियोंका विचार पर स्त्री संगसके प्रकरणमें आवैगा • राजा या ग्रामके ठाकुरकी भार्या • शिष्यकी भार्या • गुरुकी भार्या यहांपर गुरुशब्दसे आचार्य हीको समझना किन्तु पितानहीं • इन स्त्रियोंके पास जाइके चांद्रायणा व्रतकरै जो एक महीनामें पूरा होताहै—और एक अंगिराका यह वचनहै कि (पतितान्यस्त्रियो गत्वाभुक्त्वाचप्रतिगृह्यच सासोषवासंक्षुर्वीतचांद्रायणानयापिवा) अर्थात्—पतित स्त्री जो किसी महापातक या पातकसे पतित होचुकीहो अथवा पतित जानोंकी स्त्रियां और अत्य चंडाल आदि जातोंकी स्त्रियों पास जाइके या उनके हाथ का कुछ खाइ के या उनको परिग्रहमे लेकर एक नहींने भर उपवास करै या चांद्रायणाकरै तत्रशुद्ध होय—सो यह अंगिरा और वृहत्समकी दोनो व्यवस्था गुस्तल्पके अतिदेशपर उतारी गईहै और इनमें लिखे प्रायश्चित्तोंको उक्त दशापर समझना कि पुरुष अपनी अजा-

नतासे भोग करनेपर उताहू होकर वीर्य सींचनेसे पहिले घूमि गया हो किन्तु पूरा भोग नहीं किया इसी तरह अंगिरा के वचन से परिग्रह में लेनेको समझि लेना कि विवाह फेरेंमात्र पूरा रीतिसे न होनेपायाहो तभी तक यह छोटा प्रायश्चित्त है—और भी संवत् का यह वचन है कि (भगिनींमातुराप्तांचस्वसारंचान्यमात्तजाम सतागत्वा स्त्रियोसोहातप्तकच्छुं समाचरेत्) अर्थात्—माताके उदरसे प्राप्त हुई सगी बहिन और विमाताके उदरसे हुई सौतेली बहिनको और इनसे पहिले जो स्त्रियां कहीं स्त्रियों के पास तक अज्ञान मोह से जाइ के तप्तकच्छु व्रत करै—सो यह प्रायश्चित्तभी गुरु तल्प के अतिदेश सध्वे ऐसी दशा पर समझना कि बिना जाने और बिना चाहे अज्ञानमोहसे संगम करने पर उताहू होकर वीर्य सींचनेसे पहिले ज्ञान होजानेमें लौटि गया हो क्योंकि इन सभी वचनोंमें पास जानामात्र कहाहै पूरा भोग नहीं कहा ॥ ० ॥ कदाचिद्येही सब स्त्रियां कि जिनके भोग मध्ये ऊपर से गुरुतल्प का अतिदेश उतारते चलेआते हैं उनमें जो कोई सी अत्यन्त व्यभिचारिणी हों तिनको पूरी रीति से भोगने मध्ये वही दोनों प्रायश्चित्त होंगे जो अभी ऊपर वीर्य सींचे बिना करने कहिचुकोसो इस क्रमसे क्रिये जायेंगे किजिसने उनमेंसे किसी व्यभिचारिणी को जानि वृत्ति काजना ने वीर्य सींचा हो सो चांद्रायण करै और जिसने अपनी रिशतेदारों को न जानिकार केवल व्यभिचारिणी समझते हुये वीर्य सींचाहो सो तप्त कच्छु करै तब शुद्ध होय=इनके सिवाय=उन स्त्रियों को भोगनेमें गुरुतल्प दोयनहीं है जो सामान्य सबलोगोंके भोग निमित्त सब देशोंमें कुछ वेष्या जन यातुर भागताती रामजनी आदि नामों से प्रसिद्ध होती हैं तिनको यद्यपि शुकने भोगाहो तोभी उनके भोगने से गुरुतल्प दोयी नहीं रहिर सक्ता है जैसा व्याघ्रपाद का यह वचन है कि (जार्युक्तपारदार्यचक्रान्यादृशरामैवच साधारणस्त्रियोनास्तिगुरुतल्पत्वमेवच) अर्थात्—नष्ट नर्तक वेडिनी आदि जिन जातों में यह रीति प्रसिद्ध है कि अपनी स्त्रियां गौर वेदियां पण्ये पुत्रियों को बिनाइके या उनके मन्मुख नचाइके जीविका करते हो तिनको स्त्रियों से संजन करना पर स्त्री साम नही है तथैव उनकी कुमारियों से संगम या किसी प्रकारकी छेड छेड करना कन्या दूयताके अपराध में गिनती नहीं अथवा साधारण स्त्रियां जो रामजनी भागताइन आदि नामों से सामान्य सब लोगों के भोग निमित्त से सब देशों में अवश्य कुछ होती हैं तिनका संगम गुरुतल्प दोय नहीं गिनत गुरुतल्प के अतिदेश नहीं गिनती नहीं चाहै उनको गुरु पहिले भोगिचुकाहो या नही रीति दशा में यह नियम है ॥ इसी प्रकार और भी स्मृतियों के वचन प्राय-

प्रिचत्त की व्यवस्था वाले मिलें जिनसे ऊँच नीच का अन्तर देखि परै तौ उनकी भी व्यवस्था ऊँचे नीचे विषय भेदसे कल्पना करनी चाहिये कि जिससे कुछ विरोध न रहे • क्योंकि बहुधा बचनों को ग्रन्थ बहि जाने के सन्देह से यहाँपर नहीं लिखा तौ इस न लिखनेसे भी जो बचन कहीं देखि परै तिनको निरर्थक न समझिलेना ॥ २६० ॥

(इति गुरुत्तल्पप्रायश्चित्तप्रकरणां)

—*—

इस प्रकरणा में अगम्यागमन मात्र केवल एक विषय होनेके हेतुसे परिच्छेद भी सकही रहा अब अगिले सैती षके परिच्छेदमें संसर्ग दोषके प्रायश्चित्त कहे जायँगे ॥

अथ पूर्वोक्त महापातकिनां सर्वसंसर्गज महापातकस्य प्रायश्चित्त प्रदर्शकोऽयं परिच्छेदः सप्तत्रिंशः ३७

—*—

इस परिच्छेदमें संसर्गी पुरुष के प्रायश्चित्त कहे जायँगे संसर्गी यद्यपि पाँचमा महापातकी होनेसे सकही माना जाता है तथापि यह चारप्रकार का होता है क्योंकि ब्रह्महा • मद्यप • सुवर्गास्तेयी • गुरुदारगाभी • इनचार महापातकियों में जिसका संसर्ग उसने किया ही ॥

(संसर्गेऽतिदेशः)

एभिस्तुसंवसेद्योवैवत्सरंतोपितत्समः ॥ २६१

पूर्वार्द्धश्लोकः

अर्थः—इन ऋके जो वर्षभर सम्यक् वसे सो भी उसके समान है=अर्थात्—येही जो ब्रह्महत्यारे आदि ४ महापातकी कहेगये इनके साथ जो कोई एकवर्ष मात्र अच्छी तरह वसे किन्तु इन चारोंमें जिस कितनी के पास वसे या साथ रहिकर किसी तरह का बर्तावा आचरणा करै सो उसीके समान टहिरै अर्थात् उसी के निमित्त में लिखे हुये प्रायश्चित्तको करै यह अतिदेश उतारा गया इही अतिदेशके प्रयोजनसे उसके समान होना शूलश्लोकमें कहा (किन्तु पातकारवके अतिदेश निमित्त नहीं क्योंकि

पातकत्वका अतिदेश(यश्चतैःसहस्रंसेत)यह दोसौ सत्ताइस २२७ मूलप्रलोकमें चौथे पादमें कहिचुके तिससे यहां केवल प्रायश्चित्तका अतिदेश उतारनेको उसके समान कहागया) और भी यह विशेषताहै कि यद्यपि अतिदेश उतारागया तिससे चौथाई कम करिके प्रायश्चित्त होग्य या तौभी कम न करना चाहिये किन्तु पूराही बारह वर्ष आदि जो अर्वाधि मुख्य पापीको नियत हुईहो सो इसको भी करायाजाय क्यों कि यह समर्ग पुरुषभी साक्षात् महापातकी कहागया है दोसौ सत्ताइस मूलप्रलोक में देखो कि पांचांका बराबर दर्जा ठहर चुका—परन्तु—इतना अन्तर है कि महापातकियोंके समान प्राण हानि वाले प्रायश्चित्त की आज्ञा इसको नहीं है यह आगे वर्णन होगा तहां समझिलेना अधिकोक्ति में ॥ २६१ ॥

२६१ अधिकोक्तिः—इसी पूर्वार्द्ध मूलप्रलोकमें अपि शब्द जो आया तिससे यह तात्पर्य है कि जैसे इन महापातकियों का संसर्ग उनके समान कहा तैसे और भी अतिपातकी और पातकी और उपपातकी आदि जो जो पतित होते हैं तिनमें से जिस किसी के साथ कोई संसर्ग करे सो उसी के समान ठहरै और उसी के समान प्रायश्चित्त करे=इसीलिये मनुने बड़े छोटे सभी पापों के प्रायश्चित्त कहिकार पीछे से यह वचन कहा है (योयेनपतितेनैयांसंसर्गयातिमानवः सतस्यैवव्रतंकुर्यात्संसर्गविशुद्धये) अर्थात् इन सभी प्रकार के पतितों में जिसकिसी के साथ जो कोई संसर्ग में जाता है वह उसीके समान होता है तिससे उसका संसर्ग दोग्य मिटाने को उसी का व्रत करै=विष्णु ने भी सामान्य भाव से उपपातकी आदि पापीमात्र के संसर्ग में उन्हीं का प्रायश्चित्त भजना दर्शाया है कि (पापात्मनायेनसहयःसंसृज्यते सतस्यैवव्रतंकुर्यात्) जिस पापी के साथ संसर्ग जो करे सो उसी का व्रत करै=इसी लिये मनुने सामान्य पापी मात्र का निषेध किया है कि (एतस्त्रिभिरनिराकारैर्नाथैर्कांचि त्समाचरेत्) किसी भी एतस्त्री के साथ कोईसा व्यवहार न करै कि जबतक उसका निर्णय और शुद्ध न होजाय=तयैव एतस्त्री को भी यह शिक्षा दईहै कि (नसंसर्गभजेत्सद्भिःप्रायश्चित्तैःकृतेनति) प्रायश्चित्त किये बिना शुद्ध लोगों से अपना संसर्ग न करे ॥ ० ॥ पतित के संसर्ग से यह बारह वर्ष आदि का प्रायश्चित्त जो करना ठहिरा हो ज्ञानि व्यक्ति के संसर्ग करने पर आछट है जैसा देवल का वचन है कि=पतितेनम रोयित्वाज्ञानवत्तरंनरः तिष्ठितस्तेनमोऽब्दात्स्वयंचपतितोभवेत्=अर्थात्—पतित को जानने हुये उसके साथ एक वर्ष बिना हुआ वासकर मनुष्य वर्ष पूरा होजाने बादि यावही रहित होवे ॥ अयाज्ञानकृत संसर्ग प्रायश्चित्त ॥ जिसने बिना जाने

अज्ञानतामें संसर्ग क्रियाहो तिसकेलिये वशिष्ठकाकहा प्रायश्चित्तहै=यथा=पतितसंयोगेतुब्राह्मणो न वेदाध्यापनेनयौनेनवा स्त्रौवेरावायास्तेभ्यःसकाशान्मात्राउपलब्धा स्तासांपरित्यागस्तैश्चनसंवसेदुदीचींदिशंगत्वाऽनश्नन्संहिताऽध्ययनमधीयानःपतोभ वतीतिविज्ञायते=अर्थात्-पतित के संयोग में विद्वान् ब्राह्मणापुरोहित आदिने जो कुछ मात्रायें दक्षिणारोक आदि पतितों के विवाह आदि कर्म कराइ के या वेद पढाने आदि पूजा पाठसे या होम यज्ञ कराने आदि से पाई हों तिनका परित्याग अर्थात् भूखे दुखे को देदेवै याकिसी तडाग मंदिर आदि की मरम्मतमें समर्पणाकरै और उनके साथ निवास आदि कर्मोंके संबंध न राखै और उत्तर दिशामें पवित्रधरती पर जाइके भोजन का त्याग कियेहुये वेदकी संहिता का पाठ यथा विधि से करता हुआ पवित्र होजाता है यह जाना गया (यद्यपि इसमें कुछ अवधि नहीं कही गई कि भोजनका त्याग कितने दिनकरै तथापि यह सिद्धान्त पाया जाताहै कि जितने दिनमें संहिताका एकही पाठ पूरा होसके वही अवधि जानों क्योंकि पाठकी अनेक आवृत्ति करना नहींकहा ॥०॥ संसर्गिणांसंसर्गिणश्च-मुख्य महा पातकियोंके संसर्ग से पूरा महापातक संसर्गी को होताहै यह निर्णय किया गया परन्तु निर्णय वाले वचनोंका यह तात्पर्य नहीं है संसर्गी के संसर्गी तीसरे को भी महापातकलगे इसी से यह नियम है कि संसर्गी से जिन लोगों का संसर्ग अर्थात् हेल मेल होजाय तिनको द्विजातियों वाले कर्म धर्म की हानि नहीं पहुँचती है अर्थात् जातिसे गिरि जाना आदि जैसा मुख्योंके संसर्गी को होताहै तैसा संसर्गी का संसर्गी तीसरा पुत्र्य जाती धर्मसे नहीं गिरायाजाता है तौभी कुछ प्रायश्चित्त इसको भी अवश्य लगताहै (और इसमें यह तर्कना या शंका न दाहिनी चाहिये कि जिसको जाति से गिराना नहीं है तिसको प्रायश्चित्त क्यों लगता है) क्योंकि ऊपर जो मनुका वचनलिखा गया कि सनस्त्री अर्थात् पापी मात्र किसी के साथ कोई व्यवहार न करै जत्रतक उनके निर्णय से प्रायश्चित्त होकर शुद्ध न होजाय•सो इस वचन में सभी पापी मात्र के निषेध के द्वारा पाँचवें महापातकी संसर्गी का भी संसर्ग हेलमेल करना नियिद्ध ठाहर चुका तिससे उसका हेलमेल करनेवाला यद्यपि जाति से नहीं गिराया जाय तौभी प्रायश्चित्त करना टीकही सूचित हुआ है-परन्तु इस तीसरे को पूरा प्रायश्चित्त नहीं किन्तु चौथाई कम करिके तीनपाद होना चाहिये जैना यह व्यासजी का वचन है कि=योयेनसंवसेदुपैसोपितहसनतामियात् पादहीनंचरेत्सोपितस्यतस्य प्रतीद्वजः=अर्थात्-एकवर्य जो कोईद्विजाती जिसके साथ हेलमेल करै सोभी तिनको

ब्रह्मचरी को पावै और वह उसी वाला व्रत चौथाई कम करै ॥ ० ॥ जैसा यह दूसरे
 संसर्गी को कहा गया तैसा इसके हेलमेल से तीसरे को फिर उसके हेलमेल से चौथे
 को भी यह नियम है कि जानि बुझि इच्छा से हेल मेल करने वाले तीसरे को दो
 पाद कम करिके दोहीपाद अर्थात् आधा प्रायश्चित्त कराना चाहिये और चौथेको
 जानि बुझि हेल मेल करने के दोय में तीनि पाद कमकरिके सिर्फ एकही चौथाई
 करना चाहिये=इस में यह शंका है कि एक संसर्गी को पूरा व्रत करना कहा कि
 जैसा बारहवर्षका ब्रह्महत्यारेआदिको कहिचुकेथे फिर दूसरे संसर्गीको पौनाबताया
 और तीसरे को आधा और चौथे को चौथाई इसका क्या कारणाहै कि एकसंसर्गीपर
 मुख्य पातक्रियां से कुछभी रिश्रायत न करीगई•सुनों २२७ मूलप्रलोक देखौ उसको
 भी पांचवां महापातकी कहिचुके तिससे उन्हीं चारों की बराबर प्रायश्चित्त उस पर
 चाहिये और रिश्रायत उसपर इतनीबडी करीगई कि साक्षात् ब्रह्महत्यारेआदिचारों
 को इच्छा सहित पाप करने मध्ये मरणांतिक प्रायश्चित्त कहा गया था सो इसको
 नहींहै अर्थात् इच्छासहित उनका हेलमेल करनेमें उन्हींकी बराबर व्रतकरना इसको
 कहागया जो उनको इच्छा बिना पाप होजानेपर बारहवर्षका व्रत ठहिरा था क्योंकि
 (सतम्यैवव्रतकुर्यात्) इन वचन के तात्पर्यमें उसके व्रतही का अतिदेश दियागयाहै
 मरजानेका नहीं क्योंकि मरजाना व्रत शब्दके उच्चारणमें नहींहै• तिससे यह व्यवस्था
 आकर गिह हुई कि जिनने कामनासे चाहिकर हेलमेल कियाहो तिसके लिये बा-
 रह वर्षकी व्रतचर्या प्रायश्चित्त है जिनने बिना इच्छा के संसर्ग किया हो तिसको
 बारह वा आधा छेवर्ष व्रत करना चाहिये—इसी प्रकार दूसरे तीसरे आदि संसर्गियों
 को इच्छा सहितके मुझानिलेपर एकएक चौथाई कमहोती चलीजाय और अनिच्छा
 के हेलमेल मध्ये उनमें आधा समझि लेना ॥ ० ॥ अथसंसर्गत्वक्षणं—संसर्ग अर्थात्
 हेलमेलका चर्चा जो अब तक किया गया वह संसर्ग भी कर्मोंके निबंध भेदसे अनेक
 तरह का होनाहै जैसा बृहद्बृहस्पतिने कहाहै कि=सकशय्या १२०मनं२पंक्ति ३भां६४
 प तद्यत्पनिश्रयात् आसनादध्यापने ऽयोनिऽस्तयाचसहभोजनम् ६ नववासंक्राःप्रो-
 क्ती नवविधोऽननेऽसह=वेदतोषि=मनापरस्पर्शनिश्चास सहयानासनाशनात्र यात्रना
 वनाशनाशौचानि संसर्गत्वेनृणात्=अर्थात्—सकही खाटपर दोनोका पीटना १ तथा
 सकशय्यापर पीटना २ सकशं नै भोजन करना आदि इसकही साथ चामनकपडे
 धारि सिंहासन बनना ३ सक मय निगाकर अन्न पकाना ५ पावाइ परोहिताइ के
 पीने ६ अथ अर्थात् तर्ज वरणा ६ वेद विद्या पदाना ७ योनि का संबन्ध विवाह

करना ठ एकथाली वा एक चौकमें साथ भोजन करना ६ अही नौ भांति का संकर अर्थात् ससर्ग हेतुमेल कहा गया है कि अधमों के साथ न करना चाहिये यह वृहस्पतिकी सबसे बड़ी स्मृतिका नियम है = देवलने भी कहा है कि = उंलाप अर्थात् परस्पर पासही भिडिके प्रेस आदिकी वातचीत करने से और स्पर्श उसको छूने से और उसकी आसकी वायु नाफ लगानेसे और एक साथ आवा करने एक सवारी पर बैठने से और एक साथ आसन खाट आदिपर बैठने सोनेसे और एक साथ भोजन करने से और यजन आदि कर्म कराने तथा वेद विद्या पढानेसे और यौन संबंध कन्यादेने या लेनेसे इतनी बातोंसे अनुष्योंपर पाप चढ़िजाता है (इन वचनों में जैसा विवाह यौन संबंधका दोष बोना और से दर्शाया गया कि उसको कन्या देना या उसी से आप लेना तैसा सभी बातों का नियम समझि लेना कि विद्या पढाना या उसीसे पढना एवं यजन उसको कराना या उसके द्वारा आप करना इसीतरह और बातोंको समझना) अब यह बात जाननी चाहिये कि इनमेंसे कौन सा हेतुमेल कितने दिनमें पतितकर देता है तिसके लिये वृहद्विष्णु आदिके वचन आगे देखो ॥ ० ॥ वृहद्विष्णुः = संवत्सरेण पतितेन सहाचरने कयान भोजनासन शयनेर्यौ न सौवमुख्यैस्तु संबंधैः सद्यसवपतति = अर्थात् - एकसवारी • एकपांतिमें भोजन • एकही आसनपर • एकही शयन पलंग आदि पर • पतितके साथ इन चारों प्रकारसे आचरणा करता हुआ पुरुष एकदर्य में पतित होता है और यौनिके संबंध से • सुवाके संबंध से • मुखके संबंध से • तत्काल पतित हो जाता है (यहां यौनि का संबंध कन्या देना या लेना तथा सुत्रे का संबंध होम यज्ञ आदि उसको करवाना या उसके द्वारा आप करना तथा मुख्य संबंध जो मुख से उत्पन्न होय किन्तु वेद विद्याका पढाना या उससे आप पढना भी कहाता है) और इसी श्लोकमें जो एक भोजन कहा सो केवल एक पांति में बैठि भोजन करने मात्र को सप्रभना किन्तु एकही चौके वा एक थालीमें साथ भोजन सत समभना क्योंकि एक दर्य से पतित होना कहा गया तिससे और साथ भोजन करने वाला तत्काल पतित होजाता है तिससे भी • वरिष्क उसी समय तत्काल पतन होजाने नध्ये देवल का यह वचन प्रसासा है कि (आजतं यौनि संबंधः स्वाध्यायः सहभोजनश्च दार्वानमद्यः पतत्येव पतितेन न रणायः) अर्थात् - याजन कर्म जो पहिले सुत्रेके नाम से कृदि चुके और वही पहिला कहा यौनिका संबंध और स्वाध्याय पटना पढाना और एकनाय भोजन करना पतितके साथ इनलामोंका संबंध जोडि के दुरन्तही पतित होजाता किन्तु जातिसे गिज्ञाता है इसमें कुछ संदेह नहीं और यह भी नहीं कि ये चारो

काम इकट्ठे करै नोइ पतित होवै किन्तु इनमेंसे किसी एकही संबंधके जोड़तेसारे जातिमे छुट्टिजाताहै—इस बातका प्रमारा भी सुमन्तुका यह वचन है कि (यःपतितैः सह यौनमुखमौघानां संबधानामन्यतमसंबंधं कुर्यात् तस्याप्येतदेव प्रायश्चित्तमिति) जो कोई पतितोंके साथ • यौनि • मुख • सुवे • के संबंधोंमें किसी एक संबंधको जोड़े तिसको भी यही प्रायश्चित्त है जो मुख्य पतितोंके लिये हम कह चुके—परन्तु पहिली चार बातें एक सवारीआदि जिनसे एकवर्ष भरतक हेलमेल होनेमें पतन होना कहाया वो सबकीसब चारोंसे संबंध जोड़नेसेही पतन होताहै जुदीसकसे नहीं • क्योंकि उनके लिये ऊपा वृहद्विष्णु का वचन देखौ तहां (सकयानभोजना नशयनैः) यह इतरेतर वृक्त निर्देश किया गया था तिससे किसी एक दोके अनुसार संसर्गी अपने जाती धर्मोंसे नहीं गिर सकताहै • तथापि एकही दोके सेवनसे दोषका हेतुखडा होता है प्रमारा इसमें पराशर का वचन आगे देखौ (आसनाच्छयनाद्यानात्सभायात्सह भोजनात् सक्रमतिहिपापानितैः त्रिविंदुरिवांभसि) अर्थात् पराशर ने इस वचन में जुदे जुदे एकही एक से पापका हेतु जाहिर कियाहै कि आसन बैठने से या खाट आदिपर साथ सोने से या सवारी पर साथ बैठने से या वार्तालाप से या समीप बैठ भोजन करने से पाप इततरह चढि आते हैं कि जैसे जल में तेल का बंद फैल जाता है—इनके सिवाय (संलाप स्पर्श निःश्याम) इत्यादि देवल के वचन में कहेहुये येही तीनों हेलमेल अर्थात् पास भिड़िके विशेष वार्तालाप करना और देहसे देह भिड़ाना और मुहकी वाफ अपने ऊपर लगानेदेना यह तीनों बात बहुत छोटीहैं तिससे इनमें किसी एकही के होने साथ से संसर्गी का जाति से छूटना आदि पतन कभी नहीं होता न इनका कोई जुदा नियम है क्योंकि ये तीनों बात अधिक हेल मेल से उन्हीं चारों के साथ से उत्पन्न होती हैं कि जिनसे एक वर्षभरके हेल मेल में पातित्य होनाकहि चुके यह मनभ लेना • परन्तु पापक्षपी दोष साथ इनसे भी होता है कि जैसा पहिले देवल के वचन में पाप का चढिआना कहा गया था ॥ ० ॥ तात्पर्य निर्णयः—इस व्यवस्था से यह तात्पर्य दहिरा कि जिनसे (संलाप • स्पर्श • निःश्याम) इन तीनों के बिना सवारी आदि चारों भांति के संसर्ग एक वर्ष भरि किये हों तिसको पूर्वोक्त बारह वर्षका प्रायश्चित्त पांचवां भाग छोड़िके करना चाहिये • और जिनसे ये तीनों बात नो उनके साथ अधिक हेल मेल से करी हों तिसको एक वर्ष चीति जाने पर बारह वर्ष का पूरा प्रायश्चित्त करना चाहिये • इस रीतिसे यौगिद्या का यही मूल श्लोक (योःसंस्पर्शसे देवैवत्सर्गोऽपितत्समः) कि इनके साथ जो कोई एक वर्ष

अच्छी तरह वैसे जोभी उसके समान पातकी ठहरे और उसीका प्रायश्चित्त करै—
यहभी उन्होंने सवारी आदि चारिही बातों के हेतुमेल पर ठीक रहा जिनमें एक वर्ष
से पतित होना कहि चुके अर्थात् जिनसे तत्काल पतित होजाना कहा तिनके
मध्ये योगीश्वर का मूल प्रलोक नहीं है• इसी आशय पर मनुका यह वचन है कि
(संवत्सरेणा पततिपतितेनसहाचरन् याजनाध्यापनाद्यौनान्ततुयानासनाशनात्) अक्ष-
रार्थ इसका यही है कि एक वर्ष से गिरजाता है गिरे हुये के साथ आचरणा करते
हुये याजन अध्यापन से यौन से नहीं सवारी आसन भोजन से—प्रत्यक्षतौ व्याकरणा
काव्य दोनों मार्ग से यह अर्थ अनमेल है इसी से भाया सें भी ठीक नहीं समझि
परा कि यह क्या कहा और इसी लिये सिताक्षराकार ने इस वचन के ऊपर बहुत
कुछ अर्थवाद खड़ा किया है कि जिसका लिखना कुछ यहां पर आवश्यक
नहीं बल्कि निरर्थ जानि के छोड़ि दिया गया तथापि केवल प्रयोजन की बात
लेनी आवश्यक है तिसके लिये व्यवहित योजना का संबन्ध मानि लेना कि (पतित
के साथ सवारी• बैठका और बैठका के उपलक्षणा से खाद आदि शय्या• और एक
पंक्ति में भोजन इन चारों के हेतु से आचरणा करते हुये एक संवत् की अवधि से
पतित होता है परन्तु होम यज्ञ और पढना पढाना और योनि के संबन्ध विवाह से
नहीं एक संवत् में पतित होता है अर्थात् इनसे तुरन्तही पतित होता है जैसे ऊपरले
अनेक वचनों से अर्थ सिद्ध होचुका तैसा इसमें भी वही तात्पर्य है कुछ और नहीं
क्योंकि इसमें ढँका हुआ तात्पर्य है उन वचनों में खुला हुआ सिर्फ इतना भेद है
अन्यथा धर्म शास्त्रमें एक वचन के लिये अनेक वचनों की स्पष्ट व्यवस्था नहीं
उलटी चल सकती है ॥ ० ॥ सिद्धांतार्थ निरर्थायः—जबकि यह व्यवस्था ठीक हुईकि
विवाहभोजन आदि चारवातोंसे तुरन्त पतित होजाताहै और सवारी में बैठनेआदि
चार वातों से निरन्तर एक वर्ष भर अभ्यास करने में पतित होता है तो फिर इसके
लिये यह बात भी आवश्यक है कि एकवर्ष के पूरे ३६० तीनसौसाठि दिनकी गिनती
करनी चाहिये इसका यह तात्पर्यहै कि जिसने कोई महीने संनर्ग करिके बीचमें कहीं
चलेजाने आदि कारणोंसे छोड़िदिया फिर कभी आकर उसीका संनर्गकिया तिमका
हिसाव जोड़ना चाहिये जोड़ने से भी ३६० तीनसौ साठि दिवस जिसके पूरे नहीं तो
फिर पतित वाला पूरा प्रायश्चित्त भी उसको नहीं चाहिये किन्तु औरही रीति से
प्रायश्चित्त कराना चाहिये कि जैसा आगे पराशर के वचनों से पाया जाय=यथाह
पराशरः=संनर्गमाचरन्विप्रःपतितदिष्वकामतः पंचाहंवादगृहंवाहादगाहमयापिवा

नानार्द्धमानगेकं वा सासवयनयापिवा अर्द्धमेकभद्रवा भवेदूर्ध्वं तु तत्समः (अत्र प्रा-
 यश्चिनभेदाः) द्विरात्रं प्रथमे पक्षे द्वितीये कृच्छ्रमाचरन् चरेत् ५१ तपनं कृच्छ्रं द्वितीये पक्षे सवतु
 चतुर्थे दशमं च त्रयात्पराकृ. पंचमेततः अष्टे चांद्रायणां क्रियात्सप्तनेत्रैर्भद्रवदयम् अष्टमे च तथा
 पक्षे यगमाना कृच्छ्रनाचरेत् = अर्थात्—ब्राह्मणा किंसा पतित आदिने साथविना चाहे
 यदि भूलदेसं सर्गको आचरे यदि पांच वा दशदिन या बारहदिन या एकपाख वा एक
 महीना वा तीनमहीने वा एककृमाही वा परासकवर्ष तिसकोउपरान्त उसीपतितकेसमा-
 नप्राप होजाताहै (इनकेजुदे प्रायश्चित्तोंकेभेदहैं कि) जिसका प्रथमपाखवाराके भीत
 मसर्ग हो सो तीनदिन व्रतादि प्रायश्चित्त करै • जिसका संसर्ग दूसरे पाखवारामें जा
 पहुँचाहो सो कृच्छ्रव्रत करै • जिसका तीसरेपाखमें पहुँचि गया हो वह सांतपन कृच्छ्र
 करै • चौथे पाखमें संसर्ग पहुँचाहो सो दशरात्र प्रायश्चित्त करै • पांचवें पाख में संसर्ग
 पहुँचाहो तो पराकृ नामका प्रायश्चित्तकरै छठेपाखतक पहुँचाहो तो एकमहीनाचां
 द्रायणा करै • सातवें पाख तक संसर्ग हुआ हो तो दो महीना चांद्रायणा का आठवें
 पक्षतक संसर्गभयाहो तो छेमहीनेभर कृच्छ्र व्रतकरै ॥ अर्थात्कामकृतसंसर्गप्रायश्चित्त
 जिसनेजानिपूरिक्त काननासंतर्गक्रियाहो तिसकोसुमंतुने प्रायश्चित्त विशेषकरहैं—य-
 थारसुमंतुः—पंचारेतुवरेत्कृच्छ्रं दशाहेतुत्कृच्छ्रकथ पराकृस्त्वर्द्धमासेस्यान्मासेचांद्रा-
 यणां वरेत् जानवयेप्रकृवीत्कृच्छ्रं चांद्रायणांतरम् यगमासिकेतुसंभर्गेकृच्छ्रं त्ववर्द्ध
 नाचरेत् संसर्गत्वद्विकेतुयदिद्विचांद्रायणांतरः = अर्थात्—पांचदिनके संसर्ग में कृच्छ्र
 व्रत साथै और दशदिन के संसर्ग में तप्त कृच्छ्र करै एक पाखभर संसर्ग क्रिया हो तो
 पराकृ व्रत करै

संसर्ग करनेसे पातित्य लगाना कहा है=यथाह वृहस्पतिः=वराणांसिकेतुसंसर्गयाजना
 ध्यापनादिना सकृत्वासनशय्याभिः प्रायश्चित्तार्द्धमाचरेत्=अर्थात्—छे महीनेके याजन
 अध्यापन आदि चारों में किसी एक संसर्ग के होने में तथा एकही बैठका सोउना
 आदि से भी आधा प्रायश्चित्त करै अर्थात् जो पातितके बारहवर्ष हों तो संसर्ग को
 छे वर्ष चाहिये—सो इस नियम को ऐसी दशा पर जोड़ना चाहिये कि जहां संसर्ग
 करनेकी इच्छा तो नहीं थी परन्तु अत्यन्त आपत्ति आनि परनेमें घरही के पातकी
 साथ भोजनका संसर्ग करना परा या केवल पंच सहायज्ञ आदि में यजन का संसर्ग
 या पतित अपना बेटा भतीजा आदि अंगही गिना जाता हो तिसका पढ़ाना या
 योनिका संबंध निज पतित की बेटी बहिन आदि के सिवाय उसके कुल में किसी
 गैर कन्या वा गैर लडके से किया गयाहो तहां तत्काल के सिवाय छः महीनातक
 संसर्ग बना रहने से पातित्य और उसके लिये आधाही छः वर्ष का प्रायश्चित्त क-
 राना ठीक होगा और शेष बातें एक सवारी आदि चारों कि जिनका पहिले एक
 वर्षभर पूरे से अधिक संसर्ग रहने मध्ये बारहवर्ष का प्रायश्चित्त कहा गया उन्हीं
 को इस वचन में आधा कहा सो यह स्वतः ठीक ठीक है कि छः महीना के संसर्ग
 से आधा रहिगया—यहां तक महापातकियों के संसर्ग को प्रायश्चित्त वर्णान हो
 चुके ॥ अथातिपातक्यादीनां संसर्गप्रायश्चित्तविचारः—इसीपूर्वोक्तडौलसार्ग
 का सहारा लेकर उनसे नीचे अति पातकी आदिका संसर्ग देखनाचाहिये कि जहां
 कहीं बेटी या बहिन या पुत्रकी बहू गसन करने वाले अति पातकी का संसर्ग जि-
 सने कियाहो तहां चाहिके संसर्ग करनेवालेको नौवर्ष का प्रायश्चित्त और विना
 चाहे संसर्ग करने वाले को उससे आधा साढे चार वर्ष का करना चाहिये=एवं=
 जहां मित्र या चचा की दारा आदि पूर्वोक्त स्त्रियाँ जिन्से पातकमात्र होता कहा
 गयाथा तिनको गसन करने वाले पातकी पुत्र्य का संसर्ग जिसने किया हो तहां
 कामना से संसर्ग करैया को छः वर्ष और विना कामना के संसर्ग वाले को तीनवर्ष
 का प्रायश्चित्त करना चाहिये=इसी प्रकार=जहां उपपातकी आदि छोटे पापियों
 का संसर्ग जिसने किया हो तहां कामना से संसर्ग करने वाले को उन्हीं का प्राय-
 श्चित्त तीन महीना और कामना विना संसर्ग वाले को उससे आधा डेढ महीना व्रत
 करना चाहिये ॥ स्त्रीणामपिसंसर्गप्रायश्चित्तं—पुरुषोंकी तरह स्त्रियोंको भी महा-
 पातकी आदि के संसर्ग से पातित्य बराबर होता है=यथाह शौनकः=पुत्र्यभ्ययानि
 पतनानिमित्तानिस्त्रीणामपितान्येव ब्राह्मणाहीनवरासेवायामत्रिकंपततीति=अर्थात्-

सासाईसासमेकंवासासत्रयमथापिवा अर्द्धाह्निकेकामद्रवाभवेदूर्ध्वंलुत्तसमः (अत्रप्रा-
यश्चिनभेदाः) त्रिरात्रंप्रथमेपक्षेद्वितीयेकृच्छ्रमाचरन् चरेत्सांतपन्नं कृच्छ्रं तृतीयेपक्षेएव
चतुर्थेदशरात्रंस्यात्पराकःपंचमेततःयस्येचांद्रायणांक्रूर्यात्सप्तनेत्रैर्नृवहयम अष्टमेचतथा
प्रक्षेत्रामासां कृच्छ्रमाचरेत्=अर्थात्—ब्राह्मणा किंसा पतितआदिके साथविना चाहे
यदि भूलमेसंसर्गकोआचरे यदि पांच वा दशादिन या बारहदिन या एकपाख वा एक
सहीना वा तीनसहीने वा एककृष्माही वा पराएकवर्ष तिसकेउपरान्त उभीपतितकेसमा-
नआप होजाताहै (इनकेजुटे प्रायश्चित्तोंकेभेदहैं कि) जिसका प्रथमपाखवाराके भीतर
संसर्ग हो सो तीनदिन व्रतादि प्रायश्चित्त करै। जिसका संसर्ग दूसरे पाखवारामें जा
पहुंचाहो सो कृच्छ्रव्रत करै। जिसका तीसरेपाखमें पहुँचि गया हो वह सांतपन कृच्छ्र
करै। चौथे पाखमें संसर्ग पहुँचाहो सो दशरात्र प्रायश्चित्त करै। पांचवें पाख में संसर्ग
पहुँचाहो तो पराक नामका प्रायश्चित्तकरै छठेपाखतक पहुँचाहो तो एकसहीनाचां
द्रायणा करै। सातवें पाख तक संसर्ग हुआ हो तो दो सहीना चांद्रायणा का आठवें
पक्षतक संसर्गभयाहो तो छेसहीनेभर कृच्छ्र व्रतकरै ॥ अत्रापिकासकृतसंसर्गप्रायश्चित्तं
जिसनेजानिबूझि कामनासेसंसर्गकियाहो तिसकोसुसंतुने प्रायश्चित्त विशेषकहेहैं=य-
थाहसुसंतुः=पंचाहेतुचरेत्कृच्छ्रं दशाहेतुत्कृच्छ्रकश्च पराकस्त्वर्द्धसासेस्यान्मासेचांद्रा-
यणांचरेत् सासत्रयेप्रकुर्वीतकृच्छ्रं चांद्रायणांतरस्य सरामासिकेतुसंसर्गकृच्छ्रं त्ववर्द्धि
माचरेत् संसर्गत्वर्द्धिकेकुर्याद्वर्द्धं चांद्रायणांतरः=अर्थात्—पांच दिनके संसर्ग में कृच्छ्र
व्रत साथ और दशादिन के संसर्ग में तप्त कृच्छ्र करै एक पाखभर संसर्ग किया हो तो
पराक व्रत करै एक सहीना भर संसर्ग किया हो तो चांद्रायणा करै तीन सहीना के
संसर्गवाला कृच्छ्रात्मक चांद्रायणा करै छे सहीना के संसर्ग में एक कृष्माहीभर कृच्छ्र
व्रतकरै एक वर्ष के भीतर संसर्गवाला अनुष्य एक वर्ष तक चांद्रायणा करै (इसमें
जो पूरे एक सालके संसर्गपर एकाही सालका प्रायश्चित्त कहागया तिसको कृष्माही
से ऊपर और बारह सासके भीतर वाले संसर्गोंपर समझना क्योंकि पूरे वर्षके पूरे वा
पूरेसे अधिक संसर्ग मध्ये मन्वादिक्त जह्यीशरोने बारहवर्ष कहेहैं जिसका वरान्त प-
हिले होचुका सो निरर्थक न रहिरे ॥ अत्रापिनियमांतर व्यवस्थासाधन—इष
व्यवस्थामें यह बात सिद्ध होचुकी है कि एक पाखमें पतितके साथ भिलके भोजन
करने या पतितकी लडकी वा लडकीसे विवाह संबध करने या होश यज्ञ आदि पा-
धार्इके कर्म करये कराने या पतितसे विद्याका संबंध पढ़ने पढानेसे तुल्यत पतित हो-
जाता है। तथापि इन्हीं चारो संसर्गोंके मध्ये एक वृहस्पति के वचन में कृष्माही भर

संसर्ग करनेसे पातित्य लगना कहा है=यथाह वृहस्पतिः=अरासासिकेतुसंसर्गोयाजना
 ध्यापनादिना एकत्रासनशय्याभिःप्रायश्चित्तार्द्धमाचरेत्=अर्थात्—छे महीनेके याजन
 अध्यापन आदि चारों में किसी एक संसर्ग के होने में तथा एकही बैठका सोउना
 आदि से भी आधा प्रायश्चित्त करे अर्थात् जो पतितके बारहवर्ष हों तौ संसर्ग को
 छे वर्ष चाहिये—सो इस नियम को ऐसी दशा पर जोड़ना चाहिये कि जहां संसर्ग
 करनेकी इच्छा तौ नहीं थी परन्तु अत्यन्त आपत्ति आनि परनेमें घरही के पातकी
 साथ भोजनका संसर्ग करना परा या केवल पंच महायज्ञ आदि में यजन का संसर्ग
 या पतित अपना बेटा भतीजा आदि अंगही गिना जाता हो तिसका पढाना या
 योनिका संबंध निज पतित की बेटो बहिन आदि के सिवाय उसके कुल में किसी
 गैर कन्या वा गैर लड़के से किया गयाहो तहां तत्काल के सिवाय छः महीनातक
 संसर्ग बना रहने से पातित्य और उसके लिये आधाही छः वर्ष का प्रायश्चित्त क-
 राना ठीक होगा और शेष बातें एक सवारी आदि चारों कि जिनका पहिले एक
 वर्षभर परे से अधिक संसर्ग रहने मध्ये बारहवर्ष का प्रायश्चित्त कहा गया उन्हीं
 को इस वचन में आधा कहा सो यह स्वतः ठीक ठीक है कि छः महीना के संसर्ग
 से आधा रहिगया—यहां तक महापातकियों के संसर्ग को प्रायश्चित्त वर्णन हो
 चुके ॥ अथातिपातक्यादीनां संसर्गप्रायश्चित्तविचारः—इसीपूर्वाक्तडौलमार्ग
 का सहारा लेकर उनसे नीचे अति पातकी आदिका संसर्ग देखनाचाहिये कि जहां
 कहीं बेटो या बहिन या पुत्रकी बहू गसन करने वाले अति पातकी का संसर्ग जि-
 सने कियाहो तहां चाहिके संसर्ग करनेवालेको नौवर्ष का प्रायश्चित्त और विना
 चाहे संसर्ग करने वाले को उससे आधा साठे चार वर्ष का करना चाहिये=एवं=
 जहां मित्र या चचा की दारा आदि पूर्वोक्त स्त्रियां जिससे पातकमात्र होता कहा
 गयाथा तिनको गसन करने वाले पातकी पुस्त्य का संसर्ग जिसने किया हो तहां
 कामना से संसर्ग करैया को छः वर्ष और विना कामना के संसर्ग वाले को तीनवर्ष
 का प्रायश्चित्त करना चाहिये=इसी प्रकार=जहां उपपातकी आदि छोटे पापियों
 का संसर्ग जिसने किया हो तहां कामना से संसर्ग करने वा ने को उन्हीं का प्राय-
 श्चित्त तीन महीना और कामना विना संसर्ग वाले को उससे आधा डेढ़ महीना व्रत
 करना चाहिये ॥ स्त्रीरामपिसंसर्गप्रायश्चित्तं—पुरुषोंकी तरह स्त्रियोंको भी महा-
 पातकी आदि के संसर्ग से पातित्य बराबर होता है=यथाह गौतमः=पुस्त्यभ्ययानि
 पतननिमित्तानिस्त्रीरामपितान्येव ब्राह्मणीहीनवरासिवायामधिकंपतताति=अर्थात्-

तु—जाति से गिरजाने के जो जो निमित्त पुरुष को होते हैं वही सब स्त्रियों को भी होते हैं और ब्राह्मणी होकर जो हीनवर्णों की सेवा करें सो पुरुषसे भी अधिक पतित होती है यह शौनक ने कहा—इस हेतुसे उनको भी महापातकी आदि पापियों में जिस किसी प्रकार के पापी साथ हेल मेल होजाय उसी पापी के लिये जो कुछ प्रायश्चित्त ठीक होय तिससे आधा करवाना चाहिये क्योंकि स्त्रियों को पुरुषों से आधाकरना कहिचुके हैं—इसी प्रकारबालक बूढ़े रोगियोंको भी समझौ कि जिसने कामनासे चाहिके संसर्ग क्रियाहो तिसको मुख्य पापीसे आधा और विना कामना के संसर्ग वाले को चौथाई करना चाहिये—तथा जो बालक विना जनेऊ का हो तिसको कामना के संसर्ग में चौथाई और विना कामना के संसर्ग में आठवां भाग प्रायश्चित्त चाहिये यह व्यवस्था का मार्ग है । ॥ २६१ ॥ यह पूर्वार्धकी अधिकोक्ति पूरीहुई अब दूसराअर्ध आगिले परिच्छेदमें शामिल होगा कि जिसमें पतितकी कन्या विवाह लेनेकी आज्ञा भी बिरली दशा मध्ये दीजायगी ॥ २६१ ॥

अथ पतितसंसर्ग प्रतिषेधात्प्रतिषिद्धस्य यौनसंबंधस्य प्रतिप्रसव निदर्शकस्य परिच्छेदः अष्टत्रिंशः ३८

—*—

इस परिच्छेद में पहिले निषेध का कुछ थोड़ासा प्रतिप्रसव दियाजायगा अर्थात् ऊपर के परिच्छेद में पतित की कन्या से विवाह करना भी निषेध किया गया था तिसके साथ विवाह बिरली दशामे करिलेना योग्य होता है उस बिरली दशा का स्वरूप कहा जायगा ॥ प्रतिप्रसव इसी का नाम है कि जो बात पहिले मने कारचुके हैं उसमें थोड़ीसी करने को भी आज्ञा दीजाय ॥

(यौननिषेधेप्रतिप्रसवः)

कन्यांसमुद्रहेदेषांसोपवासामकिंचनाम् २६१

अर्थः—इनकी कन्या को सोपवासा को अकिंचना को भलेही विवाह लेवै—अर्थात्—इन्हीं पूर्वोक्त पतितों की कन्या जो पतित होनेकी दशा से उत्पन्नहुई हो तिसको यदि इच्छा किसीकी हो तो बेखटके विवाह लेवै कुछ दोष नहीं है परंतु इस रीति से विवाहनी चाहिये कि निराहार उपवास करी हुई और अकिंचना कि

जिसके साथ कपड़े गड़िना आदि उसके बाप का कुछ न लिया जाय (और निगा-
हार उद्यवास का यह तात्पर्य है कि जितना पतित बाप आदिसे संसर्ग रहाहो उसके
अनुसार पंचगव्य आदि से संक्षेप अथाशक्ति प्रायश्चित्त करवाइके विवाहनी चा-
हिये) और विवाहि लेवै इस कथन का यह तात्पर्य है कि पतितके हाथ से कन्या
दान आदि कवाइके न लेवै क्योंकि उसको जाती धर्मोंका अधिकार नहींहै तिससे
आपही जिस कन्या ने पतितका संसर्ग छोडि के विवाहकी इच्छा करीहो तिसको
पतित के घर से उपरालू किसी देवस्थान आदि में शास्त्रोक्त मर्यादा से विवाहि
लेवै तो इस रीति से उस विशेष की शंका भी नहीं खडी होसकी है कि पहिले
परिच्छेद में पतितों की कन्यासे यौन संबन्ध का निषेध क्रियागया था फिर क्योंकर
उसी कन्या से विवाह करना कहा गया ॥ २६१ ॥

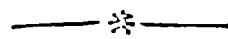
२६१ अधिकोक्तिः—जो व्यवस्था ऊपर कही गई तिसको वृद्ध हारीतने विशेष
व्यौरा से स्पष्ट करिके दर्शाया है—यथा=पतितस्यकुमारीश्ववस्त्रामहोरात्रमुपो-
यितांप्रातःशुक्लेनाहतेनवाससाच्छादितांनाहमेतेद्यांनममैतेइतित्रिरुच्चैरभिदधानांतोर्ये
स्वगृहेवोदहेत्=अर्थात्—पतित की कुमारी कन्या को विना वस्त्रों के एक दिन राति
उपास करी हुई को प्रातःकाल होतेसार नवीन शुक्ल वस्त्रकी धोवती पहिनाइ ओ-
डाइके उसकन्याकेमुखसेतीन बार ऊँचेशब्दसे ऐसाकहवाइके कि (आजसे न मैं इन
वस्त्रकी न ये सब धरवाले मेरे रहे) तिस पीछे कन्या लेजाइके किसी देवालय आदि
तीर्थ में या अपने घरपर यथा विधान से विवाह करै ॥ ० ॥ मूल प्रलोक में (सयां
कन्यांसमुद्वहेत्) यह कहा गया कि इनकी कन्या को चाहें विवाहि लेवै तिसका
यह तात्पर्य ठहिरा कि सिर्फ कन्या चाहें इन्हीं रीतों से विवाहि लेवै पान्तु पतित
के लडकोंको अपनी कन्या न देवै कि जो जो लडके अपने पतितपिता धाता आदि
में संसर्गी बनेरहे हों या पतित होनेकी दशा में उनके पतित वीर्य से उत्पन्न हुयेहों—
इसीलिये वसिष्ठने कहा है कि (पतितेजोत्पन्नःपतितोभवति अन्यवस्त्रियाः सादिपर
गामिनीमातृरिद्वयमुपेयात्) पतितसे उत्पन्न होय सोभी पतित होताहै पान्तु कन्या
के सिवाय पुत्री की समझना क्योंकि वह स्त्रीकी जातिहै पराये घर जाने योग्यहै
माता का अंगांश उत्तम में अधिक होने से माता का धन पावैगी योडाना प्रतिप्रभव
इसी हेतुसे यहठहिरा कि लडका लडकी दोनोंसे यौन संबन्धका निषेध पहिले क्रिया
या उसमें केवल पुत्रीसे यौन संबन्ध की आज्ञा यहाँ दीगई ॥ ० ॥ मूल के अर्थानेंयह
कहा गया कि पतित होने की दशा में जो पतित के वीर्य से उत्पन्न कन्याहो ति-

सको इन रीतों से विवाह लेवै—इस कथन का प्रत्यक्ष यही तात्पर्य है कि प्रायश्चित्त का स्वीकार और उद्योग जिसने नहीं किया और पत्नीने भी संसर्ग उसका नहीं छोड़ा ऐसी दशामें जो गर्भ रहकर कन्या हुई हो फिर गर्भ रहे पीछे चाहै पति पुरुष प्रायश्चित्त करने चला गया हो तौ भी वह कन्या पति वीर्यसे हो चुकी तिसको उक्त रीतों से विवाह लेने में कुछ दोष नहीं है—परन्तु इसी गर्भ से जो पुत्र पैदा हुआ हो तिसको कोई अपनी कन्या देकर यौन संबंध से संसर्ग न करे यह नियम परंपर है—और भी—उसी कथन का यह तात्पर्य है कि जिस किसीने प्रायश्चित्त का प्रारंभ ही कर दिया हो परन्तु जबतक पूरा न हो तबतक उसको शुद्धि नहीं प्राप्त होती है और वह प्रायश्चित्त अपने ग्राम नगर के समीप ही किसी जंगल या गोब्रज देवस्थल आदि में आरम्भ किया गया हो ऐसी दशा में यद्यपि ब्रह्मचर्य से जितेंद्री होके रहने का आदेश है और पत्नीको भी पतिसे संसर्ग करने का निषेध है तथापि जो दोमें से कोई एक या दोनों दंपती कामातुर होके धर्म मर्यादा का अतिक्रम करै अर्थात् निकट होने से दर्शन के बहाने मिलिके संगस करै और इसी दशामें जो पति वीर्य से गर्भ रह जाय तहाँ पत्नी भी संसर्ग दोषसे पति हुई ठहरेगी और इसी गर्भ से यदि पुत्र पैदा हो जाय सो भी पति होगा तिस पति को कोई अपनी कन्या न देवै यह पहिले परिच्छेद के अनुसार यौन संबंध से संसर्ग का निषेध ठहिरा—परन्तु जो इसी गर्भसे कन्या पैदा हुई हो तिसको उक्त रीतों से विवाह लेने में कुछ दोष नहीं है यह इसी परिच्छेद के अनुसार प्रतिप्रसव ठहिरा—और भी—उसी कथन का यह तात्पर्य है कि जिस किसीने निपट प्रायश्चित्त करना ही स्वीकार न किया हो अर्थात् जाति बिरादरी से छुटा रहिना स्वीकार कर लिया और उसकी पत्नी आदि परिवारने भी उसको नहीं छोड़ा इसी हेतुसे उसका घर कुटुंब सभी पति ठहरे और इसी हेतु से उसके लडका लडकी विवाह से रुके रहिके बहुत बड़े हुये होंगे (चाहै पति होनेकी दशा में उत्पन्न हुये यदा पहिले अच्छी दशामें हो चुके थे कुछ इसका नियम नहीं क्योंकि जो पहिले पैदा हो चुके हैं वे भी संसर्गी बने रहने से उसके समान पति ठहरे) तहां उसके लडकों को कोई अपनी कन्या न देवै यह पहिले परिच्छेद से यौन संबंधका संसर्ग निषेध हो चुका है सो ठीक रहा और लडकियाँ जो सयानी हो चुकीं तिनको इसी परिच्छेद वाली प्रतिप्रसवकी मर्यादा से लिखी हुई रीतों के अनुसार जो चाहौ सो विवाहिले इसमें दोष नहीं है (स्त्रीरत्नदुष्कुलादापि) यह वचन केवल इसी दशाके निमित्त पर आरूढ है सर्वत्र नहीं ॥ ० ॥ इसमें दोष

नहीं बल्कि एक प्रकार का अत्यंत सूक्ष्म और प्रबल पुराय प्राप्त होता है क्योंकि दोषाभाव तो इसी परिच्छेद के वचनोंसे संसिद्ध है और पुराय इस ध्वन्यर्थ से उत्पन्न होता है कि जैसे धर्मात्मा लोग विरानी कन्या सयानी न होने पावें शीघ्र उद्धारकर देने के लिये आप द्रव्य देते और दूसरोंसे दिवाते हैं इसकी बराबर कोई और पुराय नहीं है जो अपनी या विरानी कन्या उचित समयपर सत्पात्र को देदीजाय—तिससे इस पुस्त्य को वही पुराय होगा जो बहुतकड़े प्रतिबंधसे रुकीहुई कन्या का उद्धार करे या और से करावै—परन्तु इसके साथ यहभी एक प्रतिज्ञाहै जो ऊपरले वचनों में वृद्धहारीतने दर्शाई कि (आजसे न मैं इन सबकी न ये सब घरवाले मेरेरहे) यह तीनि बार कन्या के मुखसे पंचों के सन्मुख उच्चारण कराइ लेवै अर्थात् कन्या भी अपने हृदयसे ऐसा विवाह चाहती हो और उसके घरवालेभी यही चाहतेहैं किसी तरह का दावा झगडा शेष न रहि जाय और घरवाले कभी कन्याकोदेखने मिलने आदि के अधिकारी न रहैं क्योंकि पतितोंसे संसर्ग अपेक्षित नहींहै केवल कन्या का उद्धार करना एक धर्म है यदि कन्या इन्हीं नियमों पर आरूढ होकर पक्की हो और धर्म तथा अर्धर्म दोनों को समुभक्तोहो सो सब नियम ये सयानी और होशदार कन्या से संबन्ध राखते हैं अब्रूक्त वचों से नहीं यह सिद्धांत है ॥ २६१ ॥

इतिसंसर्ग प्रायश्चित्त प्रकरणं

इस प्रकरणा में सैंतीस और अरतीस दो परिच्छेद हैं जो ऊपर होचुके ॥ अब यह बात सोचनी चाहिये कि यहाँ पर उन दोही परिच्छेद में नियिद्ध संसर्ग का चर्चा या उक्ती चर्चा के प्रसंग से अगिले परिच्छेद में भी उस भांति के प्रायश्चित्त कहे जायेंगे जो नियिद्ध संसर्ग (खोंटेसंयोग) से उत्पन्नहुये प्रतिलोम जाती अति नीच सनुष्यों का दध करने वाले पर आरूढ हों ॥



अथ प्रतिलोमानां वध प्रायश्चित्तस्वरूपस्य च पुनः स्त्री

शूद्रादिनिमित्तीनां प्रायश्चित्तकरणेऽधिकारस्य च
प्रदर्शकोऽयं परिच्छेदः ऊनचत्वारिंशः ३६

—*—

इस परिच्छेदमें दो नियम विशेष कहे जायेंगे कि प्रथम जो प्रतिलोम जाती पु-
स्त्योंका वध करनेवाले वैवर्णािकहों तिनके प्रायश्चित्त विशेष कहे जायेंगे—
फिर—स्त्री और शूद्र और प्रतिलोम जन्मा सूत मागध आदि जातें जो वेद
आदि संज्ञोंके अधिकारी नहीं हैं या अधिकार होते भी जो संज्ञानसे वि-
हीनहों तिनको प्रायश्चित्त करनेका अधिकार विशेष रीतिसे दर्शाया
जायगा कि संज्ञोंके विना भी करसक्ते हैं इत्यादि ॥

(अवकृष्टवधप्रायश्चित्तं)

चांद्रायणंचरेत्सर्वानवकृष्टान्निहन्यतु † २६२ पूर्वार्द्धश्लोकः ॥

अर्थः—सभी अवकृष्टोंको सारिके चांद्रायणा करै=अर्थात्—प्रतिलोम जन्म होने
से खींचिकर दूर निकासे हुये सूत मागध आदि जनों में से किसी एकही पुरुष को
प्राणों सहित वध करिके एक महीनेका चांद्रायणा व्रतकरै तब शुद्धहोय † ॥ २६२ ॥

२६२ अधिकोक्तिः—जैसा इस पूर्वार्ध मूलश्लोकमें योगीश्वरने नियम कहा तैसा
शंखने भी कहा है=यथा=सर्वेषामवकृष्टानां वधे प्रत्येकं चांद्रायणां=अर्थात्—सभी अव-
कृष्टोंके वधमें प्रत्येक जुदे जुदेके सारने मध्ये एक चांद्रायणा करै ॥ और जो अंगिरा
का यह वचन है कि (सर्वान्त्यजानां गमने भोजने च प्रमापणो पराकरो विशुद्धिः स्यादित्यां
गिरसभाषितम्) सबही अंत्यजों के साथ मिलिके कहीं जाने आने या उनके पास
बैठिके भोजन करने या उनके प्राण वध करने में पराक व्रत करने से विशुद्धि होय
यह अंगिराने कहा • सो इस वचनमें ऊपरले चांद्रायणा को मिलाइके यह व्यवस्था
समुभिलेनी कि जहाँ इच्छा सहित जानि वृत्ति के वध किया हो तहां सूत आदि
सबके वधमें प्रत्येक चांद्रायणा चाहिये और इच्छा विना वध होनेमध्ये केवल सूत
जातिके सारनेमें पराक व्रत करना चाहिये जो बारह दिनमें पूरा होता है यही पराक

व्रत पौना करिके नौरोजका वैदेहको मारने में करना चाहिये और यही पराक व्रत आधा सिर्फ छेदिनका चंडालको मारने में करना चाहिये। एवं मागधके वध करनेमें भी यही पराक चौथाई क्रम करिके नौरोज करना चाहिये और सत्ताके वध करने में आधा सिर्फ छः दिन करना चाहिये और आयोगवके वध करने में भी दोही पाद अर्थात् छेदिन व्रत करना चाहिये—इन्हीं भेदोंके अनुकूल इसी मार्गसे चांद्रायणा में भी भेद कल्पना करनी चाहिये कि जिसको कासनासे वधकरने मध्ये करना कहा ॥ और एक ब्रह्मगर्भका यह वचन है कि (प्रतिलोमप्रसूतानां स्त्रीणांभासावधिष्मृतः अन्तरप्रभावानांचसूतादीनांचतुर्द्विषट्) अर्थात्—प्रतिलोम जातियों की स्त्रियां वध करनेवाले को एक महीने का व्रत कहा और उन्हीं सूतादि प्रतिलोम जातियों के पुस्त्य वध करने में चार दो छे महीने व्रत समझना—सो यह इतना बड़ा प्रायश्चित्त आवृत्ति के निमित्त पर आवश्यक है कि जिसने तर ऊपर लगातार दो तीन पुस्त्य मारे हों तिसके लिये और इसमें जो चार दो छे मास कहे तिनको जातियों को बड़ाई छोटाईके क्रमसे नहीं कहे किन्तु उनकी बड़ाई छोटाई की योग्यता पर संयुक्त करिके आगे के पीछे व्यवहित मार्गसे समझिलेने अर्थात् सूतजाति के पुस्त्य वध करने में छे महीने और वैदेह जातिके वध करने में चारि महीने चंडाल जातिके वध करनेमें दोमहीने प्रायश्चित्त करै—तथा मागध जातिके पुस्त्य वधकरने में चारि महीने और सत्ताजातिके पुस्त्य वधकरनेमें दोमहीने और आयोगव जातिके पुस्त्य वध करने में भी दोमहीने प्रायश्चित्त करै तब शुद्ध होय—इस व्यवस्था में यद्यपि किसी प्रायश्चित्त का नाम नहींकहा सिर्फ महीनोंकी तादाद कही तथापि चांद्रायणा व्रत समझना जो एक महीनेमें एक पूरा होताहै दोमें दो इत्यादि ॥ २६२ ॥

अब आगेउत्तरार्द्ध मूलप्रलोकसे यह बात सिद्ध होगी कि स्त्री और शूद्र आदि जो जो मंत्र आदि विद्याके अधिकारी नहीं सोभी अपने योग्य प्रायश्चित्तों को संवों के बिनाही कर सकेंगे ॥

(शूद्रादिकर्तार्यमंत्रप्रायश्चित्तं)

शूद्रोऽधिकारहीनोपिकालेनानेनशुद्धयति २६२

अर्थः—शूद्र अविचारसे हीनहै तौभी उक्तअविवेके काज लेही शुद्ध होगा=अर्थात्—अव्रतक यह संदेह खडा रहाया कि प्रायश्चित्तों के नैमित्तिक व्रत जो बहुधा कहे गये या आगे कहेजायेंगे सो प्रायश्च नप पाद आदि प्रकारों से करने कहे गये तहां

जो पुस्तक विद्या पढे नहीं या स्त्री और शूद्र आदि अनेक जातें जो निपट संव विद्या के अधिकारी नहीं तिनको उन प्रायश्चित्तों का करना संभव नहीं होगा क्योंकि (जिन कर्मों में धी का दर्शन अर्थात् धीमें अपने मुँह की छाया देखना आदिकोई नियम विशेष लगाहो उन कर्मों में अंधे पुस्तकों का अधिकार नहीं सिद्ध होता है) इस न्यायसे विद्या विहीन आदि उन प्रायश्चित्तों के अधिकारी ही न होंगे—यह संदेह मिटाने को अब कहितेहैं कि यद्यपि शूद्र आदि बहुतेरे मनुष्य जप पाठ आदि करने के अधिकारी नहीं तौभी इसी काल से संशुद्ध होते हैं जो चारह वर्ग आदि के काल नियम कहे गये (यद्यपि मूल में शूद्रही मात्र कहा तौभी यह शूद्र कहिना वै-वर्णांक स्त्रियों तथा प्रतिलोम जाती पुरुषों का भी उपलक्षणा है ॥ २६२ ॥

२६२ अधिकोक्तिः—यद्यपि शूद्र आदिको गायत्री आदिके जप करने असंभव हैं जो प्रायश्चित्तों में होतेहैं तौभी इनको नमस्कार रूपी जो संव है वही जप करना चाहिये इसीलिये स्मृत्यंतर वचन से यह कहा है कि (उच्छिद्यं चास्यभोजन मनुजा तोऽस्यनमस्कारो संवः) शूद्रकेलिये तीन वर्णोंकी जूठन भोजनकहा और नमस्कार एक संव है—अथवा यह न माना जाय तौभी वचन की प्रबलता से जप आदिकिये बिनाही व्रत करै यह तात्पर्य है कि जैसा यह अंगिराका वचन है—यथा=तस्माच्छू-द्रं समाश्राय्य सदा धर्मपथे स्थितः प्रायश्चित्तं प्रदातव्यं जपहोमविवर्जितम्=अर्थात्—शूद्र को किसी जपमें अधिकार नहीं है तिससे जो सदा धर्मके मार्गपर चलनेवाला शूद्रही तिसको किसी प्रायश्चित्तके अवसर पर आरूढ करिके जप होम से रहितही प्राय-श्चित्त देना चाहिये=उन्हीं अंगिराने इसकेलिये दूसरा भी प्रकार दर्शाया है—यथा=शूद्रः कालेन शुद्धो ब्राह्मणस्य हितैस्तः दानैर्वाप्युपवासैर्वा द्विजशुश्रूषया तथा=अर्थात्—प्रायश्चित्तकी अवधि भर कहे कालसेही शूद्र शुद्ध होता है जो गरु ब्राह्मणके हित में लगा रहै अथवा निश्चल काल भर अनेक दानों को करने से यद्वा उपवासों से और तीनों वर्णोंकी निकोभ सेवा शुश्रूषा करनेसे भी शुद्ध होता है—और जो मनु का यह वचन है कि (न चाश्रयोपदिशे धर्मं न चास्य व्रतमादिशेत्) अर्थात् शूद्रको न धर्मका उपदेश देना न कोई व्रत आदेश करना—इसपर सिताक्षराकार कहिते हैं कि यह उपसन्नं शूद्रके विषय पर आरूढ वचन है कुछ यहाँ इस वचनसे तात्पर्य नहीं लेना है—इसी प्रकार=एक स्मृत्यंतर यह वचन है कि (कृच्छ्रायैतानि कार्याणि सदावर्णाव-येषां कृच्छ्रं प्वेतेषु शूद्रस्य नाधिकारो विधीयते) इतने कृच्छ्रव्रत जो कहेगए सो सदा तीनों वर्णोंको करने चाहिये किन्तु इतने कृच्छ्रोंमें शूद्रका अधिकार नहीं कहा—सी

यह निषेध काम्यकृच्छ्रोंके अभिप्रायसे किया गया है कि शूद्र इनको कामना से न साधै किन्तु प्रायश्चित्त मध्ये शूद्रको करनेका निषेध न समझना इसीलिये सदाशब्द का प्रयोग है कि त्रैवर्णिक लोग जब चाहें तब सदाही करसक्ते हैं शूद्र सदा नहीं=इन सभी वचनोंसे यह तात्पर्य सिद्ध हुआ कि तीन वर्णोंकी तरह स्त्री और शूद्र और प्रतिलोम जातोंको भी प्रायश्चित्तके व्रत करने चाहिये=और जो गौतमका यह वचन है कि (प्रतिलोमा धर्महीना) सोभी यह प्रायश्चित्त का संबंधी नहीं किन्तु इसके उपरालू यज्ञोपवीत आदि विशेष धर्मों की अपेक्षा मध्ये कहा समझना ॥ २६२ ॥

इतिशूद्राद्यवकृष्टजातिपर्यंतप्रायश्चित्तप्रकरणं ॥

यह प्रकरणा केवल उनतालिषके एकही परिच्छेदसे पूराहुआ दूसरा इसमें नहीं है ॥

इत्यशेष महापातकादि प्रायश्चित्त प्रकरणानां बृहत्प्रकरणां ॥

समस्त महापातकोंके अगिले पिछले कई प्रकरणों के परिच्छेद मिलानेसे यहां तक उन्नीस परिच्छेद होतेहैं क्योंकि बीसवें परिच्छेद तक ब्रह्मविद्याकी समाप्तिहुये पीछे इक्कीसवें परिच्छेदसे लेकर तीसवें तक दश परिच्छेदों में अनेक भेद होनेपरभी केवल ब्रह्महत्याके नाम से प्रकरणा परा किया था—तिस पीछे इक्तीसवां परिच्छेद लेकर यहां उनतालीसवें तक नौ परिच्छेदोंमें छोटे छोटे कई प्रकरणा भेद किये उन सबहीको मिलाकर यहाँ (अशेष महापातकोंके) नामसे एहद प्रकरणा मानागया कि जिसमें कुल १९ उन्नीस परिच्छेद हैं ॥

॥ जैसे २४२ दोसौ बयालिसकी अधिकोक्ति में पापोंके अनेक भेद तरह चौदह तक दर्शाइकर उनमें से मुख्य पांच भेद माने गयेथे कि महापातक १ अतिपातक २ पातक ३ उपपातक ४ अनुपातक ५—इनमें से महापातकों के प्रायश्चित्त ऊपर के प्रकरणामे बर्णन कियेगये उनके साथ अतिपातक और पातकोंके भी प्रायश्चित्त प्रदर्शित होतेरहे (और कुछ शेष रहाहोगा सो आगे कहीं दर्शावेंगे) परन्तु महापातकों का विशेष बर्णन होबुका ॥ अब अगिले परिच्छेद से उपपातकों के प्रायश्चित्त कहे जायेंगे ॥

अथोपपातकविषये गोहत्यायाः प्रायश्चित्तैः कदेश प्रदर्शकोऽयं परिच्छेदः चत्वारिंशः ४०

—*—

इस परिच्छेद में उस प्रकार की गोहत्या के प्रायश्चित्त भेद कहे जायेंगे कि जो गाय अति उत्तम स्वामी की नहो और वह गाय आपकी सामान्य जाति मात्र सेही गऊ कहातीहो विशेष गुणावाली गऊ न हो तिसका वध बिनाचाहे दैवयोगसे यदि किसी से होजाय—क्योंकि विशेष गुणा वाली गऊ जो उत्तम स्वामी की हो तिसका वध होने मध्ये बडेप्रायश्चित्त हैं सो अगिले परिच्छेदों में हारीत आदि के वचनोंसे दर्शाये जायेंगे (गाय की जाति मात्र में वृषभकाभी उपलक्षणा वर्तमानहै) इस गो-वधके अनेक भेदहैं तिससे इसके प्रायश्चित्त भी चार परिच्छेदों में जाकर पूरेहोंगे— २३४ मूल प्रलोक से लेकर २४३ प्रलोक तक पचास के लगभग उपपातक वर्णन हुयेथे उनमें गोहत्या यह सबसे पहिला एक उपपातक है ॥

येही ५० नहीं किन्तु औरभी बहुत हैं ॥

(गोघ्नस्यप्रायश्चित्तं)

पंचगव्यंपिवेद्गोघ्नोमासमासतिसंयतः । गोघ्नेशयोगोऽनुगामी गोप्रदानेनशुद्धयति २६३
कच्छ्रुंचैवातिकच्छ्रुंचचरेद्वापिसमाहितः । दद्यात्त्रिरात्रंचोपोष्यवृषभैकादशास्तुगाः २६४

अर्थः—गोघ्न पुरुष महीना भर संयत होके गोघ्न में सोवै गौओं के पीछे फिरें पंच गव्य पीवै फिर एक गऊदान करिके शुद्ध होताहै—अथवा पंचगव्यके पीने बिनाही इन्हीं सब नियमों से महीना भर कच्छ्रु व्रत करै यद्वा उन्हीं नियमों से महीना भर अति कच्छ्रु करै यद्वा उन्हीं नियमों से महीना भर संयत रहेपीछे तीन दिन उपवास करिके दशगौओंके साथ ग्यारहवाँ आँडूवृषभदान करै तब शुद्ध होय ये सब चारि प्रायश्चित्तकहे तिनको ब्राह्मण आदि वर्णोंके भेदसे व्यवस्था करिके कहेंगे सो सब अधिकोक्ति से देखना ॥ २६३ ॥ २६४ ॥

२६३ अधिकोक्तिः—इन चारोंप्रायश्चित्तोंमें कच्छ्रु और अतिकच्छ्रु भी कहेगये तिनकालक्षणा लसभलेनाचाहिये जिससे इनकीव्यवस्था जोवर्तानहोगी सोभीसमझी जाय—तहाँ कच्छ्रु नाम है प्राजापत्य और सांतपन आदि अनेक व्रतों का जो कष्ट के

साथ साधन होते हैं क्योंकि कृच्छ्रीका नाम कृच्छ्र होता है—तिससे यहां पर कृच्छ्र कहने से प्राजापत्य समझना जिस कर्मका प्रजापति देवता होता है उस प्राजापत्यका यह लक्षणा है कि (त्र्यहंप्रातस्तत्र्यहंसायत्र्यहमद्याचित्तत्र्यहंपरंचनाश्रीयात्प्राजापत्यमितिश्रुतम्) तीन दिन सबरे और तीन दिन सांभ्रको किंचित् अन्नखाय और तीन दिन बिना माँगे जो कुछ आजाय सो खाय फिरीछे तीन दिन कुछ भी न खाय यह वारह दिनका प्राजापत्य कहाता है इसको कृच्छ्र भी कहिते हैं—इससे आधा छः दिन का कृच्छ्राद्ध भी कहाता है (सायंप्रातस्तथैकैर्कादिनद्वयमयाचित्तम् दिनद्वयंचनाश्रीयात्कृच्छ्राद्धःसोऽभिधीयते) अर्थात्—उसी पूर्वोक्तप्रकार से एक दिन सांभ्र को एक दिन सबरे किंचित् अन्न खाय फिर दो दिन बिना माँगे जो कुछ आजाय सो खाय तिस पीछे दोदिन कुछ भी न खाय सो कृच्छ्राद्ध कहलाता है इसको लघु प्राजापत्य भी कहना चाहिये—अतिकृच्छ्र इनसे जुदा व्रत है तिसका यह लक्षणा है (एकैकंप्रासमश्रीयात्त्र्यहाशिशीशापूर्ववत् त्र्यहंचोपवसेदंत्यमतिकृच्छ्रं चरुद्विजः) अर्थात्—पूर्वोक्त किसी रीति से नौदिन तक एक एक प्रास भोजन करे फिर तीन दिन कोरा उपवास करे यह अतिकृच्छ्र करते हुये द्विजाती का विधान है ॥ ० ॥ मूल श्लोकों की व्यवस्था अब कहने का प्रारंभ करते हैं कि—पंचगव्यका विधान जो शास्त्रोंमें प्रसिद्ध है उसीतरह बनाकरउतनाहीपीवै किन्तु पेट भरौआनहीं पर यही उसकाआहारहै कुछ और भोजन नहीं और (संयतः) अर्थात् शास्त्रोक्त सब नियमों को साधे हुये गौओं के गोष्ठ गौंहरें में सोधा करे प्रातःकाल उठ कर उन्हीं गौओं के साथ जाकर पीछे फिर अर्थात् गौयें जहां विश्राम लें तहां आपभी यंभि जाय जहां उनको कोड़े ऊँचे नीचे की अडचल हो तहां युक्ति से उतारै कि उनको विपत्ति न होवे पावै इत्यादि अनेक विधि हैं तिनको करतेहुये फिर सांभ्र को साथजाकर गोष्ठमें उनको उचित सेवाकिये पीछे धरती पर सोवै और बाकी मूल श्लोकों के अर्थ में देखौं यह विधि तो पर्वव लगीरहेगी पर अगिले प्रायश्चित्तमें पंचगव्यका आहार छुटि जाय ता कौंकि कृच्छ्र प्राजापत्य आदि व्रत काले कहे उन्हीं की विधि बतौ जायगी यह व्रतक लेनाथा दूसरा प्रायश्चित्त जिसका नाम कृच्छ्रकहा तिसको प्राजापत्य समझना—इती हेतुने जावालिसुनिजे सहीनाभर प्राजापत्य कस्ना यह जुदा प्रायश्चित्त वर्गीयाहै—यद्याह जावालः=प्राजापत्यंचरेण्मासंगोहंताचेदन्नासतः जोहितोतोऽनुजाणीत्यादयोप्रदायेन शुद्धतीति=अर्थात्—एकवहीना प्राजापत्य कृच्छ्रव्रतकरे और गौओंकी पत्ताडे काले काम करतेहुये उज्जे पीछे फिरै तिस पीछे सोदत्त करके शूड होनाहै पर वही कि

जिसने इच्छा बिना किसी धोखे आदि कारणसे गऊ मारी हो—यह दूसरे प्रायश्चित्त का स्वरूप जो मूलप्रलोकमें कहाया तिसका निर्णय किया गया २ ॥ इन्हीं प्रकारोंसे महीना भर अतिदृष्ट् ब्रत करै यह तीसरा है ३ ॥ इन्हीं प्रकारोंसे महीना भर गोसेवा किये पीछे ग्यारह गऊ वृथभ देने कहे वह चौथा है ४ ॥ इनमें किस प्रायश्चित्तको कौन करै यह व्यवस्था आगे देखौ ॥०॥ जो विशेष गुणावाली गऊ न हो किन्तु सामान्य जातिमात्रसे ही गऊ कहाती हो और सामान्य ब्राह्मणाको ही जो केवल जातिहीसे ब्राह्मणा कहाता हो तिसको बिना इच्छाके बध करनेवाला पुरुष चौथे प्रायश्चित्तको करै जिसमें महीना भर गोसेवा किये पीछे तीन दिन उपवास करिके दशगऊ एक आंड वृथभ देना कहा गया (उत्तम स्वामीकी गऊ तथा उत्तम गुणा वाली गऊ मारने मध्ये बड़े प्रायश्चित्तहैं सो हारीत आदिके बचनों से अगिले परिच्छेदमें आवेंगे तिससे यहां सामान्य जाति गऊ और सामान्य जाति ब्राह्मणा उसका स्वामी कहा गया यह विशेषता समझ लेनी चाहिये) ४ उसी प्रकारकी गऊ जो सभी स्वामीकी हो तिसको इच्छा बिना मारनेवाला पहिले प्रायश्चित्तको करै जिसमें पंचगव्य पीना कहाया • तिसपर मिताक्षराकारने यह व्यवस्था भी आरोपित करी है कि महीना भर पंचगव्य का आहार बहुत ही थोडा करना होता है तिससे वह भी महीना भर उपवास के तुल्य ठहरता है तिस हेतु से उसमें भी दृष्ट् रूपी छः दिनके आधे प्राजापत्य पांच साने जासक्ते हैं अर्थात् (छपंजेतीस) छे छे दिनके उपवासोंका एक एक लघु प्राजापत्य कल्पना करनेसे पांच दृष्ट्ओंका अभ्यास ठहरता है तिसमें एक एक दृष्ट्के साथ एक एक गोदानकी पाँच गऊ होती हैं तथा एक उस गऊको समझना जो महीनाके पीछे देनी कही थी तिससे कुल छे गऊ होती हैं जो सभीकी गऊ मारने मध्ये दान करनी ठहरीं तौभी उनसे कम सख्या ठहरी जो ब्राह्मणा की गऊ मारने मध्ये एक बेल दश गऊ देनी कहीं अर्थात् ऐसा हिसाब लगानेसे भी यह प्रायश्चित्त उससे छोटा ठहिरा • तिसपर यह तर्कना है कि ब्राह्मणाकी गऊ मारने मध्ये इतना बड़ापन क्यों रक्खा गया • इसका यह उत्तर है कि (देवब्राह्मणाराज्ञांतुर्विज्ञेयं द्रव्यमुत्तमम् इति नारदेन तत्तद्द्रव्य स्योतसत्त्वाभिधानात्) देवता और ब्राह्मणा और राजा इनका द्रव्य उत्तम होता है यह नारदने कहा और (गीयुत्राह्मणासस्थास्त्विति दंडभूयस्त्वदर्शनाच्च) व्यवहारकांड में ब्राह्मणा की गऊ मध्ये दंडभी अधिक देखनेमें आता है तिससे भी यहाँ ऐसा बड़ापन रक्खा गया १ ॥ उसी प्रकारकी गऊ जो वैश्यकी हो तिसको इच्छा बिना बध करनेवाला महीना भर अतिदृष्ट् नामक तीसरा प्रायश्चित्त करै और उसी प्रकार गौओं

की सेवा आदि भी महीनाभर करने पीछे पाँच गोदान अर्थात् धेनुकल्प विधान से धेनुका अनुकल्प पाँच प्रकारसे करै इनमें एक गऊ साक्षात्कार अपने स्वरूपहीसे देनी होगी जैसा योगीश्वरने महीनाके अन्तमें एक गोदान करना कहा ३ ॥ उसीप्रकारकी गऊ जो धूर्त स्वामीकीहो तिसको इच्छा विना मारनेमें दूसरा प्रायश्चित्त कृच्छ्र नामक अर्थात् प्राजापत्य व्रत एक महीनाभर करै और गौओं की सेवा शूयूया आदि करने पीछे दो धेनुकल्प और एक गऊ साक्षात्कार दानकरै २ (इसी प्रकार जिसमें छे गौओंका विधान पहिले लिखचुके तहां भी पाँचधेनुके अनुकल्प और छठा साक्षात्कार गोदान समझिलेना० परन्तु जिसमें दशागऊ एक आँडू वृथभ कहिचुके तहां धेनुकल्प नहीं किन्तु साक्षात्कार सभी गौयें समझनी ॥ ० ॥ यह व्यवस्था एक उपरालू याद रखनी चाहिये कि येही चारों प्रायश्चित्त जो साक्षात्कर्ता अर्थात् गोवध करनेवाले पर कहेगये सो कर्ताके अनुग्राहक और प्रयोजक और अनुमन्ताओंमें बड़े छोटे भाव की तरतमता देखिभाल के पूर्वोक्तहो विषय में संयुक्त करने चाहिये कि जहाँ उनकी इच्छा और चाहना विना सहायता कानी बरी हो ॥ ० ॥ इसी गोहत्या मध्ये जो विष्णुको कहे तीन व्रतहैं कि (गोघ्नस्यपंचगव्येन सासमेकंपलत्रयं प्रत्यहंस्यात्पराकोवाचांद्रायणामथापिवा) गोहत्या करनेवाले को एकमहीना भर तीन पलके परिमाण पंचगव्य पीनेका प्रायश्चित्त चाहिये अथवा पराकव्रत करना चाहिये अथवा चांद्रायण करना चाहिये) ये तीनों प्रकार उसी के समान हैं कि जैसा याज्ञवल्क्यने पंचगव्य कहा सो जिसके लिये करना उचित ठहेरचुका उसी के निमित्तमें इसको भी समझिलेना=और जो कश्यपजीने कहाहै कि (गांहत्वातचर्मणाप्रावृत्तोमासंगोयेशय त्रियवराज्ञायी नित्यंपंचगव्याहारः) गाय को मारिके उसकी खालको ओहि कर गौंहरे में सोया करै त्रिकाल स्नान भी क्रियाकरै नित्यं प्रति पंचगव्य पीतारहै) यह भी पूर्वोक्त याज्ञवल्क्यजीके वताये पंचगव्यवाले प्रायश्चित्तका विषय है कि इसकी भी उपरालू बातें उसमें जिला लेनी चाहिये=एवं शातानप का वचन भी खुलासा है कि (सासपंचगव्याहारः) एक महीना पंचगव्य का आहार करै—यह भी याज्ञवल्क्यजीके वताये पंचगव्य वाले व्रतके मतानहैं=और जो शंख तथा प्रचेताने एकही वचन कहा है कि (गोघ्नःपंचगव्याहारः पंचद्विंशति रात्रिमुपवसेत्साशिवंदपलंहत्वागोचर्त्सणाप्रावृत्तोगाश्चानुगच्छन्गोयेशयोरांच्चदद्यात्) गाय मारनेवाला पचीसदिन पंचगव्य खायके उपवास करै चोरी नहित हुंडनराय के राजकी खाल ओढे हुये गौओंके पीछे फिरै गोष्टमें राति काटे ओ। पीछे से गऊ

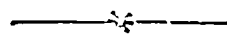
दान करै) यह भी पूर्वोक्त याज्ञवल्क्यजीके एक महीनावाले अतिक्रच्छूके समान है कि इसमें से उपरालू नियमलेकर उसमें जोड़े जासक्ते हैं • और भी याज्ञवल्क्य ने दोसौ चौंसठिके उत्तरार्द्धमें जो तीनदिनका व्रत करिके ग्यारह गऊ दानकरना कहा तिसके साथभी अत्रोक्त शंख प्रचेतावाले नियम उसदशामें जुडिसक्ते हैं जो गऊ मारनेवाला अत्यन्त गुणावानहो यह मिताक्षराकारने व्यवस्था कही ॥०॥ इसी पहिले वियथपर कि जिसमें पंचगव्य का आहार कहागयाथा कदाचित्त वही प्रायश्चित्त जिसको करनाठहिरै और पंचगव्य उसपर न पियाजाय अथवा न मिलसकै तिसकेलिये कश्यप का कहा एक दूसरा प्रायश्चित्त विचारना चाहिये जो कश्यपने महीनाभर पंचगव्य पीनेका प्रायश्चित्त पहलेकहिकर दूसरा यहकहाहै कि (स्येकालेपयोभक्षोवागच्छं तीस्त्वनुगच्छेतासुसुखोषविष्टासु चोषविशेज्जातिपुवंगच्छेतानिवियमेनावतारयेन्ना ल्पोदकेपापयेदन्तेब्राह्मणान्भोजयित्वातिलधेनुदद्यादितद्रष्टव्यम्) अर्थात्—जो पंचगव्यपीना न होसकै तो छठेकालमें केवल दूधपीवै और चलतीहुई गौओंकेपीछेचलै और वे गऊ जब आशामसे बैठे तब आपहू उनके निकट बैठे और अतिशय दहदहके पानीमें न लेजाय उनको ऊँचे नीचे टीलोंमें नहीं निकासै किन्तु सुधे मार्गसे निकासै और थोड़े जलमें नहीं पिआवै अच्छे निर्मलपानीमें पिआवै इसतरह प्रायश्चित्तकी अर्वाधि पूरीकरिके अन्तमें ब्राह्मणोंको भोजनकराय तिलधेनुका दानकरै (केवल दूध पीनाजो प्रायश्चित्तकेनिमित्तोंपर बताया तिसका यहतात्पर्यहै कि जीभस्वादुकेअर्थ उसमें मोटा कुछ नहो) जो विरला पुरुष ऐसा भी न करसकै तिसके लिये अत्रोक्त पैठीनसि का बताया अनुकल्प विचारना चाहिये=यथाह पैठीनसिः (गोध्नोमासंय वागुंप्रसृततंदुलशृतां भुंजानोगोभ्यःप्रयंकुर्वन्शुधयति) अर्थात्—गऊ मारने वाला एक महीना तक एक पसर तंदुल राँधिके उसका दलिया खाते हुये गौओं का हित प्रिय करते हुये शुद्ध होता है ॥ ० ॥ सुसंतु ने जो प्रायश्चित्त कहा है कि (गोघ्नस्य गोप्रदानंगोशेषयत्नं द्वादशारात्रंपंचगव्यप्राशनंगवानुगमनंच) गोहत्यावालेको गऊका दान गोशाला में सोना बारह दिन पंचगव्य चीखना गौओं केपीछे फिरनाभी योग्य है=और जो संवर्त ने कहा है कि (सक्तुथावकभैक्षाशीपयोर्दधिघृतंसहस्र सतानिक्रम गोऽशीयाद्भमासाद्धंतुसमाहितब्राह्मणान्भोजयित्वातुगांदद्यादात्मशुद्धये) पंद्रह दिन सावधान होके गहुआ या गोनूत्रमें राँधे यवोंका आवक दलिया भिक्षा भोजनकरते हुये गायको दूध इही धी येषी क्रम से प्रत्येक दिन एक एक बार चारतारहै फिर ब्राह्मणोंको भोजन कराइके अपने शुद्धहोने के लिये गौदान करै=और जो बृहस्पतिने

कहा है कि (द्वादशरात्रंपंचगव्याहारः) बारहदिन पंचगव्यका आहारकरै सो शुद्ध होय—
 यहतीनों प्रायश्चित्तभी याज्ञवल्क्यजीकेकहे महीनाभरके प्राजापत्यके समानसमझने
 चाहिये यहमिताक्षराकारकाकथनहै अथवा जोगऊ मरनेकोतुल्य आपहीथी तिसकी
 हत्याकरनेवालेके निमित्तमेंसमझलेने क्योंकि प्रायश्चित्त बहुतछोटेहैं अथवा जिसने
 गऊको बहुत ऊँचेनीचे चढाइ घेरि पीठि पाठिके वासमात्र दिया हो जिससे रोगपैदा
 होकर कुछ दिन बाद आपही गऊ मरजाय तिस हत्या के निमित्त में इन प्रायश्चित्तों
 को विचारना चाहिये ॥ अधिकोक्तिके प्रारम्भसे यहां तक जो कुछ प्रायश्चित्तोंके
 भेद वर्णन हुयेसो सब केवल उसी दशापर आरूढहैं कि विना इच्छा के जिसपर गऊ
 दैवयोग से मरगई हो=तथापि उत्तम स्वामी की उत्तम गऊ जिसपर विना इच्छा के
 मरगई हो तिसके बडे प्रायश्चित्त अगिले परिच्छेद में सकाम वधके साथ भी प्रसंग
 से दर्शाये जायेंगे तत्रैव देखौ ॥ इत्यकामगोवधविचारः ॥ अगिले परिच्छेद में
 सकाम गोवध के प्रायश्चित्त कहे जायेंगे (तथापि उषमें हारीत आदि कई एक ऋ-
 यियों के बताये प्रायश्चित्त निष्काम गोवधके ऊपर भी आवैंगे) और यह चर्चाभी
 उसी परिच्छेद में आवैगी कि इस परिच्छेद में दर्शाये प्रायश्चित्त भी सकाम गोवध
 में द्विगुणा किये जासक्ते हैं अर्थात् केवल वही नहीं कि जो अगिले परिच्छेद में स-
 काम वधके नामसे वर्णन होंगे—अगिले परिच्छेद में कोई मूल श्लोक इस हेतुसे न
 आवैगाकिवह पाठभीइसी अधिकोक्तिके शेष वक्रायामें गिनतीहै ॥२६३ ॥२६४॥

अथोपपातकेषु सकामगोहत्यायाश्च विशिष्ट

स्वामिक गोहत्यायाश्च प्रायश्चित्तप्रदर्शकोऽयं

परिच्छेदः एकचत्वारिंशः ४१



इस परिच्छेद में उस प्रकार के प्रायश्चित्त कहे जायेंगे कि जिसने जानि वृक्ष
 इच्छा सहित उसी प्रकार की गाय मारी हो जैसी गऊ दैवयोग से मरने के प्रा-
 यश्चित्त ऊपरले परिच्छेद में कहे चुके=तिस पीछे इसी परिच्छेद में बतिया प्रा-
 यश्चित्तभी दर्शावैंगे जो उत्तम स्वामी की उत्तम गऊ दैव योगसे मरनेके मध्ये और
 जानि वृक्ष इच्छा सहित मरने मध्ये दोनों दशापर दो भानि कहे होंगे ॥

जहां उसी प्रकार की गऊ जिसका पहले कथन हो चुका है कि जिसमें कोई विशेष उत्तमता वाले गुणाका चिह्न नहो और जातिसे सामान्य ब्राह्मण की गऊ हो तिसको कोई इच्छा सहित चाहिकर बधकरै तिसके लिये अथोक्त मनु का कहा प्रायश्चित्त विचारै कि जैसा मनुने एक महीना चौथे काल में जौका दलिया रांधि पीता कहा और दो महीना हविष्य भोजन चौथे काल करना कहा इस तरह तीन महीना गोसेवा तथा श्यारह गऊ दान यह सब मिलाकर यद्यपि तीन महीने का एकही प्रायश्चित्त प्रतीत हुआ है तथापि मिताक्षराकारने इसीके तीन प्रायश्चित्तभी माने और सबके छे महीना जोड़ि दिये हैं कि पहला एक महीने का दूसरा दोमहीनेका तीसरा तीन महीनेका जुदा प्रायश्चित्त है सो इस अंतरको मनुके वचनों से बुद्धिमान पुरुष विचार करैगे—अथाहमनुः=उपपातकसंयुक्तोगोघ्नोमासंयवान्पिबेत् कृतवापोवसेद्गोष्ये चर्मणाद्रैसासंवृतः चतुर्थकालमश्रीयादक्षारलवशांमितम् गोमधेराचरेत्स्नानंघ्नोमासौनियतेन्द्रियः दिवाऽनुगच्छेत्तामास्तुतियं चूर्ध्वरजःपिबेत् शुश्रूषित्वानमस्कृत्वारात्रौवीरासनं व्रजेत् तियंतीष्वनुतियेत्तु व्रजंतीष्वप्यनुव्रजेत् आसीनासुत्यासीतनियतो वीतमत्सरः आतुरामभियिक्तांवाचौरव्याघ्रादिभिर्भयैः पतितांपंकलग्नां वासर्दप्राणैर्विसोक्षयेत् उपशोवर्षतिशीतेवामारुतेवातिवाभृशम् नकुर्वीतात्मनस्त्राणां गोरकृत्वातुशक्तितः आत्मनोयदिवान्येयांगृहेक्षेत्रेऽथवाखले भक्षयंतींनकथयेत्पिबंतं चैववत्सकम् अनेनविधिनायस्तुगोघ्नोगाअनुगच्छति सगोहत्याकृतं पापं त्रिभिर्मर्त्यैर्व्यपोहति अथभैकादशागाप्रचदद्यात्सुचरितव्रतः अविद्यमाने सर्वस्त्वेदविद्भयोनिवेदयेत् (सतत्रितयंयाज्ञवल्कीयमासंप्राजापत्य० मासंपंचगव्याघ्रान० वृषभैकादशगोदानयुक्तत्रिशोपवासरूप० व्रतत्रितयविषयं यथाक्रमेणाद्रष्टव्यमित्यत्रमिताक्षराकारः)= अर्थात्—मनुने यह कहा है कि इच्छासहित गोबध करनेवाला उपपातकी प्रथम एक महीना जौ का दलिया रांधि पीवै और मुंडन कराइके गोष्य गौंहरमें ठिके कि जहां सैंकरों हजारों गऊ का समूह किसी जंगल में रहिता हो परन्तु मरी गऊ का गीला चमड़ा ओठिके ठिके (मिताक्षराकारने इसी इतनेको जुदासक प्रायश्चित्त माना है और दिन के चौथे काल में दो महीना तक खेसा भोजन थोडासा करै जिसमें खाति नमक आदि कुछनहो किन्तु अलोना फौका भोजन होय और जितना थोडानियम साधै उतनाही नित्य निरन्तर भोजन करै न्यूनधिक नहीं अर्थात् पहिले महीना में जौका दलिया पीवै फिर दूसरे तीसरे दो महीना यह पिछला कहा भोजन करै तौ यह पूरे तीन महीनेका एकही प्रायश्चित्त ठहिरै और इन्हीं पिछले दोमहीना भ

गोमूत्रसे स्नान भी किया करै सब इन्द्रियों को जीति के वशमें राखै (मिताक्षराकार इसको भी जुदा एकप्रायश्चित्त बतातेहैं) और दिनमें उन गौओंके पीछे पीछे फिरता रहै जहां कहीं खड़ी होकर टिकिजायँ तहां आप भी खड़े रहिकर ऊपर को मुह पसारि उडती गोधूलिकी रज पीनेलगै फिर संध्या समय उनकी सेवा शुश्रूषा अच्छे करिके और पुनः पुनः दंडवत् प्रणाम नमस्कार और प्रदक्षिणा आदि उपचार किये पीछे रातिमें उनके समीपही वीरासन बाँधि घुटुनोंके भर चौकस बनिके रहै कि जिससे गोष्टके भीतर जो खड़ीहोयँ तिनकेपास आपभी खड़ा होजाय और जो टहलती हों तिनके पीछे आप भी टहलनेलगै और जो बैठीहों तिनके पास आपहू बैठिजाय इसीतरह जब गौयें सोजायँ तब आपहू धरतीपर सोवै यह सब आचार मानूली तौरसे मत्सरता को छोड़िके निरन्तर कियाकरै औरभी ये नियम उपरालूराखै कि जब कभी किसी गऊको कुछ रोगसे आतुर देखै या पानीसे भीगीदेखै या मूतगोबरसे चिपकी देखै या चोर व्याघ्र आदि किष्कीके डरसे भयभीत देखै या गिरपडी देखै या कीच दहदहल में लिपी वा फँसीदेखै तौ इन सबको प्रारौंसे बचावै इसप्रकारसे कि चाहें ग्रीष्मकाल की लू चलतीहो या तीव्रवर्षा होती हो या बहुत जाड़ेका पाला परता हो या भंभा वायु तथा भयानक आंधी चलतीहो तौभी दुखो गऊकीरक्षा अपनीशक्ति को बराबर किये बिना अपने देहकी रक्षा न करै (यहां गऊ कहिनेसे उठकी जाति मात्रसे गोपुत्रोंकी रक्षाभी समझनी इसका दृष्टांत जैसे किसी वोभिल गायीका बेल गिरिके गाडी से दवा फँसा हो तहां आपही गाडीमें कंधा देकर बेलको दुब पीडासे उभारै इत्यादि) और भी यह नियम राखै कि चाहें निज अपने या और किसीकेघर में या खेतमें या खलिहानमें कुछ खातीहो या बछरा छूटा दूध पीताहो तौ मालिकों से न कहै• इस कहीगई समस्त विधिसे जो कोई गौ मारनेवाला गौओंके पीछे प्रणाम में जाताहै सो गऊहत्यासे किये पापको तीन महीनों से दूर कादेताहै अर्थात् पहिले एक महीना जौका दलिया फिर पीछे दो महीना अलौना कुछ और भोजन ये तीन महीने जो कहिचुके उन्हींका इसजघे उपसंहार है और उन्हींके गाय यहविधि मंत्र दशार्द्रिगई तिससे आदिसे अन्ततक एकही प्रायश्चित्तहै दोतीनक जुदेनहीं (मिताक्षरा कार अत्रोक्ततीन महीने सबसे जुदेमानिके इसको भी जुदा तीसरा प्रायश्चित्त बताते हैं पर आधुनिक अनुवादक ऐसा नहीं कहिसका क्योंकि उस एकही प्रायश्चित्तका संबंध मिलाचला आताहै जो विधि कुछ बाकीरही तो आगे देखौ कि) जिसने तीन महीना तक अच्छीतरह व्रतका आचरता किया हो सो पीछे से दशराज आरइवां

सक आंडू टयभ दानकरै परन्तु जिसके पास ग्यारह गऊदान करने योग्य द्रव्य न हो वह अपना सर्वस्व अर्थात् जो कुछ थोड़ीबहुत सामग्री वर्तनभांडे कपड़े पशुआदि घर में हो सो सब लेकर वेदके विज्ञाता विद्वान् विप्रोंको समर्पणकरै तौभी शूद्र होजाता है ॥ ० ॥ अंगिराने इसी मनुके कहे प्रायश्चित्त के साथमें कुछ और भी आधिक्य दर्शायाहै अर्थात् खेसा लिखा है कि तीन महीने मनुका कहा प्रायश्चित्त साथै पर उसके साथ इतना और करै कि (अक्षारत्ववशांरुक्षं द्युक्कालेऽस्यभोजनस्य गोमतीं वाजपेद्विद्यामोङ्कारंवेदमेवचव्रतवद्वारयेह्राडंसंभ्रं चैवदेखलास) अर्थात् इसपापीको मनुका कहा प्रायश्चित्त करतेहुये छठे काल में भोजन करना चाहिये जो खार की दस्तुनहो अलोनी हो रुक्षनहो और गोमती नामक वेदमंत्र की विद्याका जपकरै जो गायत्री प्रसिद्धहै यद्वा न बनिआवै तौ केवल ओंकार जपै अथवा विद्या में पूरी शक्ति हो तौ वेदकी संहिता पाठकरै और व्रतके नियम की भांति दंड भी धारणा करै तथा मन्त्रक्रिया सहित भेखलाभी धारणाकरै—मिताक्षराकार कहितेहैं कि इतना अधिक बढ़ाकर अंगिराने मनुके प्रायश्चित्त में बढ़ापन ठहिराया तौ इस बड़ेकोभी उसीविषयपर विचारना चाहिये कि जिस पर मनुका प्रायश्चित्त करना कहिचुके तिसमें इतनी और भी विशेषता समुभिलेनी कि जिसने मोटी ताजी या तरुना अवस्थाकी कलोरि आदि थोड़े गुरासे अतियुक्त गऊ मारीहो तिसकोलिये यह प्रायश्चित्त का बढ़ापन अंगिरा के वचनानुकूल विचारा जाय—जवकि—मनु और अंगिरा के कहे ये दोनो प्रायश्चित्त केवल उसकोलिये ठहरे कि जिसने सामान्य ब्राह्मणकी सामान्य गऊ इच्छासहित मारीहो—तौ फिर जिसने सामान्य क्षत्रीकी गाय या सामान्य वैश्य की गाय या शूद्र की गाय इच्छासहित मारी हो तिनको क्या प्रायश्चित्त विचारा जाय सो आगेदेखौ ॥ ० ॥ (विहितंयदकाशानांकासारत्तुद्विगुणांचरेदितिन्यायःप्रसिद्धः) जो कुछ प्रायश्चित्त अनिच्छासे पापहोजानेपर कहा गयाहो वही इच्छासहित पाप करनेवाला हुना प्रायश्चित्तकरै यह न्याय घंटाघोष है तिससे जिसने क्षत्री या वैश्य या शूद्रकी गाय मारीहो तिनको वही पूर्वोक्त प्रायश्चित्त यहाँ इच्छा सहित मारने के निमित्त पर हुने अर्थात् दोहरे करने चाहिये जो पहिले परिच्छेद में अनिच्छा से इन्हीं तीनों वर्गों की गाय मारने मध्ये जुदे जुदे तीनों कहिचुके हैं वहाँपर योगीचरके (२६३ । २६४) शूल श्रुतीकों का अर्थ देखौ ॥ शंका—क्योंजी गोहत्या दब सकसी करावर होनी चाहिये अभी ऊपर जो अंगिराके बताये प्रायश्चित्त में मोटी ताजी कलोरि आदि लक्षणों की पख लगाई गई वह क्या बात है—

मृतो(अतिबालासतिक्रशासतिवृद्धांचरोगिराशौच हस्वापूर्वविधानेनचरेद्वैव्रतंद्विजः)
यह वचन आगे आवैशा कि अति बालक बच्चा या अत्यन्त दुर्बल शरीर की या
अति बूढ़ी या अति रोगिनि जो स्वतः सारनेवाली होरही थी इनको सारने से द्विजाती
को उस से आधा व्रत करना चाहिये जो पहिले पूरी गाय के सारने मध्ये विधान
होचुका है—तौ इसी व्यवस्था के अनुरूप यहां सोठी ताजी जुवान अवस्था आदि
उत्तम गुण के ऊपर प्रायश्चित्त में बडापन क्रियागया सो अविश्रुत जानो ॥ ० ॥
अथविशिष्टस्वामिगोहत्याप्रायश्चित्त=हारीत मुनिका यह वाक्य है कि=गोध
स्तर्षर्माध्वंवालंपरिधाय • इत्यादिना सानवी मिति कर्तव्यता मभिन्नायोक्तं • वृ
षभैकादशाश्चगादृवा त्रयोदशोमासेपतोभवाति • तत्सवनस्यश्रोत्रियसोवधेअकाम
कृतेद्रष्टव्यं=अर्थात्—गऊ सारने वाला उसी गऊ का चमडा जिसके बाल ऊपर को
रखे सो पहिलेके • इत्यादि वचनके द्वारा यही मनुकी कर्तव्यता है सो कहि कर हा
रीतने पीछेसे दशागऊ एक आंडू वृषभ देकर तेरहवें मासमें पवित्र होना कहाहै—यो
यह वारह महीनेका प्रायश्चित्त उसके लिये विचारना कि जिसने सवन यज्ञमें लगे
हुये श्रोत्रिय ब्राह्मणाकी गऊको इच्छा विना किसी धोखे आदि कारणासे बधकिया
हो ॥ ० ॥ और जो वशिष्ठका यह प्रायश्चित्त है कि=गांवेदन्यात्तस्याश्चर्मणाद्रिंसा
परिवेषितः घरासासान्कच्छत्तप्तकच्छावातिष्ठेत् वृषगवेहतौदद्यात् • मितिवशिष्टेन
कच्छत्तप्तकच्छानुष्ठानंघरासांसिकमुक्तंतद्वारीतीयेनसमानविषयं=अर्थात्— यदि गऊ
सारडाले तो उसके गीलेही चमडे से अपना देह ढांकि ओढिके छे महीना भर कच्छ
और तप्तकच्छ दोनो तरहके व्रत क्रियाकरै (इस रीतिसे कि पहिले कच्छव्रतका एक
अनुष्ठान करिके फिर तप्तकच्छ का अनुष्ठान करै फिर कच्छका फिर तप्तकच्छ का
इसी तरह संकलितरूपसे निरन्तर करतारहै) और वृषभके सारनेसे गऊदानभी देवे—
यह वशिष्ठने छमाही के दोनों व्रतकहे सोभी हारीतके सजान मुआमिले पर सनक्ति
लेना कि जैसा हारीतका वारहमासी व्रत सवनस्य श्रोत्रिय ब्राह्मणाकी गऊ सारनेपर
कहागया तैसायह छमाही व्रत सवनस्य किसी क्षत्रीकी गऊ मध्ये विचारना चाहिये
जो विना इच्छाके बध कियाहो ॥ ० ॥ और जो देव उक्त कहा प्रायश्चित्तहै कि=
गोधःघरासासांस्तर्षर्षपरिवृत्तो गोधावाहारो गोद्रजनिदार्षा गोभिरैव नृदत्तप्रमुद्वयते=
अर्थात्—गऊ सारनेवाला छे महीना उसी का चमडा ओढिके गऊदान का आहार
करै और गौजांके गोहरमें निवास करै और गौजांके नाय फिरतारहै सो निज पाप
से छुटिजाताहै (इसमें गोधाउका आहार कहा तिजका यह तात्पर्य कि प्रायश्चित्तों

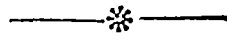
के विधानमें यद्यपि एक ग्रास वही कहा गया है जो एक बार बड़े मुहवाले आदिमी के मुहमें जासके अथवा मुर्गाके अंडे समान अन्नका परिमाण भी कह दिया है तथापि छेसहीने तक इतने अन्नसे देह थाँभना संगत नहीं है तिससे यहां गोग्रास कहि कर गऊके मुहका लसरा दर्शाया है कि जितना अन्न गऊके मुहमें एक बार जासक्ता हो उतना खाकर प्रायश्चित्तका व्रतसाधै) यह देवलमुनि का कहा हुआही व्रत भी पूर्वोक्त हारीतके समान विषयपर समझिलेना कि जैसे उसमें सवनस्थ ब्राह्मणाकी गऊ कही गई तैसे इसमें सवनस्थ किसी वैश्यकी गऊ वध करने मध्ये इसी प्रायश्चित्तको ठहराना जो इच्छा विना गऊ मारी हो ॥ अत्रापिसकायवधप्रायश्चित्तं—जिसने कासनासे चाहि कर सवनस्थ श्रोत्रियकी गऊ मारी हो तिसको अग्रोक्त कात्यायनके वचनसे तीनिवर्षका व्रतजानो=यथाह कात्यायनः=गोव्रस्तचर्मसंवीतोवसेद्गोष्टेऽथवा पुनः गाप्रचानुगच्छेत्सततंसौनीवीरासनादिभिः वर्षशीतातपक्लेशबह्निपंकभयार्दिताः मौक्षयेत्सर्वयत्नेन पूयतेवत्सरैस्त्रिभिः=अर्थात्—कात्यायन ने कहा है कि गऊ मारने वाला उसीके चमड़ासे देह ढाँकेहुये वनमें गोब्रजके ठिकाने अथवा गोंहरेमें वसे और तीनिवर्ष तक निरन्तर गौओंके पीछे फिरै तथा मौन साधै और वीरासन होकराति में बैठाहुआ गौओंकी चौकसाई आदि सेवा करते हुये वर्षा शीत आताप तीनोंऋतु के ऋतुओंको आप सहि कर उन्हीं ऋतुओंसे भयभीत गौओं को सब यत्नों से बचाता रहै सो तीनि वर्षोंसे पवित्र होता है—यह तीनि वर्षोंका प्रायश्चित्त उसी हारीतवाले विषय पर विचारना चाहिये कि जिसने सवनस्थ श्रोत्रिय ब्राह्मणा की यज्ञ संबंधी गायको इच्छा सहित मारा हो तिसके लिये—परन्तु—जो उस गऊमें थोड़ी बहुत कोई सी विशेषता भी उस तरहकी मौजूदहो जैसी आगे यम और वृहस्पतिके वचनों साथ कही जायँगी तो उस विशेषता पर इसी प्रायश्चित्तके साथ दूसरा वहभी जोडिलेना होगा जो आगे यमके वचन में गो शत १०० दान सहित दोसास का व्रत आवैगा • यह विशेषता याद रखनी चाहिये कि जो हत्यारा धनवान हो तिसके लिये ऐसा नियम है ॥ ० ॥ सवनस्थ क्षत्री और वैश्यकी गाय मारने मध्ये अगिला सकही प्रायश्चित्त है=यथाह शंखः=पादन्तुशूद्रहत्यायासुदक्कागमनेतथा गोवधेक्षतयाकुर्यात्परस्त्री गमनेतथा=अर्थात्—पूर्वोक्त महापातकोंमें दर्शाये बारह वर्ष वाले व्रत का एक चौथाई प्रायश्चित्त शूद्रका वध करनेसे तथा रजस्वलासे संगम करनेमें और गायका वध करने तथा पराई स्त्रीसे संगम करनेके पापोंमें भी करै—सो यह तीनि वर्ष का प्रायश्चित्त जिस विषयपर कात्यायनका अभी ऊपर लिख चुकेहैं उसीपर इसको समझि

लेना कि जिसने सवनस्थ सत्री या सवनस्थ वैश्यकी गाय मारीहो—किन्तु वैश्य को गऊ मध्ये विरले कर्मके अंग कर्मकारिके इसी प्रायश्चित्तको करवाना यज्ञ हत्यारा धनवानहो तो कुछ हूर आगे बढ़कर (गांचहत्वावैश्यवर्द्धितगोतमः) यह गौतमका वचन जहाँ आवै तहाँ इसकी अर्थों सहित व्यवस्था देखि भाल कर यहाँ वैश्य की गायमध्ये उसको भी विकल्प से समझि लेना कि ऊँच नीच दशा के अनुकूल वही क्रिया जाय या अत्रोक्त क्रिया जाय परन्तु अवधि तीन वर्ष की दोनों में बराबर है केवल विधानका विकल्प लेना होगा ॥ ० ॥ पूर्वोक्त सवनस्थ श्रोत्रिय की गाय मारने मध्ये एक और भी विशेष प्रायश्चित्त है कि—यसने जो अंगिरा मुनि की कही कर्तव्यता पहिले दर्शाइके सहस्र गऊ दान और गोशत १०० दानरूपी दो प्रायश्चित्त दो दो महीनाकी अवधि वाले कहेहैं उनका भी निर्णय यहाँ करना चाहिये—यदाह यमः=गोसहस्रंशतंवापिदद्यात्सुचरितव्रतः अविद्यमानेसर्वस्ववेदविद्भ्योनिवेदयेत् (तत्र यदासवनस्थश्रोत्रियातिदुर्गत बहुकुटुंबब्राह्मणसंबन्धिनीं कपिलां कर्मांगभतां गर्भिणीं बहुक्षीरतरुशामाऽऽदिगुणाशालिनीम् निर्गुणोधनवान् सप्रयत्नं खड्गादिनाद्यापादयति तदागोसहस्रयुक्तं द्वैसासिकंकुर्यादित्येकंव्रत मितिमिताक्षराकाराः) गर्भिणीं कपिलांदोग्धीं होमधेनुंचसुव्रताम् खड्गादिनाघातयित्वादिगुणां व्रतमाचरेदिति विशिष्टायांगविवार्हस्पत्ये प्रायश्चित्तदर्शना दितिच मिताक्षराकाराः (अतएव प्रचेतसां स्त्रीगर्भिणी गोगर्भिणी बाल वृद्ध वधेषु भूराहाभवतीति ईदृग्वधमेव गोवधमभिसंधाय ब्रह्महत्याव्रतमतिदिष्टं इत्येकस्यैवव्रतस्यनिर्णयः) =तथाद्वितीयंव्रतं धान्य गोशत १०० दानयुक्तं द्वैसासिकमेव कात्यायनीय व्रत वियये धनवतो द्रष्टव्य मित्यपि मिताक्षराकाराः=अथति—यह सब निर्णय यमके कहे दोनों व्रतोंका मिताक्षराकार लिखते हैं कि० यसने अंगिरामुनिकी कही दोसासकी कर्तव्यता दर्शानेके साथ सेवा कहा है कि—इस व्रतका अष्टा आचरणा क्रिये पीछे एक हजार गाय अथवा एक १०० सौ गाय दानकरै यदि उसके पास इतना न हो तो अपना सर्वस्व लेकर वेदके विज्ञाता विप्रोंको निवेदन करदेवै (तहाँ मिताक्षराकार कहिते हैं कि पहिले एक सहस्र गाउदान वाला प्रायश्चित्त दोसासका उसको करना चाहिये जो आप निर्णय और धनवान् होते इच्छा सहित बड़े उपायोंसे तनवार आदि शत्रुओंसे उनगऊ का बधकरै जिसका सालिक श्रोत्रिय ब्राह्मण बड़े कुटुंबसे धनहीन दुर्गति में गिरा होनेपर भी सदनयज्ञमें लगाहो और वह गाय भी जिज्ञ आप कपिना व्रत से और यज्ञमें कर्मांग भूत माली गई और गर्भसे संयुक्त और बड़ी दुवार और तनगाई आदि

गुराों से भी उत्तमहो यह एक व्रत ढहिरा) फिर इस बातका प्रमारा भी सिताक्षरा कार देतेहैं कि अत्रोक्त सबगायके विशेषणोंको वृहस्पतिने भी ऐसे कहाहै कि० ग० गर्भवती और कपिला और दुधार और होमके निमित्त दूध देनेवाली और सुव्रता गऊ कि जिसका दर्शन पूजन आदि सत्कार व्रतके नियम साथ क्रियाजाताहो ऐसी गाय को तलवार आदिके वध करिके दुगुना व्रतकरै जो वृहस्पति पहिले सामान्य गऊ के मारने पर कहिचुकेहों तिससे० यह विशेष लक्षणावाली गऊके वध करने में विशेष प्रायश्चित्त देखा गयाहै तिससे ऊपरली व्यवस्थाको अनर्थक मत समझना यह सिताक्षराकारोंने कहा० फिर कहिते हैं कि (इसी हेतुपर प्रचेताने भी ऐसा कहा है कि० गर्भवती नारी और गर्भवती गाय तथा बालक और ब्रह्मेकावध करनेवाला भू गा हत्या भागी होताहै इस हेतुसे इसी प्रकारके गोवधपर ब्रह्महत्यावाला व्रत भी उन्हीं प्रचेताने अतिदेश उतारा है कि शाभिन आदि गाय का वध करिके ब्रह्महत्या पर कहे व्रतको करै० इनबातोंको देखनेसे स्वतः सिद्ध होताहै कि इतना बडा प्रायश्चित्त जो सहस्र गोदान सहित कहागया वह सामान्य गऊके वधपर नहीं चाहिये० यहां तक यमके कहे एकही बड़े प्रायश्चित्त का निर्णय पूरा हुआ)=तैसाही यम का कहा दूसरा व्रत अन्नके गोशत १०० दान सहित दो सहोनेवाला जो ऊपर कहिचुके तिसको कात्यायनके कहे तीन बर्य वाले प्रायश्चित्त के साथही जोडिके धनवान् हत्यारेपर आरूढ किया जासक्ताहै यदि कोईसी अत्रोक्त विशेषता भी पापमें पाई जाय अन्यथा नहीं ॥०॥ एक और व्यवस्थाहै कि गौतम ने जो प्रायश्चित्त० एक आंडू बृषभ और सौ गायके दान सहित तीनिवर्षका प्राकृत ब्रह्मचर्य रूपी० वैश्यका वध करनेवालेको उपदेशिक प्रधानतासे कहिकर पीछे गोहत्या पर भी उसीका अतिदेश उतार दिया है (गांचहत्वावैश्यवर्दित) इस वचन से—यद्यपि—यहाँ विचार से यह तात्पर्य ठीक होताहै कि ऊपर जहां सबनस्थ क्षत्री और सबनस्थ वैश्य दोनों की गाय वध होनेपर एकही प्रायश्चित्त केवल शांखजीके वचनसे कहागया तहां पर इस प्रायश्चित्तको सबनस्थ वैश्यकी गाय मारनेसमये धनवान् हत्यारेपर आरूढ करै अर्थात् उसीशांखोक्तके साथ इसका बदलधनवान् हत्यारेपर ढहिरायाजाय निर्धन पर नहीं—परन्तु—विज्ञानेश्वर सिताक्षराकारके विचारसे किसी वैचारिक व्रतमें कहीं गव्हेर् ० धेनुके साथगौतमोक्त १० २ एकमौ एक जोडनेसे १६ १ नौकस दोसौ संख्या होती हो या नहो तोभी हजार गऊ सहित दोसहीना वाले व्रतसे यहगौतमका छोटा देवि परताहै तिसहेतुसे इतगौतमके कहेप्रायश्चित्तकोउसप्रकारकी गोहत्यापरसमझिलेना

कि जिस गऊ का स्वरूप इससे पहिले परिच्छेद में कहि चुके परन्तु उस परिच्छेद में लिखे प्रायश्चित्तों से यह गौतम का बड़ा है तिससे यह भेद है कि वैसेही स्वरूप वाली गऊ का वध कोई इच्छा सहित करे तिसकेलिये समझना अथवा उसीस्वरूप की गऊ यदि गर्भ सहित किसीने इच्छा विना धोखे आदि से वध करी हो तिसके लिये भी समझना और भी जैसी उत्तम गऊ सबनस्थ स्वामीकी हालहीके बरान में कही गई सो यद्यपि गर्भ रहित हो और इच्छाविना मारी गई हो तौभी कात्यायनका कहा तीनवर्षका प्रायश्चित्त कराना चाहिये अर्थात् जो ऐसी उत्तमगऊ गर्भवती हो तौ इच्छाविना मारीजाने में भी इसी कात्यायनके तीन वर्षोंसाथ हजारगऊ या सौगऊका दान भी दो नहोने के प्रायश्चित्त सहित जोड़िलेना चाहिये जो हत्यारा धनवान् होय यह सब ऊपर बरान हो चुका है परन्तु जिसमें बहुत गौओंका दान हो सो धनवान्का प्रायश्चित्त है निर्धनको सर्वस्व दानकरना आदि उसकी दशाके अनुसार उपाय सोचिलेना ॥ ० ॥ अथ शस्त्रविशेषैर्गोहनन प्रायश्चित्तनिर्णयः—जिस किसीने जैसे शस्त्रोंसे मारी हो तिसके भी जुदे जुदे प्रायश्चित्तोंका निर्णय यहाँ यम के वचनों से लिखते हैं—यदाहयमः=काष्ठलोष्टाप्रमभिर्गाविःशस्त्रैर्वनिहता यदि प्रायश्चित्तं कथं तत्र शस्त्रैश्चैविधीयते काष्ठे सांतपनं क्षुर्यात्प्राजापत्यन्तु लोष्टके तप्त कृच्छ्रं तु पायारो शस्त्रे चाप्यति कृच्छ्रकस प्रायश्चित्ते तत्पृचीर्गोक्षुर्याद्ब्राह्मणभोजनं त्रिंशद्गावृषभंचैकंदद्यात्तेभ्यश्च दक्षिणात्=अर्थात्—जो लाठी लकड़ी या मड़ीकाठीन या पत्थरों से गौयें मारी हों या शस्त्रोंसे तिनका प्रायश्चित्त कैसे हो तहां जुदे जुदे हथियार पर विधान किया जाता है कि जहाँ काठसे मारी हो तहां सांतपन व्रत करे डलेसे मारी हो तौ प्राजापत्यकरे पत्थरसे मारे सो तप्त कृच्छ्र करे लोहेके हथियारसे मारी हो तौ अतिकृच्छ्र करे और प्रायश्चित्तों के पूरे होनेपर ब्राह्मण भोजन करावे और तीस गौयें तथा एक वृषभ और दक्षिणा भी उन्हीं ब्राह्मणोंको दानकरे यहविधि इतनी सबके पीछे लगी है यह समुझिलेना—सो ये यमके कहे व्रत छोटेहैं तिनसे ऐसी दशापर समुझिलेना कि जहाँ लकड़ी पत्थर आदिसे गऊको बहुत नारने परभी गऊ प्राणोंसे बचि गई हो तौभी इतना प्रायश्चित्त कराना चाहिये अथवा यदि गऊ इन्हीं हथियारोंसे मर गई हो तौभी पूर्वोक्त प्रकारोंसे प्रायश्चित्त कायम किये पायि उन्हीं में इन वचनों की विशेषता जोड़िलेनी चाहिये इनका यह दृष्टान्त है कि जैसे जिन किसीपर पूर्वोक्त कात्यायन के वचनों से तौनि दण्ड का प्रायश्चित्त विधान में द-हिरा हो या उल्लेखाय हजार या सौतीयें देनी दहिनी हों तहां यदि वह भी दानिव

होजाय कि पत्थरों से मारी गई तो फिर उन्हीं तीनि वर्षोंतक तत्र कृच्छ्रव्रत बारबार करतारहै इसीतरह और भी समुझिलेना परन्तु केवल यहीव्रतकरना असंगतहै ॥२६३॥ २६४ ॥ इन्ही प्रलोकोंकी अधिकोक्ति के श्रेय पाठमें यह परिच्छेद है ॥



अतिवृद्ध्यादिगोहनन-बहुकर्तृभिहननाद्यनेक गोवध भेदानां प्रायश्चित्त प्रकाशकोऽयं

परिच्छेदः द्विचत्वारिंशः ४२

इस परिच्छेद में गोहत्या के छोटे मोटे अनेक भेदों से प्रायश्चित्त वर्णन होंगे—अर्थात् अति बूढ़ी बालक आदि मारने का प्रायश्चित्त १ और गर्भ गिराने मारि देनेका प्रायश्चित्त २ एकगायको अनेक मिलिके मारै तिसका प्रायश्चित्त ३ कृषि घेर अनेक गौओंको एकही कोई मारै तिसका प्रायश्चित्त ४ पुरायके हेतुसे भी अवि आहार आदि खुलाइके मारै तिसका प्रायश्चित्त ५ गाय मरजाने योग निमित्त करनेवाले का प्रायश्चित्त ६ इतने उक्त भेदोंके प्रायश्चित्त इसी क्रमसे लिखे जायेंगे ॥

(अतिवृद्धरो गिन्यादिवधप्रायश्चित्तं)

अतिवृद्धामतिक्रशामतिबालां चरोगिरास हत्वा पूर्वविधानेन चरेद्वर्षं व्रतं द्विजः ब्राह्मणान्भोजयेच्छुक्त्वा दद्याद्भेसतिलांस्तथा=अर्थात्—अतिशय बूढ़ीया अतिशय बच्चा या अतिशय दुर्बल या अतिशय रोगिनि गायको इच्छा बिना दैवयोगसे यदि कोई द्विजाती पुरुषवधकरै सो उनव्रतका आधा प्रायश्चित्त करै जो चालिसके परिच्छेद में निरोगिनि आदिपर कहि चुके—या—जिसने इच्छासहित खेसीहत्या करीहे सो आधा नहीं किन्तु इन्हीं व्रतोंको पूरा पूरा करै जो बिना इच्छाके निरोगिनि आदिका वध होजाने मध्ये चालिसवें परिच्छेद में कहि चुके अथवा उन व्रतोंको आधा करै जो इकता तिस के परिच्छेद में इच्छासहित गोहत्यापर कहि चुके=इसी व्यवस्थामें=बच्चा के मरने मध्ये वृहत्प्रचेता ने छोटे प्रायश्चित्तोंके प्रयोजन से विशेष भेदभी दर्शाये हैं कि बच्चा कितनी अवस्था का हो=ग्रथाह=एकवर्षेहतेवत्सेकृच्छ्रप्रादो विधीयते अत्रुद्विपूर्वेपुं नः स्याद्विपादस्तु द्विहायने विहायने त्रिपादः स्यात्प्राजापत्यमतः परम=अर्थात्—

लाह प्यार से राखते हुयेभी एक वर्ष का बच्चा पुरुष की अज्ञानता में यदि आपही मरजाय (अबनहीं जाना जासक्ताहै कि भूख पिथास आदि किस हेतु से मेरी गफलत में मरगया)ऐसी दशा में केवल छच्छू प्राजापत्यव्रतका एक पाद चौथाई व्रतक्रिया जाता है जो तीनिही दिनमें निपटि जाय० इसी प्रकार दो वर्षका बच्चा मरजाने में दो पादव्रतक्रिया जाय जो छे दिन में निपटै० इसी ढंगसे तीन वर्ष का बच्चा मरजाने से तीनि पाद व्रत क्रियाजाय जो नौ दिनमें निपटै (अतःपरंप्राजापत्यं) जो तीनिवर्ष से अत्रिक अवस्था का बच्चा मराहो तो पराही प्राजापत्य व्रत करना चाहिये जो बारह दिनमें होता है (इससे ऊपर के बच्चों में जो अति बालक बच्चा के मरने पर बड़े प्रायश्चित्तोंका आधाव्रत करना कहा जो यहां के पूरे से भी बहुत बडा व्रतहोता है तिसका यह कारण है कि (बहाँपर हत्वा और यहां पर बत्सेहते) इन क्रियाओं के अर्थ भेद सोचौ कि वहाँ तो इच्छा विनाभी पुरुष के हाथ से बच्चा मरने का प्रायश्चित्तहै यहांपर गफलतसे आपही मरजाने मध्ये छोटे प्रायश्चित्तहैं ॥ ० ॥ गोगर्भनिपातनप्रायश्चित्तं—गर्भिणी गाय मारनेसे गर्भके हतहोजानेमें पापका दूसरा निमित्त खडा होताहै कि इसपर दो प्रायश्चित्त कराने चाहिये सो इस गर्भके प्रायश्चित्त पर एक जुदी व्यवस्था है जो षट्त्रिंशन्मत नामके शास्त्र में विशेष व्यौरासे वर्णन करी गई है=यथा=पादउत्पन्नमात्रेद्वौपादौद्वुद्धतांगते पादोनंत्रतमुद्दिह्यंहरत्रागर्भमचेतनसु अंगप्रत्यंगसंपूर्णोर्गर्भचेतःसमन्विते द्विगुणांगोव्रतंक्रुयादेयागोघ्नस्यनिष्कृतिः=अर्थात्—गर्भजो पेटमें हालही जमि चुकाहो तिसके माताके साथ इनन होजाने में सवाया प्रायश्चित्त कराना चाहिये परन्तु जो गर्भ कुछ सज्युत भी होचुका हो तिसके मध्ये ड्योडा प्रायश्चित्त और जिस गर्भ को चेतना अवतक नहीं उत्पन्नहुई पर बढवारी में पूरा पिंड होचुका हो तिसके मध्ये पौनदूना अर्थात् तीनपाद अत्रिक प्रायश्चित्त चाहिये परन्तु जो गर्भ अपने अंग और प्रत्यंगों से युक्त होकर चेतना से भी संयुक्त हो अर्थात् पेटमें चलता फिरता भी हो तिसके वव होजाने से पूराही दूना प्रायश्चित्त चाहिये किसक उसका और एक उसकी माता का यह दोनों निरन्तर एक साथही दूनी अवधिमें साधन किये जायेंगे दोजारमें नहीं—अथवा क्रिडा दगा मेंयदि गर्भका विनाश होकर माता वचिजाय तहां माताके निमित्तका प्रायश्चित्त छोडिके इसी उक्त हिसाब से एक पाद या दोपाद या तीनि पाद या पूराही प्रायश्चित्त क्रिया जाय किन्तु ऊर्ध्वोक्त छोटे बच्चे वाले छोटे प्रायश्चित्त इनमें उचितन होंगे ॥ ० ॥ बहुकृत कहननप्रायश्चित्तं—जहां अनेकों ने मिलिकर राऊ मारी हो

तिसके मध्ये संवर्त और आपस्तंब दोनोंने एकही तुल्य विशेषता कही है=यथा=एका
 चेदहुभिःकाचिद् वाद्वयापादिताक्षाच्च पादं पादं तु हत्याया प्रचरेयुस्ते पृथक् पृथक्=
 अर्थात्—कोई एकही गऊ कहीं दैवयोगसे बहुतों ने मारी हो तो वे सभी हत्यारे लोग
 प्रायश्चित्तकी एक एक चौथाई जुदे जुदे जाकर करें परन्तु यह नियम उठी दशापर
 समझा जासक्ता है कि जहां मारनेवाले अधिक संख्यामें चाहें तितनेहों पर चारिसे
 कमनहों क्योंकि दोके उपरान्त तीनि को आदिकेकर बहुत्व कहाता है जहां तीनिही
 पुरुषोंने मारी हो एक एक पाद करने से तीनिही पाद प्रायश्चित्तकेहोंगे चौथाशेय
 रहिजायगा तिनसे दो या तीनि पुरुषोंके होनेसे दो दो पाद उखी प्रायश्चित्तकेकराये
 जाय जो उक्त भाँतिकी गऊमध्ये पहिले वर्णान हो चुका हो एवं पाँच पुरुषोंको आदि
 लेकर निःसंदेह एक एक पाद कराया जाय और जैसा एक गाय पर कहिचुकेतैसा
 जहां दोगौओंको अनेक मिलिकेमारें तिनसे दो दो पाद प्रायश्चित्त कराना चाहिये—
 परन्तु तीनि आदि अनेक गौओं को अनेक जने मिलिके मारें तहां निर्विकल्प यही
 नियम जानों कि मारने वाले सब जुदे जुदे तीनि पाद अर्थात् पौन पौन प्रायश्चित्त
 आचरें—यह सब नियम इच्छा के बिना वध करने का समझना क्योंकि प्रलोक में
 देवात् दैवयोग से मरजाना कहा गया=तिससे=जहां इच्छा सहित अनेकोंने मिलि
 के एक गाय का वध किया हो तहां सब जुदे जुदे पूराही प्रायश्चित्त करें कि जैसे
 सब यज्ञ कार्य में अनेकों का मिलाप प्रत्येक जुदे पुरुष को व्यापार साधन करनेका
 पूरा फल होता है तैसे ये सब हत्यारे भी परे पापके भागी होते हैं बल्कि व्यवहार
 काण्ड में (एकं व्रतां वृहन्तु यथोक्तो द्विशुरां दिसः) यह षण्ड के स्थलपर कहा गया है
 कि यदि एकही मनुष्य को बहुत जने मिलिके मारें तिन सबको दूना षण्ड देना चा-
 हिये जो मनुष्यके मारनेका षण्ड लिखा हो तिससे—इस प्रमाणा से भी सब जुदे जुदे
 को पूरा प्रायश्चित्त सूचित होता है ॥ ० ॥ रोधादिनापि गोसमुदायहननप्राय-
 श्चित्त—सूधने बाँधने आदि प्रकारोंसे एकही ने बहुतसी गौएँ मारडाली हों तिसके
 मध्ये संवर्त और आपस्तंब दोनोंने एकही तुल्य विशेषता कही है=यथाहत्तुः=व्याप-
 नानां वृहन्तु रोधने बाँधने तथा भिद्यङ्गस्थिषोषचारे च द्विशुरां गोव्रतं चरेत्=अर्थात्—सूधने
 या बाँधने में जो बहुतसी गौएँ मारडाली और भी विरोधी चिकित्सा के उपचार में
 जो गाय बैल मरजाय तिसकी भी दूना प्रायश्चित्त करना चाहिये यही नियम है—
 अर्थात् सभी दशामें बहुतोंके मरजाने परभी प्रत्येक जीवहानि का जुदा प्रायश्चित्त
 न ही किया जासक्ता है (और तंजात्मक म्थाय की प्रदानतासे एकभी नहीं करना योग्य)

तिससे इसीअत्रोक्त वचन के बलसे दुधुनाही व्रत करना चाहिये कि जैसी प्रतिष्ठा वाली सकगाय के मरजाने पर पहिले वर्णन होचुका हो उसी प्रतिष्ठा वाली एक जनेसे अनेक मरजार्य तिनमें सिर्फ दूनाकरै० तथैव इसी अत्रोक्त वचन के बलसे गौओं का चिकित्सक भी विरोधी दवादारु आदि करने से इच्छा बिनाही अनेक वा एक भी गऊका प्राण बिनाशै सो दूना व्रत करै—यहां पर इच्छा जिनाभी गोवध होजाने में बहुत बड़े प्रायश्चित्तों का दुधुना करना कहा तिसका हेतु केवल बहुत गौमें एक साथही मरजाना समझ लेना० अन्यथा रोध बंधन आदि से सकही मरजाने मध्येछोटे प्रायश्चित्त हैं सो अगिले परिच्छेद में देखना ॥ ० ॥

आहाराद्याधिक्येनापिगो हननप्रायश्चित्तं—पशुवैद्यसे उपरालू जो कोई केवल उपकार के निमित्त से ही विपरीत औषध आदि कुछ देकर इच्छा बिनाभी यदि प्राण हरै तिसके मध्ये व्यास का अत्रोक्त वचन है=यदाह व्यासः=औषधंलवणांचैव पुरायार्यमपिभोजनस अतिरिक्तं नदातव्यं कात्पेस्त्वल्पंतुदापयेत् अरिक्तोविपत्तिश्चेत्कच्छपादोविधीयते=अर्थात्—दवाई या नमक जो पशुओं को दियाजाता है या कोई अपने पुरायकेलिये अच्छा भोजन आदिके पिंड आदि वा सुखानाज आदि कुछ खवानाचाहै सो अनुचित समय पर भूख परिमान और डील डौल के अनुमान से अधिक न खवावै यह शिष्या देकर कहिते हैं कि नमक हलदी तेल आदि कोई चीज हितके लिये रोज रोज कल्प के विधान से जो देनी परै सोभी उचित परिमान से कुछ कम करिके ठीक समय पर देना चाहिये जो हजम होके शुभा करसकै—अन्यथा जहां बहुत खवाइ देने आदि से यदि गायकी प्राण हानि होजाय तहां कच्छ व्रतकी एक चौथाई प्रायश्चित्त कराया जाता है ॥ ० ॥

निमित्तकर्तुः प्रायश्चित्तप्रसंगात् रोधादिपुविशेषोक्तिः—अंगिरा ने रोधबंधन आदि से मरने में विशेषता कही है तिसका च्यौरा समझना चाहिये=यथाहांगिराः=पादमेकंचरेद्रोधेद्वौपादौबंधनेचरेत् योजनेपादहीनस्थान्चरेत्सर्वं निपातने इति (तद्व्यवहितद्वयापारिसौनिमित्तकर्तुर्विज्ञेयंसाक्षात्कर्तुः=अर्थात्—इं-वि के सारने में एक चौथाई व्रत करै और बांधने से मरने से आधा प्रायश्चित्तकरै और दोहरे को बहुरा जोड़ने से अर्थात् जांघ में जुड़ा रहिजाने आदिकिती हेतु से मरजाने में एक चौथाई छेडि थैव तीन पाव प्रायश्चित्तकरै और निपातन अर्थात् जंघे नीचे गिराइके सारने से पूरती प्रायश्चित्त करै (यह तीन महीना वाले मनु के कहे प्रायश्चित्त की योग्यता यहां समझनी जो ७६५ की अद्वितीयांश में कही चुके है) यह अंगिराके कहा—सो उदकोलिये उतपत्ता जो जानात्कार क्यारा न हो

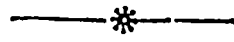
किन्तु—निमित्त कर्तृस्त्रिये होय—निमित्त कर्ता का स्वरूप ब्रह्महत्या के प्रकरण में आच्युक्ता है कि ब्राह्मण का मारना नहीं चाहता था पर किसी तरहसे खिझाने लगा था गाली आदि अपमान करनेलगा तिससे ब्राह्मण आप उसके हेतुसे मर गया तो वह निमित्तकर्ता हत्यारा ठहिरा—तैसा यहांपर भी समझलेना कि यद्यपि गाय को मारना नहीं चाहा परन्तु ऐसा कोई निमित्त पैदा कि जैसा अपने घर खेत आदि पर आती देखि संकट का मार्ग होतेहुये तीव्र बेग से खेदिकर ललकार मारी या गाय का पीछा किया जिससे वह घबड़ा कर किसी ऊँचे नीचे या जल अग्नि आदिमें आवही गिरिके मरी तो यह निमित्तीह्यारा ठहिरा० यद्वा इन ढंगों से भी मौतका निमित्त होता है कि जंगल में चराते या बाँधते छोड़ते समय ग्वालिया को किसी तरह का भूँठ धोखा देवै कि इधर के मंजवन में तेरा एक बच्चा कुत्ते खींचे लिये जाते हैं जल्दी दौड वह घबड़ा कर उधर भागा इधर सिंह वा भेड़िये ने आकर एक गाय मार डाली तो यह धोखा देने वाला यद्यपि साक्षात् हत्यारा नहीं है पर निमित्ती हत्यारा ठहिरा इत्यादि नाना प्रकार से निमित्त पैदा होसक्ते हैं किन्तु (साक्षात् हत्यारा जो खूँविवाँधि आदि किसी प्रकार से बहुत गाय मारै तिसको दूना प्रायश्चित्त ऊपर कहिचुके हैं संवत्त और आपस्तंब के वचन में देखौ)—यहां पर—मिताक्षराकार कुछ औरही प्रकारसे मुख्य कर्ता और निमित्ती कर्ता के लक्षण भेद बताते हैं और ऐसा कहिते हैं कि दोनोंका भेद उन्हीं अंगिराने दर्शाया है सो उनका दूसरा वचन आगे देखौ=यथाहंगिराः (पायारौर्लंकुटैर्वापि शस्त्रेणान्येनवाबलात् निपातयंतियेगास्तु क्लृप्त्स्नं कुर्युर्व्रतंहिते तथैवबाहुजंधोक्त पाष्वर्ध्वीवांग्रिसौत्नैरिति) इस वचनका अर्थ तो प्रत्यक्ष यहीहै कि—पत्थरों या लाठियों या और किसी शस्त्र से अपदस्ती जे कोई गौसे विनाश करै वे पूराही व्रतकरै तथा वे भी पूरा व्रतकरै जो गायको बाहें जाँघ धूँठे पशुली आदि और गर्दजि खुर चरगा इनको मारोडा देकर मारै (यद्यपि नव तरहके गोयध पर प्रायश्चित्त वर्णन होचुके हैं तिससे इस क्रमेत् विशेषताओं वाले वचनसे प्रयोजन भी कुछ नहींरहा क्योंकि जिसने दुर्जनतासे इच्छा सहित गाय मारनी चाही तिसने चाहें तैसे मारी सर्वथा हत्यारा ठहिरा उसके लिये दुगुने और बड़े बड़े प्रायश्चित्त कहिचुके तो फिर यहां पूरा और अधूरा कहिना प्यथाहै) इस थोथरी दशाके होनेपर भी हमारे परमपूज्य गुरु मिताक्षराकार अपना मनमौजी नटक इसी वचनके साथ आगे लिखते हैं कि जितमें प्रत्यक्ष एकही अर्थ ऊपर लिखानया उतों पहिजा ववा खींचकर दो भेद खड़ेकरते हैं सो देखौ=यथा

हुर्मिताक्षराकाराः (अथैतदुक्तं भवति पाचासाखड्गादिभिर्ग्रीवामोतनादिनावायेगां
निपातयन्ति तेषां साक्षाद्भ्रतारस्तेष्वेव कृत्स्नं प्रायश्चित्तं • ये तु व्यवहितरोध वंधादिव्या-
पारयोगिनस्तेर्निमित्तिनः तेषां न कृत्स्नं व्रतसंबन्धः किन्तु तदवयवैरेव पादद्विपादादिभि-
रिति • तत्र च रोधादीनां व्यवहितव्यापारत्वाविशेषोपि क्वचित्पादं क्वचित्द्विपादं पा-
दोनं क्वचिदित्युक्तं) = अर्थात्—यहाँ अंगिराके वचनपर ऐसा कहीं कहा है कि प-
त्यर तलवार आदिसे या गर्दनि मिरोडने आदि प्रकारोंसे जो लोभ गायको विनाश
करते हैं वे साक्षात् सारनेवाले इत्यारे कहाते हैं उन्हीं में पूरा प्रायश्चित्त चाहिये •
और जे कोई ढँकेहुये रोध वंधन आदि उपाय मिलाने वाले हों सो निमित्ती कहाते
हैं उनके लिये पूरे व्रतकी योग्यता नहीं है किन्तु रोध वंधन आदि पूर्वोक्त उसके अंग
भेदोंसेही एक पाद या दोपाद आदि व्रत चाहिये जैसा इन्हीं अंगिराके पहिले वचन
में ऊपर कहि चुके • तहां रोध वंधन आदि जो जो निमित्त कहे गए तिनमें यद्यपि ढँके
उपायों का विशेषण कोई नहीं है तौभी उस वचनको यहाँपर निमित्तीके साथ मि-
लानेकी गरजसे अत्रोक्त वचनके अनुसार वहाँ भी यही समझिलेना कि ढँकेहुये उ-
पायों वाले निमित्तीके लिये वहाँ एकपाद दोपाद कहीं तीनपाद प्रायश्चित्त ठीक
होगा (ध्यानकरो यह दूसरी भाँति के निमित्ती वाली व्यवस्था अंगिरा के पहिले
वचनसे खींचिके बनाई गई जिस निमित्तीकी गर्ज से उस ऊपरले पहिले वचन का
सच्चा अर्थ भी बिगडने लगा • क्योंकि यहाँ पर ढँके हुये उपाय करने वाला निमित्ती
ठहिराया गया ढँकेहुये उपाय भी ऐसे ढंगोंसे होते हैं कि जैसे जिस मार्गमें रातिको
वेखरके गौसे निकसा करतीहो उसी मार्गमें कोई दुर्जन ऐसा ढँका उपाय रचिराखे
कि जैसी हाथी पकड़नेको औगी पाटी जाती है उसमें गिरिके गाय सरजाय अथवा
बहुतसे सुखे घास फूसके स्थानपर जहां गौसे सोती बैठतीहो तहाँ कोई दुष्ट जो छिपि
के आँग लगादेवे जिससे गौसें जलिसरे तौ यह दोनों भाँतिके ढँके निमित्ती ठहिरें
परन्तु ऐसे दुर्जन आततायियोंको क्योंकर एक पाद दो पाद आदि छोटे प्रायश्चित्त
कहेजायक्त हैं किन्तु ऐसे महापापियोंको द्विगुणा त्रिगुणा प्रायश्चित्त कहेजायें सो
भी थोडे हैं—और ऊपर (पादनेत्रचरेगदे इत्यादि) इस अंगिरा के वचन में जो नि-
मित्ती लानेरह तिनके निमित्त सब खुल्लभहुया करते हैं जिनसे प्रायश्चित्त हरकोष्टे आया
नहीं खासत्ता और अर्थार्थमें उनके किये खुल्लभ निमित्त इस बाँधाने नहींहोते कि
गायको सरवाइ डारें केदह वे अपनी दिलवरी या कोबके लभान से निमित्त पैदा
करते हैं तिससे देवयोगदे यदि सायके प्राण चनेजायें तिनसे निमित्ती ठहिरके एक

दो पाद आदि प्रायश्चित्तके भागी होजाते हैं—इसके सिवाय—उस ऊपरके निर्लेप वचनको खींचिके ऐसे वचनके साथ जोड़लेना जिसमें पत्थर हथियार आदिसे और गर्दन आदि अंगोंको तोड़ मडोरिके मारने वाले निर्दयी कसाइयोंका चर्चाहै यह कोई बात व्याख्यात्मक नहीं देखि परतीहै बल्कि विचारसे वह पत्थर आदिवाला वचन अपने मूलरूपहीसे निरर्थक है तिससे इतनी बड़ी व्यवस्थामें कोई ठीकठीक सारांश नहीं पाया गया=अथवा=ऊपर जो मिताक्षराकार ने संस्कृत व्यवस्था में यह लिखाहै कि (येषुव्यवहितरोधबंधादिव्यापारयोगिनः तेनिमित्तिनः तेषांनक्तस्त्रयतसंबंधः) इस पंक्ति का ऐसा अर्थ लगाया जाय कि•जे कोई लोग व्यवहित अर्थात् दीवार आदि किसीआडमें या दूसरे शूनेमकान गोंहरेघरे आदिमें गौओंको लुष्टा लुंधिके या रस्सी आदिसेबाँधिके आप जुदे स्थानआदि पर व्यापार धंधोंका योग प्रबंध करते रहें कि जिन धंधोंकी भूलमें अकेली बँधी गौओंके प्राण किसी प्रकारसे जातेरहें तो यह भूलवाले रक्षक या मालिक निमित्ती होतेहैं अर्थात् साक्षात् हत्यारे तो नहींहैं परन्तु निमित्त रूपी हत्याके प्रायश्चित्ती होतेहैं क्योंकि बेखबरीका निमित्त उनपर ठहिरा—फिर इस अर्थके अनुष्ठान अगिराके सबसे पहिले वचनमें इस तरहसे व्यवस्था जोड़ीजाय कि रूंधनेसे मरीहोय तो एकपाद व्रतकरै (यह एकपाद २२॥ साडे वाइस दिनमें होताहै) जो बँधीहुई मरी होय तो दोपाद किन्तु आधा प्रायश्चित्त करै जो टाँगमें बच्चा बँधा रहिजानेसे मरीहोय तो तीनपाद व्रतकरै जो ऊँचे नीचे गिरायके मारीहो तो पूरा प्रायश्चित्त करै जैसा हाथसे मारने लथे कहिचुके हैं—तो इस व्याख्यासे सारांश यद्यपि निकसता है (तथापि दूसरे पत्थर लाठी हथियार वाले असंगत वचनको इसके साथ जोड़ना कुछ सारांश नहीं है क्योंकि वैसे मारनेवाले निपट कसाई ससभने चाहिये तिनके लिये प्राणांतिक प्रायश्चित्तकी योग्यता पाई जातीहै क्योंकि पूरा व्रतमात्र उनको कहें) और दूसरा यह विरोध खडा होताहै कि जिस प्रकारके निमित्ती इस व्याख्यामें कहेगए तिनके लिये भूलभावका प्रायश्चित्त आगे पराशरके वचनसे छोटाया प्राजापत्य साथ समीको एकसाँ कहा जायगा और संवर्तके पहिले वचनमें बड़े प्रायश्चित्तकी चौथाई और आधा और पौना कहे गए तिनकी चौथाई भी (साडेवाइस दिन) प्राजापत्य से बहुत बड़ी होतीहै फिर आधा और पौना यहाँ भूल गफलत के ऊपर कैसे धर्मन ठहिरै—तिससे जिन प्रकारके निमित्ती ऊपर संवर्त वाले पहिले वचनके साथ ही लिखिचुके तिनके लिये तथोक्त प्रायश्चित्त ठीक प्रतीत होतेहैं क्योंकि वे निमित्त

पैदा करने के हेतुसे एक प्रकारके मध्यम अपराधी समझेजाते हैं यह जानो ॥ और शूनेमकालमें अकेली बंधी रहिना आदि छोटी छोटी बातें ऐसी बहुत हैं जिनसे भूल वा अज्ञानतामें मरजाने के छोटे छोटे प्रायश्चित्त हैं सो सब अगिल परिच्छेदमें प-राशर और आपस्तंब और संवर्त आदिके वचनोंसे देखना ॥ २६५ ॥ इसी मूलप्रलोक वाली टीकासे यह पाठ चला आता है ॥ २६५ ॥

अथबंधनयोक्तृत्वाहवाहादिकर्मसुबहुविधव्यतिक्र- मभेदोपपातकानांप्रायश्चित्त प्रकाशकौऽयंपरिच्छेदः त्रिचत्वारिंशः ४३ ॥



इस परिच्छेदमें केवल विरली बातें छोड़िके सर्वथा अनपेक्षित गोमरणाकाचर्चाहै कि यद्यपि किसीने मारना या मरना नहींचाहा परंतु दैवयोगसे बाँधने छोड़नेजोड़ने जोतने बाहने दागने आदि जल्दरी कर्मोंके धंधोंमें व्यतिक्रम होजानेसे कोईवैज गाय मरजाय तहाँ रक्षक या स्वामीको उपेक्षाके पलटे कुछ प्रायश्चित्त करना होता है। तिसके भेद सबक्रमसे आगे आवेंगे—तहां प्रथम बाँधने छोरने आदि बातोंका १ फिर दागने बाहने आदि का २ फिर घंटा बजिके मरने का ३ जंगल आदिमें रखवारी की भूलका ४ कहीं चिकित्सा आदि करते मरजाने का दोषाभाव ५ कहीं हाड आदि टूटिके न मरने से भी प्रायश्चित्त ६ विरानी सारी गायके जोल देने का नियम ७ गोवधके पहिले तीनों परिच्छेद वाले प्रायश्चित्तोंका निर्णय वरोंके भेदसे ८ फिर स्त्री बालक बूढ़े रोगी आदिके प्रायश्चित्त भेद ९ ॥

(बन्धन योक्त्रादिभिर्मरणेप्रायश्चित्तं)

ऊपरले परिच्छेद में जो अंशिके वचनसे गाय बाँधते दुहते आदि मसयपर मर जाना कहा सोतौ केवल उपशान्ति निमित्त का प्रायश्चित्त था कि यदि कोई गोर किसी निमित्त को उन्हीं समयोंपर उत्पन्न करे=अर्थात्=इस परिच्छेद में माझाव प्रवान कर्ताके प्रयोजन से बाँधने छोरने आदिके नियम कहेजायेंगे कि—बैल या गीआँ की नाथ मरखोल आदि बंधनसे यदि किसीके प्राण भी जातेरहें तिनका प्रायश्चित्त

पराशरनेकहाहै=यथाह पराशरः=गवांबंधनयोक्त्रैस्तुभवेन्मृत्युरकासतःअकामकृतपापस्यप्राजापत्यंविनिर्दिशेत् प्रायश्चित्तैतत्तश्चीरौकुर्याद्ब्राह्मराभोजनसम्पन्नदुत्सहितां गांचदद्याद्विप्रायदक्षिणासु(अयंचप्राजापत्योयदिशेधादिकंकृत्वातज्जन्यप्रसादपरिजिहीर्ययाप्रत्यवेक्षमाराआस्ते तदाद्रष्टव्यःअकामकृतपापस्येति विशेषणोपादानादितिमिताक्षराकाराः)=अर्थात्—जो बांधने जोडने आदि कारणांसे बैल वा गौओंकी सौत विनाकामनाकेहोजाय तौ इसअकामकृतपापका प्रायश्चित्त प्राजापत्यकराया जाय जो सिर्फ वारह दिन में सक होता है फिर प्रायश्चित्त पूरा होजाने वादि ब्रह्म भोज करै और आँडू वृषभ सहित एक गोदान तथा और भी दक्षिणा ब्राह्मणों को देवै—इस वचन में बंधन गरखोल आदि और योक्त्र बैलों के जोत इन दोही नाम के होने परभी तृतीया विभक्तिके बहुत्व से प्रयोग रक्खा गया तिष्ठता यह तात्पर्य है कि इन्हीं दोवातों के तुल्य जो और बातें होतीहैं तिनकोभी समुक्ति लेना कि जो जो पहिले संवर्त के वचन में भी आचुकी हैं रू धना बांधना आदि और इसी प्रकारकी और बातोंको भी लोक वार्ता से सोचि लेना जिनमें केवल भूल गफलतसे मरजाना होसक्ताहो तिससे प्रलोक में बहुत्व का कुछ दोष नहीं बल्कि (गवांबंधनयोक्त्राद्यैः) ऐसा पाठ भी होसक्ता है—मिताक्षराकार इस पराशरके वचन परभी व्यवस्था देते हैं कि (यह प्राजापत्यरूपी छोटा प्रायश्चित्त उसकेलिये समझना जिसने गौओंको प्रयोजनवाले रोध बंधनआदिमें रखकर उनके उपद्रवोंकी रखवारी करने को आप भी मौजूद रहा हो ऐसी दशा में जो किसी उपद्रव के उठने से गाय बैल मर जाय क्योंकि प्रलोकमें अकामकृत पापका विशेषणहै तिससे) परन्तु (जो आप चौकसी के लिये मौजूद न रहाहो और गैरहाजिरी में उपद्रव उठके गाय मरीहो तौ इस निमित्ती के लियेभी वेही पूर्वोक्त संवर्त के वचन वाले प्रायश्चित्त चौथाई वा आधा वा पौना वा पूरा जो कुछ दशा के अनुसार ठीकहो सो करवाया जाय०सोयहचौथाई आदि परे तीन महीना वाले प्रायश्चित्त से लेनीचाहिये अर्थात् एकपाद के २३॥ साडे वाँइस दिन होते हैं दोपाद के पैतालिस ४५ दिन तीन पाद के सवा दो महीने और परे के तीन महीने यह भी मिताक्षराकारों ने कहाहै यथा (वैश्वसिकपादिकञ्चिदधिकं द्राविण्यहर्गोववव्रतंकुर्यादितिमिताक्षराकाराः)=अर्थात्=निराश्रय करने का स्थलहै कि पराशरके वचनमें (अकामकृतपापस्य) इस विशेषणसे यह बात नहीं सिद्ध होती है कि जो कोई उपद्रवों का बचाना चाहिके गौओं की रक्षा करने पर समुत्तन रहा तौभी देवयोगसे कोई गाय मरजाने से उसके ऊपर प्रायश्चित्त लगाया

जाय क्योंकि धर्म की मर्यादा भी लोकवर्ता से विरोधी नहीं होती बल्कि लोकहीसे सब धर्म सिद्ध होते हैं कहीं ऐसा नहीं देखा कि स्वतः दैव योग के उपद्रवों में गायमर जाने पर भी रक्षक यामात्मिक पर प्रायश्चित्त लगाया जाय जबकि वह अपनी ओरसे चौकसाई पर मौजूद बना रहा तो फिर दैवीगति के उपद्रवों में उसका क्या दोष है (इसके लिये (यंत्रगोपिचक्रित्सार्ये इत्यादि) यह संवर्त का वचन आगे आवैगा सो चार पाँच पाठों को छोड़के कुछ दूर जाकर ठूँढी तहां अर्थोंको देखिके संदेह जाता रहेगा) तिससे घराशरके वचन में तात्पर्य केवल यही है कि जिसके सन्मुख मौजूद न रहिने आदि भूल गफलतमें उपद्रव खड़ा होनेसे यदि कोई गाय मरजाय तो हाजिर न रहिने के प्रमाद का अपराध उसपर आता है इसीसे अक्रामकृत पाप उसका ठहिरा कि गाय मरजाने की कामना उसके नहींथी परन्तु कामनाके बिना भी गफलत से पाप उसने कमाया तो यह छोटा पाप ठहिरा इसीलिये वारह दिन का प्राजापत्य और वृषभ गायका जोड़ा दान और दक्षिणा सहित ब्रह्मभोज करना पराशर ने कहा (यह निर्णय पहिले संवर्त के वचन वाली व्याख्या में भी सब से अन्त में आचुका तहां देखौ ॥ ० ॥ अतिदाहवाहनादिभि र्मरणेगुरुप्रायश्चित्तं—जहां किसी को दाह देनेके प्रयोजन में अत्यंत दाह दियाजाने या अतिशयवाहने जोतने आदि बहुधासे कामोंमें उज ढपनसे कोई गाय बैल मरजाय तिसके प्रायश्चित्त ऊपरले प्रायश्चित्तसे बड़े हैं सो आपस्तंबके वचनसे देखौ=यथाह आपस्तंबः= अतिदाहातिवाहाभ्यां नासिकाच्छेदनेतया नदीपर्वतसंरोधेशृतेपादेनमाचरेत् (अत्रतु लक्षणाभावोप योगिनिदाहेन दोग्यः) अन्यत्रांकनलक्षाभ्यांवाहनेमोचनेतयाभायसंगोपनार्थंचनदुष्येद्रोधबंधने इतिपराशरस्मरणात्(अंकनस्थिरचिह्नकारणालक्षणांसांप्रतोप लक्षणांवाहनेशास्त्रोक्तमार्गेशीतिमिताक्षरा=अथति—

पराशरनेकहाहै=यथाह पराशरः=गवांबंधनयोर्कैस्तुभवेन्मृत्युरकामतःअकामकृतपापस्यप्राजापत्यंविनिर्दिशेत् प्रायश्चित्तं तत्तश्चौर्गो कुर्याद्ब्राह्मणभोजनमन्नदुत्सहितं गांचदद्याद्विप्रायदक्षिणासु(अयंचप्राजापत्योर्थादिरोधादिकंकृतत्वात्जजन्यप्रसादपरिजिहीर्ययाप्रत्यवेक्षमाणाआस्ते तदाद्रष्टव्यःअकामकृतपापस्येति विशेषणोपादानादितिमिताक्षराकारः)=अर्थात्—जो बांधने जोडने आदि कारणांसे बैल वा गौओंकी मौत विनाकामनाकेहोजाय तौ इसअकामकृतपापका प्रायश्चित्त प्राजापत्यकराया जाय जो सिर्फ बारह दिन में एक होता है फिर प्रायश्चित्त पूरा होजाने बादि ब्रह्म भोज करै और आँडू वृथभ सहित एक गोदान तथा और भी दक्षिणा ब्राह्मणों को देवै—इस वचन में बंधन गरखोल आदि और योक्त बैलों के जोत इन दोही नाम के होने परभी तृतीया विभक्तिके बहुत्व से प्रयोग रक्खा गया तिष्ठता यह तात्पर्य है कि इन्हीं दोबातों के तुल्य जो और बातें होतीहैं तिनकोभी समुक्ति लेना कि जो जो पहिले संवर्त के वचन में भी आचुकी हैं रूंधना बांधना आदि और इसी प्रकारकी और बातोंको भी लोक वार्ता से सोचि लेना जिनमें केवल भूल गफलतसे मरजाना होसक्ताहो तिससे प्रलोक में बहुत्व का कुछ दोष नहीं बल्कि (गवांबंधनयोक्तायैः) ऐसा पाठ भी होसक्ता है—मिताक्षराकार इस पराशरके वचन परभी व्यवस्था देते हैं कि (यह प्राजापत्यरूपी छोटा प्रायश्चित्त उसकेलिये समझना जिसने गौओंको प्रयोजनवाले रोध बंधनआदिमें रखकर उनके उपद्रवोंकी रखवारी करने को आप भी मौजूद रहा हो ऐसी दशा में जो किसी उपद्रव के उठने से गाय बैल मर जाय क्योंकि प्रलोकमें अकामकृत पापका विशेषणहै तिससे) परन्तु (जो आप चौकसी के लिये मौजूद न रहाहो और गैरहाजिरी में उपद्रव उठके गाय मरीहो तौ इस निमित्ती के लियेभी वेही पूर्वोक्त संवर्त के वचन वाले प्रायश्चित्त चौथाई वा आधा वा पौना वा परा जो कुछ दशा के अनुसार ठीकहो सो करवाया जाय०सोयहचौथाई आदि परे तीन सहीना वाले प्रायश्चित्त से लेनीचाहिये अर्थात् एकपाद के २२॥ यादो वाइस दिन होते हैं दोपाद के पैतालिस ४५ दिन तीन पाद के सवा दो सहीने और पूरे के तीन सहीने यह भी मिताक्षराकारों ने कहाहै यथा (त्रैसासिकपादाकञ्चिदधिकं द्वाविंशत्यहर्गोवधव्रतकुर्यादितिमिताक्षराकारः)=यहांभी=निराथ करने का स्थलहै कि पराशरके वचनमें (अकामकृतपापस्य) इस विशेषणसे यह बात नहीं रिद्ध होती है कि जो कोई उपद्रवों का बचाना चाहिके गौओं की रक्षा करने पर समुद्यत रहा तौभी देवयोगसे कोई गाय मरजाने में उसके ऊपर प्रायश्चित्त लगाया

जाय क्योंकि धर्म की मर्यादा भी लोकवर्ता से विरोधी नहीं होती बल्कि लोकहीसे सब धर्म सिद्ध होते हैं कहीं ऐसा नहीं देखा कि स्वतः दैव योग के उपद्रवों में गायमर जाने पर भी रक्षक यामालिक पर प्रायश्चित्त लगाया जाय जबकि वह अपनी ओरसे चौकसाई पर मौजूद बना रहा तो फिर दैवीगति के उपद्रवों में उसका क्या दोष है (इसके लिये (यंत्ररोगोपिचिकित्सार्ये इत्यादि) यह संवर्त का वचन आगे आवैगा सो चार पाँच पाठों को छोड़िके कुछ दूर जाकर ठूँढी तहां अर्थोंको देखिके सदेह जाता रहेगा) तिससे पराशरके वचन में तात्पर्य केवल यही है कि जिसके सन्मुख मौजूद न रहिने आदि भूल गफलतमें उपद्रव खड़ा होनेसे यदि कोई गाय मरजाय तो हाजिर न रहिने के प्रमाद का अपराध उसपर आता है इसीसे अकामकृत पाप उसका ठहिरा कि गाय मरजाने की कामना उसके नहींथी परन्तु कामनाके विना भी गफलत से पाप उसने कमाया तो यह छोटा पाप ठहिरा इसीलिये बारह दिन का प्राजापत्य और वृषभ गायका जोड़ा दान और दक्षिणा सहित ब्रह्मभोज करना पराशर ने कहा (यह निराय पहिले संवर्त के वचन वाली व्याख्या में भी सब से अन्त में आचुका तहां देखी ॥ ० ॥ अतिदाहवाहनादिभि र्मरुगुरुप्रायश्चित्तं—जहां किसी को दाह देनेके प्रयोजन में अत्यंत दाह दियाजाने या अतिशयवाहने जोतने आदि बहुधाऐसे कामोंमें उज ढपनसे कोई गाय बैल मरजाय तिसके प्रायश्चित्त ऊपरले प्रायश्चित्तसे बड़े हैं सो आपस्तंबके वचनसे देखी=यथाह आपस्तंबः= अतिदाहातिवाहाभ्यां नासिक्ताच्छेदनेतया नदीपर्वतसंरोधे मृतेपादोत्तमाचरेत् (अत्र तु लक्षणासात्रोप योगिनिदाहेन दोषः) अन्यत्रांकनलक्षाभ्यां वाहनेमोचनेतया भायसंगोपनार्थं च नदुष्येद्रोधबंधने इति पराशरस्मरणात् (अंकनस्थिरचिह्नकारणां लक्षणासांप्रतोप लक्षणां वाहने शास्त्रोक्तमार्गोत्तिमिताक्षरा=अर्थात्—दाह जो गरम लोहेसे पशुओं का रोग मिटानेआदि के निमित्त किया जाता है सो अत्यन्त करनेसे या वाह जो हलवाहन आदि में जोतना प्रसिद्ध है सो अत्यन्त करायाजाय तिरुसे या नाय लगाने को नाकछेदने में या नदी पर्वतआदि कठिन स्थानों में रोक्ने से यदि राज वृषभ कोड़े मरजाय तहां तीजि लहीने वाले प्रायश्चित्त का एक पाद छोड़िके तीन पाद प्रायश्चित्त करै (परन्तु इसमें जो चिह्न करने जाय का जहरी दाह दिया जाय तिसमें प्राणा हानि न होसके तो कुछ दोष नहीं है) क्योंकि पराशरके इसवचन से नियम है किशोंकले और चिह्न करनेमें जो पशुओंका बन्धन करना पस्ताह तिरुने अन्यत्र उपशालू तथा वाहन सवारी आदि में वृषभ जोड़ने या डांड जोड़ने या संख्या समग्र

रक्षा में राखने के लिये जो बंधना और बाँधना होय तिसका दोष नहीं है (आँकना वह कहाता है जो पक्का चिह्न करना होय हमेशाके लिये और लक्षणा वह कहाता है जो अभी हालके लिये कोई चिह्न करना होय यह मिताक्षराकारोंने कहा तथापि ऐसा प्रतीत होता है कि आँकना तो वही समझना जो रोग मिटाने आदि के निमित्त से दाह दिया जाय और लक्ष शब्द से लक्षणा उसको समझना जो साँझ पहिचानने का चिह्न या बैलों की गिनतीके नस्वर अंक आदि दागे जातेहैं अर्थात् दोनों में लोहा गरम से दागना होता है सिर्फ जखरी प्रयोजन दो जुदे जुदे होते हैं तिससे अंकन और लक्षणाकाभेद किया गया कुछ हमेशा और हालका तात्पर्यहीक नहीं है। और वाहन सवारी आदि में जोडने बाँधने का जो दोष नहीं कहा सो भी जितनालोक और शास्त्र के अनुसार उचित हो उससे अधिक में दोषभी होता है ॥ ० ॥ यद्यपि गऊ वृषभकी रक्षा के निमित्त बाँध राखने का दोष नहीं बताया तोभी विरले या बहुधा बंधन ऐसेहैं कि उनसे बाँधनेमें दोषकी उत्पत्ति होतीहै तिससे व्यास जी ने उन बंधनों से बाँधने का नियेध भी दर्शाया है—यथाह व्यासः—ननालि केरेगानशाखावालेनचापिमौञ्जेननबन्धश्चखलैः एतैस्तुगावोननिबंधनीयावध्वाऽनुति येत्परशुंगृहीत्वा कुशैःकांशैश्चवधीयात्स्थानेदोषविवर्जिते—अर्थात्—न तौनारियर कीजटा बकल आदिकी बनी रस्स से न सनकी बनी रस्सीसे न बालोंकी रस्सीसे न सूजकी रस्सी से बाँधें न ऐसी किसी मेखला चमड़े आदि की बनीसे बाँधें जिससे पैर फँसिकर चलना फिरना बन्दहोय यद्वा उस मेखलासे न बाँधें जिसमें अनेकपशु एक हीमें फाँसेजायँ (मेखला या शृंखला वही कहातीहै जो जँजेरेके आकारहोय) इतने प्रकार के बंधनोंसे गऊ वृषभ न बाँधने चाहिये और जो इन्हींसे बाँधे तो इतनी बड़ी चौकसाईकरै कि फरसा गँडासाआदि हाथ में लेकर उनकेपास पहिरादेवै कि यदि साँपअग्नि आदिका उपद्रव कुछ उठ खडाहो तो तत्काल बंधन काटि दिये जासकै जिससे प्राणा हानि न होने पावै—इसीलिये यह आज्ञा है कि कुश काँश की रस्सी से बाँधें जिसको उपद्रवके समय आसही तोडि भागै बल्कि ऐसी जगहमें बाँधें जहां उपद्रव न उठिसके या उठनेपरभी प्राणा बचाइसकै खली आदिमें न गिरजायँ ॥ ० ॥ अथघंटादिदोषमरणे प्रायश्चित्तं—तदाह आपस्तंबः—घंटाऽभरणादोषेसाविपत्ति र्थादिगोर्भवेत् कच्छूर्ध्वतुभवेत्तत्रभूषणार्थंहितस्मृतसः—अर्थात्—गले वँधे घंटा की आवाज सुनिके सिंह आकरगाय मारै या पहिनाये हुये भूषण के लालचसे चोर डाँकू आदि गऊ मार जायँ तहां घंटा और भूषण पहिराने वाले स्वासीकी कच्छू व्रतका

आधा प्रायश्चित्त चाहिये यह दोनों बात भूयसा बाँधने के निमित्तसे पाप हुआ क-
हाता है ॥ ० ॥ अतिदोहनादिभिर्मरगोप्रायश्चित्तं=तदप्याह आपस्तंबः=अति
दोहातिदसनेसंघातेचैवयोजने वध्वाशृंखलपाशैश्चमृतेपादोनमाचरेत्=अर्थात्-अति
दूध दुहिलेने से यदि गरु या बछरा सरजाय तिसके पाप में और प्रबल गाय वृषभ
की शिक्षा हेतु से अत्यंत दसन करने में अर्थात् उचित शिक्षासे अधिक ताड़न पीटन
करते यदि सरजाय तिसके पाप में भी और आपस के संघात में खबर न लेनेसे लडि
भिडके सरजाय तिसके पापमें और गरखोल आदिबंधनमें उलभिके सरजाय तिस
वेखवरी के पाप में और दुहिते समय बछरा जोड़ने छोरने के व्यतिक्रम या बैलोंको
रथ आदि में जोड़नेके व्यतिक्रम से दो में एक सरजाय तिसके पापमें और लोहेकी
जँजीर या रस्सी आदि की सरकफुंद से बाँधने में फाँसी लगिके सरजाय तिसकेपाप
में० इतने उक्त निमित्तों पर निमित्ती हत्यारा पुस्त्य एक चौथाई कम करिके तीन
पाद प्रायश्चित्त करै=यह पौना प्रायश्चित्त भी कृच्छ्र प्राजापत्य का समझना जो
अभी घंटा के दोष में केवल आधा कहिचुके क्योंकि आपस्तंब के ये दोनों वचन
साथही मिले पाये हैं ॥ ० ॥ रक्षणादिव्यतिक्रमतोऽपिमरगोप्रायश्चित्तं-उन्हीं
आपस्तंबने जंगल आदि में रक्षाके व्यतिक्रमसे सरजानेमें भी स्वामी को प्रायश्चित्त
करना कहा है क्योंकि स्वामीने चतुर मिहनती गोपालको नहीं सौंपी यही उसपर
निमित्त ठहिरा=यथाह=जलौघपल्वलेमरनामेघविद्युद्धताऽपिवा गतायांपतिताऽक-
स्माच्छ्वापदेनापिभक्षिताप्राजापत्यंचरेत्कृच्छ्रं गोस्वामीव्रतमुत्तमम्॥ शीतवाताऽऽहता
वास्यादुद्धं वनहतापिवाशून्यागारउपेक्षायांप्राजापत्यंविनिर्दिशेत्=अर्थात्-बहुतजल
के ताल तलैयोंसे डूबी या अति बर्या और विजली की मारी सरजाय या गड़हिले
खाई आदि में गिरिके मरे या अचानक सिंह व्याध आदि भक्षरा करिजाय तो
उस गाय का मालिक उत्तम रीति विधान से कृच्छ्र प्राजापत्य व्रत करै ॥ अथवा
अति शीत ढाला के परने या झंझा वायु आँधी के चलने से या जेठकी लूमे मरी
हो या बंधनकी अलवेट फाँसीलगिजानेसे मरीहो या सुनेघरमें अकेली बंधाहोनेकी
उपेक्षासे भूखी ध्यासी आदि होकरवाहें किसी तरहसे मरीहो तो प्राजापत्य करना
चाहिये क्योंकि येवार्ते सब स्वामीकीगफलत से उत्पन्न होतीह परन्तु यह पूराप्राय-
श्चित्त उसीको करना चाहिये जो किसी बड़ कार्य में न लगाने किन्तु जोचामो
किसी कार्य में लगाहुआ व्यग्र हो तिसको आधा करना चाहिये और श्रेय आधा
गोपालपर आखड कियाजाय=तो इदम्रावेका प्रनाशनी अथोक्त विष्णुका वचन

हे=यदाह विष्णुः=पल्वलौघमृगठयाघ्न्यापदादिनिपातनेश्चप्रपातसर्पाद्यैर्मृतेकच्छा
 र्धमाचरेत् अपालत्वात्तद्वच्छःस्याच्छून्यागारउपप्लवे=अर्थात्-विष्णुने कहा है कि
 छोटे मोटे ताल तलैयां जहां जलके भीतर बहुत छिपीहों तिनमें डूबिके मरै या वन
 के वड़े पशुओंसे या बाघसे या भेड़िया कुत्ता आदि किसी से मारीजाय या धरती
 पोलीके छिद्रमें खुरचलाजानेसे गिरिके मरै या सांप आदि कोई वियैल जीव काटे
 तिससे मरै तो उस गऊका मालिक आधाही कृच्छ्रव्रत आचरे परन्तु जो मालिक
 ने रक्षक साधकिये बिना छोडिदीहो या जहां जहां जो खुद रक्षाकरनी योग्य थी
 सो मालिकने न करीहो और इन्हीं उक्तप्रकारोंसे यदि गऊ मरीहो तो फिर पूराही
 कृच्छ्रव्रत करना चाहिये तथैव जो सुने घरमें बांधीहुई किसी उपद्रव से मरजाय तो
 भी स्वामीको पूराकृच्छ्रव्रत करना चाहिये (अब ऊपरसे मिलाकर देखौ कि आप-
 स्तंबके वचनसे यह विष्णुजीका वचन तुल्यात्मक होगया ॥ क्वचित्तगोप्राणहानौ
 तुनदोषः-कहीं यहभी एकधर्महै कि जो कोईचाहै मालिकहो या गैर उसीगऊके
 उपकार निमित्तसे किसी व्यापारमें समुद्यत हुआहो उसमें गऊ यद्यपि मरजाय तो
 भी उसको दोष नहींहै अर्थात् प्रायश्चित्त करने की जरूरत नहीं सो यह दोषका न
 होना केवल वचन के प्रभाव सेही सिद्ध होताहै कुछ और दलील की जरूरत इसमें
 न होगी और वह वचन है संवर्तमुनिका=यथाहसंवर्तः=यंत्ररागोपिचिक्रिस्वार्थैर्गूढगर्भ
 विमोचने यत्नेकृतेविपत्तिःस्यान्नसपापेनलिप्यते (यंत्ररां व्याध्यादिनिर्घातनार्थं सं-
 दंशांकुशादिप्रवेशनं) तथा-औषधंस्नेहमाहारंददद्गोब्राह्मणोद्विजःदीयमानेविपत्तिप्रचे-
 न्नसपापेनलिप्यते ग्रामघातेशरौघेरावेश्यभंगान्निपातने-तथा-दाहच्छेदसिरामेदप्र-
 योगैरुपकुर्वतासद्विजानांगोहितार्थंचप्रायश्चित्तंनविद्यते=अर्थात्-रोगवाली गऊकी
 चिकित्साके अर्थमें यंत्रराकर्म करतेहुये या अटकैहुये गर्भके निकालने में यत्नकरते
 समय या उस यत्नके होचुके पीछेही यदि गऊ मरजाय तो वह करने वाला पापी
 नहीं ठहरता है (यंत्रराकर्म उसका नामहै जो किसी वड़े गूंसडेकीरे आदि के नाश
 करनेको गरम खंडासो आदिसे दागै या चंक्रुश कील कांटा आदि चुभावै और उसी
 यंत्ररां शब्द से रक्षणा वंधन कर्म का अर्थ लियाजाताहै)=तथैव एक यह वचन है
 कि=दवाई या घी तेल आदि चिकनाई या दूध खडी आदि या बहुत अच्छाभोजन
 किसी गऊको या ब्राह्मणको देते खिलातेहुये यदि उसकी मौतहोजाय तो वह देने
 खिलानेवाला कोई द्विजाती पापीनहीं ठहरताहै क्योंकि उसने पुण्यकी अभिलाषा
 से यहकिया-परन्तु पहिले परिच्छेदमें (औषधंस्नेहमाहारंददद्गोब्राह्मणोद्विजःदीयमानेविपत्तिप्रचे-
 न्नसपापेनलिप्यते)

रिक्तनदात्तव्यं इत्यादि) यह व्यासका वचन जो आचुका उसमें गाय की खुराक से अधिक भोजन अच्छा भी खवाना प्रतिषिद्ध होचुका तिससे—यहां भी पचि सकने के अनुमान साफिक देनेसेही यदि कोई गाय मरजाय तिसमें दोषाभाव समझना—अन्यथा ज्ञानमान पुरुष जो खवानाज पेटभरि तानि के खवावे जिससे गाय पेट फूलि के मरजाय तौ फिर उसी पहिले व्यासवाले वचनके अनुसार प्रायश्चित्त भी अवश्य करना होगा—तथैव गऊ का मालिक या रखवाला उस दशा में भी नहीं पापी होता है जो गावँपर धरि चढि आनेसे गावँ माराजाय उसमें चाहें बाराणों के समूह से गऊ मारीजाय या घर टूटने फूँकिजाने आदि से मारीजाय—तथैव एक यह वचन है कि—रोगवती आदि गऊके हितके लिये गरम लोहे सेदाह देने या गुमडा आदि चीरने या फस्त खोलने आदि प्रकारों से उपकार करने वाले द्विजातियों को विपत्ति होजाने पर भी प्रायश्चित्त नहीं लगता है—ऐसाही पराशर ने भी कहा है कि—अतिवृष्टिहतानांच प्रायश्चित्तं न विद्यते कूपखाते च धर्मार्थि गृहदाहे च ये मृताः श्रावदाहे तथा घोरैः प्रायश्चित्तं न विद्यते—अर्थात्—जो गौयें कहीं अति बर्षा के होनेसे मरजायँ यहाँपर भयानक प्रलयरूपी बर्षा समुभिलेनी कि जिसका प्रबन्ध सब लोगोंसे न होताहो) या धर्मके निमित्त कोई कूप तडाग आदि खोदा गयाहो तिसमें गिरिके मरजायँ या घरमें आगि लगिजानेसे मरजायँ या सब गावँ में आगि लगिजानेसे या अतिशय घोर उपद्रव किसी भांतिका उठिखडा होने से मरजायँ तौ इन गौओंके मालिक या रखवाले या कूप तलाव के बनवाने वालोंको प्रायश्चित्त नहीं लगताहै—परन्तु—यहां निपट प्रायश्चित्तका न लगना सिर्फ उन्हीं पशुओं को सौत होजाने मध्ये माना जासक्ताहै जो बंधनके बिना छुडा रहितेहों और दैवयोगसे कहीं आगिलगिजाने आदि किसी उपद्रवसे मरजायँ•अन्यथा जो बंधनमें रहितेहों और इन्हीं प्रकारोंसे मरजायँ तिनके मध्ये आपस्तंबकी विशेषता लेनी चाहिये—यथाह आपस्तंबः—कांतारेष्वद्यदुर्गोद्युगृहदाहेखलेषु च यदित्तत्र विपत्तिः स्यात्पादसको विधीयते—अर्थात्—ऐसे किसी वनमें या पहाडोकोट आदिमें कि जहांभार्ग बडादुर्गमहो या घर खलिहान आदि में आगि लगिजानेसे यदि वहां गौओं की सौत अचानक होजाय तौ स्वामी रक्षक आदि अधिकारीको एक चौथाई प्रायश्चित्त करना चाहिये (यह चौथाई उस प्रायश्चित्तकी समझनी जो ऊपर कहीं आपस्तंबके वचन में कृच्छ्रप्राजापत्य करना कहिचुके॥ क्वचित्प्राणहायभावेऽपि प्रायश्चित्तं—कहीं कहीं गायके प्राणा वचिजाने परभी प्रायश्चित्त होताहै यदि हाड आदि टूटेहों—य-

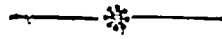
या=अस्थिमंगंगवांक्त्वालांगलच्छेदनंतथा पाटनंदंतशृगारांमासार्धचयवान्पिवेत्= अर्थात्—गौओंके हाडोंको तोड़िके या पंछ उनकी काटिके या दाँत और सींगों को उखाड़िके एक पखवाराभर जौका दलिया राँधिके पीवै तथा उक्त नियमों को भी सार्धै=इसी वार्तापर अंगिराने कुछ और भेद कियाहै=यथा=शृंगदंतास्थिमंगेवाचर्म निर्मोचनेपिवा दशरात्रंपिवेद्वज्रं स्वस्थापियदिगौर्भवेत् (अत्रतुवज्रशब्दवाच्यंसीरादि र्वतनमुक्तंतदशक्तविषयमिति मिताक्षराकाराः) अर्थात्—सींग दाँत हाड टूटिजाने या खाल उधड़जाने में यद्यपि गऊको आराम होजाय तौभी तोड़नेवाला दशदिन तक वज्रपीकर प्रायश्चित्त सार्धै (वज्रनाम यद्यपि तालमखाने और सुपेदकुशोंकाभीहोता है परन्तु आचार्योंने दूधका फेना और दूधआदि पीके रहिनेयोग्य आधारोंका नाम वज्र कहाहै. और इसके साथ यहभी आशय दर्शायाहै कि यह दशदिनकीथोड़ी अवधि और दूधआदि पीना उस प्रायश्चित्तके निमित्तमें समझना जो अशक्तहो यह मिताक्षराकारोंने कहा ॥०॥ हतगोसमानमूल्यदानंच—यह प्रायश्चित्त जो जो क हिचुके सो पीछेकरै किन्तु मरीहुई गऊके समान दूसरीगऊ यद्वा वैसीगऊके बराबरमोल उसके स्वामीको प्रथम देकर प्रायश्चित्त का प्रारम्भ करै=तदाहपराशरः= प्रमापरोप्राणाभृतांद्यात्तत्प्रतिरूपकम् तस्यानुस्वपंमूल्यंवादद्यादित्यब्रवीन्मनुः=अर्थात्—गऊआदि प्राणियोंके मारडारनेमें वैसाही प्राणीलाकर स्वामी को समर्पण करै अथवा वैसा जीव न मिलसके तौ उसके अनुमान जितना मोल उचित हो वही देवै यह मनुकीआज्ञा पराशरने कही=एवंमनुने आपभी यह दराडकेप्रकरणमेंकहा है कि=योयस्यहिस्यात्तद्रव्याणिज्ञानतोऽज्ञानतोऽपिवा सतस्योत्पादयेत्तुंशिराज्ञेद याचतत्समम्=अर्थात्—जो कोई जिसकिसी की कोई चीज बिगाड या विनाशै सो उसकीसंतुष्टि उत्पन्न करै किन्तु जैसेहो तैसे उसका राजीनामा प्रकाश करै और उसी द्रव्यकी बराबर वह राजमेंभी जुर्माना भरै ॥ ० ॥ उक्तप्रायश्चित्तानांसर्ववर्णाभेदेनप्राप्तिर्णयः—यहाँ तक पूर्वोक्त प्रायश्चित्त मात्र जो गोवध के मध्ये वर्णान्किये गयेसो सब केवल ब्राह्मण प्रायश्चित्तके निमित्त में समझने किन्तु जो क्षत्रीआदि कोई अन्यवर्ण हत्यारेहैं तिनके लिये वृहद्विष्णुने विशेषता प्रकट करीहै=यथा= विप्रेहसकलंदेयंपादोनक्षत्रियेस्मृतम् वैश्येऽर्धपदसकस्तुशूद्रजातियुशस्यते=अर्थात्—जहां जहां जो कुछ प्रायश्चित्त कहा गया सो ब्राह्मण हत्यारेसे पराकरवाना चाहिये और क्षत्री से वही प्रायश्चित्त एक चौथाई कम कराना और वैश्यों से आधा और शूद्र जातोंमें सिर्फ चौथाई करवाना श्रेष्ठ होताहै (यहाँ गोवध के प्रायश्चित्त

में जो ब्राह्मण पर अधिकता राखी गई सो इस हेतु से कि ब्राह्मण सब धर्मों की मूलहै यदि मूलही बिगडि जायगी तौ फिर संसार रूपी धर्मवृक्ष क्योंकर खडारहेगा तिससे मूलका सुधारना मुख्य धर्महै जिससे अन्य वर्गोंको शिक्षा प्राप्तहोती है)= एक जो अंगिरा का वचन इससे विपरीत प्रतीत होताहै कि=पर्यद्याब्राह्मणानांतुसा राज्ञां द्विगुणामता वैश्यानां त्रिगुणा प्रोक्ता पर्यद्वचनं स्मृतम्=अर्थात्—ब्राह्मणोंकी सभा जितनी होती है राजाओं की उससे दूनी होनी कही और वैश्यों की तिगुनी कही और पर्यद सभा के तुल्य उनके व्रत भी होने कहे हैं (सो इस वचन में व्रत शब्द से प्रायश्चित्त का तात्पर्य न लेना चाहिये क्योंकि यह वचन दंडके प्रकरणमें प्रतिलोम नालिशों मध्ये जहां वाग्दंड और वाक्पारुष्य आदि के अपराधी प्रतिलोम जातीहुये हों तिसके विषय पर आरूढ है ॥ ० ॥ अथ स्त्रीवालवृद्धादीनां प्रायश्चित्तविवेकाः—जैसा हीन वर्गों के पुरुषों में हीन प्रायश्चित्त दर्शाया गया तैसा ही स्त्री और बूढ़े और बालक तथा रोगियों के लिये उन पुरुषों से भी आधा प्रायश्चित्त चाहिये कि जिन वर्गोंको जितना कम करिके कहिचुके और जो बालक अनुपनीत अर्थात् संस्कार से विहीन हो तिसके लिये आधे का आधा सिर्फ चौथाई प्रायश्चित्त चाहिये • ये सब नियम पहिले वर्णान होचुके हैं सो यहाँ भी समझि लेने=शिरोमुण्डनं—स्त्रियों के लिये पराशरने कुछ और भी विशेषता दर्शाई है=यथा=वपनंचैवनारीणां नानुव्रज्याजपादिकम् नगोपेशयनं तासां नवसीरन्गवाजिनम् सर्वान्केशान् समुद्धृत्य छेदयेदंगुलद्वयम् सर्ववैवहिनारीणां शिरसो मुण्डनं स्मृतम्=अर्थात्—स्त्रियोंको प्रायश्चित्त की दशा में न मुण्डन कराना चाहिये न विदेशों का फिरना और जप पाठ आदि चाहिये जो विद्याकी संबंधी बातहैं और गोशालामें सोना कहा सो भी न चाहिये और गऊका चसडा ओढना जो पुस्त्योंको कहिचुके सोभी न चाहिये किन्तु यह करना चाहिये कि सब केशोंको हाथसे पकडि इकट्ठे ऊँचेकरिके दो अंगुरमात्र कतरि डालै तौ यही उनका मुण्डन है जो सभी ऐसे कामों में सर्वत्र उनका शिरसे मुण्डिजाना कहलाता है=एवं=पुस्त्यों के मुण्डन में भी संवर्त ने विशेष भेद प्रकट किये हैं=यथाह संवर्तः=पादेऽङ्गरोमवपनं द्विपादेषु मथुणौऽपि च त्रिपादे तु शिखावर्जं सशिखतुनिपातने=अर्थात्—जिस पुस्त्यकी एक चौथाई प्रायश्चित्त करने की योग्यता ढहिरी हो तिसके कंठसे लेकर पैरों तक रोमा मुडवाने चाहिये यही उसका मुण्डन है जिसको आधा प्रायश्चित्त करना ढहिराहो तिसकी मूछ दाढीभी मुडानी चाहियेयजिसको तीनपाद प्रायश्चित्तकी योग्यता ढहिराहो तिसकी केवल

चोटी छोड़िके सब देहके रोमा और बाल भी मुडाने चाहिये जिसने गऊका पूराही निपात किया अर्थात् जिसको पशु प्रायश्चित्त करना ठहिरा हो तिसकी चोटी सहित सब देह मुडानी चाहिये ॥ श्रीमन्मिताक्षराकार विज्ञानेश्वर आचार्य कहिते हैं कि इसी रीतिसे और भी जे कोई स्मृतियोंके अधिक वचन मिलजायँ तिनकी विषय व्यवस्था अपनी बुद्धिसे विचार लेनी चाहिये परन्तु इसी मार्गके सहारे से कि जैसा डौल हमने बांधा ॥ इतिगोवध प्रायश्चित्तप्रकरणं इस प्रकरणमें गोवधके जुदे जुदे भेदोंसे चारि परिच्छेद हैं चालीसवेंको आदि लेकर ४३ तेंतालिसतक पूरे हुये ॥२६३॥२६४॥ इन्हीं दो श्लोकोंकी अधिकोक्तिके शेष पाठमें यह परिच्छेद है ॥

अब अगिले परिच्छेदसे लेकर ब्राह्म्यता आदि सभी उपपातकोंके प्रायश्चित्त कहे जायँगे तिनपर प्रायश्चा गोहत्यामें कहे प्रायश्चित्तों का अतिदेश उतारते रहेंगे और कुछ कुछ उनके जुदे प्रायश्चित्तभी दर्शाते रहेंगे सो सब उन्हीं ठिकानोंपर देखना ॥

अथोपपातकसामान्येषु सर्वेषु पूर्वोक्तगोवधप्रायश्चित्त स्यातिदेशप्रदर्शकोऽयं परिच्छेदः चतुश्चत्वारिंशः ४४



इस परिच्छेदमें पूर्वोक्त गोवधके प्रायश्चित्त लेकर साधारण सभी उपपातकोंपर अतिदेश उतारा जायगा कि उन हरसकके जुदे प्रायश्चित्तों से उपरालूउनपर गोहत्या वाले प्रायश्चित्तभी विकल्पसे लागि सकेंगे-परन्तु विरलोंपरनहीं भी लागिसकेंगे केवल अपने जुदेही उपदेशक प्रायश्चित्तउनपरल गेंगे ॥

(सर्वोपपातकेष्वतिदेशः)

उपपातकशुद्धिः स्यादेवंचांद्रायणेनवा । पयसावापिमासेनवराकेणाथवापुनः २६५

अक्षरार्थः—सब उपपातकसे शुद्धि होय या चांद्रायणसे या दूधके साथ सक स-हीना से अथवा पराकसेही ॥ २६५ ॥

अपभ्रिप्रायः—२३४ दोसौ चौंतीस आदि २४२ तक नौ मूलप्रलोकों से जो जो उपपातक दर्शाये उनसे पहिला गोवध कहा था तिनके प्रायश्चित्त कई परिच्छेदोंसे पूरे हुये अब यहां ब्राह्म्यता आदि सभी उपपातकोंके प्रायश्चित्त कहना

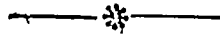
चाहते हैं—तिसके लिये चालीसवें परिच्छेद में जाकर २६३ दोसौत्रेसठि आदि मूल
 प्रलोकोंके अर्थ और अधिकोक्तिकोभी देखो कि वहांपर योगीश्वरने जो कुछ कहाया
 उसी प्रायश्चित्तका अतिदेश यहां शेष उपपातकोंपर उन्हीं योगीश्वरने उतारा है—
 कि—एवं इमीप्रकार जैसा गोवधमें कहिचुके तैसा प्रायश्चित्त करने से शेष उपपात
 कोंको भी शुद्धि होसकतीहै परन्तु जो ऐसा करना न चाहै तो चांद्रायणके करने से
 भी शुद्धि होतीहै जिसका स्वरूपकहीं आगे कहाजायगा अथवा एक महीना दूधपीने
 का नियम साधनेसे भी उपपातकों की शुद्धि होजाती है अथवा पराक्रमास का व्रत
 करनेसे भी शुद्धि होती है ॥ २६५ ॥

२६५ अधिकोक्तिः—यहां उपपातकोंके प्रायश्चित्तमध्ये जो अतिदेशदियागया ति-
 सकीसासथर्थसे पूर्वोक्तप्रायश्चित्तोंमें विरली बातोंका कमकरना भी पायाजाताहै कि
 जोजोवातें ठेठकर गोवधसेही संबधरखतीहैं इसका दृष्टांत जैसे राजका चमड़ा ओढ़ना
 या गौओंके पीछेपीछे सेवाकरते फिरना इत्यादि बातें खासकर गौहत्याकेही प्राय-
 श्चित्तमें उचितहोंगी सभी उपपातकोंमें नहीं—क्योंकि जो सभी उपपातकोंपर आव-
 ष्यकहोतीं तो फिर २६३ दोसौत्रेसठिसे जो कुछ प्रायश्चित्त कहिचुके सो केवल गौध
 पुस्तककेनामसे न कहेजाते किन्तु सभी उपपातकी पुरुषोंकेनामसे कहेजाते—इसीलिये
 अतिदेशकी सासथर्थका चर्चा यहां कियागया कि यद्यपि अन्य उपपातकोंपर गो-
 वधवाले प्रायश्चित्त कियेजासक्ते हैंतथापि उसकी सभीवातें सर्वत्रनहीं स्वीकार हो-
 सकतीहैं अतिदेशका स्वभाव यही होताहै ॥ ० ॥ यहां जो २६५ मूलप्रलोक में चार
 प्रकारके व्रत कहेगये तिनको उस प्रकारके उपपातकों पर समझना चाहिये जो इ-
 च्छाविना बोखा आदिसे होगये हों तिनमें अपराधीकी शक्ति के अनुसार इन चारों
 मेंसे कोई एक व्रतकरना चाहिये कि जिसका बोझ उससे उठिसके—अन्यथा—जि-
 सने जानिबुझि इच्छासे कोई एकउपपातककियाहो तिसकेलिये मनुकाकहा तीनि
 महीने का प्रायश्चित्त विचारना चाहिये=यथाहमनुः=एतदेवव्रतं कुर्यु उपपातकिनो
 द्विजाः अक्कीर्णवर्जं शुद्धयर्थां चांद्रायणसयापिवा=अर्थात्मनुजी पहिले तीनि महीना
 का जो प्रायश्चित्त कहिचुके हैं उसी का अतिदेश अन्य उपपातकों पर द्योति है
 कि—यही तीनिसहीनेका व्रतहै सो और सब द्विजाती जो जो उपपातको हुये हों सो
 अपनी शुद्धिकेलिये करें अथवा चांद्रायण करें जो उनका उपपातक छोटा होय तो
 परन्तु यह नियम अक्कीर्णको छोड़ के समझना अर्थात् अक्कीर्ण भी एक उप-
 पातकी होता है पर उसके लिये जुदा प्रायश्चित्त कहेंगे वही उसको चाहिये—अव-

चोटी छोड़िके सब देहके रोमा और बाल भी मुडाने चाहिये जिसने गऊका पुराही निपात किया अर्थात् जिसको पुरा प्रायश्चित्त करना ठहिरा हो तिसकी चोटी सहित सब देह मुडानी चाहिये ॥ श्रीमन्मिताक्षराकार विज्ञानेश्वर आचार्य कहिते हैं कि इसी रीतिसे और भी जे कोई स्मृतियोंके अधिक वचन मिलजायँ तिनकी विषय व्यवस्था अपनी बुद्धिसे विचार लेनी चाहिये परन्तु इसी मार्गके सहारे से कि जैसा डौल हमने बांधा ॥ इतिगोवध प्रायश्चित्तप्रकरणं इस प्रकरणा में गोवधके जुदे जुदे भेदोंसे चारि परिच्छेद हैं चालीसवेंको आदि लेकर ४३ तैत्तिलिसतक परे हुये ॥२६३॥२६४॥ इन्हीं दो श्लोकोंकी अधिकोक्तिके शेष पाठमें यह परिच्छेद है ॥

अब अगिले परिच्छेदसे लेकर ब्राह्म्यता आदि सभी उपपातकोंके प्रायश्चित्त कहे जायँगे तिनपर प्रायश्च गोहत्यामें कहे प्रायश्चित्तों का अतिदेश उतारते रहेंगे और कुछ कुछ उनके जुदे प्रायश्चित्तभी दर्शाते रहेंगे सो सब उन्हीं ठिकानोंपरदेखना ॥

अथोपपातकसामान्येषु सर्वेषु पूर्वोक्तगोवधप्रायश्चित्त स्यातिदेशप्रदर्शकोऽयं परिच्छेदः चतुश्चत्वारिंशः ४४



इस परिच्छेदमें पूर्वोक्त गोवधके प्रायश्चित्त लेकर साधारण सभी उपपातकोंपर अतिदेश उतारा जायगा कि उन हरसकके जुदे प्रायश्चित्तों से उपरालूउनपर गोहत्या वाले प्रायश्चित्तभी विकल्पसे लगि सकेंगे-परन्तु विरलोंपरनहीं भी लगिसकेंगे केवल अपने जुदेही उपदेशक प्रायश्चित्तउनपरल गेंगे ॥

(सर्वोपपातकेष्वतिदेशः)

उपपातकशुद्धिः स्यादेवंचांद्रायणेनवा । पयसावापिमासेनपराकेणाथवापुनः २६५

अचरार्थः—सर्वं उपपातकसे शुद्धि होय या चांद्रायणासे या दूधके साथ एक महीना से अथवा पराकसेही ॥ २६५ ॥

अपथिप्रायः—२३४ दोसौ चौंतीस आदि २४२ तक नौ मलप्रलोकों से जो जो उपपातक दर्शाये उनमें सबसे पहिला गोवध कहा या तिसके प्रायश्चित्त कई परिच्छेदोंसेपूरे हुये अब यहां ब्राह्म्यता आदि सभी उपपातकोंके प्रायश्चित्त कहिना

चाहते हैं—तिसके लिये चालीसवें परिच्छेद में जाकर २६३ दोसौवैसठि आदि मूल
 प्रलोकोंके अर्थ और अधिकोक्तिकोभी देखौ कि वहांपर योगीश्वरने जो कुछ कहाथा
 उसी प्रायश्चित्तका अतिदेश यहां श्रेय उपपातकोंपर उन्हीं योगीश्वरने उतारा है—
 कि—एवं इसीप्रकार जैसा गोवधमें कहिचुके तैसा प्रायश्चित्त करने से श्रेय उपपात
 कोंकी भी शुद्धि होवतीहै परन्तु जो ऐसा करना न चाहै तो चांद्रायणके करने से
 भी शुद्धि होतीहै जिसका स्वरूपकहीं आगे कहाजायगा अथवा एक सहीना दूधपीने
 का नियम साधनेसे भी उपपातकों की शुद्धि होजाती है अथवा पराक्रनास का व्रत
 करनेसे भी शुद्धि होती है ॥ २६५ ॥

२६५ अधिकोक्तिः—यहां उपपातकोंके प्रायश्चित्तमध्ये जो अतिदेशदियागया ति-
 सक्रीषामर्थसे पूर्वोक्तप्रायश्चित्तोंमें विरली बातोंका कमकरना भी पायाजाताहै कि
 जोजोवार्ते ठेठकर गोवधसेही संबन्धरखतीहैं इसका दृष्टांत जैसे गऊका चमडा ओढ़ना
 या गौओंके पीछेपीछे सेवाकरते फिरना इत्यादि बातें खासकर गोहत्याकेही प्राय-
 श्चित्तमें उचितहोंगी सभी उपपातकोंमें नहीं—क्योंकि जो सभी उपपातकोंपर आव-
 श्यकहोतीं तो फिर २६३ दोसौवैसठिसे जो कुछ प्रायश्चित्त कहिचुके सो केवल गोघ्न
 पुरुषकेनामसे न कहेजाते किन्तु सभी उपपातकी पुरुषोंकेनामसे कहेजाते—इसीलिये
 अतिदेशकी सामर्थ्यका चर्चा यहां कियागया कि यद्यपि अन्य उपपातकोंपर गो-
 वधवाले प्रायश्चित्त कियेजासक्त हैंतथापि उसकी सभीवार्ते सर्वत्रनहीं स्वीकार हो-
 सतीहैं अतिदेशका स्वभाव यही होताहै ॥ ० ॥ यहां जो २६५ मूलप्रलोक में चार
 प्रकारके व्रत कहेगये तिनको उस प्रकारके उपपातकों पर समझना चाहिये जो इ-
 च्छाविना बोखा आदिसे होगये हों तिनमें अपराधीकी शक्ति के अनुसार इन चारों
 मेसे कोई एक व्रतकराना चाहिये कि जिसका बोझ उससे उठिसके—अन्यथा—जि-
 सने जानिवृत्ति इच्छासे कोई एकउपपातकक्रियाहो तिसकेलिये मनुकाकहा तीनि
 सहीने का प्रायश्चित्त विचारना चाहिये—यथाहमनुः=सतदेवव्रतंक्षुर्युत्पपातकिनो
 द्विजाः अवकीर्णवर्जशुद्धयर्थांचांद्रायणसयापिवा=अर्थात्मनुजी पहिले तीनि सहीने
 का जो प्रायश्चित्त कहिचुके है उसी का अतिदेश अन्य उपपातकों पर दर्शाते हैं
 कि—यही तीनिसहीनेका व्रतहै सो और सब द्विजाती जो जो उपपातको हुये हों सो
 अपनी शुद्धिकेलिये करें अथवा चांद्रायण करें जो उनका उपपातक छोटा होय तो
 परन्तु यह नियम अवकीर्णको छोड़ि के समझना अर्थात् अवकीर्ण भी एक उप-
 पातकी होता है पर उसके लिये जुग प्रायश्चित्त कइंगे वही उसको चाहिये—अव-

कीर्ती इसकानाम है (ब्रह्मचार्यवकीर्तीश्यात्कामनस्तुस्त्रियंत्रजन) ब्रह्मचारी होकर जो कामकी अपेक्षासे स्त्री गमनकरै या इसप्रकारका और कोई यती आदि अपना व्रत भंगकरै सो अबकीर्ती कहाता है—योगीश्वरने २३६ के मूलप्रलोकमें (व्रतलोपश्च) इतने पदसे अबकीर्तीका स्वरूप दर्शाया है ॥ ० ॥ जनाकि योगीश्वर और मनुकेदोनों के अतिदेश मौजूदहैं तो इन वचनों के प्रभावसे यह प्रायश्चित्तका अतिदेश उनसभी जनोंपर आरूढ समझना चाहिये कि जो जो उपपातकों के गणनामें नाम आये फिर चाहैं उनमें किसीका जुदा प्रायश्चित्त भी कहागया हो यदा विरलोंकेलिये कोईजुदा प्रायश्चित्त न कहाहो तौभी यह अतिदेश सबकेलिये समझना केवल अबकीर्तीको छोड़िके ॥ ० ॥ यहां एक तर्कवादहै कि जिनकेलिये कोई जुदा प्रायश्चित्त न कहा जाय उन्हींके निमित्त यह सामान्य अति देशरूपी प्रायश्चित्त मानना उचित होता तौ हीकथा क्योंकि जो सबकेलिये मानागया तौ यह दोष खडा होताहै कि जिनका नाम लेकर जुदे प्रायश्चित्त कहे जायेंगे उन प्रायश्चित्तों का वाध अर्थात् रुकावट इन्हीं सामान्य प्रायश्चित्तोंके अति देशद्वारा पाईजातीहै कि जब सभीको सामान्य अतिदेश देखुके तौ फिर विरलोंको जुदे प्रायश्चित्त बतानेका ठिकाना कहां रहा= इसका यही उत्तरहै कि=येसा नहीं क्योंकि जैसा तुमने कहा या समझा तैसा होने में यह दूषणहै कि जब केवल उन्हीं के लिये अतिदेश होता तौ फिर उनका पाठही जुदा रक्खाजाता अर्थात् वैसे दूसरी भांति के उपपातकियों में मिलाकर उनके नाम जो लिखचुके सो अनर्थक हुयेजाते हैं•इसके सिवाय जो सामान्य भावसे उपपातकों के गणनामें नाम लिखेगये तिनका अन्य स्मृतियों में जुदा प्रायश्चित्त मिलताहै•तथैव जो उपपातकोंके गणनामें विरलेनाम नहीं कहे तिनके भी प्रायश्चित्त इसमें लिखेदेखि परते हैं इसका दृष्टांत जैसे अयाज्योंका याजक एक उपपातकी लिखिचुकेहैं (२३७ के मूलप्रलोकमें देखौ) तिसका प्रायश्चित्त आगे दोसौनवासी मूलप्रलोक में (जीनक च्छानाचरेद्रात्ययाजको—अभिचरन्नपि) यह कहेंगे इसकेसाथ अभिचारकाभी वही प्रायश्चित्त कहिदिया है कि जिस अभिचार नामका उपपातक अपने गणनामें नहीं आयाया इसीप्रकार घरशागत के त्यागनेका अधिक प्रायश्चित्त उसी दोसौनवासी मूलप्रलोक में देखना ये सभी बातें सिद्धि जावैं और भंडी रहिरे जो तुम्हारे उक्त विचार के अनुसार मानाजाय•और यहभी नियम नहींहै कि जो जो उपपातक विशेष किसी एकनामसे लिखेगये उनका प्रायश्चित्त जहां लिखा गया तहां खास र विशेष उसी पूर्वोक्त नामसे लिखा हो इसका भी दृष्टान्त पहिले दोसौचालीस

मूलप्रलोकमें (इंधनार्थद्रुमच्छेदः) इस पदको देखौ कि यह एक उपघातकहै विशेष कर वृक्षकाटनेकेहीनामसे लिखागया • फिर इसका प्रायश्चित्तजाकर दोसौच्छिहत्तरि२७६ मूलप्रलोकमेंदेखौ कि (वृक्षगुल्मलतावीरुच्छेदनेजप्यशृक्शतं) वृक्ष • गुल्म • लता • वीरुध • इन चारोंमें किसी के काटने मध्ये एकसौ ऋचा जपनी कही हैं—इन बातोंके सेंचपेंच से यहसार समझिलेना कि उपघातकों के समस्त प्रकरणा में कोई सा एकही क्रम ऐसा सूधा नहीं है कि जिसके द्वारा सालाके शुरिया समान गिनती गिनाई जासके—तिससे—यही सिद्धान्त ठीकहै कि दोसौचौंतीस मूलप्रलोकमें ब्राह्मणता को आदि लेकर दोसौव्यालिस मूल प्रलोकतक भार्या के बेचने पर्यंत जो जो उपघातक है तिनकेलिये प्रायश्चित्त भी चाहें इसी ग्रन्थ के शास्त्रमें या और किसी ग्रन्थ में जो कुछ लिखेपायेजाय सोभी और यहां जो २६५ के मूल प्रलोक से चार प्रकार के प्रायश्चित्त कहे वे भी उनमें भीलानकरिके परस्पर उनकी समता और विषमता और बड़ाई छोटाईकेविचारसे विकल्पनियतकरै यद्वा विषयभेदसे विभागकरना और चाहिये—और वे अन्य स्मृतियोंके कहे प्रायश्चित्त भी ब्राह्मणता आदिके पाठका क्रम लेकर आगे उन्हींके साथ जोड़े जायेंगे तहां तहां सर्वत्र देखना ॥ २६५ ॥

इत्युपघातकसामान्यप्रायश्चित्तानि

इसी दोसौ पैंसठिवाली अधिकोक्तिकापाठ बहुत लम्बा है सो आगे आगे अनेक परिच्छेदों में जाकर पूराहोगा कि जनतक (२६६) मूलप्रलोक न मिले क्योंकि मिताक्षराकारने इसी (२६५) परतीका बहुत बढ़ायाहै तिसके अनेक परिच्छेद किये जायेंगे कि उनमें जुदे जुदे उपघातकोंकी व्यवस्था लिखीजाय ॥

यह भी यादराखना कि यद्यपि इस परिच्छेद में सभी उपघातकों के नामसे सामान्य प्रायश्चित्त कहेगये हैं तथापि बहुतेरे उपघातकोंपर अत्रोक्त प्रायश्चित्तोंकी पहुंच न होनेसे अपवाद मानाजायगा इसका दृष्टान्त जैसे अन्नकीपीं ब्रह्मचारी आदि के लिये ये प्रायश्चित्त नहींहैं खदंपरदारगामीकेलिये ये प्रायश्चित्त नहींहैं तिससे उनके लिये बड़े बड़े औरही प्रायश्चित्त जुदे परिच्छेदों में दृशयिजायें तहां समझिलेना ॥ २६५ ॥

अथोपपातकिनां-ब्राह्म्यप्रायश्चित्तप्रकाशकोऽयं

परिच्छेदःपंचचत्वारिंशः ४५ ॥

—*—

इस परिच्छेदमें ब्राह्म्यपुस्तक के प्रायश्चित्त कहे जायँगे—ब्राह्म्य उसका नाम है जो तीनबर्षोंका पुस्तक जनेऊआदि संस्कारसे हीनहोनेके कारण—ब्राह्म्य जो समूह संस्कृत पुस्तकोंका था उसकी जातिमात्रका समूह ब्राह्म्य है तिससे गिरिजाय अर्थात् असंस्कृत होनेसे पतितवर्गहै वहीब्राह्म्यकहाजाताहै तिसकी ब्राह्म्यतादूरकर देनेके प्रायश्चित्तहैं॥

(ब्राह्म्यप्रायश्चित्त)

ब्राह्म्यता एक उपपातक जो २३४ दोसौ चौंतीस मूलप्रलोक में दर्शाया तिसका प्रायश्चित्त योगीश्वरने २६५ दोसौपैंसठके मूलप्रलोकमें अतिदेश मार्गसे सूचन कर दिया अब जुदा कुछ न कहेंगे—परन्तु—अन्य मुनीश्वरों के कहे प्रायश्चित्त यहां लिखने आवश्यक हैं तहां पहिले मनुका कहा देखो—यदाह मनुः=येयां द्विजानां सावित्री नानुच्येत यथाविधि तांश्चारयित्वात्रीन् कृच्छ्रान्यथाविध्युपनायनेत्=अथत्ति—जिन द्विजाती बर्षोंको गायत्री का उपदेश उचित समय पर यथोक्त विधिसे नहीं किया जाता है (वेहीब्राह्म्यकहिलाते हैं) उनका उपनयन जब करनाहो तो उनसे तीन कृच्छ्र व्रत कराइके जैसी विधि होतीहै उसी तरहसे उपनयन करावै=यमने भी यही कहा है=यथा=सावित्रीपतित्वायश्यदशवर्षाणिपंचच सशिकां वपनं कृत्वा व्रतं कुर्यात्समाहितः सकांशतिशान्चपिवेहप्रसृतयावत्कम् हविष्यं भोजयित्वा ब्राह्मणान्सप्तपंचच ततो यावत्कशुद्धस्य तस्योपनयनं श्मृतम्=अथत्ति—जिस ब्राह्मणके जन्मसे पंद्रह वर्ष पूरेतक सावित्री पतित हुई हो अर्थात् गायत्री की शिक्षा न मिली हो (तिसकी सजा ब्राह्म्य होतीहै) उसका जब उपनयन करना होय तब शिखा सहित मुंडन पहिले कराइके इक्कीस दिन सावधान होके व्रतकरै तब तक एक पत्थर भरि जौका दलियारांधि माह पिथा करै तिस पीछे बारह ब्राह्मणोंको खीर पूरी आदि हविष्य भोजन कराइके तब उस यावत् पीकर शुद्ध हुयेका उपनयन करना कहा है—यहां पर इस बातको शोचौ कि मनु और यमके कहे येही दोनों प्रायश्चित्त उसके बराबर हैं कि जैसा

योगीश्वरने २६५ मूलश्लोकमें एक महीना दूध पीना कहा क्योंकि यद्यपि योगी-
 श्वर याज्ञवल्क्यने ब्राह्मणताके नामसे कोई जुदा प्रायश्चित्त नहीं कहा परन्तु सामान्य
 भावसे मूलश्लोकमें सभी उपपातकोंकी शुद्धिहोना कहिचुके हैं=इसी ब्राह्मणतामध्ये=
 वशिष्ठजीने कुछ बढिया प्रायश्चित्त कहा है तिसका तात्पर्य भी कुछ और है सो
 देखो=यथाह वशिष्ठः=पतित सावित्रीकउद्दालकव्रतंचरेत्त हौमासौयावक्रेण वर्तयेन्मा
 संपयसापक्षमाऽऽसिक्तयाऽष्टरात्रंघृतेन यडात्रमयाचितेन त्रिरात्रमवभक्षोऽहोरात्रशुपन
 सेदश्वमेधावभृथंगच्छेत्त ब्राह्मणस्तोमेनवायजेतेति=अर्थात्-जो पुरुष सावित्री से पतित
 होय सो उद्दालक व्रतकरै कि दो महीना यावक पीकरहै फिर एक महीना गऊका
 दूध पीके रहै फिर एक पाख आमिक्षा पीके रहै फिर एक अठवारा गऊ का घी
 चाटिके रहै फिर छेदिन विना मांगे जो कुछ आजाय उसीको भोजन करै पर मुहसे
 न मांगे फिर तीन दिन केवल जल पीके रहै फिर एक दिन कोरा उपवास निर्जल
 करै तब अश्वमेधके अवभृथ स्नानकी तुल्यताको पहुँचै यद्वा (अश्वमेधके साक्षात्कार
 अवभृथ स्नानमें जाकर शुद्धहोय सो यह देशकालके अनुकूल अवसर बनि परे का
 नियम है सर्वत्र नहीं क्योंकि अश्वमेध हरकोई नहीं करसक्ता है न हरसक समयपर
 ऐसा वानक मिलसक्ता है कि विराने अश्वमेधमें जाकर करै) यद्वा ये बातें भी नहीं
 तौ ब्राह्मणस्तोत्र नामक वेदोक्त यज्ञ करै तब शुद्ध होय तिस पीछे उपनयन किया जा
 सक्ता है अन्यथा नहीं=इस प्रायश्चित्त में यावक पीना कहा गया सो गोमूत्र में जो
 रौंधिके उसका गाढा भाइ सखलिके छानिलिया जाताहै तिसका नाम यावक होता
 है जिसपर निपट गोमूत्रका रँवा यावक न पियाजाय सो निर्वाइ के लिये थोड़े गो
 मूत्रमें अलको मिलाकर पकावै परन्तु जहां कहीं पहिलेभी यावक नाम आचुकाहो
 तहाँ तहाँ सर्वत्र ठीक यही अर्थ समझना किन्तु जो कुछ और लिखा गया हो सो
 नहीं=इसी प्रायश्चित्तमें आमिक्षा पीनाभी कहागया सो हालके जमाये तरुता दही
 का नाम आमिक्षा कहा जाताहै प्रायश्चित्त में यहभी गऊके दूधका जमाया हुआ
 पीना चाहिये ॥ अत्रसर्वेषांघृतेनस्थाच यहां पर० मनु० योगीश्वर० यम० वशिष्ठ० इन
 सबके कहे ऊँचे नीचे प्रायश्चित्तोंकी एकसार व्यवस्था यह समझि लेनी चाहिये
 कि-जिस किसी ब्राह्मण या क्षत्री आदि वर्ण की आठ वर्ष आदि जो कुछ अवधि
 यज्ञोपवीतकी होतीहै वही अवधि जिसके उपनयन करानेवाले आदि किसी के न
 होने या न मिलनेसे हटि गई हो तिसके हटिजाने से थोड़े काल पीछे जो उपनयन
 करना पड़े तब तौ २६५ मूलश्लोकमें योगीश्वरके कहे चारो प्रायश्चित्तों में कोई

अथोपपातकिनां-ब्रात्यप्रायश्चित्तप्रकाशकोऽयं

परिच्छेदःपंचचत्वारिंशः ४५ ॥

—*—

इस परिच्छेदमें ब्रात्यपुरुष को प्रायश्चित्त कहे जायँगे—ब्रात्य उसका नाम है जो तीनवर्षोंका पुरुष जनेऊआदि संस्कारसे हीनहोनेके कारण—ब्रात जो समूह संस्कृत पुरुषोंका या उसकी जातिमात्रका समूह ब्रात है तिससे गिरिजाय अर्थात् असंस्कृत होनेसे पतितवर्गहै वहीब्रात्यकहाजाताहै तिसकी ब्रात्यतादूरकर देनेके प्रायश्चित्तहैं।

(ब्रात्यप्रायश्चित्तं)

ब्रात्यता एक उपपातक जो २३४ दोसौ चौंतीस मूलप्रलोक में दर्शाया तिसका प्रायश्चित्त योगीश्वरने २६५ दोसौपैंसठिके मूलप्रलोकमें अतिदेश मार्गसे सूत्रन कर दिया अब जुदा कुछ न कहेंगे—परन्तु—अन्य मुनीश्वरों के कहे प्रायश्चित्त यहां लिखने आवश्यक हैं तहां पहिले मनुका कहा देखो—यदाह मनुः=येसांद्भिजानांसावित्री नानुच्येतयथाविधि तांश्चारयित्वात्रीन् कृच्छ्रान्यथाविध्युपनायनेत्=अर्थात्—जिन द्विजाती वर्गोंको गायत्री का उपदेश उचित समय पर यथोक्त विधिसे नहीं किया जाता है (वेहीब्रात्यकहिलाते हैं) उनका उपनयन जब करनाहो तो उनसे तीन कृच्छ्र व्रत कराइके जैसी विधि होतीहै उसी तरहसे उपनयन करावै=यमने भी यही कहा है=यथा=सावित्रीपतितायश्यदशवर्षाणिपंचच सशिकं वपनं कृत्वा व्रतं कुर्यात्समाहितः सकृद्विंशतिरात्रं चपि वेहप्रसृतयावत्कश्च हविष्यं भोजयित्वा ब्राह्मणांश्च पंचच ततो यावत्कशुद्धस्य तस्योपनयनं स्पृशत्=अर्थात्—जिस ब्राह्मणाके जन्मसे पंद्रह वर्ष पूरेतक सावित्री पतित हुई हो अर्थात् गायत्री की शिक्षा न मिली हो (तिसकी सत्ता ब्रात्य होतीहै) उसका जब उपनयन करना होय तब शिखा सहित मुंडन पहिले कराइके इक्कीस दिन सावधान होके व्रतकरै तब तक एक पत्थर भरि जीका दलियारांधि मात्र पिया करै तिस पीछे बारह ब्राह्मणोंको खीरि पूरी आदि हविष्य भोजन कराइके तब उस यावत् पीकर शुद्ध हुयेका उपनयन करना कहा है—यहां पर इस बातकी शोचौ कि मनु और यमके कहे येही दोनों प्रायश्चित्त उसके बराबर हैं कि जैसा

योगीश्वरने २६५ मूलश्लोकमें एक महीना दूध पीना कहा क्योंकि यद्यपि योगी-
 श्वर याज्ञवल्क्य ने ब्राह्मणताके नामसे कोई जुदा प्रायश्चित्त नहीं कहा परन्तु सामान्य
 भावसे मूलश्लोकमें सभी उपपातकोंकी शुद्धिहोना कहिचुके हैं=इसी ब्राह्मणतामध्ये=
 वशिष्ठजीने कुछ बड़िया प्रायश्चित्त कहा है तिसका तात्पर्य भी कुछ और है सो
 देखो=यथाह वशिष्ठः=पतित सावित्रीकउद्दालकव्रतंचरेत्त द्वौमासौयावक्तेन वर्तयेन्मा
 संपयसापक्षमाऽऽसिष्याऽष्टरात्रंघृतेन यडात्रमयाचितेन त्रिरात्रमवभक्षोऽहोरात्रमुपन
 सेदश्वमेधावभृथंगच्छेत्त ब्राह्मणस्तोमेनवायजेतेति=अर्थात्-जो पुस्त्य सावित्री से पतित
 होय सो उद्दालक व्रतकरै कि दो महीना यावक पीकरहै फिर एक महीना गऊका
 दूध पीके रहै फिर एक पाख आमिषा पीके रहै फिर एक अठवारा गऊ का घी
 चाटिके रहै फिर छेदिन विना मांगे जो कुछ आजाय उसीको भोजन करै पर मुहसे
 न मांगे फिर तीन दिन केवल जल पीके रहै फिर एक दिन कोरा उपवास निर्जल
 करै तब अश्वमेधके अवभृथ स्नानकी तुल्यताको पहुँचै यद्वा (अश्वमेधके साक्षात्कार
 अवभृथ स्नानमें जाकर शुद्धहोय सो यह देशकालके अनुकूल अवसर बनि परे का
 नियम है सर्वत्र नहीं क्योंकि अश्वमेध हरकोई नहीं करसक्ता है न हरएक समयपर
 ऐसा वानक मिलसक्ताहै कि विराने अश्वमेधमें जाकर करै) यद्वा ये बातें भी नहीं
 तौ ब्राह्मणस्तोत्र नामक वेदोक्त यज्ञ करै तब शुद्ध होय तिस पीछे उपनयन किया जा
 सक्ता है अन्यथा नहीं=इस प्रायश्चित्त में यावक पीना कहा गया सो गोमूत्र में जो
 राधिके उसका गाढा माड सखलिके छानिलिया जाताहै तिसका नाम यावक होता
 है जिसपर निपट गोमूत्रका रँवा यावक न पियाजाय सो निर्वाह के लिये थोड़े गो
 मूत्रमें अलको मिलाकर पकावै परन्तु जहाँ कहीं पहिलेभी यावक नाम आचुकाहो
 तहाँ तहाँ सर्वत्र ठीक यही अर्थ समझना किन्तु जो कुछ और लिखा गया हो सो
 नहीं=इसी प्रायश्चित्तमें आमिषा पीनाभी कहागया सो हालके जमाये तरुणा दही
 का नाम आमिषा कहा जाताहै प्रायश्चित्त में यहभी गऊके दूधका जसाया हुआ
 पीना चाहिये ॥ अत्रसर्वेषांविद्यवस्थाच यहाँ पर० मनु० योगीश्वर० यम० वशिष्ठ० इन
 सबके कहे ऊँचे नीचे प्रायश्चित्तोंकी एकसार व्यवस्था यह समझ लेनी चाहिये
 कि-जिस किसी ब्राह्मण या क्षत्री आदि वर्णोंकी आठ वर्ष आदि जो कुछ अवधि
 यज्ञोपवीतकी होतीहै वही अवधि जिसके उपनयन करानेवाले आदि किसी के न
 होने या न मिलनेसे हटि गई हो तिसके हटिजाने से थोड़े काल पीछे जो उपनयन
 करना पड़े तब तौ २६५ मूलश्लोकमें योगीश्वरके कहे चारो प्रायश्चित्तों में कोई

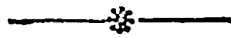
सक प्रायश्चित्त करनेवाले की शक्तिके अनुरूप देना चाहिये और उसके साथ यम के कहे नियम भी मिलालेने चाहिये=और जिसके सब सामग्री मौजूद होतेहुये अनापत्काल में भी बेपरवाही की उपेक्षासे वह अर्वाध बीतिगईहो तिसके लिये ऊपर अनुके कहे तीनि कृच्छ्रोंका तीथा प्रायश्चित्त कराना चाहिये=और जो इसी अन्तर चर्चावालेको इतना काल बीति गया हो कि अपनी मुख्य अर्वाध से दूना जो गौराकाल माना जाताहै सोभी बीतिजाय (इसका दृष्टान्त जैसे ब्राह्मणाकी ठीकठीक साहेसात वर्षकी मुख्य अर्वाध होतीहै तिसको पूरे पंद्रह वर्ष बिना जनेऊ के बीति जायँ इसी प्रकार सत्री आदिको उसकी अर्वाधसे दूना समाप्त लेना) तिसके लिये ब्राह्मणाका दश्याया उहालक नामी व्रत करवाना या ब्राह्मस्तोम नामी यज्ञ कराना चाहिये=इनके सिवाय जिस किसीके बाप दादे आदि भी बिना जनेऊके रहि गये हों (जैसे संप्रति बहुधा सत्री और वैश्य भी अनेक पीढ़ियों से असंस्कृत चलेआते हैं तिनका यह चर्चा है कि) उनके लिये आपस्तंबका कहा प्रायश्चित्त कराना=यदा हापस्तंबः=यस्यापितापितामहावनुपनीतौस्यातां तस्यसंवत्सरं वैविद्यकं ब्रह्मचर्यं यस्य प्रपितामहादेनानुस्मर्यते उपनयनं तस्य द्वादशवर्षाणि त्रैविद्यकं ब्रह्मचर्यमिति=अर्थात्-जिसका बाप और दादा भी असंस्कृत रहिके मरे हों ऐसा पुरुष जो अपना संस्कार करानेपर समुद्यत होय तौ उसको एक वर्ष भर त्रैविद्यक नाम का वेदोक्त ब्रह्मचर्य व्रत करना चाहिये और जिसके परदादे आदिकी भी यह ठीक यादि न हो कि उनके संस्कार जाने हुयेथे या नहीं तौ यह पुरुष बारहवर्षका त्रैविद्य ब्रह्मचर्यसाधै तिस पीछे अपना संस्कार करावै तौ फिर आगेको उसके वेश योता आदि कुलमात्र के संस्कार बिना प्रायश्चित्त किये जारी होसके हैं (यह बात भी कुछ बहुत बड़ी नहीं है जो कोई अपने कुलका उद्धार करना चाहै सो घरमें एक बड़ा बड़ा इस प्रायश्चित्त की साधना करिके अपने कुलमें लुप्तहुये संस्कारोंको जारी करावै क्योंकि अपने आगामी कुलके कल्याणसाहेतु अगिले बड़े बूढ़े बहुत बड़िया तप करतोथे उसी तप के प्रभाव से उनकी अविच्छिन्न सन्तति अर्वाधि सुख भोगती हैं-अन्यथा जो वर्तमान कालमें बहुतसे असंस्कृत सत्री और वैश्य भी केवल धनके आकर्षण से पुरोहित पादाशोंकेद्वारा बहुधा सभा जोड़िके यह बाद विवाद करते हैं कि हमारा संस्कार होनेमें क्या दोषहै सो यह केवल उनका बुधकाण्डनहै क्योंकि पुरोहितपादा आदिमें कुछ ठीक ठीक उत्तर इसका नहीं बनिआता है जैसे जल के जीव स्थल की बातोंको क्या जानिसके हैं कुछसे कुछ उत्तर दिया करतेहैं कितनेही अपनी धुमेरमें

आकर जनेऊकी माला जैसे गुरुकांठी के समान पहिराइ भी देते हैं ॥ २६५ ॥ इसी मूलश्लोकसे यह पाठ चला आता है ॥

इतिव्रात्यप्रायश्चित्तं

अथ स्तेयोऽपपातकयुक्तपुरुषस्यप्रायश्चित्तं

प्रकाशकोऽयं परिच्छेदः षट्चत्वारिंशः ४६



इस परिच्छेद में उन चोरोंके प्रायश्चित्त कहे जायेंगे जो सुवर्णास्तेयी से उपरालू हों—अर्थात् उस चोरी के करने वाले हों जो उपपातक कहाती है कि जिसका स्वरूप २३४ मूलश्लोक में आचुका—किन्तु उन चोरोंका प्रयोजन यहां नहीं है जो पहिले ब्रह्महत्यारे आदि महापातकियों में गिनती हुये थे—क्योंकि यहां उपपातकों का प्रकरण है ॥

(स्तेयप्रायश्चित्तं)

ध्यान करना चाहिये कि २६५ मूलश्लोकमें थोगीश्वरके कहे चारों प्रायश्चित्त सामान्य सभी उपपातकों पर नियत हुये तिससे उपपातक संबंधी चोरी में भी उन चारोंकी पहुँच देखि परती थी परन्तु अनुके कहे प्रायश्चित्तसे उस पहुँचका अपवाद सिद्ध होता है कि थोगीश्वर वाले चारों प्रायश्चित्त एक चोरी को छोड़ि कर अन्य उपपातकों पर आरूढ होंगे अर्थात् चोरी के उपपातक में अनुका कहा प्रायश्चित्त विचारना होगा—तथाचाहमनुः= धान्यान्नधनचौर्याग्निहोत्रात्कामाद्विजोत्तमः स जातीयगृहादेवकच्छाब्देनविशुद्ध्यति (द्विजोत्तमस्यसजातीयो ब्राह्मणास्वातोविप्रपरिग्रहे ब्राह्मणास्यहर्तुरिदंप्रायश्चित्तं क्षत्रियादेस्त्वल्पंकल्प्यं) =अर्थात्—धान्य जो नाज आज कोई खा हो और अन्न जो तैयार सिद्धान्न आटा दालि चाउर आदि हो और धन शब्दसे चाँदी तथा ताँबा पीतल आदि सबजने इन चीजों की चोरी जो इच्छा सहित जालि बूझि कोई ब्राह्मण होकर किसी सजातीके अर्थात् ब्राह्मण के घर करे यहि इतनी बातें सब इसी तरह उदा उदाहों तौ यह ब्राह्मण एक वर्ष भर कच्छव्रत करिके शुद्ध होता है (इस वातका यह तात्पर्य पहिरा कि इतना बड़ा प्रायश्चित्त केवल ब्राह्मणके निमित्त कहा गया है यदि क्षत्री आदि नीचे जरी वाले

चोरहों तो उनके लिये छोटे प्रायश्चित्त कल्पित करने चाहिये—क्योंकि (अष्टापाद्यंस्तेयकिल्बिषंशूद्रस्य द्विगुणोत्तराणीतरेषाँप्रतिवराँ विदुयोऽतिक्रमेदंडभयस्त्वमितिक्षत्रियादेरपहर्तुर्दण्डाल्पत्वस्यदर्शनात्) इस वचन में सत्री आदि हीने वराँ के चोरोंको दंड भी थोड़ा कहा देखि परता है कि—चोरीका दण्ड अठगुणा तक बढ़ता है जिस चोरी में जितना दण्ड शूद्रपर ठहरे उसी चोरी में औरों को प्रत्येक ऊँचेवराँ पीछे दूना दूना दण्ड बढ़ाया जाय अर्थात् जो वैश्य ने चोरी करी हो तो दूना दण्ड और सत्रीने करी हो तो चौगुना दण्ड और ब्राह्मणा चोर हो तो अठगुणा दंड इसी लिये (अष्टापाद्यंस्तेयकिल्बिषं) यहपदकहा गया•इसके सिवाय प्रत्येक वराँमें जो कोईविदुय ज्ञानी पढा पंडितहो वहीधर्ममर्यादाका अतिक्रमकरे तिसपर उक्तहिंसाब सेभी अधिक दंड बढ़ायाजाय) तिससे इसीदंडके अनुसार प्रायश्चित्तभीऊँचेवराँपर अधिक लगाना चाहिये—तैसाही यह वचनभी प्रसिद्ध है (विप्रेतुसकलंदेयंपादोनंसषि येस्मृतमित्यादि) अर्थात् जो कुछ प्रायश्चित्त कहीं सामान्य लिखाहोसो ब्राह्मणासे परं परकरवानाचाहिये सत्रीसेथीना और वैश्यवर्गसे आधाकरवाना चाहिये शूद्रसे चौथाई—इसमें प्रायश्चित्तभी एकएकचरणा घटाकरदेनाकहा है यहसव नियम ब्राह्मणाके घरमें चोरीकरनेके प्रायश्चित्तमध्ये कहागया ॥०॥ कदाचित्त सत्री आदि नीचे वराँ के परिग्रह में जाकर चोरी करी हो तो इस न्यूनतासे भी दंडके अनुसार प्रायश्चित्त में कुछ कमी करनी चाहिये सो यह कमी उसमेंसे करनी होगी जो ऊपर एकवर्षभर का कृच्छ्रव्रत कहिचुके हैं—अर्थात् जो ब्राह्मणाने सत्रीके कब्जे में चोरी करी हो तो वर्ष भरके स्थान छमाहीका प्रायश्चित्त चाहिये•यदि वैश्यके कब्जेसे चोरी करी हो तो तीनमहीनेका गोवधवालाव्रत चाहिये जो (२६३। २६४) इन मूलप्रलोकोंकी अधिकोक्ति में लिखिचुके हों तहां देखौ• यदि शूद्रके परिग्रह में जाकर ब्राह्मणा चोरीकरे तो एक महीनेका पूरा चांद्रायणा व्रत करना चाहिये•यह सब नियमसिर्फ ब्राह्मणा चोरके मध्ये कहागया इसी रीतिसे यदि सत्रीआदि कोई चोर किसी ऊँचे नीचे वराँकी चोरीकरे तहां भी पूर्वोक्त नियमोंसे विचारकरि लेना चाहिये जिसमें तीका तीका व्यवस्था जावै ॥ ० ॥ ऐसा भी न समझिलेना कि चोरी छोटी बड़ी चाहें तैतीही सब में येही प्रायश्चित्त होंगे किन्तु ये प्रायश्चित्त केवल दण्डकंभ परिमाण धान्य हरने मध्ये नियतहैं—क्योंकि दण्डकंभसे अधिक धान्य हरनेमध्यं मनुने उत्तम साइसका दण्ड देना कहा है (धान्यदण्डः कुम्भेभ्योहरतोदमउत्तमः) कुम्भके परि- नारा अनेक तरहसे शास्त्रोंमें प्रसिद्ध हैं परन्तु जो धर्मके अनुकूल हो सो यहां पर

समझना और यथार्थसे कुम्भनाल लोकमें सटकेका प्रसिद्ध है तथापि इसकापरिमारा बहुत है तिससे डिहराडिहरियाका नाम सामान्य भावसे कुम्भ समझिलेना ऐसेदश कुम्भकेभीतर नाजहरनेमध्ये ये प्रायश्चित्त ऊपर कहेगये—और (धान्यान्नधनचौर्या गिा) इसमनुकेवचनमें ऊपर जो धान्यकेसाथअन्न और धनकीचोरी कहिचुकेतिसका भीपरिमारा उतना समझिलेना जो दश कुम्भ धान्यकेमोल बराबर हों अधिकनहीं= इस परिच्छेद के प्रारम्भ से लेकर जो कुछ प्रायश्चित्त कहा गयासो सब कामकार-विय समझना कि जिमने कामनासे विचारिके चोरीकरीहो उसीपर ये प्रायश्चित्त पहुँचते हैं ॥ ० ॥ अकामकृत चौर्य प्रायश्चित्त— जिसने चोरी कामना के बिना केवल घोखा आदि कारणाों से करीहो तिसके लिये तीन महीने वाला गोवध का प्रायश्चित्त चाहिये जो कि (२६३ । २६४) इन मूल प्रलोकों की अधिकोक्ति में लिखि चुके तहां देखौ=यहांपर बहुत बड़ेविचार का यह स्थल है कि (तथा—सनुष्या रांचहरास्त्रीरांक्षेत्रगृहस्यच कूपवापीजलानांचशुद्धिप्रचांद्रायणान्तु—इतिसाईंशत द्वयपरालभ्यजलापहारे इदंचांद्रायणां प्राप्नमपीतरगोवधव्रतनिवृत्यर्थंविधीयते इति सिताक्षराकाराः तावन्मूल्यजलापहारे पानीयस्यत्तरास्यचतन्मूल्यद्विगुराोदराड इति पंचशत इतिच सिताक्षराकाराः)=अर्थात्—मनुष्योंका हरना स्त्रियों का हरना खेत जमीन का हरना घर मकान का हरना कूप बावड़ी आदि जलों का छीनना इन पापों में चांद्रायणा करने से भी शुद्धि होती है—इस वचन को दर्शाय कर सिताक्ष-राकार कहिते हैं कि २५० अढाई सौ परा मोल या महसूल प्राप्त होसकने योग्य जलाशय के हरिलेने में यह उक्त चांद्रायणा यद्यपि पहुँचता है तौभी दूसरा गोवध वाला व्रत जो हम दर्शाइचुके तिसकी निवृत्ति इस चांद्रायणा से ठहिरतीहै और उतनेही मोल वाले जलके हरने मध्ये कहीं यह भी कहा है कि पानी और तराफूस के हरने में उस चीज के मूल्य से दूना दंड चाहिये तौ इस हिसाब से पाँच सौ परा का दंड पाता है क्योंकि अढाई सौ परा मोल अभी कहिचुके हैं तिससे दूने पाँचसौ परा दंड समझ में आताहै (यहां परा कहिने से वही रुपया समझिलेना जोजिस राज से चलता हो अन्यथा चाँदी के परा का और ताँबे के पराका परिमारा आ-चार न्यायामें देखौ बहीठीकहै) इतना कहिकर फिरभी सिताक्षराकार इसीवात पर यह लिखते हैं कि (तथेतिचांद्रायणाविषये पंचशतपरा दंड विधानात्तावत्परि-मारादंड चांद्रायणायोगोवधादौसहचरित्वात् तथा कृच्छ्रातिकृच्छ्रैन्दवयोःपरापंच शतं तथेति चांद्रायणाविषये पंचशतपरादंडविधानाच्च० सतच्चक्षत्रियादि द्रव्यापहारे

द्रष्टव्यं इति च मिताक्षराकाराः)=अर्थात्—फिर कहते हैं कि उसी उक्त चांद्रायणाके मध्ये पाँच सौ परादंड ठीक होनेसे उतने परिमाण का दंड और चांद्रायणा इन दोनों का गोवध आदि उपपातकोंमें सहचार सिद्ध होने तथा २६४ मूल प्रलोक में कहे गये कृच्छ्र और अतिकृच्छ्र के साथ अत्रोक्त चांद्रायणा से पाँच सौ परा का योग पाया गया क्योंकि यहाँपर चांद्रायणा के मध्ये पाँच सौ परा दंड कहा जानेके हेतुसे—यह भी सब नियम क्षत्रीआदि वर्गोंके धन हरने मध्ये विचारने चाहिये किन्तु ब्राह्मण का धन हरने मध्ये आगे देखना=यद्यपि=सार हूँहने वाले को सर्वत्र सारही देखि परता है यह नियम अभंग है—तथापि इस बात को हरकोई साफ साफ नहीं कहि सक्ता है कि यहाँपर इन बातों की विलोड से मिताक्षराकार ने क्या सार निकासि किन्तु जिसने कहा वही समझा तौभी कुछ सार नहीं पाया गया इसीलिये बातवही है कि जिसका सार हर किसी के प्रत्यक्ष आवै परन्तु हमको उनका लिखा मेत्ना योग्य नहीं था ॥ ० ॥ ब्राह्मण संबधी धन के हरने मे यह वचन लेना होगा कि= निक्षेपस्यापहरणोत्तराश्वरजतस्य च भूमिवजमयीनांचरुक्मस्तेयसमंस्मृतम्—तथा— द्रव्याणामल्पसाराणां स्तेयं कृत्वा ७२३ यत्रैश्मनः चरेत्सांतपनं कृच्छ्रं तन्निर्यात्यात्मशुद्धये इत्यनेनाल्पप्रयोजनवपुसीसादिद्रव्यापहारविशेषेण स्तेयसामान्योपपातकप्रायश्चित्तापवाद इदंच चांद्रायणा निमित्त भूतार्द्धतृतीयशतमूल्यस्य पंचदशांशार्द्धवपुसीसाद्य पहारे प्रायश्चित्तं चांद्रायणा पंचदशांशत्वात्तस्य इति च मिताक्षराकाराः=अर्थात्— धरोहरि या सौंप का हरना तथा मनुष्य का हरना तथा घोडे का हरना तथा चाँदी का हरना तथा धरती का हरना तथा बालक या हीरे का हरना तथा मरिाओं का हरना यह सब सुवर्ण की चोरी तुल्य कहाता है—तथा—थोडे सार वाले द्रव्यों की चोरी किसी और के घरसे करिके अपनी शुद्धिके लिये वह चुराया यद्वा छीनाहु—आ द्रव्य वापिस देकर सांतपन कृच्छ्र व्रत आचरै—इसमें थोडे सारकी वस्तु कहिने मात्र से थोडासा काम देखकने योग्य लोहा सीसा राँग आदि द्रव्यों के हरने का विशेष चिह्न देने से यह बात सिद्ध होती है कि जितनी तरह की चोरी सामान्य भाव से उपपातकों में गिनती हैं तिनसबके लिये जो कुछ प्रायश्चित्त कहीं कह ही तिसका अपवाद इस खफ्रीफ चोरीमें समझना अर्थात् उस प्रायश्चित्तको बडासम- भिके इन थोडे प्रयोजन वाली वस्तुओं की चोरी पर नहीं आरूढ करना चाहिये (और इस खफ्रीफ चोरी का परिमाण कहां तक समझा जाय इस प्रश्न का यह उत्तर है कि) यह सांतपन कृच्छ्र व्रत ऐसी खफ्रीफ चोरीका प्रायश्चित्त समझना

जो ऊपर के पाठ में चांद्रायण प्रायश्चित्त के निमित्त पर २५० अर्द्धाई सौ परा के मोल योग्य चोरी कही गई थी उसका तीसवाँ भाग चोरी करीहो अर्थात् आठ परा के लगभग मोल वाले राँग सीसा लोहा आदि चुराये हैं ॥ ० ॥ इसी प्रकार विरले द्रव्यों की विशेषता (स्वतन्त्रियत) से भी उन प्रायश्चित्तों का अपवाद (इ-स्तस्मात्) समझना जो सामान्य (आम तौरसे) उपपातकों पर आरूढकियेगयेहैं इसका व्यौरा आगे देखौ=भक्षभोज्या पहरणोयानशयासनस्यच पुष्पमूलफलानांच पंचगव्यविशोधनम्=अर्थात्—चाबने खाने की वस्तु हरने में या चढने और सोउने और बैठने की चीजें हरने में या फूल मूल फल कन्द आदि के हरने में पंचगव्यका पीना प्रायश्चित्त है—यह एक दिन का प्रायश्चित्त है सो केवल एक बार पेट भर भोजन करनेयोग्य भक्ष भोज्यकी वस्तु चुराने मध्ये समझना किन्तु अनियत परिमान से चाहें तितनी हरने मध्ये नहीं क्योंकि यह बात अगिले पैठीनसि के वचनसे साफ स्पष्ट होती है=यथाह पैठीनसिः=भक्ष्यभोज्यान्नस्योदरपूरणमात्रहरणोत्रिरात्रभेकरात्रं वापंचगव्याहारतेति=अर्थात्—खाने चबाने आदिके अन्न जो पेट भरनेमात्र परिमान से हरै तिसको तीन वा एकही दिन पंचगव्य पीकरैरहिना प्रायश्चित्तहै—ध्यानकरौ केवल पेटभरनेयोग्य अन्नहरने मध्ये तीन वा एकही दिनका विकल्प दर्शाया तिससे दोनों वार सबेरे साँभ पेट भर सकने योग्य हरने में तीनदिनका प्रायश्चित्त और एक ही वार पेटभरनेयोग्य हरने का एकदिन प्रायश्चित्त ठहिरा—और जिसवचनमें भक्ष्य भोज्यकानाम आया उसीमें यान शैया आसन पुष्प मूल फल ये भीकहे अर्थात् इनका भी वही पंचगव्य का पीना प्रायश्चित्त ठहिरा तिससे भोजन के साथ गिनती होनेसे इनका भी वही परिमाणा समझना कि जितने मोलका भोजनहोताहो और उसी रीति से इनमेंभी दोनोंतरह का प्रायश्चित्त समझलेना कि एकवार पेट भरनेयोग्य अन्नके मोल बराबर जो इन चीजोंकी कीमति ठहिरै तो एकही दिन पंचगव्य पीनाचाहिये जो दोनोंवार पेट भरने योग्य अन्नके मोलबराबर इनचीजों का मोल ठहिरै तो इनमें भी तीनदिन पंचगव्य पीनेका प्रायश्चित्त जानों अर्थात् यही न्याय सर्वत्रहै कि चोरी करी हुई वस्तु के थोड़े बहुत परिमाणा के अनुसार प्रायश्चित्त को छोटाई बडाई कल्पित करी जाय=इसी प्रकार यह वचन है कि (दशाक्षाष्टदुमाणांच शुष्काच्च स्यगुडस्यच तैलचर्षामियाराणांच त्रिरात्रस्यादभोजनम्—इत्येषांचद्वयादीनां भक्षादि त्रिगुणात्रिरात्रप्रायश्चित्तस्यदर्शनात्तत्रिगुणामूल्यादीनामेतत्प्रायश्चित्तं)=अर्थात्—फूस काठ वृक्ष सूखाअन्न गुड तेल चमड़ा माँत इनके हरने में तीन दिन निराहार

व्रत करें—इस वचन में फस घास आदि सभी के हरने मध्ये भोजन आदि पूर्वोक्त चीजों से तिगुना तीन दिनका प्रायश्चित्त है तिसके देखने से यह ठीक हुआ कि भोजन आदि पूर्वोक्त चीजों के मोलसे तिगुने मोलवाली अत्रोक्त चीजों का यह प्रायश्चित्त चाहिये=इसी प्रकार यह वचन है कि (मरिगामुक्ताप्रवालानांताम्रस्यरजतस्य अयस्कान्स्योपलानांचद्वादशाहंकराणान्विता—अत्रापिभक्षादिद्वादशाशुगाप्रायश्चित्तदर्शनात् तन्मल्यद्वादशाशुगामल्य मरिगामुक्तायपहारिसत्तप्रायश्चित्तमिदंद्रव्यं)=अर्थात्—मरिगामोती मंगा ताँवा चाँदी लोहा काँसी रत्न पत्थर आदि इनके हरने मध्ये बारह दिन धानों के कन खाइके रहना यही व्रत प्रायश्चित्त है—इसमें भी उस से बारह शुगा व्रतदेखि परता है कि जो भक्ष्य भोज्य आदि में एकदिनका कहाया तिससे यह बात यहां टाहरी कि उन चीजों का मोल परिमान जैसा वहांपर कहि चुके तिससेबारह शुगो मोलवाली अत्रोक्तचीजें चुरानेका यह बारहदिन प्रायश्चित्त जानों=इसी प्रकार यह वचन है कि (कार्पासकीर्णाजीरानां द्विखुरैकखुरस्यच पक्षिगंधौषधीनांचरज्ज्वापृचैवंच्यहंपयः—अत्रापिभक्ष्यादित्रिगुणप्रायश्चित्त दर्शनात् त्रिगुगामुल्यानामपहारस्यैतत्प्रायश्चित्तंयतः ह्रीयमाणद्रव्यन्यूनानाधिकभावेन प्रायश्चित्तालपत्वमहत्वंकल्प्यमेव)=अर्थात्—रुईकी भरी रजाई गदेली आदि पुराने वस्त्र औरदोखुरवाले तथा एकखुरवाले जीवोंके बालआदि और पक्षीकेपर खाल आदि वा सदेह छोटे पक्षी और सुगन्ध की चीजें तथा दवाइयोंकी चीजें तथा रस्सीआदि इनकी चोरी मध्ये तीन दिन दूधपीके रहना प्रायश्चित्त है—इसमें भी पूर्वोक्तभक्ष्य भोज्यादि से तिगुना प्रायश्चित्त देखिपरता है तिससे उन चीजों के तत्रोक्त मोलसे तिगुने मोल वाली अत्रोक्त चीजें हरने पर यह प्रायश्चित्त समझना क्योंकि यह सर्वत्र आवश्यक है कि चोरी किये हुये द्रव्य के न्यून वा अधिक होने अनुसार प्रायश्चित्त की लघुता गुरुता कल्पना करीजाय=चोरियों के प्रायश्चित्त जोकुछयहां तक लिखे गये सो सब उस दशा मे होसक्ते हैं कि पहिले अपहार किया हुआ धन धनी को प्रत्यर्पणाकरै तिस पीछे प्रायश्चित्त करै इसका प्रमाणा यह अत्रोक्त विष्णु का वचन है (दत्तवैवापहतंद्रव्यंत्वाभिनेत्रतमाचरेत्) अर्थात् चुराया धन स्वामीको देही कर प्रायश्चित्त करै बिना दिये नहीं ॥ २६५ ॥

इसी मूल प्रलोक से यह पाठ चला आता है

(इतिचौर्यप्रायश्चित्तं)

अथ ऋणानामनपाक्रिया या अनाहिताग्नितायाश्च
अपरायविक्रयस्यचत्रयाणामुपपातकानां प्रायश्चित्त

प्रकाशकोऽयं सप्रचत्वारिंशःपरिच्छेदः ४७ ॥

—*—

इस परिच्छेद में तीन उपपातकों के प्रायश्चित्त कहे जायेंगे कि पहिले ऋणा उद्धार न करने के पाप में अर्थात् ऋणा लेकर पचाइजाने का प्रायश्चित्त—फिर अनाहिताग्निता में कि जिसके कुल में अग्नि स्थापन करने का अधिकार सो नही राखै तिसके पापका प्रायश्चित्त—फिर अपराय विक्रयमें कि जिनचीजोंका बेचना प्रतिषिद्ध है तिनको बेचनेके पापका प्रायश्चित्त कहा जायगा ॥ इन तीनोंके स्वरूप २३४ मूल श्लोक में देखौ ॥

(ऋणस्याशोधन प्रायश्चित्तं)

ऋणाका उद्धार करदेना व्यवहार सर्थादा में कहिचुके हैं कि (पुत्र पौत्रैऋणादेयं) बेटा पोता को भी बाप दादा का ऋणा देना चाहिये—तिसके उद्धार न करने में उपपातक लगाने से प्रायश्चित्त करना होता है—तथा (जायमानोवैब्राह्मणा) इत्यादि ऋचा में वैदिक ऋणा भी तीन भाँति के देव ऋषि पितर इनके निमित्त देने होतेहैं तिनके उद्धार न करनेसेभी प्रायश्चित्त होता है—इन सबके लिये वेही प्रायश्चित्त है जो २६५ दोसौ पैसठिमूलश्लोक में सामान्य भाव सभी उपपातकों पर चारभाँति के दर्शाइचुके उनमेंसे कोई एक प्रायश्चित्त कर्ता की शक्तिके अनुरूप कराना चाहिये—उनके सिवाय मनुके और प्रायश्चित्त भी कहा है—यथा=इष्टिवैश्वानरींचैवनिर्वपेद-वदपर्यये लुहानांयशुसोमानांनिष्कृत्यर्थसंभवे=अर्थात्—लोप हुये देव यज्ञों के असंभव दशा में एक वर्ष वीति जाने पर निष्कृति प्राप्त होने के लिये वैश्वानरी यज्ञ कोविस्तारै—इतिऋणानांप्रायश्चित्तं ॥ ० ॥ अथअनाहिताग्नित्वप्रायश्चित्तं—अनाहिताग्निता भी एक उपपातक है जिसका स्वरूप २३४ मूलश्लोक में बरान होचुका—उसके लिये भी वही चारों प्रायश्चित्त हैं जो २६५ मूल श्लोक में दर्शाए गये—परन्तु यहां यह नियम है कि जिसके कुलमें अग्निस्थापना का अधिकार चला

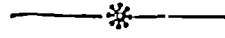
आता है ऐसा पुरुष यदि किसी आपत्काल के हेतुसे एकवर्ष भर अग्नि का यजन पूजन न करसके सो उस वर्ष के उपरांत उन्हीं चारों प्रायश्चित्त में से कोई एक प्रायश्चित्त अपनी शक्ति के अनुसार साधे जो एक महीना में होना लिखिचुके हैं—किन्तु जिसके कोई प्रबल आपदा नहीं थी अच्छे भलेमें एक वर्ष भर अग्नि का पूजन बन्द किया हो तिसको मनुका कहा त्रैसासिक प्रायश्चित्त करना चाहिये—यथाह मनुः (सतदेवव्रतं कुर्यु रूपपातकिनो द्विजाः अवकीर्णावर्जं शुद्धं चांद्रायणमयापिवा) इसका अर्थ दोनोपैसठिकी अधिकोक्तसे देखो वहां तीनमहीने लिखिचुके हैं ॥ कदाचित्त कोई वर्षके भीतरही प्रायश्चित्त किया चाहै तिसके लिये कार्या जिन मुनिका बचन है—यथाह काष्ठाजिनः=कालेत्वाधाय कर्माणि कुर्याद्विप्रो विधानतः तदकुर्वन् विरात्रेणामासिमासि विशुद्ध्यति—अनाहिताग्नीपिवा दौयस्माराः सुतो यदि सहिब्रात्येन पशुना यजेत् द्विष्क्रयाय तु=अर्थात्—ब्राह्मण किसी समयपर कर्मोंको स्थापन करिके साधे यदि उन्हीं कर्मोंका नियम छूटजाय तो हर एक महीना पीछे तीनदिनका व्रत करने से शुद्ध होता है अर्थात् यदि एक महीना कर्म छूटजाय तो तीनदिनका व्रत चाहिये दो महीनापर छेदिन इत्यादि क्रमसे—दूसरा यह नियम है कि जिसके पिता और जेठेभाता या दादा आदि कोई अग्नि की स्थापना बिना जीते बैठें हों ऐसा पुत्र जो अग्नि का स्थापन यजन करना चाहै तो उन बड़ों के पराभव दोषका भागी होकर प्रायश्चित्त होता है तथापि ऐसे उत्तम कामकी प्रवृत्त करना आवश्यक है कि जिसको बड़े पुरुषों ने भेंट दिया था तिससे इस दोषकी शुद्धि के लिये ब्रात्यपशु नाम का वेदोक्त यज्ञ करिके तब आरम्भ करै इस व्यवस्थाका ध्वन्यर्थ यह भी है कि जिसके जेठेभाई पिता आदि मर चुके हों सो ऐसा यज्ञ किये बिनाही अग्नि का स्थापन कर सकेगा=उन्हीं काष्ठाजिन मुनिने एकाग्नि पुरुष के मध्यमे भी विशेषता कही है—यथा=कृतदारोगृहे ज्येष्ठो यो योऽनादध्यादुपासनस चांद्रायणांचरेदर्थं प्रतिमासमहोपिवा=अर्थात्—जिस घर में जेठा पुरुष विवाहिता स्त्री सहित हो जिसके केवल वैवाहिक अग्नि होती है सो यदि उपासन अग्नि को नहीं स्थापै न उसकी उपासना करै सो प्रत्येक वर्ष पीछे एक महीना चान्द्रायण किया करै यद्वा प्रत्येक महीना पीछे एक दिवस निराहार उपवास किया करै तब शुद्धि होय—इत्यनाहिताग्निप्रायश्चित्तं ॥ ० ॥ अथ अपण्य विक्रयप्रायश्चित्तं—जिन चीजों का बेचना शास्त्र से निषिद्ध है तिनको बेचै सो अपण्य विक्रय नाम उपपातक से संयुक्त होता है यह २३४ मूल श्लोक में कहिचुके तिसके प्रायश्चित्त यद्यपि सामान्य भाव से वही पाये जाते हैं जो २६५ मूलश्लोक

में चार प्रकार वर्णन हो चुके तथापि स्मृत्यंतरमें विशेषताके साथ प्रायश्चित्त कहा है—यथाहारीतः—गुड तिल पुष्प मूल फल पक्वान्नविक्रये सोमपानं सोमकृच्छ्रः—लाक्षा लवणा मधु मांस तै न क्षीरद्विघृतगंधतक्रचर्मवाहसासान्यतमविक्रयेचांद्रायणां—तथा ऊर्णाकेश केशर भधेनु वेश्माशमशस्त्र विक्रयेचभक्षसांम स्नायवस्थिभृता नखशुक्ति विक्रये तप्तकृच्छ्रः—हियुगुरगुलहरितालमनः शिलाजैनगौरिकलाक्षा ज्वराशिशामुक्ता प्रवा त्वैशाववेशामृन्मये सुचतप्तकृच्छ्रः—आराग तडागोदपानपुष्करिणी सुकृतविक्रये त्रिषवरास्त्राप्यधःशायो चतुर्यकालाहारोदशसहस्रंजपत्रसंबत्सरेषामुतोभवति हीनमा नोन्मानसंकरसंकीर्णविक्रयेचेति—अर्थात्—गुड• तिल• फूल• कन्दमूल• फल• पक्वान्न वेचने में सोमपान अर्थात् जल पीके सोमकृच्छ्र व्रतकरै तब शुद्ध होय—और• लाख• नमक• सहत• मांस• तेल• दूध• दही• घी• सुगन्ध• छाछि• चमड़ा• कपड़ा• इनमें कोई एक जीज बेचने वाला चांदायण करै—तथा• ऊन• बाल• केशर• धरती• गऊ• घर• पत्थर• हथियार• इनके बेचने और• शोटी भात आदि खानी चीजें• मांस• नसें ताँति आदि• झाड़• सींग• नख• सीप घांघी आदि• इनके बेचने वाला तप्तकृच्छ्र व्रत करै—और• हींग• गुगुलु• हरिताल• मनसिल• सुरमा• गेरू• लाख• नमक• मरिचा• मोती• मूगा• बाँस की बुनी टोकरी आदि• बाँस• सड़ी के वासन• इनका बेचने वाला भी तप्त कृच्छ्र व्रतकरै तब शुद्ध होय—और• बाग वगीची• तालाव• कुआ• कमल आदि सहित पक्का जलाशय• अपना किया हुआ कोई सुकृत पुराय• सुकर्म आदि• इनका बेचने वाला यह प्रायश्चित्त करै कि सांझ सवेरे दुपहर तीनों कालमें स्नान करते रहिकर धरती पर शयन करै सायंकाल चौथे पहर भोजन करै और दस हजारमंत्र जपते हुये एक दर्घ पूराकरै तब शुद्ध होय और यही प्रायश्चित्त उषको करानाचाहिये जो घटिया बांटों से बेचैया बाँट पूरे होने में भी तराज की शौक से घाटि बेचैया घटिया सोल वस्तु उत्तम वस्तु में मिला कर बेचैया गैर जिनत की चीज दूसरी चीज में मिलावै जैसे घी तेल का मिलाना आदि—इस प्रकार और भी शाल विष्णु आदि के कहे वचनों से युक्त प्रायश्चित्त की विशेषता से कहा है—तहां साधारण उपशानकों पर जो जो प्रायश्चित्त २६५ मूल श्लोक से कहे गये उनको भी पहुँच यहां अपश्य विक्रयपर होती है तिससे यहडाल मसक्ति लेना कि जिनने आपत्काल के हेतुसे अपश्य विक्रय किया हो तिसके लिये उसी २६५ मूल श्लोक में दर्शाये चार भाँति के योगीश्वर वाले प्रायश्चित्तों में कोई एक चुनिकर कर्ताकी शक्ति के अनुसार कराना चाहिये परन्तु जिसने अनापत्काल अच्छी दशा में अपश्य विक्रय

कि याहो तिसको उसी अधिकोक्ति के प्रारम्भ में मनुका कहा तीन महीने वाला प्रायश्चित्त देना ॥ २६५ ॥

इसी मूल श्लोक के टीका से यह व्यवस्था चली आती है जिसके कई परिच्छेद हो चुके और आगे भी अनेक होयेंगे ॥ २६५ ॥

अथ परिवेत्ता परिवित्यादीना उपपातकिनां भृतकाध्यापकादीनांच प्रायश्चित्त प्रकाश कोऽयं परिच्छेदः अष्ट चत्वारिंशः ४८



इस परिच्छेद में परिवेत्ता और परिवित्ति आदि कई उपपातकियों के प्रायश्चित्त कहे जायेंगे जो सबके सब एकही परिवेदन कर्म के सम्बन्ध से पापी होते हैं जिस परिवेदन का स्वरूप २३४ मूल श्लोकमें कहि चुके हैं—और इन्हीं के प्रसंग से अग्रोदिधिय दिधिय आदि सगी बहनोंके विवाहकी व्यवस्था आवैगी कि उनके पति और वे बहनें भी उपपातक से युक्त होकर प्रायश्चित्त के भागी सब होते हैं—और सबसे पीछे भृतकाध्यापक आदि उपपातकियों के प्रायश्चित्त कहे जायेंगे कि जो मजूरी लेकर वेद पढ़ावें या देकर पढ़ें ॥

(परिवेदनप्रायश्चित्तं)

परिवेदन एक उपपातक है जिसका स्वरूप २३४ मूल श्लोक में आ चुका है उस का करने वाला परिवेत्ता कहाता है तिसका विशेष प्रायश्चित्त वसिष्ठ जोने कहा है—यथा—परिविविदानः कृच्छ्राति कृच्छ्रौचरित्वातां तस्मै दत्त्वा पुनर्निविशेत् तांचे-
वोपयच्छेतेति—अर्थात्—परिविविदान छोटा भ्राता जो जेठे का विवाह बिना हुये ही अपने लिये किसी कन्या का फलदान सगाई आदि स्वीकार करे यदा किती प्रकार से कोई कन्या कहींसे अपना विवाह करने के निमित्त से लावै तो यह परिवेत्ता कहाता है इसको परिवेदन रूपी दोष लगता है कि जेठे का अपमान किया तिससे यह कृच्छ्र और अतिकृच्छ्र नामक दोनों व्रत करिके वह कन्या उस जेठे को देकर फिर विवाह करे (अर्थात् जैसे ब्रह्म चारी भिक्षा माँगि लाता है उसका धर्म

यही है कि गुरुका अपमान मिटाने के लिये गुरु के आगे लाकर धरता है कि यह भिक्षा आपके लिये लाया हूँ तहां गुरुका यह धर्म है कि उसी को आज्ञा देता है कि लेजाकर भोगो तैसेही) उस अपनी लाई कन्या को जेठे भ्राताके समर्पणकरै कि यह तुम्हारे विवाह के लिये लायाहूँ तहां यदि जेठा उसी को आज्ञादेवै तब उसकन्या से विवाह करै—यह तौ केवल वररक्षा फलदान आदि कर देनेका प्रायश्चित्त कहा—परन्तु जिसने सब सवियाँ विवाह भी कर डाला हो तिनके प्रायश्चित्त बड़े बड़े हैं सो आगे हारीत आदि के वचनोंसे देखौ=हारीत ने ऐसा कहा है कि=ज्येष्ठेऽनिविष्टे कनीयान्निशमानः परिवेत्ता भवति परिवित्तिर्ज्येष्ठः परिवेदनीकन्या परिदायीदाता परियथायाजकः ते सर्वे पतिताः संवत्सरं प्राजापत्येन कृच्छ्रं सापावयेयुः=सवंशं खोपि=परिवित्तिः परिवेत्ता च संवत्सरं ब्राह्मणागृहे युभैश्च्यं चरेयाताम् (तदुभयसपिकामकारेण कन्यापित्राद्यनुज्ञातोद्वाहविषयं प्रायश्चित्तस्य गुरुत्वात्)=अर्थात्—जेठे के विवाहे विना छोटा विवाह करै सो परिवेत्ता होता है और जेठा परिवित्ति कहाता है कि उसका अपमान हुआ और वह कन्या परिवेदनी कहाती है कि उसके हेतु से दोनों भाता दोषी हुये और कन्या का दान करने वाला परिदायी कहाता है कि उसीने तीनों को दोषी किया और व्याह कराने वाला परिणत परियथा कहाता है कि उसने इतने दोषियों को यजन कराया ये सभी लोग पतित होते हैं यदि एक वर्षसात्र का प्राजापत्य कृच्छ्र व्रत जुदेजुदे सार्वे तब शुद्ध होयँ=ऐसेही शंखनेभी कहा है कि=परिवित्ति और परिवेत्ता दोनों एक वर्ष भर ब्राह्मणों के घर भोख साँगि पेट भरा करै तब शुद्ध होयँ (सो यह दोनों के वचन वाले प्रायश्चित्त उस दशा पर समझने कि जहां कन्या के पिता आदि का लुभाया यदा अपने पिता की आज्ञा दिया हुआ छोटा भाता कामना से विवाह निपट कर चुका हो क्योंकि प्रायश्चित्त के बड़ापन से यही तात्पर्य है=यहां तक जो लिखा गया सो तौ ज्ञानमान और स्वाधीन वर की व्यवस्था है=अन्यथा=जो अज्ञान वर पिता आदि के अधीन रहिते पिता आदिकी दी हुई कन्या साथ कामना से विवाह कर चुका तिसको २६५ की अधिकोक्ति में लिखे मनु के वचनसे तीन अहीनेका प्रायश्चित्त चाहिये और पिता परिणत आदि पर वेही व्रत आरूढ होंगे जो ऊपर की व्यवस्था में लिखि चुके—और—जिस वर ने इन बातों का बोध न होने में निपट अज्ञानता से विवाह अपना किया चाहें पिता के अधीन रहिते या अपने ही स्वाधीन किया हो तिसको २६५ मूल प्रलोक में योगीश्वर के कहे चारि प्रायश्चित्तों में कोई एक दशा और शक्ति के अनुसार क-

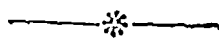
रना चाहिये और ऊपर इसी परिच्छेद में वशिष्ठ के वचन से कृच्छ्र अतिकृच्छ्र दो प्रायश्चित्त जो कर्हिचुके तिन में भी इसका अधिकार से चाहें उन्हीं को विकल्प से करें (पर दोनों एक साथही करने कहे हैं केवल एक नहीं) सो इस अज्ञान वर को एकही करना चाहिये और कन्या को वर से आधा व्रत कराया जाय=इसी अज्ञानताके मुञ्जासिले पर यमने सबके लिये सुगमता करी है=यदाह यमः=कृच्छ्रौद्योःपारिवेद्येकन्यायाःकृच्छ्रसबच अतिकृच्छ्रं चरेद्वाताहोताचांद्रायणांचरेत्=अर्थात्-परिवृत्ति और परिवेत्ता इन दोनों को परिवेदन की दशा में क्रम से कृच्छ्र और अतिकृच्छ्र करने चाहिये तथा कन्या को भी कृच्छ्र व्रत करना चाहिये कन्यादान करने वाला अतिकृच्छ्र करे और होता जिसने फेर करवाये सो परिदत्त चांद्रायणा व्रत करे (जैसी यह छोटे बड़े भाइयों की व्यवस्था कही तैसे बड़ी छोटी बहनों के विवाह पीछे आगे होजाने में भी उपपातक होता है तिसके प्रायश्चित्त आगे की व्यवस्था में देखौ ॥ ० ॥ अथान्येषामपि प्रायश्चित्तमित्थमेव—इस परिच्छेद में यहाँ तक जोजो कृच्छ्र प्रायश्चित्त कहेगये सो औरों परभी समान भाव समझलेना जो पर्याहिताग्नि आदि कई एक उपपातकी और होते हैं क्योंकि इन सबका प्रायश्चित्त एकही साथ कहा भी गयाहै कि जैसा आगे गौतम के वचन में देखना=यदाहगौतमः=परिवृत्ति परिवेत्, पर्याहित, पर्याधात्, अग्नेर्दिविषू, दिविषुपतीनां, संवत्सरंप्राकृतब्रह्मचर्यं सिति=अर्थात्—परिवृत्ति और परिवेत्ता वेही कि जिनके लक्षणा ऊपर कर्हिचुके और पर्याहित वह जेठा भाई कि जिसके अग्नि स्थापना न होते हुये छोटा भाई अग्निस्थापन करि बैठे और पर्याधात् यही छोटा भ्राता है कि जिसने जेठे भाई के न होते अग्निस्थापन करलिया और अग्नेर्दिविषू आदि तीनों के लक्षणा आगे मनु के वचन से कहेंगे तब देखना तिन सबके उपपातकों का प्रायश्चित्त एक वर्य भरि प्राकृत ब्रह्मचर्यं गौतम ने कहा (इन सबकी एक साथ कहे जाने से समानता ठहरी इसी हेतु जिन प्रायश्चित्तों को ऊपर कर्हिचुके तिनकीपहुँच इनमें भी होसक्ती है) उनके सिवाय जो प्रायश्चित्त अब आगे कहे जायँ तिनको भी समझना जैसा कि अग्नेर्दिविषुपत्ति आदि का प्रायश्चित्त वशिष्ठ जीने कहा है=यथा=अग्नेर्दिविषुपतिः कृच्छ्रं द्वादशरात्रं चरित्वा निविशेत् तांच्छैबोषयच्छेत दिविषुपतिः कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ चरित्वा तश्चैदत्तां पुनर्निविशेतेति (अग्नेर्दिविषुपतिर्दक्षणा स्मृत्यन्तरेऽभिहितयथा—उद्येष्टायां यद्यनुहायां कन्यायासूहातेऽनुजायासाग्नेर्दिविषुपतिं यापूर्वात्तुर्दिविषुःस्मृतेति) तत्राग्नेर्दिविषुपतिः प्राजापत्यकृत्वा तामेवज्येष्ठांपप्रचाद-

न्येनोऽहामुद्धहेतुः दिविष्यपत्तिस्तु कच्छात्ति कच्छौ कच्छास्त्रोऽङ्ग्येषां कनीयस्याः पूर्ववि
 प्रेन्द्रेद्वान्याहुद्धहेदिति मिताक्षराकाराः=अर्थात्—वशिष्ट ने यह कहा कि अग्नेदि-
 विष्यपत्ति बारह दिन का कच्छव्रत करिके विवाह करे और उसको भी अपने पास
 लाकर स्वीकार करे। तथा दिविष्य का पतिभी कच्छ और अतिकच्छ दोनों करिके
 उसकोलिये हीहुई को फिर विवाह (इस बात के मध्ये अग्नेदिविष्य आदि का ल-
 क्षरा भी मद्दुरति में कहा है यथा—यदि जेटी कन्या के विवाह विना जो छोटी
 बहिन विवाहिली जाय वही छोटी अग्नेदिविष्य नाम जानों और पहिली जो विना
 विवाही रही जेटी सो दिविष्य कहाती है (तहां मिताक्षराकार यह व्यवस्था दशाति
 हैं कि अग्नेदिविष्य का पति जिसने छोटी को विवाह के अपने ऊपर दोष लिया
 सो प्राजापत्य करिके उसी जेटी बहिन को जो पीछे किसी औरने स्वीकार करी हो
 तिसे विवाह लेवै। और दिविष्य का पति भी कच्छ अतिकच्छ दोनों व्रत करिके
 अपनी स्वीकार करी जेटी छोटी के पहिले विप्रेन्द्रको देके और कन्या विवाहै यह
 मिताक्षराकारों का कथन है=इस व्यवस्था में ऊपर की संस्कृत जो वशिष्ट के वचन
 से लेकर लिखिचुके उसी के अनुरूप अर्थ लिखे गये—परन्तु बहुधा विज्ञानी इसके
 समझने में भ्रंति खडी करैगे तिससे फिरभी निराशय करना परा—तहां ऐसा समझि
 लेना कि यद्यपि अग्नेदिविष्य पति को कच्छ व्रत करना कहा तथापि इसको क-
 च्छ अतिकच्छ दोनों व्रत चाहिये क्योंकि अधिक दोषी यही है और दिविष्यपतिके
 लिये जो दोनों व्रत कहे तिस के लिये एक कच्छही चाहिये क्योंकि उसमें दोष
 थोडाहै और यही न्यायकी रीति है (अन्यथा संस्कृत व्यवस्था में नहीं कहि सकते
 कि लेखक प्रसाद से वैपरीत्य हुआ हो या किस हेतु से) इसके सिवाय ऊपरली
 व्यवस्था को ऐसी दशापर समझना कि जब किसीने पहिले छोटी बहिन से सगाई
 माय करीहो और उसकेबादि किसी दूसरेने बडी बहिनसे सगाईमाय करीहो किन्तु
 विवाह किसीका न हुआहो क्योंकि विवाहके होजानेपीछे विवाही कन्या किसी
 दूसरे को देना यह लोक शास्त्र दोनों से विरुद्ध है और ऊपर की व्यवस्था में दूसरे
 को देना लिखा गया है—तहां खुलासा अर्थ इसरीतिसे लगाना कि अग्नेदिविष्यपति
 वही है जिसने जेटी बहिन को सगाई हुये बिना छोटी बहिन से सगाई करी तिस
 को अपने उपपातक पर कच्छ अतिकच्छ दोनों प्रायश्चित्त करने वादि पहिले वह
 जेटी बहिन भी विवाहिलेनी चाहिये जो दिविष्य होजानेके दोषसे किसीने स्वीकार
 न करी हो या स्वीकार किप्रे पीछे यह दशा मुनिके सगाई छोडिदी गई हो—इसी

प्रकार वह जेठी बहिन जो दिधियू ठहेर गई तिसके साथ जिस किसीने धोखे में सगाई करली हो तिसकी अपने उपपातक पर यह करना चाहिये कि प्रथम तौ कच्छव्रत प्राजापत्य को आचरै फिर उस जेठी बहिन दिधियू की सगाई छोड़ि छोटी का विवाह न होने से पहिले उसी को देनी चाहिये जिसने पहिले छोटी से सगाई करी अथवा यह बानक न बनपरै तौ किसी ज्ञानी विप्रेंद्र को देकर आप किसी और निर्दोषा कन्या से विवाह करै (परन्तु किसी विप्रेंद्रको देना यह मिताक्षराकारों का लेख है अर्थात् विशिष्ट के वचन में यह चर्चा नहीं है) इतिपरिवेदनप्रायश्चित्तं ॥ आगे इसी परिच्छेद में अन्य उपपातकों का प्रायश्चित्त कहा जायगा ॥ ० ॥ अथभृतकाध्यापकभृताध्यापितयोः प्रायश्चित्तं—इन दोनों का लक्षण २३५ मूल श्लोक में कहिचुके हैं—प्रायश्चित्तं यदाह विष्णुः=(पयसा ब्रह्म सुवर्चलापिवेदित्याधिकृत्यविष्णुानोक्तं—भृतकाध्यापनंकृत्वाभृताध्यापितकस्तथा अनुयोगप्रदानेनवीनपक्षान्त्रियतःपिवेद=अर्थात्—विष्णुने किसी प्रायश्चित्तमें दूधसे ब्रह्मसुवर्चलाका पीना पहिले कहिकर पीछे वही प्रकार इनके मध्येभी कहाहै कि—सजूरी देने लेने आदि अनुयोग के प्रदान से विद्या पहिकर या पढाइ के दोनों पुस्त्य उपपातकी होते हैं सो तीन तीन पाखतक नयत ब्रत होके दूध में ओटी हुई ब्रह्मसुवर्चलापीवे तव शुद्ध होयँ=इसीलिये=मनु के प्रमारा से स्मृत्यंतर में कहाहै कि (दत्तानुयोगानध्येतुःपतितान्मनुरववीत्) पढने वाले से सजूरी आदि अनुयोग जिनको दिये जायँ तिनको मनु जी पतित कहिचुके हैं=यहां भी इस ब्रत के साथ पूर्वोक्त व्रतों को मिलाकर कर्त्ताओंकी शक्ति आदिकी अपेक्षासे यथोचित विकल्प सोचलना चाहिये यह मिताक्षरा कारोंने कहा ॥ २६५ ॥

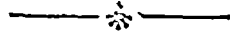
इसी मूल श्लोकसे पाठ अबतक चला आताहै ॥ २६५ ॥

(इति भृतकाध्यापक प्रायश्चित्तं)



अथपारहायौपपातकार प्रायश्चित्तप्रकाशकोऽयं

परिच्छेदः एकौनपंचाशतमः ४९ ॥



इस परिच्छेदमें उसभाँतिके परस्त्री गमन पापोंका प्रायश्चित्त भेदकहा जाय
गा कि जो उपपातकों में गिनती है अर्थात् उन स्त्रियोंका चर्चा इसमें
नहीं है जिनके लक्षणा पहिले महापातकों में आगम्या गमनके रूप
से वर्णनहुयेथे ॥ अहां इस परदारा गमनके अनेकभेद कहेजा-
येंगे तिन सबके जुदे प्रायश्चित्तभी दर्शाये जायेंगे ॥

(परस्त्रीगमनप्रायश्चित्तं)

पराईदारा भोगकरना उपपातक होता है जिसका स्वरूप लक्षणा २३५ मूलप्रलोक
में आचुका है और इसीसे सामान्य उपपातकों वाला तीनि सासका प्रायश्चित्त जो
२६५ की अधिकोक्ति में मनुके वचन से आया था सो भी इसपर पहुँचता और उसी
२६५ के मूलप्रलोक में चारप्रकार प्रायश्चित्त योगीश्वर ने कहेथे उनकी भी पहुँच
इसपर होसक्ती परन्तु गुरुदारागमन और उसके समान पचीसवें परिच्छेदमें भी इस
का अपवाद कहाजाचुका है=तथैव अन्यत्र भी गौतम आदि ऋषियों ने विशेष पा-
रदार्य के द्वारा भी अपवाद कहा है (तिससे उन छोटे प्रायश्चित्तों की पहुँच इसपर
नहीं है)=अत्राह गौतमः=द्वेषरदारेवीर्याश्रयोत्रियस्येति=तथा वार्षिकं प्राकृतं ब्रह्मचर्यं प्र-
स्तुत्यतेनैवेदमभिहितं=उपपातकेषु चैव भिति=अत्रेयं व्यवस्था (ऋतुकाले कामतो जाति
सात्रब्राह्मणीगमने वार्षिकं प्राकृतं ब्रह्मचर्यं—तस्मिन्नेव काले कर्मसाधनत्वात् द्विगुणाशा-
लित्वात्राह्मणयागमने देवर्षे प्राकृतं ब्रह्मचर्यं—तादृश्यामेव योत्रियभार्यायागमने वीर्या-
श्रयोत्रियाप्राकृतं ब्रह्मचर्यं (यदा योत्रियपत्न्यां शुभावस्थां ब्राह्मणयां वैवार्षिकं) तदा तादृ-
श्विवायामेव स्त्रियायां वैवार्षिकं तादृश्यामेव वैप्रयायां वार्षिकं भिति व्यवस्था इति
सिताक्षराकाराः=अर्थात्—गौतमने यह कहा कि—दोवर्ष पराईदारा में तीनि योत्रिय
को दारामें=तथा पहिले वार्षिक प्राकृत ब्रह्मचर्यको प्रधान कहिकर उन्हीं गौतम ने
यह कहा कि=इसीतरह उपपातकों में भी वार्षिक ब्रह्मचर्य होय=इसके ऊपर सि-
ताक्षराकार व्यवस्था नियत करतेहैं कि=मासिक ऋतुकाल में कामकी चाहना से

जो कोई ब्राह्मणमात्र किसी जातिमात्र ब्राह्मणीसे गमन करै तौ एकवर्षभरका प्राकृत ब्रह्मचर्य प्रायश्चित्त कराया जाय—और उसी ऋतुकाल में गर्भरूप कर्मका साधन होसकने से दोशुशावाली स्त्री ठहरतीहै ऐसी दोशुशावाली ब्राह्मणीसे गमन करने में दो वर्षभर प्राकृत ब्रह्मचर्य कराना चाहिये—तैसेही लक्षणावाली श्रोत्रिय की भार्या साथ गमन करने में तीनवर्षभर प्राकृत ब्रह्मचर्य कराना चाहिये (जब श्रोत्रिय की पत्नी ब्राह्मणी शुशावती में गमन करनेसे तीनवर्ष प्रायश्चित्त ठहरा) तौ इसीहेतुसे जैसे लक्षणावाली ब्राह्मण की पत्नी क्षत्राणी गमन करने में दोवर्षका प्रायश्चित्त चाहिये और उसी लक्षणावाली ब्राह्मणकीपत्नी बनेनी गमन करनेमें एकवर्षचाहिये यह मिताक्षराकारों ने व्यवस्था कही फिर कहते हैं कि=इसी न्यायके समान दृष्टि देनेसे ब्राह्मणकी शूद्रा में भी गमन करनेसे छेमहीनेका प्राकृत ब्रह्मचर्य कल्पनाकरना चाहिये=इसी न्यायके अनुसार शांखने भी चारौवर्षा की स्त्रियां ब्राह्मण की विवाहिता कहिकर वर्षा क्रमसे प्रायश्चित्त में कसी दर्शाई है=यथाहशांखः=वैश्यायामव कीर्णाःसंवत्सरंब्रह्मचर्यंश्रियवर्षांचानुतिष्ठेत् क्षत्रियायां द्वेवर्षेत्रीशिव्राह्मण्यां (वैश्यायां शूद्रायांब्राह्मणापरिणीतायामितिवर्षाक्रमेणहोसोदर्शितः=अर्थात्—बनेनी में विगड़ा हुआ ब्राह्मण वर्षेकभरब्रह्मचर्यसाधै और त्रिकाल स्नानकियाकरै एवंक्षत्रियामेबिगड़ा हुआ दोवर्ष ब्रह्मचर्यकरै ब्राह्मणी में विगड़ाहुआ तीनवर्ष करै•और ये बनेनी या शूद्रा आदि जो कही सो किसी ब्राह्मणकी विवाहिता हों उन्हींका यह चर्चहै अर्थात् जो धरीवैठारी ब्राह्मणके घरमें तिनका प्रायश्चित्त कहीं आगेकहाजायगा=इसी न्यायके आधीन=कोई क्षत्री किसी क्षत्रीकी, विवाहिता क्षत्रिया या बनेनी या शूद्रा जो जैसेही पूर्वोक्त ऋतुकाल आदि लक्षणां वाली हों तिनमें विगड़ै सो वर्षाक्रम से दोवर्ष या एकवर्ष या छमाही भर प्राकृत ब्रह्मचर्यसाधै तब शुद्ध होय=इसी प्रकार=कोई वैश्य किसी वैश्य की विवाहिता बनेनी या शूद्रा जो पूर्वोक्त लक्षणां वाली हों तिनमें विगड़ै सो वर्षा क्रमसे एकवर्ष या एक छमाही ब्रह्मचर्यकरै तब शुद्ध होय=इसी प्रकार=कोई शूद्र किसी गैर शूद्रकी विवाहिता शूद्रा भार्यामें विगड़ै सो छमाहीभर ब्रह्मचर्य साधै=गौतमके वचनसे लेकर यहां तक जो कुछ नियम कहाये सो सब देवल सक्तचार पराई भार्या में विगड़ने मध्ये समझना यही तात्पर्य अगिले आपस्तंबके वचनसे पायाजाताहै तिसको देखौ=यथाहापस्तंबः=सर्वस्यामनन्यपूर्वायांसकत्सनिपातेपादःपतत्येवमभ्यासेपादःपादश्चतुर्थेःशर्वमिति (सतदपिगौतमीय विवायिकेरासमानविषयं अनन्यपूर्विकायांचतुरभ्यासे द्वादशवार्धिक प्रायश्चित्त

विधानादेकस्यामेव गमनाभ्यासेनेदंप्रायश्चित्तं किन्तुप्रतिगमनंपादपादन्यनंकल्प्यं)
 एतत्सर्वकामकारविषयं=अर्थात्—आपस्तंबने कहाहै कि जो कोईपुरुष अपने स्वर्ण
 पुरुष की स्वर्णाभार्या (जो पहिले किसीकी भार्या न होचुकी हो अर्थात् उसीकी
 विवाहिता हो तिस) में सकहीवार यदि संगमकरै तो बारहवर्षवाले आभ्यागमनके
 प्रायश्चित्तकी एकचौथाई तानिवर्ष प्रायश्चित्त उसपर लगताहै इसीक्रमसे बारवार
 के अभ्यास में सकसक पाद बढ़ताजाताहै कि दो रात्रिके संगम से आधा प्रायश्चित्त
 और तीन रात्रि के संगम से तीनि पाद चौथी रात्रि के संगमसे सभी बारहवर्षों का
 परा प्रायश्चित्त चाहिये (यह आपस्तंबका प्रायश्चित्त भी ऊर्ध्वोक्त गौतम के कहे
 तीनिवर्षोंकी बराबरहै क्योंकि गौतमने तीनि वर्षों केवल एकवारके संगमपर कहीहैं
 और यहाँ अन्यन्य पूर्विकाके चारवार गमन करनेमें बारहवर्ष कहेगये) अकामकृ-
 तगमनप्रायश्चित्तं—यहसब जोकुछ यहाँतक प्रायश्चित्तकहेगये सोकामकी इच्छा
 से संगम करनेमध्ये समझने=परन्तु जहां कहीं=कामकी चाहना बिना किसी धोखे
 अदिसे उसीप्रकारकी स्त्रियोंमें संगम होगया हो जैसाजैसा ऋतुकाल आदि लक्षणा
 ऊपर कहिचुके तहाँ वेही पूर्वोक्त प्रायश्चित्त सब अपनेअपनेसौकेपर आधेआधे
 कियेजायँगे ॥०॥ ऋतुकालंविनागमने—जहां कहीं ऋतुकालके बिना संगमकिया
 जाय तिसकी व्यवस्था अब कहते हैं कि=जब कोई ब्राह्मण किसी जातिमात्र की
 ब्राह्मणीमें ऋतुकालके बिना कामकी इच्छासाथ गमन करै तब मनुका कहा तीनि
 महीनेवाला प्रायश्चित्त करायाजाय जो२६५ दोसौषेसठकी अधिकोक्ति में लिखि
 चुकेतहां देखौ ॥ इसीतरह ऋतुकालके बिना किसी ब्राह्मणकी क्षत्रिया विवाहिता
 यावैश्या विवाहिता भार्या जो सामान्य जातिमात्रसे प्रसिद्धहो पतिव्रतआदि किसी
 गुरासे युक्त न हो तिसमें यदि कोई ब्राह्मण कामकी चाहनासे विगडैसो उन्हीं मनु
 का कहा दोमहीना चांद्रायण और वैश्याकी अपेक्षासे एक महीना चांद्रायणकरै ॥
 इसीतरह ऋतुकालके बिना कोई क्षत्री किसी गैर क्षत्रीकी विवाहिता क्षत्राणी या
 बनेनी भार्यामें कामकी चाहनासे विगडैसो क्षत्राणी की अपेक्षा दोमहीना चांद्रा-
 यण और बनेनीकी अपेक्षा एक महीना चांद्रायण करै तथा शूद्रा में विगडने मध्ये
 इससे आधा समझलेना ॥ इसीतरह ऋतुकालके बिना कोई वैश्य किसी गैर वैश्य
 की विवाहिता बनेनीमें कामकी इच्छासे विगडैसोदोमहीने चांद्रायणकरै जो वैश्य
 की विवाहिता शूद्रामें विगडैसो एकमहीना चांद्रायणकरै ॥ ० ॥ अनाप्यकामज्ञ
 तगमने—जहां कहीं इन्हों सब स्त्रियोंमें येही उक्त पुत्र्य काम की इच्छा बिना कि-

सी धोखेआदि हेतुसे गमन करिबैठेहों तहां ऊर्ध्वोक्त तीनसहीने आदि प्रायश्चित्तों
 के स्थानपर इनके बदले यथाक्रमसे जो जो प्रायश्चित्त इनसे छोटेहोने चाहिये ति-
 नका स्वरूप (२६३ । २६४) मूलप्रतीकों में कहिचुके हैं परन्तु यहां उनका क्रम
 इसरीतिसे लेना कि ग्यारहवां आंडवृषभ द्वागऊवाला प्रायश्चित्त यहां के तीनि
 मासके स्थानपर लेना और यहां जिसको दोहीमासका प्रायश्चित्त कहागया हो
 तिसकेलिये इच्छाविना गमन करनेमध्ये एकसहीना पंचाव्य षीनेका प्रायश्चित्त
 ठहिराना और यहां जिसको एक सहीनेका चांद्रायण कहागया तिनकेलिये इच्छा
 विना गमन करनेके हेतुसे एक सहीनेका प्राजापत्य ठहिराना=इनके सिवाय शूद्रा
 के गमनमध्ये जो कामनासहितपर एकसहीना व्रत कहिचुके वही कामना से रहित
 भोगमें आधा करिके एकपाख ठहिराना चाहिये=इसी लिये संवर्तने सेना कहाहै
 कि=शूद्रयांतुब्राह्मणोगत्वासासंसासार्धमेववा गोमूत्रयावकाहारस्तिष्टेत्तत्पापमुक्तये.
 इत्यकामतोऽर्धमासिकमित्यभिप्रेतं=अर्थात्—ब्राह्मण शूद्रोंमें गमन करिके एकसहीना
 वा आधा सहीनाभरगोमूत्रमें पकाया जौका दलिया खाकर व्रतकरै. सो यह आधा
 सहीना विना कामनाके भोगमध्ये अभिप्राय सोचि के कहा है=और भी यह कहा
 है कि=ब्राह्मणाप्रचेदपेक्षापूर्वकंब्राह्मणादारानभिगच्छेन्नितृत्तधर्मकर्मणाः कृच्छ्रोनिवृ-
 त्तधर्मकर्मणीति (कृच्छ्रइतितद्ब्राह्मणाभार्यायांशूद्रायांद्रष्टव्यं द्विजातिस्त्रीयुचविप्रोढा
 सुद्विस्त्रिव्यभिचारितासु अब्रुद्विपूर्वगमनेवा=अर्थात्—यदि ब्राह्मण काम क्रीडा की
 अपेक्षा से चाहिकर किसी ऐसे ब्राह्मण की दारा में संगम करै जो धर्म कर्मों से
 विहीन हो और संगम करनेवाला ब्राह्मण भी धर्म कर्मों से विहीनहो तो इसदशा
 में कृच्छ्र प्राजापत्य व्रत कराना चाहिये (सो यह दारा शब्द सामान्य हो गिर भी
 शूद्र जाति की दारा पर आरूढ समझना अर्थात् शूद्रजाती कन्या यदि ब्राह्मणकी
 विवाही गईहो क्योंकि प्राजापत्य नामक प्रायश्चित्त के छोटापंन से यहीवात पाई
 जातीहै दूसरे धर्म कर्मों से विहीन कहा तिससे भी यही बात सिद्ध होती है कि अ-
 पने जाती धर्मकर्म छोड़िके शूद्रा कन्यासे विवाह क्रियाहो तिस दारामें यदि कोई
 जोया ब्राह्मण काम क्रीडा की अपेक्षा से संगमकरै तिसपर यह छोटा प्रायश्चित्त
 चाहिये) और (व्यभिचरितायांगमने) उचीवचन में ब्राह्मणाक्ष्यदाराय दाराओंका
 बहुत्व कहाजानेसे दूसरा अर्थ यहभी सिद्ध होताहै कि (जिस ब्राह्मण के कन्या
 और दैत्या दारा विवाहिता हों या ब्राह्मणी दारा होय परन्तु ये खवदारा दो तीन
 बार तक व्यभिचारसे बदनाम होचुकी हों तिनमें यदि कोई धर्म कर्म से विहीन

ब्राह्मणा काम क्रीडा की अपेक्षा से गमन करे तिसपर भी यह छोटा प्रायश्चित्त चाहिये क्योंकि दारायें यद्यपि ऊँचे वर्गों की कन्या ठहरीं परन्तु व्यभिचार से बदनाम दो तीन बार होचुकोथीं तिससे बहुत बड़े प्रायश्चित्त की जल्दरत भोगनेवाले पर नहीं रही और पूर्वोक्त शूद्रा भार्या यद्यपि नीच वर्ग की कन्या ठहरी तथापि व्यभिचार से बदनाम नहीं थी इसलिये उसके भोग मध्ये इन्हीं तीनों को बराबर प्रायश्चित्त कहा) और भी इसी वचन में दाराओं का बहुत्व कहा जाने से तीसरा अर्थ यह भी सिद्ध होता है कि (तीनों ऊँचे वर्ग की कन्या जो ब्राह्मणा की विवाहिता दारा हों और व्यभिचार की बदनामी भी उनमें जाहर न हो तिनमें कोई ब्राह्मणा बिनाजाने या अपनी भार्याके धोखे आदि से संगम करे तिसपर भी यह छोटा प्रायश्चित्त चाहिये क्योंकि धर्म कर्म से विहीन पुरुष की भार्या उनको कहिचुके और भोगने वाला भी धर्म कर्म से विहीन कहागया था ॥ ० ॥ श्रेष्ठ ब्राह्मणा की दाराओं मध्ये यदि कोई गौर ब्राह्मणा बिना जानेहा व्यभिचार करे तिसमें भी संवर्तने दो भेद से प्रायश्चित्त कहा है=यथाह संवर्तः=विप्रास्त्वजानतागत्वाप्राजापत्यसमाचरेत्=अर्थात्-उत्तम गुणावान् ब्राह्मणा की दाराओं में बिना जाने गमनकरिके प्राजापत्य समाचरे (इस वचन में • समाचरेत् • इतने पदके दो तरह से अर्थ लगते हैं कि प्राजापत्य जो बारह दिनमें एक पूरा होता है तिसको सम्यक् अच्छी विधि से आचरे यह एक तरह का अर्थ ठहरो—दूसरा अर्थ ऐसा है कि प्राजापत्य नामक जो व्रत है बारह दिनवाला तिसको समा चरेत् एक वर्ष भर निरन्तर आचरे क्योंकि समा संज्ञा एक वर्ष की होती है सो इस दो भाँति का यह भेद है कि जहां गुणावान् ब्राह्मणा की भार्या व्यभिचारिणी हो तिसमें बिनाजाने जो संगमकरे सो केवल एकही प्राजापत्य करिके शुद्ध होजाय • जहां उसी गुणावान् ब्राह्मणा की भार्या निष्कलंक हो तिसमें बिना जाने यदि कोई गौर ब्राह्मणा संगम करे सो निरन्तर एक वर्ष भर अनेक प्राजापत्यकरे तत्र शुद्धहोय ॥ ० ॥ रानो संन्यासिनिआदि अनेक उत्तमस्त्रियां जिनका संगम करनेवालेकी इन्दी कटवाना पहिलेकहिचुके २३२ दोसौ वत्तीन की अधि शोक्ति में नारद के वचन देखौ अथवा इन्दी कटवाने बिनाभी बारहवर्ष आदि केबड़े बड़े प्रायश्चित्त उसको ऐसी दशापर आखूढहोचुके हैं कि जहां उन स्त्रियोंने आपही पुरुष को उत्साह देकर मोहित किया हो • उन्हीं स्त्रियों के भोग मध्ये यहाँ पर बहुत छोटा सा प्रायश्चित्त यमने कहा सो अब लिखते हैं तिसका यह कारणा है कि वहाँ तौ कलंक से रहित अतिशय शुद्ध स्त्रियों का चर्चा था और यहाँपर

छोटा प्रायश्चित्त इसलिये है कि यदि वेही स्त्रियां पहिले व्यभिचार भी कर चुकी और बदनाम हैं तिनको यदि कोई पुरुष कामकी चाहना से भोगै यदा काम की चाहना बिना उन्ही स्त्रियों ने उत्साह देकर फाँसलिया हो तो यह एक उपपातक है तिसपर यह छोटा प्रायश्चित्त चाहिये किन्तु इन्ही कटवाना आदि कुछ नहीं—
यथाह यमः=राज्ञीं प्रव्रजितां धात्रीं साध्वीं वरुणीं त्तमामपि कृच्छ्रद्वयं प्रकुर्वीत सगोत्राम
भिगम्य च=अर्थात्—रानी•संन्यासिनि आदि साध्विनी• धात्री धात्र जिमने अपने को
दूध पिलाकर पाला हो• साध्वी जो नेम धरम आदि से संयुक्त हो वरुणी त्तमा जो अपने
से ऊँचे वर्ग की स्त्री हो• सगोत्रा जो अपने गोत्र भर में दूर नाते की हो• इनके पास
जाइके दो कृच्छ्र प्राजापत्य करने चाहिये (केवल उसीदशामें कि यदि स्त्रियाँ पहिले
से व्यभिचार में प्रसिद्ध हैं और पुरुष ने किसी धोखा आदि अज्ञानतामें संगम एक
बार किया हो अन्यथा इसके बड़े बड़े प्रायश्चित्त हैं जैसा अनन्तर अभी लिख चुके
सो देखौ ॥ ० ॥ ऊपर के पाठ में यह चर्चा आ चुका है कि (ये सब दारा दो तीन
वार तक व्यभिचार से बदनाम हो चुकी हैं) तहां यही तात्पर्य था कि चौथीवार
जिन के व्यभिचार की बदनामी न सुनी हो तिनके मध्ये तत्रोक्त प्रायश्चित्त है—अ-
न्यथा जो चौथीवार किन्तु चौथे पुरुष से बदनाम हुई हो वह स्वैरिणी और पांचवें
से बन्धकी आदि होजाती है (चतुर्थे स्वैरिणी प्रोक्ता पंचमे बन्धकी मता) फिर चाहें
किसी कुलकी हो इतका नियम नहीं रहिता=स्वैरिण्यादि प्रगमने—ऐसी स्त्रियोंमें
यदि कोई ब्राह्मण जाके विगडै तो फिर तत्रोक्त से थोडा प्रायश्चित्त चाहिये—यथा
हशांखः=स्वैरिण्यां वृत्त्यामवकीर्णाः सचैलं ह्यात्बोदकुं भंदद्याद्ब्राह्मणाय वैश्यायांच च
तुर्यकालाहारो ब्राह्मणान्भोजयेद्यवसभारचगोभ्योदद्यात् क्षत्रियायां त्रिरात्रोपोयितो
घृतपाचंदद्यात् ब्राह्मणाय ड्रात्रोपोयितो गांदद्यात् गोप्ववकीर्णाः प्राजापत्यं चरेत् अनू-
ढायामवकीर्णाः पलालभारं सीसमाथस्कंच दद्यात्=अर्थात्—स्वैरिणीके कुलक्षणा अभी
लिख चुके तैसे कुलक्षणा वाली वृत्ती अर्थात् शूद्रकी भार्या जो कोई सेसी हो तिन
में जो कोई ब्राह्मण जाकर एक बार विगडै सो वस्त्रों सहित स्नान करिके जन का
भरा घट ब्राह्मण को दान करै यही प्रायश्चित्त है• एवं जो बनेनी कोई स्वैरिणी
प्रसिद्ध हो तिसमें जाकर एक बार ब्राह्मण विगडै सो एक दिन का व्रत करिके चौथे
काल संध्यासे पहिले थोडा भोजन करै दूसरे दिन यथाशक्ति संख्या से ब्राह्मणोंको
भोजन करावै और शास्त्रोक्त परिमानसे एकभार घास लेकर गौओंको देवै• सब क्षत्री
की भार्या क्षत्राणी कोई स्वैरिणी प्रसिद्ध होय तिसमें कोई ब्राह्मण एक बार यदि

संगम करै सो तीनदिन उपवास करिके घीका भरा पूर्यापात्र दान करै•सबं ब्राह्मणी जो स्वैरिणी प्रसिद्ध होय तिसमें कोई गैर ब्राह्मण एकवार संगम करै सो छेदिन उपवास करिके गऊदानकरै तब शुद्ध होय•सबं जो गौओंके साथ मैथुनकरै सो प्राजापत्य करै तब शुद्ध होय•सबं अनूठा कन्या चाहें किसीवर्गाकी होय जो विवाहके न होने से पिताके घर में रहिते रजौवती होकर पीछे स्वैरिणी होगई हो तिसमें यदि कोई ब्राह्मण एकवार संगम करै सो एक भारके परिमान से धान कोदौ आदि का प्यार गौओं को देकर सीसा लोहाभी दान करै तब शुद्ध होय यह शंख जीने कहा ॥ ० ॥ और इसी उक्त विषय पर अष्टाविंशत्त मत के ग्रन्थ में भी ऐसा प्रायश्चित्त कहा है कि ब्राह्मणीवन्धकींगत्वाकिंचिदद्यात्तद्विजातये राजन्यांचेदनुर्दद्याद्वैश्यांगत्वातुचैल कस्य शुद्धांगत्वातुर्वैविप्रउदकुंभं द्विजातये दिवसोपोषितो वास्यादद्याद्विप्राथभोजनम्= अर्थात्—बंधकीके कुलक्षरा ऊपर कहि चुकेहैं कि चौथाछोडि पांचवेंपुरुषके घरबैठे यहा पांचवेंसेव्यभिचार करै सो बंधकी कहाती है—ऐसे कुलक्षरात्राली कोईब्राह्मणी जो बंधकी प्रसिद्ध होय तिसमें यदि एकवार कोई गैरब्राह्मण जाकर विगडै सो कुछ सक दान ब्राह्मणाको देकर शुद्ध होसक्ता है•सबं क्षत्राणी जो क्षत्रीकी भार्या बंधकी होय तिसमें एकवार कोईब्राह्मण जाकेविगडै सो एकधनुष दानकरै•सबं वैश्यानी जो वैश्यकी भार्या बंधकी होय तिसमें कोईब्राह्मण एकवारजाके विगडै सो एक बस्त्रदान करै•सबं शूद्रा जो शूद्रकी भार्या कोई बंधकी होय तिसमें कोई ब्राह्मण एक बार जाके विगडै सो जलका भरा घट ब्राह्मणाको दानकरै अथवा एकदिन उपासकरिके ब्राह्मणाको जिमाइ देवै तौ शुद्ध होजाय (यद्यपि इस व्यवस्था में पहिली शंख मुनि की व्यवस्थासे कुछ भेद भी प्रतीत होताहै परन्तु दोनोंका विकल्प समझि लेना कि प्रायश्चित्ती पुरुषकी दशाके अनुसार दो बातोंमें जो एक सम्भव होय सो करवाना चाहिये ॥ ० ॥ अथगर्भधारणा प्रायश्चित्तं (अनुलोमव्यवायेगर्भे द्विगुणायदिसा अतिदूषितान प्रतिलोमगानभवति तदैव—अन्यजाति गमननात्रेपि द्वैगुणायं) अर्थात्—उसी मैथुनका चर्चा है जो अनुलोम रास्तेसे होय किन्तु नीचे वर्साकी स्त्रियोंमें ऊँचे वर्साके पुरुष या समान वर्सा के स्त्री पुरुष दोनों व्यभिचार करै तिनका जो कुछ प्रायश्चित्त जिस क्रमसे पहिले कहि चुकेहैं वही सब अपने अपने स्थ तपर यहाँ आकर दूने किये जायेंगे यदि मैथुन से गर्भ धारणा भी होगया हो•परन्तु यह नियम केवल उन्हीं स्त्रियोंका समझना जो अति दूषित बहुत बदनाम नहीं और प्रतिलोम पुत्रियोंसे व्यभिचार जिनका न हुआहो (प्रतिलोमका व्यभिचार वही कहाता है जो

नीचे वर्गोंके पुरुषों से ऊँचे वर्गों की स्त्रियाँ करें) इसी प्रकार गर्भ रहिने विना भी पूर्वोक्त प्रायश्चित्त दूने क्रियेजाते हैं जो अन्य जातिमें व्यभिचार मात्र होय अर्थात् पहिले जो जो कुछ प्रायश्चित्त जिस वर्गोंके पुरुषको जिस वर्गोंकी स्त्री साथ गमन करने मध्ये कहिचुके हैं वही दूना उस दशामें करना होगा जो उसी वर्गोंका पुरुष उक्त स्त्रीके वर्गोंसे भी नीचे वर्गोंकी स्त्री साथ व्यभिचार करै यद्वा ऐसे वर्गोंके समान कोई अन्यजाति ऐसीहो जो वर्गोंसे उपरालू होय ॥ ० ॥ प्रतिलोमद्वयितास्वपिगर्भ धारणे=प्रतिलोमद्वयितासु अत्यावसायिस्त्रीषु च चांडालीगर्भयथाशुरुतल्पव्रतं तथा किंचिन्न्यूनंतरतस्य कल्प्यं—चांडालीगमनेवार्थिकं तद्गर्भशुरुतल्पत्वंतथैवज्ञेयं (इदं प्रायश्चित्तजातंगर्भानुत्पत्तिविषयं=अर्थात्—द्विजातियोंकी स्त्रियाँ जो प्रतिलोमनीचे वर्गोंसे विगडी हों तिनमें यदि कोई समान वर्गोंवाला पुरुष या उनसे ऊँचे वर्गोंवाला पुरुष ऋतुकालमें संगम करिके गर्भधारणाकरै अथवा साक्षात्कार अत्यावसायी जो चंडाल आदि होतेहैं तिनकी स्त्रियोंके ऋतुकाल में संगम करिके किसी वर्गोंका पुरुष अपने बीजसे गर्भधारणा करै तो इन दोनों दशा में वह प्रायश्चित्त विचारना चाहिये कि जैसे चांडाली में गर्भधारणा करने से शुरुतल्प रूपी महा पाप दूर करने वाला व्रत होताहै तैसा तरतमके अनुसार कुछ न्यून प्रायश्चित्त होय—तिसका यह दौलतहै कि चांडाली में संगम करने मात्रसे एक वर्षवाला व्रत कराना और चांडाली में गर्भ जमि जाने से साक्षात् शुरुतल्प रूपी पाप समझना तथापि प्रायश्चित्त उससे कुछ घटाइकर देना चाहिये जो शुरुतल्पके ऊपर व्रतरूपी कहागया हो प्राणत्याग रूपी नहीं (गर्भके मध्ये जो कुछ प्रायश्चित्त यहाँ तक लिखा गया सो सब केवल उसी दशापर आखूड है कि यदि गर्भ रहिकर पैदा न होवै किन्तु पैदा होजानेमध्ये आगे देखो ॥ ० ॥ गर्भस्य जननविषये गर्भके उत्पन्न होजाने में उससे भी दूना प्रायश्चित्त चाहिये जो कुछ गर्भके जसने मध्ये ठीकहोय=तदाह विज्ञानेश्वराचार्यः=तदुत्पत्तौतु यदिशोषेता यत्प्रायश्चित्तमुक्तं तदेवतत्र द्विगुणांशुर्थात् (गमनेतुव्रतंयत्स्याद्गर्भतत द्विगुणांचरेदित्युपानसःस्मरणात्=अर्थात्—इस परिच्छेदके प्रारंभ से लेकर जो जो कुछ प्रायश्चित्त जित वर्गोंकी स्त्री पुरुषोंका व्यभिचार होने मध्ये लिखि चुके हों उन्हींके गर्भ रहिजाने पर वेही प्रायश्चित्त दूनी तादाद से करने कहे और वेही प्रायश्चित्त उन्हीं स्त्री पुरुषोंके गर्भका जन्म होजाने पर उससे भी दूने करवानेहोगे अर्थात् व्यभिचारको तादादसे चौगुने करने होंगे क्योंकि उग्रानामुनिका यह वचन है कि (जितना व्रत संगम करने पर कहाहो उसीको गर्भके जमिजाने पर दूनाकरै)

इसी न्यायसे यह नियम ठहिरा कि गर्भका जन्म होजाने पर उसी को चतुर्थरा करे ॥ ० ॥ शूद्रिनके गर्भ उपजाने मध्ये चतुर्विंशतिसत अन्यमें ऊँचे और भी विशेषता वर्णान हुई है=यथा=वृषल्यामभिजातस्तुत्रीणा वद्यांशा चतुर्थकालसमयेतक्तभंजीते तित=अर्थात्-वृषली जो शूद्रिनी है तिसमें ऊँचे वर्णका पुत्र्य जो अपने बीज से गर्भ रूप होके जन्म धरे सो तीन वर्ष भर सदा राति में चौथे काल के समय पर अर्थात् डेढपहर राति गये पीछे आधीरातके भीतर भोजनका एकवार नियम राखै तो शुद्ध होजाता है=और=जो मनु का यह वचन है कि (शूद्रांशयनमारोप्यब्राह्मणोजात्य वोगतिन्न जनयित्वास्तंतस्यां ब्राह्मणयादेवहीयते) अर्थात्-शूद्रा को अपनी सेजपर सोवाइके ब्राह्मणाअवोगतिको पहुँचता है और उसमें निपट संतान पैदा करवाइ के निपट ब्राह्मणात्वके लक्षणासेही मितिजाताहै) सो यह मनुका वचन ऊँच प्रायश्चित्त की बड़ाई छुटाईके निमित्त पर नहींहै केवल पापकी बड़ाई जाहर करनेके निमित्त पर आरूढ है• क्योंकि निपट ब्राह्मणापनेसे नहीं जाता रहिता किन्तु प्रायश्चित्तसे शुद्ध होकर ब्राह्मणा बना रहिता है जो आगेको फिर कभीसेना न करे-और यहभी याद राखना कि इस वचनमें उसका चर्चा नहींहै जो कोई ब्राह्मणा किसी शूद्रकी कुमारी कन्यासे अपना विवाह करिके घर बसावै या सन्तान पैदा करावै या सेज पर सोवावै क्योंकि वह एक निद्य विवाहोंका धर्ममार्ग जुदाहै उसमें ऊँच प्रायश्चित्त की जरूरत नहीं पड़ती• तिससे यहां केवल वह शूद्रा सम्भिलेनी जो किसी शूद्रकी विवाहिता भायाहो तिसमें गर्भ धरने आदिका यह प्रायश्चित्त है क्योंकि यह परिच्छेदही पढ़ाई भाया गमन करने मध्ये वर्णान होरहा है इसी से पारदार्य पाप के प्रायश्चित्त इनका नाम है ॥ यहां तक पारदार्य के जो ऊँच प्रायश्चित्त कहेगये सो सब अनुलोम व्यभिचार मध्ये कहेगये हैं कि नीचे वर्ण की स्त्री और ऊँचे वर्ण के पुत्र्य हों यद्रा दोनों एकही वर्ण के हों अब आगे प्रतिलोम मैथुन की चर्चा होगी ॥ ० ॥ अथप्रतिलोमव्यवायेप्रायश्चित्त-ऊँचेवर्णकी स्त्रियों में यदि नीचे वर्णवाले कोईपुत्र्य व्यभिचारकरे तहाँ सर्वत्र बधरूपी प्रायश्चित्तहै व्रतरूपीनहीं= तथाचवचनं=प्रतिलोम्येवधःपंशोनायाःकर्णादिकर्तनस=अर्थात्-विपरीत वर्णों के व्यभिचार में पुत्र्यका बधकरना प्रायश्चित्तहै और स्त्रीके नाक कान आदि उत्तम अंग काटना=इसकेमध्ये=वृद्धप्रचेताका जो वचन आगे लिखतेहैं तिसमें ऊँचभेदहै= यथाहवृद्धप्रचेताः=शूद्रस्यब्राह्मणींमोहाइगच्छतःशुद्रिसिच्छतः पूरानेतद्व्रतंदेयंमाता यस्माद्वितस्यजा पादहान्याऽन्यवराप्तिगच्छतः सार्ववर्णाकामांतद्वादशवर्षातिदेश

कं तत्स्वभार्याभ्रांत्यागच्छतोवेदितव्यं मोहादिति विशेषणोपादानादिति मिताक्ष-
 राकाराः=अर्थात्—शूद्रपुंस्य जो ब्राह्मणी में मोह (अज्ञान) से गमन करे सो अपनी
 शुद्धि चाहे तो यही सार्व वर्णिक जो बारहवर्षका व्रत पहिले कहा गया परा परा
 उसको देना चाहिये क्योंकि ब्राह्मणी उसकी माता कहाती है किन्तु माता में व्यभि-
 चारउसने किया तिससे इसी प्रकार ठकुरानी या बनेनी आदि किसी और वर्णकी
 स्त्रीमें व्यभिचार शूद्रने किया हो तो वर्णक्रमसे एक एक पाद घटाकर प्रायश्चित्त करे
 (यह इस वचनमें जो वधको वचाइकर बारहवर्षवाले पूर्वोक्त व्रतका अतिदेश उतारा
 गया सो इसहेतुसे कि ब्राह्मणीको समझे बिना अपनी भार्याके धोखेसे संगमकरि
 वैठा हो तिसको वधरूपी प्रायश्चित्त न देना चाहिये क्योंकि मोहात् यह अज्ञानता
 का बोधकशब्द भी प्रलोकमें मौजूद है तिससे ठकुरानी आदि औरोंमें भी अज्ञानतासे
 व्यभिचार करने मध्ये यह प्रायश्चित्त समझना अन्यथा इसप्रतिलोम व्यभिचारमें
 वधरूपी जो प्रायश्चित्त कहि चुके वही ठीक है ॥ ० ॥ संवर्तने अत्यन्त व्यभिचारिणी
 का प्रतिलोम प्रायश्चित्त कहा है=यथा=कथंचिद्ब्राह्मणींगच्छेत्सत्रियो वैश्यसववा
 कच्छं सांतपनं वास्यात्प्रायश्चित्तं विशुद्धये शूद्रस्तु ब्राह्मणींगच्छेत्कथंचित्काममोहि
 तः गोमूत्रयावकाहारो मासेनैकेन शुद्ध्यात् (इतितदत्यन्त व्यभिचारिणी विययं=अर्थात्—
 कदाचित् सत्री या वैश्य ब्राह्मणीसे गमन करे सो सत्री अपनी शुद्धि के लिये कच्छ
 प्राजापत्य करे और वैश्य अपनी शुद्धि चाहिकर कच्छ सांतपन व्रत करे कदाचित्
 कोई शूद्र कामसे मोहित होकर ब्राह्मणी में संगम करे सो एक महीना भर गोमूत्रमें
 पकाया जौका दलिया खाय तब शुद्ध होय (सो यह अत्यन्त व्यभिचारिणी जो प्र-
 सिद्ध होय तिस ब्राह्मणीका चर्चा है अन्यथा इस प्रतिलोम व्यभिचार में वधरूपी
 प्रायश्चित्त जो कहि चुके वही ठीक है ॥ अब आगे जो उत्तम जाती पुरुष अंत्यजा में
 संगम करे तिनके प्रायश्चित्त देखौ ॥ ० ॥ अंत्यजागमनप्रायश्चित्तं—वृहत्संवर्तने
 अंत्यजाके संगमका भी प्रायश्चित्त कहा है=यथा=रजकव्याधशूलयवेसाचर्मोपजीवि
 नाम एतास्तु ब्राह्मणीगश्वाचरे चांद्रायसादयम्) इतीदं ब्राह्मणसाक्ष्यकामतः सकृद्गम
 नविषयं क्षत्रियादीनां तु पादहीनं कल्पयं=अथैवापस्तवेनोक्तं (श्लेच्छी नटी चर्मकारीर-
 जकी वस्डी तथा एतासु गमनं कृत्वा चरे चांद्रायसादयमिति)=अर्थात्—धोबीरंगरेजकीपी
 आदि व्याध चिडीमार आदि शूलय नट नर्तक आदि नीच जातें वेसा नामक
 गति नीची वर्णसंकर जातें चर्मोपजीवी चमार सोची खटीक आदि जो चमड़ा
 से काम से जीवन करे इनकी स्त्रियों में ब्राह्मणा यदि एक बार गमन करे वह दो

सास के परे दो चान्द्रायणा करै तब शुद्ध होय (जैसा यह ब्राह्मणा को कामना से एक बार संगम करने मध्ये कहा तैसा क्षत्री आदि पुरुषों को एक एक पाद कम करिके विचारना चाहिये=इसी वार्ता के मध्ये आपस्तंबने भी कहाहै कि (स्लेच्छ देशों की और अत्यन्त नीच अपवित्र जातों की स्त्रियाँ स्लेच्छी कहाती हैं तिनमें और नदिनी चमारी रजकी बरुडी आदि महानीच जाति की स्त्रियाँ इनमें त्रैवर्गिक पुरुष गमन करिके दो चान्द्रायणा करै तब शुद्ध होय ॥ ० ॥ अन्त्यजोंके स्वरूप भेद उन्हीं वृहत्संवर्त ले कहे हैं=यथा=रजकप्रचर्मकारश्च नटोवरुडश्च कौवर्तभेदाभिज्ञाश्चसप्तैतेऽन्त्यावसायिनः=रजक० चमार० नट० वरुड० कौवर्त० भेद० भिल्ल० येसात जातें अन्त्यावसायी अर्थात् अन्त्यज नाम से कहाती हैं इन्हींके संभोग मध्ये प्रायश्चित्त ऊपर कहे गये=इनके सिवाय=चण्डाल आदि और भी सात अन्त्यज इनसे भी अधिक नीच होते हैं तिनकी स्त्रियों के संभोग मध्ये बहुतबड़ा प्रायश्चित्तहै सो २६० की अधिकोक्ति में गुरुतल्प प्रायश्चित्त के साथ में कहिचुके तहां देखो—किन्तु—यहां पर लिखी हुई अन्त्यजा स्त्रियों में जो सकही के मैथुन पर प्रायश्चित्त कहागयाहो सो इन सबही स्त्रियोंके मध्ये समझि लेना क्योंकि सब सकही साथ एक सी दशाई गई=इस बातका प्रमारा आगे उशनाका वचन है=यथा=बहूनामेकधर्माणामेकस्यापियदुच्यते सर्वेषांतद्भवेत्कार्यमेकस्वपाहितेस्मृताः=अर्थात्—बहुतसे ऐसे लोग जिनका एकहीसा वर्तावा या धर्महोय तिनमें किसी सकही के लिये जो कुछ कहाजाय वही कार्य उन सबके लिये होताहै क्योंकि सब सकही रूप हैं तिससे ॥०॥ चांडाल्यादिष्वकामकृतगमने अन्त्यजा भोगनेकी इच्छा न होतेहुये धोखाआदि से यदि कोई इनको भोगै तिसके मध्ये आपस्तंबने कहाहै=यथा=चंडालभेदश्चपचकपालव्रतचारिणास अक्रामतःस्त्रियोगत्वा पराकत्रतमाचरेत्=अर्थात्—चंडाल० भेद० श्वपच० कपाल व्रतचारी जो कपालका चिह्न पास राखनेका व्रत रखतेहैं कापालिक जाति उसका नामहै यहभी एक अन्त्यजोंकी जाति विशेष होती है इनकी स्त्रियाँ जो हृदय की इच्छा बिना सकवार भोगै सो पराक नाम व्रतकरै जो वारह दिन में पूरा होता है परन्तु यह भी नियम नहींहै कि पराक व्रत सकही आचरि करै=संवर्त का यह वचन है कि=रजकव्याधशैलुसवेशाचर्मोपजीविनास स्त्रियोविप्रोयदागच्छेत्क्षच्छ्र्चांद्रायणाचरेत्=अर्थात्—रजक० व्याध० शैलुय० वेशा० वंसफोर की जीविका वाले० चण्डाकी जीविका वाले इनकी स्त्रियोंमें यदि कोई ब्राह्मणा एक बार गमन करै सो छच्छ्र चांद्रायणाका प्रायश्चित्त आचरै (यह वचन उती दशापर आछह है

कि जैसा आपस्तंबका इच्छाके विना भोग होजाने मध्ये कहिचुके=जोकि शातातप का यह वचन है कि (कैवर्ती रजकीं चैववेसाचर्मापजीविनीष प्राजापत्यविधानेन कृच्छ्रैशौकेन शुध्यतीति) अर्थात्—कैवर्त जो धीवर और जालवाले मछेहरे तथा मल्लाह कहाते हैं तिनकी स्त्री कैवर्ती० रजकी रंगरेजिन छीपनि धोविनि आदि० बांस की जीविका करनेवाली बंसफोरिनि आदि० चमडाकी जीविका वाली चमारी सोचिनि आदि० इनमें व्यभिचार करनेवाला पुरुष प्राजापत्यके विधानसे एकही कच्छकरिके शुद्ध होताहै जो सिर्फ बारह दिन का प्रयोग है (इस वचन का यह तात्पर्य है कि दीर्घ सींचनेसे पहिले जो फिर परै तिस पर यह छोटा प्रायश्चित्त लगाया जाय= और जो=उग्रनाका यह वचन है कि=कापालिकान्न भोक्तृणांतन्नारीणामिनांतया ज्ञानात्कृच्छ्राद्धनुद्दिष्टमज्ञानादेदवंस्मृतम्० इतितदभ्यासविषयं=अर्थात्—कापालिक जातिकी अन्न खानेवाले और उनकी स्त्रियोंमें संगम करनेवालोंको ज्ञानपूर्वक ऐसा करनेमें एकदर्य भर कच्छ व्रत करना कहा और विना जाने ऐसा करने पर चांद्रायणा करना कहा० सो यह अभ्यासका विषय समझना कि जिसने बार बार ऐसा किया हो तिसके लिये यह बड़ा प्रायश्चित्त है ॥ ० ॥ चांडाली गर्भ प्रायश्चित्त जहाँ कहीं ऊर्ध्वोक्त चंडाली आदि स्त्रियों में संगम करनेसे गर्भ जन्मिजाय तहां बारह वर्षका प्रायश्चित्त है=यदाहोशनाः (चाण्डाल्यांगर्भमारोप्य गुरुतल्पव्रतंचरेत्) अर्थात्—चाण्डाली आदि में गर्भधारणा करिके गुरुतल्प रूपी महापातकवाला बारह वर्षका व्रतकरै तब शुद्धहोय=और जो=आपस्तंब का यह वचन है कि=अन्त्यजायां प्रसूतस्य निष्कृतिर्न विधीयते निर्वसिनं कृतांकस्य तस्य कार्यमसंशयम् (तदेतत्कामकार विषयं)=अर्थात्—अन्त्यजा नामक महाचाण्डाली (दृष्टांत भंगिनि आदि) में जोकोई चार वर्षोंका पुरुष अपने बीज से गर्भरूप होकर जन्म धरै तिसकी निष्कृति नहीं कराई जातीहै अर्थात् उसका प्रायश्चित्त कोई नहींहै कि जिसके करनेसे फिर भी अपनी जातिने मिलिनकै० तिससे निःसन्देह उसका यही कार्यहै कि साधेपर कुकर्म की निशानी पक्षी रीति से सज्जत दागदेकर निर्वसिन रूपी दराड दियाजाय अर्थात् उनकी देश निकाला देकर किसी ऐसे हीप (टापू) के वनमें वास करायाजाय जो प्रत्येक राज्योंके अधिकार में कोई एक दुर्गम भूभाग कालाघानी आदि नामों में विख्यात होता और इसी निमित्त रहा आता है कि बहुत बड़े अपराधी लोग वहां छोड़दिये जायें (सो यह आपस्तंब का वचन केवल उस दशा पर आवश्यक है कि जिसने काम की इच्छा से चांडाली को जानते हुये सेवा किया हो अन्यथा जिसने

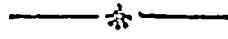
चांडाली को जाने बिना किसी और धोखा आदि से गर्भ धारण किया हो तिसके लिये ऊर्ध्वोक्त उशना के वचन से बारह वर्षका प्रायश्चित्त है कि जिसको साधन करिके फिर जाति में मिलि सकता है ॥ ० ॥ अन्त्यजों के चौदह भेद पहिले लिखि चुके हैं उनमें सात जातें अभी ऊपर अन्त्यजागमन प्रायश्चित्त के पाठ में वृहत्संवत्त के वचनसे लिखी गईं (रजकप्रचर्मकारप्रचनटोवरुडसवच कैवर्तमेदाभलाप्रचसप्तैते अन्त्यजाःस्मृताः इति यमस्तु) यही वचन यमका है कि जैसा वृहत्संवत्त का लिखि चुके तहां अर्थों सहित इसको देखौ=और इनसेभी अधिक नीच सात जातें अन्त्यजों की और हैं (चंडालःश्वपचःसत्तासूतोवैदेहकस्तथा सागधाऽऽयोगवौचैवसप्तैतेऽन्त्यावसायिनः इत्यांगिराः) यह मध्यम अंगिरा का वचन दोषी साठि की अतिक्रान्तिमें आचुका तहां अर्थों सहित इसको देखौ उन्हीं सात में चंडाल श्वपच आदि में भंगी भी एक प्रकार का अन्त्यावसायी जाति होता है• उन्हीं चंडाल आदि अन्त्यजोंकी स्त्रियों में गर्भ पैदा करने का यह चर्चा ऊपर लिखा गया कि जानते हुये तौ कुछ प्रायश्चित्त नहीं केवल बनेवास रूपी दराडहै परन्तु अज्ञानता से उनके गर्भ धरने मध्ये बारह वर्षका प्रायश्चित्तहै वह दराड नहीं=यद्यपि अन्त्यावसायी सात भौतिके चंडाल और श्वपच आदि कहे गये तथापि अन्त्यावसायी एक जुदी जाति भी श्वासकर इसी नामसे होता है जो मुर्दों के ऊपर का फेंका हुआ वस्त्र आदि लेने की आशासे श्मशानकी धरपर सदा विचरता फिरताहै यहभी एक भंगियोंमें से भेदविशेष होता है—यथाह मनुः (नियादस्त्रीतुचंडालात्पुत्रसन्त्यावसायिनं श्मशानगोचरंसूतेवा ह्यानामपिगर्हितं) अर्थात्=नियाद जातिकी स्त्री चण्डाल के बीज से अन्त्यावसायी नामक पुत्र को उत्पन्न करती है जो अपना उदर भरने को चिताकी श्मशान धरती पर विचरता है ॥ ० ॥ यहां पर प्रसंग से यह बात दशाति है कि यद्यपि चारों वर्गों में शूद्रभी अन्त्यज कहाताहै तथापि यहां शूद्रवर्गाका प्रसंग नहीं केवल अधमजातों का प्रसंग है और अन्त्यज वा अन्त्य जातिकी अर्थभी सिद्धांत में एकही होताहै कि जैसा अभी ऊपर सात भौति या चौदह भौतिके अन्त्यज वर्गान होचुके तहां देखौ—उसी अन्त्या जाति का घरमें घुसि आना भी प्रतिग्रह है कि उस घर वाले ब्राह्मण सभी वैश्य और शूद्र कोभी प्रायश्चित्त करना कहा है=तथाच प्रायश्चित्ततत्त्वं=अन्त्यजातिरविज्ञातौनिवसेद्यस्यवेषमनिसवैज्ञात्वात्कालेनकुर्यात्तत्रविशोवनस चांद्राय रापराकोवाह्विजातीनांविशोवनस प्राजापत्यंचशूद्राणांतयासंसर्गदूयशो येस्तत्रभुक्तं पकान्नंक्षुण्णन्तेयांविनिर्दिशेत् तेयामपिचयैर्भुक्तंतयामर्वाविद्योयते तेयामपिचयैर्भुक्तं

कृच्छ्रपादोविधीयते इति=अर्थात्-अन्त्याजाति चौदह भाँति में किसी प्रकार का मनुष्य जो बिना जाना हुआ किसी अच्छी जाति के धोखे से जिसके घरमें लिके निवास करे सो घर वाला जब कुछ दिनों के बाद उसको अन्त्याजाति जानिपावे तभी जानिकर उस जगह को अच्छी तरह शोधै) कि जैसा आचार मर्यादा परिपाटी के द्रव्य शुद्धि नामक प्रकरण में भूशुद्धि का प्रकार वर्णन हुआ था उसी रीति से इस घर को शोधै) और काल के अनुसार शोधै अर्थात् जो चंडाल आदि थोड़ीदेर घुसिके उसी समय लौटि गया हो तबतौ केवल उस प्रकार की लीपा पोती आदि शुद्धिकरै कि जैसा इसी प्रायश्चित्तकांड के तीसरे ३० मूल श्लोक और उसकी अधिकोक्ति में चण्डाल आदि अनेकोंके छुड़जाने पर स्नान आदि क्रिया करिके शुद्ध हो जाना वर्णन होचुका है—परन्तु जो उस घरकी धरती में चण्डाल आदि के घुसने से किसी प्रकार की मलीनता आदि चिह्न भी होगया हो या चण्डाल आदि बहुत दिन तक टिका हो तौ फिर ३१ इकतीस मूल श्लोक वाली अधिकोक्ति के विचार से और आचार कांड में लिखी हुई पाँचप्रकार की भूशुद्धि के अनुसार कुछ सूतकरूपी कालभी मानना और उन्हीं पाँचप्रकारोंमें जो कौइसा प्रकार शोधनके योग्य समुक्ता जाय तिसका बर्तावाभी करना चाहिये—इतना शोधन करनेके उपरांत प्रायश्चित्त भी यह करना कहाहै कि ब्राह्मण का घरहो तौ उसको चांद्रायण करना चाहिये जो क्षत्री अथवा वैश्यका घरहो तौ क्षत्री को दो पराक और वैश्य को एक पराक व्रत करना चाहिये जो शूद्र का घरहो तौ शूद्र को प्राजापत्य करना चाहिये और उरुको भी प्राजापत्य करना चाहिये जो उस घरकी शुद्धिहुये बिना किसीवर्ण का मनुष्य जाकर बैठा हो या घर वाले के साथ प्रायश्चित्त करने से पहिले कुछ ससर्ग मेल सिताप किया हो और जिन मनुष्यों ने उस दूयित घरमें बैठि के पक्वान्न भोजन कियाहो उनको कृच्छ्रव्रत करना चाहिये और उन पक्वान्न खाने वालोंका भोजन और मनुष्योंने कियाहो तिनको आधा कृच्छ्र करना चाहिये और इन आधे वालों का अन्न जिन मनुष्योंने खाया हो तिनको चौथाई कृच्छ्र करना चाहिये ॥ इसपर ध्यान देना चाहिये कि जब ऐसी छोटी दशापर इतना प्रायश्चित्त है तौ फिर जिन मनुष्यों ने साक्षात् चण्डालीमें संगम करिके गर्भ धारण किया तिनको बारह वर्ष का प्रायश्चित्त जो कहिचुके तौ कुछ बड़ा नहीं है ॥ ऊपर जो वर्णन होचुका उसमें चण्डाल नामसे प्रायः कसाई आदि समझने और चपच नामसे प्रायः भंगी और मलीन कंजर आदि समझने जो कृते कोभी मारि पकाय खाजाते हैं और अन्या-

वसायी नाम का अर्थ अभी अनन्तर लिखिचुके हैं कि वह श्मशानमें रहिकर मुर्दों का उतारन लिया करता है इत्यादि सब चौदह भेदों के लिंगार्थ लोक वर्तवा में प्रसिद्ध हैं सो सबक्ति लेने ॥ अब आगे के परिच्छेद में स्त्रियों के प्रायश्चित्त कहे जायँगे ॥ २६५ ॥ इसीमूलश्लोकवाले टीकासेयहपाठ अवतकचलाआताहै ॥२६५ ॥

अथस्त्रीणां परपुरुष व्यभिचारेपपातकप्रायश्चित्त

प्रकाशकोऽयंपरिच्छेदः पंचाशत्तमः ५०



इस परिच्छेद में स्त्रियोंके प्रायश्चित्त कहे जायँगे कि जो स्त्रियाँ पराये पुरुषों के साथ व्यभिचार से उपपातक उत्पन्न करें सो किस रीति से शुद्ध होयँ ॥

(व्यभिचरितस्त्रीषु प्रायश्चित्तं)

स्त्रीणामपिसवर्गानुलोमव्यवायेपुरुषस्योक्तं त्रिवर्षिकादि
तदेवभवतीतिमिताक्षरा ॥

अर्थात् पहिले परिच्छेदमें जो प्रायश्चित्त परस्त्री संगमकेमध्येपुरुषोंकेलिये कहि चुकेहैं वहीतीनिर्वय आदि के प्रायश्चित्त स्त्रियोंकोभी योग्यहैं परन्तु उन्हीं सूरतोंमें कि जैसा अपने वर्ग का संगम या अनुलोम संगम कहिचुके हैं कि ऊँचे वर्ण का पुरुष और नीचे वर्ग की स्त्री हो (यत्पुंसःपरदारैयुतच्चैनाचारयेद्भर्तृमितिमनुः) यह मनुका वचन प्रमारा है कि जो कुछ प्रायश्चित्त पुरुष को पराई दाराओं में संगम करने का कहाहो वहीव्रत स्त्रीसे उसी संगम के दोष पर करावै यह मिताक्षराकार ने व्यवस्था कही ॥०॥ परन्तु जहां प्रतिलोम मार्ग से मैथुन हुआहोय कि ऊँचे वर्ग की स्त्री और नीचे वर्ग का पुरुष होय तहां प्रायश्चित्त में भेद है सो वशिष्ठ के वचन से देखौ=यदाह वशिष्ठः=शूद्रश्चेद्ब्राह्मणीमभिगच्छेद्द्वैराशौर्वैद्ययित्वाशूद्रमरनौप्रास्येत्ब्राह्मणयाःशिरसिवपनंकारयित्वा सर्पियाःभ्यज्यनरनांगौरखर सारोप्य महापथ मनुसंब्राजयेत्पूताभवतीति• वैश्यश्चेद्ब्राह्मणीमभिगच्छेत्कृतोहित दभैर्वैद्ययित्वा वैश्यमरनौप्रास्येत्ब्राह्मणयाःशिरसिवपनं कारयित्वा सर्पियाःभ्यज्य गौरखरसारोप्य महापथ मनुसंब्राजयेत्पूताभवति• राजन्यश्चेद्ब्राह्मणीमभिगच्छेत्कृत्वरपत्रैर्वैद्ययित्वा राजन्यमरनौप्रास्येत् ब्राह्मणयाःशिरसिवपनंकारयित्वा सर्पियाःभ्यज्यनरनांगौरखर

मारोप्यमहापथ मनुसंब्राजयेत्पूताभवतीति विज्ञायत इति—एवं वैश्यो राजन्यां शूद्र
 पृथराजन्या वैश्ययोरिति (पूताभवतीति वचनाद्राजवीथि परिव्राजन मेवदंडरूपंप्रा
 यश्चित्तांतर निरपेक्षंशुद्धिसाधनमितिदर्शयति इति मिताक्षरा=अर्थात्—वशिष्ठ जी
 कहिते हैं कि जहां शूद्र पुस्त्य ब्राह्मणी गमन करै तौ उसे फस पतैल पतावरि से ल-
 पेदि बाँधिके शूद्र को प्रदीप्त बहुतसी अग्नि में छोड़ि देय और ब्राह्मणी का शिर
 मुडाइके सब देहमें घीलगाइके कपडों विना नंगी करिके गोरखर नाम जो पंजाबी
 गदहा प्रसिद्ध है तिसपर चढाइके महापथ राज मार्ग रूपी सडकों पर घुमावै तौ
 पवित्र होती है। एवं वैश्य जो ब्राह्मणी गमन करै तिसको लाज कुश काश डाम से
 लपेटि बाँधिके उस वैश्य को अग्नि में छोड़िके ब्राह्मणीका शिर मुडाय घी लगाय
 नंगी करिके गोरखर पर चढाइ राजमार्गों में घुमावै सो पवित्र होती है। एव क्षत्री
 जो ब्राह्मणी गमन करै तिसको शर पत्रों के सरपत्ते से लपेटि बाँधिजलती अग्नि में
 गिराइके ब्राह्मणी का मुड मुडाइ सब देह में घी लगाय नंगी गोरखर पर चढाइके
 सडकों पर घुमावै सो पवित्र होती है यह जाना गया—इसी प्रकार वैश्य जो क्षत्रा-
 णी में संगम करै या शूद्र क्षत्राणी और वनेनी में संगम करै तिनकी भी यही व्यव-
 स्था समझि लेनी (पवित्र होती है इस कथन से वशिष्ठ ने यह दर्शाया है कि राज
 मार्ग में घुमाना ही दंडरूप प्रायश्चित्त है किसी दूसरे प्रायश्चित्त की जरूरत नहीं
 रही यह मिताक्षरा कार का विचार है) परन्तु महापथ संज्ञा केवल राज मार्गही
 की नहीं किन्तु हिमालय के उत्तर जाके स्वर्गारोहण नाम से जो मार्ग ब्रह्मिनाथजी
 से आगे प्रसिद्ध है तिसको मुख्यता के साथ महापथ कहिते हैं (बल्कि राज मार्गों
 का नाम एक उपलक्षणा से महापथ कहा गया है यह भेद जानों) तिससे गोरखर
 पर चढाइके उस पाला रूपी देश में जहां तक गोरखर के जासकने का मार्गमिलै
 तहांतक घुमाइ लावै तौ उस पवित्र भूमिपर धमरा करने से शुद्ध होसकती है यह व-
 शिष्ठ जी का तात्पर्य पायाजाता है। अन्यथा सडकों पर घुमाने वाला अर्थ जो
 मिताक्षरा के अनुसार लिखागया सो यह लोक में गदहा पर धरिके हाँढाना प्रसिद्ध
 है इससे केवल पारलौकिक शुद्धि यद्यपि होसकी हो तौ भी इस प्रकार से हँढाई
 हुई नारी को लोक में कोई उत्तम नर घर में लेलेना स्वीकार नहीं करसकता है तौ
 फिर किण अर्थ को यह शुद्धि ठहरी। अगर इसका उत्तर ऐसे दिया जाय कि स्व-
 र्गारोहण वाली शुद्धि भी प्रयोजन की साधक नहीं दिवाई देती है क्योंकि उस भूमि
 पर जाके कोई जीता नहीं लौटता बल्कि वेही लोग जाते हैं जो ईश्वर निमित्त अपना

देह छोड़ना चाहते हैं दृष्टान्त भवजूद है कि पांडवों ने जाकर उसी हिमालय पर अपने देह छोड़े हैं। तौ इस उत्तर से भी इसी में जीति देखि परती है कि जिनको उस नारी का लौटिके घर में लेना स्वीकार होगा वे तहांतक लेजायेंगे कि जहांतकपाला से देह नहीं गिरता है। अन्यथा जो लोग नारीका अपराध बहुत जानिके घरमें लेना नहीं चाहेंगे और यहभी नहीं चाहेंगे कि हंडाइ के त्यागी हुई फिरभी सर्वत्र कुकर्म ही करती फिरै वे अवश्यही पूरे महापथ में छोड़ि आवेंगे कि जैसे पांडव लोग स्वर्ग को गये तैसे यह नारीभी पापों से छुटिके स्वर्ग जायगी। इसी अर्थ से दोनों मुट्टी में मोदक देखि परते हैं कदाचित्त ऐसा अर्थ न होता तौ फिर गोरखर पर चढाने की जगह केवल खर गदहा कहा जाता किन्तु गोरखर इसी हेतुसे बताया है कि बहुत चलिसक्ता और ठंडेदेशों में जासक्ता है—और ब्रह्मिष्ठने यह इतना कठिन प्रायश्चित्त जो कहा सो केवल कामना से चाहिकर व्यभिचार करने पर कहा है—क्योंकि इससे पहिले परिच्छेद में (प्रातिलोभ्येवधःपुंसो नार्याःकरादिकर्तव्यं) यह वचन आच्युका है कि प्रतिलोभ व्यभिचार में पुरुष का वध किया जाय और नारी के कान आदि काटेजाय और तात्पर्य इसका सर्वत्र यही समझे रहिना कि प्रतिलोभ मैथुन जो कानना चाहिकर किया जाय तिसका प्रायश्चित्त कोई ऐसा नहीं है जिससे शुद्ध होकर स्त्री फिर घरमें आसकै। सिर्फ उस दशा में शुद्ध होसक्ती है कि देव गति से राज विग्रह आदि में फंसिकर विगडी हो तिसके प्रायश्चित्त आगे सभीऋषीश्वर वर्सान करैगे जैसा इसी जगह संवर्तका वचन देखौ ॥ ० ॥ अथनिष्कामप्रतिलोभ व्यभिचारस्य शुद्धिः=यदाह संवर्तः=ब्राह्मणायकामागच्छेच्चैत्क्षत्रियवैश्यमेववा गौशूत्रयावकैर्मासात्तथाशार्दाद्विशुद्ध्याति (कामतस्तुद्विगुरां कर्तव्यं कामात्तद्विगुरांभवेदितिवचनादिति मिताक्षराकारास्तद्युक्तं=अर्थात्—ब्राह्मणी जो इच्छा के बिना देव योग से सत्री या वैश्य में जाकर फँसै सो सत्री के मध्ये एक महीना भर गौशूत्र के रँधे जौ भोजन करने से और वैश्य की अपेक्षा डेढ़ महीना जौ का रलिया गौशूत्र में रँधा खाकर व्रत राखने से शुद्ध होती है (मिताक्षराकार ने इस पर यह भी कहा है कि जो इच्छा से जाकर फँसी हो तौ इससे दूना व्रत करै क्यों कि इच्छा सहित पापके मध्ये दूना करने का नियम शास्त्र में प्रसिद्ध है) सो यह दूने का नियम ठीक नहीं है इसका निर्णय आगे सकान मैथुन के चर्चा में देखना ॥ ० ॥ यद्विंशत् सत के ग्रंथ विशेष में ब्राह्मणी आदि सभी स्त्रियों के जुदे प्रायश्चित्त कहेहैं=यथा=ब्राह्मणीक्षत्रियवैश्य सेवायामतिकच्छन्द्वाच्छातिकाच्छौचरेत्.

सत्रिययोयिताब्राह्मणा राजन्यवैश्यसेवायांकृच्छ्रादं प्राजापत्यमतिहृच्छं • वैश्ययो
यिताब्राह्मणा राजन्यवैश्यसेवायां कृच्छ्रपादंकृच्छ्रादंप्राजापत्यं • शूद्रायाःशूद्रसेवनेप्रा
जापत्यं ब्राह्मणाराजन्यवैश्यसेवायांत्वहोरात्रं त्रिरात्रं कृच्छ्रार्थमिति=अर्थात्-ब्राह्म
णी यदि एक रात्रि भर सत्री या वैश्य की सेवामें जाफँसै सो सत्री के व्यभिचारम-
ध्ये अतिकृच्छ्र व्रतकरै औरवैश्यके व्यभिचार बावत कृच्छ्र अतिकृच्छ्र दोनों भाँति
के व्रत करै तत्र शुद्ध होय • एवं सत्री की योयिता यदि एक रात्रि भर ब्राह्मणा या
सत्री या वैश्य की सेवा में जाफँसै सो ब्राह्मण के व्यभिचार मध्ये आधा कृच्छ्रकरै
सत्री के व्यभिचार मध्ये प्राजापत्य पूरा करै वैश्य के व्यभिचार मध्ये अतिकृच्छ्र
करै • एवं वैश्य की योयिता यदि एक रात्रि भर ब्राह्मणा या सत्री या वैश्य की
सेवा में जाफँसै सो ब्राह्मणा के व्यभिचार बावत कृच्छ्र की चौथाई प्रायश्चित्त करै
सत्री के व्यभिचार बावत कृच्छ्र का आधा व्रत करै वैश्य के व्यभिचार बावत प्रा-
जापत्य पूरा करै • एवं शूद्र की योयिता यदि एक रात्रि भर गौर शूद्र की सेवा में
जाफँसै सो प्राजापत्यकरै और ब्राह्मणा के व्यभिचार में जाफँसै सो एक दिन रात्रि
भर व्रत करै और सत्री की सेवा में जाफँसै सो तीन दिनका व्रत करै और वैश्यकी
सेवा में जाफँसीहो सो आधा कृच्छ्र करै जो छः दिन में होसकैगा—इन प्रायश्चित्तों
के छोटापन से प्रत्यक्ष प्रतीत होताहै कि देव योगसे सरा मात्र फँसिजाने बावत ये
प्रायश्चित्त हैं तिससे एक रात्रि भर लिखि चुके सो ठीक नहीं ॥ ० ॥ शूद्रसगमे
पिकचित्शुद्धिरुक्ता=तदाह वृहत्प्रचेताः=विप्राशूद्रेणसंपृक्तानचेत्तस्मात्प्रसूयते प्रा
यश्चित्तंस्मृतंतस्याःकृच्छ्रं चांद्रायणात्रयम् (एतदनिच्छंत्यां स्वपतिभांत्यावावेदितव्य
मित्यत्राभिप्रायः) चांद्रायणोद्वेकृच्छ्रप्रचविप्रायावैश्यसेवने कृच्छ्रचांद्रायणोस्यातांत-
स्याःसत्रियसंगमे—सत्रियाशूद्रसपर्केकृच्छ्रंचांद्रायणद्वयम् चांद्रायणांसकृच्छ्रन्तुचरेद्वै
श्येनसंगता—शूद्रंगत्वाचरेद्वैश्याकृच्छ्रंचांद्रायणोत्तरम्—आनुलोम्ये प्रकूर्वीतिकृच्छ्रन्पा
दांतरोपितम्=अर्थात्-वृहत्प्रचेताने विरले क्रिया विहीन देशोंके आचार हीन ती-
नों वर्णों का हित सोचिके उनकी स्त्रियों की शुद्धि शूद्र के व्यभिचार में भी होती
कही है कि—ब्राह्मणी जो शूद्र के साथ इच्छा विना या अपने पतिके दोखे से फँसि
जाय और उससे गर्भ यदि न रहिने पाया हो तो इस दशा में उस ब्राह्मणी के लिये
प्रायश्चित्त कहा है कि कृच्छ्रात्मक तीन चांद्रायणा करै • इसी प्रकार जो वैश्यकी
सेवा में जाफँसी हो तिसको दो चांद्रायणा और उनके बादि एक कृच्छ्र भी करना
चाहिये • इसी प्रकार जो सत्रीके संगमें जाफँसीहो तिसको कृच्छ्रात्मकदोचांद्रायणा

करने चाहिये—ऐसेही जो स्त्री की भार्या किसी शूद्र के संपर्क में जाफँसी हो तिसको दो कृच्छ्रात्मक चांद्रायणा करने चाहिये और जो स्त्रायणी किसी वैश्य के साथ फँसी हो सो एक चांद्रायणा और एक कृच्छ्र नाम का जुदा प्रायश्चित्त करै—ऐसेही वैश्यकीभार्या जो किसीशूद्रसे फँसिगईहो सो एक चांद्रायणा के पीछे एक कृच्छ्र व्रत भी साथै तब शुद्ध होय—और जहां अनुलोम रीति का मैथुन होय कि पुंस्य ऊँचे बर्ग का और स्त्री नीचे बर्ग की तहां कृच्छ्र व्रत बर्गक्रम से एक एक पाद घटा कर करै ॥ ० ॥ गर्भस्थितौचक्षुचिच्छुद्धिःप्रोक्ता—ध्यान करौ कि विरले देश विशेष के वर्तवा और तत्रत्य मनुष्यों की प्रकृति चर्या के अनुसार उनके निर्वह सोचि के चतुर्विंशति सत् नाम के ग्रन्थ विशेष में गर्भ रहिजाने पर भी प्रायश्चित्त से शुद्धि होनी कही है=यथा=विप्रगर्भपरकःस्यात्क्षत्रियस्यतथैन्दवस ऐन्दवप्रचपराकप्रचवैश्यस्याकामकारतः शूद्रगर्भभवेत्यागप्रचाराडालोजायते यतः गर्भस्रवैर्धातुदोषैश्चरेचांद्रायणात्रयस्र (अकामकारतइतिविशेषणोपादानात् कामकारेपुनःपराकादिकं द्विगुणांकुर्यादिति मिताक्षरातद्युक्तं =अर्थात्—ब्राह्मणा से गर्भ रहा हो तो पराक व्रत करै जो बारह दिन में होता है जो स्त्री से गर्भ रहा हो तो चांद्रायणा करै जो वैश्य का गर्भ रहा हो तो चांद्रायणा और पराक दोनों करने चाहिये यह सब कामना के विना दैवयोग से संगम होकर गर्भ रहिजाने के प्रायश्चित्त हैं और शूद्र से गर्भ रहिजाने में स्त्री का त्यागही किया जाय प्रायश्चित्त की जरूरत नहीं है क्योंकि शूद्र के गर्भ से चाराडाल पैदा होता है तिससे अन्यथा जो गर्भ रहिकर कुछ दिन पीछे गिरजाय तौभी शरीर के भीतर उस गर्भ का रस फैलने से शरीर की सातों धातु में दोष पहुँचिजाने के हेतु से उस दोष की शुद्धि तभी होती है जो लगातार तीन सहीना के चांद्रायणा करै (मिताक्षराकारकहिते हैं कि इच्छाविना के भोग मध्ये ये प्रायश्चित्त कहे गये तिससे जहां स्त्रीने कामना से संगम करिके गर्भ धराहो तहां ये प्रायश्चित्त दुगुने कराने चाहिये सो यह दुगुने का नियम ठीक नहीं है इसका ब्यौरा पहिले भी लिखि चुके और फिर भी कहीं आगे लिखा जायगा ॥ ० ॥ जहां यह शूद्रका गर्भ गिरने नहीं पायाकिंतु दशवै सहीना तक पेट में रहिकर जन्म पावै तहां फिर नियत प्रायश्चित्तकी जरूरत नहीं रहिती क्योंकि स्त्री का त्यागही किया जाता है=तदाह वशिष्ठः=ब्राह्मणाक्षत्रियविशांभार्याःशूद्रेणसंगताः अप्रजाताविशुद्धंतिप्रायश्चित्तेननेतराः=अर्थात्—दैवयोग से ब्राह्मणा स्त्री वैश्य इनकी भार्याये यदि शूद्र से विगईं तौ जिनके गर्भ का प्र-

मृत न होने पावे वेही प्रायश्चित्तसे शुद्ध होजाती हैं जिनके प्रसूत होवे वे नहीं शुद्ध होसक्ती हैं ॥ ० ॥ सगर्भायाः शूद्रादि संगमे नियमाः—यदि कोई द्विजाती की भार्या अपने पतिके बीज से गर्भवती होते हुये भी शूद्रआदि से व्यभिचार में फँसि गई हो तिसके लिये स्मृत्यन्तर में विशेष नियम कहे हैं=यथा= अन्तर्वल्नीतुयानारी समेता क्रम्यक्रामिना प्रायश्चित्तं न कुर्यात्सायावद्गर्भाजनिःसृतः जातेगर्भव्रतंप्रचात कुर्यान्मासंतुयावकम् न गर्भदोषस्तस्यास्तिसंस्कार्यःसद्यथाविधि=अर्थात्—यदि कोई गर्भवती नारी किसी कामी पुरुष ने प्रवृत्ता से प्रकांड के भोगी सो स्त्री तब तक प्रायश्चित्त न करै कि जबतक उसका गर्भ जन्म लेकर बाहर न निकसै (क्योंकि गर्भ की दशा में प्रायश्चित्त कराने से गर्भ गिर जाने की शंकाहै तिससे) जब गर्भ उसका जन्म लेचुके तिस पीछे एक सहीना भर व्रत करै तिसमें गोमूत्रको रंधे जोका माड पीके रहै पर उस पैदा हुये गर्भ में कुछ दोष नहीं है क्योंकि शास्त्रोक्त विधिसे उसका संस्कार करना चाहिये ॥ ० ॥ इन में जो कोई स्त्री अपने उद्वत्पन से प्रायश्चित्त न करै तब (नार्याः करारिदिकर्तनं) यह वचन पहिले लिखिचुके हैं तिसका वर्तवा किया जाय कि सेसी नारी के नाक कान आदि उत्तम अंग कारिके कुत्प करै इस दंड के साथ उसका त्याग किया जाय यह तात्पर्य है ॥ ० ॥ अन्त्यज चांडालादिव्यभिचारेपिकचित्प्रायश्चित्ते न शुद्धिः—और भी विरले देश विशेषों की अपेक्षा से तत्रत्य अनुष्यों के व्यवहार अनुसार उनके निर्वाहिके निमित्तसे विरली स्मृतियों में अन्त्यज से व्यभिचार होजाने में भी द्विजातीकी स्त्रियां प्रायश्चित्तकरिके शुद्ध होजातीकही हैं=यथास्मृत्यन्तर वचन=रजःकृद्योधशौलूयवेसाचर्मापजीवि नः ब्राह्मरायेतान्यदागच्छेदकानादैदवत्रयसिति=अर्थात्—रजक • व्याध • शौलूय • वेसा • चर्मापजीविन करनेवाले इनके साथ जो ब्राह्मणी इच्छाके बिना एकवार सगम करै सो तीन चांद्रायणा करिके शुद्ध होती है—इन्हीं अन्त्यजों की वावत इससे बड़ा भी प्रायश्चित्त आगे सालभर का कहा जायगा—यहांपर (यहतर्क न करना कि इसमें केवल ब्राह्मणीकही ऊपर द्विजातीकी स्त्रियां सेषा क्यों लिखिचुके किन्तु जब सबसे उत्तम ब्राह्मणी शुद्ध होसकी तब क्षत्राणी वनेनी कहांरहों बल्कि ब्राह्मणी को तीन चांद्रायणा कहेगये तो क्षत्राणी को दोही और वनेनी को एकही चांद्रायणा से और शूद्रको पन्द्रह दिन के व्रत करने से शुद्धि प्राप्त होसकेगी तिसमें तर्कना को अवकाश इसमें नहीं है)=इसी प्रकार=इनसे भी अधिक नलीन चांडाल आदि अन्त्यजोंके व्यभिचार में भी प्रायश्चित्तसे शुद्धिहोनी विरली स्मृतियोंकेकही

है=यथा=चांडालंपुल्कसंस्लेच्छंप्रपाकंपतितंतथा ब्राह्मरायकामतोगत्वाचांद्रायणा
 चतुष्टयस=अर्थात्-चारडाल०पुल्कस० स्लेच्छ० श्रपाक० पतित जो चारि प्रकार के
 महापातकी वर्णन होचुके० इन के फंदा में ब्राह्मणी बिना इच्छाके फँसि कर चार
 चांद्रायणा करै (इसका भी वही अनुक्रम है कि क्षत्राणी तीनिही चान्द्रायणा करै
 वैश्यकी भार्या दोही करै शूद्र की भार्या एकही करै) परन्तु जैसा मिताक्षराकारोंने
 इन वचनों पर यह कहा है (अकामतइतिवचनात् कामतोद्विगुणांकल्प्यं) कि इन
 वचनों में अकाम संगम के मध्ये जो प्रायश्चित्त कहागया सो कामनाके व्यभिचा-
 र में दूना करवाना चाहिये—इस व्यवस्था पर आधुनिक लेखक संमत नहीं देखते
 हैं क्योंकि मूल स्मृतिकारों ने केवल अनिच्छा के व्यभिचार पर प्रायश्चित्त से
 शुद्धि होनी कही है इच्छा के व्यभिचार में प्रायश्चित्तसे भी ऐसे महासंद पातकी
 शुद्धि होनी संभव नहीं है जो ऐसा होसक्ता तो मूलमें भी कुछ प्रायश्चित्त भेदकी स
 मस्या करीजाती तिससे ऐसी स्त्रियों का परित्याग ही सूचित क्रिया है बल्कि इसी
 प्रकार का अगिला वचन देखौ उसमें भी दैवयोगसे यह नीच संगम होजानेका प्रा-
 यश्चित्तहै=तथाच=चांडालेनतुसंपर्कंयदिगच्छेत्कथंचनसंशखंबपत्तंक्षुर्याङ्गुजोयाद्या
 वकौदनस विरात्रमुपवासःस्यादेकरात्रंजलेवसेत् आत्मनासंसितेकूपेगोमयोदककर्म
 तत्रस्थित्वानिराहारा सात्रिरात्रंततःक्षिपेत् शंखपुष्पीलतामूलंपत्रंवाङ्गुसुमंफलस क्षीरे
 सुवर्णांसिसिंहाययित्वाततःपिबेत् एकभुक्तं चरेत्पश्चाद्यावत्पुष्पवतीभवेत् बहिस्ताव
 चनिवसेद्यावच्चरित्तद्वृत्तम् । प्रायश्चित्तेतत्प्रचीर्णोक्षुर्याद्ब्राह्मणाभोजनसगोद्वयंदक्षिरां
 दद्याच्छुद्धे स्त्रायंभुवोऽन्नवीह=अर्थात्—यदि कथंचन कभी दैवयोगसेवलात्कारकिसी
 चांडालके साथ संपर्कमें कोई नारीजाफँसीहो तो वहचोटीतक बालोंको मुडावै और
 गोमूत्रके पके जौ का भातखायके तीन रात्रि उपवासकरै फिर ऐसेकिसीकूपकेजलमें
 एकरातिभर बसै जो उसकेगले से बैठेहुये जलहोय अथवा किसी तलावआदि तीर्थके
 जल में बसै और अपनी बराबर गरिहरे खुदे गडहिले में जो कूपहीके आकार खोदा
 जाकर उसमें गायका गोबर और जल छोडिके रवदड़ कीचड बनाई जाय उस की-
 चड में बैठके तीन रात्रि निराहार बितावै तिसके बादि शंखपुष्पी (ब्राह्मी घास व-
 हनेही जिशके फूल शंखही के आकार होते हैं तिस) के फल फूल मूल आदि पं-
 चांग लेकर दूध में पकावै और पकते समय कुछ सोना उसमें छोडि देय फिर पीछे
 सोना अशरफ़ी आदि जो कुछ होय सो निकामिके उस दूधको खूब गरज गरम तीन
 दिन तक पीवै फिर इसके बादि रात्रि में एक बार भोजन करनेका व्रतराखै सो तत्र

तक कि जबतक सासिक रजोधर्म से पुष्पवती फिरके होय और तबतक मुख्य घर से बाहर किसी गौहरे आदि उचित स्थान में निवासकरै कि जबतक यह प्रायश्चित्त पूरा होय • फिर इसके परे होजानेपर यथाशक्ति ब्राह्मणों को भोजन करायके दो गाय दान करै और दक्षिणा वांटिके तब शुद्ध होती है यह नियम स्वायंभु मनु आपही कहिगयेहैं । अत्रसकाममैथुननिर्णयः । यहां इनदोनों बातपर ध्यान देना चाहिये कि यद्यपि चांडाल के संगम से भी स्त्रियों का शुद्ध होजाना स्वायंभु मनु ने कहा परन्तु यह कैसी एक लाचारी दशा का संगम है कि जब किसी चांडालने दैवयोगसे बलात्कार घेरि लियाहो दूसरे इसलाचारी परभी कैताप्रबल प्रायश्चित्त दर्शाया है कि जिसको देखने सुनने से चित्त गवाही देता है कि हाँ ऐसा करने से वेशक स्त्री का शरीर शोधन होजायगा और यहीआशय ऊपरले मुनि वचनोंका सर्ववहै कि दैव योगसे राजविध्वंस या गदर लूटि फूटि आदि की दशा में यदि ऐसी विपत्ति किसी स्त्री पर आनि परै तौ इन प्रायश्चित्तोंसे शुद्धि मानी जासक्ती है • तौ इस घंटाघोष के होते हुये भी यह कैसे माना जासक्ता है कि जो स्त्री अपने काम भोगकी इच्छासे आपही जाकर चण्डालोंसेभी मैथुन करवावै सो छोटे प्रायश्चित्तों को दूना साधन करिके घरमें आवैठै (यहदूना करनेका नियम केवल अपने सवर्णों पुरुषके मैथुनमें और अनुलोमसर्गके मैथुनमें न्यायात्मक माना जासक्ताहै) यह दूने का नियम प्रतिलोम द्विजातीके मैथुनपरभी नहींशुभदायकहै फिरशूद्र और शूद्रसे भी उतरिके चण्डालआदि अधमजातों से कामिनीकी कामनाका मैथुन • जिस चांडालकी एक चमर की लंबाई के भीतर सर्ग चलते समय समीप निकसि जाने का नियम पहिले होचुका है सो तीसवीं अधिकोक्ति में देखौ—हम इस व्यवस्था का पूरा निर्याय परिच्छेद के अन्त में अवकाश पाकर लिखैगे यहांपर अवकाश नहींहै—और इसी परिच्छेद के प्रारम्भ से जो पंक्ति लिखी गई है तिनको लेकर वशिष्टके कहे प्रायश्चित्त को भी देखौ फिर इस दूने की व्यवस्था भी सोचना कितना अंतरहै॥

अंत्यजव्यवायेप्रायश्चित्तांतरन्तु—अंत्यजों के व्यभिचार मध्ये तीनिही महीनाके तीन चांद्रायणा ऊपर लिखिचुकेहै तिनके मध्ये ऋष्यशृंगने बारहमासका प्रायश्चित्त करना कहा है=यथाहृष्यशृंगः=संपृक्तास्यादथांत्यैर्यासाकृच्छ्रावदंसनाचरेत् (अथ अव्ययोऽवसंग्रहे) =अर्थात्—ऋष्यशृंगजी कहिते हैं कि जहां इसप्रकारका संग्रह खडा होजाय कि नागहानी जब कोई द्विजातीकी भार्या या शूद्रहीकी भार्या अंत्यजाती रजक व्याव आदि पुरुषोंसे फनिजाय या उन पुरुषोंकी प्रबलतासे कुछदिन

मिलिके वासकरै (यतःसंपृक्त शब्दःसंबद्धेर्मिथितेचतस्मात्संपृक्तास्यादित्यस्यायमेवा
 र्थः) वह स्त्री एकसालभर छच्छ्रव्रत अच्छे विधिकेसाथ आचरै तब शुद्धहोय—इसका
 निर्गाथ सोचना चाहिये कि पहिले जो अंत्यजोंके सैथुन में तीनिही महीना के व्रत
 कहिचुके सोती केवल एकबारके सैथुन मध्ये कहाथा और यहां जो बारह महीना
 कहे सो लाचारीसे परवश होकर कुछदिन उनके फन्दमेंनिवास करना पराहो तिस
 हेतुसे यह बड़ा प्रायश्चित्त कहा—इसमें भी पूर्वोक्त रीतिसे यह डौलहै कि(ब्राह्मणी
 परे बारहमास करै क्षत्राणी इसकी चौथाई छोडिके नौमासकरै और वनेली दोपाद
 छोडिके एक छमाहीभर व्रत करै और शूद्रकी भार्या हो सो तीनि महीने व्रत करै)
 यहां भी ऋष्यशृंगजीके कहे बारहमहीनोंको पहिले तीनि महीनोंकी अपेक्षा बहुत
 जानिके हमारे प्राचीन संग्रहकार ने यहकहिदिया है (कामतःसकृद्गमनेइदं) कि
 यह बड़ा प्रायश्चित्त एकहीबार कामनाके साथ संगम करनेमध्ये समझना—सो इस
 कामना और इच्छाके व्यभिचारपर कदापि संमत नहीं देखकते हैं न किसी ऋषी-
 चरने अपने किसी मूल वचन में यहभाव दर्शाया है तिससे इच्छा बिना दैवयोग से
 कुछदिन उनकेसाथ निवास करना छोटी बातहै और इच्छा साथ एकहू बारका सं-
 गम बहुत बड़ी बातही नहीं बल्कि बहुत बड़ा अनर्थहै कि जिसका कोई प्रायश्चित्त
 त्यागिदनेके सिवाय सूचित नहींहै ॥०॥ सगर्भायाश्चांडालादिव्यवायेनियमाः—
 उन्ही ऋष्यशृंगजीने उस दशाके भी नियम कहेहैं कि जब कोई गर्भिणीनारी किसी
 अंत्यज चंडाल आदिने भोगीहो=यथाहऋष्यशृंगः=अंतर्वत्नीतुयुवतिःसंपृक्ताचांत्ययो-
 निना प्रायश्चित्तंनसाकुर्याद्यावद्गर्भाननिःसृतः नप्रचारंगृहेकुर्यान्नचांगेषुप्रसाधनम
 नशयीत्तुमंभर्त्नान्वाभुंजीतवांधवैः प्रायश्चित्तंगतेगर्भेविधिंछच्छ्राद्धिकंचरेत्त हिरराय
 मयवावेनुंद्याद्विप्रायर्दक्षिणास=अर्थात्—ऋष्यशृंगने ऊपरले प्रायश्चित्तके साथही
 इस विधिको भी लिखाहै कि—यदि कोई गर्भवती युवती नारी अंत्यज के साथ फँ-
 सिजाय हो प्रायश्चित्तको तबतक न करै कि वहर्पातिकागर्भ बाहर न निकषिपावै
 क्योंकि ऐसी दशामें प्रायश्चित्त करनेसे गर्भका गिरजाना आदि उपद्रव खडाहोना
 संभव है और तबतक प्रायश्चित्तके बिना घरके कामधंधे और घरमें चलना फिरना
 भी न करै और कंधी लुरमा आदि अंगोंकेसंस्कारभी न साथै और भर्त्तिके साथभी न
 सोवैतथा दंधुआदि कुतुम्बकेसाथ भोजनभी न करै फिर उसगर्भका जन्महोजाने वादि
 वही पूर्वोक्त एक सालभरका छच्छ्रव्रत आचरै और पीछेसे ब्रह्मभोजकराइके सुवर्णा
 या गौदान की दक्षिणा देवै ॥ ० ॥ अथप्रायश्चित्ताकरसापरिणामः=यहां यह

शंका श्रेयरही थी कि इन कहेलिखे प्रायश्चित्तोंको जो कोई नारी करनाही स्वीकार न करे तब कैसे शुद्ध होगी—तहां यही नियमहै कि यातौ पुल्लिंगरूपी मुद्राका वाग उक्तके साथपर द्वावाइके निकारसि देवे या निषट सारडालै यह दंडरूपी प्रायश्चित्त है=तदाहपाराशरः=हीनवर्णोपभुक्ताया सांक्रावध्याऽथवाभवेत्=अर्थात्—जिस स्त्री को उमकी इच्छा विनाही यदि हीनवर्णके पुरुषोंने भोगा हो और वह प्रायश्चित्त को न साधै तो साथे दाग देनेके योग्य या बध करने के योग्य होय=इसके सिवाय जो नारी अपने भोगकी कामनासे चंडाल आदि किसी अधम के पासजाय तिसका त्याग भी नहीं होता किन्तु केवल सौतहीरूपी दंडहै सोई उसका प्रायश्चित्त जानो जैसा उग्रनाका वचन आगेकहतेहैं ॥ ० ॥ अथसकाममैथुनप्रसंगः=यदाहोशनाः=अंत्यजेनतुसंपर्कभोजनेमैथुनेकृते प्रविधोत्संप्रदीप्तेऽग्नौमृत्युनासाविशुद्ध्यति=अर्थात्—अंत्यज पुरुषके संपर्कमें जो कोई नारी इच्छा सहित भोजन या मैथुन करने लगी सो जीतेजी कदापि नहीं शुद्ध होसक्ती है तिससे प्रज्वलित अग्नि में कूदिपडै सो सौत पाकर शुद्ध होजाती है—इस अर्थ का ध्वन्यर्थ यह भी है जो नारी अपने आप अग्नि में नहीं कूदै सो बलात्कार अग्नि में भोंकी जाय ॥ ० ॥ सर्ववचनानांनिर्णायसारः=इस एरिच्छेद के प्रारम्भसे यहांतक यह बात सबने देखी और समझी होगी कि इच्छासे चाहिकर किये हुये मैथुनका प्रायश्चित्त कोई नहीं है जैसा इसी जगह सल्लान मैथुनका प्रसंगदेखो फिरइससे उपरालू वचनोंको आगेदेखो कि आचार मर्यादा परिणामों में यह वचन आचुकाहै (चतुर्विंशत्युपरित्याज्याःशिष्य गार्गुरगात्रया पतिव्रीचविशेषेराजुंगितोपगताचया) अर्थात्—चार प्रकारकी स्त्रियां अवश्यही त्यागिदेवे योग्यहोतीहैं एकतौ शिष्य या दासोंसे गमन करनेवाली दूसरे जेठ ससुर आदि सुत्तजनों के पास जानेवाली तीसरे जो अपने पतिको विधदेनेआदि प्रकारोंसे सारडारै और चौथी जो जुंगितोंके पासजाय अर्थात् चर्मकार आदि अति नीचजाती पुरुष जुंगितकहातेहैं जो पदके पीनेसे संयुक्त रहितेहों यह वचनभी केवल इच्छाके मैथुनपर आरुढहै इनपरध्यानकरो कि जब नीचके सामसे निषट त्यागही करना चाहै तो फिर प्रायश्चित्त कहांरहा और किसका दुपुता किया जाय=फिर भी यह देवलता वचनहै कि (यत्रयाद्वनभिसवायपापंक्रमसकृत्कृतम् तस्येयंनिष्क विद्वेषावर्जविदिर्गनीविधिः) अर्थात्—वर्णके जाननेवाले बुद्धिगानोंने जो कुछ प्रायश्चित्त कहीं लिखे हैं जो सब उमकी निष्कृति सोची है जो पाप कर्म सकहीवार जिना चाहै सोवे देवकी तो वनिगया हो किन्तु इच्छावाले की शुद्धि मुक्ति नहींहै=

और भी=अंगिराका यह वचन है कि (सर्गांतिकांहियत्प्रोक्तंप्रायश्चित्तंमनीषिभिः तत्तुक्रामहतेपापैर्विज्ञेयंनावसंशयः) अर्थात्—अंगिराने यह नियम निश्चित कर दिया है कि मनीषी बुद्धिमान विद्वानों ने जो कुछ कहीं किसी शास्त्र में सर्गांतिक प्रायश्चित्त कहा हो जिससे प्रायश्चित्त की प्राणाही चले जायें जो सर्वत्र कामनासे किये पापके ऊपर समझलेना इसमें कुछ संदेह नहीं—इस बातका प्रमाणा भी इसीपरिच्छेद के प्रारम्भसे देखो कि वशिष्ठने सर्गांतिक प्रायश्चित्त कहा सो भी कामनासे किये पापके ऊपर कहा है=और भी=दोसौतेंतीस २३३ वाला मूल श्लोक देखो जहां योगीश्वर याज्ञवल्क्यजी आपही यह कह चुके हैं कि (छित्वालिङ्गं वधस्तत्रसकामायाः स्त्रिया अपि) जहां कामनाके साथ अशुकाशुका स्त्रियोंमें संगम होय तहां पुरुषका लिंग काटिके सौत रूपी प्रायश्चित्त उसको दिया जाय और जो स्त्रीने अपनी ओरसे काम की इच्छा प्रकट करी हो तो उसका भी वध किया जाय—इसी प्रकार सर्वत्र सभी वचनोंका तात्पर्य केवल यही है कि कामना से किये व्यभिचारका प्रायश्चित्त सौत के सिवाय यदाकान आदि काटिकर कुरूप करने के सिवाय और कुछ नहीं है. अथवा एक यह दर्श है कि (महताचापराधेन प्रायश्चित्तं विसर्जनं) बहुत बड़े अपराध में भी कि जहां स्त्रीका वध करना या कुरूप करना उचित न रहिये तहां स्त्री को घर से निकालि देना यही प्रायश्चित्त है और कुछ नहीं—परन्तु इन सभी धर्मोंसे यह बात नहीं पाई गई कि ठूना प्रायश्चित्त कराइके घरमें राखे=इसपर भी=कोई यह शंका करे कि यहां उपपातकोंका प्रकरणा है और योगीश्वर का दोसौ तेंतीसवाला वचन महापातकों में आया था यहां उसका प्रमाणा उचित नहीं—इसका यही समाधान है कि महापातकों में चारडाली आदिका गमन भी आचुका था दोसौ इक्ति २३२ वाला मूलश्लोक और उसीकी अधिकोक्ति देखो फिर तेंतीसतक देखते चले जाओ कि उसी अंत्यजा चारडाली से सकाम मैथुन करने पर लिंग काटिकर वध करना कहा गया तो फिर इस परिच्छेद में उपपातकों के साथ आकर उन्हीं चारडालों से सकामानारी मैथुन कराइके वधोकर छोटे प्रायश्चित्तोंको ठूनाकरिके शुद्ध हो सकैगी यह बड़ा असमंजस है=और भी=वृहत्त यमका वचन देखो कि (रेतःसिद्धकाकुमारो-युत्तयोनिस्त्र्यंजासुव सपिंडापत्यदारेषु शशात्यागो विधीयते) अर्थात्—कुमारीकन्या या अर्धनो बहिन या सब तरह की चांडालियों में या अर्धने सपिंड और पुत्रादिक संतानकी बधटियों में कामनाके साथ वीर्य दींचनेवाले का प्राणात्यागही प्रायश्चित्त है और कुछ नहीं—जैसा सब तरहकी चांडालियों में वीर्य दींचनेवाले पुरुषको प्राणा

त्यागरूपी प्रायश्चित्त कहा है। सब तरहके चंडालों से मैथुन करानेवाली स्त्री को प्राणत्याग रूपी प्रायश्चित्त सूचित है बल्कि यह बात इस परिच्छेद के प्रारम्भ में खुद मिताक्षरा कारही कहिचुके है कि जो जो प्रायश्चित्त पहिले पुरुषोंको कहे गये वेही तीनिवर्ष आदिके प्रायश्चित्त उन पापोंकी करनेवाली स्त्रियों को भी सूचित है बल्कि (यत्पुंसःपरदारयुक्तचैनांचारयेद्भूतं) यह मनुका वचन भी मिताक्षरा-कारने प्रसारा दिया है तिससे हम दूने प्रायश्चित्त में नहीं संसृति देखते हैं—हाँ—दूने का नियम प्रायश्च न रहत्या गोहत्या और चोरीआदि पापकर्मोंपर जैसा जहाँ लिखिचुके सो सब ठीक है पर इसमें नहीं और इसी द्विविध आशयके हेतुसे योगीश्वर याज्ञवल्क्य पहिले कहिचुके है कि (प्रायश्चित्तैरप्येनोपदज्ञानकृतंभवेत्त कामतोव्यवहार्यस्तुवचनादिहजायते २२६) इस दोसौ छब्बीस के ठिकाने पर जाकर अर्थ देखो इसका यही तात्पर्य है कि प्रायश्चित्तोंसे बहपाप दूर होजाता है जो अज्ञानता से बनिगयाहो और जो कामनासे जानतेहुये पापकियाहो तिसमें प्रायश्चित्त करने से भी पापतौ नहीं मिटिस्तक है परन्तु संसार में मनुष्यों के साथ व्यवहार आदि संबन्ध जोड़नेके योग्य होजाता है (इसीलिये दूनातिथुना आदि करायाजाता है) पर इसमें इतना भेद है कि (वचनादिहजायते) वचन के बलसे व्यवहार योग्य होता है अर्थात् जिसकिसी पापकी वावत मुनीश्वरों ने वचन दियाहोगा कि इसमें दूना आदि करने से व्यवहार के योग्य होसके उसीपापमें उसखास वचनकेबलसे प्रायश्चित्त करिके संसारी व्यवहारों के लायक होजायगा खर्वत्र सभीपापोंमें ऐसा नियम नहीं है—तो इस व्याख्याके अनुसार ठीकठीक है कि हत्या आदिमें जहाँ जहाँ दूनेका वचन पाया तहाँतहाँ प्रायश्चित्त करिके संसारी व्यवहार करसकता है अन्यथा स्त्री व्यभिचारिणी के मध्ये दूनेका वचन कोइ नहींमिला सो कैसे घरके व्यवहार योग्यहोसके—वेचल एक शूद्रके लिये दूना करनेका यहवचन मिला है कि (श्लेच्छेनापि गताशूद्रात्प्रज्ञानात्तुक्तयंचन शब्द्व्ययंशुद्धीतज्ञानात्तुद्विगुणंभवेत्) अर्थात्—किमी शूद्रकी शूद्रिणी भार्या यदि कदाचित् नामज्ञानी अपनी अज्ञानतामें श्लेच्छ से पँसि जाय सो अच्छीतरह तीनिवर्ष राये गर जो जानिबूझि फँसीहोय सो दूने व्रतकरे तो संसारी घरके काम योग्यहोजाय—यहवचनमे (शूद्राहि) हि अद्वय विधेयअर्थ पर आलस होनेसे भी केवन शूद्रकी उद्गुणित रदखीगई है कि शूद्रा के सिवाय किमी डिजाती की भार्या को यह दूनेका अधिकार नहीं अनुभूतना और इहदूनेकी अधिकारी केवल ओछे शूद्रों की भार्या समुझिलेनी कि जिनकी जाति में धरेना

आदिभी होताहों—सो यहवार्ता केवल ओछी जाति का घरबसा रहिने को निर्वाह सोचिके कही अन्याया जो श्राद्ध उज्ज्वल जातोंमें गिनती होलेसे धरेजा आदि निम्न-
द्वाचार क्लृप्त न करतेहों तिनकी स्त्रियोंको यहभी नहीं सूचित है फिर उत्तम तीनि
वर्गों की का क्रया २६५ ॥ इसी दोसौपैश्वरि अलप्लोक वाली दोका से यह पाठ
चलाआता है २६५ ॥ इतिपारदार्यभेदेपरपुरुषसंगमपरिच्छेदः ॥

इतिपारदार्यप्रायश्चित्तप्रकरणं ॥

—*—

यह प्रकरणा केवल उनचास ४६ पचास ५० इन दोही
परिच्छेदों में पूराहुआ (और यहभी आदरकवी कि)

उनतालिष ३६ परिच्छेद को आदि लेकर ४३ तैंतालीस परिच्छेदके अन्ततक
चारि परिच्छेदों से गोवध का प्रकरणा पूराहुआया—तिसके बादि ४४ चवालिसके
आदि लेकर ४८ अडतालिष तक पांच परिच्छेदों में ऐसे फुटकर विषय वर्णानहुये
ये जिनका सक सक प्रकरणा सकही परिच्छेद में बल्कि बिरले परिच्छेद में दोदो
तीन तीन विषयतक छोटे होनेके हेतु से समाने तिससे उनके प्रकरणाओं का क्लृप्तनाम
जुदा न होसका ॥

अथ·परिवृत्ति·वार्धुष्य·लवणाक्रियापपातकचयाणांप्राय

श्चित्तप्रकाशकोऽयं परिच्छेदः एकपंचाशत्तमः ५१ ॥

—*—

इस परिच्छेद में छोटे छोटे तीन भाँति के उपपातकों का जुदा जुदा प्राय-
श्चित्तकहा जायगा—अर्थात् सक ती परिचित्ति दोष का फिर वार्धुष्य
वृत्तिके दोषका फिर तीसरा लवणा क्रिया रूपी दोष का—इस तीनों
के लक्षणा सब अपनी अपनी जगह पर देखना ॥

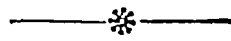
(पारदार्यं० पारिनिहत्यं० वार्धुष्यं० लवणाक्रिया २३५)

ये चारोंनाम दोसौपैश्वरि वाले अल प्लोकमें आचुकेहैं तिनसेके पारदार्य नाम
का उपपातक ऊपरले दो परिच्छेदों में वर्णन हो चुका=अब=उसदेअगिला पारिवि-

त्यागरूपी प्रायश्चित्त कहा तैसा सब तरहके चंडालों से मैथुन करानेवाली स्त्री को प्राणत्याग रूपी प्रायश्चित्त सूचित है बल्कि यह बात इस परिच्छेद के प्रारम्भ में खुद मिताक्षरा कारही कहिचुके है कि जो जो प्रायश्चित्त पहिले पुस्त्योंको कहे गये वेही तीनिवर्ष आदिके प्रायश्चित्त उन पापोंकी करनेवाली स्त्रियों को भी सूचित है बल्कि (यत्पुंसःपरदारयुक्तचैनांचारयेद्वत्) यह मनुका बचन भी मिताक्षरा-कारने प्रसारा दियाहै तिससे हम दूने प्रायश्चित्त में नहीं संभति देखकतेहैं—हाँ—दूने का नियम प्रायश नरहत्या गोहत्या और चोरीआदि पापकर्मां पर जैसा जहाँ लिखिचुके सो सब ठीकहै पर इसमें नहीं और इसी द्विविध आशयके हेतुसे योगीश्वर याज्ञवल्क्य पहिले कहिचुके हैं कि(प्रायश्चित्तैरपैत्येनोयदज्ञानकृतंभवेत् कामतोव्यवहार्यस्तुवचनादिहजायते २२६)इस दोसरी छब्बीस के ठिकाने पर जाकर अर्थ देखो इसका यही तात्पर्य है कि प्रायश्चित्तोंसे वहपाप दूर होजाता है जो अज्ञानता से बनिगयाहो और जो कामनासे जानतेहुये पापकियाहो तिसमें प्रायश्चित्त करनेसे भी पापतौ नहींमिटिसक्ताहै परन्तु संसार में मनुष्यों के साथ व्यवहार आदि संबन्ध जोड़नेके योग्य होजाताहै (इसीलिये दूनातिशुना आदि करायाजाताहै) पर इसमें इतना भेदहै कि (वचनादिहजायते) वचन के बलसे व्यवहार योग्य होताहै अर्थात् जिसकिसी पापकी वावत मुनीश्वरों ने वचन दियाहोगा कि इसमें दूना आदि करने से व्यवहार के योग्य होसकै उसीपापमें उसखास वचनकेबलसे प्रायश्चित्त करिके संसारी व्यवहारों के लायक होजायगा खर्बव सभीपापोंमें ऐसा नियम नहीं है—तो इस व्याख्याके अनुसार ठीकठीकहै कि हत्या आदिमें जहाँ जहाँ दूनेका वचन पाया तहांतहां प्रायश्चित्त करिके संसारी व्यवहार करसक्ताहै अन्यथा स्त्री व्यभिचारिणी के मध्ये दूनेका वचन कोई नहींमिला सो कैसे घरके व्यवहार योग्यहोसकै=केवल एक शूद्रके लिये दूना करनेका यहवचन मिला है कि (न्लेच्छेनाविगताशूद्राद्यजानात्तुक्तयंचन शब्दत्रयं प्रकुर्वीतज्ञानात्तद्विगुणांभवेत्) अर्थात्—किसी शूद्रकी शूद्रिणी भार्या यदि कदाचित्त नाशहानी अपनी अज्ञानतामें म्लेच्छ से फँसि जाय सो अच्छीतरह तीनिदृष्ट्य साथै पर जो जानिवृत्ति फँसीहोय सो दूने व्रतकरे तो संसारी घरके काम योग्यहोजाय—इसवचनमें (शूद्राहि) हि अद्वय विप्रोयअर्थ पर आरुह होनेसे भी केवल शूद्रकी शूद्राप्रियत रखीगई है कि शूद्रा के सिवाय किनी डिजाती की भार्या को यह दूनेका अधिकार नहीं समुभ्रजा और इसदूनेकी अधिकारी केवल ओछे शूद्रों की भार्या समुभ्रलेनी कि जिनकी जाति में वरेना

आदिभी होताहो—सो यहवार्ता केवल ओही जाति का घरबसा रहिने को निर्वाह सोचिके कही अन्यथा जो प्राइ उज्ज्वल जातोंमें गिनती होलेसे धरेजा आदि निश्चि-
द्वाचार कुछ न करतेहों तिनकी स्त्रियोंको यहभी नहीं सूचित है फिर उत्तम तीनि
वर्गों की का कथा २६५ ॥ इसी दोसौपैसठि अलप्लोक वाली ठीका से यह पाठ
चलाआता है २६५ ॥ इतिपारदार्यभेदेपरपुरुषसंगमपरिच्छेदः ॥

इतिपारदार्यप्रायश्चित्तप्रकरणं ॥

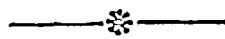


यह प्रकरणा केवल उनचास ४६ पचास ५० पुन दोही
परिच्छेदों में पूराहुआ (और यहभी यादरखवौ कि)

उनतालिस ३६ परिच्छेद को आदि लेकर ४३ तेंतालीस परिच्छेदके अन्ततक
चारि परिच्छेदों में गोबध का प्रकरणा पूराहुआया—तिसके बादि ४४ चवालिसके
आदि लेकर ४८ अडतालिस तक पांच परिच्छेदों में ऐसे फुटकर विषय वर्णनहुये
ये जिनका एक एक प्रकरणा एकही परिच्छेद में बलिक बिरले परिच्छेद में दोदो
तीन तीन विषयतक छोटे होनेके हेतु से समाने तिससे उनके प्रकरणाओं का कुछनाम
जुदा न होसका ॥

अथ·परिवृत्ति·वार्धुष्य·लवणाक्रियोपपातकचयाणांप्राय

श्चित्तप्रकाशकौश्यां परिच्छेदः एकपंचाशत्तमः ५१ ॥



इस परिच्छेद में छोटे छोटे तीन भाँति के उपपातकों का जुदा जुदा प्राय-
श्चित्तकहा जायगा—अर्थात् खरू तौ परिवृत्ति दोष का फिर वार्धुष्य
वृत्तिके दोषका फिर तीसरा लवणा क्रिया रूपी दोष का—इन तीनों
के लक्षणा सब अपनी अपनी जगह पर देखना ॥

(पारदार्यं० परिवृत्त्यं० वार्धुष्यं० लवणाक्रिया २३५)

ये चारोंनाम दोसौपैसठि वाले अल प्लोकमें आचुकेहैं तिनसेवे पारदार्य नाम
का उपपातक ऊपरले दो परिच्छेदों में वर्णन होबुका=अथ=उसदेअतिजा पारिवि-

त्य नाम जो दीय है सो जिस पुरुष में होय तिसको परिवर्त्ति कहिते हैं उसके सब लक्षणा और प्रायश्चित्त भी ४८ अदतालीस के परिच्छेद में परिवेदन कर्मके प्रसंग साथ वरान करचुके तहां देखौ—तथापि यहांक्रमसे उसका नाम आजिपरनेके हेतुसे सिताक्षराकार ने संक्षेपचर्चा लिखाहै सो देखो—परिवर्त्तिप्रायश्चित्तविषयः= तदाह विज्ञानेश्वरः=परिवर्त्तिप्रायश्चित्तानामपि परिवेदप्रायश्चित्तवद्व्यवस्था विज्ञेया इयांस्तुविशेषः परिवेत्तुर्यस्मिन्वियये कृच्छ्रात्कृच्छ्रौ तत्रपरिवर्त्तेः प्राजापत्यं (परिवर्त्तिःकृच्छ्रद्व्यदशारात्र चरित्वापुनर्निवेशोत्तार्चैर्वापयच्छेदिति वशिष्ठ-स्मरणात्)=अर्थात्—श्रीसद्भिज्ञानेश्वर सिताक्षराकार कहितेहैं कि—परिवर्त्ति पुत्र्य के प्रायश्चित्तों की जहूरत अगर किसी को आजि परै तो उनको भी व्यवस्था परिवेत्ता के प्रायश्चित्त समान जानिलेनी कि जैसी परिवेत्ता की व्यवस्था अरता-लिसर्वे ४८ परिच्छेद में कही गईथी पर इतना दोनों में अन्तर है कि जिस वियय पर परिवेत्ता को कृच्छ्र अतिकृच्छ्र दो प्रायश्चित्त करने लिखे हों उसी वियय पर परिवर्त्ति को बारह दिनका प्राजापत्य करावै—क्योंकि वशिष्ठ जी ने यह कहा है (कि परिवर्त्ति पुत्र्य अपना दीय बेटने को बारह दिन कृच्छ्र व्रत करिके फिर अपना व्याह कहीं हंडि के करै अथवा उसी कन्या को अपने विवाह में स्वीकार करै यदि छोटे भ्राता ने इसको निषट समर्पण करदी होवै कि जिस कन्याके साथ छोटे ने अपना व्याह रोषि लिया था जिससे ये दोनों दीयी ठहरे) अन्यथा जहां छोटे का विवाह निषट्टिचुके पीछे यह दीय का चर्चा खडा हुआ हो तहां उस कन्याका समर्पण करना श्रेय नहीं रहा तिससे जेठा परिवर्त्ति अपना व्याह हंडिके करै यही अर्थ है० और छोटे का विवाह नहीं निषट्टि चुके से भी यह अर्थ बना रहिता है कि छोटेने प्रायश्चित्त करिके अपनी सगाईवडे भ्राता को समर्पण करी कि आपहीइन कन्या से विवाह अपना कीजिये परन्तु उस वडे ने अपने बडापन से फिर उसी छोटे को अपनी तर्फ से पूरी पूरी आज्ञादेकर आशीर्वादसे अभिनन्दित किया कि हमने तुम्हारी दीहुई भेट को हार्द भावसे स्वीकार करलिया पर अब तुम्हीं अपना व्याह करौ फलों फूलों० तत्र इस दशा में भी जेठे को हंडिकर इतना शीघ्र अपना व्याह करना चाहिये कि उस छोटे से पहिले इसका होजाय और उस छोटे को भी अपना व्याह तवतक रोक्ना चाहिये कि जब तक जेठे का पहिले हो जाय—येसब अर्थ ऊपरले वशिष्ठ के ही वचन के ध्वन्यर्थ हैं० वशिष्ठ और गौतम आदि मुनीश्वरों के वचन सेमे स्वल्पाक्षर और अगहन अर्थवाले होते हैं कि थोड़ी सी पंक्तिपर इतने बल्कि

इतने से भी अधिक अर्थ फैलते हैं—इस व्यवस्था को अतीति के परिच्छेद में मिलाकर समझिलेना क्योंकि विस्तार इसका उसी में लिखिचुके हैं इतिपरिवि-
त्तिप्रायश्चित्तं समाप्तम् ॥

(अथवाधुष्य लवणक्रिययोः प्रायश्चित्तं)

वार्धुष्य और लवणाक्रिया नामों के अर्थ समझा चाहौ सो २३५ मूल श्लोक देखौ
ये दोनों जुदे उपपातक हैं योगीश्वरने जैसे परिवृत्ति का कुछ प्रायश्चित्त नहीं कहा
तैसे इनका भी कुछ नहीं कहा परन्तु परिवृत्ति का वशिष्ठ जी ने अच्छी तरह से
दर्शाया था सो लिखागया इन दोनोंका छोटा विषय समझिके और भी मुनीश्वरों
ने कुछ नहीं कहा तिससे इनके परिच्छेद भी जुदे नहीं नियत होसके हैं तथापि उ-
पपातकों में गिनती होचुके हैं इस हेतुसे २६५ दोसौपैसठि मूलश्लोक और उसकी
अधिकोक्ति में सामान्य प्रायश्चित्त जो सभी उपपातकोंके निमित्तपर, दर्शायचुके
उन्हीं को इनके लिये विचारना सो सब चवालिस के परिच्छेद में जाकर देखौ—
यही डौल मिताक्षरा कारने प्रकाश क्रिया है—यथा—वार्धुष्यलवणाक्रिययोस्तुमनु
योगीश्वरोक्तसामान्योपपातक प्रायश्चित्तानिजातिशक्तिगुणाद्यपेक्षयायोज्यानि=
अर्थात्—वार्धुष्य और लवणा क्रिया इन दोनोंके लिये मनु और योगीश्वर दोकहे
साधारण उपपातकोंवाले प्रायश्चित्त दोधीकीजाति और शक्ति सामर्थ्य और गुणों
को आदि लेकर विशेषताकी अपेक्षासेबड़े छोटेप्रायश्चित्त सोचिके लगाने चाहिये
कि जैसे २६५ मूलश्लोक में योगीश्वरने कई प्रायश्चित्त कहे और उसी अधिकोक्ति
में मनुके बचनोंसे जुदे प्रायश्चित्त लिखे गये हैं उनसे से अपेक्षा के अनुरूप चुनिकर
समझिलेने इनकी यही व्यवस्था है कुछ और नहीं ॥ २६५ ॥ यहाँतक—उसी दोसौ
पैसठिवाले मूलश्लोककी टीकासे अनेक परिच्छेद होकर लिखेगये अब उसकाशेष
पूरा होगया तिससे अगिले परिच्छेद में दोसौठासठिका प्रारम्भ होगा ॥ २६५ ॥

इस छोटेसे परिच्छेद में भी जुदे जुदे तीन विषय अति छोटे होनेके हेतु से समा
गये कि जिनके परिच्छेद भी जुदे न होसके फिर प्रकरणा तौ बहुत बड़ी बात है सो
क्योंकर होता—तौभी कुछ प्रकरणाका नाम होना चाहिये ॥

इतिपरिवित्यादिविषयत्रयप्रकरणं ॥

अथक्षत्रियादिवर्णत्रयबधोपपातकानांप्रायश्चित्त

प्रकाशकोऽयंपरिच्छेदःद्विपंचाशत्तमः (५२) ॥

—*—

इस परिच्छेद में क्षत्री वैश्य शूद्र इन तीनों वर्णों में से किसी पुरुष को यदि कोई मार डाले सो उपपातकी होता है तिसके सब जुदे प्रायश्चित्त कहे जायेंगे—क्योंकि सत्ता इस परिच्छेद में केवल ब्रह्महत्या के प्रायश्चित्त कहे और उनतालिष परिच्छेद में प्रतिलोम जातें जो चारौवर्णसे उपराल सत्त मागध वैदेहक आदि वर्ण संकर होती हैं तिनका वध करनेके प्रायश्चित्त कहे गये—केवल बीचके तीनों वर्ण क्षत्री आदिका वध कहिना बाकी रहा था सो इस वामन के परिच्छेद में दर्शाते हैं ॥

(क्षत्रियादिवधप्रायश्चित्तं)

ऋषभेकसहस्रागादद्यात्क्षत्रवधेषुमान् । ब्रह्महत्याव्रतंवापिवत्सरत्रितयंचरेत् २६६ ॥

वैश्यहाव्दंचरेदेतद्व्याद्वैकशतंगवाम् । परामासानशूद्रहाप्येतद्वेनूर्दद्याद्दशाथवा २६७ ॥

अर्थः—पुरुष किसी क्षत्रीका वध करनेमें एक आंडू वृथभ और सहस्र गायें दान करै (तब शुद्ध होय यही प्रायश्चित्त है अथवा यह न करसके सो) ब्रह्महत्यावाले व्रतकोही तीनिवर्णभर आचरै ॥ २६६ ॥ यही ब्रह्महत्यावाला व्रत एकवर्णभर वैश्य का वध करनेवाला आचरै अथवा एक आंडू वृथभ और एकसौगौर्यें दानकरै—यही व्रत शूद्रका वध करनेवाला पुरुष छमाहीभर करै अथवा हालकी विआनी वच्छा सहित दशधेनुका दानकरै) हालकी विआनी यह धेनु शब्दका ध्वन्यर्थ है ॥ २६७ ॥

२६६ अधिकोक्तिः—दोसौछत्तीस मूलश्लोक में कहिचुके हैं कि (स्त्रीशूद्रविक्षय वधः) स्त्री•शूद्र•वैश्य•क्षत्री• इनका वध करना उपपातक जुदे चार ४ हैं—इनमें से स्त्रियोंके वधका प्रायश्चित्त अगिले परिच्छेद में योगीश्वर कहेंगे और श्रेयतीनोंके प्रायश्चित्त इन्हींदोनों प्रलोकोंमें योगीश्वरने इसहेतुसे जुदेकरके दर्शाये हैं कि दोसौ पैंसटि २६५ मूलश्लोकवाले सामान्य प्रायश्चित्तोंको इनपरभी निरपेक्षमत समुक्ति लेना कि इन्हीं छोटे प्रायश्चित्तोंसे निर्वाह इनपापोंका होजाय—क्योंकि क्षत्रीवैश्य शूद्र ये तीनों सब एकहीसे बराबर नहीं होते हैं अर्थात् इनमें भी उत्तम मध्यम आदि

कई भेद अपने गुणोंके प्रभावसे सर्वत्र होतेहैं तिनकावध होजानेसे प्रायश्चित्तों के भी कई भेद करने होंगे—तहां किसी निद्वय भेदका वध होने में तत्रोक्त प्रायश्चित्त भी कदाचित्त काम आसक्तेहैं सो आगे समझिलेना=और=यहां जो श्लोकों के अर्थ में व्यवस्था कही गई तिसको भी ऐसे भेदपर जोडना कि जहां उस सारे गये पुरुष में केवल क्षत्री आदि जातिही कहिलाना एक गुण होय किन्तु दूसरी कोई विशेषता उसमें नहो और मारनेवालेने इच्छाके बिना देवयोगसे वधकिया हो क्योंकि (अ-कामतस्तुराजन्यविनिपात्येतिप्रक्रम्य सतेयामेवप्रायश्चित्तानांमानत्रेऽभिधानात्) मनुस्मृति में भी० कामना के बिना क्षत्री को मारिके० यह अनुक्रम पहिले आरम्भ करिके इन्हीं प्रायश्चित्तोंका वर्णन किया गयाहै तिससे यहां भी वही तात्पर्य है= और यहां जो गौत्रांकादान या व्रतरूपी तपस्या करना कहा तिसकी व्यवस्था ह-त्यारेकी शक्तिके अनुसार सोचिलेना ॥ ईषद्वृत्तस्थत्तत्रियादीनांव्यवस्थाभेदः—जिन क्षत्री आदिमें कुछ थोडासा वृत्ताचार भी प्रसिद्धहोय तिनको मारडारनेमें ऊपरलौंसे कुछ बड़े प्रायश्चित्त चाहिये (क्योंकि ऊपरके छोटे प्रायश्चित्त केवल जातिमात्र के एकही गुणपर कहेगये)अत्राहमनुः—तुरीयोब्रह्महत्यायाःसत्रियस्यवधेस्मृतः वैश्ये ऽष्टमांशोवृत्तस्थेषूद्रेजेयस्तुयोडशः=अर्थात्—मनुने यह कहाहै कि वृत्तस्थ क्षत्री का वध होने में ब्रह्महत्याका चौथाई प्रायश्चित्त कहाहै जो बारह वर्षकी चौथाई तीन वर्ष होतेहैं एवं वृत्ताचारसे संयुक्त वैश्यके वधमें ब्रह्महत्याका आठवांभाग जो डेढवर्ष होताहै सो करना चाहिये तद्वत् शूद्रके वधमें ब्रह्महत्याका सोरहवांभाग जो नौमास होतेहैं समझना (मिताक्षराकार कहिते हैं कि यद्यपि क्षत्री के वावत इस वचन में तीनहीवर्ष कहेगये तौभी जो वृत्तस्थ क्षत्री माराजाय तौ फिर डौढदेकर साढेचार वर्षका प्रायश्चित्त कराना चाहिये क्योंकि ऊपरली व्यवस्थाकी अपेक्षा यहां सभी प्रायश्चित्त डौढेहोजाने उचितहैं=और यहां जो वृत्ताचारसे संयुक्त या वृत्तस्थ यह विशेषता दियागया सो कुछ जातिसे अपेक्षा नहीं रखताहै केवल एक शरीर से सं-बंध राखता है चाहें किसी जातिकी पुरुष हो अपने गियाचार से संयुक्त होय सो वृत्तस्थ कहाताहै इनके भी लक्षणा मनुने कहेहैं—यथा(शुरूपूजावृत्ताद्यौ वंसत्यमिंद्रि यनिग्रहः प्रवर्त्तनंहितानांचतत्सर्वंवृत्तमुच्यते) अर्थात्—शुरूओंकीपूजा० वृत्तादशा० शौचक्रिया० तत्य० इंद्रियोंका वधमें राखना० हितोंका प्रवर्त्तनभी० यह सर्वाखिलाभुजा आचरणा उहका वृत्त कहाता है जो कोई इनका अभ्यास राखे और खु तासा यह भावार्थहै कि जो कोई पुरुष अपनासे बडोंका सत्कार हमेशा किया करै० असमर्थों

पर कृपापावनकी दृष्टिराखै• शरीरको शुद्धराखै•सत्यबोलै•अपनी किसी इन्द्री को कुमार्गपर न चलनेदेय•और अनेक हितोंके प्रवृत्तकरनेपर उताह बनारहै अनेकहित वेही कहलाते हैं जिनके जारी करनेसे अनेक संसारी जीवोंकाहित होताहो दृष्टांत जैसे पित्राऊ लगवाना या अन्नका सदावर्त लगाना या किसी औरही से उपकार कराइ देना या तालाव कुआ बागीचा पथिकायम धर्मशाला आदिवनाचा ये सभी वृत्त कहातेहैं ॥ यहांतक तो इच्छासे चाहे बिना मारडारने के प्रायश्चित्तकहे ॥०॥

अथ सकामवधप्रायश्चित्त—जिम्ने कामना से विचार सहित किसीको मारडाला हो तिसके प्रायश्चित्त ऊपरलोंसे बड़े हैं सो आगे हारीत आदिके वचनोंसे कहेंगे=यथाह वृद्धहारीतः=ब्राह्मणाःक्षत्रियंहत्वाखड्बर्षागिराव्रतंचरेत् वैश्यंहत्वाचरेदेवंव्रतत्रैवायिकद्विजः शूद्रंहत्वाचरेद्वर्षवृषभैकादशाप्रचगाः=अर्थात्=ब्राह्मणा कामना से चाहिकर क्षत्री का वध करै सो छः वर्ष भर व्रत करै एवं वैश्यको मारिके ब्राह्मणा तीनवर्ष का व्रत करै एवं शूद्र को मारिके एक वर्ष भर व्रत करै और व्रत के बाद एकआडू वृषभ तथा दसगाय दान करै (मारने वाला जैसा इस वचन में स्पष्ट भाव से ब्राह्मणा कहागया तैसा इस परिच्छेद भरमें ऊपरली सभी व्यवस्था में ब्राह्मणा समझिलेना चाहिये जहां नाम लेकर नहीं कहा तहांभी यही तात्पर्य हैइसका व्यौरा परिच्छेद के अन्त पर जाके देखी ॥ ० ॥ कामतःश्रोत्रियक्षत्रियादि वधप्रायश्चित्त—उन्हीं वृद्धहारीत ने फिर भेद किया है कि जे कोई क्षत्री आदि शास्त्रोंको पढतेहैं या पढ चुकेहैं तिनका वध करनेवाले के प्रायश्चित्त ऊपरलोंसे बड़े हैं (श्रोत्रियपूराविद्यार्थी भी कहाता है जो अनेक शास्त्र पढने में तत्पर होरहाहो और ऐसा पूरा विद्वान भी श्रोत्रिय कहलाता है जो वेद शास्त्र पढाहो या सब शास्त्रों में कुछ अच्छा बोध राखता हो)=यथाहवृद्धहारीतः=दुरीयोतक्षत्रियस्यवधेब्रह्महाराव्रतस अर्धवैश्वदेवक यत्तुरीयंतृयालश्यत्=अर्थात्—जिम्ने श्रोत्रिय गुरावान क्षत्री को इच्छा सहित मारा हो सो ब्रह्महत्या परकहे गये व्रतको चौथाई काम करिके तीन पादके नौवर्ष आचरै• एवं श्रोत्रिय वैश्यको जिम्ने चाहिकर माराहो सो आधे व्रतको छः वर्ष भर आचरै• एवं बहुश्रुत शूद्रको (कि जिम्ने वेद शास्त्र के अतिकार बिना भी संसार में बहुशा शास्त्र को सयांदा विद्वानों से सुनी समझी हो और अपने जाती धर्म से निपटा हो तिसको) जिम्ने वधकिया होय सो चौथाई के तीन वर्ष भर प्रायश्चित्त करै तब यदि उसकी होती है (इसमें भी मारने वाला ब्राह्मणा समझना) क्योंकि हारीत के

समान वशिष्ठ ने भी यही प्रायश्चित्त कहा तिसमें खुलासा ब्राह्मणा कानाम भी क-
 हि दिया है=तथाच वशिष्ठः=ब्राह्मणोराजन्यंहत्वाऽष्टौवर्षागिराव्रतंचरेत् यद्वैश्यंत्री
 शिशूद्रमिति=अर्थात्-कोई ब्राह्मणा क्षत्री को मारि के आठ वर्षभर व्रत करै और
 वैश्य को मारिके छः वर्षभर व्रत करै और शूद्र को मारि के तीन वर्ष व्रत आचरै
 ॥ ० ॥ उभयगुणसंपन्नक्षत्रियादिवध प्रायश्चित्तं-जब कोई क्षत्री दोनों गुणासे
 युक्तहो अर्थात् ऊर्ध्वोक्तप्रकार वाले लक्षणाओं से श्रोत्रिय और वृत्तस्थ भी होय ति-
 सको मारडारने में आपस्तंब का कहा बारह वर्ष वाला प्रायश्चित्त चाहिये=यदाह
 मिताक्षराकारः (यदात्तु श्रोत्रियो वृत्तस्थश्च भवति तदा पूर्वयोर्वर्णयोर्वेदाध्यायिनंहत्वे
 त्यापस्तंबोक्तं द्वादशवर्षिकं द्रष्टव्यमिति मिताक्षरा)=अर्थात्-जो मारा गया क्षत्री जहाँ
 श्रोत्रिय और वृत्तस्थ भी होता है तहाँ आपस्तंबके उस वचनको देखना जिसमें (ब्रा-
 ह्मणा क्षत्री इन पहिले दो वर्गों में जो कोई वेद पढ़ा होय तिसको मारिके बारहवर्ष
 व्रत करै इत्यादि यही वचन पहिले तीसवें परिच्छेद में २५१ की अधिकोक्ति में
 भी देखिके उसी से क्षत्री का वध होनेपर विचारौ=याद रक्खौ कि=जहाँ जहाँ के-
 वल जाति क्षत्री लिखीहो कोई उत्तमगुणा विशेष जिसमें नहीं बताया तिसको ऐसा
 समझि लेना कि राजा आदि उत्तम क्षत्रियों में छः प्रकार के गुणा होते हैं सो उसमें
 नहीं हैं तिससे जाति मात्र क्षत्री कहा ॥ यही व्यवस्था जो केवल क्षत्री के नाम से
 कही गई सो इस प्रकार के दो गुणाओं वाले वैश्य के मारे जाने में भी जोड़ि लेनी पर
 बारह वर्षों के स्थान पर आठ वर्ष का प्रायश्चित्त लगाना यही न्याय का स्वरूपहै
 ॥ ० ॥ श्रोत्रियस्यप्रारब्ध यागेचवधप्रायश्चित्तं-जहाँ कोई क्षत्री आदि श्रोत्रि-
 य होय उसी श्रोत्रिय ने किसी यज्ञका प्रारम्भ रोपाहो ऐसी दशामें यदि कोई द्वा-
 ह्मणा उसको मार डारै तहाँ उस हत्यारे ब्राह्मणा को वही ब्रह्महत्या वाला व्रतकरना
 चाहिये जो दोसौ इत्यावन २५१ अल श्लोक से तीसवें परिच्छेद में यागीचर आप
 कहिचुके हैं कि (यागस्थक्षत्रिय विदधातीचरेद्ब्रह्महृशिव्रतं) यज्ञ करते हुये क्षत्री
 या वैश्य को वध करने वाला ब्रह्महत्यापर दशमि व्रत को बारह वर्ष करै (याउस
 क्षत्री और वैश्य में कुछ ओके गुणा समझे जायँ तो बारह वर्ष से कमतीवाले व्रतभी
 जो ब्रह्महत्या के प्रकरणा में उपस्थित हों तिनकाभी विकल्प से वर्तवा करै) और
 इसमें यद्यपि क्षत्री वैश्य दोनों की अपेक्षा पूरा बारह वर्षका व्रत कहा तौभी वैश्य
 की अपेक्षा इसकी सक तिहाई छोड़िके आठ वर्षों का व्रत समझि लेना और इसी
 प्रकार ब्रह्महत्या के छोटे प्रायश्चित्तों में भी वैश्यके नध्ये कुछ भेद कल्पित करना

यह न्याय का स्वरूप है ॥ और तीसरे परिच्छेद को भी देखौ कि वहांपर या ग-
 स्यका अर्थ यद्यपि सोमयागमें बैठा माना गया है तथापि यहां उस बन्धनको नहीं
 मानना किन्तु यहांपर उपपातकोंका प्रकरण वर्तमान है तिससे सामान्य हरतरहका
 यज्ञ समझ लेना और इसी से यह भी इतना भेद है कि (वहांपर दैवयोग से मारने
 मध्ये पूरा व्रतकरना और चाहिकर मारने मध्ये इसीका दूना करना कहा गया परंतु)
 यहां कामना से चाहिकर मारने मध्ये पूरा सक प्रायश्चित्त और दैवयोगसे मारने
 मध्ये उससे आधा कल्पित क्रिया चाहिये क्योंकि यह व्यवस्था केवल किसीतरह
 का यज्ञ करने के विचार से प्रारम्भ मात्र पर दर्शाई गई कि जो क्षत्री या वैश्य अब
 तक यज्ञ करने में न बैठे पाया और प्रथमसे मारा जाय • किन्तु • नियत यज्ञ पर बैठे
 हूयोंकी व्यवस्था अब नीचे दर्शाते हैं ॥ ० ॥ यागस्थ श्रोत्रिय च त्रियादिवध प्राय-
 ष्चित्तं—जहां कोई क्षत्री आदि जो अपनी विद्यामें श्रोत्रिय होय वही श्रोत्रिय किसी
 यज्ञको करिरहा हो और इस यज्ञस्थको यदि कोई ब्राह्मण मार डारै तिसहत्यारे ब्रा-
 ह्मणको अग्रेक्त गौतम का बताया प्रायश्चित्त है जिसमें दान और तपदोनों करने
 होते हैं = यदाह गौतमः = ब्राह्मणस्य राजन्यवधे यद्द्वार्यिकं प्राकृतं ब्रह्मचर्यं मृगभैक्ष
 सहस्राप्रचरादद्यात् वैश्यवधे त्रिवार्यिकं मृगभैक्षशतागाप्रचदद्यात् शूद्रवधे सांवत्सरिक
 मृगभैक्षादशाश्रवा दद्यात् = अर्थात्—ब्राह्मण को क्षत्री का वध करने में प्राकृत
 ब्रह्मचर्य छः वर्ष भर करना कहा है तिसके पीछे एक आंडू वृषभ और हजार
 गौयें भी दान करै • तथा वैश्य का वध करनेमें तीन वर्ष का वही ब्रह्मचर्य करै तिसके
 बाद एक आंडू वृषभ और सौ गाय भी दान करै • तथा शूद्र का वध करने में एक
 साल भर ब्रह्मचर्य सावै तिस पीछे एक आंडू वृषभ और दश गाय भी दान करै (प-
 रन्तु यह व्यवस्था उस हत्यारे पर आरूढ है कि जिसने बिना जाने धोखा से वध
 किया हो) क्योंकि अगिले वचन में शांखने भी इसीके समान व्यवस्था कही तिसमें
 अज्ञानता से वध करनेका निमित्त भी प्रकाश करिके कहि दिया है = यथाह शांखः =
 पूर्ववदन्ति पर्दं चतुर्दशैः प्रमाप्य द्वादशयत्वीन सार्धवत्सरचव्रतान्यादिशोत तेषामते
 गोमहसंचततोऽर्द्धतस्यार्धमर्धदद्यात् सर्वेषामानुपूर्वरोति = अर्थात्—शांखने इस रीति में
 कहा है कि हम जैसा पहिले अज्ञानतासे वध करने का प्रायश्चित्त कहि चुके उसी
 पहिलेके तुल्य इसमें भी अमति पूर्वक समझना कि जिस विप्रने चारो वर्गमें किसी
 को मारिके हत्या कलाई हो तो ब्राह्मण आदि सभी के वधमें अनुक्रम से इन प्राय-
 श्चित्तोंका आदेश करै कि चारहवर्ष • छेवर्ष • तीनिवर्ष • डेहवर्ष (तो इस क्रमसे क्षत्री

के वधमें छेवर्य का व्रत साधित हुआ) फिर इनके पूरे होजाने बाद उसी क्रमसे एक सहस्र गोदान० पाँच सौ गौर्ष० अठारह सौ गाय० सवाउसौ गायें दान करे (इसमें भी केवल ब्राह्मण हत्यारे के प्रायश्चित्त कहे समझने)=(परन्तु इस भेद की समाधि कुछ नहीं लिखी जासक्ती है कि असल मिताक्षरा में शंखसुनि का यही वचन दो सौ उनचाख २४६ मूलश्लोक वाली टीकामें किस हेतुसे और तरह फिर यहाँपर किस हेतुसे और भाँति लिखा गया वही आधुनिकोंको लिखना परा अद्यपि हेतु यह प्रत्यक्ष है कि वहाँ तो महापातकों के प्रसंगमें ब्राह्मणका वध होनेपर व्यवस्था लेनी स्वीकार थी और यहाँपर उपपातकों के प्रसंग में केवल श्रोत्रिय आगस्थ क्षत्री का वध होने पर व्यवस्था की रचना करनी स्वीकार है० और अद्यपि यह कारण भी प्रमाण है कि मुनीश्वरों के वचन स्वल्पाक्षर तथा अनन्त अर्थों वाले होते हैं तथापि हम ऐसे पाठान्तर वाले भेदको मनोज्ञ नहीं कहि सक्ते हैं किन्तु ऐसे भेदसे यहभाँति खड़ी होती है कि जानें शंखजीने किस पाठको मुखते उच्चारणा किया था) = अथ मिताक्षराकाराः—इदंचद्वादशवार्यिकं गौतमीयविषयमेव किंचिन्न्यूनगुणोक्षत्रिये गुणाधिकयोर्वैश्यशूद्रयोश्चद्रक्ष्यं (स्त्रीशूद्रवित्क्षत्रवधःइत्युपपातकमध्येविशेषतः सव पठितत्वेनोत्सर्गापवादन्यायगोचरत्वाभावादुपपातकसाभान्यप्राप्तान्यपि प्रायश्चित्तान्यवयोजनीयानि) तत्रदुर्वृत्तक्षत्रियादौकामतोव्यापादितेमानवं त्रैसासिकं द्वैसासिकं चांद्रायरांच वराक्रमेणायोजयस—अकामतस्तुयोगीश्वरोक्तं त्रिरात्रोपवास सहितमृषभैकादशागोदानं० सासंपंचगव्याशनं० सासिकंचपयोव्रतं यथाक्रमेणायोजय स=अर्थात्—गौतम शंख इन दोनों के वचन ऊपर दशाने के बाद मिताक्षराकार कहिते हैं कि—यह बारह वर्ष भी गौतमके समानही विषय समझना सो कुछेक न्यून गुणावाले क्षत्रीके वधमें और बहुत गुणावाले वैश्य शूद्रोंके वधमें विचारना चाहिये और इनके सिवाय उन प्रायश्चित्तोंको भी यहाँ लाकर जोडना चाहिये जो चवत्सिके परिच्छेद में सामान्य उपपातकों के मध्ये कहे गए थे अद्यपि वे छोटे प्रायश्चित्त हैं परन्तु (स्त्री० शूद्र० वैश्य० क्षत्री० इनका साराजाना विशेषतासे उपपातकों में लिना गया है और त्रावके साथ अपवाद वाला न्याय भी इस स्य तमें नहींदेखि परता है तिससे उन सामान्य प्रायश्चित्तोंकी पहुँच भी यहाँपर पाई जाती है० बाकी रही यह तर्कना कि वे प्रायश्चित्त बहुत छोटेहैं तिसके लिये यह अप्रोक्ता व्यवस्था कल्पितकरौ)अथदुर्वृत्तक्षत्रियादिवधप्रायश्चित्तारूपत्व—किन्तु मिताक्षराकार हीआप कहितेहैं कि क्षत्री आदि तीनों वर्गके मनुष्योंमें जे कोई दुराचारीहोय तिन

यह न्याय का स्वरूप है ॥ और तीसरे परिच्छेद को भी देखौ कि वहांपर या ग-
 स्यका अर्थ यद्यपि सोमयागमें बैठा माना गया है तथापि यहां उस बन्धनको नहीं
 मानना किन्तु यहांपर उपपातकोंका प्रकरणा वर्तमान है तिससे सामान्य हरतरहका
 यज्ञ समझि लेना और इसी से यह भी इतना भेद है कि (वहांपर दैवयोग से मारने
 मध्ये पूरा व्रतकरना और चाहिकर मारने मध्ये इसीका दूना करना कहा गया परंतु)
 यहां कामना से चाहिकर मारने मध्ये पूरा एक प्रायश्चित्त और दैवयोगसे मारने
 मध्ये उससे आधा कल्पित क्रिया चाहिये क्योंकि यह व्यवस्था केवल किसीतरह
 का यज्ञ करने के विचार से प्रारम्भ मात्र पर दर्शाई गई कि जो क्षत्री या वैश्य अन-
 तक यज्ञ करने में न वैदिपाया और प्रथमसे माराजाय • किन्तु • निपटयज्ञ पर बैठे
 हूयोंकी व्यवस्था अब नीचे दर्शाते हैं ॥ ० ॥ यागस्थश्चोत्रियश्चत्रियादिवधप्राय-
 ष्चित्तं—जहां कोई क्षत्री आदि जो अपनी विद्यामें श्रेष्ठिय होय वही श्रेष्ठिय किसी
 यज्ञको करिरहा हो और इसयज्ञस्थको यदि कोई ब्राह्मणमार डारै तिसहत्यारे ब्रा-
 ह्मणको अशोक गौतम का बताया प्रायश्चित्त है जिसमें दान और तपदोनों करने
 होते हैं = यदाह गौतमः = ब्राह्मणस्य राजन्यवधे यद्वार्यिकं प्राकृतब्रह्मचर्यं मृगभैक्ष-
 सहस्राश्च दद्यात् वैश्यवधे त्रिवार्यिकं मृगभैक्षशतांशान् प्राकृतब्रह्मचर्यं
 मृगभैक्षादशाश्च दद्यात् = अर्थात्—ब्राह्मण को क्षत्री का वध करने में प्राकृत
 ब्रह्मचर्य छः वर्ष भर करना कहा है तिसके पीछे एक आंडू वृथभ और हजार
 गौये भी दान करै • तथा वैश्य का वध करने में तीन वर्ष का वही ब्रह्मचर्य करै तिसके
 बाद एक आंडू वृथभ और सौ गाय भी दान करै • तथा शूद्र का वध करने में एक
 सत्त भर ब्रह्मचर्य मात्र तिस पीछे एक आंडू वृथभ और दश गाय भी दान करै (प-
 रन्तु यह व्यवस्था उस हत्यारे पर आरूढ है कि जिसने बिना जाने धोखा से वध
 किया हो) क्योंकि अगिले वचन में शांखने भी इसीके समान व्यवस्था कही तिससे
 अज्ञानता से वध करनेका निमित्त भी प्रकाश करिके कहि दिया है = यथाह शांखः =
 पूर्ववदति पूर्वचतुर्दशो यप्रमाप्य द्वादशयत्त्रीन् सार्धवत्क्षरव्रतान्यादिशेत् तेषामते
 गोमहस्रचततोऽर्धतस्यार्धसर्धदद्यात् सर्वयामानुपूर्वोत्ति = अर्थात्—शांखने इस रीति में
 कहा है कि हम जैसा पहिले अज्ञानतासे वध करने का प्रायश्चित्त कहि चुके उसी
 पहिलेके तुल्य इसमें भी अस्मति पूर्वक समझना कि जिस विप्रने चारो वरामे किसी
 को मारिके हत्या कजाई हो तो ब्राह्मण आदि सभी के वधमें अनुक्रम से दन प्राय-
 श्चित्तोंका आदेश करै कि चारद्वय • छेद्वय • तीनिवर्थ • डेहद्वय (तो इस क्रमसे सभी

के वधमें द्वैवर्ष का व्रत सञ्चित हुआ) फिर इनके पूरे होजाने बादि उसी क्रमसे एक सहस्र गोदान० पाँच सौ गौर्ष० अट्ठाई सौ गाय० सवाउसौ गायें दान करै (इसमें भी केवल ब्राह्मण हत्यारे के प्रायश्चित्त कहे समझने)=(परन्तु इस भेद की समाधि कुछ नहीं लिखी जासक्ती है कि असल मिताक्षरा में शंखमुनि का यही वचन दो सौ उनचास २४६ मूलश्लोक वाली टीकामें किस हेतुसे और तरह फिर यहाँपर किस हेतुसे और भाँति लिखा गया वही आधुनिकोंको लिखना परा अद्यपि हेतु यह प्रत्यक्ष है कि वहां ती सहापातकों के प्रसंगमें ब्राह्मणका वध होनेपर व्यवस्था लेनी स्वीकार थी और यहाँपर उपपातकों के प्रसंग में केवल श्रोत्रिय आगस्थ क्षत्री का वध होने पर व्यवस्था की रचना करनी स्वीकार है० और अद्यपि यह कारण भी प्रमाण है कि मुनीश्वरों के वचन स्वल्पाक्षर तथा अनन्त अर्थों वाले होते हैं तथापि हम ऐसे पाठान्तर वाले भेदको अनोज्ञ नहीं कहि सकते हैं किन्तु ऐसे भेदसे यहभाँति खडी होती है कि जानै शंखजीने किस पाठको मुखते उच्चारणा क्रिया था) = अथ मिताक्षराकाराः—इदंचद्वादशवार्षिकं गौतमीयविषयमेव किञ्चिन्न्यूनगुरोस्त्रिये गुरोर्वाधिकयोर्वैश्यशूद्रयोश्चद्रष्टव्यं (स्त्रीशूद्रवित्क्षत्रवधःइत्युपपातकमध्येविशेषत एव पठितत्वेनोत्सर्गापवादन्यायगोचरत्वाभावादुपपातकसाभान्यप्राप्तान्यपि प्रायश्चित्तान्यत्रयोजनीयानि) तत्रदुर्वृत्तक्षत्रियादौकामतोव्यापादितेमानवं त्रैसासिकं द्वैसासिकं चांद्रायरांच वर्राक्रमेरायोज्यम्—अकामतस्तुयोगीश्वरोक्तं त्रिरात्रोपवास सहितमृषभैकादशाशानं० सासंपंचगव्याशनं० सासिकंचयत्रोव्रतं अथःक्रमेरायोज्यम्—अथत्रि—गौतम शंख इन दोनों के वचन ऊपर दर्शाने के बादि मिताक्षराकार कहिते हैं कि—यह बारह वर्ष भी गौतमके समानही विषय समझना सो कुछेक न्यून गुरावाले क्षत्रीके वधमें और बहुत गुरावाले वैश्य शूद्रोंके वधमें विचारना चाहिये और इनके सिवाय उन प्रायश्चित्तोंको भी यहां लाकर जोडना चाहिये जो चवत्सिके परिच्छेद में सामान्य उपपातकों के मध्ये कहे गए थे अद्यपि वे छोटे प्रायश्चित्त हैं परन्तु (स्त्री० शूद्र० वैश्य० क्षत्री० इनका साराजाना विशेषतासे उपपातकों में गिना गया है और त्रिावके साथ अपवाद वाला न्याय भी इस स्थ तमें नहीं देखि परता है तिससे उन सामान्य प्रायश्चित्तोंकी पहुँच भी यहाँपर पाई जाती है० बाकी रही यह तर्कना कि वे प्रायश्चित्त बहुत छोटेहैं तिसके लिये यह अप्रोक्ता व्यवस्था कल्पितकरौ) अथदुर्वृत्तक्षत्रियादिवधप्रायश्चित्ताल्पत्व—किन्तु मिताक्षराकार हीआप कहितेहैं कि क्षत्री आदि तीनों वर्णोंके मनुष्योंमें जे कोई दुराचारीहोय तिन

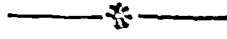
को यदि कोई ब्राह्मण इच्छा सहित सारडारै सो इस क्रमसे प्रायश्चित्त सार्धै कि
उम २४ के परिच्छेद वाली अधिकोक्तिमें लिखे प्रायश्चित्तोंमें मनुका कहा तीन
सहीने वाला दुष्ट सत्रीके वधपर करै और दोमहीने वाला दुष्ट वैश्य के वध पर
करै और एक सहीनेवाला चांद्रायण दुष्ट शूद्रके वधमें करै=परन्तु जिसने कामना
के बिना दैवयोगिक वध कियाहो सो उस परिच्छेदमें मूलश्लोकसे योगीश्वरके कहे
प्रायश्चित्तोंको इस क्रमसे सार्धै कि तीन दिनके उपवास सहित ग्यारह गाय ब्रत
के दानवाला प्रायश्चित्त दुष्ट सत्रीके वधपर करै और एक सहीने पंचगव्य भोजन
करने वाला प्रायश्चित्त दुष्ट वैश्यके वधपर करै और एक सहीना गाय का दूध
पीके व्रत करनेवाला प्रायश्चित्त दुष्ट शूद्रके वधपर करै ॥ अथ ब्राह्मणोत्तरक-
र्तृकवधप्रायश्चित्तं—मिताक्षराकार अब दूसरी याद दिलाते हैं कि (एतच्चप्राणं
व्रतजातं ब्राह्मणकर्तृके क्षत्रियादिवधेद्रष्टव्यं) यह परिच्छेदकी आदि से यहां तक
पहिला वर्णन प्रायश्चित्तोंका व्रतरूपी सर्वथा ब्राह्मण हत्यारेके निमित्तमें समझना
कि जब उरने सत्री आदि किसी वर्णकी हत्या करीहो तिसके प्रायश्चित्त कहे गए
हैं क्योंकि मनु गौतम हारीत इनके वचन जो पहिले वर्णन होचुके तिनमें ब्राह्मण
का नाम साफ साफ कहागया है यथा (अक्रामतस्तुराजन्यं विनिघात्यद्विजोत्तमः
इति मनुः) तथा (ब्राह्मणास्यराजन्यवधेयद्वार्यिकं इतिगौतमः) तथा (ब्राह्मणःक्षत्रि-
यंहत्वायुर्व्यासिाव्रतचरे दितिहारीतः)=इस हेतुसे=जहाँ सत्री आदि कोई हत्यारेहोयै
और इन्हीं सत्री आदि तीन वर्णोंमें किसीका वध कियाहो तहां क्रमसे एक एक
चौथाई घटाकर उन्हीं पूर्वोक्त प्रायश्चित्तोंसे व्यवस्था कल्पित करीजाय यह मि-
ष्टांत है और इसीपर अत्रोक्त विष्णुका वचन प्रमाणा है=तदाह वृद्ध विष्णुः=विष्णु
सकलदेश्य पादोनक्षत्रियेस्मृतम वैश्यशब्देकपादस्तु शूद्रजातियुगस्यते=अर्थात्=जो
प्रायश्चित्त कतागथा सो ब्राह्मण से पूरा करवाना चाहिये और सत्री से एक पाद
कम कराना कहागयाहै वैश्यपर आधा करवाना और शूद्रसे एक चौथाई करवाना
यही ठीक है (परन्तु इस कम कियेहुये को भी प्रातिलोश्य वचकी दशमे दूने ति-
गुने दडवाला न्याय शोचना होगा) क्योंकि अत्रोक्त विष्णु के वचनका यहां ता-
त्पर्य केवल इतना लेनाहै कि जिस सत्रीने सत्रीको मारा हो तो उस प्रायश्चित्त में
चौथाई कमकरै कि जैसे शुगावाले सत्रीके मारनेपर ब्राह्मणको जितना प्रायश्चित्त
कतागथा हो और जिस सत्रीने वैश्यको माराहो सो उस प्रायश्चित्तमें आधाको
अंक जितना उस भाँतिकी वैश्य मारनेपर ब्राह्मणको लिखिचुके हों और जिन सत्री

ने शूद्र का वध किया हो सो उस प्रायश्चित्त का चौथाई व्रत करै कि जितना उस प्रकार का शूद्र मारने पर ब्राह्मण को करना कहिचुके—इसी प्रकार—जिस वैश्य ने किसी वैश्य को मारा हो सो उस प्रायश्चित्त से आधा कम करै कि जितनाउसी योग्यता वाले वैश्य के मारने पर ब्राह्मण को करना कहा गया• और जिस वैश्य ने किसी शूद्रका वध किया हो सो उस प्रायश्चित्त का चौथाई व्रत साधै कि जितना उसी भाँति का शूद्र वध करने पर ब्राह्मण को लिखिचुके हों—इसी प्रकार—कोई शूद्र जो किसी शूद्र का वधकरै सो उस प्रायश्चित्त का चौथाई भागसाधै कि जितना उसी योग्यता वाले शूद्र का वध करने पर ब्राह्मण को करना कहा है= अन्यथा=जहां शूद्र किसी वैश्य या क्षत्रीका वधकरै यदा वैश्य किसी क्षत्रीका वध करै तो यह प्रातिलोभ्य वध कहिलाता है इसके मध्ये चौथाई आदि कम करने की व्यवस्था इस रीति से लगाई जायगी कि अभी जितना प्रायश्चित्त शूद्रका वध करनेमध्ये शूद्रकेलिये निश्चितहोचुकाहै (कि ब्राह्मणवाले प्रायश्चित्तकी चौथाई करै)सो उसीचौथाईका दूनाव्रत शूद्रसे उसदशामें करवानाहोगा कि जबउसनेकिसी वैश्यकावधकियाहो और उसीचौथाईका चौगुना किन्तु पुराव्रत उसदशामेंकरवाना कि जबशूद्रने क्षत्रीका वधकियाहो—इसीप्रकार—जहां वैश्यने क्षत्रीका वधकियाहो तहां वैश्यको पुरापुराव्रत करनाहोगा कि जितना ब्राह्मणको कहिचुके क्योंकि वैश्य का वधकरने मध्ये वैश्यको आधा करना कहिचुके तिस आवे का दूना फिर पुरा ही क्षत्री के वध पर करना चाहिये यही न्याय का स्वरूप है• और इन्हीं अर्थों से यह विष्णु का वचन यहां माना जासक्ता है अन्यथा नहीं=और भी इस व्यवस्था का प्रमाणा पुरा चाहिकर उन्तीसवें परिच्छेद में २५० दोसौ पचास मूल प्रलोक वाली अधिकोक्ति का सबसे पिछला पाठ देखौ जहांपर दूने तिथने प्रायश्चित्तका प्रसंग छोड़िके अंगिरा के वचन से चतुर्विंशति के वचन तक अच्छा निर्णय किया गया है वही तात्पर्य यहां भी लेलेना होगा क्योंकि ये दोनों स्थित एकही रूप हैं अन्तर केवल इतना है कि वहांपर बहुत बड़े पापों का प्रकरणा है यहां उनसे छोटे पापों का प्रकरणा है तिस छोटाई से प्रतिलोभ अपराधों में यह अपूर्व शक्ति नहीं आसक्ती है कि उत्तम क्षत्री को सारि के शूद्र चौथाई प्रायश्चित्त करै (हां यही विष्णु का वचन तैत्तिरीय ४३ के परिच्छेद में गोवधके निर्णयपर सिताक्षराकार ने आपही लिखा सोतौ बहुत ठीक है क्योंकि वहां पर उसी न्याय की योग्यता पाई गई और वहां पर एकही सूत्रे अर्थ से काम चलसक्ताथा) और वहांपर जैसा

एक अंगिरा का वचन पीछे से लिखा वही यहांपर भी लिखा है कि (यत्वं गिरो वचनं—पर्ययात्राह्यरानांतुसाराज्ञां द्विगुणामता वैश्यानां त्रिगुणाप्रोक्तापर्यवच व्रत स्मृतमिति तत्प्रातिलोभ्येन वाग्दंडपारुष्यादिविययं—इसीको यहांपर कितीने आदि शब्द छांडिके (वाग्दंडपारुष्यविययनित्युक्तं गोवधप्रकरणे) सेसालिखि दियाहै—इसी आदि शब्द के लगे रहिने से प्रयोजन का अर्थ बना हुआथा कि वाक्पारुष्य गाली देना आदि और दण्डपारुष्य लाठीदण्डाचलाना आदि और उसचर्चा किये आदि शब्दसे तीसरा काम निघट सार डारना सिद्धहोताहै अर्थात् ये तीनों बात जो प्रातिलोभ उलटे मार्ग से करी जायं तहां यह अंगिरा का वचन बहुत ठीक है—परत किमी विद्वान् ही ने यहांपर उस आदि शब्द को निकारि डारा तिससे तीसरानि-पट वध का अर्थ जाता रहा केवल दोही बातों पर अंगिरा का वचन समझा गया। सो उस विद्वान् की चतुराई केवल इस हेतुसे उत्पन्न हुई होगी कि ऊर्ध्वोक्त विष्णु के वचन से उनसे सूवा सूवा वही अर्थ समझा जो गोवध के स्थल पर सूचित होचु-का या इसी लिये गोवध की भरखा भी यहाँ की पंक्ति में जताई है। सो यहद्वयो-रा विज्ञाता जनों को एकजना चाहिये कि ऊँचे वर्णों को नीचे वर्णों गाली आदि श्रावचन दाहै या डंडा लाठी आदि हथियार कुछ दिखावै या चलावै तिसपर दूने तिशुने दण्ड और प्रायश्चित्त भी कहिचुके तौ फिर निघट सारडारना जो समसेवडा काम है तिसमे यह विपरीत कैसे माना जासकै कि शूद्र क्षत्रीको सारि के चौथाई प्रायश्चित्त करै ॥ ० ॥ अथमूर्धावसिक्तादीनां व्यवस्था—विज्ञानेश्वर कहिते हैं कि जैसे वध कहे गये तिनमें मूर्धावसिक्त आदि वर्णसंकर जो हत्यारे बनें तिनके लिये ये प्रायश्चित्त नहीं हैं क्योंकि उनमें क्षत्रीधना या वैश्यधन आदि लक्षणा नहीं है तिससे उनके योग्य लिखे दण्डों के अनुसार इसी भाँति के वध में पूर्वोक्त प्राय-श्चित्तों का घटाउ बटाउ व्यवहार कांड में दर्शित किया गयाहै कि (दण्डप्रणय नंकार्यवर्णाजात्युत्तराधरैः) यह वचन जहाँ पर आया हो तहां इसकी व्याख्या जा-कर देखो फिर उतीके अनुसार प्रायश्चित्त की कल्पना करौ ॥ २६६ ॥ २६७ ॥

इतिव विद्यादीनां वधनिर्णयः

अथमंदहस्त्रिवधोपपातकप्रायश्चित्तप्रदर्शकोऽयं परिच्छेदः त्रिपंचाशत्तमः (५३)



इसपरिच्छेद में उन स्त्रियोंके वध करने मध्ये प्रायश्चित्त कहे जायेंगे कि जिनका मार डारना केवल उपपातकों में गिनती होय— अर्थात् उत्तम गुणसे हीन बंध्या आदि या किंचित् व्यभिचारसेसंयुक्त या अत्यन्त स्वैरिणी आदिखोटी विख्यातहों तिन सबके वधपर योग्यता के अनुसार छोटे बड़ेप्रायश्चित्त भी दर्शावेंगे ॥

(स्त्रीवधप्रायश्चित्त)

दुर्वृत्तब्रह्मावेदक्षत्रशूद्रयोपाः प्रमाप्यतु । दृतिथनुर्वस्तमविक्रमादद्याद्विशुद्धये २६८

अर्थः—ब्राह्मणी आदि चारों वर्गों में जिस किसीकी स्त्रियाँ जो दुर्वृत्ता स्वैरिणी हों तिनको यदि कोई वध करे सो वध करिके इस क्रमसे प्रायश्चित्त करे कि ब्राह्मणी के मध्ये एक दृति अर्थात् जल भरने की मुशक दान करे और क्षत्रिणी की अपेक्षा एक धनुष दान करे और बनेनीकी अपेक्षा एक दस्त बकरा दान करे और शूद्रिणी की हत्या बाबत एक अवि मेढा दान करे तब शुद्ध होय ॥ २६८ ॥

२६८अधिकोक्तिः—सिताक्षराकार कहते हैं कि योगीश्वर के कहे प्रायश्चित्त अतिशय तुच्छ हैं सो केवल उन स्त्रियों के वध पर समझि लेना जिन्होंने प्रतिलोभ नीचे वर्गों या नीची जातों चण्डाल आदि के बीज से संतान पैदा करी हो औरहंता पुत्र्य ने इच्छा बिना इनका वध किया हो—और—जहाँ कोई इन्हीं स्त्रियों को कामना से वध करे तहाँ ब्रह्मगर्भ का कहा प्रायश्चित्त लेना होगा—यथाह ब्रह्मगर्भः=प्रतिलोभप्रसूतानांस्त्रीणांसासां वधःस्मृतः अन्तरप्रभवानांचसूतादीनांचतुर्विधम्= अर्थात्—ब्राह्मणी आदि चारों वर्गोंकी स्त्रियाँ जो प्रतिलोभ नीचीजातोंके बीजसेगर्भ लेकर प्रसूत करें या वर्गों के परस्पर नीचे वर्गों का बीजलेकर जो सूत आदि पैदा करें या सूतादिक प्रतिलोभोंका बीजलेकर पैदा करें इनसबका वधकरना कहा गया है (औरयही वध इच्छा के साथ किया होताहै) तिसके इनकावध करनेमें चार दो छःमास का प्रायश्चित्त चाहिये—सो इस क्रम से कि ऐसी ब्राह्मणीके वध में छः महीना और ऐसी क्षत्रिणीके वधपर चार महीने और ऐसी बनेनी के वधमें दोमहीना

और इसी न्याय के अनुसार सेमी शूद्राके वध में भी एक महीना का प्रायश्चित्त करे तत्र शुद्ध होय=अन्यथा=जहां गर्भ रहिजाना मात्र या अतिशय व्यभिचार ही देखि भाल जिसने ब्राह्मणी आदि किसी स्त्री का वध कियाहो तिसके मध्ये अतिशय का अग्रोक्त वचन है=यदाहांगिराः=जलकोशं च कूपं च ब्राह्मणयाः प्रतिपादयेत् वधेऽनुःक्षत्रियायावस्तो वैश्यावधेः स्मृतः शूद्रायाश्चाविकं वैश्यांश्चत्वादद्याज्जलं नरः= अर्थात्--ब्राह्मणी मारने की हत्या में जलकोश सुशक और कूप भी दान करे तथा सवानी की हत्या में दुवार साथ दान करे तथा वैश्या बनेनी की हत्या में एक बड़ा बकरा दान करे तथा शूद्रा के वध में आविक ऊन का बुना कम्बल दान करे और पांचवीं वैश्या को मारि के मनुष्य जल दान करे तत्र शुद्ध होय (यहाँ जलका दान जो कहा सो जलाशय में जाकर अंजली देना मत समझना किन्तु पिआउ लगाइ देना या पशु पक्षी आदि को जहां जल न मिलता हो तहां जलका प्रदन्व करदेना आदि अनेक प्रकारोंसे जलदेना समझि लेना) और (ऊपर ब्राह्मणीके मध्येजहां कूपका दान करना कहागया तहां भी कूपशब्दके कई अर्थ होतेहैं कि एक तो जल भरने का कूआ प्रसिद्ध है फिर छोटे मोटे कुण्ड आदि जलाशय गडहिले आदि भी कूप कहिजाते हैं और कूप कुप्पा भी कहाता है जिसमें घी तेल भरा करते हैं सो इन सभी अर्थोंको समझि लेना कि जैसी कुछ प्रतिष्ठा की योग्यता वाली ब्राह्मणी व्यभिचारके हेतुसे वध करीहोय तैसेही उत्तम मध्यम आदि कूपोंके अर्थ मानिलेने अर्थात् जहां बहुत बड़ी प्रतिष्ठा वाली ब्राह्मणी मारी होय तहां बहुत अच्छा पूरा कूआ बनवा कर दान करना चाहिये इत्यादि कहीं घी का भरा कुप्पा कहीं छोटा मोटा कुण्ड गडहिला आदि सभी प्रयोजन के अर्थहैं और सुशक सत्र के साथ लगी रहेगी क्योंकि दोनों वस्तु देनी कहीं ॥ अथमिताक्षरा (यदातुवैश्यकर्मणा जीवन्ती व्यापादयति तदाक्वचिद्द्वयं वैशिकेनक्वचिद्वैशिकेनक्वचिद्वैशिकेनक्वचिद्वैश्यकार्णवा जीवन्त्याव्यापादितार्यां क्वचिद्द्वयं) अर्थात्--मिताक्षरामें इस धंक्तिसे यह कहागया है कि सत्र कोई व्यभिचारिणी आदि चाहें किसी वर्णाकी हो किन्तु बनिशापन इवानदारी के कामसे जीविका रखतीहो तिसको मारडारै तो इस हत्या में दण्ड देना चाहिये क्योंकि (वैशिकेनक्वचिद्वैश्य) यह गौतमने कहा है कि वैशिक से जीवन बलानेवालीके दधने दण्ड देना किता इन्हें सात या साठे छः अक्षरां पर व्याख्या भी विविध है कि वैशिक जो वैश्यो वाला कर्नहै तिससे जीविका वाली के मारनेसे दण्ड न=इस इस व्यवस्थाको इन कारणों से अस्वीकार करते हैं कि

प्रथम तौ गौतमका वह वचन पूरा पूरा यहांपर दिया जाता जिसका यह एक पद छे अक्षर वाला लिखागया तौ उसका अभ्यन्तर देखाजाता• फिर इस बात का भी आप्चर्य नहीं है कि गौतमने इसपदमें ऊपरले अंगिराके समान वेश्याओंवाले कर्म से जीविका करना दर्शायाहो जिसके अर्थकी प्राप्ति इसमें प्रत्यक्षहै और इसीलिये वेश्याको अतिशय तुच्छ मानिके अंगिरा ने जलदेना मात्र प्रायश्चित्त बताया तैसा गौतमने किंचित्त कहा इस किंचित्तसे किसी वस्तुका नामहीं प्रकट नहीं होता और अतिशय थोड़ेका नाम किंचित्त होता है कि जिसका परिमाण भी नहीं कहा जा सक्ता है तौ फिर क्या वस्तु और कितनी देनी चाहिये इस बात के समझे विना प्रायश्चित्त द्योकर पूरा होसक्ता है—इसके सिवाय यह विरोध है कि चारौ वर्ग के लिये यह एकही बात कही इससे भी अन्याय खडा होसक्ताहै• सबसे ऊपर यह विरोध है कि वैश्यवाले कर्मकी जीविका मध्ये किंचित्त कुछ कहि दिया तौ फिर शूद्रकी जीविका वाले कर्मसे या क्षत्री और ब्राह्मणाकी जीविकावालेकर्मसे जीविका करतीहों तिनका वधहोने में क्या क्या उत्तर दियाजाय• तिससे यहां वैश्यआदि किसीके कर्मका प्रसंग लाना निपट वृथाहै न उसके चर्चासे कोईसा प्रयोजन देखि परता है• क्योंकि यहां व्यभिचारिणी आदि खोंही स्त्रियोंकी व्यवस्था वर्णान्त हो रही है तिसमें जो वरिणज व्यापारका विशेषण जोड़ें तौभी यह एक प्रकार का प्रतिष्ठा वाला चिह्न खडा होनेसे उलटा दूसरा पैदा होताहै कि उसी प्रतिष्ठाके अनुसार कुछ बडा प्रायश्चित्त कहाजाता• तहांसेसे निरादरके साथ किंचित्त कुछ कहि देना कित प्रकारसे न्यायात्मक मानाजाय• तिससे साफ निश्चित होताहै कि गौतमने वेश्याके वधका प्रायश्चित्त निरादर के साथ प्रकट किया होगा फिर चाहें वह बजाह्न वेश्या होय यद्वा घृह स्त्रियां वेश्याके तुल्य जीविका करने लगीं जो प्रायः खानगीके नामसे प्रसिद्ध होतीहै ॥ ० ॥ अथसामान्योपपातकप्रायश्चित्त नामव्यतिदेशः—मिताक्षराकार कहिते हैं कि पहिले जो ४४ चवालिष परिच्छेद में २६५ दोसौ पैसठि सलश्लोक और उसीकी अधिकोक्तिमें साधारण उपपातकों पर गोवध वाले प्रायश्चित्तोंका अतिदेश उतारा गयाथा उसकी पहुँच यहां भी आवश्यक है—तिससे—जहां क्षत्री आदि नीचे वर्गके पुस्त्योंमें ब्राह्मणी आदि ऊँचे वर्ग की स्त्रियां प्रतिलोम व्यभिचारसे दूषित हुईहों तिनको यदि कोई मारडारै तिसकी शुद्धिके लिये उसी परिच्छेदकेद्वारा पूर्वोक्त गोवध के प्रायश्चित्त लगाने चाहिये और उनमें जो बडापन छोटापन देखिपरै सो सब यहां भी ब्राह्मणी आदि वर्गों के

भेदमे लगाइलेना=परन्तु इस परिच्छेद की सभी व्यवस्था जो वर्णान होचुकीं तिनमें
हन्ना परन्तु सारनेवाला जो प्रायश्चित्तो होताहै तिसकी जातिभेद से प्रयोजन कुछ
नहींहै कि उक्त प्रायश्चित्तों में चौथाई आदि किसी वर्ण को न्यूनधिक विचारा
जाय जैसा पहिले परिच्छेदों में भेद किया गया था ॥ २६६ ॥ अब निचले आवे
प्रलोकमे उन चित्रोंका चर्चा किया जायगा जो अतिप्राय खोंटी नहीं ॥ २६६ ॥

(ईपत्त्व्यभिचारितावधप्रायश्चित्तं)

अप्रदुष्टास्त्रियंहत्वाशूद्रहत्याव्रतंचरेत् २६९ (पूर्वार्धः)

अर्थः—अप्रदुष्टा स्त्रीको सारि के शूद्र की हत्या वाला व्रत आचरे=अर्थात्—दुष्टा
खोंटी और प्रदुष्टा अति खोंटी कही जातीहै जो अतिखोंटी नहो वही अप्रदुष्टा स-
नक्ति लेनी और तात्पर्य इसका यहीहै कि यद्यपि व्यभिचार से दूषित होचुकी प-
रन्तु ऐसी अब तक नहई जो अपने खोंटा पत्त में विख्यात होजाती अर्थात् लुकी
शिषी व्यभिचार में होने से अयद्व्यभिचारित ठहरी• ऐसी ब्राह्मणी आदि का जो
कोई वधकरे सो शूद्रकी हत्यापर लिखा हुआ छमाहीका व्रतकरे या दश गाय दूध
देती हुई दान करे जैसा दोस्रो सरसटि २६७ के उत्तरार्ध मूल प्रलोक में कही चुके ॥
२६६ ॥ इति पूर्वार्ध प्रलोकः ॥

२६६ अर्थकोक्तिः—यहां मिताक्षराकार कहितेहैं कि यह छमाही वाला व्रत
उसके लिये विचारना कि जिसने ऐसी ब्राह्मणी को इच्छाके विना घात कियाहो
और यही छमाही व्रत उसके लिये विचारना कि जिसने ऐसी सञ्जारी को इच्छा
पर्यन्त वध किया हो और जिसने इच्छा सहित ऐसी वनेनी का वध किया हो
सो दश गाय दूध देती हुई दान करे और जिसने इच्छा सहित ऐसी शूद्रा का
वध किया हो तिसके लिये चर्चासिद्ध ४४ परिच्छेद के अनुसार साधारण अ-
पातकां पर कहागया सक नहींने पंचगव्य पीके रहिने वाला व्रत व्रताना वा-
हिये—परन्तु जो कोई इच्छा सहित ऐसी ब्राह्मणीका वधकरे तिसकी बारहमहीने
व्रत करना चाहिये और जो ऐसी सञ्जारी को विना इच्छाके वधकरे तिसकोतीनि
नहींने व्रत चाहिये तथा ऐसी वनेनीको विना इच्छाके वधकरे तिसको षट्महीने
व्रत करना चाहिये तथा ऐसी शूद्राको इच्छा विना जो वधकरे तिसको षट्महीने
से आवा २१॥ सादे वाइन दिनका व्रत करना चाहिये—ये सब अर्थ अगिले प्रचेता
के वचन से स्पष्ट होते हैं=अथाह प्रचेताः=अनृदुमतींब्राह्मणींहत्वा इच्छाव्यगमा

सान्नेति सत्रियांहत्वाश्रमासास्रमासत्रयवेति देश्यांहत्वासासत्रयंशार्द्ध मासवेति शूद्रां
हत्वासास्रमासंशार्द्धाविंशत्यहान्वेति=अर्थात्—जो ब्राह्मणी सारिकधर्मसे ऋतुमती
कभी न होतीहो तिसका वध करिके एक वर्षभर छच्छ्रवत आचरै अथवा छमाही
मास (यहां विकल्पका वही तात्पर्य है जो अतिकोक्तिके प्रारंभमें कहिचुकेहैं कि
विना इच्छाके वध करनेवाला एक छमाही व्रतकरै तो यह बारह महीनेवाला कच्छ
व्रत इच्छा सहित वध करनेवाले पर चाहिये सो यह भी ऊपर लिखि चुकेहैं। इसी
तरह आगे क्षत्राणी आदिमें भी विकल्पोंको समझि लेना। और सबके साथ वहभी
जोड़िलेना कि जो ऋतुमती कभी न होतीहो) क्षत्राणीको सारिके छेमास या तीन
मास व्रत करै एवं बनेनीको सारिके तीन महीने या डेढ़ महीना व्रत करै एवं शूद्रा
को सारिके डेढ़ महीना या पौन महीना व्रतकरै=इसमें भी मारनेवाला पुरुष चाहें
किसी वर्राका होय प्रायश्चित्त सबके लिये एकसे बराबर है यह समझिलेना ॥०॥
एक हारीतके वचनमें प्रायश्चित्त बड़े होनेके हेतुसे कुछ भेद विशेषहै सो देखो=
यदाहहारीतः=अड्वयार्थिसाराजन्मे प्राकृतं ब्रह्मचर्यंश्रीशिवैश्वर्येसास्रंशूद्रे (इतिप्रतिपाद्य
पुनरुक्तवान्) सत्रियवदब्राह्मण्यां वैश्यवत्क्षत्रियायां शूद्रवद्वैश्यायांशूद्रांहत्वाश्रमा-
सास्र (तदपिकर्मसाधनत्वादिगुणस्यैवगिनीनां कान्तोद्ययापादनेद्रय्य्य अकान्तस्तुस
र्वत्रार्द्धकल्प्यं आश्रय्यांतुप्राशुक्तमिति मिताक्षराकाराः)=अर्थात्—हारीत ने पहिले
पुरुषोंके वधका प्रायश्चित्त कहाहै कि—सत्रीके वधमें छे वर्ष प्राकृत ब्रह्मचर्य और
तीनि वर्ष वैश्य के वध में और डेढ़वर्ष शूद्र के वध में वही ब्रह्मचर्य प्रायश्चित्त है
(यह कहिके फिर हारीत ने कहा है कि) सत्री के समान ब्राह्मणी के वध में और
वैश्यके समान क्षत्राणीके वधमें और शूद्रके समान बनेनीके वधमें समझिलेना और
शूद्रिनीको सारिके नौमासका ब्रह्मचर्य साथै (इस पर मिताक्षराकार कहितेहैं कि
हारीतके वताये ये बड़े प्रायश्चित्त भी ऐसी उत्तम स्त्रियोंके वधपर समझिलेना जो
कर्मका साधन होसकने की संभावना आदि उत्तम गुणसे संयुक्त होय तिनको इच्छा
सहित जब किसी ने वध किया हो—अन्यथा यदि इच्छा के विना दैवयोग से वध
कियाहो तो इन प्रायश्चित्तोंका आधा आधा व्रत सबके साथ कल्पित करिलेना—
और आश्रयी लक्षणा की स्त्रियों के वध का प्रायश्चित्त पहिले तीसरे परिच्छेद में
कहिचुके तहां देखो यह मिताक्षराकारोंने सब कहा (परन्तु इसका व्यौरा आगे
सिद्धांत वाले पाठ में देखो कि जिन स्त्रियों का नाम निकम्मी कहा जाय उन्हीं के
वधमें ये हारीत वाले बहुत बड़े प्रायश्चित्त हैं) इस परिच्छेदका सर्व सिद्धांत आगे

देखो ॥ सर्वस्यैव सिद्धांतः—अब इस बातका सिद्धांत सोचना है कि उन्ही ब्राह्मणा आदि का वध करने मध्ये तीसरे परिच्छेद में बड़ेबड़े वेही प्रायश्चित्तलिखिचुके हैं जो ब्राह्मणा आदि पुरुषों का वध करने में वारह बर्य आदिके होते हैं—फिर उन्हीं ब्राह्मणा आदिके वध पर यहां छोटे पापटहिरा कर छोटे छोटे प्रायश्चित्त कहे गये तिसका क्या कारण है—इसका यही कारण है कि यहाँ सब निकम्मी और खराब स्त्रियोंके वध का प्रकरण जुदा किया गया है। इनमें निकम्मी तौ उनको समझना जो निपट बन्धा होय या बन्धा यद्यपि नहीं थी पर बुढापा आदि कारणों से रजोवर्ष होना बन्द होगयाहो जिससे आगेको सतान पैदाहोनेकी आशा न रही हो तौ ये दोनों तरहकी निकम्मी समझी जातीहैं फिर इन्हीं में से तीसरा भेद और है कि जिसका मासिक ऋतुधर्म निपट बन्द तौ हुआ नहीं लेकिन बन्दहोनेवाला टारहा है तिससे कभी कभी दो चार सहीने थँभिकर जारी होजाता है इसी टाँसे बर्य दो बर्य पीछे निपट बन्द भी होजाता है तब तक यह आधी निकम्मी कहलाती है क्योंकि बीचमें देवावीन संतान पैदा होसकनेकी संभावना वर्तमान है। परन्तु इन तीनोंमें किसी प्रकारके व्यभिचार का दोष कुछ न हो और तीसरे परिच्छेदमें चर्चाकिया मवन यज्ञ वा अग्निहोत्रवाला उत्तम गुणाभी इनमें न हो तौ ये तीनों माधारणा भावसे निकम्मी कहिनो चाहिये (इन्ही तीनोंके वधका प्रयोजन हारीत के अजतरोक्त बचनवाले प्रायश्चित्तों में समझिलेना) निकम्मीके सिवाय दूसरी खराब स्त्रियां भी व्यभिचारिणी आदि कष्टे तरह से पदनाम होती हैं तिनके वध पर जुदे जुदे सबछोटे प्रायश्चित्त लिखिचुके तिनको इसो परिच्छेद के प्रारम्भ में आदि लेकर ०६० दोनों अरुनदिकी अधिकोक्ति भरने देखो=फिर=यह सोचो कि निकम्मी और खराब इन दोके बीचमें तीसरी शर्तिकी स्त्रियां भी कुछ होती। अर्थात् निकम्मीने कुछ नष्टन और खराब खोटीसे कुछ उत्तम तिनो दोनोंके बीचमें टारिरी (यहाँ खराब और खोटीका मक्की अर्थ है क्योंकि खोटी यह देगीभाया और खराब उसका प्रयोज याधनी शब्द है) दोनोंके बीचमें टारिरी तिनमें इसका प्रायश्चित्त भी बीचमें निगवागया सो देना अनर्था ०६६ के पूर्वार्ध में देखो कि (इयत्त व्यभिचारिणी) यदीमान इसका प्रारम्भ= जन्म पारम्भ में इसकने इन तीनों हंतानाके प्रायश्चित्त योग्यह कि सप्त पहिले अतिखोरी और खोटीके १ फिर बीचमें इयत्त व्यभिचारिणी जो २ फिर सप्तमे पीछे हारीत के बचन में निकम्मी स्त्रियोंके ३ इनतीनों में निकम्मी सप्तमे अच्छा समझिलेना

क्योंकि इनमें व्यभिचार आदि दूषणा कुछनहीं है और बीचवालीको इसलिये कुछ सध्यम ठहिराया है कि यद्यपि वह बन्ध्या भी न हो अथवा होय तौ भी कुछ तर्क इस पर नहीं है और यद्यपि वह अनार्तवा भी न हो किन्तु मासिक ऋतुधर्म उसके निरन्तर जारी होताहो अथवा न होताहो तौभी कुछ तर्क इसपर नहींहै परंच थोड़े से व्यभिचारमें एकही दो बार अपने सवर्गी किसी पुरुषसे या ऊँचे वर्गासे केवल इतना दूषित हुईहो जिसको भितरिया लोगोंने जाना कोई बाहरका बदनाम न कर सकाहो न किसीने प्रायश्चित्त उसपर करवाया हो तौ इसका वध करने वाले पर वही प्रायश्चित्त आरूढ होगा जो २६६ के पूर्वार्ध आदि से कहा गया (पर इसमें भी यह विशेषता है कि यदि ऐसी स्त्री से प्रायश्चित्त करवाया गया हो तौ फिर प्रायश्चित्तसे पवित्र होकर यह भी निकम्मी स्त्रियोंके बराबर समझी जायगी और प्रायश्चित्त कराने के बाद यदि कोई सार डारै तिसको हारीत वाला बड़ा प्रायश्चित्त करना होगा) अथवा जो इसके रजोधर्म जारी होता हो तौ फिर यह भी प्रायश्चित्त करने के बाद आत्रेयी मानो जायगी जिस आत्रेयी का वध करने पर बहुत बड़े प्रायश्चित्त हैं सो सब तीसर्वे परिच्छेद में देखो (आत्रेयी वही कहाती है जिसका मासिक धर्म हमेशा अपने समयपर जारी होताहो)=अब=तीसर्वे परिच्छेद का सिद्धान्त सुनो कि उसमें भी चाहें किसी वर्गाकी हो पर इतने उत्तम लक्षणां से संयुक्त स्त्री का वध करने पर पूरे प्रायश्चित्त हैं कि एक तौ आत्रेयी १ दूसरी पतिव्रता २ तीसरी सवनस्था जो सवन यज्ञमें लगीहो ३ चौथी अग्निहोत्रीकी भार्या चाहें आत्रेयी के लक्षणा से संयुक्तहो या नहो ४ (इन चारोंसे उपराल जो बाकीरहीं सो सब यहां ५ ३ परिच्छेदमें आगई)=इनके सिवाय=उसी तीसर्वे परिच्छेदमें (गर्भ हाच यथावर्गा) यह कहाहै कि गर्भका विनाश करने वाला भी जिस वर्गा का गर्भ विनाशो उसी वर्गाकी पुरुष हत्या वाला व्रत करै—सो यह तात्पर्य यहां ५ ३ के परिच्छेद में भी लेलैना होगा कि चाहें व्यभिचारिणी आदि कैसीही दुष्टाहो पर अपने पतिके बीजसे गर्भधारणा कियेहोय तिसका वध करनेमें गर्भका विनाश होजाने पर अत्रोक्त प्रायश्चित्तसे उपराल उस परिच्छेदमें वर्गान करी गर्भकी व्यवस्था भी लेनी होगी और उसमें जो गर्भका प्रायश्चित्त हो सो भी करना होगा क्योंकि इन दोनों परिच्छेदों का संबन्ध परस्पर मिला झुलासा एकही है ॥ २६६ ॥ यह पूर्वार्ध की अधिकोक्ति कही अब इसी मूलश्लोक का उत्तरार्ध अगिले परिच्छेद में जा पहुँचै गा—और यहाँपर हिंसा वाले प्रायश्चित्तों का प्रसंग चला आता है तिसमें मनुष्यों

देखो ॥ सर्वस्यैव सिद्धांतः—अब इस बातका सिद्धांत सोचना है कि उन्ही ब्राह्मणी आदि का वध करने मध्ये-तीसरे परिच्छेद में बड़ेबड़े वेही प्रायश्चित्तलिखिचुके हैं जो ब्राह्मणी आदि पुरुषों का वध करने में बारह वर्ष आदिके होते हैं—फिर उन्हीं ब्राह्मणी आदिके वध पर यहां छोटे पापठहिरा कर छोटे छोटे प्रायश्चित्त कहे गये तिसका क्या कारण है—इसका यही कारण है कि यहाँ सब निकम्मी और खराब स्त्रियोंके वध का प्रकरण जुदा किया गया है। इनमें निकम्मी तो उनको समझना जो निपट बन्धा होय या बन्धा यद्यपि नहीं थी पर बुढ़ापा आदि कारणों से रजोवर्ष होना बन्द होगया हो जिससे आगेकी संतान पैदा होनेकी आशा न रही हो तो ये दोनों तरहकी निकम्मी समझी जाती हैं फिर इन्हीं में से तीसरा भेद और है कि जिसका मासिक ऋतुधर्म निपट बन्द तो हुआ नहीं लेकिन बन्द होनेवाला हो रहा है तिससे कभी कभी दो चार सहीने थँभिकर जारी होजाता है इसी ठाँसे वर्ष दो वर्ष पीछे निपट बन्द भी होजाता है तब तक यह आधी निकम्मी कहलाती है क्योंकि बीचमें देवाधीन संतान पैदा होसकनेकी संभावना वर्तमान है। परन्तु इन तीनोंमें किसी प्रकारके व्यभिचारका दोष कुछ न हो और तीसरे परिच्छेदमें चर्चाकिया सबन यज्ञ वा अग्निहोत्रवाला उत्तम गुणाभी इनमें न हो तो ये तीनों साधारण भावसे निकम्मी कहनी चाहिये (इन्ही तीनोंके वधका प्रयोजन हारीत के अनंतरोक्त वचनवाले प्रायश्चित्तों में समझिलेना) निकम्मीके सिवाय दूसरी खराब स्त्रियां भी व्यभिचारिणी आदि कई तरह से बख्तास होती हैं तिनके वध पर जुदे जुदे सबछोटे प्रायश्चित्त लिखिचुके तिनको इसी परिच्छेद के प्रारम्भ से आदि लेकर २६८ दोसौ अक्षरकी अधिकोक्ति भरमें देखो—फिर—यह सोचो कि निकम्मी और खराब इन दोके बीचमें तीसरी भाँतिकी स्त्रियां भी कुछ होती हैं अर्थात् निकम्मीसे कुछ मध्यम और खराब खोंठीसे कुछ उत्तम तिनके दोनोंके बीचमें ठहरी (यहाँ खराब और खोंठीका एकही अर्थ है क्योंकि खोंठी यह देशी-भाया और खराब उसका पर्याय यावनी शब्द है) दोनों के बीचमें ठहरी तिससे इसका प्रायश्चित्त भी बीचमें लिखागया सो दोसौ अनंतरि २६९ के पूर्वार्ध से देखो कि (इत्यत्र व्यभिचारिता) यहीनाम इसका खराबका—सबसे परिच्छेद में इसक्रमसे इन तीनों हंताओंके प्रायश्चित्त बनेगए कि सबसे पहिले अतिखोंठी और खोंठियोंके १ फिर बीचमें इत्यत्र व्यभिचारिता के २ फिर सबसे पीछे हारीत के वचन में निकम्मी स्त्रियोंके ३ इनतीनों में निकम्मी सबसे अच्छा समझिलेना

क्योंकि इनमें व्यभिचार आदि दूषण कुछ नहीं है और बीचवालीको इसलिये कुछ मध्यम ठहिराया है कि यद्यपि वह बन्ध्या भी न हो अथवा होय तौ भी कुछ तर्क इस पर नहीं है और यद्यपि वह अनार्तवा भी न हो किन्तु मासिक ऋतुधर्म उसके निरन्तर जारी होताहो अथवा न होताहो तौभी कुछ तर्क इसपर नहीं है परंच थोड़े से व्यभिचारमें एकही दो बार अपने सवर्गी किसी पुरुषसे या ऊँचे वर्गसे केवल इतना दूषित हुईहो जिसको भितरिया लोगोंने जाना कोई बाहरका बदनाम न कर सकाहो न किसीने प्रायश्चित्त उसपर करवाया हो तौ इसका वध करने वाले पर वही प्रायश्चित्त आरूढ होगा जो २६६ के पूर्वार्ध आदि से कहा गया (पर इसमें भी यह विशेषता है कि यदि ऐसी स्त्री से प्रायश्चित्त करवाया गया हो तौ फिर प्रायश्चित्तसे पवित्र होकर यह भी निकम्मी स्त्रियोंके बराबर समझी जायगी और प्रायश्चित्त कराने के बाद यदि कोई सार डारै तिसको हारीत वाला बड़ा प्रायश्चित्त करना होगा) अथवा जो इसके रजोधर्म जारी होता हो तौ फिर यह भी प्रायश्चित्त करने के बाद आत्रेयी मानो जायगी जिस आत्रेयी का वध करने पर बहुत बड़े प्रायश्चित्त हैं सो सब तीसवें परिच्छेद में देखो (आत्रेयी वही कहाती है जिसका मासिक धर्म हमेशा अपने समयपर जारी होताहो)=अब=तीसवें परिच्छेद का सिद्धान्त सुनो कि उसमें भी चाहें किसी वर्गकी हो पर इतने उत्तम लक्षणां से संयुक्त स्त्री का वध करने पर पूरे प्रायश्चित्त हैं कि एक तौ आत्रेयी १ दूसरी पतिव्रता २ तीसरी सन्नस्था जो सवन यज्ञमें लगीहो ३ चौथी अग्निहोत्रीकी भार्या चाहें आत्रेयी के लक्षणा से संयुक्तहो या नहो ४ (इन चारोंसे उपराल जो बाकीरहीं सो सब यहां ५३ परिच्छेदमें आगई)=इनके सिवाय=उसी तीसवें परिच्छेदमें (गर्भ हाच यथावर्गां) यह कहाहै कि गर्भका विनाश करने वाला भी जिस वर्ग का गर्भ विनाशो उसी वर्गकी पुरुष हत्या वाला व्रत करै—सो यह तात्पर्य यहां ५३ के परिच्छेद में भी लेलेना होगा कि चाहें व्यभिचारिणी आदि कैसीही दुष्टाहो पर अपने पतिके बीजसे गर्भधारणा कियेहोय तिसका वध करनेमें गर्भका विनाश होजाने पर अत्रोक्त प्रायश्चित्तसे उपराल उस परिच्छेदमें वर्गान करी गर्भकी व्यवस्था भी लेनी होगी और उसमें जो गर्भका प्रायश्चित्त हो सो भी करना होगा क्योंकि इन दोनों परिच्छेदों का संबन्ध परस्पर मिला झुलासा एकही है ॥ २६६ ॥ यह पूर्वार्ध की अधिकोक्ति कही अब इसी मूलश्लोक का उत्तरार्ध अगिले परिच्छेद में जा पहुँचै गा—और यहाँपर हिंसा वाले प्रायश्चित्तों का प्रसंग चला आता है तिसमें मनुष्यों

की हिंसा अवतक वर्णन करी• आगे इसीके प्रसंगसे मनुष्योंके उपरालू हाथीआदि बड़े जीवोंसे लेकर लीख भुनका पर्यन्त सब तरह के प्राणियोंकी हिंसा वाले प्रायश्चित्त अगिले परिच्छेद में जुदे वर्णन करेंगे कि वे पातक यद्यपि योगीश्वरकी विवक्षासे सभी उपपातकों में गिनती होचुके हैं यह व्यौरा २३४ सूक्तप्रलोक से आदि लेकर देखो• परन्तु मनु और विष्णु आदि कई ऋषीश्वरोंने इन पापों का छोटापत समक्षिके उपपातकोंसे भी छोटे भेद इनके साने और भेदोंके जुदे नाम कल्पितकिये हैं सो सब २४२ की अतिकोक्ति में समुक्तौ ॥ ऊपर जो इसी २६६ के पूर्वार्ध मूल प्रलोकमें शूद्रकी हत्यावाला प्रायश्चित्त छेमाही और दश गायका दान जो स्त्रियों हत्यापर कहिचुके वही अगिले परिच्छेद वाले उत्तरार्ध मूल प्रलोक में भी तु शब्द के सबसे अतिदेश दियाजायगा यह याद रखो ॥ २६६ ॥ इतिपूर्वार्धः ॥

इतिब्राह्मणोत्तररहिंसाप्रकरणां ॥

यह प्रकरणा दो परिच्छेदों में अर्थात् बावन ५२ और त्रेपन ५३ में पूरा हुआ ॥

अथनरेतरसर्वप्राणिहिंसोपपातकप्रायश्चित्तप्रकाश कोऽयंपरिच्छेदः चतुःपञ्चाशत्तमः (५४)

—*—

इस परिच्छेदमें मनुष्यसे उपरालू सब जीवोंकी हिंसा मध्ये प्रायश्चित्त उनको जुदे भेदों के साथ कहे जायेंगे जो हाथी को आदि लेकर सच्छर लीख पर्यन्त भुनगा से भी अति छोटे जीव संसार में होतेहों ॥

(सूक्ष्मलघुजंतुसमूह वधप्रायश्चित्तं)

अस्थिमतांसहस्रंतुतथाऽनस्थिमतामऽनः २६९

अर्थः—हाड वालोंका सत्त हजारों और बिन हाड वालों का एक अनस गाडा भरि मारिके भी=अर्थात्—छोटी मछरी आदि तुच्छ जीव उस भांति के कि जिनके कुछ हाड भी होतेहों तिनको एक सहस्र सख्याके अनुमान जो कोई किसी प्रकार से विनाशे सोभी वही प्रायश्चित्त करै (जो स्त्री वध के ऊपर पूर्वार्ध मूलप्रलोक में पहिले परिच्छेदमें अतिदेश देखुके हैं कि शूद्र की हत्यावाला छेमाही ब्रह्मचर्य या

दण्ड गायका दान करे) क्योंकि यहां उत्तरार्धमें तु अण्डप्रय के योगसे उतकी प्राप्ति चली आती है—और उसी प्रायश्चित्तकी वह भी करे जो एक अण्ड गाडा छकडा भरके अनुमान उन जीवोंका विनाश करे जिनके हाडही निपट न होतेहैं दृष्टांत जैसे जोक वसती गेंडा गिंडार गिंजाई मक्खी ततैये बर भींखुर खडमल चींटे दीमक आदि बहुधा योनि होती हैं ॥ २६६ ॥

०६६ अधिकोक्तिः—इस २६६ के उत्तरार्धमें तु अण्डप्रय के अर्थसे उसी प्रायश्चित्तका अतिदेश उतारागयाहै जो ऊपरले परिच्छेद में पहिलेअर्धसे कहिचुके हैं(शूद्र हत्या व्रतं चरेत्)कि शूद्रकी हत्या मध्ये जो २६७ दोसौ सरस्वति मूलश्लोक में छमाही ब्रह्मचर्य या दण्डधेनुदेना कहाया वही इसहत्यापरभी करे परंतु यहाँ एक हजार छोटे जीवोंकी हत्याका नियम कियागयाहै तिससे जो अधिक जीवमारैसो उससे भी कुछ बडा प्रायश्चित्त करे इसीप्रकार विना हाड वालों को गाडी भरसे अधिक मारै सो अधिक प्रायश्चित्त करे यह तात्पर्य है और जो एकही दो चार आदि जीव मारै हाडवाले या विना हाडवालों में तिसको प्रत्येक जुड़े जीव का प्रायश्चित्त आगे २७५ दोसौ पचहत्तर मूलश्लोकसे योगीश्वर कहेंगे तहाँ देखो= और=जो मनुका एक वचन सिताक्षरा में धराहै कि कृमि कोट वयो हत्या० इत्यादि सलिनी करणीय पापों की गिनती किये पीछे—तत्रः श्याद्यावकश्चग्रहं—यह प्रायश्चित्त सबका एक साथ कहागयाहै कि तीन दिन गरमगरम यावक पीवै तव शुद्ध होय) सो यह प्रायश्चित्त यद्यपि ऐसे धर्मात्मा पुरुष पर आरूढहै जो प्रायश छोटेजीवों की हत्या से भयमानता हो यद्वा किती प्रयोग पजन में लगा हो तिसकी श्लानि मिटाने के लिये केवल एकही छोटा जंतु हाडों या विनहाडों वाला मरजाने पर यह प्रायश्चित्त है कि जिससे उसके मन को शुद्धि होसके) क्योंकि इसी मनुके वचन में विना हाडों वाले कृमि कोट भी कहे गये और इसी में हाडों वाले वयस पक्षी भी कहे गये किन्तु दोनों का जुदा भेद या जुदा प्रायश्चित्त नहीं कहा—इसपर असल सिताक्षरा में यह न्याय लिखाधराहै कि ऊपर योगीश्वर के कहे हाडवाले और विना हाडवाले अतिशय क्षोदिष्ट बहुत सूक्ष्म जंतु समुभक्त जैसे लोख जुआ मच्छर खडमल आदि जिनका एक हजार या गाडाभर मारये पर छे माही प्रायश्चित्त है क्योंकि हाडों या विन हाडों वाले स्थूल जंतु एकही को मारने पर मनुने तीन दिन गरम यावक पीना कहा है—हम इस न्याय को इस हेतुसे सुडौल नहीं समुभक्त हैं कि सिताक्षरा पहिले हाडवालों का दृष्टांत ककताम के-

कला रोगरा आदि कहिचुकी जो डेढपाव से अधिक भी स्थूल होता है फिर यहां इसन्याय पर लीख जुआ सच्छर आदि समुझाती है जिनका एक छकडाभर मारा जाना एकही पुरुषके हाथसे कदापि संभव नहीं है फिर वही मिताक्षरा मनुके वचन मे कृमि कीटों को स्थूलरूप कहिती है—यथा (एतच्चक्षोदिसृजंतुविययं स्थविष्ठान स्थियगुरादिजंतुवधेतुकृमिकीटवयोहत्येत्यादिना मलिनीकरणीयान्यभिधाय मलिनीकरणीयेयुतप्तःश्याद्यावकस्यहर्मितिमनुक्तंद्रष्टव्यमितिमिताक्षरा) इसीपंक्ति की व्याख्या ऊपर लिखी गई सो समझि देखो इस न्याय से कुछ सार नहीं मिला ॥२६६॥ अब दोसौसत्तरिके २श्लोकमें इनसे बड़े जीवोंकी हत्या बावतकहेंगे ॥२६६॥

(मार्जारदि वध प्रायश्चित्त)

मार्जारगोधानकुलमंडूकाश्चपतत्रिणः । हत्वात्र्यहंपिवेत्क्षिरं कृच्छ्रं वा पादिकंचरेत् २७०

अर्थः—मार्जार• गोधा• नकुल• मंडूक• पतत्रि• इनको मारिके तीन राततक दूध पीके रहै या एक पाद कृच्छ्र करै=अर्थात्—बिल्ली• गोह• नेउरा• मेढुका• और पतत्रि उडने वाले पक्षी काक चाय घुघुआ आदि (जिनके नाम किसी मूल प्रलोक में न कहेजायँ) इनका एकही एक जीव घात जो कोईकरै सो तीन राति तक थोडा दूध पीके व्रत करै या कृच्छ्र व्रत प्राजापत्य की चौथाई व्रतकरै यहभी तीन दिन में होगा ॥ २७० ॥

२७० अधिकोक्तिः—मूल प्रलोक चौथे चरणा में वा शब्द के अभिप्रायसे यह तात्पर्य दर्शाया है कि अत्रोक्त प्रायश्चित्त से उपराल भी योजन मात्र भूमि गमन आदि जो गौर स्मृतियों में लिखे हों वेभी कहीं विकल्प से करने चाहिये=यदाह मनुः=पयःपिवेत्त्रिरात्रंवायोजनंवा१ध्वनोत्रजेत् अपःस्पृशेच्छ्रवंत्यांवासूक्तंवा१वदेवतं जपेत्=अर्थात्—मनुने इतने विकल्प कहे हैं कि याती तीन रात्रि तक दूध पीवै या चार कोम तक श्रेष्ठ मार्ग नये पाओं से जावै (तहाँ उत्तम वायु का भक्षणा करै यह विधि आगे दोसौ पछत्तरि २७५ की अधिकोक्ति में पराशर के वचनों से देखना) या पर्वत के सोतवाली नदी मे स्नान और प्राणायाम करै या जलदेवकासूक्त जपै• ये प्रायश्चित्त केवल एक एक जीव के वधपर आसूढ हैं=परन्तु=जहां कई जातिके अनेक जीव एकही पुरुषने वध कियेहों तिसके लिये मनुका जुदा वचनहै सो देखौ=यदाह मनुः=मार्जारनकुलोहत्वाचायंसंडूकमेवच अगोवीलूककाकारं च गृह्णत्याव्रतंचरेत्=अर्थात्—बिल्ली नेउरा दोनों को एक साथ मारिके या इनके साथ

चाय पक्षी और मेहुका भी मारिके या कुत्ता और गोह और उल्लू और काकोंको एक साथ मारिके अथवा इनमें एकही किसी जीवकी अनेक संख्या मारिके शूद्र की हत्यावाला व्रत आचरै जो छमाही भरका शूद्र के वधपर कहिचुके हैं (यहाँ यह ध्यान करौ कि मनु का यह वचन मारि आदि वाला अनेक जीव मारने पर छमाही प्रायश्चित्त बताता है और योगीश्वर का मारि आदि वाला केवल एक प्राणी मारने पर तीन दिन प्रायश्चित्त कहिचुका कि जिसके मध्ये मनु के ऊपर ले वचन में अनेक प्रायश्चित्तों के अधिक भेद भी दर्शाये गये) इन सबसे निराला एक वशिष्ठ का वचन है—यदाह वशिष्ठः—अमार्जारनकुलमंडुकसर्पदहरसूयकान् ह-
त्वाहच्छं द्वादशरात्रंचरेत् किंचिद्दद्यात्—अर्थात्—वशिष्ठने जो बड़ा प्रायश्चित्त कहा है कि—कुत्ता• विल्ली• नेउरा• मेहुका• साँप• दहर काँटेदार पहाड़ी वनमूसा• सूयक मूसा• इन प्रत्येक जुदे जीवों का एक प्राणाविनाशिके बारह दिन का कृच्छ्र अर्थात् प्राजापत्य आचरै (ये बारहदिन उससेचौगुने होतेहैं जो तीनदिनमनु और योगीश्वर कहिचुके तौ इस चौगुने का यही प्रयोजन है कि जिसने इच्छा सहित दुवारा ति-
वारा वधकियाहो तिसकेलिये यह प्रायश्चित्त है २७० ॥

(हस्त्यादिवध प्रायश्चित्त)

गजेनीलवृषाःपंचशुकेवत्सोद्विहायनः । खराजमेपेषुवृषोदेयःक्रौंचेत्रिहायनः २७१

अर्थः—हाथी में पाँच नीले वृषभ• शुकपक्षी में द्विहायन बछरा• खर अज मेघ इनमें एक वृषभ• क्रौंच पक्षी में त्रिहायन बछरा दातव्य है—अर्थात्—जिसने हाथी माराहो सो पाँच काले बैल दान करै• जिसने तोता पक्षी का वध कियाहो सो दो वर्ष का बछरा दान करै• जिसने गदहा माराहो सो एक आँडूवैल• और बकरा मारने वालाभी एकवैल• तथा मेढा मारनेवालाभी एकवृषभदानकरै• जिसने क्रौंचनाम सारस पक्षीका वध कियाहो सोतीनिवर्षकी अवस्था वाला बछरा दानकरै २७१ ॥

२७१अधिकोक्तिः—यद्यपि तोता और सारस ये हाथी आदि के वरावर डील डौलमेंभी नहीं और जातिसेभी पक्षीहैं चौपायेसे मेल इनकानहींहै तथापि इन दोनों की उत्तमता से बड़ापन जाहर करने के लिये बड़े चौपायों के साथ में कहे गये)= इसपर एक मनुके वचन से कुछ और भी विशेषता है—यदाह मनुः—वासोदद्याद्वयंह-
त्वापंचनीलान्वृषान्गजस्र अजमेयावजड्वाहंखरंहस्वैकहायनस्र—अर्थात्—घोडा मारिके जैसा घोडा होय तैसा उत्तम मध्यम आदि वध दानकरै और हाथी को मारिके

पाँच नीले बैलों का दान करै तथा चकरा या मेढा को सारिके एक एक आंडूवृ-
यभ दान और गर्धव को सारिके एक वर्षका बछरा दान करै तब शुद्ध होय (यो-
गीचर के मूल वचन में गदहा के मध्ये पूरा वृषभ देना कहा गया और यहाँ पर
उसके मध्ये एक वर्ष का बछरा कहा सो इस दो भाँतिमें विकल्प गदहा की उत्तम
मध्यम जाति के ऊपर समझि लेना ॥ २७१ ॥

(हंसवानरगृह्णादि वधप्रायश्चित्त)

हंसश्येनकपिक्रव्याजलस्थलशिखंडिनः । भासंहत्वाचदद्याद्गामक्रव्यादस्तुवात्तिकाम् २७२

अर्थः—हंस० श्येन० कपि० क्रव्याद्० जलचर० स्थलचर० शिखंडी० इनको और
भासको भी सारिके गायँ दानकरै=अक्रव्यादोंको सारिके बछिया वा कलोरिगाय
दानकरै=अर्थात्—हंस जो अलभ्य पक्षी विख्यातहै सो अथवा उसी प्रकारके बतक
आदि और भी होते हैं० श्येन बाज का नाम है० कपि बंदर प्रसिद्ध है० क्रव्याद उन
जीवों का नामहै जो मांस खायँ (वे जल स्थल आकाश वृक्षादि के निवासी कई
भाँति होतेहैं० शिखंडी मोर का नाम है० भास भी एक पक्षी इसी नामसे प्रसिद्धहै०
इनमें से किसी एकही का वध करै सो एक गाय दान करै—और जो क्रव्याद नहीं
किन्तु मांसको न खाने वाले जल स्थल दोनों जगहके निवासी जीव तिनमेंसे किसी
एकहीको सारै सो कलोरि बछिया दानकरै (अक्रव्याद और क्रव्यादों के विशेष
नाम अधिकोक्ति में ॥ २७२ ॥

२७२ अधिकोक्तिः—अक्रव्याद मांसके न खानेवाले वन जीवोंमें हरिण आदि
अनेक मृग होतेहैं उडने पक्षियों में खंजर आदि अनेक पक्षी होते हैं—क्रव्याद मांस
खाने वाले भी दो तीन भेदके होते हैं कि वन के मृगजीवों में शृगाल व्याघ्र आदि
अनेक और पक्षियों में आकाशी कंक चील गृध्र आदि अनेक तथा जलके जीव भी
मगर आदि अनेक मांस के खवैया होते हैं—इनसे उपरालू जल के निवासी बगुला
आदि समझने और स्थलके चरने फिरने वाले भी बलाका आदि बहुत होतेहैं=इन्हीं
सब जीवोंके वधकी वावत मनुने भी इसी प्रकारसे विशेष भेद कियाहै=यदाहमनुः=
इत्वाहंसं वलाकां च वकवर्हिं रामैव च वानरं श्येनभासौ च स्पर्शयेद्ब्राह्मणाय गाम् क्रव्या
दस्तु मृगान् हत्वा देनुं दद्यात्पयस्विनीम् अक्रव्यादेवत्सतरोमुष्टं हत्वा तु कृष्यात्मन्=अर्था-
त्=हंस० बलाका० बगुला० मोर० वानर० श्येन० भास० इनमें किसीको सारिके एक
गाय ब्राह्मण को देवे और क्रव्याद वा मृगों को सारिके दूध वाली गाय दान करै

और जो अक्रव्याद जीव माराहो तो कलोरि बछिया दानकरै और ऊँटको मारिके कृष्णाल अर्थात् सोने की रत्ती दानकरै ॥ २७२ ॥

(उद्योगवराहाश्रव लोबानां वधे)

उरगेष्वायसोदंडोपंडकेतपुसीसकम् । कोलेघृतघटोदेवउप्रेगुंजाहयेंऽशुकम् २७३

अर्थः—उरग नाम सरीसृप जाति मात्र में किसी एक जीके मारने मध्ये लोहेका दण्ड दान करै जिपका अग्रभाग पैनी नोकदार होय • पंडक हिजरा के मारने में जस्ता सीसा राँगा दान करै • कोल सूकर के वध करने में घी का भरा घट दान करै • ऊँटको मारने में गुंजा अर्थात् सोने की कृष्णाला रत्ती दान करै • घोड़ेको मारै सो उसकी उत्तमता आदि के अनुरूप वस्त्रों का दान करै ॥ २७३ ॥

२७३ अधिकोक्तिः—लोहे का दण्ड ब्राह्मणा को भोजन कराइके दक्षिणा में देना चाहिये यह व्यवस्था आगे २७५ की अधिकोक्तिमें देखौ जहां (हत्वा मयक माजोर इत्यादि) पराशर का वचन मिलै उसका अर्थ विचारौ ॥ पंडक वाली व्यवस्था यहां देखौ—पंडकं हत्वा पलालभारं त्रपुषीसकं वा दद्यादिति स्मृत्यंतरदर्शनात् पलालभारं वा दद्यात् त्रपुषीसकं च मायपरिमितं दद्यात् इति मिताक्षराकाराः=अर्थात्=मिताक्षराकार कहिते हैं और किसी स्मृति में यह वचन देखा गया है कि पंडकका वध करिके यातौ एक बोझ धान कोदों के पयार का दानकरै या सीसा राँगा दानकरै तिससे पयार का बोझ भी विकल्प से समझि लेना और सीसे राँगे का परिमाण कुछ नहीं कहा गया है तिससे एक मासेभर देना चाहिये (चाहें यह पांचहीकौड़ी का माल क्यों न होताहो) भला इष्ट अतिशय तुच्छ प्रायश्चित्तको एकओर धरौ • प्रथम इस नामही पर संदेह रूपी तर्कवाद है कि (पंडकोलिंगहीनः स्यात्संस्कारार्हश्च नैवसः इति देवल वचनेन सामान्येनैव स्त्रीपुंलिंगरहितो निर्दिष्टः) अर्थात्—देवल का यह वचन है कि जो बालक स्त्री या पुरुषों वाले प्रधान लिंग चिह्न से विहीन पैदा होय सो पंडक अर्थात् निपट नपुंसक होता है उसका कुछ संस्कार भी जनेऊ मूडन आदि न करना चाहिये=यद्यपि—यह वचन सर्व सामान्य बोधक है तथापि इस वचन के अनुसार यहांपर गाय वृथभ नपुंसक या ब्राह्मणा जाति का नपुंसकन समझि लेना क्षयौकि इनके वध का प्रसंग इनकी जाति के प्रकरणां में आचुका समझना—इसी प्रकार क्षत्री आदि का प्रसंग उनके प्रकरणां में आचुका होगा—और यहां पर पंडक नाम सामान्य कहा गया है कि जिसमें हरकिसीका अर्थलि-

या जासके— तिससे यह कहिने में ठीक ठीक आसक्ता है कि गृहस्थ के घरों में नौजद नपुंसकों का चर्चा छोड़ो किन्तु निपट नपुंसकोंका समूह एक जुदाभी होता है जिसमें हर एक जाति शामिल होजाने से ब्राह्मण क्षत्री आदि का कुछ भेद और नियम बाकी नहीं रहिता उन्हीं का यह प्रसंग है जो लोक में हिजरा इस नाम से विख्यात हैं—परन्तु—सिताक्षरा ने यहांपर यह भी निश्चय किया है कि मृग और पक्षियों का प्रसंग वर्तमान है नरचर्चा यहां पर नहीं है तिससे पंडक शब्दसे मृग और पक्षी ही नपुंसक बताये होंगे—तथापि—मर्यादा परिपाटी उत्तर देती है कि हिजराओं का समूह भी ऐसे निरुद्ध प्राणियों में प्रसिद्ध है कि जिसको मनुष्योंके प्रकार में गिनती न करसके और इसी हेतु से उसको तिर्यक् योनि के समान मानि के यहां पर लाकर मृग पक्षियों के साथ वर्णन किया होगा बल्कि मृग पक्षियों की अपेक्षा वेकदरीके साथ उसके मध्ये अतिशय तुच्छ प्रायश्चित्त दर्शाया तो इस बात का अचंभा नहीं है (कि जैसा हाथी आदि चौपायों के साथ में तोता और मोर छोटे पक्षियों की उत्तमता दर्शाने के निमित्तसे मिलाकर प्रायश्चित्त कहेथे २७१ मूल प्रलोक देखो उसी न्याय से अचंभा यहां नहीं है) और जो इस बात को न मानो तो फिर यह उत्तर देना चाहिये कि ऋषीश्वरों ने हिजरों का चर्चा किस परिच्छेद में वर्णन किया तहां देखें यदि नहीं कहीं कहा तो फिर यही है—अन्यथा यह उत्तर भी देना चाहिये कि आपने बनवासी मृग पक्षी जो नपुंसक बताये सो क्योंकर पहिंचाने जासके हैं कि नपुंसक हैं या नहीं इसकी क्या परीक्षा (हाँ केवल बनाये हुये दोचार पशु ऐसे हैं जो पहिंचाने जाते हैं कि बकरा खस्ती और घोड़ा आखता और बैल बधिया आदि सो इनका यहां वन्यजीवोंके साथमे प्रसंग नहीं) कदाचित् प्रसंग भी जवर्दस्ती मानि लिया जाय तो फिर ये खस्ती आदि बड़े क्री-सती प्रयोजन वाले होते हैं तिनपर यह तुच्छ प्रायश्चित्त भी नहीं सूचित होता—तिससे यह पंडकसंज्ञा केवल हिजरा पेशेवालोंकी समुझना बल्कि इसी विषयपर अनुक्ता एक वचनहै उगमे साफ साफ संदंज्ञा कहीहै जो विशेष कर मनुष्यही की बोधक प्रतीत होतीहै=यथाहनुः=अश्विंकाश्यायवीं द्यात्सर्षंहत्वा द्विजोत्तमः पला-लभारकांयउगैगदं चेंदजायकत्त=अर्थात्—अर्षं वरीवृषजातिका कोई जीवमारै सो काठ और लोहेने बनी अग्निदानकरै जो जहाज नौकाआदिका जैल कीचड साफकरनेके लिये लोहालकटीकीद्वनी कुदालकहातीहै और यंठ जो निपटनपुंसकहो तिसका बब करणेमेंसत्तबोधप्रयारक्तादानकरै और एकगणधर सीठारांगामोदानकरै ॥ २७३ ॥

(दानाशक्तौप्रायश्चित्तांतराणि)

तिचिरौतुतिलद्रोणं + गजादीनामशकनुवन् ॥ दानंदातुंचरेत्कञ्ज्रमेकैकस्यविशुद्धये २७४ ॥

अर्थः—तीतुर एषीका बध करने में तिलोंका द्रोणा दानकरै (अर्थात् अधिकोक्ति में कहे द्रोणा भरि तौलिके तिल देवै + हाथी आदि सब जीवों की जुदी हत्यापर जो जो कुछ दान करना लिखिचुके सो निर्धन होनेके हेतु से जो कोई उसके देने में असमर्थहोय सो प्रत्येक जुदी हत्याको विशुद्धि होनेके योग्यही कछु आचरै ॥ २७४ ॥

२७४ अधिकोक्तिः=द्रोणास्यपरिमाणं यथा=अष्टशुष्टिभवेत्किंचित्किंचिदस्यैतु पुष्कलस्य पुष्कलानितुचस्वारिआढकःपरिकीर्तितः चतुराढकोभवेद्द्रोणाइत्येतन्मान लक्षणाश्च=अर्थात्—धर्मशास्त्रकी स्मृतियोंमें इस रीतिसे द्रोणा कहा गयाहै कि आधी छटांक के अनुमान कोई धान्य जो सुट्टी में आसकै सो सुट्टी कही जाती है० आठ सुट्टी भर एक किंचित्त कहाता है सो पाउ भरिका समझना ऐसे आठ किंचित्तोंका एक पुष्कल होताहै वह दोसेरके अनुमान होगा ऐसे चारि पुष्कलोंका एक आढक होताहै यह आठसेरके अनुमान होगा ऐसे चार आढकोंका एक द्रोणा कहाजाता है जो ३२ बत्तीस सेरके लगभग होताहै इतने तिल दानकरै जिसने तीतुर माराहो + ऊपर मूलश्लोक में दानके बदले कछु करना कहा गया तहां यदि कछुका विशेष कर वही एक प्रधान अर्थ माना जाय कि बारह दिन के प्राजापत्य का नाम कछु कहिते हैं तौ यह दोष खडा होताहै कि हाथीके मारने में भी वही बारह दिन और वही तोताके मारनेमें भी क्रियाजाय सो यह न्यायका मार्ग ठीक नहीं माना जा सकता है (कि सब धान बारह एसेरी के भाव) तिससे कछु शब्दका सर्व सामान्य वह अर्थ लियाजायगा कि कष्टसे दावनक्रिये तपका नाम कछुहै चाहे तप छोटा होय या बडाहोय—इसी नियमसे छोटी बडी हत्याओं की शुद्धि के योग्यही कछु होसकता है—तौ इस मार्ग से यह न्याय ठहिरा कि हाथी की हत्यापर जहां पांच बैल देनेकहे तिनको न देसकै सो दोमास भर गोमूत्रके रँवे जवोंका चानक खायके कछु तपकरै तौ बारहदिन वाले पांच प्राजापत्यकी वरावर प्रायश्चित्त ठहिरै एवं गदहा आदि के बधपर जहां एकही बैल देना कहा तिसको न देसकने में एकही प्राजापत्य करै जो बारह दिनमें होता है एवं जहां तीन वर्ष का बछरा देना कहा तहां नौ दिनमें तीनिपाद प्राजापत्य करै जहां दो वर्ष का बछरा देना कहा तहां छः दिन में आधा प्राजापत्य करै जहां २७२ के श्लोक में गायदेनी कही तहां नौ वीस

दिनमें दो प्राजापत्य करै जहाँ कलोरि देनीकही तहाँ एक पखवारैका उपवासकरै जहाँ २७३ के श्लोक से घीसे भरा घडा देनाकहा तहाँ नौ दिन में पौन प्राजापत्य करै जहाँ वस्त्रकादान करना कहा तहाँ घोड़ेकी बडाई आदिके अनुसार एकमहीने वाला चांद्रायणा या चौबीस दिनका या षडह दिनका व्रत करै जहाँ लोहे का दंड देना कहा तहाँ तीनदिनका व्रतकरै जहाँ तिलोंका दान करना कहा तहाँ तीनदिन का उपवास करै(फिर इन व्रतोंका परिवर्तन बदल भी जिस रीतिके व्रतों साथ धर्म शास्त्रके विज्ञाता पुरुष विचारि के ठहिरावैं सोभी दोषीकी दशाके अनुसार कोमलताके निमित्त माना जासक्ता है) और भी (जिन जीवोंके नाम यद्यपि नहीं लिखे गयेहैं तिनके मध्ये २७५ दोसौ पचहत्तरिका मूलश्लोक देखो परन्तु जे कोई जीव इन्हींके समान ससभेजायँ जिनकेनाम यहां तक लिखिचुके तौफिर इसी व्यवस्था के अनुरूप उन जीवोंकी उपमा इनमें से ढूंढि मिलाइ के निज बुद्धि से प्रायश्चित्त कल्पित करलेना चाहिये ॥ ० ॥ सामान्य कृच्छ्र शब्द की व्यवस्था जैसी अनेक भेदों से लिखि चुके तिसका प्रमाणाभी अशोक्त गौतमका वचन देखो=यदाहगौतमः=संवत्सर.यसामासाप्रचत्वारस्त्रयोद्वावेकप्रचतुर्विंशत्यहोवाद्दशाहःयडहस्यहो१२रात्र इतिकलनाएते१न्येवा१तिदेशेविकल्पेनक्रियेरत्नेनसिगुरुगिरागुरुगिरालघुनिलघुनीति= अर्थात्—एकवर्य.एक कृमाही.चारमहीना.तीनमहीना.दोमहीना.एकमहीना.चौबीसदिनका.वारहदिनका.छःदिनका.तीनदिनका.एक दिनरातिका भी तप होताहै यह कृच्छ्रोंकी कलना अर्थात् गणना गिनती कही (पर इतनेही नहीं किन्तु और भी अनेक गिनतीके होतेहैं तिससे) ये इतने या और जे कोई कृच्छ्र तप होते हैं तिनको अति देगके स्थलोंपर विकल्पसे वर्तै किन्तु बड़े पापसे बड़े कल्प और छोटे पापमें छोटे कल्पों को यथा योग्य सोचिके ॥२७४ ॥

(अतिसूक्ष्मजंत्वादिवधप्रायश्चित्तं)

फलपुष्पांतरतजसत्ववातेधृतागनम् । किंचित्सास्थिमतादेयंप्राणायामस्त्वनास्थिके २७५.

अर्थः—फल. पुष्प. अंतर. रसैसि उत्पन्न प्राणियों के घातसे घीयाटना=अर्थात्—गानर आदि बहुधा फलोंमें और मधुक आदि बहुधा फूलोंमें बहुत नन्हे जीव होतेहैं और बहुत दिनोंकी बरीहुई म्वागीपीनी चीजें और लकड़ीआदि चीजों के बीचमेंभी छोटे जन्तु होजातेहैं तथा सौंटे खटलनर आदि रसों में भी जीव पाँडिजाते हैं • इन जीवों का प्राणा विनाशिके विवादिज्ञाना उतना कि जितने से मनुकी शुद्धि प्राप्त

होसकै यही प्रायश्चित्त है । हाड़वालों के घातमें कुछ दान करना चाहिये विन हाड़वालोंके घातमें प्राणायास=अर्थात्—फल फूल आदिसे उपराल जो प्रत्यक्ष कुछ बड़े जीव होतेहैं जिनका नाम कहीं नहीं लिखा क्योंकि संतार से अनन्त जीव हैं सबके जुदेनास कहाँ तक लिखे जायँ तिनके मध्ये सामान्य रीतिसे सकही दो प्रायश्चित्त दर्शाते हैं कि—यदि हाड़वाला कोई एक जीव केकलारंगरा आदि विनाश किया हो तो प्रत्येक जीवके मध्ये कुछ कुछ अन्न वा नगदी आदि दानकरै•यद्वा विन हाड़वाला कोई छोटाजीव भींगुर ततैया आदि विनाशकियाहो तो प्रत्येक जीवकेमध्ये एकप्राणायास जैसा संध्याकेउपासनमें होताहै सोकरै तिससेशुद्धिहोजातीहै॥२७५॥

२७५ अधिकोक्तिः=घृताशनेतुसिताक्षरा—पूर्वार्ध में जहां घीका चाटना कहा तिसके मध्ये सिताक्षरा में यह व्यक्षस्था है कि निपट घीखाय के एकदिन उपवास करै क्योंकि प्रायश्चित्तोंका रूपहै तपस्या सो किंचित्त घी चाटने से नहीं मानी जासकीहै• यहीवात अंगिराके अश्रोक्त वचनसे पाई जातीहै=यथाहांगिराः=प्रायोनास तपःप्रोक्तंचित्तनिश्चयउच्यते तपोनिश्चयसंयुक्तंप्रायश्चित्तंतदुच्यते=अर्थात्—प्रायस्—चित्तइन दो शब्दोंका अर्थ है कि प्रायस् तप कहाता है चित्त निश्चयका नाम है सो तप और निश्चय मिलिकर प्रायश्चित्तनाम धरागयाहै—तिससे किंचित्त घी चाटना ठीक नहीं यह सिताक्षराकारोंने कहा—और मूलश्लोक में साफ साफ यही कहाहै कि (घृताशनंकिंचित्त) और (देयंकिंचित्त) अर्थात् किंचित्त शब्दकी योजना पूर्वार्ध उत्तरार्ध दोनों अर्द्धासे प्रत्यक्षहै तो इसद्विविधा में दोनों तरहसे व्यवस्था समझिलेनी कि जहाँ थोड़े सेफलफूल आदिके जीव मरें तहाँ किंचित्तही घी चाटने में शुद्धि होजायगी परन्तु जहाँ कुछ अधिकजीव मरेहों तहाँ निपट घी खायके उपवास करना भी उचितहै । वही किंचित्त देयके साथहै कि हाड़वाला कोई एकही जीव मरजाने से किंचित्त देना चाहिये तहाँ किंचित्त कुछ का अर्थ तो प्रधान है कि कुछ दान करनाचाहिये चाहें अन्न या नगदी आदि जो कुछ बलिपरै फिर उसी किञ्चित्तका दूसरा अर्थ आठ मुट्ठी भी कहाता है जैसा (अष्टमुष्टिभवेत्किञ्चित्त) यह २७४ की अधिकोक्तिमेंभी आचुका है कि आठ मुट्ठी भरनाज किञ्चित्त कहाताहै जो केवल पाउ भरके अनुमान होसक्ता है—इसपर सिताक्षराकार कहिते हैं कि जो दान्य आदि कोई नाज दानकरै तो एक जीवकी हत्यापर यही आठ मुट्ठी भर देना चाहिये जो नगदी दानकरै तो उसी किञ्चित्त के अभिप्राय से तांबेका एक परा एक जीवकी हत्यापर देना चाहिये•क्योंकि (अस्थिमतां ववेपसां देयइतिसुशंतुः) सुसन्तुजे

साफ यही कहा है कि हाडवाले जीवोंकी एक हत्यापर एक=इसपरा शब्दके यद्यपि कई अर्थ होते हैं कि सोने की अणारफ़ी या चाँदी का रुपया या ताँबेका पैसा जो जिस राजके व्यवहार में चलता हो (क्योंकि पणा और नाराक ये दो नाम सिके सरकारीके हैं) परन्तु यहाँ छोटे प्रायश्चित्तपर ताँबेकापणा समझना उचित है और पैसा यद्यपि सोरहमासेका होता है तिसको भी ताँबेकापणा समझते हैं तथापि शास्त्र की सय्यासे रुपयेकी सोरहकला अर्थात् आधेपणा समझने क्योंकि ताँबेके पणा में एक आनाही प्रधान है=किन्तु इसप्रायश्चित्तमें जो कुछ उचितजानो सो मानो तहां यदि आठ सुदृठी नाज के विकल्प को सोचै तबतौ उसके जवान में केवल ताँबे का पैसा समझि परता है अन्यथा जो शास्त्रके व्यवहारपर ध्यान दियाजाय तौ फिर ताँबेका पणा ठीक ठीक एक आना ठहिरता है—परन्तु इन बातोंकी अपेक्षा जैसा योगीश्वरने सुलप्रलोकमें कहा तैसा ज्योंका त्यों वही किञ्चित् अर्थ ठोकया कि जो कुछ इच्छा से समाय सो थोडा बहुत दान करै—तिसके ऊपर धान्य और हिरसय नाम बरिके फिर ऐसे छोटे अर्थ दर्शायेगये इस व्याख्याकी ज़रूरत कुछ नहीं थी कि (अस्थि सतां ककला सादि प्राणिनां प्रत्येक वधे किञ्चित् स्वल्पं धान्य हिरराया दिकं देयं तत्र किञ्चिदिति यदा हिररायं दीयते तदा पणामात्रं • अस्थिसतांवधेषसोदेय इति सुप्तुश्मरणात् • यदा तु धान्यं देयं तदा षष्ट्युष्टिदेयं अष्ट्युष्टिभवेत्किञ्चिदिति शररारिति सिताक्षरा) अर्थ इसके सब ऊपर लिखिहुके ॥ २७५ ॥ अब नीचे वह व्यक्या लिखी जायगी कि जब किसी जीव ने किसी तरह का अपराध किया अर्थात् स्वेत खाया जानाआदि नुकसान या ऊपरसे इगिडेना आदि किसी तरह का दुखदिया हो ऐसेही नावा भातिके उपद्रव कहाते हैं जो किसी जीवने कुछ कोई सा उपद्रव किया तिसके पलटे क्रोध में आकर जिस किसीने उव जीव को मारडारा हो तिम के लिये भी अति छोटे प्रायश्चित्त हैं सो नीचे देखना ॥

(अथ अपराधकल्पप्रतिकारे सर्वजंतुवधप्रायश्चित्तं) ॥

अनाह पराभर = हंसवारनचक्राहकौंचकुक्षुटवातकः अशूरभेयौ इत्वाचधकभक्तैः शुयति मुद्गवटिष्ठिभंदैव शुकंपारावततया । अंडिकाचवकंहत्वाशुदेवैः नक्तभोजनप्र चायकाककपोतानां मारितितिरथातकः अन्तर्जले उभेसंधेप्राणायाभेदशुद्यतिपूष प्रयेनप्रिहंगाना मुतुकन्यववातकः अपकाशीदिनंतिये तद्वैकालो मारुताभनः इत्वाभू कजर्जरतया जगार डडुभार । प्रत्येकंभोजवेदिप्रान्तोहदंडप्रचदासिणा सेधाकच्छपो

धानां शशशल्यकघातकः वृंताकफल गुंजासीअहोरात्रेणाशुद्धतिमृगरोहिबराहारा
 सबिकावस्तघातनेवृथजंबूकऋक्षाणांतरक्षूणांच घातकः तिलप्रस्थंत्वसौदद्याद्वायुभक्षो
 दिनत्रयसराजमेघतुरंगोष्टृगवयानानिपातनेप्रायश्चित्तमहोरात्रं त्रिसंध्यंचावगाहनम् ख
 रवानरसिंधानां चित्रकव्याघ्रघातकः शुद्धिभेतित्रिरात्रेणाब्राह्मणाणांचभोजनै रिति=
 अर्थात्—पराशर कहितेहैं कि—हंस•वदक•सारस•चक्रवा•क्रौंच अर्थात्सारससे जुदा
 एकजुरर वा जुररीपक्षी प्रसिद्धहै औरकहींकहींलोंकमें ठोंक या कोंचवक आदिजो
 पक्षी हैं तिनको क्रौंचकहिते हैं ये सब लम्बी गर्दनिकेहोतेहैं• सुरगा•सोर•मेढा• इन
 की हत्याकरिके एकहीवार भोजनके नियमसे शुद्ध होजाता है ॥ मुद्गापक्षी जो देश
 भेदी नामोंसे सोगा सोगदर ससर कहाताहै• टिटिभ टिटिहिरी•सुवा• पारावत कबू-
 तर आदि• आंडिका अनेकजीव जो धरतीपर अंडा धरतेहों• वगुला•इनको सारिके
 रात्रिमें भोजन करनेका नियम राखने से शुद्धहोताहै (इनदोनों प्रायश्चित्तके साथ
 २७४ की अधिकोक्तिवाली व्यवस्थाके अनुसार छोटे बड़े कच्छोंकेदिन भी जोड़ि
 लेना कि वहांपर जिसजीकी हत्यामें जितनेदिन कच्छ करना समुक्तिपरै उतने दिन
 तक यह रात्रिमें भोजन वा एकवार भोजनका नियम समुक्तिसेना सोभी उसदशामें
 कि यदि अपराध के प्रतिकारमें पाप बनिगया हो अन्यथा जानि ब्रूमि हत्या क-
 रने में उसी अधिकोक्ति के अनुसार उतनेदिन कच्छही करना चाहिये• इसीप्रकार
 यहांके अगिले प्रायश्चित्तोंपर युक्ति सोचिलेना (पराशर कहितेहैं कि•चाय पक्षी
 जो संसारमें नीलकंठ इसनामसे प्रसिद्धहै अतिसुन्दर और सोनेकेवर्शा सरीखी पीली
 चोंचवाला•कौआ•पिंडक पिंडखुरी• सैना• तीतर• इनको मारनेवाला सांभ्र सवेरे
 दोनों संध्याके ठीक ठीक समयपर जलमें खडाहोके प्राणायाम करिके शुद्धहोताहै
 इसमें भी ऊपरली युक्तिको यथा योग्य सोचिलेना ॥ पराशर कहितेहैं कि•गिद्ध•
 वाज आदिपक्षी जोजो बहुतऊँचे आकाशमें उड़तेहैं•उलूक उल्लू घुग्घू•इनकीहत्या
 करिके सकदिन इस तरह उपवास करै कि आंचकीषकी वस्तु कुछ न खाय केवल
 कचेफल खायके रहै फिर दूसरे दिन सवेरे सांभ्र दोनो समय कुछ भी न खाय के-
 वल वायु हवा पीके रहै इसकी यह रीतिहै कि जहां वन वाग सडक आदिमें बहुत
 उत्तम फलफूल आदिकी सुगन्ध वायु बहितीहो तहां उसके सन्मुख एक योजन अ-
 र्थात् चारकोसतक हवाको मुखनाक आदि छिद्रोंमें लेता चला जाय तब शुद्धहोय
 यह योजनभर चलाजाना २७० की अधिकोक्ति में मनुके वचनसे लिखिचूक तहां
 देखो॥ पराशर कहिते हैं कि•सूसा•विल्ती•सांप•अजगरडुंडुभ डोडा सांप इमनाम

से सांपकी जुदीजाति है शायद इसीको दुसुही कहिते हों•इनमें किसी एकही की हत्याकरै सो ब्राह्मणोंको भोजन करावै और पूर्वोक्त रीतिका बनाहुआ लोहेकादंड दासगाटेवै ॥ पराशर कहितेहैं कि•सेही•कछुवा•गोह• खरहा• शल्यकी• इनकी हत्यामें वैगन और गुंजा गोंधुचीके पत्ते आदि खाइके व्रतकरै सो एकदिन राति भर में शुद्ध होताहै ॥ पराशरकहितेहैं कि•मृग हरिण•रोही वनजीव जो वृक्षपर चढ़ जानेवाले वानर विद्यखपरा आदि होतेहों•बराह•भेड•बकरा• भेडहा•शृगाल• रीछ• तरक्ष तेंदुआ तरख•इनमें किसीकी हत्याकरै सो एक प्रस्थ परिमान तिलोंका दान करै और पूर्वोक्तरीतिसे वायुको पीकर तीनदिनतकव्रतकरै ॥ पराशरकहितेहैं कि• हाथी•मेढा•घोडा•ऊँट•गवय नीलगाय रोभ्र इनमें किसीकीहत्याकरै सो एकदिन रातिका उपवास और तीनो संध्या के समय तीर्थ स्नान प्राणायाम करै ॥ पराशर कहितेहैं कि•गदहा•बन्दर• सिंह•चीता•वाघ•इनमें किसीकी हत्याकरै सो तीनदिन राति वायु को पीके निराहार उपवास करै और इन सभी पूर्वोक्त प्रायश्चित्तों के पीछेसे यथाशक्ति संख्यासे ब्राह्मणोंको भोजनकरावै यह विशेष नियम सर्वत्रसबके साथ समुभिलेना=और=यह भी यादराखना कि जिन जीवोंकेनाम इस व्यवस्था में न लिखेहों और लोकमें नाम जिनका प्रसिद्ध होय तौ उन जीवों की हत्यापर इस व्यवस्थासे वेही प्रायश्चित्त हुंढिलेना कि जो जो उन जीवोंके तुल्य डील डौलवालों के नामसे इसमें लिखेहों वनजीवों के साथ वनजीवोंकी उपमा और जल जीवोंकी पक्षियों के साथ पक्षियों के डीलडौल या उनके आचरणा आदि एक से मिलाकर कामचलाना यह न्यायका स्वरूप है=इसीप्रकार=औरभी विशेष स्मृतियोंके बचन कहीं देखि परै तिनको भी न्यनाधिक विषय भेदसे कल्पना करिके समुभिलेना और परस्पर वचनों का विरोध बचाते रहिना २७५ ॥ यह व्यवस्थाभी इसी दोसो पचहत्तरि अधिकोक्ति का शेष है २७५ ॥

इतिनरेतरसर्वप्राणिहिंसाप्रकरणं ॥

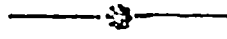
इस प्रकरणामे एकही यह चौवनका परिच्छेद है दूसरा नहीं ॥

सब जीवोंकी हिंसा वर्णन होवुकी अब अगिले परिच्छेद में इसी हिंसाके प्रमाण से वनवृक्ष आदि काटने तोड़ने उखाड़ने के प्रायश्चित्त वर्णन हेगें क्योंकि यह भी गक जड न्यावरोंको दुखदेना या विनाश करदेना जडजीवोंकी हिंसाहै और इसका उद्देश्य भी २४० दोसोचालिस सूत्रनोक से उपपातकों में आचुकाहै उसकी सबबी

और जरूरी अन्यवातोंको भी खींचके यहाँ दर्शावेंगे कि जिनका चर्चा वहाँपर न होसकाहो सो सब आगे देखो ॥

अथ वृक्षगुल्मलतादिसर्ववनस्पतिच्छेदनोपपातकप्राय

श्चित्तप्रकाशकोऽयं परिच्छेदः पंचपंचाशत्तमः (५५) ॥



इसपरिच्छेद में सबतरहकी वनस्पति वृथा काटने या तोड़ने वा उखाड़िडारने आदि किसी प्रकारसे विनाश कर देने मध्ये प्रायश्चित्त कहे जायेंगे चाहें बड़े वृक्ष हों या गुल्म लता वीरुध आदि छोटी औषधियों पर्यंत कोईसी वनस्पतिहोय ॥

(वृक्षादिच्छेदनप्रायश्चित्त)

वृक्षगुल्मलतावीरुच्छेदनेजप्यमृक्शतम् । स्यादौषधिवृथाच्छेदेक्षीराशीगोऽनुगोदिनम् २७६ ॥

अर्थः—वृक्ष•गुल्म•लता•वीरुध इनको काटने में ऋचाओं का शतक जपनाहोय तथा औषधिके वृथा काटनेमें एकदिन गौओंके पीछे फिरके दूध पीवै=अर्थात्—फल देनेवाले, आँव कटहरआदिके पेड़ और गुल्म जो वनवागोंमें भाड़ी हुआकरतीहैं लता जो हरतरहकी बेलिफल देनेवाली प्रसिद्ध होय एवं वीरुध जो वन में बड़ी मोटी बेलि अधिक फलती हैं इत्यादि और भी इसी नमूनेपर समझिलेना•इनमें से कुछ प्रयोजन विना अर्थात् यज्ञादि जरूरी कामों के विना जो कोई कुछ काटे या तोड़े वा उखाड़े तिसको गायत्रीआदि पवित्र ऋचाओंका एक सैकरा जपना चाहिये=तथैव=जो वन की या वस्तो के समीप उत्पन्न होनेवाली हरतरह की औषधियों में किसी पेड़को रोगादि प्रयोजन के विना उखाड़ारै या तोड़े तिसको यह प्रायश्चित्त है कि प्रातः-काल से सांभूतक गौओंकी नरिहाई के पीछे पीछे उनकी उचित सेवाकरता फिरै पुनि रात्रि में थोड़ासा कृचादूध पीके ब्रतराखै तत्र शुद्धहोय ॥ २७६ ॥

२७६अधिकोक्तिः—यज्ञादि कामों के विना•इस कथन का यह तात्पर्य है कि रोजके जरूरी पंचयज्ञोंके निमित्त फलफूल आदि या सूखी लकड़ी तोड़ने का दोष नहींहै—और दूसरा यह तात्पर्य है कि तोड़ने काटने का दोष जो कहा गया सो भी केवल उन वृक्षादिकोंकी अपेक्षापर आरूढ है जो अपने फल फूल पत्र छालि गोंद आदिसे संसारका उपकार करतेहैं—इसकेमध्ये यह वचन भी प्रसाराहै कि=फलदानांतुवृक्षारांछेदनेजप्यमृक्शतसगुल्मवल्लीलतानांतुपुष्पितानांचवीरुधाम्=अर्थात्—

किसी तरह का गुण उपकार रूपी फल देने वाले वृक्षों के काटने में और इसी प्रकार के फल देने वाले गुल्म वल्ली लताओं के काटने में तथा पुष्पित वीरुवों के अर्थात् जिनमें कोई अन्य प्रकार से फल नहीं देखि परता हो तथापि जो वीरुव भूमि वेलि आदि केवल फूलों से लदे हुये दिखनौट वनकी शोभा को बढ़ाते हैं तिनके भी काटने में प्रायश्चित्त चाहिये=इसके सिवाय जो वारों प्रयोजनकी संसार में प्रसिद्ध हैं दृष्टान्त जैसे खेत खोदना या हलसे जोतना आदि ऐसे प्रसिद्ध प्रयोजनों में औषधीका वृक्ष कटिजाना आदि दोषमें गिनती नहीं है क्योंकि हल खींचने आदिसे जो कुछ दोष उत्पन्न होता है तिसका प्रायश्चित्त वही है जो खलयज्ञ कहाता है अर्थात् नाजकी राशि तैयार होने तक अनेक तरहसे किसान लोभा अन्नादिवस्तुओंका दान पुण्य जो कुछ उनकेलिये शास्त्रमें लिखा है सो करतेरहिते हैं उसीसे दोष दूरहोजाता है—एवं गऊआदि पशुओंका पालनकरनेके निमित्त जो घासआदिकारी जाती है उसमें भी प्रयोजनके हेतुसे कुछ दोष नहीं है क्योंकि पशुओं का पालन कर्म भी पंचयज्ञोंका एक अंगभेद है=और भी वशिष्ठजीका जो वचन है सो इसी प्रयोजनपर नियेव और प्रति प्रसवके साथही कहा गया है=यथाह वशिष्ठः=फलपुष्पोपभोग्याव पादपान्नहिंस्यात् कार्यणाकरणाथंचोपहन्यादिति=अर्थात्—फल फूल आदि किसी प्रकारसे भोगने योग्य वृक्षों को न काटे यह नियेव किया० परन्तु जोतने के हेतु धरती साफ करनेके लिये काटे भी यह नियेव कियेहुये का प्रतिप्रसव कहा ॥०॥ परन्तु जहां कहीं स्थान विशेष के हेतुसे काटने पर अधिक दण्ड कहा गया हो तहां उनके काटने में प्रायश्चित्त भी ऊर्ध्वोक्तसे अधिक लगाया जाता है=यथोक्त=चैत्य श्मशानसीमासु पुण्यस्थानेषुरालये जातद्रुमासां द्विगुणो दशो वृक्षेषु विद्युते=अर्थात् चैत्य जो ऊँचे वृक्ष अस्तल (स्थल) आदि पर पुराने खड़े होते हैं या मुर्दा फुंफुकी धरती श्मशान पर होते हैं या सीमाके चिह्न मानेजाते हैं या राह घाट पथिकों के विश्राम योग्य होते हैं या जिनसे ग्रामोका दूरी अन्तर कोम योजन आदि जाना जाता है या जिनके नीचे जंगल में पशुओंको छाया मिला करती है या जिन बड़े वृक्षों के विशेषणसे किसी ग्राम नगर मुहरना देवस्थान खेत कुूप आदिका नामही विख्यात या कोई अति प्राचीन वृक्ष किसी कोरे मैदानमें केवल अपने नामसे विख्यात होय तिनके होनेसे पुराने कालका प्राचीन चिह्न माना जाता हो या देवालय आदि पुण्य स्थानमें कोई वृक्ष नवीनही अपने आप पैदा हुआ या लगाया गया हो इत्यादि वृक्षों के काटने में इना दण्ड होता है कि जितना साधारण वृक्षों के काटने पर लिखा हो

तिससे—तो इस दण्डके अनुसार प्रायश्चित्त भी दूनां करवाया जाय जितना लिखि चकेहैं तिससे ॥ ० ॥ सक्तसौ ऋचाका जप करना जो कहागया सो केवल पढे लिखे द्विजातियों का विषय है तिससे स्त्री और शूद्र आदि के लिये जपके स्थान पर दंड के अनुसार दो रात्र आदि व्रतही आदेश किया जाय ॥ ० ॥ दोसौ पैसठि २६५ मूल प्रलोक और उसी की अधिकोक्तिसे चवालिस ४४ परिच्छेदमें जो जो प्रायश्चित्तों के स्वरूप सब सामान्य उपपातकोंपर अतिदेश उतारे गसथे और इस परिच्छेद की व्यवस्था भी उपपातकों में गिनती होचुकी है तिससे उन प्रायश्चित्तों का अतिदेश भी इसपर जोडि लेना चाहिये० और यद्यपि वे प्रायश्चित्त बहुत बडे हैं तथापि यहां सेसे विख्यात पेडों के काटने सधे दूने किये बिनाही आरूढ होसक्ते हैं० अन्यथा इन वृक्षों से उपरालू सामान्य वृक्षों को बारम्बार काटने के अभ्यास पर भी आरूढ होसक्ते हैं ॥ २७६ ॥

पुंश्चली स्त्रियां और वानर आदि बहुधा दांत वाले जीवों का मारना जो ऊपर चर्चा किया गया तिसके साथ यहभी संभव है कि जिसको मारनेपर उतारू कोई होताहै तो वह भी क्रोधमें आकर प्रायः काटि खाताहै इसी प्रसंग से यह बात यहां पर आकर्षणा करी गई है कि यदि कोई सेसे जीवों से काटि खाया जाय तिसको प्रायश्चित्त करना चाहिये फिर चाहें तैसी दशामें काटा गयाहो कुछ मारनेके समय परही यह नियम आरूढ नहींहै किन्तु काटिखाने से अशुद्धि जो उत्पन्न होती है तिसका प्रायश्चित्त अगिले परिच्छेद में देखना ॥

अथपुंश्चलीवानरखरादिदंष्ट्रजीवैर्दंष्ट्रपुरुषस्यप्राय

श्चित्तप्रकाशकोऽयंपरिच्छेदः षट्पंचाशत्तमः ५६

—*—

इस परिच्छेद में उस पुरुष के प्रायश्चित्त कहे जायगे जो किसी नलीन पशु पक्षी आदि जीव या मनुष्यही से काटिखाया जाय तिसकी अशुद्धि प्रायश्चित्त करने के बिना नहीं सिटती है ॥
(खरवानरकाकादिदंष्ट्रस्य प्रायश्चित्तं)

पुंश्चलीवानरखरैर्दंष्ट्रचोप्रादिवाचसैः । प्राणायामंजलेकृत्वावृतंप्राश्यविशुद्ध्यति २७७
अर्थः—पुंश्चली अति व्यभिचारिणी नारी या बंदर या गदहा या ऊँट आदि

सलीन पशु या कौआ आदि सलीन पक्षी यदि मारने आदि किसी दशा से जिसको काटिखायें सो इनसे दष्ट काटा हुआ जलमें खडा होकर प्राणायाम करिके और पीछेमे घी चाटिके शुद्ध होजाता है ॥ २७७ ॥

२७७ अधिकोक्तिः—मूल में जो आदि शब्द आया तिससे और भी कृत्ता जत्रुक आदि कटखन्ने सलीन जीवोंको समझलेना जो इस भाँतिके होतेहैं=यथाहमनु=अष्टगालखरैर्दष्टोग्रान्यैःकव्याङ्गिरेवच नराश्वोष्ट्वराहैश्चप्राणायामेनशुद्धति=अर्थात्—कृत्ता• गीदड• खर• इनसे काटा हुआ या जो ग्राम के रहैया विल्ली आदि मांस खानेवालों से काटाजाय या आदिमी काटि खाय या घोडा ऊँट सूअर इनसे काटा हुआ द्विजाती पुरुष प्राणायाम करिके शुद्ध होजाताहै=यह घीका चाटना जो कहि चुके सो केवल भोजन के अभिप्राय पर समझना कि सिर्फ घी चाटिके व्रत करै क्यों कि प्रायश्चित्त तपका रूप होतेहैं और तप उसीका नामहै जिससे देह को कुछ ताप संताप पहुँचै=और यह एकही प्राणायाम जो कहिचुके सो बीमार आदि असमर्थ के निमित्त में समझना क्योंकि सुमन्तुने स्नान विधि और तीन प्राणायाम कहे हैं=यदाह सुमन्तुः=अष्टगालमृगमहियाजाविक खरकरभनकुलमाज्जर मयिकाथप वककाकपुत्तयदष्टानामापोहियायादिस्नानं प्राणायामत्रयंचेति=अर्थात्—कृत्ता• गीदड• वनमृग• भैंसा• बकरा• मेडा• गदहा• हाथी• नेउरा• विल्ली• मुसाघूसि• अपकक जो बगुलाकी सुरतिके अनेक छोटी बटक से होतेहैं• कौआ• मनुष्य• इनसे काटे हुये पुरुषोंको आपोहिष्टा आदि ऋचाओंसे अभियेक स्नान और तीन प्राणायाम करने चाहिये=यहां तक जो प्रायश्चित्त कहा सो केवल तोंदीसे नीचे किसी अंगमे थोडा सा काटा जाय• अन्यथा किसी ऊपरले अंगमें काटे या तोंदीसे नीचे भी कुछ अच्छी तरह काटे तिनके प्रायश्चित्त कुछ बड़े हैं सो आगे अंगिरा के वचन से देखो ॥ ० ॥ यदाहांगिराः=ब्रह्मचारीशुनादष्टस्वयंहंसायंपिवेत्पयः गृहस्थप्रचेतद्विरावंतुष्काहंयोऽनिहोत्रवान् नाभेत्तुर्वंतुदष्टस्यतदेवद्विगुरांभवेत् स्यादेतत्रिगुरां वक्रेऽस्तके चचतुर्गुरां=अर्थात्—यदि ब्रह्मचारी कृत्ता आदि किसीसे काटा जाय सो तीन दिन स्नान प्राणायाम सहित ऐसा व्रत करै कि सांभको दूब पीकरेहै और जो गृहस्थ काटा जाय तो वह दोही दिन का व्रत करै और जो गृहस्थों में अग्नि होनी पुरुष काटा जाय तो एकही दिन दूब पीने का व्रत करै• परन्तु यह तीनों का नियम केवल उनी दशा में समझना जो नाभि से नीचे काटि खाय हो—किन्तु—नाभि से ऊपर काटि खाने मे येही सब तीनों को अपने अपने व्रत दुगुने करने चाहिये और

जो सुखमें कारिखायाहो तो वेही व्रत तिगुने करने चाहिये और जो साथेपर काटा गया हो तो वेही व्रत चौगुने करै तब शुद्धहोय ॥ ये प्रायश्चित्त ब्राह्मणा के निमित्त परंपरकहेगयेहैं इनमें से क्षत्रीको पौन और वैश्यको आधाप्रायश्चित्त देनाचाहिये और शूद्रको यदि कुत्ते आदि कोई जीव काटे तब उसके लिये वृहत्त अंगिरा मुनि का कहा विधान बतलाया जाय=यदाह वृहदांगिराः=शूद्राणांचोपवासेनशुद्धिर्दाने नवापुनः गांवाद्याद्वयंचैकंब्राह्मणायविशुद्धये=अर्थात्-शूद्रों की शुद्धि केवल उपवास या दान करने मात्र से होती है परन्तु जो उत्तम अङ्गों में काटा हो तो एक गाय या बैल का दान करै ॥ ० ॥ इनसे उपरालू जो एक सौ प्राणायाम का प्रायश्चित्त है सो उस दशा पर समझना कि सुख मस्तक आदि उत्तम अंग पर काटने से तार आदि मल ओठों से छुड़ गया हो=यदाह बशिशुः=ब्राह्मणास्तुशुनादद्योनदीं गत्वा सप्तदशम प्राणायामशतं कृत्वा घृतं प्राण्य विशुद्धयति=अर्थात्-ब्राह्मणा यदि उत्तम अंग में कुत्ता आदि से काटा जाय सो समुद्र में मिली हुई किसी दीर्घ नदी में जाकर स्नान करै तहां जलमें प्राणायामों का सैकरा पूरा करिके पुनि घी चाटिके विशुद्ध होता है ॥ ० ॥ अथस्त्रीणां विशेषः-स्त्रियां यदि कुत्ता आदि से काटी जाय तिनके लिये जुदे प्रायश्चित्त है=तदाह पराशरः=ब्राह्मणी तु शुनादद्यात्सम्बुकेन वृकेणावा उदितं ग्रह नक्षत्रं दृष्ट्वा सद्यः शुचिर्भवेत्=अर्थात्-ब्राह्मणी जो कुत्ता या शृगाल भेडहा आदि किसी से काटी जाय सो काटने के बादि आनेवाली रात्रिमें ग्रह नक्षत्रों को उदय हुये देखिके तत्काल शुद्ध होजाती है किन्तु उदयहोनेतक उपवास राखै=और=जो किसी प्रकार के व्रत आदि नियमों की साधनामें लगिरही हो तिसके लिये औरभी विशेषता उन्हीं ने कही है=तदाह पराशरः=विरात्रमेवोपवसेच्छुनादद्यात्सव्रतासघृतं यावकं भुंक्ता व्रत शेषं समापयेत्=अर्थात् जो व्रतों में लगी हुई कोई नारी कुत्ता आदि से काटी जाय सो बीचमें उसव्रतादिक नियमको थांभिकर तीनिदिनघीके साथ अलोना जोका दलिया खायके उपवास करै तिसपीछे अपनेवाकी नियमको समाप्त करै=एवं=रजस्वला स्त्रियों के निमित्तमें पुलस्त्य मुनिने विशेष नियम कहा है=यथाह पुलस्त्यः=रजस्वला यदा दद्यात् शुनाजम्बूकरासभैः पंचरात्रं निराहाशं पंचगव्येन शुद्धयति ऊर्ध्वन्तु द्विशरांजाभेर्बक्रेतु त्रिशरान्तया चतुर्गुणां स्मृतं सार्धं दष्टेऽन्यत्राप्तुर्भवेत्=अर्थात्-रजस्वला यदि कुत्ता गीदड़ गदहा आदि से काटी जाय तो वह काटनेके दिनसे लेकर पांच रात्रि तक निराहार व्रत करती और पंचगव्यको लेती हुई रहिकर शुद्ध होती है-परन्तु जो नाभि से ऊपरले अंग में काटी जाय सो इससे दूना दश दिनका व्रत करै और मुहमें जो

काठी जाय सो तिगुना किन्तु पखवारा भर व्रत करै और मूड़ पर काठी जाय सो चौगुना बीस दिन का व्रत करै तब शुद्ध होय • रजस्वलासे अन्यत्र कोई साधारण स्त्री जो काठीजाय सो केवल स्नानसे भी शुद्ध होसक्ती है (रजस्वला स्त्रियों के नियम बहुतबड़े हैं तिनको वैद्यक शास्त्र भावप्रकाश आदि बड़े ग्रन्थोंमें देखौ उन्हीं नियमों के हेतुसे यहां भी उसके लिये बड़े प्रायश्चित्त कहे गये हैं कि ऐसे प्रायश्चित्तों से गरीरकी शुद्धि उसकी न करी जाय तौ फिर कुत्ते और चराडाल आदि के स्थाव लक्षणा वाली सन्तान पैदा होगी ॥

पुरुषेष्वपि विशेषः—जहां कुत्ता आदि ने निघट काटा तौ न होय पर केवल गरीरको सूंघा या चाटलियाहो तिसकेमध्ये शात्तातपने छोटा प्रायश्चित्त कहा है =यथाहशात्तातपः=शुनाशात्तावलीढस्य नखैर्विलिखितस्यच अङ्घ्रिःप्रक्षालनंशौचम-
रिननाचोपचूलनम्=अर्थात्—कुत्ताविल्लीआदिने देहकोसूंघा या चाटाहो या नख पत्रों से खरोचिदिया हो तिसकेलिये जलसे धोयडारना और पीछेसे आंचमें सेकिडारना यही शौच रूपी प्रायश्चित्त है ॥ ० ॥ जहां कहीं कुत्ता आदि के काटने नघोटने से घाव होजाय अथवा हथियार आदि और ही किसी चीटसे घाव होके पक जाय तिसमें राध पड़जाने से कीड़े भी परें तिसके वावत अनु ने प्रायश्चित्त विशेष कहा है =यथाहमनुः=ब्राह्मणास्यत्रसाद्वारे पूयशोषात्सम्भवे कृमिरुत्पद्यतेयस्य प्रायश्चित्तंक्रयन्भवेत् गवांसूवपुरीथेताविसन्ध्यंक्षानमाचरेत् त्रिरात्रंपंचगव्याशीत्वधोना भ्याद्विशुध्यति नाभिकंठांतरोद्भूते त्रसोचोत्पद्यतेकृमिः यद्द्वारात्रंतुड्यहंपंचाव्याशन सितिस्मृतम्=अर्थात्—जिस ब्राह्मणाके घावके द्वारा रक्त राध पीव होजाने में कीरी पैदा होय तिसका प्रायश्चित्त कैसे होय (घावपूरि जाने के बादि) गौओं के मूत्र और गोबर से तीन दिन तक चिकान स्नान किया करै और पंचगव्य मिलाइ के पीया करै तौ उस दशा में शद्धि होजायगी कि जिसके नाभि से निचले अंगों में राध कीड़े परे हो • अन्यथा जिसके तोंदी से गले तक बीचके घड में कहीं परेहो तौ कृमिके परने वावत छः दिन और बिना कृमि के राध हो जाने वावत तीनही दिन पंचगव्यका पीना आदि सब करै =इस व्यवस्थाने इतना भेद विशेष है कि जिसके कुत्ता आदि किसीके काटनेसे घाव होकर कृमिपड़े हों सोतो काटने मात्रके निमित्त का प्रायश्चित्तपहिले करिको तिसकेबादिराध और कृमिके मध्येअथोक्तप्रायश्चित्त को भी करै • परजिसके केवल दोट्यादिबड़ेहथियारसे घावहोकरपीव याकृमिपरें हों सो केवल अथोक्त प्रायश्चित्त करै जो तीन दिन पंचगव्य पीना आदि कहा ॥ ॥

ये प्रायश्चित्त भी ब्राह्मणोंके निमित्तपर कहेगये तिससे ब्राह्मणोंको पूरंपूर और सत्री को पौना और वैश्यको आधा और शूद्रको चौथाई मात्रदेना चाहिये यही इसमें न्याय का स्वरूप है—इतिश्चादिदृश्यप्रायश्चित्तानि ॥ इस परिच्छेद में कुत्ता कौआ बानर गदहा आदिसे केवल काटि खाने या चोंच पंजासे न घोंटिजाने का प्रसंग है=अन्यथा ब्राह्मण आदि तीन वर्गोंको नैतिक शरीर शुद्धिके प्रायश्चित्त चौथे परिच्छेद में सर्वसामान्य वर्गान होचुके तही तीसरे मूलप्रलोक और उसीकी अधिकोक्तिमें अच्छी तरह देखो कि सब तरहकी अशुद्ध वा भलीन चीजों के हुइजाने तथा रजस्वला नारी और चंडाल आदि अधम अनुष्योंको हुइजाने तथा कौआ घील्ह गीव चिमगादर आदि और कुत्ता बिल्ली गर्दभ ऊँट खुअर आदि अशुचि जीवों के हुइजाने मात्र के छोटे छोटे प्रायश्चित्त हैं जिनसे नित्यंप्रति शरीर शुद्धि बनी रहि सक्ती है ॥ २७७ ॥

इतिश्चादिदृश्य प्रायश्चित्तानि ॥

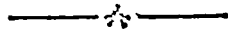
इतिस्थावरहिंसादि प्रकरणां ॥

(इस प्रकरणा में पचपन ५५ और छगपन ५६ के दोही परिच्छेद हैं)

ऊपरले परिच्छेदमें काटिखानेका चर्चाया जिससे शरीर की एक वात अर्थात् (त्वचा) खाल कटिजाती है और उसीसे दूसरी वात रक्त और तीसरी वात मांस और चौथी वात मेदा और पाँचवीं वात हाड और छठी वात भज्जातक विरलेधाव से कटिजाती या गालिके रावि होजाती है तभी कीड परते हैं यह सब उसीके ध्वन्यर्थ में वर्णन होगया अर्थात् जो रावि और कीरा परनेके प्रायश्चित्त कहेगये सो सब इन्हीं बातोंकी हानिपर संसक्तने—तहां एक सबसे अन्त का सातवां वात शुद्ध वीर्य है तिसकी हानिका प्रायश्चित्त अगिले परिच्छेद में जाकर सब से जुदा कहा जायगा क्योंकि उसकी हानि भी जुदे प्रकारोंसे होती है कुत्ता काटने आदिके द्वारा नहीं होती ॥

अथवीर्यच्छेदनाद्युपपातक प्रायश्चित्तप्रकाशकोष्यं

पारच्छेदेः सप्तपचाशत्तमः (५७)



इस परिच्छेदमें उन प्रायश्चित्तोंका स्वस्वग कहा जायगा जो देहका सातवां वातुशुक्र वीर्य किसी तरह से बिगाड़ि देनेमें होते हैं या जलमें गूह छाया देखि लेनेपर या कोई अशुचि वस्तु देखि लेनेपर या लिङ्गित उपजी वन या नास्तिकता खडोकरने पर प्रायश्चित्त कराये जातेहैं ॥

(वीर्यपातप्रायश्चित्तं)

यन्मेघरेतइत्याभ्यांस्फुन्नरेतोऽभिमंलयेत् स्तनान्तरंभ्रुवोर्मध्येतेनानामिकयास्पृशेत् २७८ ॥

अर्थः—(यन्मेघरेतः) इत्यादि इन दो संज्ञों से गिरे हुये रेतसको अभिमन्वित करे उस अभिमन्वित क्रियेसे अनामिका से लेकर स्तनों के बीच और दोनों भोंहके बीच स्पर्श करे=अर्थात्—मगुप्यको ब्रह्मचर्यसे रहना उचितहै कि देहके वीर्यको हानि न होने देवे यद्यपि शृङ्खली होय जो भार्याके सम्भोग बिना वीर्यको निरर्थक न गिरावे। इसपर भी कदाचित् कामदेवकी प्रवृत्तता अपने हठसे या स्वप्न आदि और ही किसी दशासे वीर्यपात होजाय तब यह रक्त प्रकारका उपातक आखूह होताहै तिसकी शुद्धिसे निमित्त यह प्रायश्चित्तहै कि—(तन्मेघरेतःपृथिवीं० अस्कांपुनर्मांसेत्विन्द्रिय) इन दो लक्षणाओं का लक्षण जैसा वेदोक्त संज्ञोंमें उपस्थितहै तैसा दोनों को पहिचान अपने गिरेहुये रेतसवीर्यको तत्कारही अभिमन्वित करे फिर उससे छोटीछगुनियां दो पावसकी मनाजिना डंठरी से निजदिग्भाव लेकर संज्ञोंको पहिचतेहुये हृदयमें निभितकी तरह लजावे और लयिके नीचे दोनों भ्रुवुकीके बीचमें छुआवे तब पीछे उनप्रायश्चित्तक्रिया जो उचितकीश्रुति की तत्र उपातकसे शब्दहोताहै २७८ ॥

आदि में चलता है तिससे अंगूठा और अनामिका दोनों की चुस्की बुद्धिस्य बनाकर हृदय आदि में हुआनी किंतु वीर्य को न छूना चाहिये (किन्तु मूल में अंगुष्ठ शब्द जोड़ने से एक अक्षर बढिकर छन्दोभंग होजाता तिससे अंगुष्ठको तेन शब्दही से निर्देशाक्रिया होगी यह तर्कना खडी करी है) सो यह अर्थ असत् है क्योंकि बुद्धि के भीतर कोई छिपाहुआ अंगूठा कहीं नहींदेखा सुनाहै बल्कि यह प्रत्यक्ष दूखराहै कि जो शब्द उसके पास है तिसको छोडिके अर्थ से बुद्धिस्य अंगूठे को लाकर उसमें जो डूँ—इसकेऊपर तर्कशास्त्रमें यहमसल प्रसिद्धहै कि (गम्यमानस्यचार्यस्यनैबट्टंविशेषराम शब्दांतरैर्विभक्त्यावाधुसोऽयंज्वलतीतिवत्) जिसअर्थकी प्राप्तिहोय तिसके विशेषरामको नहींदेखा शब्दोंके अंतरसे यद्वा विभक्तिसेही कहिदिया सो उस न्याय केतुल्य ठहिरताहै कि बिना प्रसारणोंके धुआँ जलताहै कहिदियाजाय—विज्ञानेश्वर कहिते हैं कि अशुचि होने के हेतु से रेतस् को छूने की अयोग्यता नहीं सिद्धहोती है क्योंकि जो रेतस् को अशुद्ध माना तो शरीर भी उसकाल में अशुद्ध ही होता है तो फिर छूने से क्या परहेज् तिसपर यह कि प्रायश्चित्त रूपी बिधान क्रिया गया और मंत्रों के पढ़ने की आज्ञा ठहिराई तोफिर छूनेमें अयोग्यता कहां रही बल्कि योग्यता ठहरी० इसका भी दृष्टांत है कि जैसे सुरा पीने वाला उसके पीने से पति त होता है फिर भी प्रायश्चित्त के निमित्त पर गरम करिके वही सुरा पिलानी कहिचुके हैं सुरापान के प्रायश्चित्तों वाले प्रकरणमें देखौ० तिससे वही अर्थ ठीक है ॥ ० ॥ यह प्रायश्चित्त जो कहिचुके सो केवल गृहस्थको उस दशा में समझना कि जहां इच्छा क्रिये बिना निरर्थक वीर्यका पात होय० ब्रह्मचारीके लिये जागते सोते दोनों दशा मध्ये बडे प्रायश्चित्त आगे आबैगे—और—अनु का यह वचन है कि=गृहस्थःकामतःकुर्याद्वैतसः स्कंदनंभुविसहस्रंतुजपेह व्याःप्रासायासैस्त्रिभिःसहेति० तत्कालकारविषयं=अर्थात्—गृहस्थी पुरुष यदि इच्छा से वीर्य का पात धरती पर करे सो तीन प्रासायामों सहित गायत्री के हजार मंत्र जपे—यह वचन खुलासा है किजिसने इच्छासे चाहिकर वीर्यपात कियाहो सोयह प्रायश्चित्त करे ॥२७४ ॥

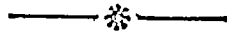
(जलांतःप्रतिविम्बदर्शनादिप्रायश्चित्तं)

मयितेजइतिच्छायांस्वांष्टुंगतांजपेत् । तावितीजशुचौदृष्टेचापत्येनानृतेऽपिच २७५ ॥

अर्थः—जलमें पहुंची अपनी छाया (सुखकाप्रतिविम्बआदि) देखिके नयितेज इन्द्रिय० इस वेदोक्तपूरे मंत्रको (यथाप्रति स्वसे आदिलेकर एक एक) उनीसमय

अथवीर्यहानाद्युपपातक प्रायश्चित्तप्रकाशकोष्यं

पारच्छेदेः सप्तपचाशतमः (५७)



इस परिच्छेदमें उन प्रायश्चित्तोंका स्वरूप कहा जायगा जो देहका सातवां धातु शुक्र वीर्य किसी तरह से बिगाड़ि देनेमें होते हैं या जलमें घुह छा या देखि लेनेपर या कोई अशुचि वस्तु देखि लेनेपर या लिहित उपजीवन या नास्तिकता खडोकरने पर प्रायश्चित्त कराये जातेहैं ॥

(वीर्यपातप्रायश्चित्तं)

यन्मेघरेतइत्याभ्यांस्कन्नरेतोऽभिमंत्रयेत् स्तनान्तरंभ्रुवोर्भ्रुव्येतेनानामिकयास्पृशेत् २७८ ॥

अर्थः—(यन्मेघरेतः) इत्यादि इन दो संज्ञों से गिरे हुये रेतसको अभिमंत्रित करै उस अभिमंत्रित कियेसे अनामिका से लेकर स्तनों के बीच और दोनों भोंहके बीच स्पर्श करै=अर्थात्—मनुष्यको ब्रह्मचर्यसे रहना उचितहै कि देहके वीर्यकी हानि न होने देवे यद्वा गृहस्थी होय सो भार्याके सम्भोग बिना वीर्यको निरर्थक न गिरावे। इसपर भी कदाचित् कामदेवकी प्रवृत्तता अपने हठसे या स्वप्न आदि और ही किसी दयामे वीर्यपात होजाय तत्र यह एक प्रकारका उपघातक आरूढ होताहै तिसकी शुद्धिके निमित्त यह प्रायश्चित्तहै कि—(तन्मेघरेतःपृथिवीं० अहकांपुनसमैत्विन्द्रिय) इन दो ऋचाओं का स्वरूप जैसा वेदोक्त संज्ञोंमें उपस्थितहै तैसा दोनों को पढ़िकर अपने गिरेहुये रेतस्वीर्यको तत्कालही अभिमंत्रित करै फिर सबसे छोटीछगुनियां के पासवाली अनामिका उँसरी से किचिन्मात्र लेकर संज्ञोंको पढ़तेहुये हृदयमे त्रिभूतिकी तरह लगावै और जायके नीचे दोनों शुकुटीके बीचमें छुआवै तिस पीछे कानआदि शौचक्रिया जो उचितहोय सो करै तत्र इसउपपातकसे शुद्धहोताहै २७८ ॥

२७८ अधिज्ञोक्तिः—अभिहितताकराकार विज्ञानेचर कहतेहैं कि मूल प्रलोक में ठीक ठीक अर्थ यही है जो लिखा गया परन्तु गिरले टीका कारणे यह तात्पर्य मानिकर कि गिरा हुआ वीर्य फिर घुना न चाहिये क्योंकि अशुचि होजाता है तिससे इस अरसी अर्थको छोड़िके और ही अर्थ लगायाहै कि—मूलमें लेन घटसे जगूदा जान कोकि बहुधा अनामिका के पास झगूदा भी कुछ उठाने चुकती भरने

में चलता है तिससे अंगूठा और अनामिका दोनों की चुस्की बुद्धिस्य बनाकर आदि में हुआनी किंतु वीर्य को न छूना चाहिये (किन्तु मूल में अंगुष्ठ शब्द से एक अक्षर बढ़िकर छन्दोभंग होजाता तिससे अंगुष्ठको तेन शब्दही से नि- क्रया होगा यह तर्कना खड़ी करी है) सो यह अर्थ असत्त है क्योंकि बुद्धि के कोई छिपाहुआ अंगूठा कहीं नहींदेखा सुनाहै बल्कि यह प्रत्यक्ष दूखराहै कि शब्द उसके पास है तिसको छोड़िके अर्थ से बुद्धिस्य अंगूठे को लाकर उसमें जो इसकोऊपर तर्कशास्त्रमें यहनसल प्रसिद्धहै कि (गम्यमानस्य चार्थस्य नैव दृष्टं वि- तात शब्दांतरैर्विभक्त्या बाधसोऽयं उच्यते तिवत्) जिसअर्थकी प्राप्तिहोय तिसके घणाको नहींदेखा शब्दोंके अंतरसे यद्वा विभक्तिसेही कहिदिया सो उस न्याय स्य ठहिरताहै कि बिना प्रमाणांके भुआँ जलताहै कहिदियाजाय—विज्ञानेश्वर ते हैं कि अशुचि होने के हेतु से रेतस् को छूने की अयोग्यता नहीं सिद्धहोती योकि जो रेतस् को अशुद्ध माना तो शरीर भी उसकाल में अशुद्ध ही होता है फिर छूने से क्या परहेज् तिसपर यह कि प्रायश्चित्त रूपी बिधान किया गया मंत्रों के पढ़ने की आज्ञा ठहिराई तोफिर छूनेमें अयोग्यता कहां रही बल्कि यता ठहरी० इसका भी दृष्टांत है कि जैसे सुरा पीने वाला उसके पीने से पति जाता है फिर भी प्रायश्चित्त के निमित्त पर गरम करिके वही सुरा—पिलानी हचुके हैं सुरापान के प्रायश्चित्तों वाले प्रकरणमें देखौ० तिससे वही अर्थ ठीक ॥ यह प्रायश्चित्त जो कहिचुके सो केवल गृहस्थको उस दशा में समझना जहां इच्छा किये बिना निरर्थक वीर्यका पात होय० ब्रह्मचारीके लिये जागते में दोनों दशा मध्ये बड़े प्रायश्चित्त आगे आर्वीये—और—अनु का यह वचन है =गृहस्थःकासतःकुर्यादितसः रुक्मं दनं भुवि सहस्रं तु जपेद्देव्याः प्रासायासैस्त्रिभिः सहेति० कानकारविषयं=अर्थात्—गृहस्थो पुरुष यदि इच्छा से वीर्य का पात धरती करै यो तीन प्रासायासों सहित गायत्री के हजार मंत्र जपे—यह वचन खुलासा केकिजबने इच्छासे चाहिकर वीर्यपात कियाहो सोयह प्रायश्चित्त करै ॥२७४॥

(जलांतःप्रतिविम्बदर्शनादिप्रायश्चित्तं)

मयित्तेजइतिच्छायांस्वां दृष्ट्वांगुगतां जपेत् । तावितीजशुचौदृष्टेचापल्येनानृतेऽपि च २७९ ॥
 अर्थः—जलमें पहुंची छाया (मुखकाप्रतिविम्बआदि) देखिके० मयित्तेज
 नेत्रयं० इस वेदोक्तपूरे मंत्रको (यथाशक्ति हस्तसे आदिलेकर कुछ कुछ) उसीसमय

जपिडारौअशुचि देखने में सावित्रीजपे और चपलतासे झूठ बोलि के भी=अर्थात्-
 किसी अपवित्र चीज वा दिक्कानेका दर्शन अचानक होजाय तौ अपने स्थानपर आ-
 कर आसन विछाने आदि विधिके साथ बैठकर सविता देवता सूर्यनारायण की
 ऋचा (तत्पवित्रुःइत्यादि) एकमालाजपे तथा इसी गायत्रीको वह पुरुष जपे जिसने
 हाथी दूदा आदि की चपलता में झूठ बहुत बोला हो (इसका यह तात्पर्य है कि
 हाथी आदिके बिना अकस्मात् झूठ जिसने बोलाहो तिसको इससे बड़ा प्रायश्चित्त
 चाहिये और जिसने किसी सासिलेपर असत्य बोलाहो तिसके बहुत बड़े प्रायश्चित्त
 हैं सुरापानवाले प्रकरणा में कर्हिचुके और बड़ापनका रूपदेखौ२२६के प्रलोक वा
 उसीकी अधिकोक्ति में ॥ २७६ ॥

२७६ अधिकोक्तिः—यहव्यवस्था जो कहीगई सो ऐसी दशापर समझनी कि
 जहाँ जलमें छाया और अशुचिस्थान वा वस्तु देखने या हाथी आदिमें झूठ बोलने
 का बचाव होसके हुये न किया हो अन्यथा अपने प्रयत्न से बचाव करते हुये भी
 बचाव न होसका हो तिसकेलिये अशुक्त अनुबचनके अनुसार केवल आचमन क-
 रना सूचित होताहै=यदाहमनुः=सुप्त्वाभुक्त्वाचक्षुत्वाचनिष्ठीव्याध्यनृतानिचपीत्वा
 २७पो२७येयनालस्यआचामेत्प्रयतो२पिसन्=अर्थात्—सोइके•कुछ सुली गांडा आदि
 खाइके•छींक आजानेसे• खँखार घूकनेसे• बिनाचाही लाचारी की असत्य बोलने
 से•कोई पतरीचीज रस दूध आदिजल पर्यंत पीनेसे•पढ़ना आदि पाठ करनेसे• इन
 सबसे जब निपटै तभी आचमन अर्थात् अच्छीतरह कुला करै यही प्रायश्चित्त है=
 इसके सिवाय जो संवर्तका वचन है कि=सुतेनिष्ठीवनेचैवदंतप्रिलयेत्तया२नृते पति
 तानांचसंवादेदिसिपांयवसांश्पृशेत्=अर्थात्—छींकनेपर•घूकनेपर•दाँतमें कुछलगाइने
 पर•तथा असत्य के सुननेपर•पतितों के साथ वात्त कर्हिनेपर• दाहिनाकान अपना
 स्पर्श करडारै—सो यह कानका छूनामात्र किसी अतिशय थोड़े प्रयोजनोंपर अथवा
 जहाँ निपट जलकी प्राप्ति न होसके तहाँपर समझना कि अवलाचारी में और क्या
 होसता ॥ २७६ ॥

योगीश्वरने२३६ दोगैछतीस मूलश्लोक में सजी वैश्य शूद्र और स्त्रियोंका वव
 गिनती क्रियेके बाद (निंदितायोपजीवन और नास्तिक्य) येदोनो उपपातक दशाये
 सं तिनका भी प्रायश्चित्त इसीस्थलपर क्रमसे कर्हिना चाहिये सो लिखते हैं ॥

निन्दितार्थोप जीवनके अर्थमें स्त्री वा पुरुष आदिका बेंचना भी समझना ॥

(निन्दितार्थोपजीवनस्यनास्तिक्यस्यचप्रायश्चित्तं)

इन दोनोका मुख्यस्वरूप २३ ईं सूत्रप्रलोक में देखौ परन्तु यहाँपर नास्तिक शब्द से भी वेदकी निन्दा करनेके द्वारा उपजीवन ठहिरायागया है—इनके प्रायश्चित्तयद्यपि योगीश्वरने जुदेनहीं कहे तथापि २६५ दोसौपैसठि सूत्रलोक और उसी की अधिकोक्ति में योगीश्वर और मनुके कहे सामान्य उपपातकोंवाले प्रायश्चित्त जो ४४के परिच्छेद में बरान होचुके हैं वेही सब इनकेमध्ये दोषीकी जाति और शक्ति गुरा दोषकी तौलके अनुकूप यथायोग्य समझलेना—परन्तु—बशिष्ठने इन दोनोकी अपेक्षापरजुदे प्रायश्चित्तभीदर्शायेहैं=यथाहर्वाशयः=नास्तिकःकच्छुद्धादशरात्रंवरि स्वाविरमेन्नास्तिक्यात् नास्तिकवृत्तिस्त्वतिकच्छुमिति=अर्थात्—नास्तिकताकीवात चीतकरनेवाला बारहदिन कच्छुव्रत करिके नास्तिकताकी बातोंसे हाथखींचै और जिसने उसी नास्तिकता से जीवनकी वृत्ति खड़ी करी होय सो अति कच्छु करिके उस वृत्तिसे हाथ खींचै—सो यह प्रायश्चित्त भी सकहीबार नास्तिकता करनेवालेपर पाछहैअर्थात्४४परिच्छेदवाले बड़े प्रायश्चित्त उसकोलिये समझना जिसनेनास्तिकता का बहुत दिन अभ्यास किया हो=इसके सिवाय जिसने बड़ी दृढता के साथ बहुतकालतक नास्तिकता सेवनकरी होय तिसकोलिये आगेशंखऔर हारीतकेवचन देखौ ॥ ० ॥ यदाह शंखः=नास्तिकोनास्तिकवृत्तिः कृतघ्नःकूटव्यवहारीमिथ्याभिगं सो इत्येतेपंचसंवत्सरं ब्राह्मणागृहेभैक्ष्यं चरेयुः=हारीतेनतु=नास्तिकोनास्तिकवृत्तिरितिप्रक्रम्य प्रंचतापोऽभ्रावकाशजलशयनान्यनुत्तिष्ठेयुरिति शोप्सवर्थाहेसंतेष्विति=अर्थात्—शंखने यह कहा है कि० नास्तिक० नास्तिकवृत्तिवान्० कृतघ्न जो किनीके क्रिये उपकार को नैहै० कूट व्यवहारी जो खानी पानी चीजों में मितावटकरै० मिथ्याभिगंभी जो सच्चे पर झूठा पाप लगावै० ये पाँचौ सकवर्य भर ब्राह्मण के घरोंमें भीख नंगि खाया करै और सच्चे नियम सार्धे तब शूद्र होय=हारीत नेभी नास्तिक और नास्तिक छुल्ल आदिके नाम धरिके उन सबकोलिये तीनि भांति से तपस्यारूपी प्रायश्चित्त कहे ह कि० शीघ्रकाल में पंचारिन तपे और बर्याकाल में बरसते हुये मेघों को शूने आकाश के नीचे बैठिके खडपर झेलै और हेमंत शीत ऋतु में जलाशय की प्रवाह धारा में बैठिके ध्यान करै=शंख और हारीत दोनों का कथन मिलाइ के यह तात्पर्य ठहिरा कि सक सालभर ऐज तप करते हुये ब्राह्मणों के

घर से भिक्षा लेकर भोजन किया करें तब शुद्ध होयँ सो यह इतना बड़ा कठिन प्रायश्चित्त केवल उनके लिये है कि जिन्होंने नास्तिकता आदि बड़ी दृढताके साथ बहुत कालतक अभ्यास किया है ॥२७६॥ इसी दोस्रो उनासीवाली ऊपरली अवि-
कौक्तिका प्रोय पाठ यह भी है केवल विषय जुदा होनेसे स्थापना भेदाकियागया है ॥

योगीश्वर ने २३६ मूल श्लोक में नास्तिक्य से अनंतर (व्रतलोप) इस कर्म के नामसे अवकीर्णी ब्रह्मचारी का उपपातक दर्शाया था उसका प्रायश्चित्त भी योगीश्वर आपही अगिले श्लोक से प्रकाश करते हैं ॥

अथ अवकीर्णं ब्रह्मचार्यादीनां शुक्लहानौ प्रायश्चित्त

प्रकाशकोऽयं परिच्छेदः अष्टपंचाशत्तमः (५८)

—*—

इस परिच्छेद में उनके प्रायश्चित्त कहे जायँगे जो ब्रह्मचारी आदि अवकीर्णी होगये हों अर्थात् मुख्य तो अवकीर्णी ब्रह्मचारी कहा गया है परन्तु उसके उपलक्षणासे वानप्रस्थ और संन्यासी आदि यतीपुरुषोंके प्रायश्चित्त भी वरान होतें क्योंकि वीर्य का थाभनारूपी ब्रह्मचर्य इन सबही के होता है—अथवा इनमेंसे कोई अपना आयु छोड़ि भागै या घर बसावै—यद्वा शास्त्रीय सरसाकेधर्मोंसे भागै तिसके प्रायश्चित्त है—अथवा सरने के प्रसंगमें अशास्त्रीय सरसा पर गृहस्थी आदि कोईभी उपस्थित होय या निपट सरजाय तिसके भी ॥

(ब्रह्मचारिणोऽवकीर्णत्वस्य प्रायश्चित्तं)

अवकीर्णीभवेद्गत्वा ब्रह्मचारीतु योपितम् । गर्वभंपशुमालभ्य नैऋतं साविशुद्धयति २८०

अर्थः—ब्रह्मचारी योपिता पात्र जाय के अवकीर्णी होय० सो नैऋत गत्वा पात्र को मालम्भन करिके शुद्ध होता है—अर्थात्—ब्रह्मचारी दो तरह का होता है एक उपनृत्वासा विद्यार्थी दूसरा नैष्टिक जो धरा के जिने ब्रह्मचर्य बना राखे यह आचार जयादा परिपाटी से उसके नियमों सहित वरान हो चुका तहां देखो—यहां जो कोईना ब्रह्मचारी उन्हीं नियमोंकर नसा करै तिसने व्रत का लोप किया करता है उसका एक निन्दा के साथ जुदा नाम अवकीर्णी वरा गया है क्योंकि मन्म

प्रधान व्रत वीर्य धातु का रोकना है उस धातु का निकासि डारना अवकीर्णा (वि-
घोरि देना खिंडाइ देना फौलाइ देना यही अवकीर्णा) कहाता है जिसने धातु का
अवकीर्णा किया सो अवकीर्णा ठहिरा इसीलिये योगीश्वर ने मूल श्लोक में कहा
है कि—ब्रह्मचारी होके यदि किसी भी योषिता नारी में समनकरै सो अवकीर्णा
होता है वह निऋति देवता के निमित्त गदहा पशु का बलिदान करिके उसका
नैऋत नाम याग करै तब शुद्ध होय ॥ २८० ॥

२८० अघिकोक्तिः—गदहा नामसेही पशु समझा जाता फिर उसके साथ मूल में
पशुद्वयों कहागया० इसका यह तात्पर्य है कि (अथपशुकल्पइत्याच्यलायनादिगृह्योक्त
पशुवर्षप्राप्त्यर्थ) आच्यलायन आदि के गृह्यसूत्र में इसी रीति से कहागया है कि
अथपशुकल्पः जहां इतना लिखा देखा और समझागया कि गर्दभयाग करनाचा-
हिये सो उस प्रकार के पशुवर्ष की पहुंच समझी जानेके लिये दुवारा पशु शब्द
दिया गया है ॥ ० ॥ गर्दभयाग जो करना बताया सो वनके समीप चौराहेपर लौकिक
अग्नि से करना चाहिये क्योंकि वशिष्ठ ने साफ साफ यही कहा है कि=ब्रह्मचारी
स्त्रियमुपेयादरराये चतुष्पथे लौकिकेऽग्नौरसो देवतंगर्दभंपशुमालभेतेति वशिष्ठः=
अर्थात्ब्रह्मचारी यदि स्त्रीके पासजाय तो वनमें चौराहेपर लौकिक अग्निमें राक्षस
देवके निमित्त गदहा पशु को होम करै (क्योंकि गदहा पशु का देवता राक्षसही
होते हैं वे उसी अपने पशु के सांससे प्रसन्न होते हैं उन्हीं राक्षसों का प्रसन्न करना
आवश्यक ठहिरा कि जिससे फिर आगे को अपनी राक्षसी प्रकृतिका अखर ब्रह्म-
चारी पर कभी न उतारें जिससे उसे स्त्री संगम की इच्छा उत्पन्न हीसक्ती हो० आलं-
भन वेदोक्त बध कहाता है उसी से फिर होम याग किया जाता है यह तात्पर्य
समझलेना) इसी याग में यह और विधान है कि राति में करना चाहिये और गदहा
सक आंखि वाला काना लेआना चाहिये=तदाइ मनुः=अवकीर्णांतुकासोनरासभेन
चतुष्पथे पाकयज्ञविधानेनयजेतनिऋतिनिशि=अर्थात्—मनुका यह बचन है कि
अवकीर्णा ब्रह्मचारी काने गदहासे चौराहेमें जाकर वहां रात्रिमें निऋति जो राक्षसों
का प्रधान अभिपति देवताहै तिसका यज्ञकरै पर कचे सांससे न करै किन्तु पाकयज्ञ
के विधान से करै जिन्हे निऋति अच्छेप्रसन्न होय ॥ ० ॥ पशुयज्ञका वाक्य न वनि
परै तो खीरहीसे होम करै यह शक्यता अनुक्तव्य है क्योंकि अग्निसे वशिष्ठ के बचन
से यहवात सिद्धहै=ग्रहाहवशिष्ठः=निऋतिवाचकनिर्वधेततस्थजुहुयात् कासाश्रवाहा
कासकानायस्वाहा निऋत्यैस्वाहारसोदेवताभ्यःस्वाहेति=अर्थात्—निऋतिपशुनहो

तौ विकल्प से निऋति के नामसे चरु खीरही बोवै किन्तु निऋति के नामसे होमै कि जैसे स्वाहांतचारक संव्र में लिखि दियेहैं तिनसे होमै ॥ ० ॥ श्रीमन्मिताक्षराकार कहितेहैं कि यह तपके बिना केवल यागमात्र कहा सो उसकेलिये समझना जो पर वश कहीं घिरा फँसा असमर्थ होते अवकीर्णा हुआहो. अन्यथा जो समर्थ ब्रह्मचारी अवकीर्णी हुआ होय तिसके लिये गौतम का कहा पशुयाग या चरुहोम तपस्या सहित उचित होगा=यदाह गौतमः=गर्दभेनावकीर्णीनिऋतिचतुष्पथेयजेत् तस्या जिन मर्ध्वबालंपरिधाय लोहितपात्रे सप्तगृहान् भैक्ष्यंचरेत्कर्मचक्षाराः संवत्सरेण श्राद्धतीति=अर्थात्-अवकीर्णी होजाय सो गदहा से निऋति देवको चौंराहे परपूत्रे किन्तु पूर्वाक्त रीति से होम करै फिर उस गर्दभ के बचेहुये पूरे चमड़ेको बालऊपर ही रखिकर पहिर ओढिके ताँबे के पात्र में सात घरों से अपना कर्म सुनातेहुये भिक्षा मांगाकरै तब एकपूरे वर्ष भरमें शुद्ध होता है=और उसके साथ त्रिकाल स्नान और एकही वार सायंकाल भोजन करने का नियम भी अशोक्त मनुके वचन से जोड़ना=यदाह मनुः=सतस्मिन्नेनसिप्राप्ते वसित्वागर्दभाजिनसु सप्तागारान्चरन्भैक्ष्यं स्वकर्मपरिकीर्तयन् तेभ्योलब्धेनभैक्ष्येणावर्तयन्नेककालिकसु उपस्पृशन्त्रियवरामन्वे नसविशुद्यति=अर्थात्-इस अवकीर्णा पापके प्राप्त होने में वह अवकीर्णी गदहाका मृगछाला ओढिके अपना कर्म सुनाते हुये सात घरोंसे भिक्षा मांगते उनसे जो कुछ मिलै उसी भिक्षा से एक समय भोजन का वर्तावा करतेहुये और हररोज त्रिकाल स्नान करते हुये एक वर्षसे विशुद्ध होता है (यह एक वर्ष की तपस्या वाला प्रायश्चित्त भी सिर्फ उसके लिये आवश्यक है जिसने किसी ऐसे अशोचिय ब्राह्मणाकी भार्या में संगम किया हो जो विद्या आदि किसी प्रतिष्ठा से विख्यात नहीं था या ऐसे किसी शोचिय वनियों की भार्या में संगम किया हो जो पहा गुना भगत वा औरही किसी प्रतिष्ठासे विख्यात वनियां हो) इसका तात्पर्य भी आगे देखा ॥०॥ जिस ब्रह्मचारी ने ऐसी कोई ब्राह्मणी या क्षत्राणी संगम करी हो कि जो स्त्रियां तिस अपनेही उत्तम गुणोंसे विख्यातहों अथवा यद्यपि स्त्रियां अपने गुणोंसे विख्यात नहीं परन्तु शोचिय ब्राह्मणाकी और शोचिय क्षत्री की भार्याहों तिनहींमें अवकीर्णा हुआहोतौ इस ब्रह्मचारी अवकीर्णी के लिये क्रमसे तीन वर्ष और दो वर्षका तप चाहिए चर्वाच तीर्तनियम उस ब्राह्मणी केसध्ये जो केवल अपने गुणोंसे विख्यात वा विख्यात पतिकी भार्या हो और दो वर्ष जब क्षत्राणीके सध्येजो केवल अपने गुणोंसे विख्यात वा विख्यात पति की भार्या हो. व्यवस्था ठीक यही है और इसके

सवतात्पर्य अगिले शांख और लिखितके एकहीवचनसे उत्पन्न होते हैं समुक्तो = यथाहतुः शांखलिखितौ = गुप्तायां वैश्यायाभवकीर्णाः संवत्सरत्रियवरासनुतियेत सत्रियायां द्वेवर्षे ब्राह्मण्यां त्रीणावर्षाणीति = अर्थात् - पर्बदार वनेनी में अवकीर्णा होय सो एक संवत् पर्यन्त त्रिकाल स्नान पर आरूढ होय एवं पर्दा में रहिनेवाली सवाराणी में अवकीर्णा हुआ होय सो दो वर्षभर त्रिकाल स्नान और पर्दावाली ब्राह्मणांमें अवकीर्णा हुआ हो सो तीन वर्ष भर त्रिकाल स्नानसाधै (त्रिकाल स्नानके साथ जो पशुयाग और भिक्षा आदि ऊपर कहिचुके सो सब इसमें भी समझि लेनी ॥ ० ॥ अंगिरा का यह वचन सबसे जुदा है कि = अवकीर्णानिमित्तन्तु ब्रह्महत्याव्रतंचरेत् चीरवासास्तुषड्मासांस्तथामुच्येत किंत्वयात् = अर्थात् - अवकीर्णा होजाने के निमित्त में भी ब्रह्महत्या के समान व्रत एक छमाही भर चीरवासा होकर (भोजपत्र आदि वृक्षोंके बकल पहिन कर) आचरै तव उस पापसे छूटै ॥ सो यह छमाही भी उसी प्रकार उसी विषय पर समझनी कि जिस विधिके साथ जिस विषय पर ऊपरले मनु गौतम आदि वचनों में एकवर्ष भर तप करना कहिचुके किन्तु भेद इतना है कि यह छमाहीवाला वर्षसे आधा व्रत उस दशामें करवाना कि जब कोई ब्रह्मचारी अपनी इच्छाके विना कुचाल स्त्री का मोहित किया हुआ लोभमें आकर अवकीर्णा हुआ हो और ऊपरले पूरे वर्षभर के प्रायश्चित्त उसके हैं कि जिसने संगम करनेका उद्योग आपही किया हो और उनसे पहिले जो मूलश्लोकसे आदि लेकर सिर्फ तप के विना पशुयागही करना कहिचुके सो उसके हैं कि जब कोई ब्रह्मचारी अपनी स्वाधीनता के विना कहीं धिरा फंसा परवश होकर अवकीर्णा होय ॥ ० ॥ जब कोई ब्रह्मचारी किसी वर्णाकी अत्यन्त स्वैरिणी में अवकीर्णा होजाय तव ये प्रायश्चित्त नहीं किन्तु छोटे प्रायश्चित्त हैं वे भी शांख लिखित दोनों भाइयोंने जुदे करिके कहे हैं = यथाहतुः शांख लिखितौ = स्वैरिण्यां तृषल्ल्याभवकीर्णाः सचैलस्नानमुदकुंभं दद्याद्ब्राह्मणाय • वैश्यायांचतुर्थकालाहारो ब्राह्मणान्भोजयेत् यवसभारंचगोभ्योदद्यात् • सत्रियायांविरात्रसुपोषितो घृतपात्रंदद्यात् • ब्राह्मण्यां षड्मासमुपोषितो गांचदद्यात् • गोष्ववकीर्णाः प्राजापत्यंचरेत् • संधायाभवकीर्णाः पलालभारंसीसभायकंचदद्यादिति = अर्थात् - तृयली शूद्रिनी जो स्वैरिणी होगई हो तिसमें ब्रह्मचारी जाकर अवकीर्णा हुआ होय सो सचैलस्नान करिके जलका भरा घट ब्राह्मणाको दानकरै इसीसे शुद्ध होजाता है • एवं स्वैरिणी वनेनीमें अवकीर्णा होजाय सो दिनभर उपवास करिके चौथे कालमें भोजन करै दूसरे दिन ब्राह्मणांको जिमावै और घासका एक भार (पलानां देसइत्तेनुभारमे

कंप्रकीर्तितं) अर्थात् वाजासु खंड आदिकी तौल में पल्ला जो तीन साठे तीन सन तक देशभेदसे प्रसिद्ध होता है तिसके अनुमान भर घास भी गौओंको देवै• एवं स्वैरिणी क्षत्रिया ठकुरानी में अवकीर्णा होजाय सो तीन दिन रातिका उपास करिके घोका भरा पूर्रापात्र दानकरै • एवं स्वैरिणी ब्राह्मणी में अवकीर्णा होजाय सो छे दिनका उपवास करिके गोदान भी करै किन्तु चकारके ध्वन्यर्थसे पहिले ब्राह्मणों को भोजन करावै तिस पीछे गोदान करै • एवं यदि कोई ब्रह्मचारी विद्यार्थी आदि जाकर गौओंकी योनिमें अवकीर्णा हुआ होय सो बारह दिनका प्राजापत्य व्रत आचरै तव शुद्धहोय • एवं यंढा नपुंसकी नारी कि जिसके योनिका आकार पूरा पूरा नहीं होता है कि जिसमें गर्भकी धारणा न होसकै इसीसे वह नारी भी यंढा अर्थात् हिजरी कहाती है तिसमें यदि कोई ब्रह्मचारी जाकर बिगड़ै सो एकभार सात्र दान या कोदोंका प्यार और एक भासाभर सीसा या रांगा दानकरै ॥ ० ॥ अवकीर्णी के प्रायश्चित्त जो कुछ मूलप्रलोकसे लेकर यहाँ तक वर्णान हुये सो सब तीनों वर्णों के ब्रह्मचारीको समान हैं अर्थात् एकसां समभिलेना चाहें ब्रह्मचारी ब्राह्मण या क्षत्री या वैश्यही क्यों न हो प्रायश्चित्त में न्युनाधिक भेद न होगा—इसका प्रमाण भी शांडिल्यमुनिका वचन है—यदाह शांडिल्यः=अवकीर्णीद्विजोराजा वैश्यश्चापि खरेणातु इप्द्वाभैक्ष्याग्निनित्यं शुद्धत्यवदात्समाहिताः=अर्थात्—अवकीर्णी ब्रह्मचारी चाहें विप्र या क्षत्री या वैश्य भी कोई हो सब खर पशु से यज्ञ करिके नित्य प्रति भिक्षा सांगि खायाकरै तौ समाहित रहिते एक वर्षभर में शुद्ध होतेहैं अर्थात् समाहित सावधानीसे न रहिकर वर्षके भीतर प्रायश्चित्तके बीचमें भी फिर किसी दिन अवकीर्णा होनेलगै तौ उस प्रायश्चित्त से भी शुद्ध न होगा (यहाँ तक तौ स्त्रीके संभोग से अवकीर्णा होने का चर्चा है अब आगे स्त्री के विना भी बिगडने का चर्चा होगा ॥ ० ॥ अथस्त्रीसंभोगविनापिवीर्यस्कंदनप्रायश्चित्तं—जब कोई ब्रह्मचारी स्त्री संगम के विना भी कामदेव की प्रबलता से राति या दिन में और सोते या जागते हुये वीर्य धातु को छोड़ै तिसके लिये वशिष्ठ ने केवल पूर्वोक्त यज्ञही करना कहा है—यदाह वशिष्ठः=एतदेवरेतसःप्रयत्नोत्सर्गोद्वास्वप्नेचव्रतातरेयुचैवमिति=अर्थात्—यही नैऋत याग जो पहिले प्रायश्चित्त में कहिचुके सो अंगों के उपाय से भी वीर्य की हानि करदेने में और दिन में और स्वप्न में भी वीर्य निकसिजाने पर करना • और व्रतान्तरों में भी इसी प्रकार अर्थात् कच्छु चांद्रायणादि व्रत प्रायश्चित्तों में जहाँ तहाँ ब्रह्मचर्य साधन करने को अतिदेश किये गये हैं उनके बीच

में भी यदि सोते वा जागते किसी दशा में वीर्य का अवकीर्ण होय तौभी पूर्वोक्त रीति से नैऋत यागही करै=परंतु=सोते समय अपनी इच्छाबिना देवयोगहीसे वीर्य गिर जाय तौ फिर उक्त नैऋत याग नहीं किंतु मनुका कहा प्रायश्चित्त करै=तदाह मनुः=स्वप्नेसित्काब्रह्मचारीद्विजःशुक्रमकामतः स्नानार्चार्कमर्चायत्त्रात्रिःपुनर्मासित्यु चजपेत्=अर्थात्—द्विजाती मात्र किसी वर्णाका ब्रह्मचारी स्वप्नेमें निज इच्छाके विना वीर्यको सींचिके प्रातःकाल स्नान करिके और सूर्यकी यथोक्त अर्चा करिके तीनि वार (पुनर्मास) इत्यादि ऋचा जपै• इसीसे शुद्ध होजाता है ॥ यहां तक ब्रह्मचारी का प्रसंग था अब नीचे वानप्रस्थ आदि जो ब्रह्मचर्य से रहिते हैं तिनका वर्णन किया जायगा=परन्तु ब्रह्मचारी अवकीर्णी होजाने के प्रायश्चित्त जो कुछ ऊपर लिखेगये सो सब उन स्त्रियों के संभोग में समझना जो गुरु की दाराओं से उपरालू अगम्याहों और उनसे भी उपरालू अगम्याहों जिनका चर्चा गुरुदाराके समान कहि कर २३१ दोसौ इकतीस मूलप्रलोकसे लेकर दोतीन अधिकोक्तों में वर्णन होचुका है—क्योंकि उन स्त्रियोंके भोग मध्ये बहुत बड़े प्रायश्चित्त हैं जो बारह वर्ष को आदि लेकर कई भाँति से दशायि गयेथे ब्रह्मचारीको भी उन स्त्रियोंके संगमसे वेही बहुत बड़े प्रायश्चित्त बल्कि उनसे भी दुगुने करने होंगे—क्योंकि बहुत बड़ा पाप जो बारह वर्ष आदिके व्रतोंसे शोधन होने योग्यहो सो इस छोटेसे अवकीर्णी वाले प्रायश्चित्त से मिटिजाना संभव नहींहै और यह भी नहीं कहिसक्ते हैं कि खास कर ब्रह्मचारी के लिये यही छोटासा प्रायश्चित्त कहागया है इससे बड़ा उसको कहीं भी न चाहिये—क्योंकि गृहस्थीसे उपरालू आश्रमोंको दुगुने आदि प्रायश्चित्तोंका अधिकार ब्रह्महत्याके प्रकरणमें दर्शित होचुका है—और यहभी नहीं कि ब्रह्मचारीको अगम्यागमनका प्रायश्चित्त जुदा करना चाहिये क्योंकि ब्रह्मचारी को स्त्रीमें अवकीर्ण होनेका प्रायश्चित्त अगम्यागमनके भीतरही समझा गया है इससे कि उसको सदा ब्रह्मचर्यसे रहना चाहिये ॥ २४० ॥ इसी अधिकोक्तिका वचा हुआ फाल्गु पाठ नीचे जुदा भी स्थापन किया जायगा ॥ २४० ॥

(अथवानप्रस्थादीनां ब्रह्मचर्यखंडने संन्यासादि व्रतभंगेच

ब्रह्मचारि प्रायश्चित्तातिदेशः)

वानप्रस्थके सब धर्म सातवें परिच्छेद में पैंतालिस मूलप्रलोकसे वर्णन होचुके हैं उसी वानप्रस्थ या संन्यासी यती आदि किसी और पूरे तपस्वीका ब्रह्मचर्य खंडित

हो जाय अर्थात् वीर्यका अवकीर्ण होजाय तहां उन्हीं सब रीतोंसे ब्रह्मचारी वाले प्रायश्चित्त करने होंगे कि जैसे कई भेदोंसे ऊपर वर्णान होचुके परन्तु इनको इह अधिकताके साथ करने होंगे=तदाह शांडिल्यः=वानप्रस्थोऽर्थात्प्रचैवस्कन्दनेसतिका मतः पराकत्रयसंयुक्तमवकीर्णव्रतंचरेत्=अर्थात्—वानप्रस्थ और यती संन्यासी और चणव के ध्वन्यर्थसे अन्य प्रकारके तपस्वी लोगभी कामदेवके (स्कन्दन में) खिँडि जाने में (चाहें स्त्री संभोग द्वारा या इसके बिनाही खिँडि जाने में) सर्वत्र सब तरफ का अवकीर्णी ब्रह्मचारी वाला व्रत ये भी आचरें पराकों के तीया सहित अर्थात् ब्रह्मचारीकी अपेक्षा इनको तीनि पराक व्रत फालतू करने चाहिये क्योंकि इनका दर्जा भी ब्रह्मचारीसे बडाहै—परन्तु पापकर्मकी व्यवस्था सब इनके लिये भी ऊपर की अधिकोक्ति में विचारना ॥ ० ॥ गार्हस्थ्यपरिग्रहे च—जब कोई संन्यासी (वा नैयिक ब्रह्मचारी) या वानप्रस्थ अपने संन्यास आदि आश्रमको छोडिकर भागेहुये गृहस्थी वनिजायँ तिनका प्रायश्चित्त भी संवर्तने प्रकाश किया है=यदाह संवर्तः=संन्यस्यदुर्मतिःकाश्चित्प्रत्यापत्तिंचरेद्यदि सकुर्यात्कच्छमश्रांतःयद् मासान्प्रत्यन्तर म=अर्थात्—जब कोई कुबुद्धी पहिले संन्यासीहोकर पीछे उसी छोडे हुये गृहस्थकी फिर प्रत्यापत्ति संग्रह करै तिसको यह चाहिये कि वह गृहस्थी में अश्रांतही किन्तु टिके यँभे बिनाही विद्याम लेनेसे पहिले छे महीने भर अनन्तर कच्छ व्रत साथै कि जिसके बीच कभी अन्तर न परने पावै तिससे शुद्ध होकर (अगिले पराशरके कहे जात कर्म आदि संस्कार करिके) फिर गृहस्थी में शामिल रहिसक्ता है=तथाच पराशरः=यःप्रत्यवसितोविप्रोप्रव्रज्यातोविनिर्गतः अनाशकोनितृत्तश्चगार्हस्थ्यंवेषि- कीर्थति सचरेत्वीर्याकच्छास्त्रावीर्याचांद्रायणा निच जातकर्मदिभिःसर्वैःसंस्कृतःगु- द्विभाणुयात्=अर्थात्—पराशर ने इस नियम को इस रीति से दृढ किया है कि- जो कोई विप्र संन्यासी होके संन्यास धर्म से निवृत्ति कर उस आश्रम से (प्रत्यव सित) गिर जाय या जिसने बहुत दिनों के लिये अनाशक निराहार व्रत धारण किये हों तिनको भौंक न सहिकर बीचही में लौटि पवै अर्थात् व्रत छोडि के आ- हार करने लगे इत्यादि कोई भ्रष्ट धर्मी संन्यासी आदि गृहस्थ आश्रम लेने की इच्छा करै सो पहिले तीनि कच्छ प्राजापत्य करै फिर तीनि चांद्रायणा करै (ये दोनों व्रत ऊर्ध्वोक्त संवर्त वाले ब्रह्मचारी कच्छके साथ विकल्पसे बदल किये जातके हैं अर्थात् उन सकही को करै या इन दोनों को करै) तिनपीछे जातकर्म आदि सब कर्मों से उनी तरफ संस्कार करावै कि जैसे व्रत का जन्म होने वादि किये जाते हैं

क्योंकि इसका भी यह नया जन्म है तिससे सब संस्कारों से शुद्ध होकर गृहस्थ में शामिल रहने योग्य होजायगा—यह लाचारी दर्जे का निर्वाह कहा गया है कि जिससे संसारी व्यवहार मात्र चल सके—अन्यथा—पारलौकिक फल भोग में यह पाप नहीं मिटता है इस बातका प्रमाणा भी वशिष्ठ का अग्रोक्त वचन है— यदाह वशिष्ठः (यस्नुप्रव्रजितो भूत्वा पुनः सेवेतमैथुनं यद्यिवर्यसहस्राणि विद्यायां जायते कृमिः) अर्थात्—जो कोई संन्यासी आदि होकर पीछे फिर मैथुन का जोड़ा सेवे वह परलोकों में साठ हजार वर्ष तक विद्या में कृमि का जन्म धरता है (इसके मध्ये २२६ दोसौ छब्बीस का मूल श्लोक भी देखौ)=यहां जो पराशर के वचन में केवल विप्र शब्द है सोभी अपनी प्रधानता से तीनों वर्गों का उपलक्षणा है क्योंकि इस व्यवस्था में ब्रह्मचारी के समान तीनों वर्गों के संन्यासी को प्रायश्चित्त एकसाँ हैं कुछ वर्गों के भेदसे न्यूनधिक नहीं किये जायेंगे यह समझि लेना ॥ इनको सिवाय कुछ ऐसे भी संन्यासी आदि भग्न व्रत होते हैं जो प्रायश्चित्त करिके भी गृहस्थी में शामिल करलेने योग्य नहीं होते तिनका वृत्तान्त आगे देखौ ॥ ० ॥ अथामरणा संन्यासिव्रतभंगस्य प्रायश्चित्तं=तदाहयमः= जलाग्न्युद्ध्वं धनभ्रष्टाः प्रव्रज्याऽनाशकच्युताः विषप्रपतनप्रायाः शस्त्रघातच्युताश्च ये नैवैते प्रत्यवसिताः सर्वलोकवर्हिष्कृताः चांद्रायणान् शुद्ध्यन्ति तप्तकच्छद्वयेन च=अर्थात्—जो कोई संन्यासी वानप्रस्थ आदि तपस्या किये पीछे अति बूढ़ा होजाने पर अथवा बीचहीमें किसी भयानक रोगशियलता आदि हेतुसे अपना देह त्यागि देनेका उपाय सोचिके जलमें डुबैया अग्निमें कूड़े या फाँसी फंदे में लटकै तहां भयभीत होकर प्राणों को न देसकै तिससे उसका व्रतही भ्रष्ट हो जाता है• एवं प्रव्रज्या नाम संन्यासका भेय लेकर निपट अनाशक व्रतरोपा होवै कि अन्नादि कुछ न खाकर तप करेंगे यदा केवल एकदो फलही खाकर सदा तप करेंगे ऐसे सदा के नियम छोडि भागने से भी व्रत का भंग होता है• अथवा अनाशक वह कि जिसने देह त्यागि देनेके निमित्त पर नियम लेकर आहार छोडि दिया हो फिर मरनेसे पहिले अन्न खाने लगा तौ यह भी अनाशकच्युत कहाता है• एवं जिन्होंने देह त्यागने की सत्य प्रतिज्ञा से विद्य खायी हो या ऊँचे पर्वत पर चढिके नीचे गिरने गये हों या वीरों की तीरन्दाजी आदि निशानों के बीचमें जा पहुँचे हों और प्राणों के भयसे भागि परें या विद्य खाने वादि उपायों से उलटीकर डारें या पर्वत से गिरे बिना उतरि आवें तौ ये सब के सब ऐसे हैं कि प्रायश्चित्त करने परभी (प्रत्यवसितानकार्याः) फिर गृहस्थ में शामिल करने योग्य नहीं किन्तु

सब लोगों से बाहर किये जाते हैं• तथापि व्रत भंग होजाने के दोषमें यह प्रायश्चित्त उनको आवश्यक है कि एक चांद्रायण और दो तप्तकृच्छ्र करिके शुद्ध होते हैं जिससे अपने पूर्वोक्त तपही में यथासंभव लगे रहिसकें—इति शास्त्रीय मरणाच्युति प्रसंगः ॥ ० ॥ अथाशास्त्रीयमरणस्यैवसाक्षात्कारस्यप्रायश्चित्तं—अनन्तर जो प्रायश्चित्त कहागया तिसमें शास्त्रीय मरणा का प्रसंग था जिसकी समस्या सात्त्विक परिच्छेदमें ५५ पचपन मूल प्रलोक और उसकी अधिकोक्ति से प्रकाशित हुईथी उस रीति से मरने वाला सन्यासी आदि आत्मघाती नहीं कहाता बल्कि मरजाने पर निश्चय सहित समुद्यत होकर जो मरने से भागि परै तो वह सब लोगों में निदित और प्रायश्चित्तो भी इस हेतु से होजाता है कि उसको आधे मुर्दा के समान अपवित्र जाना करतेहैं इसीका प्रायश्चित्त ऊपर कहागया—अब—उनकेप्रायश्चित्त कहा चाहतेहैं जो गृहस्थी आदि कोई अच्छे भले में किसी पर क्रोध करने आदि कारणां से अपने प्राणा खोवै तो यह अशास्त्रीय मरणा कहिलाता है क्योंकि वृथा मर जाने की आज्ञा शास्त्र में नहीं है इसीसे वह आत्मघाती भी ठहिरताहै=यथाह वशिष्ठः=जीवन्नात्मत्यागीकृच्छ्रं द्वादशरात्रंचरेत्त्रिरात्रंचोपवसेदिति=अर्थात्—जीवन् मन्•जोकोई मनुष्य जीवते रहिने की शक्ति मौजूद होतेहुये अपने देहका त्यागीबनै अर्थात् किसी उपाय से मरजाय या मरने लगे सौ बारह दिन का कृच्छ्र व्रतआवरे वा तीन दिन उपवास करै (इसमें मरजाय लिखने से निपट मरिगया न समझि लेना किन्तु छुरी आदि शस्त्र अपने देह में घुसेरके मरने से बचिगया समझना कि पर बारह दिनका कृच्छ्र कराया जायगा• इसी लिये वशिष्ठ के वचन में (आत्म-त्यागी—जीवन्मन्) ऐसा अन्वय भी लगता है कि देह का त्यागी बनिके जीवता बचिजाते हुये बारह दिन का कृच्छ्र वा तीन दिनका उपवास कराया जाय) इसमें वा शब्द के विकल्प से तीन दिनका उपवास मात्र उसके लिये समझना कि त्रि-मने शस्त्र घुसेरिलेना आदि मरनेका काम अवतक नहींकिया सिर्फ मरजाने योग्य निश्चय मुह से कहिकर कियाहो या शस्त्र लेकर दिखलाया वा जल के पासलगे होकर डूबने का लक्षण प्रकट किया हो इत्यादि बहुत भाँति से समझिलेना• इसी प्रकार मरते हुये बचि जानेकी भाँति बहुत भाँति समझिलेनी जिससे थोड़ी बहुतपीडा या चोट भी आचुकी हो दृष्टान्त जैसे जल में खूब गोते खाकर बचिगया वा बुरी घुसेरि के जीवता बचिगया या बिय खाकर उसके वेग में दबि जाने बादि जीवता बचिजाय वा अग्नि में कूदि कर खाल आदि जलि जाने पर जीवता बचिगया हो

इत्यादि=तथाच सिताक्षरा (अत्राध्यवसायमात्रे त्रिरात्रं शस्त्रादिसप्तस्यद्वादशरात्रं क-
च्छमिति व्यवस्था)—इस व्यवस्था में यह प्रश्न बाकी रहा कि जे कोई उक्त प्रका-
रों से निपट सरिही गये हों तिनके इस आत्मघात रूपी पापका प्रायश्चित्त क्योंकर
होसक्ता है कौन करै किन्तु वे करने वाले आपतौ सरिगये इतका क्या उत्तर है—
इसका यह उत्तर है कि उनके पुत्रादि सर्पिण्ड जो धनके अधिकारी आदि समीपी
हितकर्ता समझेजाते हों वेही उसकी शुद्धि चाहिकर प्रायश्चित्तभीकरेंगे। यह प्राय-
श्चित्तभी यमके उसी वचनसे उत्पन्न होता है कि जो इस व्यवस्थासे अंतर पहिले
संन्यासीके व्रतभंगपर लिखिचुके यहां फिर भी लिखाजाता है कि यहां परअर्थही
उसका अन्य प्रकार से लगावैगै=यदाह यमः=जलावन्युद्वंधनधृष्टाः प्रव्रज्याऽनाशक
च्युताः विषप्रपतनप्रायाःशस्त्रघातहताश्चयेनैवैतेप्रत्यवसिताःसर्वलोकवहिष्कृताःचां-
द्रायरोनशुद्धान्ततप्तकच्छद्वयेनच=अर्थात्—जे कोई इच्छा सहित जलमें डुबिके वा
अग्निमेंकूदिके वा फंदा लगाइके अपने देहसे भ्रष्ट होके शिरिजायँ अर्थात् निपट
सरिही जायँ अथवा विदेश में पत्ते दिक्काले बिना प्रव्रज्या अटन करते घूमते फिरते
सरजायँ या किसी पर अनाशक धन्ना देकर बिना खाये सरजायँ या विष खायके
सरजायँ या ऊँचे वृक्षादि पर चढ़िजाकर गिरके सरजायँ (या प्रायशब्दके ध्वन्यर्थ
से इसी भाँति का कोई और उपाय करिके सरजायँ) या कोई शस्त्र अपनेसारि
के सर गये हों यह इतने आत्मघाती पुरुष प्रत्यवसित नहीं होते किन्तु मुक्ति नहीं
पाते और सब लोकों से बाहर किये हुये भूत प्रेतोंकी देह धरे फिरा करतेहैं परंतु
एक चांद्रायणा और दो तप्तकच्छ व्रतों का फलपाने से शुद्ध होकर मुक्त होजाते हैं
तिससे उनका पुत्रादिक अधिकारी यथोचित नारायणावलि पुत्तलविधान आदि
शास्त्रोक्त क्रिया करने पीछे इन प्रायश्चित्तों को आचरै जिससे आत्मघातियोंकी
प्रेतयोनि छूटिकर मुक्ति प्राप्त होसकै=अत्रोक्त आत्मघातियों के स्वरूप जो अच्छी-
तरह देखना चाहो सो इस प्रायश्चित्त काण्ड के प्रारम्भ से आशौच के प्रकरण में
५-६-२५ पाँचवां और छठा और इक्कीसवां मूल प्रलोक तथा उन्हीं तीनों अधि-
कोक्तों को विचारौ ॥ २८० ॥ इसी दोसौ अस्ती वाली ऊपरलो अधिकोक्ति का
फालतू पाठ यह भीहै सो विषय जुदा होनेसे स्थापना भेद किया गयाहै ॥ २८० ॥

अवकीर्णा ब्रह्मचारी के प्रसंगसे विरले और भी अनुपातकररूपी पापोंके प्राय
श्चित्त बीचमें दर्शायेगये—अब नीचे फिर अपने क्रम से प्रायश्चित्त कहेजायँगे अ-
र्थात् दोसौछत्तीस के मूलश्लोक में योगीश्वर ने (व्रततोपपन्न) यह पद कहाथा ति

मका अर्थ अनेक तरहके व्रतों का खराडन प्रकट करता है तिसमें से कुछेक व्रत भांग ऊपर अवकीर्णत्व को आदि लेकर वर्णन होचुके और बाकीरहे व्रतभगों के प्रायश्चित्त आगे दोसौइक्यासी मूलश्लोक से आदि लेकर कहेजायँगे इसीलिये योगीश्वर ने व्रतलोप नाम रक्खाथा कि इसमें बहुतसे अर्थों की गुंजायश पाईजाय—इसी से—यह तर्कना करनी वृथा है कि योगीश्वर ने उपपातकोंके जैसे नाम धरये उनमें से कितनेही नामों के जुदे प्रायश्चित्त द्रव्यों नहीं कहे जो ४४ चर्वालिस परिच्छेद के द्वारा गुजारा करना परताहै—क्योंकि योगीश्वरने ऐसे अनेकार्थ नामधरे हैं जिनके कई भेद होकर जुदेजुदे नामोंसे कईभाँतिके प्रायश्चित्त मिलते हैं फिर क्योंकर उसी मुख्य नाम से प्रायश्चित्त मिलसके—इसका यह दृष्टांतहै कि जैसा उसी दोसौ छत्तीस मूलश्लोकमें (निन्दितार्थोपजीवनं) यह एकनाम धरागया है इसका अर्थ मिताक्षरा में यह कियागया है कि (अराजस्थापितार्थोपजीवनं) इन दोनों का तात्पर्य यहटहिरा कि उपजीवन रोजगार का धंधा उसभाँति का कि जिसको राजाने धर्म के अनुसार निन्दितकियाहो—सो इसभाँतिके निन्दित कियेहुये भी अनेक धन्धेहोते हे जैसा स्त्रियों को खरीदकर बेचना लडका लड़कियोंको कहींसे लेआकर बेचना अथवा वेद शास्त्रोंकी निन्दा के द्वारा जीविका करना आदि अनेक भेद हैं तिनभेदों के जुदेजुदे प्रायश्चित्त जहाँकहीं लिखेहें सो सब निन्दितार्थके उपजीवन में गिनती होंगी जैसा आगे सुतविक्रय प्रायश्चित्तके प्रसंगमें स्त्रीपुरुषोंका बेचना (वर्देफरोशी) भी आवैगी इत्यादि अपनी बुद्धि से समझना—यह वार्त्ता यहाँ विस्तार देकर इसी लिये कहीगई कि थोड़ी समझवाले को भी संदेह न रहै ॥ अवकीर्ण होनेबिना भी ब्रह्मचारी के कुछ और प्रायश्चित्त हैं सो नीचे देखो ॥

अथ ब्रह्मचारिणो ब्रतनियमानां भंगेऽपि प्रायश्चित्तप्रकाश कोऽयं परिच्छेदः एको न षष्ठितमः (५९) ॥

—*—

इस परिच्छेद में ब्रह्मचारी के उन प्रायश्चित्तों का वर्णन होगा जो ब्रह्मचारीके ब्रत भंग होजाने पर उसको करने चाहिये—अर्थात्—आचार सथादि परि-
पाटी में ब्रह्मचर्य का ब्रत साधन करने के अनेक नियम कहेगये थे उन्हीं
मेंसे यदि कोई नियम खण्डित होजाय जैसे मधुमांस आदि खाइलेना
या जनेऊ अशुद्ध होजाना आदि के प्रायश्चित्त बताये जायेंगे ॥

(ब्रह्मचर्यब्रतभंगानां प्रायश्चित्तानि)

भैक्ष्याग्निकार्येत्यक्तवातुसप्तरात्रमनातुरः । कामावकीर्णइत्याभ्यां जुहुयादाहुतिद्वयम् २८१
उपस्थानंततः कुर्यात्समासिंचत्वेन तु । मधुमांसाग्नेकार्यः कृच्छ्रः शेषब्रतानि च २८२
प्रतिकूलंगुरोः कृत्वा प्रसाद्यैवाविशुद्धयति । कृच्छ्रत्रयंगुरुः कार्यान्त्रियते प्रहितो यदि २८३

अर्थः—अनातुर होते सातदिन भैक्ष्य अग्निकार्य दोनौ त्यागिके (कामावकीर्णा
इत्यादि दोनौ मंत्रों से) दो आहुतिहोसै—अर्थात्—यदि कोई ब्रह्मचारी किसी रोगसे
पीडित न होते हुये अपने भिक्षा धर्मको और अग्निके नैतिक होमको भी निरन्तर
सात दिन तक न करै सो इस छोटे अनुपातक पर यह प्रायश्चित्त करै कि (कामाव
कीर्णोऽस्थवकीर्णोऽस्मि कामायास्त्वाहा १ कामावपन्नोऽस्थवपन्नोऽस्मि कामाया
यस्त्वाहा २) इन्हीं वेदोक्त दो मंत्रोंसे आहुतें होसै (यद्यपि सूक्तश्लोकमें सिर्फ दो आहुति
का भी अर्थ धार्या जाता है कि एकएक मंत्रसे एकही आहुतिकरै तथापि ऐसा नहीं
किन्तु संख्याका नियम न मिलनेपर एकएक मंत्रसे एक एक अष्टोत्तरी सालाभरि
आहुतें छोड़ै तिससे भी आहुति द्वयका अर्थ सिद्ध होजाता है ॥ २४१ ॥

तिस पीछे (समासिंचतु—इत्यादि) इस मंत्रसे उपस्थानभी करै—अर्थात्—ऊर्ध्वो-
क्त आहुतें देचुकने बादि (समासिंचतु सकतः ससिद्धः संगृहस्पतिः संमायजतिः सिं-
चन्तां यशसा ब्रह्मवर्चसेन—इत्यनेन मंत्रेणाग्निमुपतिथेत्) इस पूरे मंत्रसे अग्नि के स-
न्मुख खड़े होके उपस्थान पढै मद्य मांस खालेने में कृच्छ्र करना फिर शेष ब्रत भी
करने चाहिये—अर्थात्—जिस ब्रह्मचारीने दगा बोखेसे मदिरा या मांस खाइ लिया

हो सो वारह दिनका कृच्छ्र व्रत करिके तिस पीछे अपने श्रेय रहे मामूली व्रतों को भी साधै ॥ २८२ ॥

गुरुका प्रतिकूल करिके उसे प्रमत्त ही करिके शुद्ध होता है=अर्थात्—जिस ब्रह्मचारी वा विद्यार्थीने गुरुकी उचित आज्ञा न मानने आदि प्रकारोंसे कोई काम गुरु से प्रतिकूल (उसकी अपेक्षासे विपरीत) किया हो तिसका दोष केवल गुरु के चरणोंमें शिर धरने आदि प्रकारसे प्रमत्त कर देनेसे ही मिटिजाता है उसका यही प्रायश्चित्त है। कार्यसे भेजा हुआ सरै तौ कृच्छ्रव्रत गुरु करै=अर्थात्—यहां ब्रह्मचारीका प्रसंगया तिससे उसका गुरुसे सम्बन्ध पाइ कर गुरुका भी प्रायश्चित्त कहिना परा कि—यदि कोई गुरु ब्रह्मचारी आदि किसी शिष्यको किसी जहरी काम के लिये कहीं ऐसी भयाङ्गल अंधेरी रातिमे भेजे कि जहां चोर डाक सर्प बाघ आदि प्राणहारी चिन्ह मौजूदहों और भेजा हुआ शिष्य उन्हीं प्रकारोंसे सरजाय तौ उस भेजने वाले गुरुको तीन कृच्छ्रव्रत करने चाहिये। इसका चर्चा अधिकोक्ति में अच्छीतरह देखि लेना ॥ २८३ ॥

२८१ अधिकोक्तिः—तीनों मूल प्रलोक में प्रायश्चित्तोंके चार भेद हैं इस तौरसे कि डेढ़ श्लोकमें एकही भेद है फिर बाकी तीन भेदोंका सिर्फ आधा आधा श्लोक है तिनके बीच बीच। ऐसा चिन्ह लगाया गया है उसी क्रमसे उनकी अधिकोक्तिकी अब देखौ २८२ श्लोकमें ब्रह्मचारीको बीमारीके न होतेहुये सात दिन तक भिक्षा वृत्ति और अग्निकी सेवा छोडि देने पर प्रायश्चित्त कहा गया। तिसका यह ध्वन्यर्थ ठहिरा कि यद्यपि रोगी नहीं था परन्तु गुरुकी सेवा आदि कामोंकी बहुताइत में गाफिलहोके भिक्षा और अग्निकार्यको छोड़ा हो तिसको वह प्रायश्चित्त जो लिखि चुके सो करना चाहिये—और जिसने गुरु सेवा आदि कार्य के भी न होतेहुये निरोगी होकर सात दिन तक वृथाही निज धर्मको छोडि दिया हो तिसको यह छोटा प्रायश्चित्त नहीं है अर्थात् वह मनुके वचनानुसार करै=यदाहमनुः=अकृत्वा भेद्य चरणानभिध्यचपावकम अनातुर। नपरावमवकीरिात्रित्तचरेत्=अर्थात्—निरोगी ब्रह्मचारी सात दिन तक भिक्षावृत्तिको न करिके या अग्निको समिन्वन हीन करिके पवकीरिा ब्रह्मचारीवाजा व्रत आवरै जो २८० मूल प्रलोकसे वर्णन हो चुका=यहां पर=व्रत संग होजानेका प्रसंग है तिससे जनेऊ टूटिजाने वा अशुद्ध होजाने आदि अनेक कारणोंके प्रायश्चित्त भी दशाति हैं ॥

यसोमनीनादि नाशेतु=दारीतः=नतोव्रतपतीभिश्च तिस्र आड्याहुतीर्हुत्वापुन

यथार्थप्रतीयादसकृत् असन्नक्ष्यभोजनेऽभ्युदितेऽभिनिर्मुक्तेवान्ते दिवास्वप्नेनश्न स्त्री
दर्शनेनश्नस्वापेश्मशानभाक्रम्य हयादीनारुह्यपूज्यातिक्रमेच्चैताभिरेवजुहुयात् अग्नि
समिन्धने स्यावर सरीसृपादीनां वधे यद्देवादेवहेडनमिति कूप्साण्डीभिस्त्रिरात्रमाज्यं
जुहुयात् मरिावासोगवादीनां प्रतिग्रहे सावित्र्यसहस्रं जपेदिति=अर्थात्-हारीत ने
इतनी बातों के प्रायश्चित्त इकट्ठे कहे हैं कि-यज्ञोपवीत किसी प्रकारसे खरिडत
होजाय तब (मनोव्रतपतीभिः इत्यादि ऋचाओं से) तीन तीन आहुतें असकृत्
अनेकवार होसकें फिर यथार्थ रीतिसे मंत्र पढिके जनेऊ बदलिडारै अर्थात् यज्ञो-
पवीत धारणा करनेका जो मंत्र प्रसिद्ध है उसीको पढिकर पहिरै और इन्ही उक्त
ऋचाओं से आहुतें उन पापोंमें भी होमै कि जब किसी असत् नीच आदिकी भिक्षा
भोजन करी हो जिनका अन्न खाना ब्रह्मचारी को मने है यद्वा ब्रह्मचारी होके
अभ्युदित किन्तु सूर्यके उदय होते समय सोता रहिकर उस कालके यथोचित कर्म
की हानि करीहो यद्वा अभिनिर्मुक्त किन्तु सूर्य के अस्तकाल में निद्राके वशीभूत
होके सायंकाल के यथोचित कर्मोंकी हानि करीहो या वसन कियाहो या दिन में
सोयाहो या लंगी स्त्री को देखलियाहो या आपही नंगा सोया किन्तु सोते समय
धोती खुलि गईहो यद्वा श्मशान मुर्दघट की धरती पर चला फिरी करि आयाहो
या घोड़ा आदि किसी पशु यान पर सवारी करीहो यद्वा किसी पूज्य गुरु आदि
का अतिक्रम (वे अद्वी) करि बैठाहो तौ भी उन्हीं मनो व्रत आदि ऋचाओं से
आहुतें होमै तब शुद्ध हुआ ठहिरै और होम आदिमें अग्नि समिन्धन कर्म अर्थात्
लकड़ी आदि का जलाना तिसके साथ किसी प्रकारके जीव स्यावर जो लकड़ी के
भीतर या धरती के भीतर हो सक ठिकाने ठिके रहिते हों या सरीसृप सांप आदि
रेंगने फिरनेवालेही जलिकर मरजायँ तौ इस गफलतसे उत्पन्नहुये पापका प्राय-
श्चित्त यह चाहिये कि तीन रातोंमें वी की आहुतें होमै सो इन मंत्रोंसे कि (यद्दे-
वादेवहेडनं इत्यादि) वेदीक्त ऋचायें जो ऋग्वेदमें कूप्साण्डीके नामसे अनेक ऋचा
प्रसिद्ध हैं तिनसे होमै तब शुद्ध होय और जिस किसी ब्रह्मचारी ने मरिा या कपडे
या गाय आदि पदार्थोंका प्रतिग्रह लेलिया होय वह सावित्री के आठ हजार मंत्र
जपे यह सब हारीतने दर्शाया इसका पहिला प्रायश्चित्त (मनोव्रतपती इत्यादि)
समस्यावाली ऋचाओंसे बताया तहां यह व्यौराहै कि (मनोज्योतिरित्यादि मनो
लिंगाभिस्त्वमग्ने व्रतपाअसीत्यादि व्रतलिंगाभिरित्यर्थः) और भी (पुनर्यथात्थं प्र-
तीयात्) यह कहाया तिसका भी यहतात्पर्य है कि यदि ब्रह्मचारीका जनेऊ कुछ

विशेष खण्डित होजाय किन्तु निपट टूटिके गिरजाय या और ही कोई प्रकार ऐसा होजाय जिससे निपट विनाशहीके तुल्य समझा जाय तहां पुनर्दथार्थका यह अर्थ है कि जैसा पहिले जनेऊ हुआया उसीप्रकारकी विधिसे पुनः संस्कार कराइके यज्ञोपवीत ग्रहण करै। अन्यथा जब केवल अशुद्धमात्र होजाय किन्तु पूरम्पूर खण्डित न हुआइो तब उक्त आहुतियोंकी होमिके जनेऊका प्रसिद्ध मंत्र पहिके बदलित डारै ॥

यज्ञोपवीतं विना भोजनादि करणेतु=सरीचिः=ब्रह्मसंत्रंविनाभुंक्ते विरामत्र कुरुतेऽथवा गायत्र्यष्टसहस्रेणाप्राणायामेनशुद्ध्यति=अर्थात्—काँधे पर जनेऊके न होने या खण्डित होनेकी दशामें जिसने भोजन कियाहो या शंका लघुशंकासे विद्या मंत्र का त्याग कियाहो सो यथोक्त रीति से प्राणायाम करिके गायत्री मंत्र आठ हजार जाप कर शुद्ध होताहै (इसमें भी जनेऊ का बदलना समुक्ति लेना) यह सरीचिमुक्ति कहना—यहां तक एक साथही डेढ़ प्रलोक की अधिकोक्ति पूरी होचुकी ॥ २८१ ॥

अब दो सौ ब्यासी का उत्तरार्द्ध मलश्लोकवालाअर्थ देखवौ कि मद्य मांस खाइ लेने पर कृच्छ्रकरना लिखचुके सो केवल उन्हीं मांसोंकेखालेनेमें समुक्तता जो खरगोश आदि खाने के योग्य उत्तम जीव कहातेहैं=तदाह वशिष्ठः=ब्रह्मचारीचेनमांसमन्त्री योच्छिद्यभोजनीयं कृच्छ्रंद्वादशरात्रंचरित्वाव्रतश्रेयं समापयेदिति=अर्थात्—उत्तम पुरुषों के खाने योग्य मांस को यदि ब्रह्मचारी खालेवै तो बारह दिन कृच्छ्र व्रत करिके तिस पीछे अपने श्रेय व्रत का साधन करै (इस में बारह दिन की अवधि कही जाने से यह तात्पर्य सिद्ध होता है कि ये बारह दिन अज्ञानता से मांस खा लेने पर निश्चय है। कदाचित्त कोई जानि बूझिके मांस भक्षणा करै या विना जाने ही बारम्बार भक्षणा करै सो इससेभी कठिन अतिकृच्छ्र वा पराकआदि प्रायश्चित्त साधे तब शुद्ध होय) और इसी तरह अभक्ष्य जीवों का मांस खाइ लेने में अतिशय कठिन प्रायश्चित्त देखे जाय यह वशिष्ठ ने दर्शाया है=किर=उन्हीं वशिष्ठ ने रोसी रोमिकी दशापर मांस खाने का विधान भी दर्शायाहै=यथा=सचेदद्याधीयान कासपुंसोच्छिष्टंभेयजादन्तर्वप्राप्त्यादिति= अर्थात्—बह ब्रह्मचारी यदि ऐसे रोग से व्याधित होजाय जिसकी औषधी मांस के सिवाय और कुछ न रहिरै (दृष्टान्त जैसे वरुणादत वातव्याधि से कक्षुकर का मांस वैद्य व्रतःवै इत्यादि) तो उस मांसको अन्नका रूपकरिके खाय यदा यदा संसा अतभव हो तो गुरुकी आज्ञा लेकर विाकत्मा के निमित्त में सब कृच्छ्र खाय—इतमें—सब स्वायक्ता यह तात्पर्यहै कि मांस लक्षण रोगोंकी रीतिज अभक्ष्य हैं और उन्हीं से रोग शांति हो सकती हो तो गुरु की

आज्ञा लेकर निःसंदेह भक्षणा करै और उसके भक्षणा से रोग नाश होजाने वादि
सूर्यनारायणा को उपस्थान करै=यदाह बौधायनः=येनेच्छेच्चिकित्सितुंसद्यदाऽगदोभ-
वति तदोत्थायादित्यमुपतिष्ठेत्तहंसःशुचिद्यदिति=अर्थात्-रोगीब्रह्मचारी जिसवस्तु
से चिकित्सा करनेकी इच्छा करै तिससे जब कभी वह निरोगी होजाय तबउठिके
उस दोष के मिटाने को (हंसःशुचियत्) इत्यादि वेदमंत्रसे सूर्यके सम्मुख उपस्थान
पढै=इन वचनों की सामान्य आज्ञा से यह भी समझि परता है कि यदि वैद्य ने
रोगी सेकहे विना किसी औषधी में मधु मद्य भी रोगी को खवाया हो तौ इसका
दोष रोगी पर कुछ नहीं है अर्थात् रोगी ने जानि ब्रह्मिके नियिद्व औषध जोखाई
हो तिसका प्रायश्चित्त रोग मिटिजाने वादिकरै-इसके दृष्टान्तपर मिताक्षराकार
ने वशिष्ठ का यह वचन भी दर्शाया है कि (अक्रामोपत्तमधुवाजसनेयकेनदुष्यती
ति वशिष्ठस्मरसात्) जैसा वाजसनेय नामक यज्ञ में उपस्थित लोगों को आगेयदि
विना सांगे चाहे मधु मद्य बँटता हुआ आकर स्वतः मिलिजाय तौ उस जगह पर
लेकेने का दोष नहीं है यह वशिष्ठ ने कहा) तैसा रोग की दशा में भी यदि चाहे
विना वैद्य के देने से खालेना पराहो तिसका दोष नहीं=यह ब्रह्मचारी के व्रत भंग
होने का प्रसंग पाइकर थोडेसे प्रायश्चित्त यहांपर लिखे गये-किन्तु रोग होने के
बिना यदि कोई कुछ अभक्ष्य भक्षणा करै वा सूतक आदि अशुद्धिमें किसीका अन्न
खाय तिनके प्रायश्चित्त आगे अभक्ष्य भक्षणा के प्रकरणा में सर्व सामान्य कहेजायँ
तहां देखि लेना= और=जो कदाचित् किसी ब्रह्मचारी को कुत्ता आदि काढै वा
कौआ आदि हुइ जाय तिसका प्रायश्चित्त २७७ की अधिकोक्ति में देखौ तहां
विशेष कर अंगिरा का वचन हुँडौ ॥ यइ दोसौ ब्यासी का उत्तरार्ध पूरा होगया
॥ २८२ ॥ अब दोसौ तिरासी मूलप्रलोक देखौ कि उसके पूर्वार्धमें गुरुके प्रतिकूल
करने का प्रायश्चित्त गुरु का प्रसन्न करना कहिकर उसी ब्रह्मचारी के प्रसंग से
गुरु को भी प्रायश्चित्त करना उत्तरार्धमें कहा गया-तहां कुछ संदेह यद्यपि नहीं
है क्योंकि (कृच्छ्रं त्रयं गुरुः) इतने पद का अर्थ यही है कि तीन कृच्छ्र गुरुकरै
तथापि मिताक्षरा में (कृच्छ्रं त्रयं) पद के ऊपर उलटी भांति खडी करी है तिसकी
भी चार पंक्तों बरे देतेहैं देखौ=यथा=तदासगुरुः कृच्छ्रादीनां प्राजापत्यादीनां त्रयंभु-
यति नपुनस्त्रयःप्राजापत्याः तयास्तितृपृथङ्निवेशिनीसिख्याऽनुपपत्त्यात् नचैकाद-
शप्रयाजाद्यजतीतिवदावृत्त्यपेक्षासंख्येति चतुरस्रं स्वल्पपृथक्त्रैसंभवत्यावृत्त्यपेक्षाया
अन्याद्यत्वात् यदीयमुत्पन्नातासंख्यास्यात् तदास्यादपिकथांचिदावृत्त्यपेक्षा किन्तु

त्पनिगतेयमग्रतस्तिमत्राहुतिर्जुहोतीति वत्स्वरूपपृथक्तापेक्षयैवचित्त्वसंद्यायत्ना
 युक्ता—ये पंक्तियां—केवल विद्वानोंका वाग्विनोद है वेही सोचिके देखेंगे कि इनसे
 क्या क्या सार निकसा—किन्तु सर्वजनों के समझने योग्य वही पाठ है जो ऊपर
 २८३ के अर्थ लिख चुके और वही प्रधान अर्थ है—अथवा—यहां की भान्ति
 जनक पंक्तियों से इतना सार लिया जासक्ता है कि जैसा (२७४ के उत्तरार्द्ध मूल
 प्रलोकवाली अधिकोक्ति में कृच्छ्र शब्द के सामान्य लक्षणा कहेगये थे कि) एक
 वर्ष छमाही से लेकर घटते घटते छः दिन तीन दिन एक दिन का भी कृच्छ्र व्रत
 होता है इनमें से जहां जैसे बड़े या छोटे की योग्यता समझी जाय तहां तैसाही
 किया जाय—सो इस व्यवस्था के अनुसार गुरु के प्रायश्चित्त में भी छोटे या बड़े
 कृच्छ्रों के स्वरूप यदि माने जायें तौ भी तीन कृच्छ्रों के स्वरूप मिल कर कोई
 सौ बड़ी या छोटी संख्या दिनों की हो जायगी अन्यथा सीधा अर्थ जैसा
 योगीश्वरने निष्कण्ठ प्रयोग दर्शाया तिससे तीन कृच्छ्रों के (बारहदितिया) छत्तीस
 दिन होते हैं तिनसे कोईसा अन्याय नहीं प्रतीत होता है • क्योंकि गुरु के लिये
 एक बड़ी ताकीद रक्खी गई है कि ऐसे प्राणहानि वाले स्थान पर शिष्य को न
 भेजै • फिर भी जहां गुरुने ताकीद को न सोचि कर अतिक्रम किया होय तिससे
 शिष्य के प्राणही नाश होजाय • तहां ऐसे गुरुपर छत्तीसदिनका प्रायश्चित्त बहुत
 बड़ा नहीं है जिसके लिये अवोक्त पंक्तियों का सहारा लिया जाय जिसमें छत्तीस
 दिन से कुछ न्यून अवधि पाई जाय इसमें कोई सार नहीं है ॥ २८३ ॥

यह आशय भी विदित होना चाहिये कि चौबीसवां परिच्छेद को आदि लेकर
 यहां तक बहुधा परिच्छेदों में हिंसा के प्रायश्चित्त वर्णन होते रहे अर्थात् कहीं
 ब्रह्महत्या कहीं नरहत्या कहीं गोहत्या कहीं नारी बध कहीं गर्भही का बध कहीं
 अन्य भांति के पशु आदि जीवों की हिंसा बल्कि इस दोसौ तिरासी में भी शिष्य
 को हिंसा उसको भजिदने के बहाने से दर्शाई गई—सो इन पूर्वोक्त सर्वहिंसाओं का
 अपवाद आगे दोसौ चौरासी मूल श्लोक से दर्शावेंगे—यद्यपि जहां जहां ब्रह्महत्या
 गोहत्या आदिका वर्णन किया गया तहां भी ग्रंथांतर के वचनों से अपवाद कृत्वा
 स्वरूप देते रहे—परन्तु यहांपर नव श्लोक से योगीश्वर आपही कृष्ट दर्शावेंगे कि
 ऐसी अनुक्तानुक्त दशाओं में हिंसा होजाने परभी हिंसा नहीं कहानी है ॥

(पूर्वोक्तसकलहिंसाऽपवादः)

क्रियमाणोपकारेतुमृतेविप्रेनपातकम् २८४(इत्यर्धमेव)

अर्थः—उपकार करते हुये विप्रके मरने में पातक नहीं है=अर्थात्—जहां गुरु या वैद्य आदि किसीने उसीके उपकार हेतु कहीं भेजा या उसका रोग मिटाने को वैद्य ने चिकित्सा करी हो जिससे कोई ब्राह्मण भी मरजाय तौभी कुछ प्रायश्चित्तकी जरूरत नहीं है ॥ २८४ ॥

२८४ अधिकोक्तिः—यह चौरासी का अद्धा ऊपरले दोसौ तिरासी से संबन्ध राखता है अर्थात् इसके द्वारा गुरु के प्रायश्चित्त पर (अपवाद) नामछूट सूचित करी है कि जब गुरु ने अपने कामको न भेजा हो किन्तु उसी शिष्य का उपकार सोचि कहीं भेजा हो जहां जाकर ब्रह्मचारी वा विद्यार्थी आदि कोई ब्राह्मण मरजाय तौ इस दशा में उस गुरुपर न दोष है न प्रायश्चित्त की जरूरत है=यहीचौरासी का वचन उस गुरु के सिवाय वैद्य आदि उपकारियों से भी संबन्धित है तिससे उनके भी उपकारों में मरजाने का अपवाद रूप यही अर्थ लगाया जाता है कि वैद्यक अनुसार जिस वैद्य ने किसी को कुछ औषध वा पथ्य या कोईसा अन्न आदि अपने हाथसे खिलाया वा बताया हो रोगीका उपकार चाहिकर ऐसी दशामें यदि कोई ब्राह्मण भी मरजाय तौभी वैद्य दोषी नहीं है न उसपर प्रायश्चित्तकी अपेक्षा है (इस व्यवस्थामें विप्र या ब्राह्मण का मरजाना कहा सोभी सबजीवोंका उपलक्षणा मानागया कि सत्री आदि कोई आदमी या पशु गाय बैल घोड़ा आदि में भी जिस किसीकी भलाई चाहिकर चिकित्सा आदि कोई कर्म कियाजाय या उसीसे कराया जाय तिसके मरजाने में भी दोष नहीं है—इसी लिये गोवव प्रायश्चित्तों के प्रकरण में (यंत्रगो गोश्चिकित्सार्थे गूढगर्भविमोचने यत्नेऽकृतेविपत्तिःस्थान्नसपापे नलिप्यते) इत्यादि अनेक वचन लिखिचुके तहां देखौ ॥ २८४ ॥

अशुभ दशा में हिंसा का दोष नहीं लगताहै यह कहा गया इसीके प्रसंगसे यह बात भी उह्यत्न भई कि जब कोई किसीपर भूँटा पाप लगावै कि इसने मेराअशुभ मनुष्य या गऊ आदि को मार डारा या अगन्यारासन किया या मदिरा पान करी इत्यादि भूँटा दोष लगाने का प्रायश्चित्त आगे देखौ ॥

अथमिथ्या भिशंसनादिदोषस्य प्रायश्चित्तप्रकाश

कोऽयं परिच्छेदः षष्टितमः (६०) ॥

—*—

इस परिच्छेद में मिथ्याऽभिशंसन दोषका प्रायश्चित्त उसके लिये दर्शावेंगे कि जिसने किसी पर भूँटा पाप लगाया हो—और उसको भी कि जिसपर भूँटा पाप लगाया जाय—इन दोनों के प्रसंग से अपांक्तियों के प्रायश्चित्त भी सामान्य कहे जायँगे ॥

(मिथ्याऽरोपितदोषप्रायश्चित्तं)

मिथ्याऽभिशंसिनो द्वेषात् द्विःसमाभूतवादिनः मिथ्याऽभिज्ञस्तदोषञ्च समादत्तेऽमृषावदन् २८५ ॥
महापापोपपापान्यांयोऽभिशंसेन्मृषापरम् अब्भक्षोमासमासीतसजापीनियतेन्द्रियः २८६ ॥

अर्थः—द्रोहसे भूँटा अभिशंसनकर्त्ता समाभूतवादी को दूना दोष और अमृषा कहिते हुये मिथ्याभिज्ञस्तका दोष भी अच्छीतरह लेता है—अर्थात्—जब किसी का भाग्योदय प्रतिष्ठा की वृद्धि आदि उत्कर्ष को ईर्ष्या द्रोह से न सहिकर कोई द्रोही उसको भूँटा ही अभिशाप लगावै अर्थात् मनुष्यों के समाज में कोई सा बड़ा या छोटा पाप सुनावै कि उसने ब्रह्महत्या करी या मद्यपान वा अगम्यागमन वा गोब्रह्म आदि अमुक पाप किया तो उस भूँटा लगाने वाले को वही पाप उससे दूना लगा ठहिरता है जो पाप उसने मिथ्याही किसीपर लगाया—और जिसने किसीका महा ही पाप प्रथम अगुआ बनिकर सब लोगोंके सम्मुख प्रकाश किया हो जिसपापको सबलोग नहीं जानतेथे तो भी उसपापी के और जो पहिले संचित किये पाप ह मो इस दोषवक्ता के ऊपर चढ़िआते हैं ॥ २८५ ॥ महापाप या उपपापों से जो कोई पराधे को मृषाही अभिशंसै तो सक सहीना भर जितेन्द्र होके जलही का आहार करते हुये उपमे बैठे यह उन्हींका प्रायश्चित्त है ॥ २८६ ॥

२८५ अधिकोक्तिः—वक्ता के ऊपर पाप चढ़ि आते हैं इकीलिये आपस्तंब ने यह कहा है (दोषदुःश्रानपूर्वःपरेभ्यः पतितस्थममाख्यातास्यात् परिहरेच्चैवंधर्मैश्च) अर्थात् किसी पतितका दोष देवि ज्ञानि के प्रथम देखने वाला और लोगों के सम्मुख घोसा न कहे और व्यवहार के वर्ताने भी इसको गेमी रीतिन छोड़े कि

जिससे सबके सामने व्यौरा न कहिनापरै किन्तु अपने आपही युक्तिकेसाथ पतित से बचा रहे कि जब तक दोषीका दोष औरोंके द्वारा प्रकाश होय ॥ २८५ ॥ इनके प्रायश्चित्तमें सहीनाभर जल पीके जप करना जो ऊपर कहिचुके वह जप भी शुद्धवतीनाम की ऋचाओं से करना चाहिये=यथाह वशिष्ठः=ब्राह्मणामृततेनाभिर्गं स्य पतनीधेनोपपातकेनवामासमवभक्षः शुद्धवतीभिरावर्त्तयेदद्यमेधावभृथंवागच्छेत्= अर्थात्-वशिष्ठने भी ऐसा कहाहै कि ब्राह्मणको असत्य पाप जो जाती धर्मसे गिर जाने योग्य महापातक या उपपातकमें गिनती होय तिससे दूषितकरिके यह प्रायश्चित्त करै कि शुद्धवती इसनामसे प्रसिद्ध जो ऋचा हैं तिनसे जप करै सक सहीना तक जलहीके आहारसे उपवास राखै तब शुद्ध होय अथवा यह न होसके तौ जहां कहीं अश्वमेध होता सुनै तहां जाकर उसके अवभृथनाम के अन्तिसंज्ञान में शामिल होजाय तौ भी शुद्ध होजावे (इसमें जो महापाप और उपपाप कहा तिसके बीचमें अति पातक आदि और भांति के पाप जो कुछ होते हैं सो भी सब समुक्ति लेना) यह भूँटा दोष लगानेकी व्यवस्था जो लिखी गई सो सब उसके प्रायश्चित्तहै कि जहां ब्राह्मण को किसी ब्राह्मण ने महापातक दोष लगायाहो=अर्थात् जहां कोई क्षत्री आदि इतरवर्णाका मनुष्य होकर ब्राह्मणपर भूँटा पाप लगावे तहां उस क्षत्री आदि के लिये इन्हीं प्रायश्चित्तोंका दूना तिगुना आदि भार चढायाजाय सो उस न्यायसे कि जैसा (प्रतिलोमापवादेऽद्विगुणास्त्रिगुणोदसः) यह व्यवहार सूर्यादा में दराड दूना तिगुना कहागया था=और जहां क्षत्रीआदि किसी नीचे वर्णाको ब्राह्मण आदि ऊंचे वर्णोंके मनुष्यने भूँटा पाप लगायाहो तहां (वर्णानामानुलोम्येन तस्मादूर्द्ध्वानितः) यह दराडका प्रकार जैसा व्यवहार सूर्यादामें लिखि चुके तिसके अनुसार यहां प्रायश्चित्त भी कम किया चाहिये=और जिसने सच्चा दोष प्रकाश कियाहो तिसकेलिये २८५वाली व्यवस्थाके अनुरूप केवल आधाही प्रायश्चित्त विचारा जाय• सो यह उससे आधा समुक्तिना कि जितना भूँटा पर सावित किया जाय (यह तौ महापापोंका दोष लगाने मध्ये नियम कहे गये) इन्हीं सब लिखे हुये नियमोंसे पौना पौना प्रायश्चित्त उनकेलिये विचारा जाय कि जिन्होंने अति पातक नामके पापों से दोष लगायाहो• और उनकेलिये आधा आधा प्रायश्चित्त विचारना चाहिये कि जिन्होंने पातक लक्षणा के पापोंसे दोष लगायाहो• और जिन्होंने उपपातक लक्षणाके पापों से दोष लगाया हो तिनकेलिये इन प्रायश्चित्तोंका चौथाई भाग देना चाहिये क्योंकि उपपातक रूपी क्षत्री आदि के वध

का जो प्रकरणा लिखा गया था उसमें (तुरीयोऽब्रह्महत्यायाः क्षत्रियस्यवधेः स्मृतः) यही वचन कहा गया कि ब्रह्महत्यारूपी महापातक का प्रायश्चित्त जो बारह वर्ष का होता है तिसका चौथाई भाग क्षत्री के वधमें समुभूना • तिससे यहां भी वही तात्पर्य है • और इस चौथाई से भी कुछ न्यून व्रत उनके लिये लगाना कि जिन्होंने प्रकीर्ण लक्षणा के पापोंसे किसीको दोग लगाया हो—इसी नियम का प्रसारा भी यह वचन है कि (शक्तिं चावेक्ष्य पापं च प्रायश्चित्तं प्रकल्पयेत्) शक्ति और पाप की बड़ाई छोटाई देखके प्रायश्चित्त लगावै ॥ ० ॥ इसके सिवाय जिसने भूठा पाप लगाने का बारम्बार अभ्यास किया हो यदा अन्य लोगों को भूठे साक्षी आदि बनाकर बड़ी दृढ़तासे महापापरूपी दोग किसी ब्राह्मणपर लगाया हो तिसके लिये शंख और लिखितका बताया प्रायश्चित्त है = यदा हतुः शंखलिखितौ = नास्तिकः कृतघ्नः क्रूरश्च दहारी ब्राह्मणावृत्तिव्नो मिथ्याभिशांसी चेत्येते अड्वर्यासा ब्राह्मणावृत्तेषु भैक्ष्यं च रेयुः संवत्सरोत्तमैक्ष्यं शशीयुः यद्मासान्वागा अनुगच्छेयुरिति = अथत्ति—दोनों भ्राता मुनीवराने कहा है कि एक नास्तिक • कृतघ्न • क्रूर व्यवहारी जो मिलावकी चीजें बेचै • ब्राह्मणकी वृत्ति जीविका विगाडने वाला • और मिथ्याभिशांसी जो किसीको भूठा पाप लगावै • ये सभी इतने पापी लोग छे वर्ष भर ब्राह्मणों के घर भिक्षा मांगें या एक वर्ष रुकड़े मांगे हुये धोकर खार्थ या एक छमाही भर गौओंके पीछे फिरिके सेवा करें तब शुद्ध होयें—ये बड़े छोटे तीनि प्रायश्चित्त भी अपराधकी बड़ाई छोटाई देखके अपराधी पर आरुढ किये जायेंगे ॥ २४६ ॥ दोग लगानेवाले के प्रसासे उनके लिये भी प्रायश्चित्त आगे दशांशके कि जिसपर भूठा पाप लगाया गया हो उसका नाम अभिशस्त कहा जाता है ॥

(अभिशास्त प्रायश्चित्तं)

अनिशन्तो मृषा कृच्छ्रं चरेदग्नेवमेव च । निर्वपेत्तु पुरोडाशं वायव्यं पशुमेव वा २४७

अर्थः—मृषा अभिशस्त भी कृच्छ्र करे वा अग्नेय पुरोडाश दोगे या वायव्य पशुही को = अर्थात्—भूठा पाप या अपराध जिसपर लगाया गया सो मृषा अभिशस्त कहाना है उनको भी यह प्रायश्चित्त काना चाहिये कि प्राजापत्य नामका कृच्छ्र व्रत्ताव यथवा अग्निदेवता की प्रधानतासे उर्वाके नामपर साकल्य होने अथवा वायुदेवता के नामसे वायव्य पशुधाम करे तब शुद्ध होय ॥ २४७ ॥

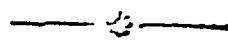
२४७ अर्थः— वायव्यं पशुं वा अग्नेयं पुरोडाशं वा चरेत्तु पुरोडाशं वायव्यं पशुमेव वा २४७

गौपशुरत्रापिज्ञायते) अर्थात् मूलश्लोक में यद्यपि वायव्य पशुका कोई नाम नहीं कहा तौभी यह श्रुति जो प्रसिद्ध है कि वायव्य पशुके नामसे सुषेद बकरा बलिदान करै) तिससे यहां भी सुषेद बकरा समझा गया है—मूलश्लोक में प्रायश्चित्तों के दो तीन भेद जो दर्शाये तिनमें कर्ताकी शक्ति और देश काल आदि का अविरोधी सम्भव जानिके विकल्प किया जासक्ता है कि इनमें से जिस भेदका अवसर ठीकमिलै वही किया जाय ॥ ० ॥ इससे पहिली अधिकोक्ति के प्रारंभ में २८५ के बादि जो वशिष्ठ का वचन लिखा गयाथा तिसके अन्तमें वशिष्ठजीने (सतेनैवाभिशास्तोव्याख्यातः) यह इतना पद और भी लिखिकर यह अर्थ प्रकट कियाहै कि एकमहीना जल पीकर जप करना जो भूँठे पाप लगानेवाले को कहा वही उसको भी चाहिये जिसपर भूँठा पाप लगाया जाय—सो यह एक महीनेका बड़ा प्रायश्चित्त अभिशास्त की अपेक्षा में उस दशापर आरूढ होसक्ता है कि जब उसने बहुत कालतक प्रायश्चित्त न कियाहो तब यह बड़ा करना चाहिये क्योंकि दण्डके प्रकारसामें भी ऐसा नियम है कि (संवत्सराभिशास्तस्यदुष्टस्यद्विगुणोदसः) अर्थात् जब कोई दुर्जन एक साल भरसे कलंकित सजाव किया गयाहो और वह कोईसा अपराध करै तब उस अपराध का जो दंड होताहो सो उसको दूना किया जाय ॥ ० ॥

पैठीनसि ने यह कहा है—अनृतेनाभिशास्तमानः कृच्छ्रञ्चरेत्समासंपातकेषु महापातकेषुद्विसास्र=अर्थात्—असत्यपापसेशापित दूषित कियाहुआ पुरुषकृच्छ्रव्रत आचरै जो वारहदिनमें होताहै (परन्तु ये वारह दिन छोटे उपपापोंके अभिशाप में समझने क्योंकि)परेपातकोंके अभिशापमेंएक महीनाभर व्रतचाहिये औरमहापातकोंकेअभिशापमें दो महीने(इसमें भी ऊपरले वशिष्ठके वचन समान और कर्ताकी शक्ति आदि के अनुसार व्यवस्था कल्पित करनी चाहिये)=इसी प्रकार=और भी जे कोई वचन अभिशास्तकी अपेक्षा पर पायेजायँ तिनके बड़े छोटे प्रायश्चित्तों की व्यवस्था भी तात्कालिक देशकाल और शक्ति आदि के अनुसार शोचिके समुक्ति लेना=इसके सिवाय=मनुने एक सामान्य रीतिके प्रायश्चित्त भी दर्शाये हैं जो अभिशास्त आदि औरों पर भी आरूढ होसक्ते हैं=यथाह मनुः=यद्यान्नकालतासासंहिताजपववा होमाश्चसाकृलानित्य संपत्प्रानांविशोधनम्=अर्थात्—अपत्त्य वे पुरुष जिनका किसी कलंकसे याँतिमें बेदना भोजन करना आदि बंद होय ऐसे पुरुष अनेक तरह के कलंकी होते हैं उनमें एक अभिशास्त भी कुछ शोचिके गिनती कियागया है—तिन सबका विशोधन प्रायश्चित्त एक महीना भर (यद्यान्नकालता) अर्थात् छठे

छटे दिन भोजन एक महीना भर करना अथवा यह न होसकै तौ संहिता का अप पाठही एक महीना भर करै अथवा साकल्य सामग्रीके होमही रोज करता रहै तौ गुद्धि उनकी होजाती है ॥ ० ॥ इत ऊपर की व्यवस्था में मृषा अभिशस्त के प्रायश्चित्त जो कुछ कहे गये तिनपर बहुत कुछ सन्देह किया गया है कि जब भूंगाही अपवाद लगाया गया तौ फिर उसका क्या दोषहै कि जिसके लिये प्रायश्चित्त करना कहा--इसका यही उत्तर है कि यद्यपि उसका दोष कुछ इस देह से नहीं पाया गया तौभी पहिले जन्मका पाप उसके ऊपर आनिके आरूढ हुआ कि जिसने महा पाप रूपी भूंगा कलंक उसपर आरोपित करवाया तिसकी शांतिके निमित्तमें प्रायश्चित्त उसपर टहिरा तिससे विरोध कोई सा नहीं है न शंका करने को अवकाश है--क्योंकि--जैसे घाव वा फोड़ा फंसी आदिमें कीड़े पर जानेका प्रायश्चित्त पर्वजन्म कृत पापोंका उदय देखि उनकी शांतिके निमित्त कहागया था २७७की अतिकोक्ति में देखी तेना यह भी है ॥ २८७ ॥ दोसौ अस्सी मूलप्रलोक से लेकर अपने नियम तोडि देनेका चर्चा चला आताहै तिससे निचले परिच्छेदमें भी नियम टूटिजाने के प्रायश्चित्त बरान होंगे कि जब किसी रजस्वला के नियम या पति का नियम या देवर जेठोंका उचित नियम टूटिजाय ॥ २८७ ॥

अथ रजस्वलाद्यगम्यागमनस्य रजस्वलायाश्च नियम भङ्गस्य प्रायश्चित्तप्रकाशकोऽयमपरिच्छेदः एकषष्टिः (६१)



इस परिच्छेदमें उन प्रायश्चित्तों का प्रकाश किया जावैगा जो पुरुष को रजस्वला भ्रमण करने से या भाईकी भार्या गमन करनेमें आवश्यकहै--और स्त्री जो रजस्वला होने परन्वर दो भिडि के नियम खोवै या कुत्ता वा चडान आदि मलीन जीवों को छुडके नियम तोडै तिनको आवश्यक है ॥

(अगम्यागमन प्रायश्चित्तं)

अथ-आत्माकी भार्यानि नियुक्त किये बिना गमन करते हुये चांग्रयाणा आचर-
न्यादि-नियोग कर्मकी आज्ञा पुर जनों से मिले बिनाही यदि कोई अपनेकोरे या

बड़े किसी भाई की विधवा आदि भार्यामें गर्भदान के मनोरथ से संगम करै सो भी एक महीना भर चांद्रायण व्रत साधै तब शुद्ध होय ॥ † ॥ उदक्यामें जाइके तीनरात्रि के पीछे घृत चाटिके शुद्ध होता है—अर्थात्—उदक्या रजस्वला यद्यपि अपनी भार्या होय तिसमें संगम करिके तीन दिन राति भर निराहार उपवास किये पीछे चौथे दिन घी खानेसे विशुद्ध होता है ॥ २८८ ॥

२८८ अधिज्ञोक्तिः—भावजमें संगमका प्रायश्चित्त जो ऊपर लिखा सो केवल एकवारके संगम और इच्छाके विना संगम होनेपर समुभ्रना=किन्तु=इच्छासे चाहि कर संगम या कईवार संगम कियाहो तिसके लिये शंखमुनिका कहा प्रायश्चित्त है=यदाह शंखः=परिवर्त्तिःपरिवेत्ताच संवत्सरंब्राह्मणागृहेषु भैक्ष्यंचरेयातांज्येषुभार्यानिनियुक्तोगच्छंस्तदेवकनिष्ठ भार्यांचेति=अर्थात्—परिवर्त्ति और परिवेत्ता भी एकवर्षभर ब्राह्मण के घरों में भिक्षामांगें तथैव अपने जेठे वा छोटेभाईकी भार्या में नियुक्त नहीं किया हुआ संगम करै सोभी इसी प्रायश्चित्तको आचरै ॥ † ॥ रजस्वला के संगमका जो प्रायश्चित्त ऊपर कहागया सो भी एकवार और चाहे विना संगम होजाने से समुभ्रना=किन्तु=कईवारके अभ्यासमें शातातपका कहा प्रायश्चित्त है=यदाह शातातपः=रजस्वलागमने सप्तरात्रं=अर्थात्—रजस्वला का संगम करने में सात रात्रिका व्रतकरै और इच्छासे चाहिकर एकवार भी संगम करने में यही प्रायश्चित्त है=परन्तु=जिसने कामनासे चाहिकर कईवारका अभ्यास किया हो तिसके लिये अग्रेक्त प्रायश्चित्त है=यथाह वृहत्सवर्तः=रजस्वलांतुयोगच्छेद्गर्भिणींपतितान्तथा तस्यपापविशुद्ध्यर्थमतिकृच्छ्रं विशोधनम्=अर्थात्—जो रजस्वलामें संगम करै या गर्भवतीमें करै या पतिता जो महापातकोंसे संयुक्त हुईहो तिसमें संगम करै तो इसपापी के पाप शोधनेको अतिकृच्छ्र प्रायश्चित्त है=इन्के सिवाय=जो शंख ने तीन वर्ष का प्रायश्चित्त कहाहै कि=यादस्तुशूद्रहत्यायामुदक्यागमनेतथा=अर्थात्—वारहवर्ष वाले व्रतोंको चौथाई तीनवर्ष भर शूद्रकी हत्या पर करना चाहिये तथा उदक्या रजस्वलाके संगम घर भी (सो यह तीन वर्षें चंडाली आदि अधम जाती रजस्वला के संगमपर और चंडाली आदि से उपरालू अन्य स्त्रियां जो रजस्वलाहों तिनमें अत्यन्त कामनासे अतिकाल तक अभ्यास राखने मध्ये भी समक्षि लेना ॥ ० ॥ भाई की भार्या का संगम अहांपर छोटे उपपातकों से आकर जुदा वर्णान किया गया किन्तु ब्राह्मणकीसे ऊपर जो रिश्तेमें अधिक पूज्य होतीहै उन स्त्रियों के संगम का बहुत बड़ा प्रायश्चित्त है वह कृत्तीसर्वे परिच्छेद से वर्णान होचुका तिससे अहां पर

भावज के सिवाय किसी और स्त्री का प्रसंग मत समझना केवल छोटी बड़ी दोनों भावजोंका प्रसंग है-तिसका यह कारण है कि आचारकांड में अरुसठि उनहत्तरि के दो श्लोक मूलके देखो (अपुत्रांगुर्वनुज्ञातोदेवरःपुत्रकाम्यया सपिंडोवासगोत्रोवा वृताभ्यक्तवृता वियात्र दं८ आगर्भसंभवाद्गच्छेत्पतितस्त्वन्यथाभवेत् अनेनविविना जातःक्षेत्रजोऽस्यसुतोभवेत् दं९) अर्थ द्योरेवार इनके आचार मर्यादा में देखो कि क्षेत्रज पुत्रकी उत्पत्ति चाहिके गुरुजनोंकी आज्ञा से गर्भ रहिजाने की अवधि तक प्रत्येक ऋतुकाल में इसी विधिसे संगम करना कहा परन्तु गुरुजनोंकी आज्ञा बिना यदि कोई देवर या जेठभाईकी भार्यामें चाहें सन्तानकी अपेक्षासेही संगम करैतोभी पतित होताहै यह इन्हीं श्लोकोंके अन्तमेंकहिचुकेये-तिसका प्रायश्चित्तइस कांड में आकर इसी दोसो अट्ठासी मूलश्लोक से योगीश्वर ने प्रकट किया ॥ २८८ ॥ गरुओंकी आज्ञा बिना जेठ भाईकी भार्या अगम्या ठहिरो तैसी निज अपनी पत्नी भी रजस्वला होनेकी हालतमें अगम्या होतीहै तिससे इसी दोसो अट्ठासीके उत्तरार्ध से उसकाभी प्रायश्चित्तकहा=रजस्वलाका छूना जैसा पतिको नियिद्धहै तैसाऔरभी सब लोगोंको नियिद्धहै तिन सबके प्रायश्चित्त पढ़िलेही तीसवें मूल श्लोकसे बर्णन होचुके तहां देखो=जैसा सब लोगोंको रजस्वला छूनेका नियेद्धहै तैसा रजस्वलाको भी और किसीका छूना प्रतिबिद्ध है तिससे यहांपर उसके भी प्रायश्चित्त अब र-गतिहै ॥ रजस्वलायांतुरजस्वलादिस्पर्शेप्रायश्चित्तं ॥ -तदाहृद्वृद्धवशिष्ठः- स्पृष्टेरजस्वलेऽन्योऽन्यंसगोत्रेत्वेकभर्तृके ॥ कामादकामतोवापिसद्यःस्नानेनशुद्ध्यती (असपत्न्योस्तु भवर्णायोरकामतःस्नानमात्रमितिमिताक्षरा) यतः-उदक्यातुभवर्णाया स्पृष्टाचेत्स्याद्दुःक्यया तस्मिन्नेवाहनित्नात्वाशुद्धिमाप्नोत्यसंशयमिति मार्कण्डेयस्म-रणात्=अर्थात्-दौरजस्वला जो सगोवाहों और एकही पतिको भार्या होकरपरस्पर वह इसको यह उसको स्पर्श करें चाहें इच्छासे चाहिकर या बिना इच्छाके चुवा छाई करी होय तो भी तत्काल स्नान करिके शुद्ध होजायंगी यह वशिष्ठजीनेकहा (और जो आपसमें नौतिसौति न हों पर एकही वर्णकी दोनों स्त्रियां रजोवतीहोय तिनके परस्पर बिना चाहे यदि चुवाछाई होनाय तो ये भी स्नानमात्र करिके शुद्ध होजायंगी यह मिताक्षरानेकहा) क्योंकि=मार्कण्डेयका यह कथनहै कि जो उदका किसी भवर्णा उदक्याने चुवाछाईहो तो उही दिन स्नानकरिके शुद्धको प्राप्तहोनायगा इसमें नन्देहहर्ही=और=जो भवर्णा दोनों होतेहुये इच्छामहित चुवाछाई करें तिनके सिधे अशोक प्रायश्चित्त है=यदाइ कथयतः=रजस्वलानुसस्पृष्टा ब्राह्मणयात्राभर्णा

यदि एकरात्रंनिराहारा पंचगव्येनशुद्ध्यति=अर्थात्—यदि ब्राह्मणी रजस्वला होते किसी ब्राह्मणी रजस्वलासे इच्छा सहित भिड़जाय तो एक दिन रातिका निराहार व्रत करिके पंचगव्य पीनेसे शुद्ध होती है ॥ ० ॥ जहां जुदे वर्राँकी दो उदक्या इच्छा सहित भिड़जाय तिनके प्रायश्चित्तोंकी विशेषता बड़े वशिष्ठने कही है=यथाहृ-
हृदशिशुः=स्पृष्ट्वारजस्वलाऽन्योऽन्यंब्राह्मणीशूद्रजाअपि कृच्छ्रंशाशुद्ध्यतेपूर्वा शूद्री दानेनशुद्ध्यति—स्पृष्ट्वारजस्वलाऽन्योऽन्यंब्राह्मणीवैश्यजाअपि पादहीनचरेत्पूर्वापाद कृच्छ्रंनथोत्तरा—स्पृष्ट्वारजस्वलाऽन्योऽन्यंब्राह्मणीक्षत्रियास्तथा कृच्छ्राद्वाच्छुध्यते पूर्वतित्तराचतर्द्धतः—स्पृष्ट्वारजस्वलाऽन्योऽन्यंक्षत्रियाशूद्रजाअपिउपवासैस्त्रिभिःपूर्वा त्वहोरात्रेणाचोत्तरा—स्पृष्ट्वारजस्वलाऽन्योऽन्यंक्षत्रियावैश्यजापिच त्रिरात्राच्छुध्यतेपूर्वात्वहोरात्रेणाचोत्तरा—स्पृष्ट्वारजस्वलाऽन्योऽन्यंवैश्याशूद्रीतथैवच त्रिरात्राच्छुध्यते पूर्वातित्तराचदिनद्वयात्•वर्राँनां कामतःस्पर्शाच्छुद्धिरेषापुरातनी=अर्थात्—ब्राह्मणी और शूद्रा दोनों रजस्वला होते परस्पर भिड़ कर ब्राह्मणी कृच्छ्रव्रत करने से और शूद्री दान करनेसे शुद्ध होती है—यदि ब्राह्मणी और बनेनी दोनों रजस्वला होते परस्पर भिड़जायँ तो ब्राह्मणी एक पाद हीन कृच्छ्र करे और बनेनी एक पाद कृच्छ्र करे—जहां ब्राह्मणी और क्षत्राणी दोनों रजस्वला होते परस्पर भिड़ जायँ तहाँ आधा कृच्छ्र करिके ब्राह्मणी शुद्ध होती है क्षत्रिया उस आधे का आधा करिके—जहां क्षत्राणी और शूद्रा दोनों रजस्वला होते परस्पर भिड़ें तहाँ तीन उपवासों से क्षत्रिया और एक दिन रातिका उपवास करिके शूद्रा शुद्ध होती है—जहां क्षत्राणी और बनेनी दोनों रजस्वला होते परस्पर भिड़ें तहाँ क्षत्राणी तीन दिन रातिके उपवासों से और बनेनी एक दिन रातिके उपवास करिके शुद्ध होती है—जहां बनेनी और शूद्रा दोनों रजस्वला होते परस्पर छुआछाई करे तहाँ तीन दिन रातिके व्रतोंसे बनेनी और दो दिनके व्रतों से शूद्रिनी शुद्ध होती है•यह पुरातन कालकी मर्यादा से वर्राँ के परस्पर कामना सहित भिड़ जानेकी शुद्धि बड़े वशिष्ठ ने दर्शाई ॥ ० ॥ जहां कहीं कामना के विना देव योग से ऊँचे नीचे वर्राँकी रजस्वला परस्पर भिड़ जायँ तिनके प्रायश्चित्तों की विशेषता आगे अब कहिते हैं=यदाहृ हृद्विप्याः=रजस्वलातुहीनवर्राँरजस्वलांस्पृष्ट्वा नतावदश्रियाद्यावन्नशुद्धास्यात् सवर्राँ साधकवर्राँवास्पृष्ट्वा सद्यःस्नात्वाशुद्ध्यतीति=अर्थात्—यदि कोई रजस्वला अपना से हीन वर्राँ रजस्वला को देव योग से भिड़ जायँ तो भिड़ने के बाद तब तक न भोजनकरे कि जबतक रजोरक्त यँभिजाने कास्नान करके शुद्ध न होजायग्रही प्राय

प्रिचत्त हे० परन्तु जो अपने बर्सा की या अपना से ऊँचे बर्सा की रजस्वला को देव
 योग से भिड़ जाय सो तत्काल ही स्नान करि शुद्ध होजाय किन्तु उस को अन्तिम
 स्नान तक भोजन छोड़ने की जरूरत नहीं रही ॥ यहाँ तक रजस्वला ही रजस्वला
 से भिड़ै तिसका चर्चा था ॥ ० ॥ अब आगे चण्डाल आदि किसी अत्यन्त
 मर्दान प्राणी से यदि कोई रजस्वला भिड़ जाय तिसके प्रायश्चित्त भी बड़े वशिष्ठ
 कहते हैं=यथाह वृहद्वशिष्ठः=पतितान्त्यश्चपाकेन संस्पृष्टाचेद्रजस्वला तान्यहानित्व-
 तिक्रम्यप्रायश्चित्तं समाचरेत्० प्रथमेऽह्निरावंस्यात् द्वितीयेद्वयहमेवतु अहोरात्रं ततो
 येऽह्निरतो नक्तमाचरेत् शूद्रयोच्छिष्टयास्पृष्टाशुनाचेतद्वयहमाचरेत्=अर्थात्-पतित
 जो महा पातकों से दूषित हो० अन्त्यज अनेक तरह के० अपाक चंडाल० इनसे यदि
 कोई रजस्वला छुड़ जाय सो अपने रजोधर्म के बाकी दिवसों को भोजन बिनाबता-
 वके पीछे से प्रायश्चित्त करै० किन्तु रजोरक्त जारी होने के पहिले दिन छुड़जाय
 सो तीन दिन का प्रायश्चित्त करै जो दूसरे दिन छुड़जाय सो दो दिन प्रायश्चित्त
 करै तीसरे दिन छुड़जाय सो एक दिन राति का व्रत करै इसके आगे जो चौथेदिन
 को आदि लेकर किसी दिन छुड़े होय सो एक राति ही भर का व्रत करै० और हाथ
 मुंह से जुटी शक्ति ने यदि किसी रजस्वला को छुड़लिया हो यदा कृत्ता ने छुड़
 लिया हो तो यह रजस्वला दोदिन का प्रायश्चित्त करै० इन प्रायश्चित्तके दिवसमें
 पचगव्य का आहार करना सूचित है कि जैसा ऊपरले किसी प्रायश्चित्तमें कहि
 चुके हैं- परन्तु ये वशिष्ठ के कहे प्रायश्चित्त उस दशापर आरूढ हैं कि जब रज-
 स्वला ने जानि नूभि दार स्पर्शकिया हो=अन्यथा=विना जाने देव योग से छुड़वाने
 सव्ये अशोक्त प्रायश्चित्त हैं=यथाह बौधायनः=रजस्वलातुसस्पृष्टा चांडालान्त्यश्चा-
 यमैः तावत्तिष्ठेन्निराहारायावत्कालेनशुद्धति=अर्थात्-जो कोई रजस्वला किसी प्र-
 कार के चंडाल वा अन्त्यज वा कृत्ता वा कोआ इनसे छुड़जाय सो तबतक आहार
 कुछ न करै कि जबतक रजोधर्म के बाकी दिन बिताइकर शुद्ध होजाय=परन्तु-
 यदि कोई रजस्वला किसी रोग आदि दो हेतु से अममर्थ होय जो कई दिन आहार
 के बिना रह सकीहो तिसके लिये उर्वा बौधायन ऋषिये द्वारा कहा है=यथा-
 रजस्वलातुसस्पृष्टायाः सहुकुसुमैः अतिःस्नान्यासिषेतावद्यावच्चंद्रस्यदर्शान्तम=अर्थात्-
 द प्राण के निवारी मुँह छुँकर कले आदि मर्दान जीवों में छुड़े रजस्वला तत्काल
 स्नान करिके तब तक भोजन न करे कि जब तक चंद्रमा का उदय हुआ न देखे
 ॥ ० ॥ जब किसी रजस्वला को भोजन करने समय कृत्ता आदि कोई मर्दान प्राणी

हुइ जाय तिसका प्रायश्चित्त विशेष और स्मृतियों में कहा है=यथा=रजस्वलात्
 भुंजानाश्चांत्यजादीन्स्पृशेद्यदि गोमत्रयावकाहारायडात्रेणैवशुद्ध्यति अशक्तौकांचनं
 दद्याद्विप्रेभ्योवापिभोजनम्=अर्थात्-भोजन करतीहुई रजस्वला यदि कुत्ता आदिवा
 चण्डाल आदि किसीको हुइजाय सो गोमत्र में पकाये जौ का दलिया खायकेछः
 दिन में शुद्ध होती है जो ऐसा न करसके किसी रोग आदि के हेतु से सो कांचन
 का दानकरै या ब्राह्मणों को भोजन करावै (इसमें जो छःदिन दलिया खाना कहा
 सो भी उन दिनों से उपराल प्रायश्चित्त है कि जब तक रजोधर्म जारी बना रहै
 अर्थात् खातीहुई भिड जाने पर तत्काल स्नान करै और तब तक निराहार उपवास
 करै कि जबतक रजोधर्म का अन्तिम स्नान होय तिस पीछे यह छः दिन का प्राय
 श्चित्त है) क्योंकि ऊपर जो वृहत् वशिष्ठ ने प्रायश्चित्त कहे तिनमें विनाखातेही
 हुइ जाने पर उतने दिन भोजन का नियेध होचुका है उसकी अपेक्षा यह अत्रोक्त
 दोष कुछ बडा है कि इस में खाते हुये चण्डाल आदि से हुइ गई ॥ ० ॥ जहां
 कहीं दो रजस्वला ही भोजन करते परस्पर जूठी भिडजायँ तिनके मध्ये अत्रोक्त नि
 यम है=यदाह अत्रिः=उच्छिद्योच्छिद्ययास्पृश्याकदाचित्स्त्रीरजस्वला क्वच्छेसाशुद्ध्यते
 पूर्वाशुद्रादानैरुपोयिता=अर्थात्-इस वचन में पूर्वा शब्द से हर एक ऊँचे वर्गों की
 समझना और शुद्रा शब्द के उपलक्षणों से हरएक नीचे वर्गों की समझना जो पर-
 स्पर दो भिडी हों उन्हीं में यह ऊँच नीच का विचार है कि-जब कोई रजस्वला
 स्त्री जूठीहोते किसी जूठी रजस्वलासे भिडि जाय तब ऊँचे वर्गों वाली उपवास करी
 हुई क्वच्छे व्रत करिके शुद्ध होती है और नीचे वर्गों वाली उपवास करी हुई अन्न
 वस्त्रादि दानों के करने से (उपवास करीहुई का यह अर्थहै कि रजोधर्म के जोकुछ
 दिन बाकी रहि गयेहों तिनमें कोरा उपवास करै फिर अन्तिम स्नान होजानेवादि
 प्रायश्चित्त करै ॥ ० ॥ जब कोई रजस्वला जूठे ब्राह्मणोंको स्पर्श करै तिसके लिये
 अत्रोक्त नियम है=यदाह मार्कंडेयः= द्विजान्कथञ्चिदुच्छिद्यान्रजः स्त्रीयदिसंस्पृशेत्
 अथोच्छिद्येत्वहोरात्रमूर्ध्वोच्छिद्येयहंसिपेत्=अर्थात्-कथंचित किसीप्रकारसे हाथ
 मुह जूठे ब्राह्मणों को रजस्वला स्त्री हुइ लेवै तौ यह रजस्वला यदि नीचे के अंगों
 में हुइ गईहो तौ एक दिन राति निराहारी रहै और ऊपर के अंगों में स्पर्श हुई हो
 तौ तीन दिन उपवास करै ॥ ० ॥ इसके सिवाय यदि कदाचित् किसी रजस्वला
 को कुत्ता गर्दभ आदि कोई अशुभ जीव काटि खाय या नाक से संघि जाय अथवा
 काक चिमगादर आदि कोई नीच पक्षी हुइजाय तिसका प्रायश्चित्त २७७ दोसौ

सतहत्तरि की अविक्रोक्ति में देखौ तहां स्त्रियों का विशेष नामक पाठ ढूँढि के उसके बीच पुलस्त्य मुनि का वचन (रजस्वलायदादद्याशुनाजंबूकरासभैः) इत्यारि दो श्लोक हैं सो अर्थों सहित ढूँढिलेना ॥ २८८ ॥

(इति व्रतलोप प्रकरणं)

इस प्रकरणा में समस्त पांच परिच्छेद माने गये हैं अर्थात् सत्तावन ५७ परिच्छेद को आदि लेकर ६१ इकसठि परिच्छेद के अन्तपर्यंत यहाँ तक सबका नाम व्रतलोप का प्रकरणा कहा गया क्योंकि यद्यपि हर एक परिच्छेद में जुदेजुदे वियर्थों के भेद वर्णन हुये तथापि सबमें व्रत लोप होजाना ही तात्पर्य पाया गया ॥

**अथसुतविक्रयाद्यनिष्टविक्रयोपजीवनाख्यस्य उपपातक
स्य प्रायश्चित्तप्रकाशकोऽयं परिच्छेदः द्विषष्टितमः (६२)**

—*—

इस विक्रय आदि खोटे विक्रयों से उपजीवन करने के पाप मिटाने योग्य प्रायश्चित्त कहे जायेंगे—आदि शब्दसे स्त्री और कन्या तथा गायपुरुष आदि का विक्रय तथा देवालय पुण्य बागीचा तीर्थ तालाब आदि का विक्रय भी समझि लेना किं जिनका बेचना प्रतियिद्ध है ॥

(सुतविक्रयादि प्रायश्चित्तं)

२३६ दोसौ छत्तीसवें मूल श्लोकमें व्रत लोप कहा गया था तिसका प्रायश्चित्त अवकीर्णों के नाम से कहिचुके उनके प्रसंग से कुछ और भी अनुपातक कर्ष पापों के प्रायश्चित्त यहाँ तक दर्शाये गये—अब उस बात पर ध्यान करो कि उहाँ दोसौ छत्तीस के मूल श्लोक में (सुतानांचैव विक्रयः) यह सतान का बेचना एक उपपातक बताया था तिसके लिये योगीश्वर ने कोई प्रायश्चित्त नहीं दर्शाया किन्तु २८ चवालीस के परिच्छेदमें २६५ दोसौपसठि मूल श्लोक और उसकी अविक्रोक्ति में मानान्द उपपातकों के प्रायश्चित्त जो वर्णन किये गयेये उनमें मनु और योगीश्वर के कहे प्रायश्चित्त नीत नहीं है—आदि की अवधिवाले कर्मभेद हैं उन्हीं की

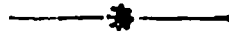
सुत विक्रय के पापमें यथायोग्य जोडिलेना अर्थात् कर्ता की जातिशक्ति देशकाल आदि के विचारसे और इसकेभी विचारसे कि इच्छा सहित बेचा या बिना इच्छा ही बेचना परा इत्यादि भेदों की ऊँच नीच पर उनमें से बड़े छोटे प्रायश्चित्तों की व्यवस्था कल्पित करलेनी चाहिये ॥ ० ॥ परन्तु जहाँ कहीं अकाल की विपत्ति में या और किसी भारी विपत्ति में इच्छा के बिनाही लाचारी से सन्तान का विक्रय किया गया हो तहाँ उनसे छोटा प्रायश्चित्त है=यदाह शंखः=देवग्रहप्रतिग्रयोद्याना रामसभाप्रपातडागपुण्यसेतुसुतविक्रयंकृत्वात्तत्तच्छ्रुं चरेत्=अर्थात्—देवगृह यद्वा देवग्रह•प्रतिग्रय• उद्यान• आराम• सभा• प्रपा• तडाग• पुण्य• सेतु• सुत• इनका विक्रय करिके तत्तत्तच्छ्रुं व्रत आचरै= अर्थात्—इस वचन में (देवगृह) ऐसा पाठ होने से देवता का मंदिर आदि अर्थ है और (देवग्रह) ऐसा पाठ होने से देवता के पात्र पार्यद आदि और यज्ञों के पात्र अर्थ होता है तिससे द्विपाठभी सार्थक है•प्रतिग्रय यज्ञस्थान का नाम है कि जिस जगह या जिस मकान में यज्ञ आदि किसी तरहका पूजा पाठ सत्कर्म सदा निरन्तर वा अन्तरसे होता रहिता हो किन्तु इन्हीं निमित्तों का स्थान जुदा होय सो प्रतिग्रय कहा जाता और पञ्चायती चौपार आदिभी प्रतिग्रय कहिलाता है • उद्यान बागीचा आदि • आराम किसी ऐसे उपवन का नाम है कि जिसमें राजाआदि बड़े मनुष्यों का मुसाफिरी पडाउ भी वृक्षादि की छाया से होता हो • सभा मर्दानी बैठक आदि कचहरी मकानों का नाम है • प्रपा पिआऊ जो निरन्तर मनुष्यों तथा पशुओं को पानी देती रहती हो • तडाग तालाव आदि • पुण्य कर्म जो अपना या अपनेबड़े पुरुषोंका पहिला किया प्रसिद्ध होय • सेतु जल के बंधान जो बड़े छोटे अनेक भाँतिके होतेहैं • सुत शब्दसे सन्तान मात्रका तात्पर्यहै कि चाहें अपना बेटा होय या पोता परपोता धेवता भतीजा आदि कोई हो इसी लिये योगीश्वरने दोसौ छत्तीस मूलश्लोक में (सुतानांचैवविक्रयः) सुतों का बहुत्व करिके कहा था कि सब तरहके सुत समझे जायँ=इसी प्रकार=गाय और कन्या बेचनेका छोटा प्रायश्चित्त है=यदाह पराशरः=विक्रीयकन्यकांगांच कच्छ्रुं सांतपनं चरेत्=अर्थात्—कन्या वा गाय को (उसी प्रकार की विपत्ति जैसी ऊपर लिख चुके तिसमें) बेचिके कच्छ्रुं सांतपन व्रत आचरै ॥ ० ॥ परन्तु जिसने इच्छासे चाहि कर सुतका वा कन्याका विक्रय कियाहो तिसके लिये चतुर्विंशतिमत ग्रंथ का अशोक्त प्रायश्चित्त है=यथा=नारीणां विक्रयंकृत्वा चरेच्चांद्रायरात्रतम् द्विगुणांपुरुषस्यै वव्रतमाहुर्मनीषिणाः=अर्थात्—स्त्रियां चाहें अपनी वा कही से हरिलाई हुई आदि

किसी प्रकारकी हों तिनको बेचनेवाला मासिक चांद्रायणा व्रत करै तब शुद्ध होय और इसी प्रकार जिसने अपने वा पराये पुस्तक का विक्रय किया हो तिस पर दूना प्रायश्चित्त चाहिये यह प्राचीन मनीषी लोगोंने कहा इस दशापर ४४ चर्वालिस परिच्छेद वाले प्रायश्चित्त भी यथायोग्य आच्छेद होसके हैं ॥ ० ॥ इन सब से उपराल जो पैठीनसिने सालभरका प्रायश्चित्त कहा तिसका आशय कुछ औरहै सोभी देखौ=यदाह पैठीनसिः=आरामतडागोदधानपुष्करिणी सुकृतविक्रयेत्रियवरास्त्राय्यधःशायी चतुर्थकालाहारःसंवत्सरेणापूतोभवति=अर्थात्-आराम • तडाग • उदधान • पुष्करिणी • सुकृत • इनमे से किसी को बेचने में विक्रेता पर यह प्रायश्चित्त है कि साल भर तक त्रिकाल स्नान करते हुये धरती पर शयन और दिनके चौथे कालमें एक बार भोजन किया करै तब शुद्धहोय—यह इतना बड़ा प्रायश्चित्त ऐसी दशाओं पर आच्छेद है कि जिसपर कोई आपत्ति नही किन्तु विपत्तिके न होतेहुये चाहना करिके पुत्र आदि कोई वस्तु इनमेसे बेचीहो यदा एकही पुत्र जिसके हाथ तिसने बेचि डाराहो या जेठा पुत्र बेचिदियाहो यदा कई पुत्र होनेपर भी उस पुत्र को बेचा हो जो अपने बेचिदेनेका इन्कार भी आपही करता रहा अर्थात् उसी पुत्रकी इच्छा विना उसका विक्रय करडाराहो • इसी प्रकार कन्या और स्त्री आदिको अपेक्षा में भी समझिलेना और गायकी अपेक्षा में यह समझिलेना कि जिसने ऐसे किसी दुष्ट के हाथ गाय बेचीहो जहां जाकर खाने पीने आदिका दुख पावैगी ॥ २८८ ॥ यह भी इसी दोसौ अट्ठासी वाले मूलश्लोककी टीका वा अविकोक्ति का श्रेय पाठहै तिससे इसपर भी वही अंक लगाया गया कोई मूलश्लोक इसमें नहीं है ॥ २८८ ॥

सुत विक्रयसे उपरान्त योगीश्वरने दोसौ सैंतीस २३७ मूलश्लोक में (धान्यकृष्ण पशुस्तेय) अन्न और सीसा रांगा आदि धातुओंकी चोरी रूपी उपपातक नामवरा था—तिसके प्रायश्चित्तभी ४६ छेयालिसवें परिच्छेद मे बरान होचुके क्योंकि वह परिच्छेद सब छोटी मोटी चोरियों के नामसेही नियत हुआ था कि जिसमें अन्न और धातुओं तथा पशुओंकी चोरी किन्तु मनुष्योंका हरण पर्यन्त बरान होगया=उसी दोसौ सैंतीस में (अथाच्यानां याजनं) यह भी एक उपपातक बताया था तिसके प्रायश्चित्त यहां तिसठि परिच्छेद मे योगीश्वर आपही दर्शावैगे वल्कि इसके साथ और भी दो तीन उपपातकों के प्रायश्चित्त ॥

अथयाज्ययाजनादिचतुर्विधोपपातकविशेषानां प्राय

श्चित्तप्रदृशकोऽयंपरिच्छेदः त्रिषष्टितमः (६३)



इस परिच्छेद में ब्राह्म्य आदि अयाज्यों को यजन कराने वाले परिणत कर्मकांडी का प्रायश्चित्त कहा जायगा और वेद का विघ्नावन (वृथाबखेर) करने वाले वेद पाठी का प्रायश्चित्त कहाजायगा और अभिचार (मारणा उच्चाटन आदि प्रयोग विधि) करनेवाले संव्र शास्त्री का प्रायश्चित्त और शरणागत की रक्षा न करनेवाले वनवान् और जनवान् और शूरमा का प्रायश्चित्त कहा जायगा ॥

(ब्राह्म्ययाजनादि प्रायश्चित्तं)

त्रिन्क्षुद्रानाचरेद्ब्राह्म्ययाजकोऽभिचरन्नपि † वेदप्लावायवान्यब्दंत्यक्तवाचशरणागतम् २८९

अर्थः—ब्राह्म्ययाजक तीन क्षुद्र आचरै• अभिचरणा करतेहुये भी यही † वेदप्ला-
वी अन्ध्र जौ खाय• शरणागतको त्यागिके भी यही=अर्थात्—ब्राह्म्य वेहें कि जिन
को गायत्री का उपदेश न होनेसे ४५ पैतालिखके परिच्छेद में प्रायश्चित्त कहे गये
थे उन प्रायश्चित्तों को न करनेवाले ब्राह्म्यही रहे आते हैं तिनको यदि कोई पावा
परिणत आदि किसी तरह का यजन पूजन करावै सो इस कर्मसे उपपातकी होता
है वह तीन क्षुद्रोंको साथै तब शुद्ध हुआ ठहिरै• तथा अभिचार कर्म स्वी प्रयोग
करने वाला परिणत यही तीन क्षुद्रोंका प्रायश्चित्त करै † जो कोई वेदपाठी आदि
वेदका विघ्नावन करै सो एक सालभर जौका भात खाकर तप करै तब शुद्ध होय•
तथा जिस किसी समर्थ ने अपनी शरणा में आये हुये की रक्षा न करिके निकासि
दियाहो या उसके शत्रुओंको सोंपि दियाहो सोभी एक वर्षभर जौका भात खाकर
तप करै ॥ २८६ ॥

२८६ अधिकोक्तिः=अत्रमिताक्षरायथा (यस्तुसावित्रीपतितानांयाजनं करोति
साप्राजापत्यप्रभृतीन्त्रीन्क्षुद्रानाचरेत् तेषांचगुरुलघुभूतानांक्षुद्रानाचरेत् तेषांच
गुरुलघुभूतानांक्षुद्राणां त्रित्वंनिसित्त गुरुलघुभावेनकल्पनीयं) अर्थात्—सावित्री से
पतितोंको यजन यज्ञादि जो कोई परिणत करावै सो प्राजापत्य आदि नामोंके तीन

कृच्छ्र आचरै तिनमें भी बड़े छोटे रूपवाले कृच्छ्रोंका तीया ३ पाप रूपी निमित्तों
 की बड़ाई छोटाई देखिके कल्पना किया जाय=और=मूल के पूर्वार्ध में अभिचार
 कर्म कहा तिसका अर्थ अथर्वरावेद या तंत्रके मार्ग से मारणा उच्चारण आदि प्रयोग
 समझिलेना कि जिनमें हिंसारूपी फल उत्पन्न होताहो (परन्तु हिंसाके प्रसंगसे उस
 भांतिकी हिंसा मत्र समझिलेना जो धर्मशास्त्र में छे भांति के आततायियों के कर्म
 वियदेना आग लगाना आदि प्रसिद्ध हैं क्योंकि उस हिंसाके प्रायश्चित्त महापातकों
 में गिनती बहुत बड़े होतेहैं) इस बातका प्रमारा भी वशिष्ठका यह वचनहै कि (व
 त्स्रभिचरन्पततीति वशिष्ठः) आततायियों के छे कर्मोंमें से कोईसा अभिचार करै
 सो पतित होजाता है ॥ यहां केवल छोटे उपपातकों के प्रायश्चित्त हैं और मूल के
 पूर्वार्धमें अपि शब्दका योगहै तिसके ध्वन्यर्थसे अहीनको यजन करानेवाला पंडित
 और प्रेत कर्म करानेवाला परिडत भी उसी तीन कृच्छ्र वाले प्रायश्चित्त के योग्य
 माने गयेहैं-तथाच मिताक्षराकाराः (अपिशब्दोऽहीनयाजकांत्येष्टियाजकयोःसग्रहा
 र्थः) और इसी लिये मनुका वचन भी प्रसारामें दियाहै=यदाह मनुः=ब्रात्यानांया
 जनंकृत्वा परेयासंत्यकर्मच अभिचारमहीनंचविभिःकृच्छ्रैर्व्यपोहति (परेयासंत्यमेत्य
 त्यंताभ्यासविययं शूद्रांत्यकर्मविययंवाप्रायश्चित्तस्यगुरुत्वात्) अहीनोद्विराप्रारि
 द्वादशाहपर्यन्तोऽहर्गंगायागः=अर्थात्-मनुने यह कहाहै कि ब्रात्योंको यजन करावै
 या मृतकोंका प्रेतकर्म ब्रात्योंके सिवाय अब्रात्योंको भी करावै या अभिचार प्रयोग
 करै करावै या अहीनको यजन करावै ये सब तीन तीन कृच्छ्रोंसे पाप धोय सकते हैं
 (औरोंका प्रेतकर्म जो इस वचन में कहा सो अत्यन्त और निरन्तर उसी में तत्पर
 होजाने पर यह तीन कृच्छ्रका प्रायश्चित्त समझना किन्तु आपस की जखरियात
 निर्वह कराने मध्ये कभी कभी जो प्रेतकर्म कराना परै तिसपर इतना बड़ा प्राय-
 श्चित्त सूचित नहीं अर्थात् उसमें यथा सम्भव शरीरकी शुद्धि और गायत्री का जप
 ही किया जाय• अथवा यह तीन कृच्छ्रोंका बड़ा प्रायश्चित्त शूद्र आदि नीचजातों
 का प्रेतकर्म एकही दो बार करानेपर समझिलेना) और अहीनको यजन करानात्री
 एक उपपातक इहीमनुकेवचनमें दर्शाया गया सो दो रात्रको आदि लेकर द्वादशाह
 तक अहर्गंगा नामका एकयाग विशेष कहाताहै तिसकाकराने वाला परिडत दोर्था
 टद्विरताहै यहतात्पर्य समझना ॥०॥ उदालकनामका एकव्रतविशेष जो कटिनप्राय-
 श्चित्तहै सोपहिले दर्शानहो चुकाहै उसीकोशातातपने इस विययपरभी दर्शायाहै=
 यदाहगातातप= पतितसावित्रीकान्नोपनयेत् नाध्यापयेत् यस्तानुपनयेदध्यापयेद्यात्र

येहा सउहालकव्रतंचरेत्=अर्थात्-गायत्री से पतित जो ब्राह्मण होय तिनको प्रायश्चित्त करानेविनाकोई पंडितयज्ञोपवीतन करावै नपढावै औरजोकोई इनकोउपनय करावै या पढावै या कोईसा यजन करावै सो उहालकनामी व्रत करै-यह कठिनव्रत उसके लिये समझना जो नियेध के प्रसिद्ध होने पर भी अपने हठ से ऐसा करै ॥ ० ॥ यह तीनि कृच्छ्रों का प्रायश्चित्त जो कहिचुके सो उन प्रायश्चित्तों का अपवाद निरा-दर छूट दर्शाता है जो ४४ चवालिस परिच्छेद में साधारण उपपातकों पर वर्णन किये गये थे तिनकी पहुँच यहां पर नहींरही परन्तु इन्हीं निमित्तों पर कि जोजो पाप यहां वर्णन होचुके=अर्थात् वे चवालिस परिच्छेद वाले प्रायश्चित्त कृच्छ्रकृच्छ्र बड़े हैं तिनकी पहुँच यहां उस दशापर आरूढ है कि जिस किसी पंडित ने शूद्र आदि निषट अयाज्यों को यजन वा अयापन कृच्छ्र कराया हो• इसमें भी जिसनेहठ से ऐसा किया हो तिसपर उस ४४ परिच्छेद वालो तीन महीना को प्रायश्चित्त चाहिये जिसने धोखा या लाचारी आदि किसी हेतुसे शूद्र आदिको यजन कराया हो तिसपर योगीश्वर के बताये २६५ प्रलोक वाले प्रायश्चित्त चाहिये जिन में एक महीना दूध पीना आदि कहाया ॥ ० ॥ और जो प्रचेताने शूद्र याजकआदि दैयी के नाम धरने के साथ ऐसा कहा है कि=एते पंचतपोऽभ्याऽवकाश जलशयनान्यनु तिष्ठेयुः क्रमेणाग्नीष्मवर्षाहिमंतेषुभासंगोमत्रयावक मञ्जोरितितत्कामतोऽभ्यासविय-यं=अर्थात्-ये शूद्रयाजक आदि सब दैयी• पञ्चाग्नि तापना १ विनाछये अवकाश में बैठना २ जल में लेटना ३ तीनों वातक्रम से ग्रीष्म ऋतु में १ वर्षा ऋतुमें २ शीत ऋतु में ३ एक एक महीना भर आरोपित करै तब उस महीना भर गोमूत्रमें रँवेजौ का दलिया खाइके रहै-सो यह प्रायश्चित्त उसके ऊपर आरूढ है जिसने हठ के साथ बार बार का अभ्यास किया होय ॥ ० ॥ और एक यम का वचन है कि=पुरोधाःशूद्रवर्णस्यब्राह्मणोयःप्रवर्तते स्नेहादर्थप्रसंगाद्वातस्यकृच्छ्रोविशोधनस=अ-र्थात्-यादि कोई ब्राह्मण किसी शूद्र वर्णका पुरोहित बनै अथवा स्नेह प्रीति से या धन के लालच से ही पुरोहितों वाले कर्म का वर्तवा करै तिसकी शुद्धि एकही कृच्छ्र करने से होगी-सो यह एकही कृच्छ्र अशक्त के लिये समझना जो जीविका से असमर्थ होके ऐसाकरै ॥ ० ॥ और एक पैठीनसिका वचनहै कि=शूद्रयाजकःसर्व द्रव्यपरित्यागात्पुनोभवति प्राणायामसहस्रेषुदशकृत्वोभ्यासेवेदितव्य (तदप्यक्राम तोऽभ्यासवियर्गमितिमिताक्षरा=अर्थात्-शूद्रको एकहीबार यजनकरानेवाला उससे मिला हुआ सब द्रव्य परित्याग करनेसे पवित्र होताहै पर जिसने दशबार कर्मकराने

का अभ्यास किया हो सो तीन सहस्र प्राणायामोंके भी करने में पवित्र होगा यह जानना चाहिये—यह प्रायश्चित्त उसके लिये समझना जिसने इच्छा के बिनाही बारवार का अभ्यास किया हो ॥ ० ॥ और एक जो गौतमका वचन है कि=नियिद्ध संवप्रयोगेसहस्रवाकप्रचेदिति नियिद्धानांपतित्तादीनांयाजनाध्यापनात्मकेसंवप्रयोगे बहुशोऽभ्यस्तेप्राहृतंत्रह्यचर्यमुपदिष्टं (तत्क्रामतोऽभ्यासवियर्यामितिमिताक्षरा=अर्थात्—नियिद्ध मनुष्य जो पतित आदि अनेक होते हैं तिनके लिये यजन अध्यापन रूपी मन्त्र का प्रयोग जो कोई सहस्रों वारों से अर्थात् बहुत बारका अभ्यास करे तिसको प्राहृत ब्रह्मचर्यका उपदेश गौतमने किया है (सो कामनारूपी हठसे अनेक बारके अभ्यास पर समझना यह मिताक्षराने कहा—यहाँतक पर्वार्द्ध की अधिकोक्ति परी हुई ॥ १ ॥ अब उत्तरार्द्धका चर्चा है कि जो कोई वेदका विप्लावन करे या जोकोई रक्षा करने में समर्थ होते चोर आदि से उपराल किसी सज्जन को अपनी शरणा में आया देखि रक्षा न करे सोभी एक सालभर जौका दलिया खाइके तपकरे तब शुद्धहोय—यहाँ—वेदका विप्लावन यह कहाता है कि अनेक भांतिके खांटे अध्याय जो होते हैं कि जिनमें वेद न पढना चाहिये दुष्टांत जैसे पर्वत या चंडाल के कान जहाँ पर्वचिमकें इत्यादि स्थान भेदसे वेदका पाठ करना नियेध फिर और भी निमित्तों के उत्पन्न होने में काल भेद से भी पढनेका नियेध है फिर पर्यनुयोगरूपी सजूरीका दान देकर पढनेका नियेध है—किन्तु जहाँ जहाँ पढने का नियेध है तहाँ तहाँ पढने से वेदका विप्लावन कहाता है—पर्यनुयोगरूपी दानदेना मनुके इसवचन से भी नियिद्ध है कि (दत्तानुयोगानध्येतुःपतितान्मनुरब्रवीत्) अनुयोगों को देकर पढनेवालोंको पतित मनुने कहाहै ॥ ० ॥ और एक बशिशु का यह वचन है कि=पतितचंडालशावयवगोत्रिरात्रंवाग्यताञ्जनघ्नंतआसीरन्सहस्रपरमंवातदभ्यस्यतः पूतोभयतीतिविजायते इतिसतेनैवगर्हिताध्यापकयाजकाव्याख्याता दक्षिणात्यागापूतोभवतीतिविजायते इति (तद्विद्विपूर्वविययं=अर्थात्—पतित•चंडाल•मुर्दकेसार्थी•इनके कानमें आवाजपहुंचे ऐसे स्वरसे वेद पढनेवाले तीनदिन रातिभर मौन साधेहुये अब कुछ न खाके रहें और सहस्र (उंकार) या (तत्सत्) यह संव अभ्यास करते हुये पवित्र होताहै यह जानागया सो इसी प्रायश्चित्त से नियिद्ध को बढाने वाले और नियिद्ध को यजन करानेवालेभी व्याख्या कियेगये कि इनको भी वहीप्रायश्चित्त करना चाहिये और इनके लिये यह नियेधता है कि मिलाहुईदक्षिणात्यागि देनेके ली शूद्र होते हैं यह जानागया (सो यह प्रायश्चित्त जानिवृष्णि सेसाकरने पर

आरूढ है ॥ ० ॥ एक यह अट्त्रिंशत्तत्का वचन है कि=चांडालयोश्चावकाशेऽश्रुतिस्मृ-
तिपाठेऽक्षरात्रसभोजनसिति (तद् बुद्धिपूर्वविषयं=अर्थात्—चण्डालके कानोंमें शब्द
पहुँचने की जगह पर श्रुति वा स्मृतिका पाठ करने वाला एक दिन राति भर निरा-
हार उपवास करे—सो यह विनाजाने धोखासे ऐसीजगह पाठकरनेपर आरूढ है ॥०॥
जहाँ कहीं पढतेपढाते समय गुरु और शिष्य दोनों के बीचमें साँप सूताआदि कोई
जीव निकसाचलाजाय तहाँ उसी समय पढाना बन्द होकर अनध्याय होजाता है।
तिसपरभीप्रायश्चित्त यत्ने कहा है=यथाइ यमः=सर्पस्यनकुलस्याथ अजमाज्जरयो
स्तथा सूक्ष्मस्यतयोऽस्यमंडूकस्यचयोषितः पुरुषस्यैवकस्यापिशुनोऽश्वस्यखरस्यच
अन्तरागमनैसद्यःप्रायश्चित्तमिदंशृणु त्रिरात्रमुपवासप्रचत्रिरहश्चाभियेचनस्य ग्रामा-
न्तरंवाशंतव्यंजानुभ्यांनावसंशयः=अर्थात्—साँप• नेउरा• बकरा• बिलार• मूसा• ऊंट•
मेढुका• या किसी प्रकारकी स्त्री• वा पुरुष• या कुत्ता• या घोड़ा• या गदहा• ये
गुरु शिष्यके बीचमें आजायँ तौ तत्कालही यह प्रायश्चित्त चाहिये सो सुनौ तीन
रात्रि उपवास भी और तीन दिन अभियेक स्नान भी करे अथवा यह न हो तौ घु-
सनोंसे चलते हुयेदूसरे ग्रामकी यात्रा करनी चाहिये एक योजन मात्र इसमें सन्देह
न करना चाहिये ॥ २८६ ॥

इत्ययाज्ययाजनवेदप्लावनादिप्रायश्चित्तचतुष्कं ॥

अथपितृमातृसुतत्यागकन्यादूषणाद्विदशोपपातकप्राय
श्चित्तप्रकाशकोऽयंपरिच्छेदः चतुःषाष्ठितमः (६४)

—*—

इस परिच्छेद में दश ग्यारह उपपातकों के प्रायश्चित्त प्रकाश कियेजायँगे
तिन्नें प्रथम पिता माताका त्याग सुतका त्याग गुरुका त्याग• फिर क-
न्या सूक्ष्मसाका प्रायश्चित्त• फिर• परिविन्दक याजन• उसको
कन्यादान देना• झुटिलता करना• निज व्रतोंके नियम तोडिदेना•
आत्मार्थ पाक बनाना• सद्यप स्त्री घरमें होना• ये भी छे प्र-
कार उपपातकों के प्रायश्चित्त कहे जायँगे ॥

यहाँसे आगे अवतक २६० का मूला श्लोक न मिले तवतक यह समुभिलेना कि

ये चारों परिच्छेदोंकी व्यवस्था २८९ दोसौनवासीकी अधिकोक्ति के शेष पाठमें से चली आती है क्योंकि दोसौनवासी मूल श्लोकवाली टीका बहुत लम्बी चौड़ी है तिसमेंसे जितनापाठ मूल श्लोकहीसे सम्बन्ध रखताथा उत्तनेकी अधिकोक्ति उसके रही तो ऊपरके परिच्छेद में गई वाकी रहे पाठके चार परिच्छेद होंगे। तिस पीछे ६८ अरसठिके परिच्छेदमेंजाके २९० दोसौनव्वेका मूलश्लोक आवेशा यह व्योरा केवल जिज्ञासु विवेकियों के समुझाने की लिखा गया ॥

(पितृमातृसुतगुरुत्यागप्रायश्चित्तं)

अथाऽयं याजनके वादि योगीश्वरने(पितृमातृसुतत्यागःतडागाराभिविक्रयः२३७) ये दोसौनवासी मूल श्लोकमें दो उपपातकोंके नाम गिनती कियेये पर इनके इन्हीं नामोंसे कोई प्रायश्चित्त जुड़े नहीं दर्शाये—तिससे ४४ चवालिस परिच्छेदवाले मनु और योगीश्वरके बताये साधारण प्रायश्चित्तोंको इनपर भी यथायोग्य जाति शक्ति गुणानिमित्तके स्वरूपों अनुसार कल्पित करलेना चाहिये=और=पिता माता सुतोंके निकामिदने मध्ये और भी अपांक्त्ये पुरुषोंवाले प्रायश्चित्त जोडिलेने चाहिये जैसा यह वचनहै कि=अकारणोपरित्यक्ता मातापित्रोर्गुरोस्तथा इत्यपांक्त्ये मध्यपादात्तन्निमित्तनपि प्रायश्चित्तं भवति=तदाहमनुः=यथान्नकालतासास संहितात्रय एववा होमाश्चत्नाकज्ञानित्यमपांक्तानांविशोधनम्=अर्थात्—प्रबल कारणादेउत्पन्न होने बिना माता पिताका त्यागनेवाला या गुरुकोत्यागि भागनेवाला भी अपांक्त्ये पुरुषोंमें गिनती है तिससे जो अपांक्त्यों के प्रायश्चित्तहैं सो इस त्यागनेवाले पर भी आरुह कियेजायें=अपांक्तोंके प्रायश्चित्त मनु ने कहे हैं कि=यथान्न कालताके दो अर्थ होते हैं एक तो छठे दिन भोजनका नियम दूसर छठे समयका अर्थात् एक दिन में दो समय भोजन करना प्रसिद्ध है तिस हिसाब से अढ़ाई दिनके पांच का भोजन तब भोजन का त्याग राखनेवादि उस तीसरे दिनकी रात्रि में भोजन करे सो छटा अन्नकाल होनाहै बल्कि यही नियम सम्भव देखि परताहै क्योंकि पांच दिन कोरा व्रत करिके छठे दिन अन्नखाना बहुत दुर्घट देखिपरताहै। तथापि दोनों नियम टीका समुझना दिवन्तु•मनु कहिते हैं कि एकसहीनाभर छठे दिनका या छठे समयका नियम सावें अथवा वेद संहिताका जपहीकरें परन्तु उस महीना भर नियम प्रति साकल्यों से होज करते रहे तब सब तरह के अपांक्त्येजन शुद्ध होते हैं (मनु अपांक्तोंके नाम चिन्ह देखनेहो तो आचार मथ्यादावाले कागडमें याद प्रकरणके

बीच १२१ एकसौइक्कीस मूलप्रलोकसे १२२-१२३ तक तीन प्रलोकोंकी व्यवस्था देखी तहांसबकेस्वरूपकथनहोचुकेहैं ॥ इतिपितृमातृसुतगुरुत्यागप्रायश्चित्तं ॥ सुत त्याग का प्रायश्चित्त आगे पैसति६५ के परिच्छेद में दूसरी भांतिसेभी आवेगा क्योंकि योगीश्वरने २३९ मूल प्रलोकमें (सुतत्यागोवाग्धवत्यागशब्द) इस वाक्यसे दुबारा उसका जुदा रूप कहाथा ॥

तडागा राम विक्रयके प्रायश्चित्त कुछ विशेषता सहित ऊपरले ६२ वासठिके परिच्छेद में सुत विक्रयके साथ वर्णन होचुके तहां देखी=इसके अनन्तर योगीश्वर ने (कन्या सन्दूयसां) इस नामका उपपातक २३८ दोसौ अइतीस मूल प्रलोक में दर्शाया था तिसका प्रायश्चित्त जुदा यद्यपि योगीश्वर ने आप नहीं कहा तथापि यहां देखी ॥

(अथकन्यादूषणाप्रायश्चित्तं)

कन्या सन्दूयसाके लक्षणा २३८ की अधिकोक्तिमें ठीक ठीक लिखिचुके हैं—सिताक्षराकार कहिते हैं कि सर्व सामान्य उपपातकोंकी प्रायश्चित्त मर्यादा जो ४५ चवालिस परिच्छेद में प्रकाश होचुकी है उसीमें से त्रैमासिक द्वैमासिक चांद्रायसा आदि प्रायश्चित्त यहां पर उसके लिये लगाना जो कन्या का सबसीं पुरुष होते कन्या दूयसा पापका भागी बनाहो—परन्तु—जहां अनुलोम मार्गसे कन्यादूयसा पाप हुआहो कि नीचे वर्साकी कन्या और ऊंचे वर्सांका दोसो पुरुष होय तहां भी उसी परिच्छेद वाले प्रायश्चित्तों में योगीश्वर का बताया सक महीना भर दूधपी के व्रत कराना यद्वा प्राजापत्य कराना चाहिये क्योंकि (सक्रानास्वतुजोनासुनदोयस्त्वन्यथादसः) व्यतहार मर्यादाके दंडबाले प्रकरसासे ऐसी दशापर तिसद दंडका न होना या थोडा दंड होना कहा गयाथा कि जहां ऊंचे वर्सांका पुरुष और नीचे वर्सांकी सक्रान कन्यासे साक्षात् संगम हुआ होय—और यहांपर कुछ कन्यासे संगम करने का प्रसंग नहीं केवल अंगुरी आदिसे या हाथोंसे अंगही दूधित करने का यह प्रायश्चित्त है तिससे जैसा कुछ बहुत या थोडाही दोष पायाजाय तैसा प्रायश्चित्तभी महीना भर दूधपीके व्रत कराना या बारह दिन का प्राजापत्यकी करवाना समर्थ लिखाजाय ॥ ० ॥ इसके सिवाय शांख और हारीत के दो वचन हैं तिनके ऊपर हेतु गर्भित व्यवस्था सिताक्षराकारने दर्शाई है सोभी देखो=यत्तुशांखेनोक्तं=कन्यादोषी सोमविक्रयीच छच्छ्रसद्वंद्वरेयाताम्=अचहारीत वचनं=कन्याविक्रयी सोमविक्रयी

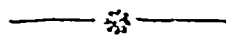
वृथलीपतिः कौशारदारत्यागीसुरामद्ययः शूद्रयाजकीपुरोःप्रतिहन्ता नास्तिकवृत्तिः
 कृतघ्नःकूटव्यवहारीमित्रघ्नश्च शरणावघातीप्रतिरूपकवृत्तिरित्येते पंचतपोऽभावकारा
 ज नशयनान्यनुतिप्टेयुर्ग्रीष्मवर्षाहेमन्तेषु सासंगोमूत्रयावक मञ्जीथुरिति-तदुभयमपि
 क्षत्रियवैश्ययोःप्रतिलोभ्येनदूयगोयोजयं—शूद्रस्यतुवधसव (दूयगोतुकरच्छेदउत्तमायां
 वधस्तयेति वधदर्शनादिर्तमित्ताक्षरा=अर्थात्—शांखने जो कहाहै कि कन्याका दोषी
 और सोम बेचनेवाला ये दोनों एक सालभर कच्छू व्रत आचरें=और हारीतका जो
 बचनहै कि=कन्याका बेचनेवाला तथा सोमका बेचनेवाला और वृथली जो पांच
 प्रकारकी कहिचुके तिनका पति और कुमार वा यौवन अवस्थामें पत्नीको त्यागि
 देनेवाला और सुरामद्य का पीनेवाला और शूद्रकी पुरोहिताई करनेवाला और गुरु
 का आदेश टालनेवाला और नास्तिकवृत्ति राखनेवाला और कृतघ्न जो किसी गौ
 का क्रिया उपकार मेटे या अपना वा अपने बड़ोंका संचित पुण्य मेटिदेवे और कुल
 का व्यवहार करनेवाला और मित्रसे दगा करनेवाला और अपनी शरणा आयेहुये
 से विद्याम घात करनेवाला और प्रतिरूपकवृत्ति जो ब्राह्मण आदि किसी उत्तमका
 रूप धरिंके उसकी वृत्ति जीवि का आदि की नकल उत्तारै ये सभी इतने अन्यायी
 पुस्त्य एक महीनाभर ग्रीष्मऋतुमें पंचाग्नि तर्पे और वर्षा ऋतु में वरसते समय शने
 आकाशमें बैठाकरें औ शीतऋतु एक महीना भर जलमें लोटि रहाकरें तब तक तीनों
 मानभर गोमूत्रमें रँधे जीका दलिया खायाकरें तब शुद्ध होयँ (यहाँपर दगा करना
 केवल उपराक्त बातों में समझना मारडारना नहीं किन्तु मित्रकी मारडारना बहुत
 बड़ा पापहै २२४ मूलश्लोकमें देखो कि ब्रह्मइत्याके समान महापातकोंवाले प्राय-
 श्चित्त उपपर लगतै हैं) मित्ताक्षराकार कहिते हैं कि ये शांख और हारीतके दोनों
 वचन कन्यादूयगाके प्रयोजन से यहाँ पर लिखे गये इनमें कन्याके दूयगा पर यह
 तीनि महीनेका कठिन प्रायश्चित्त सभी और वैश्यके निमित्त में समझना कि जब
 उन्होंने आपनेसे ऊँचे वर्गकी कन्यासे दूयगा कनाया हो—परन्तु जो शूद्रने ऊँचेवर्गों
 की कन्या दूयित करीहो तिसकी शारीरिक दंडही देना उचित है क्योंकि व्यवहार
 मर्यादाने दंडको स्थानपर कहिचुके हैं कि (उत्तम कन्याकी दूयित करनेमात्रमें हाथ
 काटेजायँ और इससे नदिक नग्न आदिहोनेमें प्रारावध कियाजाय० तिसमें उमका
 यही प्रायश्चित्तहै) पर हाथकाटना भी यह पूरे दूयगाकी दशापर आरुद्धहै अर्थात्
 थोड़े दोषकी दशानें नारी एक दंड ताड़न पीटने आदि समझना ॥ इतिकन्यादूयगा
 प्रायश्चित्त ॥

(अथोपपातकप्रदकश्यप्रायश्चित्तविचारः)

कन्यादूषणशेषे लगना उसी २३८ मूलप्रलोकमें योगीश्वरने (परिविन्दकयाजतं) इस नामका उपपातक प्रकाश किया था अर्थ इसका उसी जघे देखो-बलिक्त उसी २३८ मूलप्रलोक से लेकर (परिविन्दक को कन्यादान करना) (कौटिल्य पाप) (ब्रतोंके नियम तोड़िदेना) (आत्मार्थ पाक बनाना) (मद्यप स्त्रीका सेवन) ये सब लगना लगना इसी क्रमसे नाम कहिये-इन सबके प्रायश्चित्त ४४ चत्वारिंशत् परिच्छेद के द्वारा यथा योग्य दोषोंकी बडाई छोटाई आदि शोचिके उनमें से बड़ेया छोटेही प्रायश्चित्त विचारके साथ वर्तवा करने चाहिये • क्योंकि योगीश्वर ने इनके जुड़े जुड़े नामों से प्रायश्चित्तों की विशेषता नहीं कही तिससे उसी सामान्य मर्यादा से व्यवस्था कल्पित होसक्ती है—और—इनमें से परिविन्दकयाजी के प्रायश्चित्त ४८ अडतालिसके परिच्छेदमें भी विशेष वर्णन होचुके हैं तिनको भी देखना और जस्तरत पर लेना चाहिये और परिवित्तिके परिवेदनकर्मका प्रायश्चित्त उसी अडतालिस परिच्छेदमें फिर ५१ इक्षयावन परिच्छेदमें भी विशेषतासे वर्णन होचुके तहां दोनों जगह देखना—और—यहां के सात नामों में दूसरा उपपातक (परिविन्दक को कन्या ब्याहि देना) इसके प्रायश्चित्त यद्यपि चत्वारिंशत् परिच्छेदमें से लेना कहा गया सो भी लिये जायेंगे और ४८ अडतालिसके परिच्छेदमें विशेष प्रायश्चित्त हैं सोभी शोचिके लेने होंगे यही इन दोनोंकी व्यवस्थामें भेदहै • बाकी पांच नामों के पापोंपर केवल ४४ चत्वारिंशत् परिच्छेदसेव्यवस्थालेनीहोगी॥इतिप्रायश्चित्तप्रदकं॥

अथस्वाध्याय त्यागाग्नित्यागाहुपपातकाष्टकस्य प्रा

यश्चित्त प्रकाशकोऽयंपरिच्छेदः पंचषष्टिः (६५)



इस परिच्छेदमें आठ उपपातकों के प्रायश्चित्त कहे जायेंगे—तिनमें पहिले अपने तमत् स्वाध्यायका परित्याग • फिर स्थापित अग्निघों में अग्निहोत्र का त्याग • सुतादि मन्तानके संस्कार उचित समय पर न कराना और वंदुओं का रक्षण आदि न करना • तिस पीछे चार और हैं कि • स्त्रीसे जीविका करनी या हिंसा मसे जीविका करनी या औषधियोंसे बशीकरणा आदि हिंसावाले कर्मकरने

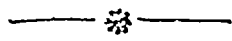
वृषलीपतिः कौमारदारत्यागीसुरामद्ययः शूद्रयाजकोपुरोःप्रतिहन्ता नास्तिकवृत्तिः
 कृतघ्नःकूटव्यवहारीमित्रघ्नश्च शरणावधातीप्रतिरूपकवृत्तिरित्येते पंचतपोऽभावकाश
 जज्ञघायनान्धनुतिण्ठेयुर्ग्रीष्मवर्षाहेमन्तेषु मासंगोमूत्रयावत्क मन्त्रीयुरिति-तदुभयमपि
 क्षत्रियवैश्ययोःप्रातिलोभ्येनदूयराद्योज्यं-शूद्रस्यतुवधसब (दूयरातुकरच्छेदउत्तमायां
 वधस्तथेति वधदर्शनादितिमिताक्षरा=अर्थात्-शांखने जो कहाहै कि कन्याका दोगी
 और सोम बेचनेवाला ये दोनों एक सालभर कच्छ व्रत आचरें=और हारीतका जो
 वचनहै कि=कन्याका बेचनेवाला तथा सोमका बेचनेवाला और वृषली जो पाँच
 प्रकारकी कहिचुके तिनका पति और कुमार वा यौवन अवस्थामें पत्नीको त्यागि
 देनेवाला और सुरामद्य का पीनेवाला और शूद्रकी पुरोहिताई करनेवाला और गुरु
 का आदेश टालनेवाला और नास्तिकवृत्ति राखनेवाला और कृतघ्न जो किसी गैर
 का क्लिया उपकार भेटे या अपना वा अपने बड़ोंका संचित पुण्य भेटिदेवे और कुल
 का व्यवहार करनेवाला और मित्रसे दगा करनेवाला और अपनी शरणा आयेहुये
 से विद्यास घात करनेवाला और प्रतिरूपकवृत्ति जो ब्राह्मण आदि किसी उत्तमका
 रूप धरिंके उसकी वृत्ति जीवि का आदि की नकल उतारै ये सभी इतने अन्यायी
 पुरुष एक महीनाभर ग्रीष्मऋतुमें पंचाग्नि तर्पे और वर्षा ऋतु में वरुषते समय शूने
 आकाशमें वैठाकरें औ शीतऋतु एक महीना भर जलमें लोटि रहाकरें तब तक तीनों
 मासभर गोमूत्रमें रंधे जीका दलिया खायाकरें तब शुद्ध होय (यहाँपर दगा करना
 केवल उपराक्त बातों में समझना मारडारना नहीं किन्तु मित्रको मारडारना बहुत
 बडा पापहै २२४ मन्त्रश्लोकमें देखो कि ब्रह्मइत्याके समान सहापातकोंवाले प्राय-
 श्चित्त उसपर लगते हैं) मिताक्षराकार कहते हैं कि ये शांख और हारीतके दोनों
 वचन कन्यादूयराके प्रयोजन से अहाँ पर लिखे गये इनमें कन्याके दूयरा पर यह
 तीनि सहीनेका कठिन प्रायश्चित्त सभी और वैश्यके निमित्त में समझना कि जब
 इन्होंने अपनेसे ऊँचे वर्णकी कन्यासे दूयरा कसाया हो-परन्तु जो शूद्रने ऊँचेवर्णों
 की कन्या दूयित करीहो तिसको शारीरिक दंडही देना उचित है क्योंकि व्यवहार
 मर्यादामें दंडको स्थलपर कहिचुके हैं कि (उत्तम कन्याको दूयित करनेमात्रमें हाथ
 कारेजाय और इससे अधिक संगम आदिहोनेमें प्राणावध क्लियाजाय० तिससे उसका
 यही प्रायश्चित्तहै) पर हाथ कारना भी यह एरे दूयराकी दशापर आकूडहै अर्थात्
 थोड़े दोगकी दशामें शारीरिक दंड ताड़न पीटन आदि समझना ॥ इतिकन्यादूयरा
 प्रायश्चित्तं ॥

(अथोपपातकषट्कस्यप्रायश्चित्तविचारः)

कन्यादूयशासे लगना उसी २३८ मूलप्रलोकमें योगीश्वरने (परिविन्दकयाजनं) इस नामका उपपातक प्रकाश किया था अर्थ इसका उसी जघे देखो-बलिद उसी २३८ मूलप्रलोक से लेकर (परिविन्दक को कन्यादान करना) (कौटिल्य पाप) (व्रतोंके नियम तोड़ि देना) (आत्मार्थ पाक बनाना) (मद्यप स्त्रीका सेवन) ये सब लगना लगना इसी क्रमसे नाम कहेथे-इन सबके प्रायश्चित्त ४४ चवालिस परिच्छेद के द्वारा यथा योग्य दोयोंकी बड़ाई छोटाई आदि शोचिके उनमें से बड़ेया छोटेही प्रायश्चित्त सद्भिचारके साथ वर्तवा करने चाहिये • क्योंकि योगीश्वर ने इनके जुदे जुदे नामों से प्रायश्चित्तों की विशेषता नहीं कही तिससे उसी सामान्य मर्यादा से व्यवस्था कल्पित होसक्ती है-और-इनमें से परिविन्दकयाजी के प्रायश्चित्त ४८ अडतालिसके परिच्छेदमें भी विशेष वर्णन होचुके हैं तिनको भी देखना और ज-हरत पर लेना चाहिये और परिवित्तिके परिवेदनकर्मका प्रायश्चित्त उसी अडता-लिस परिच्छेदमें फिर ५१ इक्षयावन परिच्छेदमें भी विशेषतासे वर्णन होचुके तहां दोनों जराह देखना-और-यहां के सात नामों में दूसरा उपपातक (परिविन्दक को कन्या ब्याहि देना) इसके प्रायश्चित्त यद्यपि चवालिस परिच्छेदमें से लेना कहा गया सो भी लिये जायँगे और ४८ अडतालिसके परिच्छेदमें विशेष प्रायश्चित्त हैं सोभी शोचिके लेने होंगे यही इन दोनोंकी व्यवस्थासे भेदहै • बाकी पांच नामों के पापोंपर केवल ४४ चवालिस परिच्छेदसे व्यवस्थालेनी होगी॥ इतिप्रायश्चित्तषट्कं॥

अथस्वाध्याय त्यागाग्नित्यागाहुपपातकाष्टकस्य प्रा

यश्चित्त प्रकाशकोऽयंपरिच्छेदः पंचषष्टिः (६५)



इस परिच्छेदमें आठ उपपातकों के प्रायश्चित्त कहे जायँगे-तिनमें पहिले अपने वेदांगभूत स्वाध्यायका परित्याग • फिर स्थापित अग्नियों में अग्निहोत्र का त्याग • फिर सुतादि सन्तानके संस्कार उचित समय पर न कराना और बंधुओं का रक्षणा पालन आदि न करना • तिन पीछे चार और हैं कि • स्त्रीसे जीविका करनी या हिंसा वाले कर्मसे जीविका करनी या औषधियोंसे बशीकरणा आदि हिंसावाले कर्मकरने

और उनको द्वारा जीविका रखनी या हिंसकयंत्र कोल्हू आदि जारी कराना ये आठ उपपातक इस परिच्छेद में आवेंगे ॥

(स्वाध्यायत्याग प्रायश्चित्तं)

योगीश्वरने २३६ दोसौ उन्तालिस मूलश्लोकमें (स्वाध्यायका त्याग) यह एक उपपातक बताया था कि जो कोई अपने पढ़े वेद शास्त्रको या रोजके नधे पूजापाठ को किसी दूसरे शास्त्रके सुनने आदि लालच में फँसिकर भुलाइ देवै या झोडि देवै सो उपपातकी होताहै—और उसीका दूसरा अर्थ यह भी लियागयाहै कि जो कोई दुर्ब्यसनमें फँसिकर निपट भुलाइडारै या निरादर करिके निपट त्यागि देवै सो महापातकी होता है कि जैसा २२८ मूलश्लोक में देखो (अधीतस्यच नाशनं) यह लिखिचुके तहां ब्रह्महत्याके समान प्रायश्चित्त उसी प्रकारके अनुसार करनाहोगा परन्तु—जैसी सूरतसे यहांपर उपपातकी ठहिराया गया तिसके लिये ४४ चत्वारिस परिच्छेदमें साधारण प्रायश्चित्तहैं तिनमें से तीन महीने या दोमहीने या एकमहीने आदि के प्रायश्चित्त कर्ताको शक्ति आदि शौचिके यथायोग्य जोडि लेनाचाहिये क्योंकि इसके मध्ये योगीश्वर ने कोई जुदा प्रायश्चित्त नहीं कहा= और=वशिष्ट ने यहकहाहै कि=ब्रह्मोऽभक्ताऋचकृन्द्वादशरात्रं चरित्वा पुनरुपयंजीतवेदमाचार्यात् (इत्ये तदत्यंतापद्विर्यमितिमिताक्षरा=अर्थात्—जो वेदको भुलाके त्यागि देवै सो बारहदिन ऋचकृन्द्वादशरात्रं करिके फिर आचार्यसे जाकर वेदपढ़ै(सोयह छोटा प्रायश्चित्त उसके लिये समझना जिसने अत्यन्त आपत्तिमें भुलायाहो ॥ इतिस्वाध्यायत्यागप्रायश्चित्तं ॥

(अग्निहोत्रत्यागादिप्रायश्चित्तं)

ब्रह्मचारी या गृहस्थी जो कोई अग्निहोत्री होकर अग्निवर्षको त्यागिदेवै तिसका भी नाम उपपातकोंकी गिनती साथ योगीश्वर याज्ञवल्क्य ने स्वाध्याय त्याग से लगमा २३६ दोसौ उन्तालिस मूलश्लोकमें दर्शायाथा परन्तु कहीं जुदा प्रायश्चित्त उसका नहीं कहा तिससे ३४ चत्वारिस परिच्छेदवाले प्रायश्चित्तोंका सहारा लेना होगा=परन्तु वशिष्टजीने विशेषता भी दर्शाई है=यथाह=योऽग्नीनपविध्यैत्सकृन्द्वादशरात्रं चरित्वा पुनरावेयंकारयेत् (अथद्वादशरात्रं प्रहरा मुक्तमकालापेक्ष या प्राजापत्यादि गुरु लघु कृच्छ्राणां प्राश्न्यर्थी मिति मिताक्षरा) तत्र—मासद्वये प्राजापत्यं मासचतुष्टयेऽतिकृच्छ्रः षड्मासोऽकृच्छ्रे पराक्तः षड्मासादूर्ध्वं योगीश्वरोक्तान्युपपातक

सामान्य प्रायश्चित्तानि कालाद्यपेक्षया योज्यानि संवत्सरादूर्ध्वन्तु मानवत्रैसासिक
 मिति व्यवस्था • इतिचमिताक्षरा=अथत्वि-वर्षाष्ट ने यह कहा है कि जो कोई स्था-
 पित अग्निथों को निरादर करिके त्यागि देवै किन्तु उठाइ डारै या पूजन करना
 छोडिदेवै सो वारहदिनका कृच्छ्र साधन करिके फिर स्थापन कर्म करावै (इसपर
 मिताक्षराकारकहते हैं कि इसमें वारह दिनकी अवधिबाँधना भी सिर्फ उक्तमकालों
 की अपेक्षा दशानि के हेतुपर आरूढ है कि प्राजापत्य आदि बड़े छोटे कृच्छ्रोंकी
 पहुंच पाईजाय अथत्वि केवल वारहदिनके नियमसे प्रयोजन यहां नहीं है) तिससे
 यहां यह युक्ति है कि-जिसने दो महीना अग्निका कर्म त्यागिदियाहो सो प्राजा-
 पत्यज्ञावै जिसने चार महीने त्यागिदियाहो सो अति कृच्छ्र करै जिसने छे महीने
 त्याग कियाहो सो पराक्रनामका प्रायश्चित्त करै • फिर जिसने छमाही से भी अ-
 धिक त्याग कियाहो तिसके सातवां महीना आदि लेकर वारह महीना के भीतर
 जैसा बहुत या थोडा काल टहिरै तिसके अनुसार बड़े छोटे प्रायश्चित्त भी ४४ च-
 वालिस परिच्छेदमें २६५ मूलश्लोकसे योगीश्वरके बताये लेकर जोडिलेनेचाहिये
 फिर जिसने एकसालसे भी अधिक दिनोंतक अग्निका कर्म त्यागिदियाहो तिसके
 लिये उसी २६५ की अधिकोक्ति में मनुका कहा तीन महीनावाला प्रायश्चित्त
 हुंढना चाहिये • यह व्यवस्था भी मिताक्षराकार ही ने कही=फिर कहिते हैं कि
 यह व्यवस्था केवल उनकोलिये कहीगई कि जिन्होंने नास्तिकताका सहारालेकर
 अग्निको त्यागा होय कि इसके पूजने से क्या होताहै इत्यादि • इसका प्रमाण भी
 अप्रोक्त वचनहै=यथाहव्याघ्रः=योऽग्निन्त्यजतिनास्तिक्यात्प्राजापत्यंचरेत्तद्विजः =
 अर्थात् जो कोई विज होकर नास्तिक्यसे अग्निकोत्यागै सो प्राजापत्यकरै ॥ ० ॥
 ऊपरके प्रमाणासे यह तात्पर्य टहिरा कि जिसने नास्तिकताके विनाभूल गफलति
 प्रसादसे अग्नि त्यागीहो तिसके लिये भरद्वाज के गृह्यशास्त्र में विशेषता कहीगई
 है=यदाहभारद्वाजः=प्राणायासप्रतलाविरात्राहुपदाह.स्थादाविंशतिरात्राह अत ऊर्ध्व
 मायशिराजात्तिन्नोरात्रीस्यवहेदतऊर्ध्वमासंबत्सरात्प्राजापत्यंचरेत् (अतऊर्ध्वकाल
 बहुत्वेदोवसुहृत्वं (=अर्थात्-भारद्वाज ने कहा है कि तीनिही रात्रि के भीतर तक
 जिसने अग्निकर्म छोडा होय सो एक १०० सौ प्राणायास करिके फिर अपना
 वही कर्म करै पर जिसने बीस दिनोंके भीतर तक त्यागाहो सो एकदिन उपवास
 करिके फिर कर्म करै इसके ऊपर साठ दिनोंके भीतर तक जिसने त्यागा हो सो
 तीन दिन राति का उपवास करे साठिके ऊपर जिसने छाल भरके भीतर कि

श्री अग्नि तत्क त्यागाहो श्री प्राजापत्यकरै (इसके ऊपर यह कालका बहुत्व केवल दोयका बडापन प्रकट करताहै ॥ ० ॥ जिसने आजस आदिके हेतुसे याद रहिते भी अग्निका कर्म त्याग किया हो तिसके लिये भी उन्हीं भारद्वाजने विशेषता जुदीकरीहै=यथा=द्वादशाहातिक्रमेऽग्रहमुपवासोऽसायातिक्रमेद्वादशाहमुपवासः संवत्सराति क्रमेसासोपवासःपयोभक्षणांचेति=अर्थात्—बारहदिन कर्मकात्याग होनेमें तीनदिनका उपवास और महीनाभर अतिक्रम होजानेमें बारहदिनका उपवास और एकसालभर का अंतर होजाने में महीने भरका उपवास तथा दूधका आहार चाहिये ॥०॥ जिसने एकसाल से भी अधिक अवधितक कर्म छोडि दियाहो तिसके लिये हारीतने विशेष नियम कहे=यथा हारीतः=संवत्सरोत्सन्नेऽग्निहोत्रेचांद्रायणांकृत्वापुनरादध्यात्र द्विवर्षोऽह्मन्नेचांद्रायणांसोमायनंचकुर्यात् त्रिवर्षोऽह्मन्नेसंवत्सरंकृत्वापुनरादध्या दिति (सोमायनंचकृत्कांडेवष्टयते)=अर्थात्—एक वर्षभर अग्निहोत्र छूटिजाने में चांद्रायणा व्रतकरिके फिर दुबारा आधान उसकाकरै दोवर्षभर छूटिजानेमें चांद्रायणा और सोमायन भी करै तिस पीछे स्थापन उसकाकरै तीनिवर्षभर छूटिजानेमें एकवर्ष भर ह्मन्ने की बारंबार आवृत्ति किये पीछे फिर अग्नि का स्थापन करै (सोमायन का लक्षणा आगे सब ह्मन्नों के प्रकरणामें कहा जायगा तव समझि लेना)—इसी विषयपर शंखने भी विशेषता जाहर करी है=यथा=अग्न्युत्सादीषंवत्सरंप्राजापत्यं चरेद्गणांचदद्यात्=अर्थात्—अग्निको उठाइ डारनेवाला उपपातकी एक सालभर प्रा जापत्यों का आचरण करै और गोदान भी करै ॥

इत्यग्निहोत्रपरित्यागप्रायश्चित्तं

(सुतादिसंस्कारबंधुरक्षणत्यागप्रायश्चित्तं)

अग्नित्याग नामके लगभा उसी २३६ मूलप्रलोकमें योगीश्वरने (सुतकात्याग) द्वारा कहिकर (बंधवोंकापरित्याग) भी दर्शाया था० इन दोनोंके पापों के प्रायश्चित्त कहीं जुदे स्वरूपसे नहीं कहे तिससे उसी४४ चवात्सिक के साधारण परिच्छेद में से प्रायश्चित्त लेने होभे तहाँ इतना भेदहै कि जिसने कामनासे हठके साथ सुतका या बंधुजनोंका परित्याग किया हो तिसकेलिये उस परिच्छेदमें २६५ दोसौपैसठि की अविक्तोक्ति से तीनमहीनेवाले गोहत्याके प्रायश्चित्त ढूंढने चाहिये=और जि-सने हठके बिना देवगति से पुन बंधूका त्याग कियाहो तिसके लिये उसी परिच्छेदमें

२६५के मूलश्लोक से योगीश्वरके बताये चार प्रायश्चित्तों में कोई एक शक्ति या दोषके अनुसार चुनि के लेलेना चाहिये इनकी यही व्यवस्था है कुछ और नहीं= सुतका त्याग दुवारा कहा जानेसे यह तात्पर्य है कि ६४ परिच्छेद में सुत पुत्र पोता परपोता आदिको घरसे बाहर निकालि देनेका प्रसंगथा और यहाँपर घरमें रहिते भी बालक पुत्रोंके उचित संस्कार आदि करने से उद्देशा रखनी यही उनका परित्यागहै तद्वत् बंधूजन असमर्थ वृद्ध चचा मामा आदि जिनका पालनकर्ता कोई और नहो तिनके रक्षणा पालन करनेकी सामर्थ्य होते हुये भी जो कोई उनको नहींराखै किन्तु ऐसे बंधुओंकी दुर्गति होते आँखोंसे देखै या कानोंसे सुनिकर भी रक्षा करने का उपाय नहीं सोचै तिसके पापका प्रायश्चित्त यहां पर कहा गया ॥ इतिसुत संस्कारादित्यागेबंधुरक्षणादित्यागेचप्रायश्चित्तं ॥

(स्त्रीहिंसादिभिर्जीवनप्रायश्चित्तं)

बंधु त्यागसे अनन्तर २४० दोसौचालीस मूलश्लोकमें योगीश्वर ने (इन्धनार्थद्रुमच्छेदः (वृक्षका निरर्थ काटिडारना जो दर्शाया था तिसके प्रायश्चित्त ५५ पत्रपत्र के परिच्छेद में वर्णन होचुके तहां २७६ मूलश्लोकसे योगीश्वरने आपही प्रायश्चित्त भी दर्शाया ॥ फिर द्रुमच्छेद से लगसा २४० दोसौचालीस मूल श्लोकमें योगीश्वरने (स्त्रीकेद्वारा जीविकाकरना) और (प्राणियोंके बधसे जीविका करना) और (वशी करणाकी औषधियोंसे जीविका) और (कोल्हूआदि यंत्रका जारीकरना) ये चार उपपातक इसीक्रमसे प्रकट कियेथे—परन्तु इनके जुदे प्रायश्चित्त कहीं नहीं कहे तिससे इन सबकेलिये ४४ चवालिसेके परिच्छेदमें योगीश्वर और मनुके कहेछोटेबड़े प्रायश्चित्त इनके कर्म दीयोंके अनुसार चुनिके समझलेना ॥ इति प्रायश्चित्तचतुष्कं ॥

॥ इत्यौचित्यानां परित्यागप्रकरणां ॥

इस प्रकरणा में सब चारि परिच्छेद हैं अर्थात् ६२ वासठि परिच्छेद के प्रारम्भ से लेकर यहां पैसठि के अंत लग चारौ परिच्छेद इसी एक प्रकरणा में गिनती हैं कि जिनमें सब तेईस चौबीस उपपातकों के प्रायश्चित्त कहे गये सो केवल कन्या संदूषणासे उपरालू सभी ऐसेहैं कि जिनमें निज निज औचित्य छोडि देनेका निमित्त है तिससे सबका एकही प्रकरणा है=कन्या संदूषणा का निमित्त यद्यपि सबसे जुदे प्रकारका प्रत्यक्ष है तथापि बीचमें आजानेसे प्रकरणा के बाहर नहीं जासक्ता ॥

सो अग्नि तत्र त्यागाहो सो प्राजापत्यकरै (इसके ऊपर यह कालका बहुत्व केवल दोयका बडापन प्रकट करताहै ॥ ० ॥ जिसने आजस आदिके हेतुसे याद रहिते भी अग्नि का कर्म त्याग किया हो तिसके लिये भी उन्हीं भारद्वाजने विशेषता जुदीकरी है = यथा = द्वादशाहातिक्रमेऽयमुपवासोऽसायातिक्रमेद्वादशाहमुपवासः सवत्सरातिक्रमेऽसायोपवासः पयोभक्षणांचेति = अर्थात् - बारहदिन कर्मकात्याग होनेमें तीनदिनका उपवास और सहीनाभर अतिक्रम होजानेमें बारहदिनका उपवास और एकतालभर का अंतर होजाने में सहीने भरका उपवास तथा दूधका आहार चाहिये ॥ ० ॥ जिसने एकसाल से भी अधिक अवधितक कर्म छोड़ दियाहो तिसके लिये हारीतने विशेष नियम कहे = यथा हारीतः = संवत्सरोत्सन्नेऽग्निहोत्रेचांद्रायणां कृत्वा पुनरादध्यात्र द्विवर्षोऽच्छन्नेचांद्रायणासोमायनंचकुर्यात् त्रिवर्षोऽच्छन्नेसंवत्सरं कृच्छ्रमभ्यस्य पुनरादध्यादिति (सोमायनंचकृच्छ्रकांडेवक्ष्यते) = अर्थात् - एक वर्षभर अग्निहोत्र छूटिजाने में चांद्रायणा व्रतकरिके फिर दुबारा आधान उसकाकरै दोवर्षभर छूटिजानेमें चांद्रायणा और सोमायन भी करै तिस पीछे स्थापन उसकाकरै तीनवर्षभर छूटिजानेमें एकवर्षभर कृच्छ्रकी बारंबार आवृत्ति किये पीछे फिर अग्नि का स्थापन करै (सोमायन का लक्षणा आगे सब कृच्छ्रों के प्रकरणा में कहा जायगा तब समझि लेना) - इसी विषयपर शंखने भी विशेषता जाहर करी है = यथा = अग्न्युत्सादीसंवत्सरंप्राजापत्यं चरेद्गणांचदद्यात् = अर्थात् - अग्नि को उठाइ डारनेवाला उपपातकी एक सालभर प्राजापत्यां का आचरणा करै और गोदान भी करै ॥

इत्यग्निहोत्रपरित्यागप्रायश्चित्तं

(उतादिसंस्कारबंधुरक्षणत्यागप्रायश्चित्तं)

अग्नित्याग नामके लगभा उशी २३६ मूलप्रलोकने योगीचरने (सुतकात्याग) दुबारा कहिकार (बांधवोंकापरित्याग) भी दर्शाया था - इन दोनोंके पापों के प्रायश्चित्त कहीं जुदे खन्धपमे नहीं कहे तिससे उशी ४४ चर्वाजिस के साधारण परिच्छेद ने से प्रायश्चित्त लेने होंगे तहां इतना भेदहै कि जिसने कामनासे हठके साथ सुतका या बंधुजनोंका परित्याग किया हो तिसकेलिये उस परिच्छेदमें २६५ दोसौपैसटिकी अदिकोक्ति से तीनसहीनेवाले गोहत्याके प्रायश्चित्त ढुंढने चाहिये = और जिसने हठके सिवा देवतानि ने सुत बंधुका त्याग कियाहो तिसके लिये उसी परिच्छेदमें

२६५ के मूलश्लोक से योगीश्वरके बताये चार प्रायश्चित्तों में कोई एक शक्ति या दोषके अनुसार चुनि के लेलेना चाहिये इनकी यही व्यवस्था है कुछ और नहीं= सुतका त्याग दुनारा कहा जानेसे यह तात्पर्य है कि ६४ परिच्छेद में सुत पुत्र पोता परपोता आदिको घरसे बाहर निकालि देनेका प्रसंगथा० और यहाँपर घरमें रहिते भी बालक पुत्रोंके उचित सस्कार आदि करने से उद्देशा रखनी यही उनका परित्यागहै० तद्वत् बंधूजन असमर्थ वृद्ध चचा मामा आदि जिनका पालनकर्ता कोई और नहो तिनके रक्षणा पालन करनेकी सामर्थ्य होते हुये भी जो कोई उनको नहीं राखे किन्तु ऐसे बंधुओंकी दुर्गति होते आँखोंसे देखे या कानोंसे सुनिकर भी रक्षा करने का उपाय नहीं सोचे तिसके पापका प्रायश्चित्त यहां पर कहा गया ॥ इतिसुत संस्कारादित्यागेबंधुरक्षणादित्यागेचप्रायश्चित्तं ॥

(स्त्रोहिंसादिभिर्जीवनप्रायश्चित्तं)

बंधु त्यागसे अनन्तर २४० दोसौचालीस मूलश्लोकमें योगीश्वर ने (इन्धनार्थद्रुमच्छेदः (वृक्षका निरर्थ काटिडारना जो दर्शाया था तिसके प्रायश्चित्त ५५ पत्रपत्र के परिच्छेद में वर्णन होचुके तहां २७६ मूलश्लोकसे योगीश्वरने आपही प्रायश्चित्त भी दर्शाया ॥ फिर द्रुमच्छेद से लगमा २४० दोसौचालीस मूल श्लोकमें योगीश्वरने (स्त्रीकेद्वारा जीविकाकरना) और (प्राणियोंके बधसे जीविका करना) और (वशी करणाकी औषधियोंसे जीविका) और (कोल्हूआदि यंत्रका जारीकरना) ये चार उपपातक इसीक्रमसे प्रकट कियेये—परन्तु इनके जुदे प्रायश्चित्त कहीं नहीं कहे तिससे इन सबकेलिये ४४ चर्वालिसके परिच्छेदमें योगीश्वर और मनुके कहे छोटे बड़े प्रायश्चित्त इनके कर्म दोषोंके अनुसार चुनिके समझलेना ॥ इति प्रायश्चित्तचतुष्कं ॥

॥ इत्यौचित्यानां परित्यागप्रकरणां ॥

इस प्रकरणा में सब चारि परिच्छेद हैं अर्थात् ६२ वासठि परिच्छेद के प्रारम्भ से लेकर यहां पैसठि के अंत लग चारौ परिच्छेद इन्ही एक प्रकरणा में गिनती है कि जिनमें सब तेईस चौबीस उपपातकों के प्रायश्चित्त कहे गये सो केवल कन्या संदूषणासे उपरालू सभी ऐसे हैं कि जिनमें निज निज औचित्य छोडि देनेका निमित्त है तिससे सबका एकही प्रकरणा है=कन्या संदूषणा का निमित्त यद्यपि सबसे जुदे प्रकारका प्रत्यक्ष है तथापि बीचमें आजानेसे प्रकरणा के बाहर नहीं जासक्ता ॥

अथव्यसनासक्तिनामोपपातकप्रायश्चित्तप्रकाश

कोऽयं परिच्छेदः षट्षष्टितमः (६६) ॥

—*—

इस परिच्छेदमें दुर्व्यसनोंकी वत्त पैदा होजानेके उपपातकपर प्रायश्चित्त कहे जायेंगे ॥ और उसीके प्रसंगसे सद्दयसनोंका भी निर्याय किया जायगा ॥

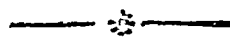
(व्यसनासक्तौप्रायश्चित्तं)

दोसौचालीस २४० मूलप्रलोक में (हिंस्रयंत्र के लगना (व्यसनानि) व्यसनोंका उत्पन्न होना भी एक उपपातक बताया था उन व्यसनों के स्वरूप लक्षणा आचार कांडके अंतमें राजधर्म के प्रकरण में वर्णन होचुके हैं नाम उनके द्यूत जुआरीपन की वत्त लगिजाना • मृगया शिकार आखेर की निरन्तर वत्त लगी रहिना इत्यादि अटारह तौ प्रधानता से प्रसिद्ध हैं फिर उनसे उपरालू भी अनेक व्यसन होतेहैं—व्यसन भी अच्छे बुरे दोभेदसे होतेहैं—व्यसन चाहें दुर्व्यसन होय या सद्दयसनहोय दोनों खोटे ठहिरतेहैं क्योंकि यद्यपि सद्दयसनमें कोई पाप नहीं होताहै तथापि उसके हेतु से अनेक पाप स्वतः भी उत्पन्न होसक्ते हैं इसका दृष्टान्त जैसा किसी को अतिदान करनेका व्यसन लगिजाय तिसके पास मांगनेवाले दानपात्र भी अत्यन्त आने लगते हैं यद्यपि पुराय के लक्षणा साथ यह व्यसन सबसे उत्तमसद्दयसनहै कि जिसकेप्रभावसे स्वर्गफल प्राप्त होताहै तथापि व्यसन शब्द के अर्थसे ही व्यसन उसका नाम है कि जिस सकृन्नी कामकी वत्तसे सब उचित कामोंको भूलिजाय जैसा अतिदान करनेकी वत्तसे उचित कुतुम्बी जनोंका पालनपोयसा भी छोडिदिया अथवा इतनादाम तक पास नहीं रक्खा कि जिससे पंचयज्ञ वा क्षेत्रल पाकयज्ञ आदि नित्य कर्मों की साधना होसके तभी इनकामों की हानिसे भी अनेक पापस्वतः जन्मते जाते हैं—इसी लिये यह ध्वन्यर्थ भी समझना योग्यहै कि हर कोई काम सेसे पुस्त्यका क्रिया हुआ व्यसनकी गिनतीमें नहीं आसक्ताहै जो अपने उचित धर्मोंको न भूलैकिन्तु जो आवश्यक धर्मोंकी पालना करने से उपरालू किसी सद्दयसन को आवश्यकता के नमाने पाले सो व्यसनो की गिनती में नहींहै—इसका यह दृष्टांत है कि जैसे राजा अपने बुल्की नाडी सबकासोंकी अत्यन्त होशियारीमें तत्पर बनारहिते भी प्रजाका

प्राणाहानि वचने की आवश्यकता मात्रघातुक जीवोंकी आखेट भी करता रहै तो यह मृगयाकर्म व्यसनासक्ति में गिनती नहीं केवल जीवहिंसा में गिनती है तिसके लिये वन्य पशुहिंसाके प्रायश्चित्त प्रतीत होतेहैं परन्तु राजाका अहकर्म राजकर्मों की जख्खरत में गिनती होजानेसे उसपर उसरीति के प्रायश्चित्त नहीं आरूढ होते हैं कि जैसे कूच्छ आदि व्रत लिखिचुके किन्तु राजापर दानरूपी प्रायश्चित्त आरूढ होतेहैं इसीलिये राजघरों में नित्यंप्रति निरन्तर अनेक महादान होतेरहितेहैं और भी पुरश्चरणा होमयज्ञ आदि करनेवाले विद्वान् ब्राह्मणा सत्कर्म करते रहिते हैं— परन्तु—यदि कोई राजा मृगया शिकार में आवश्यकसे उपरातू भी ऐसा तत्पर हो जाय जो केवल इसी व्यसन में लयलीन रहिकर माली मुल्की आदि सब कामोंकी सुद्विबुधि भुलाइडारै तो यह मृगयाकर्म उसका दुर्व्यसनमें गिनतीहै तब इस दुर्व्यसन का उपपातक भेदिदेनेके निमित्त प्रायश्चित्त करना चाहिये ॥ अथदुर्व्यसनप्रायश्चित्तं—यद्यपि योगीचरने कोई जुदा प्रायश्चित्त इसका नहींकहा तिससे४४ चवालिसके परिच्छेद में छोटे बड़े प्रायश्चित्तोंको दोयकी छोटाई बडाई अनुसार चूतिके लेलेने होंगे (यहाँ सब तरह के व्यसनमात्र समझिलेने जो अपने ऊर्ध्वोक्त अर्थोंकी इहतक पहुँचेहों) परन्तु जो कोई अतिशय हठके साथ बारंबार दुर्व्यसनका अभ्यास करै तिसके लिये अग्रोक्त प्रायश्चित्त हैं—यदाहवौधायनः=अथाशुचिकारीरिाद्युत-सभिचारोऽनाहितारनेसंछृष्टिः समावृत्तस्यभैक्ष्यचर्यातिस्यच गुरुकुलेवासऊर्ध्वं च तुभ्यांसासेभ्योयश्चतमध्यापयतिनसत्वानिर्देशनंचेति द्वादशमासान्द्वादशार्धमासान्द्वादशद्वादशाहान्द्वादशयज्ञान्द्वादशत्र्यहंश्चत्र्यहमेकाहमित्यशुचिकरनिर्देशः(इति धूतेवार्थिकव्रतमुक्तंतदभ्यासविययमितिमिताक्षरा=अर्थात्—वौधायनके वचनसे ये सातकर्मअशुचिकर नामके उपपाप कहातेहैंकि—१ धूत० २अभिचारप्रयोग० ३अग्नि होत्री न होतेसंछृष्टि फौलेहुये दानेराहघाटसेचुगना० ४समावृत्त जोवेदपाठकेगुरुकुल से लौटिचुकातिसका भीखनांगना० ५समावृत्त नामका उत्सवकर्म लौटि आने मध्ये होचुकाजिसका खेविद्यार्थीकाफिरगुरुकुलमें रहिजा० ६समावृत्तविद्यार्थी जोअधक-चालौटिआवै जोचारमहीने वीतिजानेबादि फिर गुरुकुलमें घुसै तिसका पढानेवाला गुरु भी इन पापोंमें गिनतीहै० ७ सातवां वहभी जो विना बुलाये विनावभे घर घर नक्तत्र आदि पंचांग सुनाता फिरै—इन सातोंके यथाक्रमसे जुदे जुदेसात प्रायश्चित्तों की अवधीं भी वौधायन अब कहिते हैं कि—वारह महीनेका ब्रह्मचर्य१—उससे आ-वा क्कसाही ब्रह्मचर्य२—एकसौ चवालिस दिनमें वारह प्राजापत्य३—बहत्तरि दिनमें

छेके दिनके बारह ऋच्छार्ध५—छत्तीस दिनमें तीन तीन दिनके बारह प्रयोगयष्टान् कालतावाले५—केवल तीन दिनका उपवास६—केवल एकदिन रातिका उपवास७= विज्ञानेश्वर कहते हैं कि इन सातौका क्रम देखने से निश्चित होगया कि द्यूतकर्म जुआरीपनकी धत्त में एकवर्षका व्रत कहागया और द्यूतकर्म ऊर्ध्वोक्त दुर्व्यसनों में गिनती होचुका तिससे सभी दुर्व्यसनोंपर यह वर्षदिनका प्रायश्चित्त ढहिरा सो यह बारंबार हठकेसाथ अभ्यास करनेपर समझना (और यहभी समझे रहिना कि यद्यपि विद्यार्थी सभी वैश्य भी होतेहैं तथापि अत्रोक्त सर्व कर्म विशेषकर ब्राह्मणसे अपेक्षा रखतेहैं तथैव जो आगे वचन कहेंगे तिसमें समझिलेना ॥ ० ॥ इसीके समान एक दूसरी व्यवस्थाहै=यदाहप्रचेताः=अनृतवाक्त्तस्करोराजभृत्योवृक्षारोपकवृत्तिर्ग रदोऽग्निदोऽचरयगजारोहगावृत्तिः रंगोपजीवीश्वर्गाशकः शूद्रोपाध्यायोवृथलीपति भांडिकोनक्षत्रोपजीवीश्वृत्तिर्ब्रह्मजीवी चिकित्सकोदेवलकःपुरोहितःकितवोमद्यपः कृत्कारकोऽपत्यविक्रयीमनुष्यपशुविक्रेताचेति नानुद्धरेत्समेत्यन्यायतोब्राह्मणाव्यव स्ययासर्वद्रव्यत्यागेचतुर्यकालाहारःसंवत्सरंत्रियवसामुपस्पृशेयुःतस्यांतेदेवपितृतर्पणं वाह्निकंचेत्येवंव्यवहार्याइति (तदपिबौधायनेनसमानविषयमितिमिताक्षरा= अ- यत्त—प्रचेताने विशेषकर ब्राह्मणोंमें छत्तीस उपपातकी गिनायेहैं कि० असत्यबोली का अभ्यास राखनेवाला० चोरी करनेवाला० राजकादासत्व करनेवाला० वृक्ष ल- गाना आदि मालीकी वृत्ति जीविकाकरै० किसीको वियदेवै० आगि लगावै० कीच- मानी या० रथमानी या० हाथीमानीसे जीविका० रंगरेजी वा छीपी आदि रंगसाजी से जीविका० कृत्ते बहुतपाले बैचै या उनको गिनती रखवारी आदिपर नौकरहोय० शूद्रोंकी पावाइ पुरोहिताई करै० वृथलीभार्या जिसके घरमें होय० भांडिक जो राज- दारों से तुरुही आदि शब्दोंसे कालसूचन करनेकी जीविकाराखै० नक्षत्रोपजीवी जो पंचांग नक्षत्र आदि सुनाते फिरते जीविका करै० श्वृत्ति वह कि जो कृत्तोंकी तरह घर घर फिरते किनी तरहकी जीविकाराखै या ओछी सेवकाई नौकरी आदि क- रताहो० ब्राह्मजीवी जोब्राह्मणके कामोंमें नजरीलेकर परिचारकवने यदा ब्रह्म जो वेदहै तिसके विक्रय आदिसे जीविका करै० चिकित्सक जो फोड़ा फुंठी चीर फार आदि मैली चिकित्साकरै० देवज जो किसी देवालयका चढावा खानेकी जीविका राखै० पुरोहित चाहें किसी वर्णकाहो जो छठी दसूदिन आदि सतकों का प्रतिग्रह लेनेकी वृत्ति राखता हो तिसका चर्चाहै (अदालतसभा पुरोहितों का चर्चा इसमें नहीं कितव के दोअर्थ हैं एक छलिया जो छलसे दगड़ेवाल कामकरै दूसरा जुआरी

द्वित्व कहाता है० नद्यप नशेवाज० कूट कारक जो अदालती आदि व्यवहारों में
 भंगी गवाही आदि जातसाजी करता कराता हो० अपत्य विक्रयो जो अपनी संतान
 बेचताहो० मनुष्यविक्रेता (वर्देफरो ग) जो परायेश्री पुरुष कहींसे छलिकर वा खरीदि
 कर बेचताहो० पशुविक्रेता जो पशुओंके क्रय विक्रयसे जीविका रखताहो० चकार
 के व्वन्यर्थसे पक्षा आदिका बेचना भी समभिलेना—ये छव्वोसनाम गिनानेवादि प्र-
 र्हेता कहितेहैं कि इतने उपातकी ब्राह्मणा इनकासों में अच्छोतरह लीन हुये पीछे
 प्रायश्चित्तसे भी उदार होने योग्य नहीं किन्तु सुक्तिरूपो फलके भागी नहीं होउक्ते
 हैं तथापि ब्राह्मणात्व की व्यवस्थावाले न्यायसे इतना होसक्ताहै कि—इन कामोंसे
 जो कुछ द्रव्यलेचुके हों सो सब त्यागिके दिनके चौथेकाल में भोजनका नियम ले-
 कर एकसालभर चिकाल स्नान क्रियाकरैं और स्नानके अन्तमें देवतर्पणा पित्ततर्पणा
 क्रियाकरैं फिर गोप्राप्तदेना आदि आन्हिक नित्य कर्म भी क्रिया करैं तो इस करने
 से संसारी लोगोंसाथ व्यवहार शादी गमीके हेतुमेल योग्य होजाते हैं (मिताक्षरा
 कार कहितेहैं कि यह प्रचेताकी दशाई व्यवस्था भी बौधायनके समान विषयपर
 समभिलेनी=और=मनुके कहे अपांक्तये पुरुषोंवाले प्रायश्चित्त (जो माता पिता
 पुत्रोंके त्यागपर लिखिचुके हैं सो) भी यहाँ व्यसनकी व्यवस्था में लेलने चाहिये=
 यसाह मनुः=यद्यान्नकालतानामसंहिताजपसववा होमाश्चशाकलानित्यमपांक्तानां
 विशोधनम्=अथत्वि—यद्यान्नकालतानाम छठेदिन अन्न भोजन या तीसरे दिन संध्या-
 कालसे पीछे भोजनका नियम एक सहीनाभर साधै अथवा वेद संहिताका पाठ या
 गायत्रीका जपही एक सहीनाभर करै तहाँ नित्यंप्रति होम करतारहै यह अपांक्तों
 का विशोधन प्रायश्चित्त है—इसका विशेष व्यौरा (पित्त मातृ सुत शुरु त्याग) के
 रूपपर देखौ=इसमें बड़ेछोटे प्रायश्चित्तों के स्वरूप दोषी का दोष जैसा बड़ा या
 छोटा हो तिसके अनुकूल्य युक्ति से सोचिलेना ॥ इति सर्वव्यसनानांप्रायश्चित्तं ॥



अथ आत्मविक्रयशूद्रसेवाद्युपपातकचतुष्टयस्य प्राय-

श्चित्तप्रकाशकोऽयं परिच्छेदः सप्तषष्टिः (६७) ॥

—*—

इन परिच्छेद में चार उपपातकों के प्रायश्चित्त कहे जायँगे तिनमें प्रथम आत्मविक्रय और शूद्रकी सेवाका फिर हीन जातिकी मैत्री का फिर हीनयोनि सेवन करने का ॥

(आत्मविक्रयशूद्रसेवनयोः प्रायश्चित्तं)

व्यसनों से लगामा दोसौ चालीस २४० मृत प्रलोक के अत में (आत्म विक्रय) भी उपपातक फिर २४१ में (शूद्रप्रेष्य) भी उपपातक बतायाथा—इन दोनों के प्रायश्चित्त योगीश्वर ने जुदे करिके नहीं कहे—तिससे ४४ चत्वारिंश परिच्छेदमें छोटे बड़े प्रायश्चित्त चुनिकर इनके दोयकी छोटाई बड़ाईपर जोड़िलेगा=इसमें शूद्र सेवा के मध्ये एक बोधायनका वचन भी देखा गया है=यथा=समुद्र प्राज्ञब्राह्मणास्थन्यासा पहरणानर्वापरार्थैर्व्यवहरांभूभ्यपनुवृत्तं शूद्रसेवायश्चशूद्रायासभिजायते तदपत्यंच भवति तेयांनुनिर्देशः चतुर्थकालं मृतभोजनाः स्युरोऽभ्युपेयुः सवनानुकल्पं स्थानासनाभ्यां विहरतश्चैत्रिभिर्वर्षैरतदपद्यंति पापम् (इति तदहुकालसेवाविषयमिति मिताक्षरा=अर्थात्—समुद्रकी यावाजी जहाजपरहोती है • ब्राह्मणाकी धरोहरिहर लेना • जो बीजों के चनाजियेद्वहे तिनसे व्यवहारकरना • भूभ्यपनुवृत्तं कर्म अर्थात् धरतीका खोदना भीतर घुसना आदि अथवा (भूभ्यपवृत्त पाठ होनेसे) परांगुस्वहोजाना धरतीत्यागि देनावेचि देना आदि अर्थानुक्रमते है जो कुछही सोसही • शूद्र जातिकी गौकरी करना • और जो कोई शूद्राभि वीजदान करिके जन्म धरै • और उनके जो शूद्राकी हन्तानहोय • तिननवके लिये यह आज्ञा है कि इनके चौथे कालमें एकही बार थोडासा भोजन करनेका नियम साविहुये नित्य प्रति मयनके नुल्य ज्ञानक्रियाकरै अर्थात् जैसे यज्ञोंका अगभूतज्ञान वेद के मंत्रोंमें अभियेचन हुआ करता है वही मयन कहाता है तैसा रोजकरै और स्थान तथा आसनको हटनामि शिघरते हुये इनके कर्मोंनि तोनि बर्यमें उन पापोंको धोमक्त है विज्ञानेश्वर मिताक्षराकार कहिते हैं कि इनमें ३ इन प्रकारका प्रयोगन पर शूद्र की सेवा लेना आवश्यक है तिनके लिये यह तीन वर्षोंका प्रायश्चित्त उक्त दशामें

आरूढ होगा कि जिसने बहुत काल शूद्र की सेवा करी हो अन्यथा थोड़े काल की सेवा मध्ये ४४ चत्वारिंशत्परिच्छेद बाले प्रायश्चित्त यथाथोप्य चुनिकर लेने होंगे यह ऊपर भी लिखिचुके हैं—इसी प्रकार—आत्मविक्रय अपना देह किसी के हाथ बेचकर दास होजाना आदि भी समझिलेना कि जिसने आप बेचने का वचन मान्य पक्षा किया हो तिसपर सबसे छोटा प्रायश्चित्त फिर जिसने अपना देह दूसरे के परिग्रहमें फँसाही दिया तिसके छूटिआने पर कुछ बड़ा प्रायश्चित्त फिर जो कोई कुछ अवधि तक हमरेके कब्जामें रहिकर छूटा तिसपर कुछ और बड़ा या जो कोई अति काल रहिके छूटे तिसपर अत्रोक्त तीनि बर्यांका प्रायश्चित्त भी आरूढ होसक्ता है इत्यात्मविक्रयशूद्रसेवनयोः प्रायश्चित्तं ॥

(हीनमैत्री प्रायश्चित्तं)

शूद्रसेवाके लगना २४१ दोसौ इकतालिख सूत्रश्लोकमें हीनजातिसे मित्रता करना (हीनसख्य) इस नामसे उपपातक दर्शाया था तिसका प्रायश्चित्त योगीश्वरने जुदा कुछ नहीं कहा तिससे ४४ चत्वारिंशत्परिच्छेदमें से छोटे बड़े प्रायश्चित्तोंको दोषके अनुसार चुनिके जोडिलेना=सिताक्षरा कार कहिते हैं कि प्रचेताने जो ऐसा कहाहै कि=मित्रभेदकरणादहोरात्रमनश्च हुत्वापयःपिवेदिति(तदहीनसख्यभेदविषयं=अर्थात्—मित्रोंमें भेद करानेके दोषसे एक दिन राति भर निराहार होकर अग्नि से होम करिके दूधपीवै (सो यह प्रायश्चित्त अहीन जाति के मित्रोंमें भेद कराने पर समझना (यद्यपि इस प्रकारगामें यह वचन लिखाजाने का प्रयोजन कुछ नहीं था तौभी जो महात्मा लोग लिखिचुके सो हमने भी लिखि दिया ॥ इतिहीनजातिभिर्मैत्रीकरण प्रायश्चित्तं ॥

(हीनयोनिसेवन प्रायश्चित्तं)

हीनसख्यसे लगना २४२ दोसौ इकतालिख सूत्रश्लोकमें (हीनयोनि सेवन) इस नामका उपपातक दर्शाया था परन्तु योगीश्वर ने उसका प्रायश्चित्त जुदा करिके नहीं कहा तिससे ४४ चत्वारिंशत्परिच्छेदमें छोटे बड़े प्रायश्चित्तोंको चुनिकर यहाँ दोषकी छोटाई बडाई सोचिके जोडिलेना—परन्तु—हीनयोनिका सेवन भी कईभाँति का होताहै कि एक तौ बेप्रया आदि साधारण स्त्रियोंका भोगभी हीनयोनिका सेवन है अथवा अपनेसे नीचे वर्गकी स्त्रियोंसे विवाह जिसने किया हो इत्यादि भेदों के

जुष्टे प्रायश्चित्त आगे दर्शाते हैं=यथाह शातातपः=ब्राह्मणो राजन्यापूर्वः कृच्छ्रं द्वा
दशरात्रं चरित्वा निविशेत्तांचोपयच्छेत् वैश्यापूर्वी तप्तकृच्छ्रं शूद्रापूर्वी तु कृच्छ्रात्तप्त
कृच्छ्रं राजन्यश्चेद्वैश्यापूर्वः कृच्छ्रं द्वादशरात्रं चरित्वा निविशेत्तांचोपयच्छेदिति शूद्रा
पूर्वी त्वित्तकृच्छ्रं वैश्यापूर्वेच्छूद्रापूर्वः कृच्छ्रं द्वादशरात्रं चरित्वा तांचोपयच्छेदिति—तत्र
(निविशेत्तांचोपयच्छेदिति कृच्छ्रानुष्ठानौत्तरकालं सवर्णापरिराग्रनादूर्ध्वं तांचराज
न्यादिकालुपयच्छेदित्यर्थः) इदं चाज्ञानविषयं—ज्ञानतस्तूपपातकमासान्यप्रायश्चित्तं
व्यवस्थितमेव द्रष्टव्यमिति मिताक्षरा=अर्थात्—शातातपने कहा है कि जिस ब्राह्मण
के घरमें पहिले क्षत्राणी विवाहिता हो चुकी हो वही जत्र अपने वर्गमें विवाह करना
चाहै तो यह उनके ऊपर दोय है कि पहले नीचे वर्गमें विवाह किया इसी लिये
सवर्णाको विवाहनेसे पहिले बारह दिन कृच्छ्र व्रत करिके पीछे विवाह करै फिर
उस क्षत्राणीको भी पास ही रखवै• इसी रीतिसे जो ब्राह्मण पहिले वनेनीसे विवाह
कर चुका हो सो तप्तकृच्छ्र व्रत करिके सवर्णासे विवाह करै फिर उस पहिलीको भी
पास रखवै• इसी रीतिसे जो ब्राह्मण पहिले शूद्रासे विवाह कर चुका हो सो कृच्छ्रा-
त्तप्तकृच्छ्र व्रत करिके तब सवर्णासे विवाह करै फिर उस पहिलीको भी रखवै—क्षत्री
जो पहिले वनेनीसे विवाह कर चुका हो सो बारह दिन कृच्छ्रव्रत करिके अपनी स-
वर्णासे विवाह करै फिर उस पहिलीको भी पास रखवै• जो क्षत्री पहिले शूद्रासाथ
विवाह कर चुका हो सो अतिकृच्छ्र करिके पीछे सवर्णासे विवाह करै फिर उस प-
हिलीको भी पास रखवै—वैश्य जो शूद्राके साथ विवाह कर चुका हो सो बारह दिन
कृच्छ्रव्रत करिके तब सवर्णासे विवाह करै फिर उस पहिलीको भी पास रखवै—प-
रन्तु मिताक्षराकार कहते हैं ये छोटे प्रायश्चित्त केवल उनके लिये समझना जिन्हों
ने जाचे वर्गकी कन्या विना जाने बोखा आदिसे विवाह नी होय—किन्तु जानतेहुये
इच्छा सहित जिसने नीचे वर्गकी कन्या ग्रहणा करी होय तिसके लिये जैसा ऊपर
लिखि चके तैसा ४४ चवालिनके परिच्छेदसे सामान्य उपपातकों वाले प्रायश्चित्त
दुनिकर लेने चाहिये ॥ वैश्यादि भोगविषये तु विशेषः—वैश्या आदि साधारण
विधायी जो सर्वत्रोक्त भोग निमित्तमें प्रसिद्ध होती हैं तिनका भोग भी हीनयोतिका
संगम कहलाता है—तिनका संगम यदि एकपार इच्छा विना किनी बोखा से हो गया
हो तहां कर्त्तव्य अति को कहे प्रायश्चित्त जोडने=यथा=पशुवैश्याभिगमने प्राजापत्य
विधीयते तथा वैश्यागमनत्रपापं व्यपोहंति द्विजातयः पितृवामकृत्सकृत्सप्त सप्तरात्रं कृ-
त्तव्यं=अर्थात्—पशुकी योनि या वैश्याकी योनि में संगम करने पर प्राजापत्य

करना चाहिये—तथा—वेश्याके संगम से उत्पन्न पाप को द्विजाती लोग इस तरह से धोसके हैं कि सात दिन तक सकही एकवार कुशाओंका औंटाया पानी खूब गरम पीके रहें० यह अज्ञानताका प्रायश्चित्त कहा=परन्तु जितने जानि व्यक्ति के वेष्या में संगम कियाहो तिसके लिये ४४ चवालिस परिच्छेद वाले छोटे बड़े प्रायश्चित्त घोड़े या बहुत दिनोंके अभ्यास रूपी छोटे बड़े पापके अनुसार चुनिके समझलेने—परन्तु—इसमें कुछ भेद अभी और है कि जिसने इच्छा सहित बारम्बार वेष्यागमन का अभ्यास कियाहो तहां (प्रतिनिमित्तनैमित्तिकमावर्तते इतिन्यायात्) हरसक पापके ऊपर प्रायश्चित्तकी आवृत्ति बढ़ती है इस न्यायसे) प्रत्येक पाप के ऊपर प्रायश्चित्तोंकी संख्या बहुत होती देखिके लोकाक्षि आचार्यने एक जुदाही नियम दर्शाया है=यथाह लोकाक्षिः=अभ्यासेहर्गुणावृद्धिर्मासाद्वारिष्वधीयते ततोमासगुणावृद्धिर्यावत्संवत्सरंभवेत् ततःसंवत्सरगुणायावत्पापं समाचरै दिति (इदंमतिपूर्वविषयं=अर्थात्—जो कुछ प्रायश्चित्त एकवार के पाप करने पर कहा गयाहो तिसकी वृद्धि महीनाके भीतर कई बार पाप करने में उन्हीं दिवसों को संख्या साथ करी जायगी कि जितने दिनों पाप कियाहो फिर महीनासे उपरान्त एकसाल के भीतर में जितने महीने पाप कियाहो उन्हींकी संख्यासे गुणाकर प्रायश्चित्तोंकी आवृत्ति बढ़ाई जायगी अर्थात् जितने महीने दहिरे उतनेही प्रायश्चित्त करने परें फिर एक वर्षसे उपरान्तमें जितने वर्ष तक पाप करता रहा हो उतनेही प्रायश्चित्त करने परें—सो यह नियम केवल उसके लिये समझना कि जिसने जानते हुये पाप किया हो=किन्तु=जिसने बिना जाने बारम्बार पाप करनेका अभ्यास कियाहो तिसके लिये चतुर्विंशतिसप्त नामके ग्रन्थ में विशेषता कही गईहै=यथा=सकृत्कृतेतुयत्प्रोक्तं त्रिगुणांतत्त्रिभिर्दिनेः साक्षात्पंचगुणांप्रोक्तंषण्णमासाद्विंशधाभवेत् संवत्सरात्पचदशंशब्दं विंशगुणाभवेत्ततोद्वेवंप्रकल्प्यंस्यात्तथातात्पचोयथा=अर्थात्—एकवार पाप करने में जो कुछ प्रायश्चित्त कहा गयाहो सो तीन दिनोंके भीतरमें तद्रूप कियाजाय किंतु तीन दिनोंसे उपरालू महीनाके भीतर चाहें कितनेही दिवसों बिनाजाने पाप किया हो तिसपर त्रिगुना प्रायश्चित्त चाहिये और महीनासे ऊपर छमाहीके भीतर बिना जाने चाहें कितनेही बार पाप कियाहो तिसपर पांचगुना प्रायश्चित्त चाहिये और छमाहीसे ऊपर पूरे सालके भीतर बिना जाने चाहें कितनेही बार पाप किया हो तिसपर दशगुणा प्रायश्चित्त चाहिये और एकवर्षसे ऊपर तीनवर्षके भीतर बिना जाने चाहें कितनेही बार पाप किया हो तिस पर पन्द्रह गुणा प्रायश्चित्त चाहिये

और तीन वर्षसे उपरान्तमें बीसगुणा प्रायश्चित्त चाहिये—तिसपर भी ऐसी कल्पना करनी चाहिये कि जैसा शातातपके वचनमें इसी वातिका चर्चा कहीं आचुका हो विरोधशांतिः ध्यानकरो इस पिछले अङ्गमें कल्पना करनेकी आज्ञा कही तिसका यह तात्पर्य नहीं है कि इसी तरह बीसगुनेसे भी अधिक बढ़ाते चले जायँ जैसी वर्षे अधिक देखें—क्योंकि ऐसा समझिलेनेसे बहुत बड़ा अन्याय खडा होता है—तिससे इसका यह तात्पर्य है कि यद्यपि इन वचनोंमें गुणा करनेके नियम निश्चित किये गये तथापि कहीं विरोधको देखिभाल इसमें भी न्यायात्मक कल्पना अपनीयुक्ति से करनी चाहिये जैसा शातातपके वचनसे कहीं शिक्षा भी होचुकी है—और तिसका इसका यही है कि विरोध का दूर करना आवश्यक है—इसका दृष्टान्त जैसा इसी जघे पर विरोध मन्त्रजदहै कि तीनवर्षसे ऊपर चौथेवर्षमें भी बीस गुणा प्रायश्चित्त अज्ञानतासे पाप करैयापर ठहिरा कि जिसपर कोमलताकी अपेक्षाथी और उन्हीं चार वर्षोंमें केवल चौगुना प्रायश्चित्त जानिवृत्ति पापकरै या पर सावितहुआ कि जिसपर कठोरताकी जखरत पाई जातीथी यह बात ऊपर लौगासिवाली व्यवस्था में देखी इन दोनों के बीच अभी और भी अनेकधा विरोध पायेजासक्ते है तिन विरोधोंका निवारण करनेकी आज्ञा पिछले अङ्गसे दरशाई गई कि जिससे अन्याय न होनेपाये—तिसके लिये—ऊपर ले अर्थों में यह युक्ति सोचनी चाहिये कि जहां तीन दिनसे ऊपर महीनाके भीतर तिगुना करना कहा तहां भी सिर्फ चौथे दिन में तिगुना न कर देना किन्तु जैसे दिन थोड़े वा अधिक पाये जायँ तैसे सवाया डेउडा दुना तक पन्द्रह दिनके भीतर फिर इसीतरह थोडा थोडा बढ़ाते जाकर पूरे महीना तक तिगुना प्रायश्चित्त जोडना फिर पूरे कई महीने होजाने पर उन्हींकी संख्यासे गुणा करना कहिचुके हैं तहां भी यह सोचना कि दो महीने तकयही तिगुना राखनेसे न्याय ठीक होगा (अन्यथा दो महीनेमें दुगुना करानसे दोही आवृत्ति रही जाती है) तिससे तीन महीने पूरे होजाने पर पांच गुणाका प्रारम्भ करना अर्थात् तिगुनेसे अधिक बीसगुना चौथे पांचवे महीनाके भीतर और छठे महीनाके पूरे होने तक पांचगुणाका वर्त्तवा करना—फिर सातवे मासकेपूरे न होनेतक यही पांचगुना राखना तिस पीछे एक एक महीनाकी अधिकता होताजानेमें एक एक गुणा बढ़ाते जाना अर्थात् आठवे मासमें छे गुना नववेने मास गुना दसवेंमें आठ गुना ग्यारहवेंमें नौ गुना बारहवेंमें दस गुना—इसीतरह पूरे वर्ष में उपरान्त जहां पन्द्रह गुणा प्रायश्चित्त तीन वर्षके भीतरने कहिचुके तहां भी दूसरी तीसरी दोवर्षोंके २४ महीनों

पर फैलावा अपनी बुद्धिमेकरना—फिर तीनवर्षसे उपरान्तमें जो बीभक्षुता कहिचुके
 सो भी केवल चौथी वर्षमें न समझि लेना किन्तु पांच वर्ष आदि लेकर बहुत वर्षों
 देखिपरने मे बीभक्षुता कर्त्तवा करना चाहिये इसके भीतर उसी पन्द्रह गुने का
 कर्त्तवा चलाआवेगा क्योंकि (ये चतुर्विंशति सत के प्रलोकों वाली व्यवस्था कुछ
 वाचनिक प्रभावसे संयुक्त नहीं है कि जो कुछ वचनमें उच्चारणा क्रियागया उसीपर
 आरुह होना) इसीलिये इन प्रलोकों ने आपही पिछले अङ्के से कहिदिया है कि
 इसमें न्यायकी दृष्टिसे कल्पना भी करनी चाहिये जिससे अन्याय न होसके—वरन
 इस अन्यायके बचानेके निमित्तमे दोयकी छोटाई बड़ाईपर भी ध्यान देकर अहक-
 ल्पना करनी चाहिये जो अभी लिखिचुके (आधुनिक अनुवादक इसबात से लाचार
 हैंकि प्राचीन सग्रहकारने निजन्याय दृष्टिसे चतुर्विंशति सतकी व्यवस्था अज्ञानता
 के पापमध्ये स्थापन करी और लैगासिवाली व्यवस्था को इच्छा सहितके पापोंपर
 स्थापन किया) इसके बाद मिताक्षरा कार फिर कहते हैं कि (यत्पुनःविधेःप्राय
 सिकादश्नात् द्वितीयेद्विगुणांचरेदिति प्रतिनिमित्तमावृत्तिविधायकं तन्महापातक
 विषयमित्युक्तंप्राक्) अर्थात्—यह वचन जो प्रसिद्धहै कि इस पहिलेकिये अपराध
 पर जो कुछ प्रायश्चित्त की विधि कही गई तिसके करचुकने के बाद जब उसी
 अपराध को फिर करै तब दूना प्रायश्चित्त कराया जाय इसी प्रकार तीसरी बार
 तिगुना करवायाजाय इत्यादि सो यह महा पातकोंपर आरुहहै इसका निर्णय प-
 हिले ब्रह्महत्या आदि प्रकारगोंमें होचुका तिससे यहां इसका कुछ संशय नहीं है
 ॥१॥ पुनराहविज्ञानेश्वरः=यत्तुयमेनसाधारणालीगमनमविद्यत्यशुस्तल्पव्रतसतिद्विष्टं—
 शुस्तल्पव्रतकेचित्केचिच्चान्द्रायणाव्रतस गोधनस्येच्छन्तिकेचिच्चकेचिशेवावकीर्णानः
 (इत्येतच्चजन्मप्रभृतिसानुबन्धानवच्छिन्नाभ्यासविषयमितिसिताक्षरा=अर्थात्—वि-
 ज्ञानेश्वर आचार्य फिर कहते हैं कि यमने जो वेष्या आदि साधारण स्त्रियां गणन
 करनेके पाप पर शुस्तल्प महापापवाले प्रायश्चित्तका अति देश अगिले वचन से
 उतासहै कि—विरले आचार्य शुस्तल्पवाला व्रत बताते और विरले चान्द्रायणा व्रत
 बताते और विरले गोहत्या वाले प्रायश्चित्त चाहना करते और विरले अवकीर्णी
 ब्रह्मचारी वाले प्रायश्चित्त ठहिराते हैं कि जैसा काने गदहा से नैऋत याग करना
 आदि कहागयाथा • इनसेसे शुस्तल्पवाला व्रत केव त उभकेलिये समझना कि जो
 मनुष्य अपने जन्मसे सुधि संहारनेके साथही खुलाखुली वेश्यावाजीमें तत्परहोके
 हठके साथ निरन्तर अभ्यास करता रहिकर अपनी बहुत अवस्थाको बिताइचुका

तिसको जव संसारी व्यवहारोंमें शामिल होनेकी जल्दतरत समझी जाय और वेप्रया-
के साथ भोजन करने आदि प्रकारोंसे बचा भी रहसकाहो=और जो गुरुतल्प से
छोटे प्रायश्चित्त इसी यमके वचनमें दर्शायेगये सो सब यथायोग्य छोटे मोटे दोषों
की दशाके अनुसार वेप्रयागामोपर आरूढ किये जासक्ते हैं ॥ इतिवेप्रयादिहीन
योनिसेवनप्रायश्चित्तं ॥

अथ अनाश्रमवासादि सदसत्प्रतिग्रहांतीपपातक षट्क स्यप्रायश्चित्तप्रकाशकोऽयंपरिच्छेदः अष्टषष्टितमः (६८)

—*—

इस परिच्छेद में छः प्रकारके उपपातकोंका प्रायश्चित्त दर्शाया जायगा—तिन
में प्रथम अनाश्रमीका प्रायश्चित्त फिर परान्तोलुपका और असत्शास्त्रके
अभ्यासीका और खानिके अधिकारीका और भार्या बेचनेवालेका फिर
असत्प्रतिग्रह और सत्प्रतिग्रहलेनेका प्रायश्चित्त कहाजायगा ॥

(अनाश्रमवासप्रायश्चित्तं)

दोसौ इकतालिस मूल प्रलोकमें हीन योनि सेवनसे लगमा योगीश्वरने (तथैवा-
नाश्रमेवासः) इस पदमें अनाश्रम वास छपो उपपातक ठहिरायाया विशेष ब्यौरा
इसका उसी २४१ की अधिकोक्तिमें देखी परंच जुदा प्रायश्चित्त कहीं नहीं कहा
तिससे ४४ चवालिस परिच्छेदका सहारालेनाहोगा—परन्तु—द्वारोतने जुदाप्रायश्चित्त
भी कहा है=यथा=अनाश्रमी संवत्सरं प्राजापत्यकृच्छ्रं चरित्वा७७यममुपेयात् द्वि-
तीयेऽति कृच्छ्रं तृतीये कृच्छ्राति कृच्छ्रं मत ऊर्ध्वं चान्द्रायणामिति—एतदसम्भवयि-
यय सन्भवेत्तु नानान्योपपातक प्रायश्चित्तानि कामाकामतोदयवस्थापनीयानिति
मिताक्षरा=अथति—अनाश्रमी उसका नामहै जो चार आश्रमों में किसी भी आश्रम
का भार्या न होय किन्तु भार्या मरजाने या प्रथमसेही विवाह न करनेसे निहंगरदि
कर गृहन्वीने आश्रमको न थांभे न ब्रह्मचारी संन्यासी वानप्रस्थहो जाय ऐसापुनः
दिकाना बांविधिना चाहें तहां बेटिके या चाहें तिसकेपास पेट भरिके दिन काटें सो
अनाश्रमी दीक दीकहै तिसकेलिये द्वारोतमुनि कहतेहैं कि—एकमाल भर अनाश्रमी

होके जहां तहां दिन काटे सो इस दोष के ऊपर प्राजापत्य कृच्छ्र व्रत आचरणा करिके किसी आयसमें दाखिल होजाय•दूसरेसालतक अनायसी होके रहा फिरा होय सो अति कृच्छ्र करिके आयस का स्वीकार करै• तीसरे साल तक अनायसी फिराहोय सो कृच्छ्रातिकृच्छ्र करिके आयसयांभै•तीनवर्षसे भी अधिक जो अनाश्रमी रहाहो सो नहीना भर चान्द्रायणा करिके आयसका सहारा लेवे— मिताक्षरा कार कहितेहैं कि यहनियम हारीतवाला उसकेलिये समझना जिसका विवाहादि न होसकनेसे गृहस्थ आदि आदिआयसका विक्षेप लाचारीसे रहा हो•किन्तु जिसने विवाहआदि आयसों के डौल होसकतेहुये उपेक्षा करीहो तिसकेलिये ४४ चवालिस परिच्छेद में सामान्य उपपातकों वाले बड़े छोटे प्रायश्चित्त दोष दशा के अनुषार चुनिके जोडि लेने चाहिये=इस वार्त्ताका संक्षेप व्यौरा २४१ दोसौइक्षतालिस मूल श्लोकवाली अधिकोक्तिमें लिखिबुके तहांदेखौ ॥ इत्यनाश्रमवासप्रायश्चित्तं ॥

(परप्राकरुचित्वादीनांप्रायश्चित्तचतुष्टयं)

अनाश्रमवास के लगमा २४१में (परान्नपरिपुष्टता) इस पदसे परप्राक रुचित्व कहिके २४२ दोसौवयालिस मूलश्लोकमें तीन उपपातकों के नाम और भी योगीश्वरने इसक्रमसे कहेथे (असत शास्त्रों का अधिगमन) (आकरेषु अधिकारता) (भार्याविक्रय) अर्थ इनचारोंके उसी मूल प्रलोकमें देखौ—इन चारोंके प्रायश्चित्त कहीं जुदे करिके नहीं कहे गये हैं—तिससे ४४ चवालिस परिच्छेद में साधारणा प्रायश्चित्त योगीश्वर तथा मनुके कहे छोटे बड़े चुनिकर इनके दोषोंकी छोटाईबडाई परजाति और शक्ति और गुणादिकों की अधेक्षासे व्यवस्थापन करलेने चाहिये ॥ इतिपरप्राकरुचित्वादिभार्याविक्रयांतानांप्रायश्चित्तं ॥

यहांतक सर्वत्रदोसौनवासी मूलश्लोकवाली टीकाकाशेषपाठ चलाआता था कि जिसकाचर्चा ६४ चौघठि परिच्छेदके प्रारम्भसमय लिखागया सो अबनिपटिगया ॥

(असत्प्रतिग्रहप्रायश्चित्तं)

दोसौवयालिस २४२ मूलश्लोक में (भार्याविक्रयश्च) इस चकारके व्यन्यर्थ से बिना कहे भी उपघातक अन्यादिश्रुतियों के लिखे समझने कहिचुके हैं उसीकी अधिकोक्तिमेंदेखौ कि अन्यादिक इह्यीश्वरोंके दशायिनास असत्प्रतिग्रहआदि अनेक जो वहांपर कहिचुकेथे उनके भी प्रायश्चित्त आगे यथा क्रमसे दर्शावेंगे तिनमें

मे अमत्प्रतिग्रह लेनेका प्रायश्चित्त यहां पर मूलश्लोक से योगीश्वर दर्शाते हैं ॥

गांष्ट्र्यमन्त्रद्व्यचारीमासमेरुंपयोव्रतः । गायत्रीजाप्यनिरतःशुद्धयतेऽसत्प्रतिग्रहात् २९०

अर्थः—ब्रह्मचारी होके एक महीना गौष्टमें बसते पयोव्रत करते गायत्री के जप में निरत होवै सो अमत्प्रतिग्रह से शुद्ध होताहै=अर्थात्—जिस पंडित ने अमत्प्रतिग्रह खांटादान लेलिया होय सो इस पापसे इस तरह शुद्ध होताहै कि बहुतसी गौशों के समझवाने गौं हरे में नहीना भर ब्रह्मचर्य की साधना सहित बसिकर केवल एकवार थोडा दूधपीनेका व्रतलेकर नित्यंप्रति संतत गायत्रीके जपमें लगा रहाकरै ॥२९०॥

२९०अधिकोक्तिः=खांटादान उसको समझना जो दाताकी जाति नीच होने या जाति ग्रेय होने पर कर्म नीच होनेसे भी दान अमत् कहाता है—दृष्टान्त जैसे चंडाल आदि महानीचसे प्रतिग्रह लेना या कर्मोंसे महापातकी आदि पतित होय तिसका दिया प्रतिग्रह लेना=तथैवदेश और कालके योगसे भी खांटादान कहाताहै—दृष्टान्त जैसे कुरुक्षेत्र के तीर्थमें यह देग टाहिरा और ग्रहरा आदि पर्वोंमें प्रतिग्रह लेना यही अनियत कालके योगसे खांटापन टाहिरा=तथैव निन्दित इत्योंके स्वरूपसे भी प्रतिग्रह का खांटापन होताहै—दृष्टान्त जैसे मदिरा या भेड या मरे मनुष्यका शय्यादान या उभय तोमुखी गायकादान आदि अनेक दान अपनी वस्तु के स्वरूपही से अमत् कहाते है (उभयमुखी गाय वह कहातीहै जिसको दोनोंओर मुख होय अर्थात् विआते समय निवानते हुये बच्चे का मुँह पीछे और आगे अपना मुँह तिसका उगी समय दानकरने से उभय तोमुखीका प्रतिग्रहलेना परताहै) ॥ ० ॥ मिताक्षराकार कहितेहैं कि जो प्रायश्चित्त मूल श्लोक में कहा गया सो कुछ बड़ा देखि परता है तिससे यह ऐसे पुरुष पर आरुड करना चाहिये जिसमे खांटे दान के दो दोष पायेजायँ (अर्थात् खांटे दान के चिह्न सब लिखियुते तिनमें देवी) कि जिसने पतित या चण्डाल या रजत्वला आदि क्रिया खांटेके हाथसे खांटाही द्रव्य भेडु बकरी आदि प्रतिग्रह निधाहो इनीदृष्टान्त से और भी दो दो बात सि गाकर समझिलेना कि दो बातोंके सि गापने दोष सेवडापन आजाताहै जैसे मकडाके पातएकडा बरनेसे श्यारह बनिजाते है तिसके ऐसीदगाने यह बड़ा प्रायश्चित्त चाहिये—तहां—यद्यपि गायत्री के जपकी तादाद योगीश्वर ने कुछ नहीं कही परन्तु माने उसकी संख्या भी कही गई है—यथा=त्रिषिवाश्रिताविश्वानहतागिातमाहितः मासगौष्टेपयःपीत्वामुष्टपतेः अमत्प्रतिग्रहात्=अमत्प्रति—एक महीना भर नित्यंप्रति गायत्रीमंत्र के तीन सहस्रत्रपि कर गौशों के गोहरे में दान से बाहर निवान करने दूध पीकर व्रत करै सो इसअ-

सप्तप्रतिग्रह को पाप से छुटि जाता है—अब दूसरी व्यवस्था देखौ ॥ ० ॥ जिसने किशो
 न्यायवर्ती वसतिमा ब्राह्मणा आदि श्रेष्ठ पुरुषसे खोंटा प्रतिग्रह मेढा वक्ररा आदि
 कुछ लिया हो तिसपर एक वस्तु को खोंटे स्वरूप ही का दोष पाया जाता है यद्वा
 वरती सकान आदि श्रेष्ठ चीजों का प्रतिग्रह पतित आदि महा पापी से या चण्डाल
 आदि अशुचि अगुण्यां से लिया हो तिस परभी एकही दोष पाया जाता है तिसके
 लिये यद्विंशन्मत के कहे प्रायश्चित्त चाहिये=यथा=पवित्रेष्टया विशुद्ध्यन्तिसर्वेषो
 राःप्रतिग्रहाः सेद्वेनमृगारेष्टयाकदाचिन्मित्रन्दिद्या देव्या जसजपेनैवशुद्ध्यन्तेदुष्प्रति
 ग्रहात्=अथत्ति—सब तरह के खोंटे प्रतिग्रह जिनके लेने से महा घोर पाप होते हैं
 तिनके भी लिवैया शुद्ध होते हैं पवित्रेष्टि के करनेसे अर्थात् पवित्र नाम यज्ञोपवीत
 है तिसकी इष्टि करना पुनर्यज्ञोपवीत का सर्वथा संस्कार कराना यह तात्पर्य है
 परन्तु जो प्रतिग्रह अत्यंत घोर न समझा जाय तौ फिर इसी पवित्रेष्टि का अर्थ प-
 विवारोपणा या पवित्रारोहणा इस नाम का यज्ञमाना जाय जिसका यह लक्षण है
 कि आवणा महीना को शुक्ला द्वादशी के दिवस विष्णु देव के नाम से यज्ञोपवीत
 कर्म किया जाता है—जहां इससे भी हलुका प्रतिग्रह समझा जाय जिसके मित्रही
 निन्दा करें तौ इस दोष में सेद्वे चंद्रायणा व्रत करना चाहिये यद्वा मृगारेष्टि कर्म
 अर्थात् याचना किये द्रव्यों से अमावस्या पूर्णमासी के बेदोक्त यजन कियाकरै तौ
 भी शुद्ध होता है अथवा यह न होसके तौ गायत्री देवी का एक लक्ष संख्या जप
 ही करिके शुद्ध होता है जिसने असप्तप्रतिग्रह लेलिया हो ॥ ० ॥ जोकि वृद्धहारीत
 का यह वचन है=राज्ञःप्रतिग्रहं कृत्वा मासमष्टुमदावसेत् अष्टे कालेषथो भक्षः पूर्णमासे
 विशुद्ध्यति तर्पयित्वा द्विजान्कामैः सततं नियतव्रतः (सप्तसपूर्वाक्तविद्ययाभ्यासेद्वष्टयं
 अयनापत्तितादेः कुरुक्षेत्रे परागादौ कृष्णाजिनादिप्रतिग्रहं विद्ययभितिमिताक्षरा=
 अर्थात्—राजा से खोंटा प्रतिग्रह लेकर ब्राह्मणा को चाहिये कि एक महीना भर
 नित्यं प्रति जल में बैठा रहा करै और एक पहर भर राति बीति जाने बाद थोडा दूध
 पिआ करै फिर महीना पूरा होजाने पर ब्राह्मणों को इच्छा भोजन से तृप्त करिके
 शुद्ध होता है (मिताक्षरा कार कहिते हैं कि हारीत का यह वचन उस पतिग्रह के
 विषय पर मानना कि जैसा पहिले अधिकोक्ति के प्रारम्भ में दो दोषों का इकट्ठा
 होना लिखि चुके अथवा इस रीति से कि जिसने कुरुक्षेत्र आदि तीर्थों पर ग्रहणा
 आदि कठिन काल में महा पापी आदि पतितों से प्रतिग्रह लिया होय) इस व्यव-
 स्था का यह तात्पर्य ठहिरा कि हारीत के वचन में जैसा कहा गया कि राजाका

प्रतिग्रह लेकर ऐसा प्रायश्चित्त करै सो यह कथन सब राजाओं के सब अच्छे भी प्रतिग्रहों पर न समझि लेना ॥ ० ॥ इसी प्रकार प्रतिग्रह का द्रव्य थोड़ा होने की दशा पर भी प्रायश्चित्त छोटा होना चाहिये सो भी हारीत की मध्यमस्मृति का वचन देखो=तथाच हारीतः=मरिावासोमवादीनांप्रतिग्रहणो सावित्र्यस्य नहस्रंजपेत्= मरिायां वा वस्त्रों वा गाय आदि उत्तम चीजों के दान इन्हीं कीमतों के अनुमान प्रतिग्रह लेनेमें आठ सहस्र गायत्री जपि डारै इसीसे शुद्ध होजाता है ॥ ० ॥ सत्प्र तिग्रहेप्रियथोचित प्रायश्चित्तं—यद्विंशन्मत के ग्रन्थ में यह भी नियम किया है कि जिसने ग्रेय प्रतिग्रह लिया हो सो भी कुछ प्रायश्चित्त करै=यथा=भिक्षामात्रेण हीतेऽतिपुरायमंत्रमुदीरयेत् प्रतिग्रहेयुसर्वेषु यष्टमंशंप्रकल्पयेत्=अर्थात्—जिस ब्राह्मण ने याचना करने से भिक्षामात्र का दान ग्रहण किया होय सो अति पुराय मंत्र का उच्चारण करै अर्थात् अपने इष्टदेव का जो मुख्य मन्त्र है सो अति पुरायमंत्र समझना अथवा जिसके कोई इष्टदेव न होय सो गायत्री का उच्चारण करै उच्चारण करना भी जैसी थोड़ी या बहुत भिक्षा ग्रहण करी होय तैसीही थोड़ी या बहुत मन्त्रों की संख्या भी नियत करै परन्तु जिसने दानही की रीतिसे कुछ ग्रेय प्रतिग्रह लिया होय सो उन प्रतिग्रह के द्रव्य में से छटा भाग पुण्य करै ॥ ० ॥ जबकि ग्रेय प्रति ग्रह में से भी छटा भाग दे देना ठहिरा तौफिर खोटे प्रतिग्रह का सर्व धन त्यागि देना सिद्ध होगया और इसी का पक्काहठ अगिले वचनसे भी स्पष्ट है=यदाह मनुः=यद्ग गृह्णते नार्जयति कर्मणा ब्राह्मणा धनम् तस्योत्सर्गोणाशुद्यन्ति जपेन तपसैव चेति=अर्थात्— ब्राह्मण लोग जो निन्दित प्रतिग्रह आदि कर्म से धन संग्रह करते हैं तिसको पुण्य करने से ही शुद्ध होते हैं और इसके ऊपर जप तप करनेसे भी=इतीप्रकार= र - और भी स्मृतियों के वचन जो कुछ निर्ले सो सब प्रतिग्रह रूपी द्रव्य का सार और कल्पत्व महत्व से भी पूर्वोक्त तर्क विधियों पर युक्ति से व्यवस्थापन करजने चाहिये इति सदसत्प्रतिग्रह प्रायश्चित्तं ॥

इत्थनिष्ट सग सेवनादि प्रायश्चित्तप्रकारां ॥

इस प्रकारका न खानदि नरमदि अइनदि ये तीनि परिच्छेद हैं जिनमें नभीवार्ता गेसी र जो खोसा नग से उन्हें आदि से संबन्ध राखती है ॥

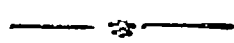
अथ प्रसंगिकीवार्ता ॥

मिताक्षर आचार्य सक्त प्रलोक देजा कुछ और प्रायश्चित्तों का दर्शाना प्राण्य

करते हैं—यथा (जात्याग्र्यादिदोषेण विद्यानादेशशब्दतः योगीन्द्रोक्तत्रतत्रातंभांप्रतं
 उपनश्यते) यथात्र अथ योगीश्वर के कहे उन पापों के व्रतों का समूह विस्तार
 करके दिखलावेंगे कि जिनको मुख्य से खुल्लस कहे बिना २४२ दो सौ ब्यालिप्त
 मन प्रलोक में चकार के अर्थसे जसस्या किये थे कि जो जो उनके हृदय के
 भीतर उद्भूत (उभरे हुये) होरहे थे उनमें बहुधा पाप ऐसे हैं जो जाति वा आयय
 यादि दोषों से उत्पन्न होयं अथवा नाम के शब्द ही से निंद्य और अनादेय अभ-
 द्यपन लसक्ता जाय० बल्कि बहुधा पाप और प्रायश्चित्तों की समस्या आचार
 मर्यादा परिपारी में भी कई स्थितों पर योगीश्वर आपही प्रकाशकरचुके और म-
 नादि मुनीश्वरों कोभी अभिवायसे जो जो पापोंके लक्षणा या प्रायश्चित्त गोलसोज
 कहने बाकी रहि गये हैं तिन सबका व्रात समूह एकत्र संग्रह करिके आगे यथा
 क्रम से व्योरे वार दर्शावेंगे तब इस वार्ता का प्रयोजन खूब समझि लेना ॥ यहाँ
 तब अभद्यों का प्रकरणा कहा जायगा ॥ और यह भी याद रक्खो कि यद्यपि इस
 भदयाभदय के प्रकरणा में जुदे जुदे कई परिच्छेद होंगे परन्तु योगीश्वर का
 मूल प्रलोक विलकुल्ल इसमें नहीं है क्योंकि यह व्यवस्था उपरालू स्मृतियों के वचन
 लेकर संग्रह करी जायगी और यह भी ध्यान रहे कि इसमें की अनेक व्यवस्थायें
 जहाँ तहाँ पहिले भी बरान होचुकी हैं यह बात इस परिग्रम से जानी जासक्ती है
 कि ५६ उनसठि के परिच्छेद से लेकर यहाँतक सभी परिच्छेदों को सोचि सोचि
 देखते चले आओ फिर इस भदयाभदय प्रकरणा वाले परिच्छेदों को सोचि के
 नसको कि योगीश्वर इन वार्ता को बहुधा उन्हीं परिच्छेदों में कहिचुके हैं० परंतु
 यहाँ केवल खाने पीने के दोष पर यह संग्रह सक्रव किया जायगा ॥ यह व्योरा के-
 वत पाठकों के अम दूर करने के हेतु लिखा गया ॥

अथ जातिदुष्टाद्यन्न पानादीनां भक्षणदोषस्य प्रायश्चित्त

प्रकाशकोऽयं परिच्छेदः एकानसप्ततितमः ६६



इस परिच्छेद में उन अभद्यों के खाने पीने का प्रायश्चित्त कहा जायगा जो अ-
 पनी जाति ही से खाते जैसे पिआज लहसुन आदि अनेक चीजें और सन्दिनी राऊ

आदिके अनेक दूध जो अपनी जातिही से खोटे होते हैं और स्वभाव दुष्ट मांस अनेक जो अपनी खासियत और जातिसे भी अनेक मांस दुष्ट होते हैं कि जिनका भक्षरा मांसाहारियोंको भी निषिद्ध होता है • फिर इन सब के प्रसंग से औरभी बहुधा चीजों का चर्चा इसमें आवैगा ॥

(जातिदुष्टपलांवादिभक्षणप्रायश्चित्तं)

ऊपर चर्चा क्रिये प्रसंग मेंसे यहां पहिले उन चीजों के खालेने का प्रायश्चित्त दगाते हैं जो पिआज आदि बहुधा चीजें अपनी जातिहीसे खोटी और म्लेच्छ जातीयों से वास्ता रखती हैं—तहां—जिसने इच्छासहित एकहीवार उन चीजोंका भक्षरा क्रिया होय तिसका प्रायश्चित्त चांद्रायणाहै योगीश्वर आपही आचार स्यादाकांड में कहिचके तहां (१०५ एकसोपचदत्तरिसूलश्लोक) देखौ=और=जिसने इच्छा सहित खानेका अभ्यास कईवार कियाहो तिसके लिये भी योगीश्वर आपही यहां प्रायश्चित्त स्यादा से (०२६ दोसो उनतीस मूलश्लोकसे) इन चीजों को सुरापीने के समान कहिचके तिनका प्रायश्चित्त ३२ इकांतिस परिच्छेदमें सुरापानवाले प्रायश्चित्तों के समान टुंठिकर देखौ=परन्तु=जिसने इन्हीं पिआज आदि चीजों को इच्छाके बिना खोखा आदिसे एकहीवार खायाहो तिसको सांतपन प्रायश्चित्त है सो भी अगिले वचनोंमें आवैगा=और=जिसने इच्छा बिना कईवार खाया हो तिसके लिये (यतिचांद्रायणा) इमनामका प्रायश्चित्त चाहिये जैसा अगिले वचन में कहाहै देखौ=यदाहमनुः (अनत्यैतानियदुज्जग्ध्वाकृच्छ्रं सांतपनंचरेत् यतिचांद्रायणा वापिगोपेयपवभेदहः) अर्थात्—ये पूर्वोक्त नामोंकी छे चीजें बिना जाने खाइके कृच्छ्र सांतपन करै या यदि कईवार खाया हो तो यति चांद्रायणा करै वाकी जिन चीजों के नाम सहित कोई प्रायश्चित्त न कहा गया हो तिनको खाइलेने से एकही दिन उपवास करै ॥=॥ इन चीजोंके निवाय विगले षण शाक आदि भी निषिद्ध हैं तिनका प्रायश्चित्त वृहस्पतने और मध्यम यतनेभी कहाहै=यथाह वृहस्पत=त्वदावार्ता कुरुभीकत्रप्रचनप्रभवार्ताव भृशगांधिपुक्तं चैव गुल्लंदं कवकानि च गतेयां भक्षणां कृत्वा शाकापच्यं चरेत्तद्विदुः (इतितत्काननः पूर्वा न्यामवियय - (मत्स्यप्रचका भतो जग्ध्वा नोपवात्स्यहस्तिपदितियोरीश्वरणाकानन सकृदक्षमं च हस्यो कृत्यात्) गवंप्रमो प्यार - बहुनीयक कुरुभीकद्रचनप्रभवांस्तथा तां विद्वानां नके पिचप्लेग्नातक्रफ ता संद भृशगांधिपु कंचैकवदुत्स्यं कवचनया गतेयां तज्ञां कृत्यात्राजापत्यव्रतचरत्

(इति तदपि सति पूर्वाभ्यासद्वयं = अर्थात् - खड्वा नाम कोलशिंघ्री नामसे एक फली होती है जिसका आकार सुअरके पंजातुल्य होता है • वार्तिक वैष्णव • कुम्भी साग इसी नामसे दिख्यात है जलके ऊपर पत्ते उन्नके फैलते हैं इसीसे वारिपसी जलपाना भी कहाती है • व्रश्चन प्रभव फलादिक वे कहाते हैं जो पेंवदी पेंवन्दी वृक्षोंसे उत्पन्न होयं जिनकी कलम तरामिके दूसरे वृक्षमें जमाई जाती है • भृत्सा नामसे वे शाक समझने जो प्रायः धरतीपर फैलेहुये लोनियां आदि होतेहों (किन्तु रोहिय तृसाको यहाँ अत समझना जो सुगन्धवाली घास होती है) • शिशु लालसहिंजना • सुकंदनाम पिआज • कवक नाम धीरती के फलछत्राक • इतनों में किसीको खाइके द्विजाती पुरुषप्राजापत्य करै—सो यह प्रायश्चित्त उसके लिये है कि जिसने इन चीजों के निषेध जानते हुये इच्छा सहित बहुत काल पहिले खानेका अभ्यास रक्खाहो क्योंकि (योगीश्वर ने आचार कांड में १७० एकसौ सत्तरि मूल श्लोकसे इच्छा सहित एकवार ऐसी चीजें खानेपर तीनदिनका उपवास कहा है) तिससे यहाँ वृहत यज्ञका कहा प्राजापत्य बारह दिनवाला बहुत कालसे खाते रहिनेके अभ्यासहीपर ठीक है = इसी प्रकार मध्यम यमने जो यह कहा है कि = चौराई और कुम्भीसाग और व्रश्चन प्रभव पेंउदी बेर आदि अनेक और नारी तथा नालिकेरी दोनो साग और लहसोरे और भृत्सा जैसा ऊपले वचन में कहिचुके और लालसहिंजना और खड्वाख्य नाम कोलशिंघ्री की फली और कवक छत्राक धरती के फूल इतनों में किसी एकहोका भक्षणा करै सो प्राजापत्य व्रत आचरै—सो इस वचनकी व्यवस्था भी उसके लिये समझना जिसे जानि ब्रह्मके इच्छा सहित बहुत कालसे खानेका अभ्यास किया हो = मिताक्षराकार कहिते हैं कि इन्हीं दोनों वचन में लिखी चीजोंको इच्छा बिना एकही बार धोखासे जिसने खाया हो तिसके लिये एकदिन का व्रत करना प्रायश्चित्त है (श्रेयेषुपवसेदहः) यह मनुका वचन कई स्थानपर आचुका है तिसके अनुसार यही चाहिये अधिक नहीं परन्तु जो कोई बिना जाने धोखा से दोतीनवार खाचुका हो तिसको उसी संख्यासे व्रत करने चाहिये और जिसने बिना जानेही अत्यन्त अभ्यास इनके खानेका किया हो तिसके लिये अगिले प्रचेता के वचनसे तप्त द्वादशव्रत करवाना चाहिये क्योंकि उस वचन में स्वभावदुष्ट चीजों के खालेनेका चर्चा आवैगा वे स्वभावदुष्ट येही चीज हैं जो ऊपर के दो वचनमें जुदे जुदे नामों से कहिचुके ॥०॥ अन्नादि भोजनकी वस्तु जो किसी अशुद्धकी हुआछाईआदि कारणोंसे विगड जाय तिसके खाइ लेनेका प्रायश्चित्त = अथाह प्रचेताः = संसर्गादुष्टं च चान्नाक्रियादुष्टसका-

आदिके अनेक दूध जो अपनी जातिही से खोटे होते हैं और स्वभाव दुष्ट मांस अनेक जो अपनी खासियत और जातिसे भी अनेक मांस दुष्ट होते हैं कि जिनका भक्षणा मांसाहारियोंको भी निषिद्ध होता है• फिर इन सब के प्रसंग से औरभी बहुधा चीजों का चर्चा इसमें आवैगा ॥

(जातिदुष्टपलांढादिभक्षणप्रायश्चित्तं)

ऊपर चर्चा किये प्रसंग मेंसे यहां पहिले उन चीजों के खालेने का प्रायश्चित्त दर्शाते हैं जो पिआज आदि बहुधा चीजें अपनी जातिहीसे खोटी और म्लेच्छ जातीयों से वास्ता रखती हैं—तहां—जिसने इच्छासहित एकहीवार उन चीजोंका भक्षणा किया होय तिसका प्रायश्चित्त चांद्रायणाहै योगीश्वर आपही आचार मर्यादाकांड में कहिचुके तहां (१७५ एकसौपचहत्तरिमलश्लोक) देखौ=और=जिसने इच्छा सहित खानेका अभ्यास कईवार कियाहो तिसके लिये भी योगीश्वर आपही यहां प्रायश्चित्त मर्यादा में (२२६ दोसौ उनतीस मूलश्लोकसे) इन चीजों को सुरापीने के समान कहिचुके तिनका प्रायश्चित्त ३१ इकतिस परिच्छेदमें सुरापानवाले प्रायश्चित्तों के समान ढूंढिकर देखौ=परन्तु=जिसने इन्हीं पिआज आदि चीजों को इच्छाके विना धोखा आदिसे एकहीवार खायाहो तिसको सांतपन प्रायश्चित्त है सो भी अगिले वचनोंमें आवैगा=और=जिसने इच्छा विना कईवार खाया हो तिसके लिये (यतिचांद्रायणा) इसनामका प्रायश्चित्त चाहिये जैसा अगिले वचन में कहाहै देखौ=यदाहमनुः (अमर्त्यैतानियङ्जग्ध्वाकृच्छ्रं सांतपनं चरेत् यतिचांद्रायणां वापिशोषेयूपवसेदहः) अर्थात्—ये पूर्वोक्त नामोंकी छेचीजें विना जाने खाइके कच्छ्र सांतपन करै या यदि कईवार खाया हो तौ यति चांद्रायणा करै वाको जिन चीजों के नाम सहित कोई प्रायश्चित्त न कहा गया हो तिनको खाइलेने में एकही दिन उपवास करै ॥०॥ इन चीजोंके सिवाय विरले फल शाक आदि भी निषिद्ध हैं तिनका प्रायश्चित्त वृहत्समने और मध्यम समनेभी कहाहै=यथाह वृहत्समः=खट्वावार्ता ककुम्भीकत्रप्रचनप्रभवारिाच भूत्सांशिगुक्चैवसुकंदं कवका निच सतेषांभक्षणां कृत्वा प्राजापत्यं चरेत् द्विजः (इतितत्कामतःपूर्वाभ्यासविषयं— (मत्स्यांश्चक्रामतो जग्ध्वा सोपवासस्यहंक्षिपेदितियोगीश्वरेणाकामतः सकृद्वक्षसोत्र्यहस्योक्तश्चात्) खंयमो ग्राह=तंडुलीयककुम्भीकत्रश्चनप्रभवांश्तथा नालिकां नालिकेरीं चश्लेष्मातकफला निच भूत्सांशिगु कंचैवखट्वाख्यं कवचं तथा सतेषांभक्षणां कृत्वा प्राजापत्यं व्रतं चरेत्

(इति तदपि मतिपूर्वाभ्यासद्वयं=अर्थात्—खट्वा नाम कोलशिंघ्री नामसे एक फली होती है जिसका आकार सुअरके पंजातुल्य होता है • वार्ताक वैंगल • कुम्भी साग इसी नामसे दिख्यात है जलके ऊपर पत्ते उनके फैलते हैं इसीसे वारिषर्णी जलपाना भी कहाती है • ब्रश्चन प्रभव फलादिक वे कहाते हैं जो पेंवदी पेंवन्दी वृक्षोंसे उत्पन्न होयं जिनकी कलम तरासिके दूसरे वृक्षसे जमाई जाती है • भूतसा नामसे वे शाक समझने जो प्रायः धरतीपर फैलेहुये लोनियां आदि होते हैं (किन्तु रोहिय तसाको यहाँ सत समझना जो सुगन्धवाली घास होती है) • शिग्रु लालसहिंजना • सुकंदनाम पिआज • कवक नाम धीरती के फलछत्राक • इतनों में किसीको खाइके द्विजाती पुरुषप्राजापत्य करै—सो यह प्रायश्चित्त उसके लिये है कि जिसने इन चीजों के निषेध जानते हुये इच्छा सहित बहुत काल पहिले खानेका अभ्यास रक्खाहो क्योंकि (योगीश्वर ने आचार कांड में १७० एकसौ सत्तरि मूल श्लोकसे इच्छा सहित एकवार सेसी चीजें खानेपर तीनदिनका उपवास कहा है) तिससे यहाँ वृहत् यमका कहा प्राजापत्य बारह दिनवाला बहुत कालसे खाते रहनेके अभ्यासहीपर ठीक है—इसीप्रकार मध्यम यमने जो यह कहा है कि—चौराई और कुम्भीसाग और ब्रश्चन प्रभव पेंउदी बेर आदि अनेक और नारी तथा नालिकेरी दोनो साग और लहसोरे और भूतसा जैसा ऊपले वचन से कहिचुके और लालसहिंजना और खट्वाख्य नाम कोलशिंघ्री की फली और कवक छत्राक धरती के फल इतनों में किसी एकहीका भक्षण करै सो प्राजापत्य व्रत आचरै—सो इस वचनकी व्यवस्था भी उसके लिये समझना जिसे जानि बूझिके इच्छा सहित बहुत कालसे खानेका अभ्यास किया हो—मिताक्षराकार कहिते हैं कि इन्हीं दोनो वचन में लिखी चीजों को इच्छा बिना एकही बार धोखासे जिसने खाया हो तिसके लिये एकदिन का व्रत करना प्रायश्चित्त है (श्रेयैपवसेदहः) यह मनुका वचन कई स्थलपर आचुका है तिसके अनुसार यही चाहिये अधिक नहीं परन्तु जो कोई बिना जाने धोखा से दोतीनवार खाचुका हो तिसको उसी संख्यासे व्रत करने चाहिये और जिसने बिना जानेही अत्यन्त अभ्यास इनके खानेका किया हो तिसके लिये अगिले प्रचेता के वचनसे सप्त द्वादशव्रत करवाना चाहिये क्योंकि उस वचन में स्वभावदुष्ट चीजों के खालेनेका चर्चा आवैगा वे स्वभावदुष्ट येही चीज हैं जो ऊपर के दो वचनमें जुदे जुदे नामों से कहिचुके ॥०॥ अन्नादि भोजनकी वस्तु जो किसी अशुद्धकी छुआछाईआदि कारणोंसे विगड जाय तिसके खाइ लेनेका प्रायश्चित्त—अथाह प्रचेताः—स्वर्गादुष्टं च चान्नां क्रियादुष्टमका-

मतः अङ्गास्वभावदुष्टं च तत्तत्कृच्छ्रं समाचरेत्—अर्थात्—खाने पीनेका तैयार अन्न जो समझ किसी ऊर्ध्वोक्त वस्तुसे छुई जाकर दूषित होजाय या बनाते समय क्रिया भ्रष्ट होकर दूषित हुआ होय तिसको इच्छा बिना खाकर तत्तत्कृच्छ्र व्रत आचरे अथवा जो कोई अन्न आदि वस्तु अपने स्वभावही से दुष्ट कही जाती हो जैसी लहसुन पिआज आदि बहुतेरे नाम ऊपर लिखि चुके हैं तिनकोही बिना चाहे धोखा आदिसे अत्यन्त अभ्यास करिके खाया हो तौभी तत्तत् कृच्छ्र व्रत आचरे० अन्यथा छोटे छोटे प्रायश्चित्त जो ऊपर लिखि चुके तिनको एकहीवार खाइलेने आदि पर विचार करना ॥ ० ॥ परन्तु नील एकहीवार बिना जाने भी खालेने से बड़ा प्रायश्चित्त है—तदाहा-
 पस्तम्बः=भक्षयेद्यदिनीलीं तु प्रसादाद्ब्राह्मणाः क्वचित् चांद्रायणो न शुद्धिः स्यादापस्तम्बोऽ-
 त्रधीन्मुनिः=अर्थात्—नीली नील के वृक्षका साग आदि किसी प्रकार से यदि कहीं कोई ब्राह्मण धोखा आदिसेभी खाजाय सो महीनाभरका चांद्रायण करनेसे पवित्र होता है यह आपस्तम्बने कहा—परन्तु जिसने दोबार खाया तिसको दो चांद्रायण और तीनवार वालेको तीन इत्यादि कल्पना समझ लेनी और एकहीवार जिसने इच्छा से जानि वृक्ष खाया होय तिसको भी दूना प्रायश्चित्त समझना ॥ ० ॥ चौका ली-
 पना इत्यादि शुद्धि किये बिना जो पाक बनायाजाय तिसको खा लेने परभी प्रायश्चित्त है—तथा च यद्दृशं शान्तवचनम्=शशापुष्पं शाल्मलचकरनिर्मथितं दधि वहिर्वेदि-
 पुरोडाशं जग्ध्वानाद्यादहर्निशम्=अर्थात्—सनके फल फूल या सेमर के फल फूल या मयनिया बिना हाथही से मथाहुआ दही या वेदीसे बाहरका पुरोडाश खालेवे सो दूसरेदिन आठपहरका निराहार व्रतसाधे और उक्त दिन भी न खाय तब शुद्ध होय—
 वेदी से बाहर का पुरोडाश अर्थात् यहां वेदी चौकेका नाम है तिसके बाहर बिना चौके वैठके खाने और बनाने का नियम है० पुरोडाश अन्न सध्वनी अन्न आदिका नाम है कि जिस रसोईके अन्नसे परमेश्वरको भोगदेना अग्नि आदि देवता और अ-
 भ्यागतोंको जिमाना आदि रोजका कर्म जो है सोई पाकयज्ञ कहाता है (विज्ञानेश्वर कहिते हैं कि यह एक दिनराति के उपवास वाला छोटा प्रायश्चित्त भी ऐसे प्रस्य पर सजभना जिसने इच्छाके बिना ऐसे कामोंको क्रिया होय किन्तु जानि वृक्ष रेषा करनेवाले पर प्रायश्चित्त भी दूना आदि बढाया जाय ॥ ० ॥ जहाँ किसीको षक्कि को जवर्दशी से ऐसी चीजे खवाई हों या वेदने रोगीसे कहिकर खवाई हो कि इसके खाने बिना यह रोग नहीं मिटिष्कता है—तदाह सुमन्तुः=लशुनपलांडुगृजन कचकभक्षणे सावित्र्यमहमेता मूर्धिसंपातान्नयेदिति (तद्वलात्कारेणानिच्छतो

भक्षणाविययं तदेकसाध्यव्याध्युपशमार्थेवाभक्षरोद्रव्य मितिमिताक्षरा)=अर्थात्—
 सुमन्तुने कहा है कि लहसुन पिआज गाजर कवक इनको खाने वाला गायत्री के
 आठ हजार मंत्रोंसे एक एक संत्र पण्डिके जल के बंद अपने मूड पर टपकाने देवै तत्र
 धुव होय (सो यह प्रायश्चित्त जर्दस्ती खवाइ देनेमध्ये या उसके मध्ये समझना
 कि जिसकी बीमारी केवल वही चीज खानेसे जासके तिसने खाया हो यह सिता-
 क्षराकारों ने कहा) क्योंकि इसी हेतु से इस वचन के लगना उन्हीं सुमन्तु ने यह
 कहा है (एतान्येवव्याधितस्यभियक्क्रियायामप्रतियिद्वानिभवंति यानिचैदंप्रकारा
 णितेष्वापिनदोषः) अर्थात् ये लहसुन आदि सब चीजें वैद्य की चिकित्सा वाली
 क्रिया से नियिद्व नहीं हैं और भी जे कोई इस प्रकार की चीजें या इस प्रकार की
 क्रिया विशेष होती हो तिनमें भी दोष नहीं ॥ अब नीचे उन प्रायश्चित्तोंकी व्यवस्था
 कही जायगी जो संधिनी आदि गायोंके नियिद्व दूध आदि जातिहीसे दूयित कहाते
 तिनके खाने पीनेमें करने होते हैं ॥ जातिहीसे दुष्ट वे कहाते हैं जो अपने जन्मही
 से खोटे ठहिरैं जैसे लहसुन प्याज या नीचे संधिनी आदिके दूधोंको समझलेंना ॥

(अथ जातिदुष्ट संधिन्यादि क्षीरपाने प्रायश्चित्तं)

इसके मध्ये सिताक्षराकारने यह व्यवस्था निर्मित करी है कि जिसने संधिनी
 आदि गायोंका दूध जानि बूझिके इच्छा सहित एक बार पिआ हो तिसके लिये
 वही तीन दिनका उपवास प्रायश्चित्तहै जो आचार मर्यादा वाले कांडमें योगीश्वर
 आपही १६६ एकसौ उनहत्तरि मूल प्रलोक से संधिनीका दूध आदि नियिद्व कहि
 कर १७४ एकसौ चौहत्तरि श्लोकमें कहिचुके और जिसने इच्छाके विना दैवयोग
 से एकही बार पिआ हो तिसके लिये एकहीदिन रातिका उपवास मनु की आज्ञा
 से विचारना अगिले वचनोंसे=यथा=अनिर्दशायागोःक्षीरमौष्टमैकशफंतथा आवि
 कंसंधिनीक्षीरं विवत्सायाश्चगोःपयः आरग्यानांचसर्वेषां मृगाणांमहिषींविना स्त्री
 क्षीरंचैवज्यानिसर्वशुक्तानिचैवहि दधिभक्ष्यंचशुक्तैषुसर्वचदधिसंभव मित्युत्काशेषे
 दूपवसेदहः इतिमूलकउपवासीद्रव्य इतिमिताक्षरा=अर्थात्—विआली गाय जिस
 का बच्चा दश दिनका न होजाय तिसका सुतकी दूध तथा ऊँटनीका दूध तथा एक
 ही खुर वाले पशु घोड़ी गदही आदिका दूध तथा भेडीका दूध तथा संधिनी अर्थात्
 हाल गाभिन हुई गाय भैंसका दूध तथा बिना बच्चेवाली गाय का दुध तथा बन के
 सबही मृग जीवोंका दूध (केवल बन भैंसको छोडिके) और स्त्री नारीमात्र का दूध

ये सब दूध पीने वर्जित हैं और सब तरहके शुक्त कांजी सिरका आदि भी वर्जित हैं जो पानी सहित चीजें सूर्यके आतापमें धरने आदि प्रकारों से खड़ा जल होता है। परन्तु दही और दहीका तोड़ आदि भी शुक्तों में गिनती है सो वर्जित नहीं है इसी लिये कहिते हैं सर्व शुक्तोंमें केवल दही खानेके योग्य है और दहीसे जो कुछ बनावा उत्पन्न हुआ हो सो भी खानेके योग्य है यह सब कहिकर मनुने पीछे से यह कहा है कि ऐसी और भी चीजें जिनके नाम लिखने बाकी रहिगये तिनके और इनके भी खाइ लेने में एक दिन रातिका उपवास करै ॥ ० ॥ इनके सिवाय पैठीनसिका जो वचन है और शंखका जो वचन है उनदोनोंकी व्यवस्था सेसे पुरुषपर आरूढ करना कि जिसने जानि ब्रूमि कर इच्छा सहित बहुत काल तक पीने का अभ्यास किया हो=यदाह पैठीनसिः=अविखरोष्टमानुषीक्षीर प्राशनेतप्तकृच्छुः पुनरुपनयनंच अनिर्दशाहगोमहिषी क्षीरप्राशनेषुडात्रमभोजनं सर्वासां द्विस्तनीनां क्षीरपानेप्यजावर्जमेतदेव=शंखोपि=क्षीरारिणान्यभक्ष्यारिणतद्विकाराशनेबुधः सप्तरात्रं तं कुर्यात्प्रयत्नेन समाहितः (इतियावक व्रतमुक्तं तदुभयमपिकामतोऽभ्यासविययमिति मिताक्षरा= अर्थात्—भेड़ गदही ऊँटिनी नारी इनके दूध पीलेनेमें तप्तकृच्छ्रव्रत करिके फिर यज्ञोपवीत कर्मसे उपनयन भी कराना चाहिये और दश दिन के भीतर की बिआनी गाय भैंसोंका दूध खाइलेनेमें छे दिन तक निराहार व्रत करै और बकरी को छोड़ि कर बाकी सब दो थन वालोंका दूध पीलेनेमें भी यही छे दिन का उपवास करै यह पैठीनसिने कहा=शंखने भी ऐसा कहा है कि=जे कोई दूध अभक्ष्य कहाते हैं तिनके पीलेने या उनकी बनी कोई चीज खाइ लेनेमें सातदिन व्रतकरै (यह यावक भोजन करिके सात दिनका व्रत शंखने कहा। सो यह दोनों ऋषीश्वरों की व्यवस्था उनके लिये समझना जिन्होंने इच्छा सहित सेसे दूधके पीनेका अभ्यास अनेकवार किया हो यह मिताक्षराकारने कहा ॥ ० ॥ विद्याखानी और दो बच्चा देनेवाली आदि कई प्रकारकी गायोंके और भी कुछ दूध पीने निश्चिद हैं=तदभ्याह शंखः=संधिन्यमेध्य भक्ष्याभुत्कापक्षव्रतचरेदिति तदभ्यासविययं=सहृत्पानेतुविष्णुराह=गोअजमहिषी वर्जसर्वारिणपयांसिप्राश्य उपवसेत् अनिर्दशाहेतान्यपि संधिनीयमसूस्यदिनीविवत्सा क्षीरंचामेध्यभुजप्रच=अर्थात्—संधिनी जो गाभिन होजाय। अमेध्यभक्षा जो विद्याआदि चारतीहो इनके दूध खाइके परवारेका व्रतकरै। यह पन्द्रह दिन का व्रत उसी को समझना जिसने वारंवार ऐसा दूध पीनेका अभ्यास किया हो=क्योंकि एकवार पी लेने मध्ये विष्णुने एकही दिन उपवास बताया है कि=गाय बकरी भैंस इनको छोड़ि

इससे उपरालू सब जीवोंके दूध खाय पीकर एक उपवास करै और गाय बकरी भैंस इनके भी दशादिनका बच्चा न होनेके भीतर दूध पीकर यही उपवास करै और गामिन तथा दो बच्चा विआने वाली तथा बिन बच्चेवाली तथा बच्चा होतेहुये भी जो गर्भ लेनेकी इच्छामे स्पन्द रूपी चिह्न प्रकट करती हो तथा जो विद्या आदि अपवित्र चीजें खातीहो इनके भी दूध पीकर यही उपवास करै ॥ ० ॥ कपिला गाय जो सुवर्ण के समान वर्णवाली खुर सींगों सहित कहातीहै उसका दूध ब्राह्मणाके सिवाय अन्य वर्णोंको पीने मे नियोव है जैसा यह अग्रोक्त वचन है कि (क्षत्रियश्चापितृत्स्थो वैश्यःशूद्रोऽथवापुनः यःपिवेत्कपितासीरं नततोऽन्योस्त्यपुण्यकृत्) अर्थात्—सत्कर्म करने वाला क्षत्री और वैश्य अथवा शूद्रही जो कपिला गायका दूध पीवै तो उससे अधिक अपरायकर्ता कोई नहींहै—यद्यपि इससे प्रायश्चित्त कुछ नहीं दर्शाया गया तथापि अपराय कहिकर दोष दर्शाया गया तिससे प्रायश्चित्त भी सूचित हुआ कि ब्राह्मणाके सिवाय जिसने सकवार कपिलाका दूध पिआहो सो मनुके वचनसे एक दिन का उपवास करै—इसी प्रकार—और भी जो जो बातें ऐसी देख परै कि जिनके नामसे कुछ प्रायश्चित्त नहीं कहा परन्तु उनके खाने पीनेका दोष प्रकट कियाहो तिनके खाने पीनेपर यही एक दिन का उपवास प्रायश्चित्त समझना (शोषेयूपवसे वहः) यही मनुका वचन है ॥ अब नीचे उन चीजों के खालेने का प्रायश्चित्त कहा जायगा जो अपने स्वभावसे दुष्ट कहाती हों ॥ इतिजातिदुष्टभक्षरापानप्रायश्चित्तानि

(अथस्वभावदुष्टमांसादिप्रायश्चित्तं)

जो जो मांस आदि अपने स्वभावहीसे दुष्ट कहाते हों तिनको इच्छा बिना धोखा आदिसे एकही बार जिसने खाइ लिया हो तिसको भी ऊपर चर्चा किया सकही दिनका उपवास रूपी साधारण प्रायश्चित्त मनुके वचन से कर्तव्य है—परन्तु—जिस ने जानि वृष्ति इच्छा सहित सकवार भक्षरा कियाहो तिसके लिये आचार सूर्यादा कांड में १७१ एकसौ इकहत्तरि सूक्तश्लोक से लेकर १७४ एकसौ चौहत्तरि में योगीश्वर आपही जो लिखिचुके हैं (सोपवासस्यहंक्षिपेत्) कि तीन दिन निराहार उपवास करिके काटै• तहां देखो= और = जिसने इच्छा सहित अनेक बार खाया हो तिसके लिये (जरध्वामांसमभक्ष्यंतुसप्तरात्रंपयःपिवेदितिमनूक्तद्रष्टव्यं) यह मनुका कहा प्रायश्चित्त विचारना कि अभक्ष्यमांस को खाइके सातरात्रिभर दूध पीके व्रत करै—परन्तु यह प्रायश्चित्त उसके लिये नहीं है जिसने ग्राम सुअर

आदिका अतिमलीनमांस खायाहो किन्तु उसके लिये मनुने दूसरे वचनसे तप्तकच्छु करना कहा है=यथा=क्र० प्राद्विदसू क्ररोष्ट्राणां कृकुटानां च भक्षारो नरकाकखराद्यानां तप्तकच्छुम्बिशोधनं (इति मनुना जाति विशेषेण प्रायश्चित्त विशेषस्योक्तत्वात्= अर्थात्—मनुने अतिमलीन मांसों के नामसे यह जुदा प्रायश्चित्त कहा है कि—मांस भक्षी क्रव्याद प्रकृतिवाले अनेक पक्षी गिद्ध आदि होते हैं तिनका मांस यदि कोई मांसाहारी पुरुष भी खालेवै या विद्याखानेवाले वसती में रहनेवाले सुअरकामांस या ऊँटका मांस या मुर्गा आदि मलीन पक्षियोंके मांस खालेवै या मनुष्यका मांस या कौआकी जातिवाले पक्षियोंकामांस खाइलेवै या गदहा आदि मलीन पशुओं का मांस खाइलेवै तिसके लिये तप्तकच्छुव्रत कराना प्रायश्चित्त है=इन्हीं उक्तजो- वोंके गूह मत्त भक्षणा करजाने में भी यही प्रायश्चित्त चाहिये जो इनके मांस पर कहिचुके यहवात् अगिले वचन में देखौ=यदाहृदहृद्यमः=इराहैकशफानां तुक्राकृ- कृतयोस्तथा क्रव्यादानां च सर्वेषामभक्ष्यायेचकीर्त्तिताः मांसमूत्रपुरीयारिात्राश्रयो मांसमेवच श्वोसायुकपीनांचतप्तकच्छुम्बिधीयते उपोष्यवाद्वादशाहंकृष्मांडैर्जुहु यातघृतम=अर्थात्—सुअर और (एकशफ) एकही खुरवाले घोडा गर्दभ आदि और काक तथा मुर्गा और क्रव्याद जो मांस के खवैया बहुधा पक्षी तथा चौपाये भी होतेहों और भी जेकोई जीव अभक्ष्य लिखे गयेथे आचार मर्यादामें भी नाम उनके देखौ तिन सबके मांस या गूह मूत खाइके या गोमांस को खाइके या कुत्ता गोदड वन्दर इनके भी मांस या गूह मूत खाइके तप्तकच्छु प्रायश्चित्त किया जाताहै अथवा वारहदिन उपवास करिके कृष्मांड संजों से घीका होम करै (इसमें छोटे बड दो प्रायश्चित्त विकल्प से कहे गये तिनके परस्पर यह व्यवस्था समझि लेनी कि जिसने इच्छा सहित एकहीवार भक्षणा किया तिसको तप्तकच्छु कराना और जि- सने कईवारका अभ्यास किया तिसको वारह दिनका पराकव्रत कराइके कृष्मांड संजोंसे घीका होम कराना चाहिये ॥ ० ॥ इसी व्यवस्था के समान प्रचेताने प्राय- श्चित्त कहा है=यथा=श्वशालकाकृकुटपार्थितवारनचित्रकचायक्रव्यादखरोष्ट्राज वाजिविह्वराहगोमानुयनांसभक्षारोतप्तकच्छुर्वादिशेत खयांसूत्रपुरीयभक्षारोत्वतितप्तकच्छुं (इदंचकामकारविययं=अर्थात्—कुत्ता•तियार• कौआ•मुर्ग•पार्थित वनकाएकपशु• वन्दर• चीता•चाय पक्षी जो लीजकंठ कहाता है•क्रव्याद जो मांसके खवैया पक्षा आदि होतेहैं•गदहा•ऊँट•हाथी•घोडा• ग्रासवाशी सुअर• गाय•आदिनी•इनके मांस खाने में तप्तकच्छु करायाजाय• इनके मूत गूह खाइ लेनेमें अतिकच्छु करायाजाय

त्यन्तरे=जरध्वामांसंनरीणां च विद्वराहं खरन्तथा गवाश्चक्रं जरोद्याणां तर्वपांचनख-
 तथा क्रव्यादकुक्कुटग्रामं कुप्रसिखवत्सरव्रत (सितितददृश्यं तातर्वाच्छिन्नाभ्यः सविषय
 सितिसिताक्षरा=अर्थात्-सनुष्योका सांसखाय विष्टा खानेवाले सुअरका या गर्दभ
 का या गायका या घोडे का हाथीका ऊँटका या सभी उनजीवोंका जो पांच नख-
 वाले पंजेवर होतेहैं या क्रव्यादोंका सांस खाय जो आपही सांस भक्षी जीव होतेहैं
 या सुर्गे और वस्तीके रहैया भी अनेक भांति के होतेहैं तिनका सांस खाय भी एक
 पूरे वर्षभर व्रत साधै (यह सालभरेका प्रायश्चित्त उसको लिये बताना जिसने बहुत
 काजरे निरन्तर अत्यन्त अभ्यास करिके खाया हो) इस प्रकरणा में जहाँ जहाँ मत
 गूह कहा गया हो सो उन जीवोंकी वमा चरबी वीर्यरक्त सज्जा आदि सब चीजोंका
 नियंत्र प्रकट करनेवाला उपलक्षणा है इनजीवोंको खाजाने पर भी यही प्रायश्चित्त
 चाहिये=परन्तु=कालका मेल आदि छे भांति के मेल होतेहैं तिनको भक्षणा करने में
 आधा प्रायश्चित्त कल्पित करिलेना चाहिये ॥० ॥ बाल आदि खाइलेने मध्ये यद्
 विंशन्मत ग्रन्थमें जुदाप्रायश्चित्त कहागयाहै=यथा=अजाविसाहिसृगाणां आमसां-
 सभक्षणेकेशनखरुधिरप्राशनेर्बुद्धिपूर्वेत्राश्रमज्ञानादुपवासः=अर्थात्-बकरी भेड भैंस
 और वनके मृगजीव इनका कच्चा सांस खाइलेने या वार नख रक्त खाइलेने में जा-
 नते हुये तीनदिनका प्रायश्चित्त है बिना जाने खाइजानेपर एकही दिनका उपवास
 करै=इसी बात प्रचेता का यह वचन है कि=नखकेशमूल्लोयभक्षणे अहोरात्रम
 भोजनाच्छुद्धि (सितितददृश्यकासतः नहत्प्राशनविषयसितिसिताक्षरा=अर्थात्-नख
 वार मट्टोका डेल इनको भक्षणा करिजाने में एक दिन रातिभर व्रत करने से शुद्धि
 सानी जातीहै (सो यह एकदिनका व्रत एकहीद्वार बिना जाने भक्षणा करजाने मध्ये
 समझना=इनके सिवाय=जो स्मृत्यन्तर यह वचन है कि=केशकीटनखप्राशयन्त्य
 कंठकमेवच हेमतपंतघृतं पीत्वा तत्क्षणादेवशुद्धीति (तन्मुखमात्रप्रवेशविषयसिति
 सिताक्षरा=अर्थात्-किसी के बाल या वारीक कीरे सक्की आदि या नख आदि
 कोई मेल या सडरी का काँटाही भक्षणा करिजाय सो तत्कालही सोने सहित घी
 को सेमा गरल करै जो सोनेके रंग लरीया तपिजाय तिसको पीकर शुद्ध होजाता है
 व्रतकी जरूरत नहीं रही(यह प्रायश्चित्त उसकोलिये समझना जिसने मुखमें प्रवेश
 होतेखार बाल या सक्की आदिको उगल दिया हो किन्तु भीतर नहीं जाने दिया=
 कदाचिद्=भोजन करते समय परोसीहुई धातीपर सक्की वैदिके जीवती उडिजाय
 अदा बाल वात फूल आदि येमाथोडाया गिरपरै जोदेखके निकामिडारा जामकैसेमे

अन्नको दूषित हो जानेसमये प्रचेताकावचन है—यथा=अनंतभोजनकालेतुमच्छिक्काकेय
 दूषितस अनंतरस्पृशोदाघस्तश्चान्नभस्मनास्पृशो(दितिप्रासंगिकोऽयं लोकः=अर्थात्—
 भोजन के समयपर जो अन्न सख्दी या वा आदिसे दूषित होजाय तिसको अ न्तर
 तत्कालही(अमृतं नव)इत्यादियविव्रसंत्रोसे पढेहुये ज तसे छींटे देकरचूल्हेकोशु द्वाराखले
 करउसके चारोतर्फ छिटकावै तिससे शुद्धहो जाताहै यह प्रसंग से प्रतीक यहाँ लिखा
 गया किन्तु इनकी चर्चाका ठिकाना यहाँ नहींथा आगे कहीं आवैगा=कृमि कीट
 आदि जो अति सूक्ष्मतर कीरे भक्षणाकरै तिसके समये हारीतज जड़ी व्यवस्था कही
 है=यथा=कृमिकाटपिपोलिकाजलौकःपतंगास्थत्राशने गोमत्रगोमयाहारस्त्रिरात्रेण
 विशुध्यतीति=अर्थात्—कृमि कीट या चेंटी या जतमें जो कीरेहोयँ या कृती उडने
 पतंग हींडी बिड़िया आदिके पांख हाड़ खाइ लेवै सो तीतदिन राति में गोमत्र और
 गोबर के आहार से व्रतकरिके शुद्ध होताहै ॥ इस लिखे हुये कुल्ल डौतमें ससेपही
 से थोड़े पशुओंके नाम थोड़े उडने वालोंके नाम थोड़े जत जीवों के नाम लेकर बुरे
 मांस आदि पर प्रायश्चित्त कहे गये•संसारमें जीवोंके अनन्त भेदहैं उन सभीके जुदे
 स्वरूप कहिकर नहीं लिखेजाते ग्रन्थ बहुतबड़ाहोकर पढना भी दुर्घट होजाय• ति-
 ससे इसयोड़ेही लसूनासे सबजीवोंकी व्यवस्था अपनी बुद्धियोंसे विचारतेरहिना ॥

अथोच्छृष्टाश्चुचिप्राणसंसृष्टस्याशुचिद्रव्यसंसृष्ट

स्यान्नपानादिर्भक्षणे च प्रायश्चित्तप्रकाश क्रोशं

परिच्छेदः सप्ततमः ७०

—*—

इस परिच्छेद में अशुद्ध प्राणी और अशुद्ध चीजों से हुये भिड़े विगड़े अन्न पान
 खानेपीनेके प्रायश्चित्त कहे जायँगे—तहाँ प्रथम किसीका जूटाखाना या जूटा पानी
 पीना आदिके प्रायश्चित्त है-तिसके अनन्तर अशुचिद्रव्यों से हुये विगड़े का चर्चा
 है तहाँ पहिले सख्दी वा ज आदि अन्नमें गिर परने या बिद्या मांस आदिसे हुइजाने
 वा चंडाल रजस्वला आदि कुत्ता काग आदिसे हुइजाने के प्रायश्चित्त या जूटी पंक्ति
 में खाने आदि के फिर मुर्दा गिरि के सड़े राले कूप तलैया आदि का पानी नहाने
 पीने के प्रायश्चित्त है ॥

(परोच्छिष्टान्न भोजन प्रायश्चित्तं)

अत्रोच्छिष्टभक्षणमनुराह=विडालकाक खूच्छिष्टंजग्ध्वाश्चनकुलस्यच केशकीरा
 वपन्नचपिवेद्ब्राह्मीसुवर्चलाम् (अत्रकालविशेषानुपादानादेकरात्रं • इदमकामतोद्दृष्ट
 व्यमितिमिताक्षरा=अर्थात्-बिल्ली • कौआ • ममा • कुत्ता • नेउरा • इनकी जूठी कोई
 बस्तु और वह वस्तु कि जिसमें बार या कीरे आदि परेहों खाइ के ब्राह्मी सुवर्चला
 नाम औषधीका काढा पीवै तब शुद्ध होय (इसमें यह नियम नहीं कहा कितने दिन
 पीवै तिससे एकही दिनका पीना समझा गया • यह प्रायश्चित्त उसीपर आरू डहोगा
 जिसने विना जाने भक्षणा कियाहो=और=जिसने जानि ब्रह्मिकामनासे भक्षणा किया
 तिसके लिये अत्रोक्तप्रायश्चित्त है=यदाह विष्णुः=पक्षिश्चापदजग्ध्वाश्चरन्त्यान्नस्य
 भूयसः संस्काररहितस्यापिभोजनेकच्छपादकम् (इतितत्कामकारविषयमितिमि-
 ताक्षरा=अर्थात्-पक्षी वा कुत्ते आदिके बार बार जुठारे रस या अन्नको शुद्धि रूपी
 संस्कार करने विना खाइलेनेमें कच्छका चौथाई प्रायश्चित्त करना चाहिये जो तीन
 दिनमें होगा (इसमें जो अन्नकी शुद्धिरूप संस्कार न होना दोष कहा गया तिसके
 होनेका प्रकार देखो आचार मर्यादा वाले काण्डमें १८८ एकशौ अठ्ठासी मूल
 श्लोकसे)किन्तु(संस्कारश्चदेवद्वीरायामित्यादिनां द्रव्यशुद्धिप्रकरणोक्तोऽप्येव्यइति
 मिताक्षरा)=जिसने विना इच्छाके धोखा आदिसे बारम्बार ऐसा दूखित अन्नखाने
 का अभ्यास किया हो तिसके लिये अत्रोक्त प्रायश्चित्त देखना=यदाह शातापतः=
 अकाकाद्यवलीढशूद्रोच्छेयताभोजनेऽवतिकच्छ (मितितदकामतोऽभ्यासविषयमितिमि
 ताक्षरा=अर्थात्-कुत्ता कौआ आदि जीवोंकी चाटी जुठारी वस्तु या शूद्रकी जूठी
 होय तिसको भोजन करनेवाला अतिकच्छ करै=इच्छा सहित बारम्बारक अभ्यास
 पर इससे भी बड़ा प्रायश्चित्त आगे देखो=यदाह शंखः=शुनामुच्छिष्टकंभुत्कामासमे
 कं व्रतीभवेत् काकोच्छिष्टंगवाऽऽघातंभुत्कामपक्षव्रतीभवेत् (इतियावकव्रतमुक्तंतत्काम
 तोऽभ्यासविषयमितिमिताक्षरा=अर्थात्-कुत्तों का जूठा खाइ के एक महीना भर
 गोमूत्रका रँदा जौका भात खातेहुये व्रतकरै और कौवेका जूठा तथा गायका सूंघा
 चाटा अन्न खाइके एकपाख भर जौका यावक भोजन करते हुये व्रत करै तब शुद्ध
 होय ॥ ० ॥ ब्राह्मणाका जूठा ब्राह्मणा खाय तिसका भी प्रायश्चित्त वृहत् विष्णु ने
 कहाहै=यथा=ब्राह्मणाःशूद्रोच्छिष्टाशनं सप्तरात्रंपचाद्यपिवेत् वैश्योच्छिष्टाशनंपंच
 रात्रं राजन्योच्छिष्टाशनं त्रिरात्रं ब्राह्मणोच्छिष्टाशनं त्वेकाह मिति (तत्कामकार

विद्ययसिति सिताक्षरा=अर्थात्—ब्राह्मणा जो शूद्र का जूठा कुछ खाय तो वह सात दिन पंचगव्य पीकर व्रतकरै जो वैश्यका जूठा कुछ खाय तो पांचदिन पंचगव्य पीके रहै जो क्षत्रीका जूठा कुछ खाय तो तीनदिन पंचगव्य पीवै जो ब्राह्मणा का जूठा कुछ खाय तो एकदिन पंचगव्य पीवै (ये प्रायश्चित्त उसके लिये विचारना जिसने इच्छा सहित इनका जूठा खायाहो=और=जिसने इच्छा सहित अनेकवार का अभ्यास कियाहो तिसके लिये अश्रोक्त प्रायश्चित्त विचारना=यदाह मनुः=भुक्त्वास हब्राह्मणो न प्राजापत्येन शुद्ध्यति भूभुजा सहभुक्त्वा न्नंततः कच्छे शाशुद्ध्यति वैश्येन सहभुक्त्वा न्नमति कच्छे शाशुद्ध्यति शूद्रेण सहभुक्त्वा न्नं चान्द्रायणमथाचरेत्=अर्थात्—ब्राह्मणा किसी ब्राह्मणाके साथ एक थालीमें भोजन करिके प्राजापत्यसे विशुद्ध होताहै क्षत्रीके साथमें कुछ खाइके तप्तकच्छेसे पवित्र होताहै वैश्यके साथमें कुछ खाकर अति कच्छेसे पवित्र होताहै शूद्रके साथमें कुछ खाइके चान्द्रायण एक मास भर आचरै तब शुद्धहोय (ये सब इच्छासे चाहकर बारम्बार खाइलेनेमध्ये प्रायश्चित्तहैं=परंतु=जिसने इच्छा के विना एक बारही खायाहो तिसके लिये अश्रोक्त प्रायश्चित्त हैं=यदाह शांखः=ब्राह्मणोच्छ्रियाशने महाव्याहृतिभिरभिसंश्रयापः पिवेत्सत्रियोच्छ्रियाशने ब्राह्मीरसविपक्षेन च्यहं क्षीरेण वर्त्तयेत् विशोच्छ्रियाशने त्रिरात्रोपोषितो ब्राह्मीसुवर्चलापिवेत् शूद्रोच्छ्रियभोजनेषु डात्रमभोजनं (इतितदकासविषयं=अर्थात्—ब्राह्मणा ब्राह्मणाका जूठा खाइकर महाव्याहृतियों से जलको पीकर पीलेनेसेही शुद्धहोजता है क्षत्रीका जूठा खाइलेनेमें ब्राह्मी औषधीका रस मिलाइकर पकाये दूधको पीकर तीन दिन व्रत करै वैश्यका जूठा खाइलेने में तीन रात्रि व्रत करिके ब्राह्मी सुवर्चला औषधीका काढ़ा पीवै शूद्रका जूठा खाइलेनेमें छे दिनतक निराहार व्रतकरै=और जिसने इच्छाके बिना कईबार जूठा खायाहो तिसके लिये इन्हीं प्रायश्चित्तोंको दूनातिगुना आदि बढ़ाकर करवाना ॥०॥ अपवादविशेषः—जूठा खाना जो निये शक्तियागया सोभी पिता आदिसे उपशालू में समझना क्योंकि (पितृज्यैष्ठस्य च भ्रातृकुच्छ्रियं भोज्यमित्यापस्तम्बः) आपस्तम्बका वचन है कि पिता और जेठे भाईका जूठा खानेमें दोष नहीं=और जो=वृहत्संन्यासका यह वचन है कि=मातावाभगिनीवापि भार्यावाऽन्याश्च योषितः न ताभिः सह भोक्तव्यं भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् (तत्सहभोजनविषयसिति सिताक्षरा=अर्थात्—माता बहिन भार्या या और कोई स्त्रियां जो रिश्तेमें होती हों तिनमें किसीके भी साथ मिलिके न भोजन करै कदाचित्त करि लेंटा हो तिसको चान्द्रायण करना चाहिये (इसके ऊपर सिताक्षरा की यह पंक्ति जो धरी गई कि यह

नियेध एकसाथ किन्तु एक वासनमें मिलिके खानेका क्रिया भी यह कथन यद्यपि
 ठीकहै) परन्तु इसका ध्वन्यर्थ ऐसा मत समझ लेना कि स्त्रियोंका जूटा लेकर जुदा
 वैदिके खानेसे कुछ दोष न होगा इसपर बहुत बड़ा शास्त्रार्थ खड़ा होता है जिसका
 लिखना यहां जरूरी और स्वीकार नहीं है • यद्यपि एक साता केवल स्वकीय जन्नी
 का जूटा खानेमें कुछ दोष नहीं प्रतीत होता है तथापि उसमें यह निबंध है कि जब
 तक यज्ञोपवीत रूपी संस्कार न हुआ हो तभी तक दोष नहीं तिससे आगे उसमें भी
 दोष है = वयोक्ति = सर्व सामान्य स्त्रीमात्रका जूटा या साथ मिलि खाने मध्ये आपस्तम्ब
 ने प्रायश्चित्त भी दर्शाया है = यथा = शूद्रोच्छिष्टभोजनेसप्तरात्रम भोजनंस्त्रीणांचेति =
 अर्थात् - शूद्र और स्त्रीमात्र का जूटा खाइ लेनेमें सातदिन का उपवास करै = इसके उ-
 परालू = एक अंगिराका यह वचन है कि = ब्राह्मरायासहयोऽश्रीयादुच्छिष्टं वा कदाचन
 तत्र दोषं न मन्यन्ते सर्वस्य मनीषिराः इति (तद्विवाहविययमापद्विययं वेति मिताक्षरा =
 अर्थात् - जो कोई ब्राह्मरा अपनी विवाहिता ब्राह्मराके साथ वैदिक कभी कुछ खाय
 तो इसमें दोष नहीं है सबही मनीषी पुरुष ऐसा मानते हैं (सो यह केवल विवाहकाल
 का चर्चा है कि उसमें लहकौरि आदि खवाई जाती प्रसिद्ध है अथवा कभी आप-
 त्कालमें साथ खाना परै तिसका भी यह चर्चा जानो ऐसा मिताक्षराकार ने कहा)
 ब्राह्मरा कहिनेसे यह तात्पर्य ठहिरा कि जिसने अपनेसे नीचे वर्राकी कन्या साथ
 विवाह किया हो तिसको विवाहके समयभी भार्याके साथ न खाना चाहिये किंतु
 खाइ लेनेसे प्रायश्चित्त करना होगा ॥ ० ॥ अन्त्यजात्युच्छिष्टभोजनेतु - अन्त्य
 जाती लोगों का जूटा खाइ लेनेमध्ये बड़े प्रायश्चित्त हैं = यदाह आपस्तम्बः = अत्यानां
 भुक्तशेषान्तु भक्षयित्वा द्विजातयः चांद्रं कच्छन्तर्द्धं च ब्रह्मसत्रविशां विधिः (अत्र चांद्रं
 चांद्रायसां = अर्थात् - अन्त्य जातें जो चण्डाल और शूद्रों के बीचवाले नीच होते हे
 तिनका जूटा खाइ के द्विजाती लोग इस क्रम से प्रायश्चित्त करै कि ब्राह्मरा को
 चांद्रायसां और क्षत्री को कच्छ और वैश्य को आधा कच्छ करना चाहिये ॥ ० ॥
 अन्त्यजातियों से भी अधिक महीन जो साक्षात् चण्डाल होते और अन्त्यावसायी
 नाम से कहाते हैं तिनका जूटा खाइलेने में ऊपरलों से भी अधिक बड़े प्रायश्चित्त
 हैं = तदाहंगिराः = चण्डालपतित्तादीनामुच्छिष्टान्नस्य भोजने चान्द्रायसांचरेद्विप्रः स
 वः सांतपनंचरेत् यदात्रंचत्रिरात्रंचवर्षायोरनुपूर्वशः (सान्तपनसत्रसहासांतपनमिति
 मिताक्षरा = अर्थात् - चण्डाल और पतित ब्रह्महत्यारे आदि का जूटा अन्न खाइ
 लेनेमें ब्राह्मराहो सो चान्द्रायसां करै क्षत्री महाशान्तपन करै वैश्य छैदिनका कच्छ

करै शूद्र तीन दिन उपवास करै=आपदितुविशेषः=आपत्काल में केवल ब्राह्मणाका जूटा खानेके निमित्त पर जुदा एक नियम है=तदाहपराशरः=आपत्कालेतुविप्रस्य भुक्तशूद्रगृहेयदि सनस्तापेनशुद्धे तत्रिपदांचशातंजपेत्=अर्थात्-अन्नका अकाल आदि किसी कठिन कालमें निज प्राणोंकी रक्षा हेतुसे केवल ब्राह्मणा का जूटा खाना परा हो या शूद्र के घरमें बैठके अपने हाथका बनाया अन्न खाने का नियम है सो खाना पराहो तिसका दोष केवल मनमें बहुत पछितावा करने से ही मिटिजाता है परन्तु जो साक्षरहोय सो गायत्रीका सैकरा जपिकर शुद्ध होताहै (यह एक सैकरा एक दिनकेही दोष पर सन्नक्षना किन्तु अनेक दिनके मध्ये इसी हिसाब से=परन्तु आपत्कालके बिना इससे जुदे नियमहैं सो आगे देखौ ॥ ० ॥ पीतशेषजलपानेतु— वृहत् शाता तपः=पीतशेषं च यत्किंचिद्वाजने मुखानिःसृतम् अभोज्यं तद्विजानीयाद्भुत्का चान्द्रायणाचरेत् इति (तदभ्यासविषयं ज्ञेयं निमित्तस्य लघुत्वादिति सिताक्षरा=अर्थात्— पीकर बचाहुआ जल पात्रमें जो कुछरहा या मुख से निकसाहुआ सो सब अभोज्य में गिनती है तिसको खाकर चान्द्रायणाकरै यह बड़े शातातपने कहा (इसपरसिताक्षराकार कहितेहैं कि यह दोष छोटाहै तिससे अनेक बार ऐसा जल पीनेसे दोष की वडाई समझीजानेमें यह बड़ा प्रायश्चित्त चाहिये नहीं तो एकहीबार पीने पर छोटा प्रायश्चित्त ठुंढना सो आगे देखौ=यथा=पीतोच्छिद्यन्तुपानीयं पीत्वा तु ब्राह्मणाः क्वचित् त्रिरात्रं तु व्रतं कुर्याद्वासहस्तेन वा पुनः (सतच्च बुद्धिपूर्वविषयं अक्रामतस्त्वर्द्धकल्पमिति सिताक्षरा=अर्थात्—पीकर जूटे हुये पानीको कहीं कोई ब्राह्मणा पीलेवे सो तीन दिन व्रत करै और बासे हाथसे भी पीकर यही तीन दिनका व्रत करै (इस पर भी सिताक्षराकार कहितेहैं कि अहतीतदिनका प्रायश्चित्त भी उसको चाहिये जिसने जानते हुये पिआहो किन्तु बिना जाने पीलेने पर इससे भी आधा सिर्फ डेड दिनका व्रत चाहिये=ध्यान करौ=अद्यपि सिताक्षराकार कहि चुके सो सब ठीकहै परन्तु न्यायका स्वरूप इसमें यहीहै कि पहिले वचन में शातातप ने सहीने भरका चान्द्रायणा कहा सो भी अनेक बार पीने पर नहीं किन्तु एकही बार पीलेने मध्ये कहा लेकिन अन्य वर्णोंका जूटा पीलेनेमध्ये कहा क्योंकि प्रायश्चित्त बड़ा होनेसे यही उसका तात्पर्य है और इस दूसरे वचन से तीन दिन का प्रायश्चित्त केवल अपना जूटा जो बचा पहिला पराहो तिसके पीलेने मध्ये कहाहै कि जैसा उनके साथही अपने बासे हाथसे पीलेने पर वही तीन दिनका प्रायश्चित्त कहा— इसमें कोई तर्क उटानै कि अपना जूटा पीने में क्या दोष है जो तीन दिन प्रायश्चित्त

करै तिसका उत्तर भी यही है कि अपने बाए हाथमें क्या दीय है जिसके द्वारा शुद्ध जल पीकर भी प्रायश्चित्त चाहिये • किन्तु धर्मशास्त्रका स्वरूप यहां यही है कि वचनसे प्रवृत्ति और वचनहीसे निवृत्ति मानी जाय ॥ ० ॥ दीपोच्छ्रित्तैलेतु—दीवेका जला जूटा तैलखाइलेने मध्ये अहत्रिंशन्मतग्रन्थसे जुदा प्रायश्चित्त है—यथा= दीपोच्छ्रित्तैलेतुलंशत्रौरथ्याहंतु यत्तत्र अशुचिं वा चैव यच्छ्रित्तं भुक्तान् क्लेशशुद्धीति= अर्थात्—तेल जो दीपक जलाकर जूटा वचा या अंधेरी राति रास्ते गली आदि की धरती पर गिरा हुआ सूतिके खालियाहो ऐसा बिना जला भी या देहमें लगाते जो बचिगयाहो तिसको भी खालेनेमें रात्रि व्रत करनेसे विशुद्ध होता है ॥ यहाँ रात्रि व्रत (नक्तव्रत) नामसे समझना कि जिसकी जुदा एक विधि होती है • यथा (हविष्यभोजनं स्नानं सत्यमाहारलाघवव्यअग्निकार्यमधःशय्यां नक्तभोजीषडा चरेत्) अर्थात्—दिनमें कुछ न खाइके चार घड़ी रातिगये पर थोडा भोजन करै सो नक्तव्रत कहाता है तिसके साथ छे बातों की साधना है कि दिनके सिवाय सायंकाल भी स्नान करै उस दिन असत्य कुछ न बोलै पेटभर न खाय अग्निमें खीरि पूरीका होम करै वही आप खाय धरती पर सोवै तब यह नक्तव्रत कहाता है (निशानक्तन्तुविज्ञेयं यामाह प्रथमे सदा) इस वचनसे चार घड़ी राति गये के भीतर अग्निका होम और भोजन करना संसिद्ध है ॥ ० ॥ यहां तक अशुचि प्रारणी करके हुई बिगाडी वस्तु खाने के प्रायश्चित्त कहे गये—अब नीचे अशुचि वस्तुसे भिड़ी हुई अन्नादिक वस्तु खाने के प्रायश्चित्त कहे जायेंगे ॥ इत्यशुचिप्रारिणसंस्पृष्टभक्षणाप्रायश्चित्तानि ॥

(अथाशुचिद्रव्यसंस्पृष्टभोजनप्रायश्चित्तं)

अत्राहसंवर्तः=केशकीटोपपन्नन्नुनीलीलासोपघातनसदनाद्यवस्थिचर्मसंस्पृष्टं भुक्त्वा तूपवसेदहः=तथाशातातपोपि=केशकीटावपन्न रुधिरसांसास्पृश्यस्पृष्टभूसाहावेक्षित पतत्रधवलीहृद्यसूकरगवाघ्रातशुष्कपर्युयितवृथापक्षिवाह्नहवियां भोजनेतूपवासः पंच गव्याभनंचेति (एतच्चोभयमपि अक्रामविययमिति मितिक्षरा=अर्थात्—बाल या कीड़े जिसमें परेहुये ऐसा अन्न या नील वा लाखसे दूयित अन्न या नम नाडी हाड चमडा इनमें भिड़ा बिगाडा हुआ अन्न खाइके एक दिन उपवास करै—तैसा शातातप ने भी कहा है कि=बाल कीड़ों से मिला अन्न वा लोह सांस आदि न होने योग्य चीजों से हुआ बिगाडा अन्न वा गर्भकी हत्या करनेवाला भूसाहा कहाता है तिसकी आंखों से देखाहुआ अन्न वा पतत्री पक्षीआंका जुढारा हुआ अन्न वा कुत्ता सुअर गायोंका

संधाहुआ अन्न वा अनेक दिनका बना धरा सुखा या कई दिनका वासी सडा वुसा
 अन्न या वृथापक जो देव पितर अभ्यागतको निवेदन किये बिना बनाकर धराहो
 या देवताके निमित्त भेट देनेको संकल्प किया अन्न धराहो या देवताका चढा या
 हविय किसी पूजाके निमित्तकी सामग्री धरीहो इनमें किसी एकही के खालेने में
 एक दिनका उपवास प्रायश्चित्तहै दूसरे दिन पंचगव्य का आहार करना चाहिये
 (ये दोनों संवर्त्त शातातयकी व्यवस्था केवल उसके ऊपर आसूढहैं कि जिसने इ-
 च्छाके बिना ऐसा अन्न खाया हो=और=जिसने जानि बूझि इच्छा के साथ ऐसा
 खायाहो तिसकोलिये अग्रोक्त प्रायश्चित्तहै=यदाहविष्णुः=मृदारिकुसुमादींश्चफल
 कन्देक्षुमलकान् विरामूत्रदूषितान्प्राश्यकृच्छ्रपादंसमाचरेत् सन्निकृष्टेऽर्धमेवस्यात्कृ-
 च्छस्त्वशुचिभोजने (अल्पसंसर्गोपादोमहासंसर्गोऽर्धसाक्षादशुचिलिप्तवस्तुभक्षरोपूर्णां
 कृच्छ्रं कुर्यादितिव्यवस्थायांविधात्वंविज्ञेयं • धर्मशास्त्रोक्तत्रतेयुपल्लिंगोपिकृच्छ्रश-
 ब्दः=अर्थात्-कोई अष्ट मारी या जल या खाने के फल आदि या फल कन्द गांडा
 मूली आदि कोई चीज विष्टा या मूत्रसे थोडी दूषितहुईहो तिसको खाइकर चौथाई
 कृच्छ्रसाधै तव शुद्धहोय एवं जो अति समीपसे दूषित हुईहो तिसको खाकर आधा
 कृच्छ्र साधै एवं जो चीज गृह मूत्रसे साक्षात्कार लिपिगाईहो तिसको खाकर परंपर
 कृच्छ्र करै तव शुद्ध होय (इन तीनोंका दृष्टान्त ऐसे समझो कि बेरी के वृक्ष तले
 हगी मती धरतीके पास गिरे बेर कोई ले आवै तौ यह थोड़े दूषित कहावेंगे परन्तु
 जो हगी मती धरती पर गिरे बेरले आवै तौ यह अति समीप से दूषितहुये कहा-
 वेंगे इसके सिवाय यदि कोई ऐसे बेरों को चुनि कर खाइ जाय जो साक्षात् हगे
 हुये विष्टामें भरिपरेहों तौ यह अशुचि भोजन कहा जाकर पूरा कृच्छ्र करनेसे वि-
 शुद्धहोगा इसीतरह सब चीजोंपर तीन भेद समझि लेना ॥ ० ॥ अगिले व्यासजी
 के वचन में जो संसर्ग बर्णन करैंगे तिसमें केवल अशुचि प्राणीके छुइजाने मात्र का
 चर्चाया अशुचिद्रव्योंसे छुइजाने मात्रका चर्चाहै लिपिजानेका नहीं=यथाहव्यासः=
 संसर्गदुष्टंयच्चान्नक्रियादुष्टं चकासतः भुक्त्वास्वभावदुष्टञ्चतप्तकृच्छ्रं समाचरेत् (एतच्चासं-
 स्पृष्टामेध्यादि रसोपलब्धौवेदितव्यमिति मिताक्षरा=अर्थात्-जो अन्न संसर्ग (किसी
 मलीन सूखी वस्तुकी छुआछाई मात्र) से दूषित हुआ यदा खांटी क्रिया से अर्थात्
 बामे हाथसे परीसने आदि निषिद्ध प्रकारोंसे अथवा अपने स्वभावही से दूषित हुआ
 हो जैसे वासी होकर वुसिजाना आदि ऐसे अन्नोंको खानेवाला तप्तकृच्छ्र साधै (इस
 में संसर्गका चर्चा किया सो उस भांति का कोरा संसर्ग समझना कि जिसमें किसी

चीजका रस न लगने पावै उभीके भक्षणा का यह प्रायश्चित्त है ॥ ० ॥ रजस्वला चांडालादिस्पर्शेत्—रजस्वला आदि का हुआ अन्न खाने का प्रायश्चित्त आगे देखो=तदाह शंखः=अमेध्य पतित चांडाल पुलकस रजस्वला अवधूत कुराणा कुष्ठि कुनखि संस्पृष्टानिभुत्क्वाकृच्छ्रं चरेत् (एतत्कामकारविययं• अक्रामतोऽर्धं कुर्यादिति मिताक्षरा=अर्थात्—अमेध्य विपदा रक्त मांस आदि• पतित• चांडाल • पुलकस • रजस्वला • अवधूत संन्यासी आदि • कुराणी जिसका हाथ विकृत विगडा हो • कोढ़ी • कुनखी जिसके नख विगडे हों • इनके हुये अन्न खाइके कृच्छ्रव्रत आचरे (यह भी इच्छाके साथ खाइजाने पर समझना किन्तु इच्छा विना खाने में आवा कृच्छ्र करना यह मिताक्षराकारोंने कहा ॥ ० ॥ अगोक्त विपदाके वचन वाला प्रायश्चित्त अशक्तके निमित्त पर मिताक्षराकार बताते हैं=यदाह विपदाः=भुत्क्वाऽस्पृश्यैस्तथाऽशीचि के शकीटैश्च दूयितस कुशोदुंबरविल्वाद्यैः पनसांब्रजपत्रकैः शंखपुष्पीसुवर्चादिकाथपीत्वा विशुद्ध्यतीति (तदशक्तविययं रजकादि स्पर्शविययं वा इति मिताक्षरा=अर्थात्—नहूने योग्य जीवों या मनुष्योंका हुआ अन्न तथा सूतकी लोगोंका हुआ अन्न खालेवै या चार कीड़ोंसे दूयित अन्न खाय या कृशा गूलर बेज आदिके पत्तोंपर धरा हुआ या कटहर कमल इनके पत्तोंपर धरा हुआ खाय सो शंखपुष्पी सुवर्चा आदि औषधियों का काथ पीकर शुद्ध होजाता है (यह छोटा प्रायश्चित्त अशक्त पुरुषके निमित्तपर या रजक आदिका स्पर्श होजाने मध्ये समझना किन्तु अति मलीन के स्पर्श मध्ये नहीं यह मिताक्षराकारोंने कहा ॥ ० ॥ शूद्रादिस्पर्शेत्—शूद्रादिसे हुआ विगडा अन्न खानेके प्रायश्चित्त जुदेहें=तदाह हारीतः=शूद्रेणोपहतं भोज्यं कीटैर्वाऽमेध्यसेविभिः भुंजानेयुनुवायत्र दद्याच्छूद्र उपस्पृशेत् अनर्हत्वात्संपत्तौ तु भुंजानेयुवायत्रोत्थायोच्छिद्यं प्रयच्छेदाचामेद्वाकुत्सित्वावायत्रानंद्युस्तत्र प्रायश्चित्तमहोरात्रम्=अर्थात्—भोजन करते हुये खाने योग्य अन्न जो शूद्रके छूनेसे दद्या विद्या आदि मलीन स्थानमें रहिने वाले कीड़ोंसे अशुद्ध होजाय अथवा भोजन करते पुरुष को शूद्र अपने हाथ से जल अन्न आदि कुछ देदेवै किन्तु परोसिदेवै या भोजन करनेवाले कोही छुइ लेवै यदा उजदपनकी अयोग्यतासे चौकेकी पांक्तिहीमें घुसिजाय अथवा एकपांतिमें बैठे भोजन करते अनेक ब्राह्मणोंमें कोई एक उठिकर अपनी पत्तल आदि जूटनि पांतिके बाहर लेजाय या उभी जये बैठा रहिकर पांतिसे बाहर वाले किसी जूटनि के खवैया को मसपेसा करदेवै अथवा ऐसा न करनेपरभी केवल आचमन करनेलगै तो इस पुरुष को पांतिजुटी करदेनेके योगमें एकदिन रातिभर उपवास प्रायश्चित्त करना चाहिए

और उस जूठी पंक्तिके मनुष्य जो ऐसा होजाने बादि खातेरहें तिनको भी व्रतकरना चाहिये और उसकोभी कि जिसको शूद्रने छुड़लिया या कुछ परोसि दियाथा इनके सिवाय जहां जिस पांति में परोसने वाले किसीको निन्दा करते हुये परोसें तो उस पांतिका अन्नखानेवाले और परोसनेवाले सभीको एक उपवास प्रायश्चित्त करना चाहिये=उच्छिष्टायांपक्तौतु—जूठी पंक्तिमें भोजन करने मध्ये क्रतुस्मृतिमें विशेषता कहीगई है=यथा=यस्तुभुक्तं द्विजःपंत्यामुच्छिष्टायांकदाचन अहोरात्रोषितोभवापंचगव्येनशुद्ध्यतीतिक्रतुस्मरणात्=अर्थात्—जो कोई द्विज होकर कदाचित्त जूठी पंक्तिमें (कि जिसके लक्षणा सब तरह ऊपर कहिचुके) भोजन करै सो एकदिनराति भर उपवास करिके दूसरे दिन पंचगव्य पीकर शुद्धहोताहै=जूठीपंक्तिमें भोजनकरने पर पराशर ने भी विशेषता कही है=यथा=एकपत्न्युर्पाविष्टानां विप्राणांसहभोजने यद्येकोषित्यजेत्पात्रशेषमन्नंनभोजयेत् सोहाङ्गं जीतयस्तत्रपंत्यामुच्छिष्टभोजनः प्रायश्चित्तंचरेद्विप्रःकृच्छ्रं सांतपनंतदा=अर्थात्—एक पांतिमें अनेकब्राह्मणांके सहभोजन में बैठे हुयोंमें से यदि कोई एक भी अपने आगेका पात्र त्यागि देवै किन्तु वचे अन्न को न भोजै तिससे पांति जूठी होजातीहै तहां यदि कोई अपनी सुखतासे जूठाभोजन करै सो ब्राह्मणा हच्छसान्तपनका प्रायश्चित्त आचरै तत्र शुद्धहोय=और=मंत्रविधि रहिताद्यन्नभोजनेतु—परोसी हुई थाली पर जलके साथ मन्त्र विधि किये विना अन्न खालेने या बाये हाथसे परोसे अन्नखाइलेने आदि कुछ बातों का प्रायश्चित्त यद्विश्रान्तके ग्रन्थकर्ताने कहाहै=यथा=समुत्थितस्तुयोभुक्तं भुक्तभाजने वासनिर्मुक्तं कभुक्तं योभुक्तं २संत्रभोजनसु खवैवस्वतःप्राहभुक्त्वासांतपनंचरेत्=अर्थात्—खडा होके यदि भोजन करै या जो कोई भोजन किये जुटे पात्रमें भोजनकरै या बायेहाथसे दिये हुये अन्नको भोजन करै या मंत्रविधि किये विना भोजन करै तिनके लिये वैवस्वत मनु ऐसा कहिते हैं कि सांतपन व्रत आचरै ॥ ० ॥ मुर्दा आदि बूडे कूप आदि का जल पीने मध्ये जुदे प्रायश्चित्त हैं=तदाह विष्णुः=मृतपंचनखात्कूपादत्यंतोपहताद्वो र्दकंपीत्वाब्राह्मणास्त्र्यहमुपवसेत् इयंहराजन्यः सदाहंवैश्यःशूद्रो नक्तं सर्वेचांतेपत्रा व्यपिवेयुरिति (अत्यंतोपहताद्वेतिमंत्रपुरीयादिभिर्वैत्यभिप्रेतं=अर्थात्—पांच नखवाले प्राणियोंमें कोई मरा जीव जिस कूआमें गिरपराहो या जिस कूआमें गूह मूत्र आदि अति मलीन कोई चीज गिरीहो तिसका जलपीकर ब्राह्मणा तीनदिन क्षत्रा दो दिन वैश्य एक दिन उपवास करै और शूद्रको नक्तव्रत चाहिये जिसमें दिनभर उपासकरिके रातिमें आधा पेट भोजन किया जाताहै• सभी लोग अपना अपना व्रत करने के

चादि पंचगव्य पीवै तव शुद्धहोयँ=जहां=किसी कूपमें गिराहुआ मुर्दा मुख पसारने
 आदि हेतुसे पानीपीकर गलिघुलिजाय तिसका जलपीने मध्ये अग्नोक्त प्रायश्चित्तहै=
 यथा हारीतः=क्लिन्नंभिन्नंशवन्तोयेतवस्थंयदितत्पिवेत शुद्धयैचान्द्रायरांकुर्यात्तप्तकू-
 च्छमयापिवायदिकप्रायश्चित्ततःस्नायात्प्रसादेनद्विजोत्तमः जपंस्त्रियवरास्नायीअहोरात्रे
 राशुद्धयतीति (इदंचान्द्रायरांकामतोमानुषशवोपहतकूपजलपानविषयमितिमिता-
 क्षरा=अर्थात्-जिस जलमें मुर्दा परा रहिनेसे फूलिकर गलै या फूटिजाय तिस जल
 को यदि पीवै तो इस दोयकी शुद्धिकेलिये चान्द्रायरा करै अथवा तप्त कूचछ करै
 और जो कोई ब्राह्मण जलको पिये बिना देवल स्नान मात्र अपनी स्वर्गता से करै
 सो अच्छे जलमें जाकर त्रिकाल स्नान करिके गायत्री जप करतेहुये एक दिनरात्रि
 भर व्रत करके शुद्ध होताहै (मिताक्षराकार कहितेहैं कि यह महीनेभरका चांद्रा-
 यरा उस जलके पीने पर समझना जिसमें मनुष्यका मुर्दा गिरके सडाहो और पीने
 वाले ने जानि वृष्णि इच्छा सहित पिआ हो। तिससे तप्त कूचछ वाला प्रायश्चित्त
 मनुष्यसे उपरालू किसी अन्य जीवके मुर्देवाला जल पीने पर आरूढ हुआ=मिता-
 क्षराकार फिर कहितेहैं कि यह प्रायश्चित्त इच्छासहित जल पीनेपर ठहिरद्रुका•
 तिससे इच्छा बिना पीने वाले पर छे दिनका प्रायश्चित्त चाहिये क्योकि अगिले
 वचन के अनुसार व्यवस्था मानीजासक्ती है=यदाह देवलः=क्लिन्नंभिन्नंशवंचैवकू-
 पस्थंयदजायते पयःपिवेतत्रिरात्रेयामानुष्यद्विगुरांस्मृतस=अर्थात्-कूआंमें परा हुआ
 मरा जीव यदि भीगि फूलिके फूटि जाय तो उस जलको बिना जाने पी लेनेवाला
 तीन दिन दूध पीकर व्रत करै परन्तु जो मनुष्य का मुर्दा गिराहो तो इससे दूना छे
 दिनका व्रत चाहिये ॥ ० ॥ चाण्डालादिहृतकूपजलपानेतु-चंडाल आदि अति
 मलीनों के कूप या पात्रका जल पीने मध्ये आपस्त्वका कहा प्रायश्चित्तहै=यथा=
 चांडालकूपभांडस्थंनरःकामाज्जलंपिवेत प्रायश्चित्तंकथंतत्रवर्णोवर्णोविनिर्दिशेत च
 रत्सान्तपतंविप्रःप्राजापत्यंचभूमिपः तदहंचचरेद्वैश्यःशूद्रेपादस्विनिर्दिशेत=अर्थात्-
 चाराडालके कुरका पानी या उसके वासनमे धरा पानी कोई मनुष्य इच्छा सहित
 पीलेवै तहां प्रत्येक वर्णोंके प्रायश्चित्त कैसे आज्ञा दिये जायँ सो कहितेहैं कि ब्रा-
 ह्मण गान्तपत आचरै क्षत्री प्राजापत्य करै वैश्य आधा प्राजापत्य करै शूद्र चौथाई
 करै (ये प्रायश्चित्त सब कामनासे पिये जल पर आरूढहैं=क्लिन्नु=इच्छा के बिना
 पीलेने मध्ये अग्नोक्त प्रायश्चित्त है=तदाह देवलः=चाराडालकूपभांडस्थमजानादुद-
 कंस्पिवेत सहृप्रहेराशुद्धयेतशूद्रस्त्वेकेनशुद्धयति=अर्थात्-चाराडाल के कुरका या

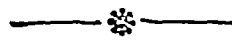
वासन का धरा उदक जो कोई विना जाने पीलेवै सो द्विजाती मात्र तीन दिन व्रत करनेसे पवित्र होताहै शूद्र एकही व्रत करिके शुद्ध होता है (अन्त्यजों के कूप या वासन का पानी अनेक बार पीनेका अभ्यास करै तिसकोप्राजापत्य चाहिये नीचे दूर जाकर आपस्तम्बका वचन देखना)=और=चण्डाल आदि सभी नीचोंके बनाये बांधे छोटे छोटे जलाशयोंका पानी पीलेनेपरभी कूपहीके समान व्यवस्था होगी= यथाह विष्णुः=जलाशयेष्वथाल्पेषु स्थावरेषुमहीतले कूपवत्कथितशुद्धिर्महत्सुतु नदूषणम्=अर्थात्—कुआंसे उपरालू छोटे जलाशय जो धरती पर स्थावर हों तिनके जल पीनेमें भी कुआंके समान प्रायश्चित्त आदि शुद्धि कहीहै पर बहुत बड़े तडागा भील आदि जलाशय जिनमें धारा प्रवाह जल होताहो चाहें किसी के वनत्रायेहों या चाहें कोई जीव उनमें सरा हो तौ भी जल पीने आदि का कुछ दोष नहीं है न प्रायश्चित्तकी जरूरत होगी ॥ ० ॥ पुष्करिणी तलैया बड़े गडहिले आदिके पानी पर जुदी व्यवस्थाहै=तदाहापस्तम्बः=स्लेच्छादीनांजलंपीत्वापुष्करिण्यांहर्देपिवा जा नुदमशुचिज्ञेयसधस्तादशुचिस्मृतम् ततोयंयःपिवेद्विप्रःकामतोऽकामतोऽपिवा अक्रा मान्तमंजीस्यादहोरात्रंतुकामतः=अर्थात्—स्लेच्छ आदि मलीन मनुष्योंके कब्जामें रहितौ पुष्करिणी या हृद (गडहिलेहौज) का जलपीकर यह व्यवस्थाहै कि गोडों के घूटे जिसमें डबि जायँ सो तौ जल पवित्रहै घूटोंसे नीचे होय सो अशुद्धहै ऐसे अशुद्ध जलको जो कोई ब्राह्मण पीवै सो इच्छा विना पीनेवाला दिन भर व्रत किये पीछे रात्रि में भोजन करै पर इच्छा सहित पीकर एक दिन राति का पूरा उपवास करै ॥ ० ॥ भाण्डस्थट्ठ्यादिभक्षणेतु—रजक छीपा रँगरेज धोवी आदि अन्त्यजों के पात्रका जल पीने मध्ये जुदा प्रायश्चित्त है=तदाहपराशरः= भाण्डस्थनन्त्यजा नान्तुजलन्दधिपयःपिवेत् ब्राह्मणःक्षत्रियोवैश्यःशूद्रप्रचैवप्रसादतः ब्रह्मकूर्चोपवासेन द्विजातीनान्तुनिष्कतिः शूद्रस्यचोपवासेन तथादानेनशक्तितः=अर्थात्—अन्त्यजों के वासनमें धरा पानी या दही या दूध जो कोई अपनी भलसे पीलेवै सो ब्राह्मण क्षत्री वैश्य इन तीनोंकी शुद्धि ब्रह्म कूर्च उपवास करनेसे होती है और शूद्रने पीलियाहो तिसकी शुद्धि केवल उपवास और यथाशक्ति दान करनेसे भी होतीहै—परन्तु इनमें से जिन किसी ने इच्छा सहित पिआहो तिसको वही प्रायश्चित्त दूना करना चाहिये=इहकोसिद्धा=जिसने अनेक बार ऐसा पानी दही दूध पीनेका अभ्यास किया हो तिसके लिये अगिले वचनसे प्राजापत्य विचारना होगा=यथाहआपस्तम्बः= अन्त्यजैःखानिताः कूपास्तडारावाप्यस्वशा रसुश्नार्त्वाक्षपीत्वाचप्राजापत्येनशूद्य

ति=अर्थात्—अत्यज्ञों के खोदवाये कूप या तड़ाग या बावडी इनमें स्नान करिके या पानीपीके प्राजापत्य करै तब शुद्ध होय (यह बारम्बारके अभ्यासकी व्यवस्था सामान्य उनके वासन और कूप आदि सभी पर आखूढ़है क्योंकि प्रायश्चित्त बड़ा होनेले स्त्रीका चर्चा ऊपर लिख चुकेहैं कि आपस्तम्ब का वचन नीचे दूर जाकर देखना)=और=जो इन्हीं आपस्तम्बके दूसरे अगिले वचनमें केवल पंचगव्यहीपीना कहा हो वह रोगी आदि अशक्त पुरुष पर समुष्मना होगा=यदाह आपस्तम्बः=प्र पाखररायेघटकेचदौलेद्रोरायांजलंक्रोशाद्विनिर्गतंच अपाकचाण्डालपरिश्रहेषुपीत्वाजलं पंचगव्येनमुद्ध्येत=अर्थात्—कुत्ते आदि जीवोंको खानेवाले अपाक कंजर आदि और असली चाण्डाल आदि अति मलीन सनुष्योंके कब्जाने रहितोहुई पिआउओं का पानी या उनके घड़ोंका भरा धरा पानी या पर्वतमें द्रोणी द्रोणा जो प्रसिद्धहोतीहें कदाचित्त किसी द्रोणीमें चण्डालों का निवासहोय उसी द्रोणीके बीच कोई पानीका झरना ऐसा छोटासा झरता होय जिसपर उन्हीं चण्डालोंका दार सदार सदा रहिताहो तो इस झरनारूपी क्रोशके निकसे हुये पानीकोभी न पीनाचाहिये यह तात्पर्यहै (शैलेपर्वतराध्यस्थलेद्रोरायाधारेक्रोशाद्विनिर्गतंच जलंचेत्यन्वयः) इन जलोंको यदि कोई द्विजाती पीलेवै सो पंचगव्य पीकर शुद्धहोसक्ताहै यदि रोगी आदि अशक्त होय जैसा ऊपर लिखि चुके अन्यथा पूर्वोक्त ही व्रत देखने होंगे ॥ ० ॥

एक यह भी वचनहै कि=प्रदांरत्नौविनातोयंशरीरंयोनिधिंचति एकाहस्यपरांकृत्वा सदैलंस्नानमाचरेत्० सुराघटप्रपातोयेपीत्वानाव्यजलन्तथा अहोरात्रोयितोभूत्वापंच गव्यंजलंपिवेत्=अर्थात्—जहां कहीं नदी कूप आदि जलकीप्राप्ति न होलेसै पिआऊ पर जाकर कोई देह धोके सो एक दिन सब धन्धे छोडिके समय बितानेके बाद वनों सहित किसी नदी आदि तीर्थ पर स्नान जाकरकरै तब दोय दूर होताहै० एवं यह दूसरा नियमहै कि सदिरा के सटकों में धरा पानी या सर्व जातोंकी सामान्य पिआऊका पानी जिस ब्राह्मण विज्ञानीने पीलियाहो या नाव्यजल अर्थात् जहां नदी आदि के किनारे पर अतिशय थोड़े जलमें अनेक नाउ टिकी बंधी रहितो हों तिनके नीचेकापानी जो मलीन कीचडकेसमान होजाताहै वही नाव्यजल पीलिया हो नयवा नावके भीतर भरा वा सटके आदि में धरा हो सो भी नाव्य जल समुष्मना इन जलोंको पीकर यह प्रायश्चित्त चाहिये कि एक दिन रातिका उपवास करिके दूसरे दिन पंचगव्य घोलि छानिके उसका पतला जल पीवै तब शुद्ध होय ॥ ० ॥ एक आद्वारतके तीरसे यह बात यहां प्रसंगसे लिखे देतेहैं कि प्रायश्चित्तों

के वर्गानमें जहांजहां प्राजापत्य या सान्तपन आदि नासलिलखेहों तहां तौ उन्हींका विधान जो कुछ होता हो सोई कियाजायगा अन्यथा जहां साधारण सेवा लिखा हो कि एक या सात दिन उपवास करै तहां एक दो तीन आदि व्रत निराहार भी होसके हैं इससे अधिक संख्या सात बारह पन्द्रह आदि जहां लिखीहो तहां सर्वत्र यह सल्लुभिलेना कि यावक पीकर व्रत करनेहोगे अर्थात् गो सूत्रमें जौ का दलिया वा सावत जौ रांधि के पतला दलिया वा साढा साडसा बनाया जाय सो यावक होताहै यहां तक अशुचि प्राणीके छुई और अशुचि वस्तुओंके छुई भिडी खानी पीनी चीजोंके प्रायश्चित्त कहे गये—अब नीचे भाव दुष्ट चीजें खालेनेके प्रायश्चित्त कहे जायेंगे भाव दुष्ट भी अनेक तरहसे होती हैं ॥

अवभावदूषितकालदूषिताद्यन्नभोजनप्रायश्चित्तानां प्रकाशकौऽयंपरिच्छेदः एकोऽप्रतिमः (७१)



इस परिच्छेदमें भावदुष्ट और काल दुष्ट आदि अनेक दूषित अन्न भोजन करने के प्रायश्चित्त कहेजायेंगे—तिनमें प्रथम भाव दूषित के फिर उसीके अन्तर्गत जिस अन्नपर झूठी भ्रान्तिसे भी कुछ शंका खड़ी होजाय तिसकेखाइलेनेका प्रायश्चित्त• फिर काल दूषित भोजनका प्रायश्चित्त• फिर ग्रहण होते आदि समयों पर खाने के प्रायश्चित्त• फिर अनुक्त प्रायश्चित्तवाले दोषोंके प्रायश्चित्त• फिर गुरादूषित कांजी आदि चीजों के प्रायश्चित्त और उसीके भीतर पीना फोकर आदि खाने के प्रायश्चित्त और बिना हीसे या दिये बिना खाइलेने का प्रायश्चित्त फिर फूटे टूटे वासनमें या बिरले लाने पत्तों पर खानेका• फिर हाथ घँघोलि ढई हुई चीज खाने का• फिर घूइके हाथसे परोसा अन्न खाने वा जल पीनेका प्रायश्चित्त ॥

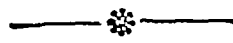
(भावदूषाद्वादिभक्षणाप्रायश्चित्तं)

भाव दुष्टका यह अर्थ है कि जिस वस्तुका आशय अध्यन्तर किसी प्रकार से वांछा समुक्ताया हो चाहे उसवस्तुके बरां रंगतिसे या उसके आकार डोल वनावट से या उसमें कोई रस रसा अतिशय होता हो जिसके खानेसे शरीरमें तरह तरहके

ति=अर्थात्—अर्थात्जों के खोदवाये कूप या तड़ाग या बावडी इनमें स्नान करिके या पानीपीके प्राजापत्य करै तब शुद्ध होय (यह बारम्बारके अभ्यासकी व्यवस्था सामान्य उनके वासन और कूप आदि सभी पर आरूढहै क्योंकि प्रायश्चित्त बडा होनेसे इसीका चर्चा ऊपर लिख चुकेहैं कि आपस्तम्ब का वचन नीचे दूर जाकर देखना)=और=जो इन्हीं आपस्तम्बके दूसरे अगले वचनमें केवल पंचगव्यहीपीना कहा सो वह शरी आदि अशक्त पुरुष पर समुष्मना होगा=यदाहआपस्तम्बः=प्र पात्वररायेघटकेवशैलेद्रोरायांजलकोशाद्विनिर्गतंच अपाकचाराडालपरिग्रहेषुपीत्वाज लंपंचगव्येनशुद्धयेत=अर्थात्—कुत्ते आदि जीवोंको खानेवाले अपाक कंजर आदि और असली चाराडाल आदि अति सलीन सनुष्योंके कवजामें रहितहुई पिआउओं का पानी या उनके घडोंका भरा धरा पानी या पर्वतमें द्रोणी द्रोणी जो प्रसिद्धहोतीहै कदाचित्त किसी द्रोणीमें चराडालों का निवासहोय उसी द्रोणीके बीच कोई पानीका झरना ऐसा छोटासा झरता होय जिसपर उन्हीं चराडालोंका दार सदा सदा रहिताहो तो इस झरनारूपी कोशाके निकसे हुये पानीकोभी न पीनाचाहिये यह तात्पर्यहै (शैलेपर्वतराध्यस्थलेद्रोरायाधारेकोशाद्विनिर्गतंचेत्यन्वयः) इन जलों को यदि कोई द्विजाती पीलेवै सो पंचगव्य पीकर शुद्धहोसक्ताहै यदि शरी आदि अशक्त होय जैसा ऊपर लिख चुके अन्यथा पूर्वोक्त ही व्रत देखने होंगे ॥ ० ॥ एक यह भी वचनहै कि=प्रपांशतौविनातोयंशरीरंयोनिधिंचति सकाहस्रपरांकृत्वा सच्चैलंस्नानमाचरेत्० सुराघटप्रपातोयेपीत्वानाद्यजलन्तथा अहोरात्रोयितोभूत्वापंच गव्यंजलंपिवेत्=अर्थात्—जहां कहीं नदी कूप आदि जलकीप्राप्ति न होनेसे पिआऊ पर जाकर कोई देह धोवे सो एक दिन सब धन्धे छोडिके समय बितानेके बाद वस्त्रों सहित किसी नदी आदि तीर्थ पर स्नान जाकरकरै तब दोष दूर होताहै० एवं यह दूसरा नियमहै कि सदिरा के सटकों में धरा पानी या सर्व जातोंकी सामान्य पिआऊका पानी जिस ब्राह्मण विज्ञानीने पीलियाहो या नाव्यजल अर्थात् जहां नदी आदि के किनारे पर अतिशय थोडे जलमें अनेक नाउ टिकी बँधी रहिती हों तिनके नीचेकापानी जो सलीन कीचडकेसमान होजाताहै वही नाव्यजल पीलिया हो अथवा नावके भीतर भरा वा सटके आदि में धरा हो सो भी नाव्य जल समुष्मना इन जलोंको पीकर यह प्रायश्चित्त चाहिये कि एक दिन रातिका उपवास करिके दूसरे दिन पंचगव्य घोलि छानिके उसका पतला जल पीवै तब शुद्ध होय ॥ ० ॥ एक यादवाशतके तौरसे यह बात यहां प्रसंगसे लिखे देतेहैं कि प्रायश्चित्तों

के वर्तमानमें जहांजहां प्राजापत्य या सान्तपन आदि नासलखेहों तहां तौ उन्हींका विधान जो कुछ होता हो सोई क्रियाजायगा अन्यथा जहां साधारण सेसा लिखा हो कि एक या सात दिन उपवास करै तहां एक दो तीन आदि व्रत निराहार भी होसके हैं इससे अधिक संख्या सात बारह पन्द्रह आदि जहां लिखीहो तहां सर्वत्र यह सहुष्कलेना कि यावक पीकर व्रत करनेहोंगे अर्थात् गो सूत्रमें जौ का दलिया वा सादत जौ रांधि के पतला दलिया वा गाढा साडसा बनाया जाय सो यावक होताहै यहां तक अशुचि प्राणीसे छुई और अशुचि वस्तुओंसे छुई भिड़ी खानी पीनी चीजोंके प्रायश्चित्त कहे गये—अब नीचे भाव दुष्ट चीजें खालेनेके प्रायश्चित्त कहे जायेंगे भाव दुष्ट भी अनेक तरहसे होती हैं ॥

अयभावदूषितकालदूषिताद्यन्नभोजनप्रायश्चित्तानां प्रकाशकौऽयंपरिच्छेदः एकीकृतमिः (७१)



इस परिच्छेदमें भावदुष्ट और काल दुष्ट आदि अनेक दूषित अन्न भोजन करने के प्रायश्चित्त कहेजायेंगे—तिनमें प्रथम भाव दूषित के फिर उसीके अन्तरगत जिस अन्नपर झूठी भ्रान्तिसे भी कुछ शंका खड़ी होजाय तिसकेखाइलेनेका प्रायश्चित्त• फिर काल दूषित भोजनका प्रायश्चित्त• फिर ग्रहणा होते आदि समयों पर खाने के प्रायश्चित्त• फिर अनुक्त प्रायश्चित्तबाले दोषोंके प्रायश्चित्त• फिर गुरादूषित कांजी आदि चीजों के प्रायश्चित्त और उसीके भीतर पीना फोका आदि खाने के प्रायश्चित्त और विला होके या दिये बिना खाइलेने का प्रायश्चित्त फिर फूटे टूटे वासनमें या विरले सजे पत्तों पर खानेका• फिर हाथ घँघोलि दई हुई चीज खाने का• फिर शूइके हाथसे परोसा अन्न खाने वा जल पीनेका प्रायश्चित्त ॥

(भावदुष्टादिसन्नप्रायश्चित्तं)

भाव दुष्टका यह अर्थ है कि जिस वस्तुका आगम्य अन्धन्तर किसी प्रकार से खोटा मसुक्तावया हो चाहे उसवस्तुके बरां रंतातिसे या उसके आकार डोल बनावट से या उसमें कोई एक सेसा अतिशय होता हो जिसके खानेसे पदोंमें तरह तरहके

दुर्गन्ध आदि खोटे सल बहुत पैदा होयँ सो संसारमें निहदा योग्यहोते हैं जैसा वसन कफ थक डकार नाक कीचड सल सूत्र अमानवायु या चित्तमें उद्वेग पैदाकरै या वीर्य को क्षीणताकरै या कामदेवकी आतुरता उत्पन्नकरै या क्रोध आदि सहाशोको उत्पन्न करसकै इत्यादि नाना भ्रांतिसे भाव दुष्ट चीजोंके लक्षणा बैद्यक शास्त्र से भी जाने जाते हैं— इनसे उपरालू भी अनेक लक्षणा भाव दुष्ट के होते हैं दृष्टान्त जैसे यद्यपि अन्न सर्वथा उत्तम निर्विकार है परन्तु जो मन में भ्रांति खड़ी होजाय कि इसमें मेरे अशुक् शत्रु ने द्वेष मिलाकर भेजा था और किसी से मिलनाया होगा या अशुक् पतितने छुड़लियाहोगा इत्यादि यद्यपि उसमेंविष्य न हो तौभी ऐसीशंका खड़ी होजायेसे वह अन्नभी भाव दुष्ट कहाताहै इत्यादि और भी सबभूने—इन चीजों का भक्षणा करना प्रायः तपोमार्ग से निषिद्ध है जैसा साँचे तपस्वी लोग सगही की दाल खासकते हैं उरद की न खायँगे इत्यादि इसी दृष्टान्त में सब समझलेना=भाव दुष्ट आदि भक्षणा का प्रायश्चित्त पराशर ने कहा है=यथा=वाग्दुष्टभावदुष्ट चभाज ने भावदूयितस्य भुक्त्वाचं ब्राह्मणाः पश्चात् त्रिरात्रेण विशुद्ध्यति (एतत्कामकारवि- ययमिति शिलासरा=अर्थात्—जो कोई सा अन्न वाणी के नामही मात्रसे भाव दुष्ट होय या अपने आशय से भाव दुष्ट होय या वासन में धरने के दोषसे भाव दुष्ट हो जाय जैसा काँसे पात्रमें बकरी खड़ी चीज बिगड जातीहै या ताँबेमें दही दूध आदि या हाड के वासन में हरकोई चीज अशुद्ध कहाती है इत्यादि कोईसा भाव दूयित अन्न यदि कोई ब्राह्मणा खाय सो उस दिनसे दूसरा दिन लेकर तीन दिन व्रतकरने पर शुद्ध होता है (इच्छा सहित खाने वाले को यह प्रायश्चित्त चाहिये यह शिला- सरा कार ने कहा ॥ ० ॥ भ्रांति जनक शंकायांतु—ध्वान्ति रूप शंका के उत्पन्न होने में वाशिशु के वचनानुसार प्रायश्चित्त है=यदाह वाशिशुः=शंकास्थाने समुत्पन्ने अभोज्याभक्ष्यसंज्ञिते आहारशुद्धिं वक्ष्यामि तन्मे निगदतः शृणु अक्षारलक्षणां स्वक्षां पिवे द्वाह्नीं सुवर्चलाम् त्रिरात्रं शखपुष्पीं वा ब्राह्मणाः पयसा सह पलाशवित्पत्रां शिखुशानं पयसु दुम्बरम् अपः पिवेत् क्वाथयित्वा त्रिरात्रेण विशुद्ध्यति=अर्थात्—वाशिशु जी कहतेहैं कि जहां भ्रांतिरूपी शंका खड़ी होजाय कि मैंने बिना जाने अशुक् तरहका दूयित अन्न खायो यदा नहीं खवाने और न खाने योग्य अन्नही लाक्षात् होय जिससे शं- का खड़ी हुई ऐसे आहार की शुद्धि करना मैं कहिताहूँ सो मेरे कहिले को सुनो ब्राह्मी नाम की सुवर्चला औषधी जो जंगल से आती है तिसको तीन दिन ऐसे पीवे कि न उसमें कोई खारी नमकीन रस मिलावै न घी दूध आदि चिकनाई का रस

मिताक्षरे किन्तु खली पीडारै तिससे शुद्धि होजायगी अथवा वही शंक्रामान् ब्राह्म-
गातीन दिन शंखपुष्पी शंखाहूली कौ दूध के साथ औटिके पीवै अथवा ढाखाबेल
कुशा पत्र गलर इन पाँचों के पत्ते पानी में काढा बनाकर पीवै तौभी तीन रात्रि से
विशुद्ध होता है किन्तु जैसी शंक्रा होय तैसाही प्रायश्चित्त इन में से चुनि लिया
जाय=मनुने कुछ और विशेषता इसपर कही है=यथा=संवत्सरस्त्रैकमपिचरेत्कृच्छ्रं
द्विजोत्तमः अज्ञातभुक्तशुद्ध्यर्थं ज्ञातस्यचविशेषतः=अर्थात्—कोई द्विजोत्तम जिसने सं-
वत्सर के भीतर बहुत कालतक भी बिना जाने कुछ अशुद्ध भोजन किया हो तौ उस
बिना जाने खाते रहिने की दोष शुद्धि के लिये एक पूरा कृच्छ्र भी आचरै जो बारह
दिन में होता है और जिसने जानि बन्धि खाया हो तिसको इससे दूना आदिविशे-
यता से करना चाहिये=इस पाठ में ये प्रायश्चित्त द्विविधा रूपी भ्रांति की शंक्रा
पर सामान्य स्यादा से दर्शाये गये तिससे इसमें किसी वस्तु का नाम विशेष नहीं
कहा ॥ इत्यभोज्यभोजनशंक्रायाःप्रायश्चित्तं ॥

(अथ कालद्रुषितभोजन प्रायश्चित्तं)

काल दूषित उसको जानना जो वस्तु केवल कालही के प्रभाव से बिगड़ी ठहिरै
दृष्टांत जैसे वासी धरा अन्न यद्यपि अ्रेष्ठ था परन्तु काल के विलम्ब से बुरागया दूस-
रा दृष्टान्त जैसे गाय का दूध एक उत्तम चीज है तथापि बिआनी गाय के दस दिन
अवतक न बीतेहों तब तक उतने काल के प्रभाव से अशुद्ध है इत्यादि अनेकवाअन्य
चीजें भी होती हैं=तिसको जिसने इच्छा बिना घोखासे खाया हो तिसके लिये एक
ही दिन का उपवास है (शोषेषूपवसेदहः) इसी मनु के वचन से पहिले भी प्रायः
कहिचुके हैं=परन्तु=जिसने इच्छा सहित खायाहो तिसकेलिये अगिलाप्रायश्चित्त
है=यदाह शंखः=केवलानिचशुक्तानि तथापर्युषितंचयत् रुचीशपक्वभुक्त्वातुत्रिरा
संभ्रतीभवेत् (केवलानिअस्त्रेहाक्तानीतिसिताक्षरा=अर्थात्—केवलअन्न जिनमेंधीका
मेल न होय और शुक्त जो कांजी सिर्का आदि कालहीके विलम्ब से परिणामपाते
हैं तथा पर्युषित वासी तिसवासी आदि दुसे अन्न तथा हालही का पकाया अन्न जो
अति सुवातुर ने क्रिया रहित पकाया हो तिसको खाइके तीन दिन व्रती होना
चाहिये ॥ ० ॥ नवीन दधि का जल भी अति लघुकाल से दूषित होता है तिसको
पीनेका प्रायश्चित्त आरेखौ=तदाहृदयान्नवल्क्यः=संसास्थिदंतजैःपात्रैःशंखशुक्ति
कर्पिकैः पीत्वा नवोदकं चैव पंचरात्र्येनशुद्ध्यति (कासतस्तूपवासः कर्तव्यइतिमिता-

क्षरा=अर्थात्—सींग हाड दांत इनकेबने पात्रोंसे जलपीवै या शंख सीप कौडा घोंघा से पीवै या नवोदक नवीन वर्षासे जो नदी आदि में भरि आया हो तिसको पीलेवै सो पंचगव्य पीकर शुद्ध होता है—परन्तु जिसने इच्छासहित पिआ हो तिसको एक उपवास भी करना चाहिये—क्योंकि अगिले वचन से यह तात्पर्य मिलता है—यथा स्मृत्यंतरं=कालेनवोदकशुद्धंनपिबेच्चयहहितत् अकालेतुदशाहंस्यात्पीत्वानाद्यादर्हर्नि शम्=अर्थात्—वर्षा ऋतुके काल में जो वर्षा प्रथम हुईहो तिसका नया जल यद्यपि शुद्ध धरती पर संचय हुआहो तौभी तीन दिन तक वह न पीना चाहिये और जो वर्षाति के बिना किसी ऋतु में अकाल वर्षा हुईहो तौ दस दिन तक न पीना चाहिये कदाचित्त कोई पीलेवै सो एक दिन राति भर भोजन बिना उपवास करै ॥०॥ ग्रहणकालादि दूषितात्ते तु—ग्रहणा परते काल में भी काल दूषित भोजन कहाता है तिसका प्रायश्चित्त आगे देखौ=तदाह शातातपः= नवश्राद्धं ग्रामयाजकान्नं सग्रह भोजनम् नारीणांप्रथमेगर्भेभुक्त्वा चांद्रायणांचरेत्=अर्थात्—प्रेतके नवश्राद्ध का अन्न खाय या ग्राम याजक का अन्न खाय या सूर्य चन्द्र का ग्रहणा परते समय भोजनकरै या स्त्रियोंके पहिलौटी गर्भ रहिले के निमित्त पर भोजन करै अर्थात् उसी उत्सवके नामसे जो कुछ अन्न बाँटा वर्तियागया तिसको खाय तौ यह खानेवाला पुरुषचांद्रायणा करै तत्र शुद्ध होय—और ग्रहणा के दिवसआदि उसके दबेहुये सूतकोसमयपरभी खाने का नियेधिरु प्रायश्चित्त आगे देखौ इसी के प्रसंग पर नीचेकीव्यवस्था है ॥

(अनुक्तप्रायश्चित्तनिषेधेषुचभोजनशुद्धिः)

ऊपरली व्यवस्था के प्रसंग में एक निराली व्यवस्थाअब लिखतेहैं जिसमें फुट कर ग्रंथों के अनेक वचन एकत्र लिखे जायँगे और तात्पर्य उनका यही है कि जिन अवसरों पर भोजन करना नियेध है परन्तु प्रायश्चित्त नहीं कहा गया तिनका भी प्रायश्चित्तसमय में आवै=तत्राह सार्कडेयः=चंद्रस्यद्यदिवाभानो र्यस्मिन्नहनिभार्गव ग्रहणांतुभवेत्तस्मिन्नपूर्वभोजनक्रियात् नचरेत्सग्रहेचैवतथैवास्तसुपागते यावत्स्यान्नो दस्तस्यनाश्रीयात्तावदेवतु=तथा अन्ध्यांतरं=ग्रहणांतुभवेद्विंदोःप्रथमादिवियासतः भुंजी तावर्तनात्पूर्वप्रथमेप्रथमादत्तः=तथा०न्यदपि=अपराह्ने नसव्याह्नेसायाह्ने नहसंगवेभुंजी तसंगवेचेत्स्यान्नपूर्वभोजनक्रिया=एवंअनुस्तु=नाश्रीयात्सधिवेलायां० नातिप्रगे० नातिमायं इत्येवनादि=वृहत् शातातपस्तु=धानादिविचक्षत्तुश्चय्रीकामोवर्जयेन्नशि भोजनतिलसंवहंजानं चैवविचक्षणाः (इत्येवसादिष्वनादिष्वप्रायश्चित्तयु प्राणायाम

शतंकार्यसर्वपापापनुत्तये उपपातकजातानामनादिव्यस्यचैवहीति ३०६ योगीश्वरोक्तं
 द्रष्टव्यसितिलिताक्षरा=अक्रामतस्तु शोषेद्युपवसेदहरितिसनूक्तोपवासो द्रष्टव्यइतिच
 मिताक्षरा=अर्थात्-सार्कडेय ने यह कहा है कि चन्द्रमा या सूर्य का ग्रहण जिस
 दिन होनेकोहोय तिस दिन उसके होनेसे पहिले भोजन रसोई आदि क्रिया कुछ न
 करनी चाहिये • और सग्रह दिनों भी नहीं अर्थात् जिस दिन ग्रहा ग्रहाया विम्ब
 उदय हुआहो तिसदिन ग्रहणहोजानेके बादिभी रसोईआदि न करनी चाहिये•तथा
 अस्तं उपागतेपिकाले अर्थात् जब ग्रहा हुआ विम्ब अस्त होगया हो तो जब तक
 फिर उदय न होय तब तक उतने काल में न भोजन करै=तैसा अन्य ग्रन्थ का यह
 वचनहै कि=चन्द्रमाका ग्रहण यदि रात्रिके प्रथम प्रहरसे उपरान्त होनेवाला ठहरै
 तो उस दिनके ठीक दुपहरसे भीतरले कालमें भोजन करै किन्तु सध्याह्न के उपरान्त
 न करै• परन्तु जो रात्रि के पहिले पहर के भीतर ग्रहण ठहरै तो दिन के प्रथमही
 पहरके भीतर भोजन करै उपरान्तमें नहीं=तैसा और भी ग्रन्थान्तर वचन है जिसमें
 ग्रहणको बिना भी सब दिनोंका यह नियमहै कि=न तो अपराह्न कालमें भोजनकरै
 न सध्याह्नकालमें न सायाह्न काल में न संग्रव काल में भोजन करै• भला कदाचित्त
 संग्रव काल में करना भी परै तो प्रातःकाली संग्रवसे पहिले सूर्योदय होने के बिना
 तो अवश्यही न करना चाहिये (इसमें अपराह्न शब्द से दिनमान का सबसे पिछला
 तिहाई भाग समझना • सध्याह्न शब्दसे ठीक दुपहर की विचली छे घडी तीन पहली
 तीन पिछली समझनी अथवा केवल दो घटि का एक पहली एक पिछली तो अव-
 श्यही माननी क्योंकि यही सध्याह्न संध्योदासना का समय होता है• सायाह्न का ज
 भी सूर्यस्तके ठीक समयसे तीन घडी पहले तीन पीछे तक होताहै• ऐसेही प्रातःकाल
 सूर्योदयसे पहले पीछे तीन तीन घडी मिलिके छे घटिका तक होताहै उन्हीं घडियों
 के बीतने पर अनन्तरकी छे घडी संग्रव काल के नाम से होती हैं=ऐसाही मनुने भी
 कई वचनों में जुदा जुदा कहाहै कि=संधियोंकी बेलापर न भोजनकरै• अति प्रातः-
 कालमें भी न करै यहाँ अतिप्रातःकाल उदीको समझना जो संग्रव के नाम की छे
 घडी कहिचुके • अति सायंकाल में भी न खाय • ऐसे और निषेध भी मनुस्मृति में हैं
 कि जिनके प्रायश्चित्त नहीं लिखे=ग्रहणगातातयने भी कहा है कि=धाना ददरी
 होलान्हुरी आदि च देने और दही लू इलनी रात्रिमें अपना कलयासा चाहनेवाला
 रजित करै और तिल का बदा भोजन तथा स्नान भी दिनेकी पुरय रात्रि में न करे
 (मिताक्षराकार कहिते हैं कि उन्ही ये बातें नहीं तैसे और भी जे कोई वचन नहीं

देखिए परें कि जिनमें नियेधके द्वारा यद्यपि दोष दर्शाया गया परन्तु उस दोष का प्रायश्चित्त कुछ नहीं कहा तिन सभी में वह प्रायश्चित्त विचारना जो आगे ३०६ तीनसौ छठे मूलप्रलोकसे योगीश्वर आप कहेंगे कि एकसौ १०० प्राणायाम करने चाहिये • इसका विशेष व्यौरा उसी स्थलपर समझ लेना=और=जिसने इन्हीं नियेध कालोंमें इच्छा बिना धोखा आदि लाचारी से खाया हो तिसके लिये एक दिनका उपवास है (शेषेषूपवसेदहः) इसी मनुके वचनसे विचारना चाहिये यह भी मिताक्षराकारने कहा ॥ इतिकालदूषितान्नभोजनप्रायश्चित्तं ॥

(अथ गुणदुष्टशुक्तादि भक्षणप्रायश्चित्तं)

अत्रमनुः=शुक्तानिचक्रयायांश्च पीत्वाऽमेध्यानपिद्विजः तावद्भवत्यप्रयतो यावत्तन्नव्रजत्यधः=अर्थात्—कांजी सिर्के और अपवित्र काढ़े अरक भी ब्राह्मण पीकर तब तक अशुद्ध रहिता है जब तक वह पचिकर गुदा से न निकसि जाय (इसमें भी प्रायश्चित्त कुछ नहीं कहा पर मिताक्षरा कार कहिते हैं कि इच्छा के बिना पीने वालेपर वही एक दिन का उपवास चाहिये जो मनुने (शेषेषूपवसेदहः) इस वचन से कहा था=और जिसने इच्छा सहित पिआ हो तिसको तीन का व्रत अगिले वचन के अनुसार चाहिये जैसा शंखने यह कहा है (केवलानिचशुक्तानि तथापर्युपितंचयत् ऋचीयपक्वम्भुक्त्वाचत्रिरावंतुव्रतीभवेत्) अर्थात् केवल औरशुक्त और वासी तिवासी और कराही का पकाया कढ़ी आदि भोर भी खायके तीन दिन व्रत राखै—फिरभी—मिताक्षराकार इसका प्रतिप्रसव दर्शाते हैं कि यह कांजी आदि जो नियेध किये गये सो केवल जो गुणा से दुष्ट होयँ तिनहीं का प्रायश्चित्त समझना दिन्तु आमले आदि उत्तम गुणा वाले फलों के अचार से जो कांजी सा पानी खड़ा होता है तिसका नियेध नहीं है—इस बात का प्रमारा भी अगिला वचनदेखौ (कांजिकालुफलायेद्युगृहेयुस्थापिताभवेत् तस्यास्तुकाजिकाश्राह्यानेतरस्थाः कदाचनेतिरमरसात्) अर्थात्—जिन घरोंमें येय गुणाके फलों सहित (अचार) कांजी धरी गईहो तिसको कांजी ग्रहरा करने योग्यहै और किसी की नहीं ॥ प्रिण्याका दौतु—तिल आदिका पीना या ओढ़े घीका मेल या वादास आदि कोई मीरा मधि कर चिकनाई निचोड़ने से बची हुई लीझी इत्यादि बहुधा अन्य चीजें भी होतीहैं तिनको खाइलेने पर गौतमने वसन कराइके घी चाटना प्रायश्चित्त कहा है ॥ ० ॥ अहुताटत्तान्नादिभक्षण प्रायश्चित्तं—कची पक्की आदि भोजन की वस्तु आहार

के निमित्तसे बनाई जाय या थालीमें परोसि आगे धरीजाय सो अग्नि को जिमाने आदि संस्कारोंके बिना अभक्ष्य होताहै तिसका प्रायश्चित्त है=यथाह लिखितः= यत्प्रचारान्नक्षिपतेद्यस्यचान्नंनदीयते नतद्भोज्यं द्विजातीनां भुक्त्वाचोपवसेदहः वृथा क्लृप्तंयावपायसापपशङ्कुलीः आहितारिर्द्विजोभुक्त्वा प्राजापत्यं समाचरेत्=अर्थात्-द्विजातियों में जिसके घर अग्नि में अन्न नहीं छोड़ा जाता और अभ्यागत गऊ आदि को नहीं दिया जाता हो तिसका ऐसा अन्न खानेके योग्य नहीं है कदाचित् कोई विप्र खालेवै सो एक दिन उपवास करै—एवं वृथाक्लृप्तं • वृथासयाव • वृथा पायस • वृथा पव • वृथाशङ्कुली • इनको आहितारि होकर जो द्विज खाइ सो प्राजापत्य आचरै तब शुद्ध होय=परन्तु जो अनाहितारि ब्राह्मण इनको खाय तो वह एकही दिनका उपवास (शेषेषूपवसेदहः) इसी वचनके अनुसार करै=क्लृप्तं उस भोजनका नामहै जो रसोईमें दो चीजें मिलाकर पकाई जायँ जिन दोनोंका रूप पक जाने पर भी जुदा जुदा देखिपरै दृष्टान्त जैसे खिचरी आदि • संयाव का दृष्टान्त है शुक्तिआ पिराँक आदि • पायस का दृष्टान्त है खोरि आदि • पूष का दृष्टान्त पुआ गुना आदि अथवा अपूप शब्द लेनेका दृष्टान्त है कसार आदि • शङ्कुलीका दृष्टान्त है पूरी आदि • इतने नाम कहिनेसे सब तरहके भोजनका स्वरूप जाहर क्रियागया तिनके साथ वृथा शब्दकी योजनासे यह भाव दर्शाया है कि टाकुर नारायण को भोग वा अग्नि जिमाउना आदि देवता का निमित्त (बहाना) धरे बिना जो भोजन कीवस्तु बनाई गई सो वृथा कहाती है तिसको खाने के दो प्रायश्चित्त व्यवस्थित किये गये ॥

(भिन्नभग्नप्रात्रादिषु भोजने च प्रायश्चित्तं)

फूटे टूटे फटे आदि बहुतेरे साजे भी प्रात्रोंमें भोजन करनेका नियेध है कदाचित् कोई ब्राह्मण आदि विवेकी ऐसे खाय तिसके प्रायश्चित्त हैं=यथाह संवर्तः=शूद्राणां भोजने भुक्त्वा भुक्त्वा वा भिन्नभाजने अहोरात्रोयितो भूत्वा पंचगव्येन शुद्ध्यति=तथा स्मृतं तरेपि=वराकृच्चित्यपत्रे कुंभीतिन्दुकपत्रयोः कौविदारकदंवेयु भुक्त्वा चांद्रायणां चरेत्=तथान्यच्च=पलाशपत्रपत्रेयुगृहीभुक्त्वा न्द्वंचरेत् वानप्रस्थोयति प्रचैव लभते चांद्रिकं फलसु=अर्थात्-संवर्तने कहाहै कि शूद्रोंके वासनमें भोजन करै या अपने भी फूटे वासनों में खाय सो एक दिनरति का उपवास करिके दूसरे दिन पंचगव्य पीकर शुद्ध होताहै=तैसा किसी और स्मृतिका यह वचन है कि=वरादा • अकोआ • पीपर • कुंभी • तिन्दुक • कचनार • कदम • इनके पत्तोंपर धरिके भोजन करै तिसको चांद्रा-

उसा करना चाहिये=तेला और भी यह वचन है कि=ढाखा पदम इनके पत्तों पर गृहस्थी पुरुष भोजन करें तिसको चांद्रायण करना चाहिये० परन्तु ब्रानप्रस्थ और यती हंसयात्री आदि जो इनपर भोजन करें तिनको चांद्रायण करनेकी बराबर फल तिजता है अर्थात् उनको विशेषकर इन्हीं पत्तोंपर भोजन करना चाहिये ॥ विरली चीज केसोहं जिनसे हाथ घँघोइकर ल देनी परीसनी चाहिये किन्तु चन्नचा आदि किसी पात्रसे उटाकर देनी चाहिये तिनके खाइ लेनेका प्रायश्चित्त नीचे देखी ॥

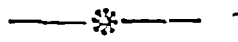
(हस्तदानादिक्रियादुष्टभोजनप्रायश्चित्तं)

अत्र परावारः=साक्षिकंफारिातंशाकंगोरसंलवसांधृतस्र हस्तदत्तानिभुक्त्वातुद्विने करभोजनस्र (क्रासतस्तु हारीतोत्तंद्रष्टव्यं)=अर्थात्—सहस्र० राव० रँवेसाग० दही० दूध० जटा० तनक० घी० ये चीजें हाथ डबोकर दीहुई खाइके एकदिन निराहार व्रत राखना (परन्तु जिसने जानि दूध इच्छा सहित ऐसी चीज खाईहो तिसके लिये अश्रोक्त प्रायश्चित्त देखना=यदाह हारीतः=हस्तदत्तभोजने अब्राह्मणसमीपेभोजने दुष्टपंक्तिभोजने पक्ष्यग्रतोभोजने अभ्यक्तसूत्रपुरीयकरणो सृतसूतकषाद्रान्नभोजने शू द्रैःलहरदधनेविराचसभोजनस्र=अर्थात्—हाथ घँघोतिके दीहुई खानेसे० अब्राह्मणा जिन से ब्राह्मणाके लक्षणा नहों तिसके पास बैठि खाने में० पाँतिसे पहिले खाइ लेने में (अर्थात् पाँति जब तक नहीं बैठी कोई एक पहिले भोजन करिलेवै या ज्योंनारकी पाँति बैठिजाने पर भी पारस होते समय भोजनकी आज्ञा प्रकटहोनेसे पहिले कोई खाने लगे तिस दोष) में० और दूयित पाँति जो इसी उक्त प्रकारसे दूयित होचुकी या जिस पाँतिमें कोई अपांक्त पुरुष घुसि वेढा या किसीने पत्तल उटाइ डारी इत्यादि दोषहाली पंक्तिसे खाने पर० खाते समय हाथ धैर आदि धोने लगे या तेल सलिकर खाने वैदे या खाते समय गुह गुह टपकिपरै खेसा भोजन करनेमें० नरेका गुहकी अन्न या शूद्रका अन्न खाइलेने में शूद्र के साथ खाने में० इन सब दोषों पर तीन तीज दिवका निराहार उपवास प्रायश्चित्त है ॥ ० ॥ अदल बदलने पर्याय लक्षणाके साथ विद्या अन्न भी दूयित कहाता है तिनका प्रायश्चित्त आगे देखी=त वाह वृद्धाजवत्तः=ब्राह्मणान्नददच्छुद्रः घृडान्नंग्राहाणोदकस्र वजमेतदभोज्यंरथा शुक्तातूपरंदतः=अर्थात्—ब्राह्मणाका चन्न यदि घृद्धके हाथ से दिया जाय या शूद्र का अन्न यदि ब्राह्मणाके हाथ से दियाजाय तोसह दोषांशजन्मभोज्यहोतेहैं तिनको यदि पात्र से उटा विद्या उपवास करे ॥ ० ॥ स्वकीयाज्ञप्रियुद्धहस्तेनाग्रासं-

गूड़के हाथसे अपना भी अन्न खाने पीने पर प्रायश्चित्त है—तदाह सनुः=गूड़हस्ते तयोभुंक्तेपानीयंवापिबेत्क्षचित्त अहोरात्रोयितोभुत्वा पंचगव्येनशुद्धाति=अर्थात्— गूड़के हाथसे जो कोई द्विजाती खाता है या कहीं कोईजलपीवै सो एकदिन राति का उपवास करिके दूसरे दिन पंचगव्य पीकर शुद्ध होता है=और भी=अन्नको मुह से फूंकना आदि कई बातोंका निषेध है=तदप्याह सनुः=आसनाकूटयादीवावच्छार्ध प्राहृतोपिवा सुखेनधनितंभुक्त्वाश्चक्षुःसांतपंचरेत=अर्थात्—ऊँचे आसन पर पैर धरे या फर्श पर बैठाहुआ अथवा आधी धोती ओढ़े हुये स्वाय यद्वा गरम अन्न को मुह से फूँकि फूँकि भोजन करै तिसको क्षच्छुःसांतपन करना चाहिये ॥

अथाचनवपुराणादिश्राद्धान्मग्नाहमयानांप्रायश्चित्त

प्रकाशकौश्यापरिच्छेदःद्विसप्ततितमः (७२)



इस परिच्छेदमें सब तरहके नवे पुराने बीचके आदोंका नीता आदि कुछ अन्न खानेवाले ब्राह्मणोंके प्रायश्चित्त भेद कहे जायँगे—तिनके प्रसंगसे वृद्धिआद्य आदि उत्सवोंके आद्य और कुसौत वालों के आद्य और अपांक्तोंके आद्य और संस्कारों के आंगभूत आद्य और कच्चे अन्नके आस आद्य खाने वालोंके जुदे जुदे प्रायश्चित्त कहे जायँगे—और जो ब्रह्मचारी होके आद्यस्वाय या परस्पर बदले के व्यौहार से अनिष्ट भोजन कोई भी द्विजाती करै तिनके भी प्रायश्चित्त हैं ॥

(त्रिरात्रादिश्रादान्नभोजनेप्रायश्चित्तं)

अत्राह भारद्वाजः=भुंक्ते चेत्पार्वरायाद्देप्रायायासाव्यडाचरेत् उपवासस्त्रिमासा द्वित्सरांतंप्रकीर्तितः प्रायायासाव्यं वृद्धावहोरात्रसंपिंडने अन्नरूपेस्मृतं तक्तं व्रतपारया वेतया द्विपुरांस्तद्विग्रहैतत् द्विपुरांश्चैश्यभोजने एताच्छुर्गुरांहेतस्मृतं गृहस्थभोजने (अतिदौहारेतिवृत्तिसभीक्ष्ण्यं) अतिर्योतिवृत्तिवारिह्यःप्राथंतियेद्विजाः सधिरंत इवेवारिभुक्त्वा चान्द्रायसांचरेत्=हारीतो प्याह=एतादद्याहेतुम्यहंभुञ्जापंचयलेतया उपोष्यतिवृत्त्याहश्राद्धपरांडे जुहुयाद्मृतम्=विजसुरस्याह=श्राजापत्तंनदयाद्वा पा रोतंघाञ्जसासिरेः ईपीलिकेतद्वर्तुपचरव्यद्विजासिके (उतिचापीहिस्यदिति सिताक्षरा)=अनापद्विहारीतयाह=दान्द्रायसांचदयाद्वा श्राजापत्तंद्विसिञ्जे एताहस्तुपु

राशोद्यप्राजापत्यं विधीयते (प्राजापत्यन्तुसियके इत्येतदाद्यसांसिकविषयं द्रष्टव्यं इ
 तितु सिताक्षरा=द्वितीयादियुतु यद्विंशन्मतोक्तं यथा=प्राजापत्यं नवयाज्ञेपादोनञ्चा
 द्यसांसिके त्रैपक्षिके तदर्धन्तुपादो द्वैसांसिके तथा पादोनकच्छ निर्दिष्टं यद्भासे च तथा
 त्दिके त्रिरात्रं चान्यसांसियुप्रत्यहं चेदहःस्मृतम्=अर्थात्—यदि कोई ब्राह्मण किसी ब्रा-
 ह्मणके पार्वणयाज्ञे कि जो कनागत आदि पर्वोंमें होता है भोजन करे सो छे वार
 प्राणायामही करिके शुद्ध होजाता क्योंकि पार्वणयाज्ञ बहुत अनियत नहीं है। परन्तु
 जिस सौतको दो सास वातिजाने वादि तीसरे महीनेका श्राद्ध आदि लेकर बर्षी प-
 र्यन्त चाहें तिस महीनेका सांसिक याज्ञ होय तिसका अन्न खानेवाले को एक उ-
 पवास करना चाहिये। जिसने पुत्रका जन्म आदि किसी वृद्धियाद्धमें जो नान्दीमुख
 प्रसिद्ध है खायाहो तिसको तीनि प्राणायाम करने चाहिये क्योंकि यह पार्वणसे
 भी कुछ ग्रेय है। जिसने सपिण्डीयाद्धमें खायाहो तिसको एकदिन रातिभर उपवास
 करना चाहिये। जिसने असरूप याद्धमें खाया हो जिसका कोई प्रसिद्ध नामरूप न हो
 तिसको नक्त भोजन व्रत करना चाहिये और जिसने महाव्रतोंके पारणा संबंधी याद्धमें
 खाया हो तिसको भी यही नक्तव्रत अर्थात् रात्रि में भोजन करना चाहिये (यह सब
 केवलब्राह्मण का अन्न खानेपर कहागया किन्तु क्षत्रीका याद्वान्न खाकर इनसे दूने
 प्रायश्चित्त और वैश्य का श्राद्वान्न खाने में तिगुना और साक्ष्यात् शूद्र का याद्वान्न
 खाने में चौगुना करवाया जाय (अतिथौतिथितिनभोक्तव्यं) अतिथि अश्रुगात
 जिनके द्वार पर उपस्थित होय तिसको दिये विना पानी तक पीलेने वाले द्विजा-
 ती लोग जैसा रुधिर पीते हैं तैसा दोग लगता है तिससे अतिथि को दिये विना कुछ
 अन्न खाइ लेवै सो चांद्रायणा व्रत करै यह भारद्वाज ने कहा= हारीत भी कहिते हैं
 कि=सकादशा का याद्वान्न खाइके तीन दिन उपवास करै तथा अस्थिसंचयन (सु-
 रीके हाड़ चुगने) के दिनका याद्वान्न खाइ सो भी तीन दिन उपवास करनेके पीछे
 विधि से ज्ञान करिके कूप्णांड नाम जाति के वेदोक्त मंत्रों से घी का होम करै=
 जिग्ना भी कहिते हैं कि= नदयाद्ध नदीन जो सकादशा तक होते हैं तिनमें यदि
 कोई विप्र भोजन करै सो प्राजापत्य करै। परन्तु जो महीना पूरा होने पर पहिले
 महीने का याद्वान्न खाय सो चौथाई कस करिके तीनि पाद प्राजापत्य करै। जो
 तीनि पाद पूरे होने पर तिपखी याद्ध का अन्न खाय सो आधा प्राजापत्य करै।
 जो द्विजाती याद्ध का अन्न खाय सो पंचगव्य ही पीकर एक दिन में शुद्ध होना है
 (सिताक्षराकार कहिते हैं कि यह सब छोटे प्रायश्चित्त इसके तिये अश्रुना

जिसने आपत्काल को प्रभाव से ऐसे अन्नखाये हैं=किन्तु अच्छे भले दिनोंमें जिसने खाया हो तिसके लिये हारीत ने जुदा प्रायश्चित्त कहा है कि=नव आदोंमें खाकर चान्द्रायण करै और सिञ्चक आद में खाकर बारह दिन का प्राजापत्य करै और पुराने आद जिनको सरे बहुत वर्षों बीति गईं तिनमें खाकरसकही दिन का प्राजापत्यहोता है (सिञ्चक आद उसको जानना जो पहिले मास का आद किया जाय (क्योंकि अति नयाभी नहींरहा अतिपुराना भी नहीं ठहिरा इसीसे दोनों लक्षणा उसी में सजिले हुये ठहिरै) यह सिताक्षराकार ने कहा और यह भी कहा कि=दूसरे महीनाको आदि लेकर जो मासिक आद किये जायँ तिनका अन्नखाने मध्ये षट्त्रिंशन्मत का कहा प्रायश्चित्त आगे देखौ कि=नवीन आद जो एकदशा तक होते हैं तिसका अन्न खाइ सो प्राजापत्य करै और पहिला महीना पूरा होनेका आद खाइ सो पौन प्राजापत्य करै और त्रिपक्षी आद का अन्न खाय सो आधा प्राजापत्य करै और द्वैसासिक आद का अन्न खाइ सो चौथाई प्राजापत्य करै और छमाही आद या वर्षीयाद का अन्न खाइ लेने में चौथाई कम तीन पाद कृच्छ्र करना कहा है और इनसे उपरालू जो महीने वर्षके भीतर वचे तिनका आद किया जाय तिसका अन्न खाने वाले को सामान्य तीन दिनका प्रायश्चित्त चाहिये और जहां कहीं साल भरतक रोज रोज आद किया जाय या नित्य आद की विधि से रोज आद किया जाय तिसका अन्न खाने वाला एक दिन उपवास करिके शुद्ध होता है (यह प्रायश्चित्त सब उसके लिये कहेगये जिसने ब्राह्मण का आद्यान्न खायाहो ॥०॥ क्षत्री आदि वर्गों का आद्यान्न खालेने मध्ये उसी षट्त्रिंशन्मत ग्रन्थ में जुदे प्रायश्चित्त हैं सोभी यहां देखौ=यथाह=चान्द्रायणानवयाद पराकोमासिके स्मृतः शैषसिकेसांतपनंकृच्छ्रोमासद्वयेस्मृतः क्षत्रियस्यनवयाद व्रतमेतदुदाहृतम वैश्यस्यार्धाधिकंप्रोक्तंक्षत्रियात्तुमनीषिभिः शूद्रस्यतुनवयाद चरेच्चांद्रायणादयस सार्धचांद्रायणमासेत्रिपक्षेत्वेद्वन्नतष सासहयेपराकःस्या दूर्ध्वेसांतपनंस्मृतम=अर्थात्-नवे आदों का अन्न खाकर चांद्रायण करै. प्रथम मासका आदखाकर पराक व्रतकरै. त्रिपक्षी आद खाकर सांतपन करै. दुमाही आद खाकर कृच्छ्र करै. यह क्षत्री के नव आद खानेमें व्रतका नियम कहा गया. जिसने वैश्य का नया आद खाया हो तिसको क्षत्री से डौंढा चाहिये यह सनीयी लोगों का कथन है. और शूद्र का नया आद जिसने खाया हो सो पूरे दो चांद्रायण करै. जिसने वैश्य का मासिक आद खाया हो सो डेढ़ चांद्रायण करै. जिसने वैश्य की त्रिपक्षी खाई हो सो एकचां-

दायसा करै० जिसने दैप्रय का दुसाही आद खायो हो सो पराक व्रत करै इसके
 उपरान्त के आदों में सांतपन करना कहा है ॥०॥ अपमृत्युवच्छादे तु—शंखजी
 जी का वचन अद्यपि अनिश्चित है कि—चांद्रायसांनवयाद्देपराकोसांखिकेस्मृतः पक्ष
 नयेऽतिहच्छः स्याद्वयड्मासेहच्छसवतु । आदिकेपादकच्छं स्यादेकाहः पुनरादिके
 अतः कर्त्तव्यं न दोषः दयाच्छखस्यवचनं यथेति (तदापि सर्पादिहत आदस्य विषयमिति सिता
 क्षरा० येस्तेन पतितस्त्रीवाइत्याद्यपांक्ते अविषयं वेति च सिताक्षरा=अर्थात्— नव आद
 का अन्न खाइलेने में चांद्रायसा और सांखिक आद खाने में पराक और तिपखी
 आद खाने में अतिहच्छ और छसाही आद खाने में हच्छही करना कहा है और
 वसी आद का अन्न खाने में चौथाई हच्छ किया जाय और पुनरादिक अर्थात्
 दूसरे वर्षके भीतर जो आद होय तिसका अन्न खाने में एकही दिन उपवासकिया
 जाय उसके उपरांत तीसरी वर्ष आदिके आदों में कुछ दोष नहीं जैसा शंखजी का
 यही वचन पुकारिके कहिता है (सिताक्षराकार कहिते हैं कि यह शंख जी का
 कहा प्रायश्चित्त उन आदों पर समझना जो सांप काटे आदि कुसौत मरेहुयों के
 आद कियेजाय अथवा चौर पतित नपंसक आदि अपांक्तियोंके आद पर समझना०
 क्योंकि यह प्रायश्चित्त बडा है) औरभी अगिले वचनों में देखना इन्हीं अपांक्तियों
 का आद खाने मध्ये दडे प्रायश्चित्त कहेगये हैं=यथा=चांडालाहुदकात्सर्पाद्वाह्न-
 र्णाद्वैद्युत्तार्पि दंयुभ्यश्चपशुभ्यश्चसखापापकर्मणाश्च पत्नानाशकैश्चैव विधौ द्वं
 नकैस्तथा सुकृत्वेयां योडश आद्वे कुर्याद्विन्दुव्रतं द्विजः॥ अपांक्ते यथादभोजने—भर-
 द्वाजोरथाह=अपांक्ते यादसुद्विप्रयथादमेकादशोऽहनि ब्राह्मणास्तत्रमुक्त्वाच्च शिशु
 चांद्रायसांश्चेदिति आसयादेतवाभुक्त्वात्तद्वच्छेसाशुध्यति संकल्पितेतथाभुक्त्वात्रि
 सांक्षपसांश्चेदिति भरद्वाजेन गुरुप्रायश्चित्ताभिधानात्=अर्थात्—इतनी कुसौत कहा-
 ती है कि जो चांडाल के हाथ से मरे या जलमें डूबे या सांप काटा मरे या ब्राह्मण
 के भास से मरे या विजली गिरिके मरे या दाहवालों से फाडा जाय या पशुओं से
 मरे या ऊँचे से गिरिके मरे या लूजे धम्ना देकर मरे या जहर खाके मरे या फाँसी
 से मरे उत्तनी जौत पापियों की अघने पाप कर्मों से होती हैं इनके थोडगी आद में
 जो कोई ब्राह्मण भोजन करे सो चांद्रायसा व्रत करै तत्र शुद्ध होय= भरद्वाज मुनि भी
 कहिते हैं कि=अपांक्ते य जो सराही जिलके नास का उद्वेग करिके जो कुछ अन्न
 खासके दिवस दिया जाय वही उसका आद कहा जाता है उस अन्न को यदि
 कोई ब्राह्मण खाय तिसको मितु चांद्रायसा करना चाहिये० उक्तौ विधि नीचे

लिखी देखीं। तथा आसश्राद्ध जो कच्चा अन्न देकर निर्वाह किया जाता है तिसका अन्न खाइ सो तप्तकच्छु करि शुद्ध होता है। तथा संकल्प किये अन्न में भोजन करे सो तीन दिन क्षपशाक्त व्रत करे जिसमें सब काम धन्ध छोडि के एकान्त में वैदिके उपवास करना होता है। इस तरह से भरद्वाज ने भी अपांक्तियों का आधान खाने पर बडे प्रायश्चित्त कहे= शिशु चांद्रायणा का लक्षणा (चतुरःप्रातरञ्जीयात् पिराडा रुविप्रसमाहितः चतुरोऽस्तमितेसूर्यशिशुचांद्रायणांस्मृतं) अर्थात् इस रीति से व्रत करे कि चारग्रह प्रातःकालसूर्योदय की बेरापर खाय और चार कौर अस्त होते समय खाके राति वितावे तौ यही शिशु चांद्रायणा कहाता है पर और बातों से सावधान रहे ॥ आमश्राद्धादेशस्तु ॥ आसश्राद्धके लक्षणा (आपद्यनश्नोतीर्थे च चंद्रसूर्यग्रहेतथा आसश्राद्ध द्विजैः कार्यं शूद्रेणातुसदैर्वाह अपत्नीकःप्रवासीचभार्यायस्यरजस्वला आसश्राद्ध द्विजैः कार्यं शूद्रेणातुसदैर्वाह=अर्थात्—द्विजातियोंको कच्चे अन्न का श्राद्ध यातौ आपत्काल में करना चाहिये कि जब रसोई बनाना आदि अग्नि का प्रबन्ध न होसके यातीर्थपर या चंद्रसूर्यके ग्रहणमें या जिसकेपत्नीके न होनेसे प्रबन्ध न होसके या जो कोई विदेशमें टौर ठिकाने बिनाबैठाहो या जिसकीभार्यारिजस्वला होगई हो तौभी आसश्राद्ध करे परन्तु शूद्रको सदा सर्वदाकच्चे अन्नका श्राद्ध देने की आज्ञाहै वह पाक विधि न करे। ये बातें यहांकेवल प्रसंगसे दर्शाई गईं= अब ऊपरकी प्रकृत व्यवस्थाका शेष फिर लिखते हैं कि ब्रह्मचारी होकर जो श्राद्धोंमें भोजन करे तिसके जुदे प्रायश्चित्त आगे देखीं ॥ श्राद्धभुग्ब्रह्मचारिप्रायश्चित्तं—वृहद्यम आह= नासिकादिषुश्रोऽञ्जीयादासनाह व्रतोद्विजः त्रिरात्रसुपवासोवैप्रायश्चित्तंविधीयतेप्राणायामत्रयं कृत्वाघृतं प्राण्यविशुद्धीति (इदमज्ञानद्वयश्च नितिनितिक्षरा•कालतस्तु चणवाहाग्रे=सधुनांसंचयोऽञ्जीयात् श्राद्धं सुतकसेववा प्राजापत्यं चरेत्कच्छु व्रतयोयंस मापयेत्=अर्थात्—ब्रह्मचारियोंके लिये बड़े यमने कहाहै कि जिस द्विजातीने अपना ब्रह्म चर्य आदि व्रत नहीं परा किया उसके भीतर यदि सादिक याद आदि का नौताखाय सो तीन दिन उपवास किये पीछे तीन प्राणायाम करिके घी चारै तब शुद्ध होय (सिताक्षराकार कहिते हैं कि यह प्रायश्चित्त उदको चाहिये जिसने अनानतासे खायाहो द्योकि • इच्छा रहित खायेवाले का प्रायश्चित्त आगे देही वृहद्यम कहितेहैं कि=जोकोईब्रह्मचारी नद्यर्तासत्वाय या यादसेखाय या सुतक में खाय सो प्राजापत्य रूपी कच्छुव्रत करे तिस पीछे अपना व्रत पूरा करे ॥ आम श्राद्धभोजनेतु सर्वश्राद्धस—कच्चा सिदान्त देके श्राद्धवाला अन्न चाहें वृहस्यी वा-

ह्यरा या ब्रह्मचारी होके खाय तिन सबहीको अपने पूर्वोक्त प्रायश्चित्तोंका आधा प्रायश्चित्त करना चाहिये-इसका प्रमाण यद्विंशान्मसतका वचन आगे देखौ (आम याद्वेत्तदर्धन्तु प्राजापत्यं च सर्वदा) कचे अन्नके आद्व में पके अन्न वाले प्रायश्चित्त चाहें प्राजापत्य वा औरही जो कुछहों सो आधेआधे कर्तव्यहैं यहसर्वत्र सर्वदा नियम समझे रहना ॥ ० ॥ इन सबसे उपरालू जो उग्राना का वचन है कि=दशकृत्वःपिबे घ्रापोगायत्र्याग्नाद्बुभुक्षिजः ततःसन्ध्यामुपासीतशुद्धोत्तदनन्तरम् (तदनुक्तप्रायश्चित्त विषयमिति सिताक्षरा=अर्थात्-आद्व भोगने वाला ब्राह्मण दश बार गायत्री पढ़ि कर जल पीवें फिर उससे आशुती सन्ध्याकी उपासना नित्यविधिके अनुसार करे तिससे शुद्ध होजायगा (सो यह छोटा प्रायश्चित्त उसके लिये समझना जिसने उन आद्वोंका भोजन कियाहो जिनके नाम से कुछ प्रायश्चित्त कहीं नहीं लिखा यह सिताक्षराने कहा ॥०॥ संस्कारांगभूतश्राद्धान्नभोजनेतुव्यासः=अर्थात् संस्कारों के अंगभूत जो बहुधा जन्मसे लेकर जातकर्म आदि संस्कारोंके साथ भी आद्वकिये जाते हैं तिनका अन्न खाने मध्ये व्यासजीने प्रायश्चित्त जुदा कहा है=यथा=निवृत्ते चूडाहोमेतुप्राङ्नासकरणात्तथाचरेत्सांतपनंभुक्त्वाजातकर्मशिचैर्वाह अन्योऽन्येषु तुभुक्त्वान्तंसंस्कारेषुद्विजोत्तमः नियोगादुपवासेनशुद्ध्यतेनिन्द्यभोजने=अर्थात्-चूडा कर्म(चोटीखाना) होचुकनेके समयपर जो आद्व पितरोंकी तृप्तिके अर्थ कियाजाय या कोई बड़ा होस पूरा होने के समय पर किया जाय या नामकरणा (दसूठनि) से पहिले किया जाय या जातकर्म जन्म होनेके समयका जो कर्म होताहै तिसमें आद्व कियाजाय इनमें जो कोई ब्राह्मण भोजनकरै वह सांतपन प्रायश्चित्त आचरै (परस्परभोजनव्यवहारस्थलेतु) दूसरी यह व्यवस्था है कि जिसने ऐसे किसी रिश्तेदार के घर निन्द्य भोजन छठी दसूठनि या मृतसूतक आदि में किया हो जहाँ बदले में खाने खवाने का व्यवहार होय तो यह ब्राह्मण किसी और को नियोगी (मुखतार) बनाकर उसके द्वारा एक व्रत कराने से भी शुद्धहोताहै चाहें अपने आप करै तो भी कुछ नियेव नहींहै=मुखतार बनाने मध्ये-शास्त्रांतर में यह नियम है-भार्याभर्तृव्रतं कुर्यात्तु भार्यायाप्रचपतिस्तथा असासथ्यैर्द्वयोस्ताभ्यांव्रतभंगोनजायते- तथा-पुत्रंवाविनयोपेतंभगिनींभ्रातरंतथा स्यामभावसन्नान्यंब्राह्मणांविनयोजयेत्=भर्ताके व्रतको उसकी भार्याकरै या भार्याके व्रतको उसका भर्ताकरै तो इस तरहसे दोनों को किसी समय मासथ्य न होनेमें व्रतका भंग नहीं होताहै-भार्या के न होने में-अच्छे चाल चलन संयुक्त किसी पुत्रको अपने व्रतपर मुखतार करै या बहिनको

या भाई को इनको न होनेमें औरही किसी ब्राह्मण को नियुक्त करै ॥ सीमंतकर्मदिसंस्कारेषुच ॥०॥ सीमंतोन्नयन कर्म जो गर्भाधानसे छठे आठवें महीना एक पूजा विधि प्रसिद्ध है तथा ऐसे और जो कुछ संस्कार होते हों तिनका अन्न खाने मध्ये जुदा प्रायश्चित्त है=तदाह धौष्यः=ब्रह्मौदनचक्षोभेच सीमन्तोन्नयनेतथा जातग्राहेनवग्राहेद्विजपूचांद्रायरांचरेत् (अत्रब्रह्मौदनाख्यं कर्मयज्ञांगभूतंसोमसाहचर्यादितिमिताक्षरा=अर्थात्—ब्रह्मौदन इस नामका एक कर्म विशेष यज्ञोंका कोई एक अंग होताहै तिसमें यदि कोई ब्राह्मण खाय तथा सोमनाससे भी यज्ञ विशेष कोई वेदोक्त कर्म होताहै तिसमें खाय या सीमन्तोन्नयन में खाय० जातग्राह जो पुत्रजन्म होने वादि क्रिये जायँ तिनमें खाय या नवग्राह जो सरले पर एकदादशात्क क्रिये जायँ तिनमें खाय तो यह ब्राह्मण चान्द्रायण करै तब शुद्ध होय ॥ अब नीचे उन अभक्ष्योंका वर्णन होगा जो अन्न सर्वथा निर्विकार हैं कोई तरह दोष यद्यपि नहीं है परन्तु केवल परिग्रहका दोष सानाजाता है अर्थात् विरले मनुष्यों का स्वामित्व कच्चा उनपर होनेसेही दोष लगता है तिससे अभक्ष्य (न खानेयोग्य) कहेजातेहैं ॥

अथपरिग्रहदोषमयान्नस्याभक्ष्यस्यभक्षणप्रायश्चित्त

प्रकाशकोऽयंपरिच्छेदः त्रिसप्ततितमः (७३)

— * —

इस परिच्छेद में केवल उन्हींके प्रायश्चित्त कहे जायँगे कि जिन मनुष्योंनेपरिग्रह दोषसय भोजन क्रिया हो (इसका व्योरा इसी चक्रके ऊपर लिख चुके तहां देखौ) परन्तु उसके भेद अनेक हैं सो नीचे पाठ वांचने से प्रतीत होंगे कि इतने मनुष्योंका दिया क्रिया अन्न अभोज्य होता है० तिससे अनन्तर जबर्दस्ती कोई स्लेच्छ आदि कुछ खदावै या हिंसाकर्म करावै तिसके भी प्रायश्चित्त (परिग्रहा भोज्य में गिनती) है० फिर सूतकोंके परिग्रहका अन्न खानेवालोंके० फिर निपट निपटेआदि का अन्नखानेवालोंके प्रायश्चित्तहै० ये सबजुदेभेद भी उसीपरिग्रहसयदोषमेंगिनतीहैं ॥

(परिग्रहाभोज्यभोजनप्रायश्चित्तं)

अर्थात् जो भोजन अपने स्वरूपसे निषिद्ध नहींहै पर किसी विरले पुस्तकका स्वा-

सित्त्व उमपर होनेसेही खानेका नियेध होय सो (परिग्रहा शुचि) कहाता है=जिन पुरुषोंके स्वामित्व वाला अन्न खानेका नियेध है तिनके नाम लक्षणा योगीश्वर भी आचार मर्यादामें बर्णन कर चुके हैं तहां १५६ एकसौ उनमदि मूलश्लोक उत्तरार्ध से लेकर १६४ एकसौ चौंसठिके अन्ततक साठे पांच श्लोकों की व्यवस्था देखी= और=मनुने उनसे कुछ अधिक नाम लक्षणा दर्शायेहैं कि जिनका अन्नखाना मनेहै= यथाह मनुः=नायोत्रियततेयज्ञे ग्रामयाजिहुतेतथा स्त्रियाःक्लीवेनचहुतेभुंजीतब्राह्मणाः क्वचित् सत्क्रुद्धातुराराणांतुनभुंजीतकदाचन गरान्नंगराकान्नंच विदुष्याचजुगुप्सितस स्तेनगायनयोश्चान्नन्तस्त्रोवाधुं यिकस्यच नादीक्षितकदर्थस्यबद्धस्यनिगडस्यच अभिशस्तस्ययंडस्यपुंश्चत्यादांभिकस्यचचिकित्सकस्यमृगयोःक्रूरस्योच्छिद्यभोजिनः उग्रान्नंसूतिकान्नंच पर्यायान्नमनिर्दशम् अनर्चितंतृयासांसमदीरायाश्चयोषितः द्विय दन्नंकदर्यान्नंपतितान्नमवसुतस पिशुनानृत्तनोश्चैवक्रतुविक्रयकस्यच शैल्यतन्तुवा यान्नंकृतघस्यान्नमेवच कर्मरिस्यनियदादस्यरंगावतरगास्यच सुवर्साकर्तुर्वेनस्य शास्त्र विक्रयिरास्तथा श्वतांशौंडिकानांचचैलनिर्गोजकस्यच रजकस्यनृशंसस्ययस्यचो पपतिर्गृहे मृप्यन्तियेचोपपतिस्त्रीजितानांचसर्वशः अनिर्दशंचप्रेतान्नमनुष्यिकरमेव चेति (अत्रचपदार्थअभक्ष्यकांडे आद्धकांडेचव्याख्याता इतिमिताक्षरा=अर्थात्- यहां अयोत्रिय उसको समझना जो पुरुष विख्यात न होय तिसकी करी ज्यौनार आदि यज्ञका अन्न भोजन करना विवेकी ब्राह्मणा को नियेध है. ग्राम के पुरोहित पाधाका किया होम यज्ञ तिसका अन्न खानेका नियेधहै. स्त्री ने या निपट नपुंसक ने होम यज्ञ किया हो तिसमें भी खानेका नियेध है. एवं सत्कारे नशेवाज क्रोधी रोगी इनका भी कभी न खाय.गरान्न जो मठधारी आदि भण्डारा करतेहैं तिसका अन्न भी.गराका वेश्या खानगी आदि स्त्रियों का अन्न. और भी जो कोई अन्न ज्ञानी पुरुषोंका निन्दा किया ठहिरै सोभी. चोर गायन की कृत्ति करने वालों का अन्न. लकड़ी काटने आदिकी जीविका करनेवाले वदयों का अन्न. अनुचित रीति से विआज खाताहो तिसका अन्न. अदीक्षित जिसको यज्ञोपवीत आदि गुरु दीक्षा न मिलीहो तिसका अन्न. कदर्थ जिसने खांटावन संग्रह किया तिसका अन्न. दैदी और हवालातीका अन्न. अभिशस्त जिसको शाप या कोई पाप लगा हो तिसका अन्न. यंड नपुंसक जो अतिक्रामी होकर नपुंसकहोगयाहो तिसका अन्न. पुंश्चली स्त्री और दम्भी पुरुषका अन्न. चिकित्सक जो चौरफारकी चिकित्सा और औषधो बनानेमें जीवाहंसा करताहो तिसका अन्न. चिड़ीमार आदि शिकारी लोगोंका

अन्न० क्रूरप्रकृति वालेका अन्न० जूठ खानेवालों का अन्न० उग्र एक जाति होती है जो क्षत्रीके बीजसे शूद्रकी कन्यासे उत्पन्न हुई थी दोनोंके लक्षणा मिलि के क्रूरही आचरणा उसके होते हैं तिसका अन्न० रूतिका सौरिका अन्न जो दशादिन के भीतर हो० पर्याय अन्न वही जो शूद्रका अन्न ब्राह्मणाके हाथसे या ब्राह्मणाका अन्न शूद्र के हाथसे परोसा जाय सोभी० अर्नर्चित अन्न जो इन्द्रअग्नि आदि देवताओं के निमित्त नहीं अर्पणा क्रियागया० वृथा मांस जो यज्ञविधिसे उपरालू हुआहोय० अवीरा नारीका अन्न भी न खाना (अवीरा वही कहाती है जिसके पुत्र पति इन दोमें कोई एक भी नहो० शत्रु का अन्न० कदर्य अतिहपरा जो धनके होते हुये भी कुटुम्ब को आराम न देताहो तिसका अन्न० पतित जो जातीवर्मसे गिराये गये तिनका अन्न० अदक्षुत जिस अन्नके ऊपर किसीने छींकनारीहो० पिशुन जो विराने अवशुणा हुंढि हुंढि गैरों से कहिता फिरै तिसका अन्न० अचृती जो असत्यही अफ्यास रखता हो तिसका अन्न० क्रतुविक्रयक वह पुस्त्य जो यज्ञादि कामोंसे बची हुई खानी पीनी सामग्री की चीजें बेचै तिसका अन्न भी न खाना अथवा दूधरा अर्थ यह भी है कि क्रतु नामसे अपनी कोईसी प्रतिज्ञा रूपी संकल्पको बेचिडारै तिसका अन्नभी अभय होताहै (इसका दृष्टान्त जैसे हम सत्यही बोलते हैं किसी मामिले पर असत्य नहीं कहिसक्ते हैं ऐसे संकल्पकी खची प्रतिज्ञा जिसने बहुत कालतक पालन करी हो और कदाचित् किसी मुआमिलेपर कुछ लेनेके लोभमें आकर असत्य कहि आवै तो यह पुस्त्य क्रतुविक्रयकर्ता टाहिरै क्योंकि उसके पास सत्य की प्रतिज्ञा रूपी बडा उत्तम यज्ञफल मौजूद और सबको मालूमथा तिसको उसने दाम लेकर देचि दिया इसी दृष्टांतसे और तरहकी भी अटल प्रतिज्ञा समझि लेना कि हम शरणागत की रक्षा अवश्य भावसे करते हैं और कभी लोभ में आकर ऐसा न करै इत्यादि० शैल्य नर कहाते हैं तिनका पेशा जो कोई वैवर्णिक जाति करने लगै तिसका अन्न० इसी तरह तन्तुवाय कपडा बननेका पेशा करनेवालोंका अन्न० कृत्य जो किसीका क्रिया हुआ उपकार सेटिडारै तिसका अन्न० कर्तारि लुहारका पेशा करनेवालेका अन्न० नियाद मल्लाह आदिका पेशा करनेवालोंका अन्न० रंगावतररा जो रँगसाजी या तसवीरोंका उतारना उद्वा ख्वांरतसागोंमें आपही देय बदलिके तरह तरहके अवतार धरै इत्यादि पेशा करने वालोंका अन्न० खुनार और दँडफोर और गन्ध बेचनेवालों का अन्न० कुत्ते पालनेवालोंका अन्न० दाजालोंका अन्न० चेलनिराँजक दीवी आदि नो कपड़े धोनेका दासकरै तिनका अन्न० रजक छीपा रँगरेज आदि जो रँगारे का

कामकरे तिनका अन्न० नृशंस हिंसक जो जीवहिंसा वाला कामकरे तिनका अन्न०
 जिसके घरमें उपपत्ति लुगाईका जारयार भी रहिताहो तिनका अन्न० जे कोई पु-
 रुष अपन घर जारको आतेजाते देखि सहिलेतेहों तिनका अन्न० जो स्त्रियोंके जीते
 हुये उन्हींके वशमें रहितेहों अर्थात् जिस घरमे पुरुषकी बात न चलतीहो तिनका
 अन्न० प्रेतका अन्न जो सौतसे दशादिन भीतर काहो० अतुष्टिकर अन्न जिसको देखने
 से मनमें श्लानि खड़ी होती हो० ये सब अन्न खाकर प्रायश्चित्त करना चाहिये सो
 आगे दशविंशे (मिताक्षराकार कहिते हैं कि इस व्यवस्था में जो कुछ पदार्थ कहे
 गये तिनकी व्याख्या पहिले भी जहां तहां अभस्यकांडके पाठमें और यादकांडके
 पाठमें लिखि चुकेहैं=अनुने इन सबके नाम दशानि पीछे सबका एकही प्रायश्चित्त
 कर्हिदिया सो देखो=यथा=भुक्त्वा१तो१न्यतमस्यान्नसमत्याक्षपरांश्र्यहस सत्याभुक्तवा
 चरेत्क्षच्छूरेतोविरामुत्रमेवचेति=अर्थात्—इन सबमेंसे किसी एकही का अन्न बिना
 जाने खाकर तीन दिन क्षपराक रूपीव्रतकरे जिसमें सबकाम धंधे छोडके निराहार
 बैठना होताहै और जिसने जानिवृत्ति खायाहो सो पूरा क्षच्छव्रत आचरे या जिस
 ने गह मत वीर्य धोखासे खायाहो सो भी क्षच्छ प्रायश्चित्त करे तब शुद्धहोय ॥०॥
 धोखासे उक्तान्न खाइ लेने पर पैटीनसिने भी तीनही दिनका व्रतकहा और अन्न
 भी कुछ औरभांतिके नियेव क्रियेहैं=तथाह पैटीनसिः=कुनखीप्रयावदन्तःपित्वाविव
 दमानः स्त्रीजितःकुटीपिशुनः सोमविक्रयीवारिाजकोग्रामयाजको१भिशास्तोवृयल्या
 मभिजातः परिवित्तिः परिविन्शनोदिविधूपतिः पुनर्भूपुत्रप्रचौरः कांडपृष्टमेवकप्रचेत्
 भोज्यान्नाश्रपांक्त्या अयाद्वाहःस्याभुक्तवा दत्वावा१विज्ञानात्स्विरात्रसिति=अर्था-
 त्त—इसमें जो नाम कहे तिनके भी अर्थ पहिले प्रकरणोंमें जहां तहां व्योरेवार कर्हि
 चुके हैं तिनसे यहां केवल उन्हींका अर्थ लिखे गतेहैं जो कोईया विशेष नामहोय०
 विराह नखदाजा० श्याददांत वाजा० पितामे विरोव राखने वाता० स्त्रियों से हारा
 हुआ० कोटी० पिशुन चुहुल खोर० सोमविक्रयी० वारिाजक ब्राह्मण० ग्रामयाजक
 ब्राह्मण० भिशास्त जिसको भाप या पाप लगाहो० वृयली में सन्तान जिसने पैदा
 करी० परिवित्ति० परिविन्शन० दिविधू का पति० पुनर्भूका पुत्र० चौर० जितब्राह्म-
 णा के घर गयी उनकी भार्या बनिद्वेदी हो वह कांड पृष्टमेवी सनक्षता उम
 पवन के प्रणाग से जि (स्व जलपृष्टतः क्त्वाद्योवपरकूलंत्रजेत तेनदुप्रचरितेनामोकां
 वृष्टवतिरुष्ट) इतने गभी पुनर्भूका अन्न खाने योग्य नहीं और ये पांतिने वेदा-
 रने योग्य नहीं और याद के योग्य नहीं उनका अन्न बिना जाने धोखासे खाकर

तीन दिन उपवास करै तब शुद्ध होय ॥ ० ॥ इन्हीं सबके नाम कुछ इगसे भी अधिक दशाधि कर घांखजी ने इतका अन्न खाने वाले ब्राह्मण को चांद्रायण प्रायश्चित्त करना कहा है जो एक सहीना भरमें होता है सो अग्यास पर समझना कि जिसने अनेकवार इतका अन्न खाया हो वह चांद्रायण सेही शुद्ध होगा=इसी प्रकार=तौतस ने जूठनि खबैया पंपूचली अभिशस्त आदि अभोज्यान्नों के नाम सब मिताइकर उनका अन्न खानेवाले को पहिले बसन करिके धी चारना प्रायश्चित्त कहा है सो अति छोटा होने के हेतु से आपत्कालिक विषय समझना कि जिसने अन्नाकाल आदि आपत्तिमें उनका अन्न खाया हो सो इस छोटे प्रायश्चित्त से पवित्र हो सकता है ॥ जिसको जबरदस्ती से अभोज्य भक्षणा करवाया गया हो तिसका प्रायश्चित्त नीचे ॥

(बलात्कारेणभोजितस्यप्रायश्चित्तं)

अस्तुबलात्कारेणभुज्यतेतस्यापस्तंवेनविशेषउक्तः=यथा=बलाद्वासीदतायेतु म्लेच्छकांडालदर्युभिःअशुभंकारिताः कर्मगवादिप्राणिहिंसनस उच्छिष्टमार्जनंचैवतयो उच्छिष्टस्यभोजनस खरोष्ट्रविडवराहाणा सासिद्धस्यचभक्षणास तत्स्त्रीणांचतयासंगस्तसिपूचसहभोजनस साक्षीयितेद्विजातीतुद्राजापत्यंविश्रोवनस चांद्रायणांत्वाहिताग्नेःपराक्रस्त्वयवाभवेत् चांद्रायणांपराक्षचचरेत्संवत्सरोयितः संवत्सरोयितोशूद्रो मासार्धंयावत्कंपिबेत् साससायैयितःशूद्रःकच्छपादेनशुड्यति ऊर्ध्वंसवत्सरात्कल्पयंप्रायश्चित्तंविजोत्तमैः संवत्सरोयिभिश्चैवतद्वावंसंनियच्छति—अर्थात्=जिस किसी को जबरदस्ती से न खाने की बल्कु कुछ खवाई जाय तिसके जुदे प्रायश्चित्त आपस्तंवेन कहे हैं कि=जे कोई कहीं पकडि के जबरदस्ती से म्लेच्छ चण्डाल आदि डाकूओं ने बास बनाये और सहीन वा अशुभ काम उनके करवाये या गाय बैल आदि जीवों का जब उनके हाथ से कराया हो और गदहा ऊँट बिष्टा खाने वाला सुअर इनके साथ खवाये हों और उन चण्डाल म्लेच्छों की स्त्रियों से कल्लस इतना हुआ हो या उनके साथ किसीकी लीजन करना पराहो—सैवा द्विजाती तौनोंवर्गों में कोई हो जो एक सहीना भर तक उनके साथ बसा फँदा रहा हो तिसकी शुद्धि बारह दिन प्राजापत्य की विधि करने से होजाती है परन्तु वह पुरुष जो आहितारिण अग्नि की पूजा करने वाला हो तो चांद्रायण करिके शुद्ध होया अथवा सहीना के भीतर कुछ घोंडे दिन चण्डालोंके साथ रहना पराहो तो इद अग्निदाह की शुद्धि बारह

दिन पराक्र व्रत की विधि करने से होजायगी• परन्तु जो सहीनासे अधिक एकवर्ष तक चण्डालोंकेवशमें रहाहो चाहें अग्निसाध या अनग्निसाध कोईही चांद्रायणाऔर पराक्रभी दोनों प्रायश्चित्त करै तब शुद्धहोय यहसब द्विजातियोंकी व्यवस्था कही• कदाचित्त कोई गूढही एक वर्ष तक ऐसा फँसा रहा हो तिसको एक परबाराभर यावक पीके व्रत करने चाहिये (गोमूत्र में रँधे जो का दलिया यावक होता है• परन्तु जो गूढ भी एकही सहीना तक उनमें फँसा रहाहो सो कच्छ व्रत की चौथाई केवल तीन दिन यावक पीकर या कच्छ ही की रीति से व्रत करिके शुद्ध होजाय गा• परन्तु जहां कोई द्विजातीयागूढ एकवर्षसे जितना अधिक दिनोंतक चण्डालों में घिरा फँसा रहाहो उतनाही प्रायश्चित्त भी अधिक बढ़ाकर हिसाब से करवाना चाहिये सोभी यह कल्पना सिर्फ तीनि वर्ष के भीतर में प्रायश्चित्त बढ़ाने की हो-सकी है किन्तु पूरे तीनि वर्ष चण्डालों के साथ रहिते बीति जाने से यह पुरुषभी उन्हीं के समान होजाताहै फिर प्रायश्चित्त नहीं लगता ॥ अब नीचे यह व्यवस्था लिखी जायगी कि जबकोई किसी मतक्रमेखाय तिसपर क्याप्रायश्चित्त चाहिये ॥

(आशौचपरिग्रहान्नभोजनप्रायश्चित्तं)

अवच्छागलः= अज्ञानाज्ञोजनेविप्राः सूतक्रेमृतकोपिवा प्राणायामशतं कृत्वा शुद्धंते शूद्रसूतको वैश्वेययष्टिर्भवेद्राज्जिविंशतिर्ब्राह्मणोदश एकाहंचत्र्यहंपंचमप्लरात्रसभोजनम तथाशुद्धिर्भवत्येषांपञ्चगव्यंपिवेत्ततः (इतिब्राह्मणादिक्रमेणैकाहत्र्यहादयोयोज्याः इदमकालविययमिति मिताक्षरा=अर्थात्-सूतकों वाले काम के कच्छे में रहित हया अन्नभी अभोज्य होता है तिसके खदेया पर जो प्रायश्चित्त चाहिये सो छा-गलमुनि कहिते है कि=जो ब्राह्मण किसी गूढ के वृद्धिसूतक में या सौत सूतक में विनाजाने भोजन करे सो एक सो १०० प्राणायाम करिके शुद्ध होते हैं और वैश्य के सूतकों में भोजन करे सो साठि ६० प्राणायाम करिके शुद्ध होते हैं और सर्वा के सूतकों में खाकर २० प्राणायामों से और ब्राह्मण के सूतकों में खाकर दश १० प्राणायामों से पवित्र होते हैं• परन्तु केवल प्राणायामों से नहीं किन्तु ब्राह्मण के सूतक से एकदिन सही के सूतकमें तीनदिन वैश्य के सूतक में पांचदिन गूढके सूतकमें खाकर सातदिन लिगाहार व्रतभीकरे फिर वृत्तोंके अनाम होने वादि गतदिन पञ्चगव्य पीवे तब शुद्धहोय (यहप्रायश्चित्त इच्छाके विना अनुभाजनं खाने गये कदापि=किन्तु=जानि दुःखि इच्छा मन्त्रित खानेके नियम पर अगिला प्राय-श्चित्त देखो=यदात्त नार्कडेय.=भुक्तानुब्राह्मणाशौचे चरेत्संतपनद्विजः भुक्त्वात्

सत्रियाशौचेतथाकृच्छ्रोविधीयते वैश्याशौचेतथाभुक्त्वा महासांतपनंचरेत् शूद्रप्रयैव
 तथाभुक्त्वा द्विजपूचांद्रायणांचरेदिति=अर्थात्—ब्राह्मणा किसी ब्राह्मणा के सूतकों में
 भोजन करै तिसको सांतपन करना चाहिये • सत्रीके सूतकोंमें भोजन करै सो कृच्छ्रव्रत
 आचरै • वैश्य के सूतकों में भोजन करै सो महा सांतपन करै • शूद्र के सूतकों में कोई
 द्विज भोजन करै सो चांद्रायणा करै तब शुद्धहोय ॥ ० ॥ इनके सिवाय जिसने इच्छा
 सहित बारम्बार सूतकोंमें खानेका अभ्यास किया हो तिसके लिये बड़े प्रायश्चित्त
 हैं सो आगे देखौ=तदाह शांखः=शूद्रस्यसूतकेभुक्त्वा यद्मासव्रतमाचरेत् वैश्यस्य
 तुतथाभुक्त्वा त्रिसासान्व्रतमाचरेत् क्षत्रियस्यतथाभुक्त्वा द्वीमासौव्रतमाचरेत् ब्राह्मणा
 स्यतथा २० शौचेभुक्त्वा मासव्रतंचरेत् (इदमभ्यासविषयमिति मिताक्षरा=अर्थात्—
 शांख मुनि कहिते हैं कि शूद्र के सूतकों में खाइके छसाही भर व्रत आचरै • वैश्य के
 सूतकोंमें खाइके तीन सहीने व्रतकरै • सत्रीके सूतकोंमें खाइके दो सासभर व्रत करै •
 ब्राह्मणा के सूतकोंमें खाइके एकसहीना भर व्रतकरै ॥ ० ॥ ऊपर छाराल के वचनसे
 आदि लेकर इसीपाठमें सूतकी अन्न खानेपर जो कुछ प्रायश्चित्त लिखेगये तिनका
 प्रारंभ सूतक वीतिजानेके दूसरेदिनसे करनाहोताहै क्योंकि जितनेसूतकी दिन बाकी
 हैं उतने दिन खानेवालाभी सूतकी रहिता है उसकोभीस्नानसात्रकी आशौच विधि
 करनी होती है • यह नियम देखौ सब से पहिले परिच्छेदमें चौदहवीं अधिकोक्तिके
 अन्त में गौतम का वचन है • फिर सत्रहवें १७ सूल श्लोक वाली अधिकोक्ति के
 अन्त में देखौ जहां सूतकान्न भोजन के निषेध आदि नियम जो उसी अधिकोक्ति
 के पूरे होने तक व्यवस्थित होरहे हैं कि जिस वर्गा के सूतकमे शामिल होय यद्वा
 अन्न खाय उसी वर्गा के समान सूतक मानै—और यहाँभी अत्रोक्त विष्णु का वाक्य
 देखौ कि (आशौच व्यपगमे प्रायश्चित्तंकुर्यात्) सूतकी दिन वीति जानेपर प्राय-
 श्चित्तकरै ॥ अदनीचे निपट निपूते आदिका अन्न खानेपर प्रायश्चित्त कहेजायँगे ॥

(अपुत्रादीनां भोजन प्रायश्चित्तं)

अत्राह लिखितः=भुक्तवावाहुं विदस्यन्नसद्रतस्यासुतस्यच शूद्रस्यचतथाभुक्त्वा
 त्रिरात्रंश्यादभोजनस=तथा=परपाकानिवृत्तस्यपरपाकरतस्यच अपचस्यतुभुक्त्वान्नं
 द्विजपूचांद्रायणांचरेत् (इदमभ्यासविषयमिति मिताक्षरा=परपाकानिवृत्तादिल्ल
 रांचतेनैवोक्तं=गृहीत्वशिशंसमारोप्यपंचयज्ञान्तनिर्वपेत् परपाकानिवृत्तोऽसौमुनिभिः
 परिकीर्तितः पंचयज्ञांस्त्र्यंश्वत्वापरान्नादुपजीवति सततंप्रातरुत्थाद्यपरपाकरतस्तुसः

शान्ततेसवोक्तं=यथा=उपपातकयुक्तस्य अन्वयेकं निरंतरम् अन्नं भुक्त्वा द्विजः कुर्यात्परा
 क्तं विधो धनमिति=अर्थात्—जिस ब्राह्मणमें ब्राह्मणत्वका आचार न होय तिसका
 अन्न और जो खोंटे आचरणसे संयुक्त होय तिसका अन्न जो कोई ब्राह्मणखाय सो
 एकदिन निराहार उपवास करै=इन्हींका अन्न जो एकसालभर निरन्तर खातारहै
 तिसका प्रायश्चित्तभीषट्त्रिंशन्मतहीमें कहाहै कि=उपपातकसे संयुक्तका अन्न जो
 कोई ब्राह्मण एक वर्षभर निरन्तरखाय तिसको पराक नामका प्रायश्चित्त करना
 चाहिये (उपपातक अनेकधा होतेहैं परन्तु यहाँपर निराचार और नियिद्धाचरण
 इन दोहीका चर्चाहै ॥ ० ॥ इदं तु भक्ष्याभक्ष्यप्रायश्चित्तकांडगत विशेषोदितव्रतक
 दं वक्तुं द्विजाद्यस्यैव क्षत्रियादीनां तु पादपादहान्याभवतीति सिताक्षरा=विप्रेतुसकलं
 देयं पादो न क्षत्रिये स्मृतम् वैश्येऽर्द्धपादसकस्तु शूद्रजातियुगस्यते इति विष्णुस्मरणात्=
 अर्थात्—सिताक्षराकार कहिते हैं कि यह भक्ष्याभक्ष्य वाले प्रायश्चित्तों के कांड में
 आकर जुदा एक ब्रतोंका समूह दर्शाया गया सो ब्राह्मणकेही प्रयोजनपर आरूढ
 है तथापि जो कदाचिद् इन्हीं बातोंसे क्षत्रीका प्रयोजन आनिपरै तो उसको चौथाई
 कमकरिके यही प्रायश्चित्त पौने पौने बतायेजायँ एवं वैश्यको आधे आधे शूद्रको
 एक एक पाद बतायेजायँ इसका प्रसारा अगोक्त विष्णुका वचन है कि=ब्राह्मण
 में पूरा प्रायश्चित्त लगावै और क्षत्रीमें पौन और वैश्यमें आधा और शूद्रजातियोंमें
 एक पाद ठीक है• परन्तु प्रकरण के बीचमें जहां कहीं विरली व्यवस्था तीनों वा
 चारीवर्गोंकी भिन्न भिन्न कहिचुकेहों तिसमें यहकम करनेका नियम नहीं लगाया
 जासक्ता है यह याद राखना ॥

(इत्यभक्ष्यभक्ष्यप्रायश्चित्तप्रकरणं)

इस प्रकारमें ६६ उन्हत्तरि परिच्छेदके प्रारम्भ से लेकर ७३ तिहत्तरि के अंत
 तक पांच परिच्छेद हैं पांचों में सब तरहके अभक्ष्योंकी व्यवस्था कहीगईहै तिससे
 अभक्ष्योंका प्रकरण इसका नाम ठहिरा ॥

अब नीचे ७४के परिच्छेदमें दो किस्मके पापोंका जुदा जुदा प्रायश्चित्त लिखा
 जायगा• तहां यद्यपि जातिभ्रंशकर आदि नामोंकी किस्म एक जुदोहै उसका परि-
 छेद भी जुदा होना चाहिये या परंच उसका पाठ अतिशय थोड़ा है उनके लिये
 जुदा घर नहीं बनाया जासक्ता• तिससे प्रकीर्ण किस्मके परिच्छेद में उनको भी वि-
 राने घरमें जगह देनी परैगी ॥

अथजातिभ्रंशकरसंज्ञकाद्युपपापानां प्रकीर्णसंज्ञरूपापानां
चवहुविधानांप्रायश्चित्तप्रकाशकोऽयंपरिच्छेदः
चतुःसप्ततितमः (७४) ॥

—*—

यह परिच्छेद अपनी प्रधानता से प्रकीर्ण पापों के प्रायश्चित्त पर आरूढ है तथापि इसके प्रारम्भ में पहिले जातिभ्रंशकर १ संकरीकरणा २ अपात्रीकरणा ३ मलिनी करणा ४ इस नामसे चारप्रकार के उपपातकों के प्रायश्चित्त संक्षेप रीति से कहिदिये जायेंगे—तिस पीछे प्रकीर्णक पापोंको विस्तार दियाजायगा (क्योंकि प्रकीर्ण यह नाम यद्यपि एक है पर भेद इसके अनेक हैं) किन्तु (यदनुक्तं तत्प्रकीर्णकं)जो उपपातक किसीप्रकरणा या परिच्छेदमें गिनती न कियेगयेहों सो सब यहां टुंडने से मिलेंगे क्योंकि प्रकीर्णक उन्हींका नाम है जो पहिले कहीं नहीं कहे ॥

(अथ जातिभ्रंशकरादिपातक प्रायश्चित्तं)

यद्यपि सभी पातक उपपातकों के प्रायश्चित्त यथा क्रम से वर्णन होचुके हैं तथापि एक यह भेद समझना चाहिये कि जितने उपपातक दर्शाये गये उन्हीं में से चिरलों वा अनेकों के जुदे नाम जातिभ्रंशकर पाप संकरी करणा पाप अपात्री करणा पाप मलिनी करणा पाप इत्यादि मनु आदि मुनीश्वरों ने जुदे नाम भेद किये हैं यह वृत्तांत ०४२ दोसौ ब्यालिस की अधिकोक्ति में देखी—जिन मुनीश्वरों ने ऐसे जुदे नाम धरे तिनको जुदे नामों के प्रायश्चित्त भी उसी तरह कहिने परे—तिनको भी इस स्थल पर लिखते हैं कि पढ़ने वालों को मन्देह न रहै तिनमें प्रथम मनु का वचन देखी= यथाह मनुः= जातिभ्रंशकरं कर्म कृत्वा अन्यतममिच्छया चरेत्प्राजापत्यमिच्छया संकरापावकृत्येयुमानः गोधनमैदवः मलिनी करणापियुतमस्यद्यावकस्यहृत्तिति (अन्यतममितिसर्ववमवध्यते= अर्थात्—मनु कहिते हैं कि जिन अनेक पापों का नाम जाति भ्रंशकर से धरा तिनमें से कोई एक कर्म उच्छा मोहित जो कोई करे तिसको प्राजापत्य कृच्छ्र करना चाहिये तिसके उच्छा के बिना कर्म किया हो तिसको प्राजापत्य चाहिये इसी तरह संकरी

करना में से या अपात्रीकरण में से कोई एक पाप कर्म करे तिसको एक महीना चांद्रायणा करना चाहिये इसी तरह मलिनी करणीय नामके कर्मों में से कोई एक पाप करे तिसको तीन दिन गरम यावक पीकर व्रत करना चाहिये ॥०॥ इन्हीं पापों पर यमने भी जुदे प्रायश्चित्त कहे हैं=यथाह यमः=संकरीकरणांकृत्वामासमश्रीतया वकस कृच्छ्रात्कृच्छ्रमथवा प्रायश्चित्तमाचरेत् अपात्रीकरणांकृत्वात्तप्तकृच्छ्रे शाशुद्ध्यात् सांतकृच्छ्रे शायाशुद्धिर्हसांतपनेनवा मलिनीकरणीयेषु तप्तकृच्छ्रं विशो- धनम्=वृहस्पतिनापि जातिभृशकरे विशेष उक्तः=ब्राह्मणास्य रुजःकृत्वा रासभादि प्रमापरास निन्दितेभ्यो धनादानंकृच्छ्रार्धव्रतमाचरेदिति (संधांजातिभृशकरादिप्रा यश्चित्तानां सन्वाद्युक्तानां जातिशक्त्याद्यपेक्षया विषयो विभजनीयः इति मिताक्षरा= अर्थात्—यम ने ऐसे कहा है कि संकरीकरण पाप करिके एक महीना भर यावक भोजन करे अथवा कृच्छ्रात्कृच्छ्र प्रायश्चित्त आचरे तथा अपात्रीकरण पाप क- रिके तप्तकृच्छ्र प्रायश्चित्त से पवित्र होता है या सांतकृच्छ्र से या महा सांतपन से शुद्धि उसकी होती है तथा मलिनी करणीय पापों में कोई कर्म जिसने किया हो तिसके लिये तप्तकृच्छ्र नामक प्रायश्चित्त है=वृहस्पति ने भी जातिभृशकर पापों के समूह पर जुदा प्रायश्चित्त कहा है कि= ब्राह्मणा के शरीरमें चोट लगाइके या गदहा आदि पशुओं का प्राण वध करिके या निन्दित कर्म करने वालों से धन का लेन करिके आधा कृच्छ्र व्रतसाधै (मिताक्षराकार कहिते हैं कि ये मनु आदि ऋषियों के कहे जाति भृशकर आदि पापों के प्रायश्चित्त दोषी लोगों की जातिशक्ति आदि की अपेक्षा पर यथायोग्य वांछि देने चाहिये= फिर कहिते हैं कि=इस प्र- कार से योगीन्द्र याज्ञवल्क्य जी के हृदय में उत्पन्नहुये अभक्ष्य आदिके प्रायश्चित्त संक्षेप से प्रदर्शित किये— किन्तु जो सर्वथा लिखते तो बहुत बड़ा विस्तार होता ॥ ० ॥ इस बात पर ध्यान करौ कि २६० दोसौ नव्वे मूल श्लोक वाली अधिकोक्ति कृते कितना अन्तर दीति गया तबसे कोई योगीश्वर का मूल श्लोक नहीं आया यद्यपि बीच के अनेक पाठ उसी अधिकोक्ति के शेष पाठ में से लिखे गये क्योंकि यहां तक सभी पाठ उसी मूल श्लोक की टीका में गिनती किये गये हैं तथापि उस मूल श्लोक से या उसकी अधिकोक्ति से कुछ भी संबन्ध इन पाठों का नहीं है जो भक्ष्याभक्ष्य के प्रकरणा में अनेक भेदों से लिखे गये क्योंकि यह अनेक ग्रंथान्तर की व्यवस्था संग्रह करी गई है ॥ अब आगे योगीश्वर आपही अपनी व्यवस्था २८१ दोसौ इक्यासी मूल श्लोक से छेड़ेंगे ॥ जातिभृशकर आदि चारों नाम के विशेष

लक्षणा भेद जो देखने हों तौ २४२ दोसौ व्यालिस की अधिकोक्तिमें हुंढना ॥ इति
जातिभंगकराद्युपपापाद्युनांप्रायश्चित्तचतुष्टयं ॥

यहां तक सर्वथा महापातक पातक अनुपातक उपपातक इनसबके प्राय-
श्चित्त भेद वर्णन हो चुके—अब सबसे छोटे पाँचवीं छठी भाँति प्रकीर्णक नाम के
पापों पर प्रायश्चित्त योगीश्वर आपही आगे ऊँहेंगे तिसको ग्रन्थान्तर स्थृतियों
की व्यवस्था से विस्तार देकर पूराकिया जायगा=प्रकीर्णक पापों का प्रकरण इन
सबही पापों से निराला माना गया है कि जो कुछ यहाँ तक ऊपरवर्णन हो चुका
निराला माना जाने का हेतु केवल यही है कि दिन रातिके आठौं पहर में संसारी
कामों के वर्तनासे छोटे छोटे पाप जो प्रत्येक समयपर अचानक उत्पन्न होजाते हैं
तिनके छोटे छोटे प्रायश्चित्त भी सब इसी परिच्छेद में हुंढे मिल सकेंगे ॥

(अथप्रकीर्णक प्रायश्चित्तानि)

प्राणायामजलेष्मन्वात्परयानोपयानयः । नग्नःस्नात्वाचभुक्त्वाचगत्वाचैवादिवास्त्रियम् २९१
गुंरुण्यत्वंरुण्यविप्रनिर्जित्यवादतः । वध्यावावाससाक्षिप्रं प्रसाद्योपवसेदिनम् २९२
विप्रदोषमरुच्छस्वतिरुच्छानिपातने । रुच्छातिरुच्छोसृक्पातेरुच्छोभ्यंतरशोषिते २९३

अर्थः—गदहा वा ऊँट के योगसे चलती गाड़ी आदि सवारी में जो बैठा हो या
नंगा जल में नहाया हो या नंगा बैठि भोजन किया हो या अपनी ही भार्या साथ
दिन में सेधुन किया हो सो नदी आदि में स्नान और प्राणायाम करिके शुद्ध
होता है ॥ २९१ ॥ गुरु को हूँ करिके नूँ करिके या किसी ब्राह्मण को वाद में
जाति के या कपड़ा से बाँधि के भीयही प्रसन्न करिके दिन भर उपवास करे=
अर्थात्—पिता साता जेठा भाई आदि किसी गुरुजन को कदाचित्त इस तरह बोलें
नि हूँ या नूँ ऐसा है इत्यादि किसी तरह मदा वचन के साथ घुड़के या कुछ बात
कहें तौ यह दोषी होता है सब किसी अपने से बड़े या छोटे या बराबरके ब्राह्मण
को क्रोध के साथ ऐसा कहें कि हूँ चुपहोना बंदे मत रोसे घुड़की के साथ चितंडा
रूपी सातों से जाँते सो दोषी कहाता है या उसके गले में हाथ ही कोमल रीति में
लगाकर वा कन्धाल आदि कपड़ा से राना टोनी रीति से ही बाँधि कर भी दोषी
राना है • इन सबका चही प्रायश्चित्त है कि जितका अपमान किया तिनके पैरों
पर रुद्र धरने आदि उपायों से उनको प्रसन्न करिके मदा दिन भोजन न करे=गन्दा
योंभने या कपड़े से टीलाही लपेटने से उपरालू अपराधों के बड़े प्रायश्चित्त हैं सो

अगिले प्रलोक में देखौ ॥२६२॥ ब्राह्मणाको सारना सोचि डंडा लकड़ी उगानेमात्र पर कच्छ प्रायश्चित्त है० डंडा उसकी देह पर लगाने मध्ये अतिकच्छ है० लोह चलि परने पर कच्छाति कच्छ प्रायश्चित्त है० अभ्यंतर शोशात में कि जहां लोह टपकने नहीं पाया किन्तु खाल के भीतर उभरि के रहिगया हो तिसमें भी केवल कच्छ प्रायश्चित्त है ॥ तीनों श्लोकों की अधिकोक्तिभो जुदी जुदी देखौ ॥ २६३ ॥

२६१ अधिकोक्तिः=दोसौ इक्ष्वाणवे के प्रलोकमें जो प्राणायाम सहित स्नान कहा तिसको मिताक्षरा कार इच्छा से किये कर्मों पर टहिराते हैं=क्योंकि मनु के अग्रोक्त वचन से खुलासा यही तात्पर्य है=यथा=उद्युगानं समाकृत्य खरयानंतु कामतः सवासाजलमाप्लुत्य प्राणायामेन शुद्ध्यति=अर्थात्—ऊँट या गदहा की जुडी सवारी पर कामनासे बैठने वाला वखों सहित गोता लगाइके प्राणायाम करिके शुद्ध होता है=तिससे कामना बिना देव योग से बैठना परै तिसको प्राणायाम छोड़ि केवल स्नान मात्र समझि लेना=और जो साक्षात् गदहा ऊँटकी पीठपर बैठा हो तिसके लिये पूर्वोक्त प्राणायाम सहित स्नान दो बार करना चाहिये क्योंकि यह दोष उससे बड़ा है इति मिताक्षराकाराः ॥ २६१ ॥ दोसौ वानवे में जो ब्राह्मणा को वितंडा बाद से जीतने पर प्रायश्चित्त कहा तिसके ऊपर यम का यह वचन है कि=वादेन ब्राह्मणां जित्वा प्रायश्चित्त विधित्सया त्रिरात्रोपोषितः स्नात्वा प्रणिपत्य प्रसादयेत् (इत्यभ्यासविषयमिति मिताक्षरा=अर्थात्—वितंडावादेसे ब्राह्मणा को जीति के प्रायश्चित्त की इच्छा करै तिसको यह चाहिये कि पहले तीन दिन उपवास करै तिस पीछे स्नान करिके उस ब्राह्मणा के सम्मुख साष्टांग प्रणिपात से गिरिके उसे प्रसन्न करै (मिताक्षराकार कहितेहैं कि यहवडा प्रायश्चित्त कई बारके अभ्यास पर समझना या कई बार की बराबर एकही बार जिसने अपमान कियाही तिसके लिये ॥ २६२ ॥ तिरानवे प्रलोक में डंडे आदि से सारने पर वृहस्पति ने जुदे प्रायश्चित्त कहे हैं=यथा=दाष्टात्तिताडयित्वा त्वभेदे कच्छमाचरेत् अस्थिभेदेऽतिकच्छः स्यात्पराकस्त्वं शकृत्तले=पादप्रहारे यसः=पादेन ब्राह्मणां स्पृष्ट्वा प्रायश्चित्तविधि त्सया दिवसोपोषितः स्नात्वा प्रणिपत्य प्रसादयेत्=अर्थात्—लकड़ी आदि से सारिके यदि खाल तोडिदी हो तो कच्छ व्रत आचरै जो हाड तोड़ि दिया हो तो अति कच्छ करै यदि कोई अंग भी कटि गया हो तो पराक व्रत करना चाहिये=जात सारने मध्ये यत्ने कहाहै कि=पैर से ब्राह्मणा को छुइकर प्रायश्चित्तकी अपेक्षामें एक दिन उपवास किया हुआ स्नान करि उस ब्राह्मणा के संमुख साष्टांग प्रणाम

लक्षणा भेद जो देखने हों तौ २४२ दोसौ व्यालिस की अधिकोक्तिमें ढूंढना ॥ इति
जातिभंशकराद्युपपापाद्युनांप्रायश्चित्तचतुष्टयं ॥

यहां तक सर्वथा महापातक पातक अनुपातक उपपातक इनसबके प्राय-
श्चित्त भेद वर्णन होचुके—अब सबसे छोटे पाँचवीं छठी भाँति प्रकीर्णक नाम के
पापों पर प्रायश्चित्त योगीश्वर आपही आगे छेड़ेंगे तिसको ग्रन्थान्तर स्मृतियों
की व्यवस्था से विस्तार देकर पूराकिया जायगा—प्रकीर्णक पापों का प्रकरणा इन
सबही पापोंसे निराला माना गया है कि जो कुछ यहाँ तक ऊपरवर्णन होचुका
निराला माना जाने का हेतु केवल यही है कि दिन रातिके आठौं पहर में संसारी
कामों के वर्तवासे छोटे छोटे पाप जो प्रत्येक समयपर अचानक उत्पन्न होजाते हैं
तिनके छोटे छोटे प्रायश्चित्त भी सब इसी परिच्छेदमें ढूंढे मिल सकेंगे ॥

(अथप्रकीर्णक प्रायश्चित्तानि)

प्राणायामजिलेस्नात्वाखरयानोष्णानयः । नग्नःस्नात्वाचभुक्त्वाचगत्वाचैवदिवास्त्रियम् २९१
गुरुंहुंकृत्यत्वंकृत्यविप्रनिर्जित्यवादतः । बध्वावावाससाक्षिप्रंप्रसाद्योपवसेदिनम् २९२
विप्रदंडोद्यमेकच्छ्रस्त्वतिरुच्छ्रोनिपातने । कच्छ्रातिकच्छ्रौसृक्पातेकच्छ्रोभ्यंतरशोषिते २९३

अर्थः—गदहा वा ऊँट के योगसे चलती गाड़ी आदि सवारी में जो देठा हो या
नंगा जल में नहाया हो या नंगा बैठ भोजन किया हो या अपनी ही भार्या साथ
दिन में मैथुन किया हो सो नदी आदि में खूब स्नान और प्राणायाम करिके शुद्ध
होता है ॥ २९१ ॥ गुरु को हूँ करिके तू करिके या किसी ब्राह्मण को वाद से
जीति ले या कपड़ा से बांधि के शीघ्रही प्रसन्न करिके दिन भर उपवास करै=
अर्थात्—पिता माता जेठा भाई आदि किसी गुरुजन को कदाचित्त इस तरह बोलै
कि हूँ या तू ऐसा है इत्यादि किसी तरह एक वचन के साथ घुड़कै या झुछ बात
कहै तौ यह दोषी होता है एवं किसी अपने से बड़े या छोटे या बराबरके ब्राह्मण
को क्रोध के साथ ऐसा कहै कि हूँ चुपहोजा वकै मत ऐसे घुड़की के साथ वितंडा
रूपी बातों से जीतै सो दोषी कहाता है या उसके गले में हाथ ही कोमल रीति से
लगाकर वा रूसाल आदि कपड़ा से गला ढीली रीति से ही बांधि कर भी दोषी
होता है • इन सबका यही प्रायश्चित्त है कि जिनका अपमान किया तिनके पैरों
पर सूँड धरने आदि उपायों से उनको प्रसन्न करिके एक दिन भोजन न करै—गला
याँभने या कपड़े से ढीलाही लपेटने से उपरालू अपराधों के बड़े प्रायश्चित्त हैं सो

अगिले प्रलोक में देखौ ॥ २६२ ॥ ब्राह्मणाको सारना सोचि डंडा लकड़ी उगानेमात्र पर कच्छ प्रायश्चित्त है० डंडा उसकी देह पर लगाने मध्ये अतिकच्छ है० लोह चलि परने पर कच्छाति कच्छ प्रायश्चित्त है० अभ्यंतर शौरात में कि जहां लोह टपकने नहीं पाया किन्तु खाल के भीतर उभरि के रहिगया हो तिसमें भी केवल कच्छ प्रायश्चित्त है ॥ तीनों श्लोकों की अधिकोक्तिभो जुदी जुदी देखौ ॥ २६३ ॥

२६१ अधिकोक्तिः=दोसौ इक्ष्वाणवे के प्रलोकमें जो प्राणायाम सहित स्नान कहा तिसको मिताक्षरा कार इच्छा से किये कर्षों पर टहिराते हैं=क्योंकि मनु के अग्रोक्त वचन से खुलासा यही तात्पर्य है=यथा=उष्ट्रानंसमारुह्य खरयानंतु कामतः सवासाजलमाप्लत्य प्राणायामेन शुद्धति=अर्थात्—ऊँट या गदहा की जुडी सवारी पर कामनासे बैठने वाला वस्त्रों सहित गोता लगाइके प्राणायाम करिके शुद्ध होता है=तिससे कामना बिना देव योग से बैठना परै तिसको प्राणायाम छोड़ि केवल स्नान मात्र समझि लेना=और जो साक्षात् गदहा ऊँटकी पीठपर बैठा हो तिसके लिये पूर्वोक्त प्राणायाम सहित स्नान दो बार करना चाहिये क्योंकि यह दोष उससे बड़ा है इति मिताक्षराकाराः ॥ २६१ ॥ दोसौ वानवे में जो ब्राह्मणा को वितंडा वाद से जीतने पर प्रायश्चित्त कहा तिसके ऊपर यम का यह वचन है कि=वादेन ब्राह्मणां जित्वा प्रायश्चित्त विधित्सया त्रिरात्रोपोषितः स्नात्वा प्राणायामप्रसादयेत् (इत्यभ्यासविषयमिति मिताक्षरा=अर्थात्—वितंडावादसे ब्राह्मणा को जीति के प्रायश्चित्त की इच्छा करै तिसको यह चाहिये कि पहले तीन दिन उपवास करै तिस पीछे स्नान करिके उस ब्राह्मणा के सन्मुख सायांग प्राणायाम से गिरिके उसे प्रसन्न करै (मिताक्षराकार कहिते हैं कि यह बड़ा प्रायश्चित्त कई बारके अभ्यास पर समझना या कई बार की बराबर एकही बार जिसने अपमान किया हो तिसके लिये ॥ २६२ ॥ तिरानवे श्लोक में डंडे आदि से सारने पर वृहस्पति ने जुदे प्रायश्चित्त कहे हैं=यथा=दाष्टादिना ताडयित्वा त्वरभेदे कच्छमाचरेत् अस्थिभेदेऽतिकच्छः स्यात्पराकस्त्वंगकर्तव्ये=पादप्रहारे यसः=पादेन ब्राह्मणास्पृष्ट्वा प्रायश्चित्तविधि त्सया द्विसोपोषितः स्नात्वा प्राणायामप्रसादयेत्=अर्थात्—लकड़ी आदि से सारिके यदि खाल तोड़ि दी हो तो कच्छ व्रत आचरै जो हाड तोड़ि दिया हो तो अति कच्छ करै यदि कोई अंग भी कटि गया हो तो पराक व्रत करना चाहिये=ज्ञान सारने मध्ये यत्ने कहा है कि=पैर से ब्राह्मणा को छुइकर प्रायश्चित्तकी अपेक्षामें एक दिन उपवास किये हुआ स्नान करि उस ब्राह्मणा के सन्मुख सायांग प्राणायाम

से गिरिके उसे प्रसन्न करे ॥ अतिकोक्ति इतनी यही थी सो लिखि चुकी—परन्तु—
इसी दोसो तिरानवे की सीका में कुछ लम्बा पाठ है जिसका संवन्ध मूल श्लोकसे
कुछ नहीं है० तिससे उसकी जुदोस्थापना करी जायगी उसमें औरभी प्रकीर्ण संज्ञा
वाले दोसों के प्रायश्चित्त विशेष कहे जायेंगे जिनको योगीश्वर ने इस हेतु से नहीं
दर्शाया कि बहुधा अन्य स्मृतियों में उनके स्वरूप और प्रायश्चित्त भी वर्णन हुये
हैं सो सब आगे देखना ॥ २६३ ॥

(अन्यानिच प्रकीर्णक पापानां प्रायश्चित्तानि)

अत्रमनुः=विनाऽद्भिर्प्लुवाऽप्याऽऽर्त्तःशारीरं संनिषेव्यद्दु सचैलोजलमविशेत् तस्य
लभ्याविशुध्यतीति (विनाऽद्भिर्प्लुवाऽप्याऽऽर्त्तःशारीरं संनिषेव्यद्दु इत्यर्थः शारीरं सजपुरीयादि० इदम
कामविषयमिति सिताक्षरा=अर्थात्—कहीं जलके मिलने विना या जलके होतेहुये
भी कोई रोगी गुदा आदि अंग धोये विना शरीर में लगे मल मूत्र को किसी दिन
सेवन करे सो तब शुद्ध होय जब सभी बस्तों सहित जलाशय के बाहर खूब स्नान
करिके अपने शरीर को गाय के देह से कौली भरिके लगावै (सिताक्षराकार
काहिते हैं कि यह प्रायश्चित्त उसके लिये समझना जिसने कामना के विना मल
मूत्र भरी देह राखी हो० किन्तु जिसने इच्छा सहित ऐसी मलीनता लादी होय
तिसके लिये अशोक्त प्रायश्चित्त है=यदाह यमः=आपद्गतो विनातोयं शारीरं योनि
येवते सकाहंसपरां कृत्वा सचैलोजलमविशेत्=अर्थात्—किसी आपत्ति में फँसाहुआ
जलके विना शरीर के मल का सेवन जो कोई करे वह एक दिन निराहार रहिके
सचैलस्नान करे ॥

जोकि सुमंतु का यह बचन है कि (अश्वरग्नौ वामे हतस्तं कृच्छ्रं सिति (तदनार्त
विषयं लभ्यामपि च यवेति सिताक्षरा=अर्थात्—जलों में वा अग्नि में सतने पर तप्त-
कृच्छ्र चाहिये (सो यह निरोगी का चर्चा या वारम्बार के अभ्यास का चर्चा है
यह सिताक्षरा ने कहा ॥

नित्ययोतादिकर्मलोपेतु मनुः=वेदोदितानां नित्यानां कर्मणां सरातिक्रमे स्नातक
व्रतलोपेचप्रायश्चित्तजभोजनस्य (यौतेयुदर्षा पूर्णानामादित्यु कर्मसु० स्मार्त्तैर्यु नित्यहोना-
दियु प्रतिपदोक्तेषु चादिप्रायश्चित्तैरुपवासस्यसुबुधयः—स्नातकव्रतानिनजीर्णा मलव-
दानाभवेचविभवेऽतीत्येवमादीनिप्रायश्चित्तानि=अर्थात्—मनु ने कहा है कि वेदोक्त
नित्य कर्मों का अतिक्रम होजाने में या स्नातक पुरुष के व्रत (नियम जो आचार

मर्यादा काण्ड में एक जुड़े प्रकारका के द्वारा बरान होचुके तिनमें किसी व्रत) का लोप होजाने पर भी एक दिन भोजन का न करना प्रायश्चित्त है (सिताक्षराकार कहते हैं कि असावस धर्मासासी आदि में वेदीक्त जो कर्मकरने कहेहैं तिनको नित्य कर्म जानना और स्वार्त्त जो स्पृतियों के अनुसार नित्यहोन किये जातेहैं तिनका लोप होने से अशोक्त एक दिन का उपवास ऐसी युक्ति से सम्भूना कि उनके मध्ये जहां कहीं पहिले प्रकारका में उनके नाश से प्रायश्चित्त कृपी इयि आदि करना कहिचुके हों तिनके साथ यह एक उपवास भी जोड़ि लेना—और स्वातन्त्र व्रत वेहैं कि जैसा पहिले आचार में बरान होचुके हैं कि वन के होते हुये फटे मैले वस्त्रों को न पहिरै इत्यादि बहुत नियम हैं ॥ ० ॥ क्रतु नाश के अर्थात्तर ने भी स्वातन्त्र व्रतों का स्वरूप द्वाइ कर पीछे से यह कहा है= एतेषामाचाराणामेकैकस्यव्यक्ति क्रमसो गायत्र्यष्टशतंजपंक्षत्वापतोभवतीति=अर्थात्त—ये स्वातन्त्र पुरुष के आचार जो कुछ कहे तिनमें किसी एकही का व्यतिक्रम होजाने पर आठ सौ गायत्री मंत्र का जप करिके षड्विंश होता है ॥ ० ॥ नित्य कर्मों में षंच महा यज्ञभी गिनती और सबसे प्रधान हैं तिनका लोप होजाने मध्ये अशोक्त प्रायश्चित्तहै=यदाह वृहस्पतिः= अनिर्वर्त्यमहायज्ञाद्योभुंक्तोऽप्रत्यहंगृही अनातुरःसतिधनेक्ष्णार्धेनसशुद्ध्यति आहिताग्निरुपस्थानंनक्षुर्याद्यस्तुधर्वया इतौनगच्छेद्द्वार्यावासोपिहक्ष्णार्धमाचरेत्=जो कोई गृहस्थी रोगी न होते हुये या धनवान् होके रोग होने पर भी नित्यंप्रति पाँच यज्ञों से निपटे दिना भोजन करै सोभी एक दिनकी वावत आधा क्षच्छ करै यद्वा पाँचमें किसी एकही से यज्ञ को कई दिन तक न करै सो आधा क्षच्छ करिके शुद्ध होता है• एवं आहिताग्नि होके जो पर्वों के रोज अपने उपस्थान कर्म को न करै या जो कोई द्विजाती ऋतु काल पर भार्या के साथ संगम न करै तिनको भी आधा क्षच्छ करना चाहिये (आधा क्षच्छ छः दिन में होता है ॥

जिसकी पहिली भार्याकोजीतेहुये दूसरीया तीसरीभार्या करै और वह पुंस्यअग्नि माण्डूहाय तौ उसअग्नि से छोटी स्त्रियोंको बाहबेनाजिसिद्धहै तिनके प्रायश्चित्तआगे कहितेहैं=द्वितीयादि क्षार्पोपरयेवेवतः=मृतांद्वितीयायोभार्यांश्चेद्वैतानिक्ताग्निभिः जी वंत्यांप्रथमायांलु सुरायात्सन्हितह=अर्थात्त—पहिली जेदी भार्या जीवतेदूसरी लहुरी नरीको वैतानिक अग्निघोसे जो कोई दाह कर्षकरै तौ यह जेदीना क्षार उसको दे दिया तिनके पाप में सुरापाण के समान प्रायश्चित्त चाहिये यह वेदले कहा ॥ त्वभार्याभिरांजनेहुयसः=स्वभार्याहुयसःकोदा बराल्येतितरोवरेत् प्राजापत्यंचरे

द्विप्रःसत्रियोदिवसान्नव बडावंतुचरेद्वैश्य स्त्रिरात्रंशूद्राचरेत्=अर्थात्—कोई अपनी शुद्ध भार्याको क्रोधमें आकर ऐसा दोष लगावै कि यह अगम्याहै संगम के योग्य नहीं रही वह पुरुष जो ब्राह्मणसाहो तो बारह दिन प्राजापत्यकरै स्त्रीहो सो नौ दिन करै वैश्य हो सो छे दिन और शूद्रहो सो तीनदिन प्राजापत्य करै यह यमनेकहा ॥

अस्नानभोजनादीतुहारीतः=वह्निक्रमंडलंरिक्त सस्नातोऽश्नश्चभोजनस अहोरात्रे राशुद्धिःस्याद्दिनजाप्येनचैवहि=अर्थात्—स्नातक होकर जल से खाली लोटा साथ राखै या कोई द्विजाती होकर स्नान किये बिना भोजन करै तिसकी शुद्धि एकदिन रातिका निराहार उपवास और दिनभर जप करने से होतीहै यह हारीत ने कहा ॥

ज्योंनारकी एकही पाँतिमें अनेकोंके बैठेहुये विद्यमरीतिसे परोसै कि एकोंको प्रीतिसे कुछ अधिक या अच्छी चीज औरोंको और तरह परोसै या कोई कहिकर ऐसा करावै या कोई खानेवाला इसी रीति मांगै तिनको भी यमका कहा प्रायश्चित्त है=यथाह यमः=नपंत्यांविद्यमंदद्यान्नयाचेतनदापयेत् प्राजापत्येनकच्छेरा सुच्यन्तेकर्मरास्ततः=अर्थात्—पाँतिमें विद्यम किन्तु ऊँच नीच रीतिसे न देवै न मांगै न कहिकर दिलावै क्योंकि ऐसे कर्मके पापसे प्राजापत्य कृच्छ्रव्रत करिके शुद्धहोते हैं अन्यथा नहीं ॥

किसी जलका बाँव या नदी नालेका पुल तोड़ै या कन्याके विवाहवाले कामों में भाँजी मारै या ससतामें विद्यमताकरै तिनके भी लाचारी प्रायश्चित्तहै=तदप्याह यमः=नदीसंक्रमहंतुश्चकन्याविघ्नकरस्यच समेविद्यमकर्तृश्चनिष्कृतिर्नविधीयते व यारामपिचैतेयांप्राजापत्यंतुसार्गसास भैक्ष्यलवधेनचात्नेनद्विजश्चांद्रायणाचरेत् (संक्र मउदकावतरसासार्गः समेविद्यमकर्तृपिजादावितिसिताक्षरा=अर्थात्—यमराजका वचन है कि जो द्विजाती होकर नदीका बाँव तोड़ै या कन्याके विवाह आदि कामों में विघ्न डारै या ससतामें विद्यमताकरै तिनकी निष्कृति अर्थात् छुटकारा तौ अगिले जन्मों तक भी नहीं है किन्तु पापका फल भोगना तौ अवश्य होगा तथापि लोकाचार के वर्तवा हेतुसे इन तीनोंको भी प्राजापत्यही करवाया जाय परन्तु जो दीयी पुरुष ब्राह्मण होय तौ उसके लिये विशेषताहै कि भिक्षासे मांगे मिले अन्नसे चान्द्रायणा आचरै (ससता में विद्यमता करना यह कि जहां बरावर को तिलक पूजा दक्षिणा आदिका प्रयोजनहो तहां न्यूनानधिकभेदकरै और इसीका दूसरा अर्थ यह भी है कि एकसार सार्ग आदि धरती पर गडहिलाकरै अर्थात् अपना सकान बनाने आदि कारणांसे इतनी मारी खोदै जिससे सर्व साधारणों का रास्ता बिगड़जाय

जिसमें किसी गाड़ी बेल मनुष्य आदिकी टाँग टूटना सम्भव हो या बसती पानीभरि कर बालक बच्चे आदिका डूबना सम्भव होय तिसको पापका यह चर्चा है क्योंकि जैसा जलके उतारे आदिका संक्रम बांध काटनेका पाप है तैसाही यह पाप है जिसका व्यौरा लिखा • तैसाही तीसरा कन्याके विवाह आदिमें विघ्न करवाना बडा पाप है इसीसे इन तीनोंको एक साथही दर्शाकर ऐसा कहा है कि इनकी मुक्ति नहीं होती है नरकोंमें अवश्य जाना होता है परन्तु लोक व्यवहारके निमित्त से प्रायश्चित्त कराना चाहिये) इस व्यवस्थाके प्रयोजनसे २२६ दोसौछब्बीस मूलप्रलोकभी देखी ॥

इन्द्रधनुर्दर्शनादौऋष्यशृंगः=इन्द्रचापपलालाग्निंयद्यन्यस्यप्रदर्शयेत्प्रायश्चित्तम होरात्रंघुर्दण्डपृचदक्षिणा=अर्थात्—इन्द्रधनुष जो सूर्य या चन्द्रमा के विश्वको घेरा देकर कभी उदय हुआ देखि परता है तिसको जो पुरुष देखिलेय तिसको यह चाहिये कि वह और किसीको न दिखलावै न चर्चाकरै • इसी प्रकार पलाल धान कोदौ आदिका फूस प्यार तिसकी अग्नि दूर जलती देखि दूसरेको नहीं दिखावै • कदाचित् आप देखि दूसरेको दिखावै तिसपर यह प्रायश्चित्त है कि एक दिनराति उपवास करिके जो धनुष दिखायाहो तो एक धनुषदान करै जो अग्नि दिखाई होतो एक लाठी दानकरै यह शृंगीऋषिने कहा (इसका हेतु कुछ होने पर भी नहीं कहा जासक्ता है तिससे वाचनिक व्यवस्था जाननी कि जो वचन मुनीश्वरोंके मुखसे निकसा वही प्रसारा है क्योंकि तेजस्वी महात्माके मुखसे कोई वचन वृथा कभीनहीं निकसता है ॥

पतितादिभिःसंभाषणोत्तु गौतमः=नस्लेच्छाशुद्धैर्वाग्मिकःसहसंभाषेत संभाष्यपुराय कृतोमनसाध्यायेह ब्राह्मणो न सहदासंभाषेत • भार्यान्निधनलाभवधंपृथग्द्वयागीति=अर्थात् जो मनुष्य धार्मिक धर्मवान् कायदेवान् है तिसको चाहिये कि वह स्लेच्छ सलीन अशुद्धोंके साथ प्रयोजनके विना और प्रयोजन से अधिक बात चीत न करै और प्रयोजनसे भी जितनी बात करनीपरै तिसको करनेके अनन्तर अच्छे पुण्यात्मा राजर्षी ब्रह्मर्षी आदि पुराने और तवीन वर्तमान तपस्वी लोगोंका ध्यान मनमें करै और मुखसे ही नाम उच्चारण करै अथवा उभा संयुक्त किसी ब्राह्मणसे बातचीत करै तब शुद्ध होय यह गौतम ने कहा ॥

स्वस्यैवधनलाभादेर्ब्रह्मणोपितौतमः=भार्यान्निधनलाभवधंपृथग्द्वयागीति (भार्यान्निधनानां ज्ञाभश्यवधे दिश्रकरोप्रत्येकं संहरं प्राहृतं ब्रह्मचर्यमिति सिताक्षरा=अर्थात्—अपने घर में निज भार्या के साथ कोईसा उपद्रव सार पीट आदि अनुचित

रौतिले उत्पन्न करे या घरके धनकी हानि वृथा करे या होते हुये लाभ की हानि करे तब कि जिनसे वह लाभ साराजाकर फिर न हो सके तो इन तीनों पापके ऊपर भी जुदा जुदा एक एक वर्षका प्राकृत ब्रह्मचर्य करे तत्र शुद्ध होय यह सौतमने कहा (यह तर्क न करना कि अपने लाभकी हानि कौन करता है क्योंकि ऐसे बहुत होते हैं जिनसे अपने लाभकी हानि पूर्वता से हो जाती है और ऐसे भी होती है कि जहां भाई भतीजे बेटा चाप आदि से विरुद्ध होय तहां एक के द्वारा होते लाभ से दूसरा वैरभावसे जाकर उससे विरुद्ध आता है इत्यादि और सूरतोसे भी होता है तिनके प्रायश्चित्त कहे ॥

ब्रह्मसत्र यज्ञोपवीत कंधेपर होने बिना जो जल पान या भोजन या शंका लघु शंकामे सतत करे तिसके प्रायश्चित्त स्मृत्यन्तरमे कहे हैं = यथा = बिना यज्ञोपवीतेन यद्युच्छिष्टो भवेत्तद्विजः प्रायश्चित्तसहोरात्रं गायत्र्यष्टशतंतुवा (अत्र ऊर्ध्वोच्छिष्टे उपवासः अथोच्छिष्टस्योदकपानादियु गायत्रीजप इति मिताक्षरा = अक्रामतस्तु = पिवतो देहतप्रचैव संजतोऽनुपवीतिनः प्राणायासत्रिकं यत्कं नक्तं च त्रितयं क्रमात् इति स्मृत्यन्तरोक्तं च द्रष्टव्यं = अर्थात् - जनेऊ कन्वे पर होने बिना कोई द्विजाती पुरुष यदि किसी तरह जूटा होजाय तहां एक दिन राति का उपवास या आठ सौ गायत्री का जाप प्रायश्चित्त है (इसमें यह व्यवस्था है कि जो ऊपर के अंगमें हाथ मुहसे जूटा हुआ सो उपवास करे जो नीचेके अंगमें खुदा लिंतासे जूटा हुआ हो सो गायत्री जपै - यह व्यवस्था भी उसके लिये सखझना जो अपनी बेपरवाहीसे जानिबूझि ऐसा भ्रष्ट हुआ हो किन्तु = होशियारी साथ रहिते भी दैवयोगसे ऐसा जिसपर हो गया हो तिसको अन्य ग्रन्थका बचन आगे देखौ कि = बिना जनेऊ पानी पीना या लूतना या खाइ लेना जिसपर होजाय तो इन तीनों बात के यथा क्रम से तीन प्राणायास और छे प्राणायास और नक्तत्रत जुदे जुदे करे (नक्तत्रत उमका नाम है जो निर्जल व्रतकारिके चार दस राति गदेके भीतर भोजन करे यह भी अभोजन की बराबर कहाता है ॥

शुक्ताथोचाचसनपदाहोत्यानेतु स्मृत्यन्तरे = यद्युच्छिष्ट्यनाचांतोभुंक्तेवाऽनाशनात्ततः सद्यःज्ञानप्रदुर्गीततोऽन्यथापतितो भवेत् = अर्थात् - भोजन करनेमे यदि खाइ चुकने पर न खायेके यदि जल पीने बिना आचसन लिये बिना चौकेने बाहर उठि जाय तो तत्कालही जानकरे अन्यथा जो न करे तो पतितदर्हारे अर्थात् जातिपांति से बाहर कर दिया जाय स्मृत्यन्तर की यह व्यवस्था है ॥

चौशयुन्तर्गादीनु वशिष्ठः = इंदुपौलर्गैराजेकराजमुपवनेत् विराटपुरोहितः कच्छू

मदंध्यदराडने पुरोहितद्विराडं राजा=अर्थात्-दराड देने के शोध चोर आदि अपराधी यदि छोटि दिया जाय तो राजा एक दिन उपवास करे पुरोहित तीन दिन करे और जो अद्वय किसी पुरुष को दराड दिया गया हो कि जिसका कुछ अपराध प्रार्थ में नहीं था या वह पुरुष अपराध को दशा में भी दराड पाने से सुआफ था तिसको दराड दिया गया तहाँ पुरोहित को पूरा बारह दिन कष्ट करना चाहिये और तीन दिन राजा को (यहाँ पर अदालती पुरोहित का चर्चा है जो वर्म शास्त्र देखने का अधिकारी होय किन्तु कर्मकांडी पुरोहित का चर्चा यहाँ नहीं है। राज-द्वारों से दोहरे पुरोहित होते हैं ॥

जिस पाँति में कोई चोर या पतित आदि वैठा हो तिसमें भोजन करने मध्ये प्रायश्चित्त है=तदाह सार्कडेयः=अपांक्तो यस्म्ययः कश्चित्पत्नौ भुंक्तो द्विजोत्तमः अहोरात्रोऽपि तोभृत्पापंचगव्येन शुद्धति=अर्थात्-कोई द्विजोत्तम ब्राह्मण जो अपांक्त य की पांति में भोजन करे अथवा उस की करी ज्योत्नार आदि पांति में अर्थात् रकोई में भोजन करे सो एक दिन राति निराहार व्रत करिके दूसरे दिन पंचगव्य पीकर शुद्ध होता है यह सार्कडेय जी ने कहा ॥

नीली वस्त्रादि विषये तु आपस्तंबः-नीलीरक्तं यदा वस्त्रं ब्राह्मणोऽपि धारयेत् अहोरात्रोऽपि तोभृत्पापंचगव्येन शुद्धति० शीतकूपैर्यदा वस्त्रेऽसो नील्यास्तु कस्यचित् त्रिभुवर्षांषु सासान्धं तद्वद्वद्विधो वनस० पालनं विक्रयं चैव तद्वद्वद्वत्यातुषु जीवन्तसु पातनं तु भवेद्विप्रैश्चिभिः कच्छं व्यपोहति० नीलीदारुयदा भिंध्याद्वा ह्यरास्य शरीरतः शोऽपि तातं दृश्यते यत्र द्विजश्चांद्रायसांचरेत्० स्त्रीणां क्रीडा र्यसंभोगेऽपि नीयेन दुप्यतीति=अर्थात्-आपस्तंबने कहा है कि ब्राह्मण जो अपने शरीर में नीला रंगा कपडा ओढे या पहिरे तो एकही बार ऐसा करने पर एक दिन रातिभर निराहार व्रत करके पंचगव्य पीवे तब शुद्ध होय० परन्तु जिस द्विजाती ने इतनी देर तक नीला वस्त्र पहिरा हो कि उसके पहीना निकलने से रोज छिद्रों में कपडे का प्रसेव जाकर लगे तो फिर तीनों वर्ग के लोगों को एक ही यह साक्षात् प्रायश्चित्त है कि तब कच्छ करें० और जो कोई द्विजाती नील का वस्त्र दोबे या घर में धरे या देखे या किसी तरह नील के पास से जीविका राखे तिसको जानी वर्ग कर्मा से (पालन) निराड देना यही वंड किया जाऊ परन्तु यह ऐसा पुरुष जो ब्राह्मण हो तो तीन कच्छ लावन कराड के फिर जाति में सिताय जाय एवं लकी हो कच्छ करिके और देख्य मकली कच्छ करिके जाति से सिताया जाउता है (परन्तु पूरुको इस बात का निवेद नहीं है०

और नील की लकड़ी यदि ब्राह्मण के शरीर में आपही किसी तरह से खुसिजाय या कोई अन्य पुरुष सार देवे कि जिससे कुछ लोह का चिह्न उभरि आवैतौ यह ब्राह्मण चान्द्रायण करै तब शुद्ध होय—परंतु स्त्रियों के लिये इतना प्रतिप्रसव है कि उनके क्रीडा संभोग वाले निमित्तों में शयन काल के वस्त्र नीले होय तिसमें दोय नहीं लगाया जासक्ता है कि स्त्री के प्रसंग समय उसके पतिको भी उनवस्त्रों से सुरुग रहा तथापि जो विवेकी और क्रियासान पुरुष होते हैं वे अपनी स्त्रियों से भी नील वचाते हैं (और वचन में जो शयनीय भोग समय का विशेषता दिया गया तिसकी श्लक्ष्णियत से यह तात्पर्य है कि हर वक्त के ओढ़ने पहिरनेवाले कपड़े स्त्रियोंके भी नीलेन होने चाहिये कि जिससे रसोई आदि कामोंतक अशुद्धि पहुँचै इसीलिये वचनमें क्रीडार्थका निमित्त दिया गया है किजिन स्त्रियोंको रसोई आदि से जिसवक्तपर संबंध कुछ न हो तिनको संगल कार्यके उत्सवोंमें भी उतने समयतक क्रीडाके अर्थसे नीले वस्त्र धारण करना दोय नहीं है ॥ ० ॥ स्त्रियोंके सिवाय विरले पुरुष और विरले काम और विरले वस्त्रों के नाम से भी कुछ कुछ प्रतिप्रसव दिया गया है (प्रति प्रसव धर्मशास्त्रमें एक सर्यादाका नाम है कि जिस कामका नियेध किया गया हो उसी कामको थोडासा किसी जघेपर करनेकी फिर पीछेसे आज्ञा देदीजाय) तदाह भृगुः=स्त्रीधृताशयनेनीलीब्राह्मणस्यनदुष्यति नृपस्यवृद्धौवैश्यस्यपर्ववर्जविधारणाम्=तथावस्त्रविशेषकृतप्रतिप्रसवः=कंवलेपइसूत्रेच नीलीरागोन दुष्यतीतिस्मरणात्=अर्थात्—भृगुजी का वचन है कि स्त्रियोंके अंगमें धारणाकिया नीला कपड़ा ब्राह्मण को सोते समय दूयित नहीं करता है और राजा क्षत्री को वृद्धि में अर्थात् सेनाआदि समूह में रंग विरले वस्त्रोंके कार्य में कुछ दोय नहीं है और वैश्य को शीत काल से काले कंवज वनात् आदि पर्वोंको छोड़िकर ओढ़ने में कुछ दोय नहीं है=इसीलिये विरले वस्त्र से नीला रंग होनेका यह प्रतिप्रसव दिया है कि=कानात् आदि ऊनी कवल में तथा रेशमी कपड़े में नील रंग दूयित नहीं है (परन्तु ब्राह्मण को इन वस्त्रों का भी नियेध है यहप्रति प्रसव केवल वैश्य को शीत काल मध्ये कता गया है सोनी पर्वोंको छोड़िके और ब्राह्मण सदा आपही पर्वरूप और तीर्थरूप होता है उसके लिये शीतकाल में भी नहीं—और नीला कहिने से तद्रूप नीले वर्ण को समुक्तना किन्तु हरारंग को नीलके संयोगसे वनता है ऐसे हरारंग को कानात् या रेशमी का नियेध ब्राह्मण के निमित्तमें भी नहीं है तथापि भोजन और भजन के उदंडो हरे होने का नियेध तात्पर्यसे भी संखिद है ॥

शंख ने विशेष कर ब्राह्मण के लिये ढाखे की खाट आदि पर बैठना या राजा के रथ से भागना या पूजा आदि उत्सवकार्यों के बीच में निकसिजाना आदि और भी अनेक बातें एक साथ इकट्ठी करने करीं तिनके प्रायश्चित्त भी कहिदिये हैं—यथाह शंखः=अथश्चयथायनंयानमासनंपादुकेतथा द्विजःपालाशवृक्षस्यत्रिरात्रंतुव्रती भवेत् • क्षत्रियस्यरथोपृथंद्दत्त्वाप्राणापरायणाः संवत्सरं व्रतं कुर्याच्छिच्छत्वावृत्तं फलप्रदम् • द्वीविप्रौब्राह्मणाग्नीवाद्यंतीगोद्विजोत्तमौ अन्तरेणायदागच्छेत्क्षच्छं सांतपनंचरेत् • होमकालेतथादोहेत्वाध्यायेदारसंग्रहे अन्तरेणायदागच्छेत् द्विजप्रचांद्रायणांचरोदिति (दोहे साक्षाद्यांराभते • एतच्चान्यासविषय मितिमिताक्षरा=अर्थात्=शंखजी कहिते हैं कि यदि कोई ब्राह्मण ढाखे की लकड़ी से बनी खाट या सवारी का साचा या तखत घोंडी आदि आसन या खड़ाऊं पर चढ़के बैठे खड़ा होय सो तीन दिन व्रत करै=और कोई ब्राह्मण जो शस्त्रवाँधि कर सत्रीपन की नौकरी किये हो सो उस राजा के रथमें अपने प्राणोंके भयसे पीठि दिखाकर उलटा भागै वह एक वर्ष भर ब्रह्मचर्य का व्रत करै और फलोंका देनेवाला कोई पेड़ जिसने काटाहो वहभी एक वर्ष भर व्रत करै=और दो ब्राह्मण कहीं बैठे हों या बात करते हुये मिले चले जाते हों या परस्पर पढ़ते और पढ़ाते हों तिनके बीच होकर जो कोई निकसिजाय सो बीच में विशेष करने के घाप में छच्छ सांतपन प्रायश्चित्त करै • इसी प्रकार जो ब्राह्मण और अग्नि के बीच में जो चला जाय सोभी छच्छ सांतपन करै (यहांपर बही अग्नि सान्नी जो उसी ब्राह्मण से किसी तरह का वास्ता रखती है अन्यथा जहां निरपेक्ष कोई अग्नि कहीं जलती या धरी हो तिसके निकट कोई निरपेक्ष ब्राह्मण चला जाता या बैठा हो तिनके बीच होकर निकसि जाने का यह दोष नहीं है) इसी प्रकार दंपती यदि पत्नी कहीं बैठे या चले जाते हों तिनके बीच हो कर निकसि जाय सो भी छच्छ सांतपन करै • इसी प्रकार गाय और ब्राह्मण इन दो दो बीच निकसि जाने वाला छच्छ सांतपन करै तब निर्दोषी होय=इसी प्रकार जहां कोई होय कर्ष करता करवाता हो या गाय को दुहता दुहवाता हो और स्वाध्याय नासक्त वेद पाठ आदि कोई सा पाठ करता करवाता हो या दार संग्रह विवाहकर्म करता करवाता हो और इनके उपलक्षणा से यज्ञोपवीत मंत्र दीक्षा याद्व कर्मआदि भी समझि लेना इन बातों के बीचमें जो कोई निकसिजाय सो द्विजाती चांद्रायता व्रत आचरै तब निर्दोषी ठहरै ॥

क्षत्रिदेशविशेषगमनेपि देवलः=सिंदुसौवीरसौराष्ट्रांस्तथाप्रत्यंतवासिनः अंगारंग

कलिंगांध्राचरात्वासंस्कारसर्हति (सतत्रतीर्थयात्राव्यतिरेकेणाद्रष्टव्यमिति सिताक्षरा= अर्थात्—देवल कहते हैं कि सिन्धुदेश सौवीर देश सौराष्ट्रदेश तथा (प्रत्यन्त देशों अर्थात्) म्लेच्छ देशों को जाइके और अंगदेश वंगदेश कलिंग देश अन्ध देशों को जाइके द्वारा जनेऊ करवाने योग्य होता है (परन्तु यह तीर्थ यात्रासे उपरालूजाने का चर्चा है अर्थात् जगन्नाथ आदि बड़े तीर्थोंको जातेहुये जो निखिद्र देश मक्षाने परें तिनके लिये पुनः संस्कार की जरूरत नहीं है ॥

सूर्य में छिद्र देख परना आदि अरिष्ट किन्तु खोंटे अपशाकून जो अनेक भांति होते हैं तिनके भी प्रायश्चित्त हैं—तदाह शंखः=दुःस्वप्नारिष्टदर्शनादौ घृतं सुवर्णांच दद्यादिति=यमोप्याह=प्रत्यादित्यं न मे हेत न पश्येदात्मनः शक्यं दृष्ट्वा सूर्यं तिरीक्षेत ब्राह्मणांगामथापिवेति=शंखस्तु=पादप्रतापनं कृत्वा कृत्वा वह्निमधस्तथा कुशैः प्रमृज्य पादौ तु दिनमेकं व्रती भवेदिति=अर्थात्—खोंटास्वप्ना और खोंटे अरिष्ट देख परने आदि में घी और सुवर्ण का दान करै तिससे फिर कल्याणाही होता है यह शंखने कहा=यस ने भी यह कहा है कि=सूर्य के सम्मुख न मूतै और अपना विष्टा न देखै कदाचित् विष्टा देख लिया हो तो सूर्य के दर्शन करै और सूर्य बादलमें छिपे हों तो ब्राह्मणा के दर्शन करै ब्राह्मणाभी न मिलै तो गाय के दर्शन करै=शंख ने भी कहा है कि=अग्नि में पैर तपावै या खाट के नीचे आगि धरि के सोवै या कुशाओं से पैर माजै सो एक दिन व्रत करै तब निर्दोषी ठहरे ॥

अथाभिवादननियमातिक्रमः= तत्र सत्रियाद्युपसंग्रहसो हारीतः=सत्रियाभिवादाने ११होरात्रमुपवसेत् वैश्याभिवादाने द्विरात्रम् शूद्रस्याभिवादाने त्रिरात्रमुपवासः= तथा ग-
प्यास्वहपादुकोपानहा रोपित पादोच्छ्रयं वकारस्य श्राद्धकृजपदेन पुजानिरताभि
वादाने त्रिरात्रमुपवासः स्यात् अन्यत्र निक्षिपितेनान्यत्र भोजनेपि त्रिरात्रमित्यपि हारीतः
(सप्तित्युष्पादिहस्तस्याभिवादाने प्येतदेवेति सिताक्षरायतः) (सप्तित्युष्पकुशाज्या
म्बुमृदुना ११सतपाशाकस्य जपहोमं च कुर्वाणां नाभिवाद्येतवै द्विजस इत्यापस्तंबीये जपा
दिभिः सप्तभिव्याहारात्=अर्थात्—अभिवादनके नियम छोड़िकर जो कोई अतिक्रम
से अभिवादन करै तिसके प्रायश्चित्त कहा चाहते हैं (अभिवादन का अर्थ है
प्रणाम नमस्कार पैर छूना आदि प्रदान है और दूसरा अर्थ यहां पर यह भी है
कि दिनी को पहिले चिताइ के कुछ बात कहिना कि जिससे दूसरे को अवश्य
ही बोलना परै• इस प्रकारता से दोनों तरह के अर्थों से प्रयोजन लिया जायगा•
इस तरह से कि चिरली बात में केवल प्रणामही का अर्थ और बहुधा बातोंमें दोनों

अर्थ खाने जायँगे केवल अभिवादन के शब्द से) सो सब आगे अपनी बुद्धि से क्या योग्य समझि लेना किन्तु अनेक बातें कही जायँगी—तिसमें प्रथम क्षत्री आदि को ब्राह्मण होकर अभिवादन करै अर्थात् भूल से नमस्कार आदि शब्द कहिउठै तिसके मध्ये हारीत जी कहिते हैं कि=क्षत्रीको अभिवादन करै तिसको एक दिनराति भर उपवास करना चाहिये जो वैश्यको अभिवादन करै सो दो दिन उपवास करै जो शूद्रको अभिवादन करिदैते सो तीनदिन उपवास करै=तथा हारीतही यह दूसरी व्यवस्था कहितेहैं कि जोकोई अपनी सुखतासे अश्रोत पुरुषों को प्रणामरूपी अभिवादन या किसी और तरहका संबोधन करै कि एक जो खाटपर लेटा या चढ़ताहो दूसरा जो खड़ाऊँ या जूताको पहिरनेलगा हो जबतक न पहिन पावै तबतक उससे न बोलै•तीसरा जो जूटा होरहा हो•चौथा जो छंदेरेमें बैठा हो•जो आड करताहो•जप करतां हो•देवताको पूजामें लगा हो•इनको भूल से अभिवादन करिउठै सो तीनदिन उपवास करै•और का नौता स्वीकार करिके और का भोजन करि आवै सोभी तीन दिन प्रायश्चित्त करै (यही तीनदिनका व्रत उसको भी चाहिये जो पत्र फूल आदिसे अटके हाथवालेको अभिवादन करै इससे हाथकीचीज विरली गिरिजानेका खटका होताहै विरली देवताके निर्मितवाली जूठी होजातीहै क्योंकि अगिले आपस्तम्बके वचन में यही तात्पर्य है सो देखौ कि) समिध या फूल या कुशा या घृत या जल या अक्षत जिसके हाथ में मृदुरीति से ढीले थँभे हों या जपमें लगाहो या होमआदि कर्म करता हो ऐसे ब्राह्मणों में किसी को भी प्रणाम संबोधन कुछ न करै ॥ ० ॥ इसी प्रकार यही तीन दिन का व्रत उसको भी चाहिये कि जो पुस्त्य उक्त चीजों को लिये हुये किसी दूसरे को नमस्कार करै या दूसरेका नमस्कार सुनिके प्रत्यभिवादन के द्वारा स्वीकार करै—यथाह शंखः=नोदकुंभहस्तोऽभिवादयेत् नभैष्यंचरन् पुण्याद्यादि हस्तेनाशुचिर्नजपद् नदेवपितृकार्यैर्कुर्वन्नथयानः (इतिशांखेन तस्यापि प्रतिषेधादितिभिताक्षरा=अर्थात्—पानी का घडा हाथ लियेहुये किसीको नमस्कार न करै न भिक्षा लेते हुये समय पर न अपने हाथ फूल घृत आदि कुछ थँभे हुये न अशुद्ध होते (अर्थात् भोजन से उठिके वा हजामत कराते वा घंका लघु घंका से उठि कर हाथ पैरे मुह धोने बिना सबं प्रातःकाल के शौच से निपटे बिना) न जप करते हुये न देव पितरों का कुछ काम करते हुये न लेते हुये अभिवादन करै यह शंख जो ने दूसरे को भी उन्हीं बातों का नियंत्रण कियाहै तिससे इसको भी वही प्रायश्चित्त चाहिये—तात्पर्य सबका यही है जो जो बातें लिखे करी गईं सो

परम्पर सब दोनों को समझनी कि अभिवादन ऐसे समय पर करना चाहिये जब सर्वथा सावधान देखें जिससे दूसरे को कुछ हानि या उसके मन में कोईना क्षोभ न उत्पन्न होने पावे क्योंकि संसार में अभिवादन केवल मुलाकाती प्रीति का हेतु कायल किया गया है तिसमें भी यदि रंज या हानि पैदा हुई तो फिर यही पाप का चिह्न है ॥ • ॥ विज्ञानेश्वर मिताक्षरा कार कहते हैं कि इसी तरह और भी स्मृतियों के वचन जहां देखि परें तिनको भी स्वीकार करना क्योंकि ग्रन्थ बड़ा हो जाने के डर से यहां सब नहीं लिखे गये हैं ॥ २६३ ॥ इसी दोसरी तिराचवे मूल श्लोक से लेकर यहां तक संबन्ध मात्र से प्रकीर्णा प्रायश्चित्तों के अनेक पाठ भेद लिखे गये वलिक प्रकीर्णा प्रायश्चित्तों का प्रारम्भ २६१ दोसरी इक्क्यानवे मूल श्लोक से हो चुका था ॥

(इतिप्रकीर्णाकप्रायश्चित्तप्रकरणसमाप्तं)

इस प्रकरणा में एकही ७४ चौहत्तर का परिच्छेद है जिसमें जाति भंशकरादि पापों की व्यवस्था को छोड़के प्रकीर्णाक पापों की २१ इक्कीस व्यवस्था है जिनके सब जुदे जुदे पाठ यहां तक पूरेहुये ॥ इस प्रकरणा में और इससे पहिले बहुत बड़े भक्ष्या भक्ष्य के प्रकरणा में भी वेही बातें रक्खी गई हैं जो रोज रोजके वर्तावे में हर वक्त काम आती हैं — इनहीं का तीसरा भेद और है कि वह भी रोज रोज के वर्तावे में आता है वह चौथे परिच्छेद में तीसरे ३० मूल श्लोक से वर्णन हो चुका तहां उसीकी अधि कोक्ति भर में देखी उसके प्रायश्चित्त इनसे भी अति छोटे हैं

अर्थात् इस ग्रंथ में प्रायश्चित्त कुछ और भी कहिने शेष रहे हैं परंतु यहां तक सभी पापों का निपटारा हो चुका है प्रसिद्ध पातकों में कोई ऐसा नहीं रहा जिसका प्रायश्चित्त न कहि चुके हों • तथापि यह संसार अनंत है इसमें पाप रूपा निमित्तों के स्वरूप भी अनन्त हैं जो सब एकसाथ गिने नहीं जासकते हैं कि जिनके प्रत्येक जुदे नामों से प्रायश्चित्त कहे जासकें • न जानिये किसकाल में किसी अनुप्य के द्वारा किसप्रकार का चतुर्थ पाप उत्पन्न होय तिसका भी प्रायश्चित्त इन्हीं के अनुकूल जोचिकर देना होता है जो यहां तक वर्णन हो चुके • परंतु उसमें सोच विचार से अन्वय होजाने की शंका भी सर्वत्र लगी रहिती है • और जो प्रत्येक जुदे नामों से प्रायश्चित्त वर्णन हो चुके लिखे न दूँदें तिनमें भी विचार किये बिना आदेशकर देने से प्रायश्चित्ती पुस्य की वृथा प्राता हानि होजाना आदि अनेक शंका लगी

रहिती हैं• तिसके विचार की सुघडाई बनी रहिने के प्रयोजन से एक सामान्य मर्यादा आगे पचहत्तरि ७५ परिच्छेद में योगीश्वर आपही दर्शावेंगे कि जिसका सर्वत्र सहारा लिये रहिने से अन्याय न होनेपावै ॥

अथ अनुक्तप्रायश्चित्तपापेष्वपि निष्कृतिकल्पनायुक्तिवि

चारोनामपरिच्छेदः पंचसप्ततिमः (७५)

—*—

इस परिच्छेद में विशेषकर ऐसे पापोंके प्रायश्चित्त विचारे जायँगे कि जिनके नामसे कोई प्रायश्चित्त• इसग्रन्थ भरमें कहीं भी न लिखा हो—इसके सिवाय जितने प्रायश्चित्त यहांसे आगे आगे लिखेजायँगे और जितने यहांतक पहिले से वर्णन होते रहे तिन सबहीका साधारण एक विचार है सोभी इसी परिच्छेदमें निर्णय किया जायगा ॥

(प्रायश्चित्तंच देशकालादिविचारेणैव)

देशकालं वयःशक्तिं पापं चावेक्ष्य यत्नतः । प्रायश्चित्तं प्रकल्प्य स्याद्यत्र चोक्तानि निष्कृतिः २९४

अर्थः—देश काल वयस् शक्ति पापकोभी देखिके यत्न से प्रायश्चित्त कल्पना किया जाय जहां निष्कृति न कही गई तहां भी=अर्थात्—जो कुछ प्रायश्चित्त यहां तक सब तरहसे वर्णन होचुके अथवा आगे जो कुछ कहेजायँ तिनका वर्तवा जहां करना परै अथवा किसी ऐसे पाप का प्रायश्चित्त देना परै जिसके नामसे शास्त्र में न लिखागया हो तहां तहां सर्वत्र इतनी बातों के विचारसे प्रायश्चित्त देना चाहिये कि—प्रथम देशका विचार फिर काल का विचार फिर अवस्था का विचार फिर उस प्रायश्चित्त की शक्ति सामर्थ्यका विचार और उस पाप के स्वरूप का विचार करै कि जिसके ऊपर प्रायश्चित्त देना चाहागया ऐसे पूरे यत्नों से प्रायश्चित्तकी कल्पना करनीयोग्य है कि जिससे कर्ता पुरुषके प्राणों की हानि वृथा न होजाय यही इसका तात्पर्य है और यहभी तात्पर्य है कि अतिशय छोटे पाप में बहुत बड़ा प्रायश्चित्त न होजाय ॥ २९४ ॥

२९४ अधिकोक्तिः— उक्त बातों का व्योरा यहां समझाते हैं कि जहां कर्ता पुरुष को प्राणांतिक प्रायश्चित्त की आज्ञा न होने परभी केवल व्रतमात्र के आ-

चरणां में किसी कठिनाई से प्राणा जातेरहें तहां उसके प्राणा वृथा जानेके सिवाय एक यह भी दोष खडा होता है कि प्रायश्चित्त ही पूरा न होसका क्योंकि बीचही में उसकी कठिनता से प्राणा चले गये—तिससे इन दृष्टान्तों को समझना चाहिये कि जैसा आगे ३१२ तीन सौ बारहवें मूल प्रलोक से योगीश्वर कहेंगे कि (दिन में वायु को पीता हुआ खडा रहि कर रात्रि को जल में बैठके बितावै फिर दूसरेदिन सूर्य निकसि आने पर एक हजार गायत्री जपिकर शुद्ध हो जाता है परन्तु जिसने ब्रह्महत्या करीहो वह इस प्रायश्चित्तसे नहीं शुद्ध होगा किन्तु यह अन्य पापोंका चर्चा है) ध्यान करौ कि यही प्रायश्चित्त किसी से करवाया जाय तहां देश का विचार ऐसे होसताहै कि हिमालयके निकट वर्ती देशों में जलका निवास न करवाना चाहिये ऐसे ही कालका विचार है कि अति शीत के ऋतु काल में जल का निवास दर्जित करै अर्थात् हिम देश और हिम काल को बचाइ कर जल का निवास कल्पित करे इत्यादि और बातें भी देश काल की अपेक्षा में समझनी—एवं वयस् अवस्था का विचार है कि जहां नव्वे वर्ष का बूढा या बारह वर्ष के भीतर का बालक प्रायश्चित्ती ठहरे तहां यदि बारह वर्ष वाले प्रायश्चित्त उन पर आदेश किये जायें तौ प्राणां को विषति आनि परैगी तिससे बीच को अवस्था वाले पर बारह वर्ष का व्रत आरूढ किया जासक्ता है कि जिसका देह सर्वथा बलवान होय• इसी लिये किसी स्मृति का यह वचन है (क्वचिद्वर्धकचित्पादः) कहीं आधा कहीं चौथाई प्रायश्चित्त बतावै इस वचनसे बूढे बालक आदिका हा रूपी निर्वाह दर्शाया है कि इनको पूरा व्रत न देना चाहिये सो यह न्याय पहिले भी जहां तहां बड़े प्रकरणां में बर्णन होचुका—एवं शक्ति का यह विचार है कि जिस प्रायश्चित्त में धन का दान या तप का करना आदि कोई बात नियत होय सो भी उसकी शक्ति के अनुरूप कराना उचित है क्योंकि (पात्रेधनंवापर्याप्तं) यह वचन कहीं लिख चुका है कि अच्छे पात्रों को खूब धन समर्पण करै यह नियम निर्धन के माय नहीं बन सक्ता है—तथा उद्विक्त अति अष्ट पात्र पुरुषोंके निमित्त में पराक आदि व्रतों का विचार है कि जैसे बारह दिन कोरा लंघन करना यह पराक होता है जो किसी निमित्त पर करना लिखाहो और वही निमित्त किसी ऐसे पात्रपुरुष पर आव्ह होय जो जप तप करने से समर्थ हो तौ फिर पराक आदि व्रत करवाना कुछ न्यायात्मक नहीं बल्कि वेद की संहिता आदि के पाठ या गायत्री आदि जप करवाने योग्य ठहरेंगे• एवं राजा आदि कोई जो ब्रह्म सा धन दान कर सकने में

समर्थ हो तिसपर भी पराक आदि व्रत का उपदेश देना अनुचित है। एवं जहां कोई स्त्री या शूद्र जाती पुरुष प्रायश्चित्ती होय तहां उसके पाप का प्रायश्चित्त यद्यपि जप पाठ आदि शास्त्र में नियत होय जो विद्या से संबंधित है तथापि स्त्री और शूद्र को इन कामों की आज्ञा देना न्याय नहीं है अर्थात् उनसे व्रतही करवाने चाहिये। इन्हीं कारणों से ५४ चौबन परिच्छेद में सब जीवों की हिंसा पर जुदे जुदे दानोंके स्वरूप दर्शाने पीछे दोसौ चौहत्तरि सूत्र श्लोक से योगीश्वर ने यह कहा था कि (हाथी आदि की हिंसा पर लिखे दान देने में असमर्थ होय सो प्रत्येक दान के पलकेमें ऋच्छू व्रत साधै) इसी प्रकार किसी और स्मृतिमें तिरोगिनि स्त्री तथा रोगी पुस्तकों भी तप करने में असमर्थ जानिके प्रायश्चित्तमें कसी करने की यह आज्ञा है कि (स्त्रियां तथा रोगी पुस्तक भी नियत प्रायश्चित्त का आवा करवाने के योग्य हैं) इसी २६४ सूत्र श्लोक में पाप को भी सोचिके प्रायश्चित्त विचारना कहा गया तिसमें यह सोचना है कि प्रथम उस रीति से पापों के दर्जे कायस करै कि जैसा २५२ दोसौ ब्यालिस की अधिकोक्ति में डौल कहा गया था फिर उस प्राज्ञ क्रिये दर्जा के भीतर यह सोचौ कि यह पाप प्रत्यय सहित या बिना प्रत्यय के ठहिरा फिर यह सोचौ कि सबसे प्रथम एकही बार का यह पाप है या इसीको बारबार करते बहुत काल बीति चुका है तिस पीछे ग्रेष्ट यत्नों से धर्म शास्त्र को सजस्त आद्योपान्त देखि भालि के प्रायश्चित्त निदासै कि जिससे कोईसा दूधरा उसमें न रहिजाय— तिसमें एक यह भी डौल विचारना कि इच्छा बिना धोखा से उत्पन्न हुये पापों पर जितना प्रायश्चित्त लिखा हो तिसको इच्छा से पाप करने वाले पर हुना ठहिराना चाहिये और उसी का चौगुना उसपर कि जिसने इच्छा सहित बार बार का अभ्यास किया हो यह अन्य स्मृतियों का सिद्धांत है ॥ ० ॥ तद्वैव ६० साठ परिच्छेद में २८६ दोसौ छियासी सूत्रश्लोक देखौ उसमें कहाया कि (झूठा कोई किसी को महा पापों से या गौहत्या आदि उपपापों से दोग लगावै सो एक सहीना भर जलके आहार ले रहिकर जप करै तद शुद्ध होय) यह प्रायश्चित्त उस स्थल पर यद्यपि सामान्य रूप से एकही कहा गया था तौभी अत्रोक्त न्याया के विचार से उसमें यह सोचना चाहिये कि महा पाप और उपपाप का एकही प्रायश्चित्त होता अयुक्त है तिससे उसमेंभी हर एक दजिके पापोंपर द्य-वस्या कल्पित करती चाहिये अर्थात् जिसने बडे बडे पापोंका झूठा दोग लगाया हो तिसको वही एक सहोनेका पूरा प्रायश्चित्त कराना किन्तु जिसने उपपापों का

भंडा दोय लगायाहो तिसके लिये महीना में कुछ कमी अपने न्याय रूपी विचार से करवनी चाहिये तो यह भी एक पापही का विचार है ॥ ० ॥ इसके उपरालू विरले ऐसे भी वचन हैं कि (हसितजू भितास्फोटनानिनाकस्मात्कुर्यात्—तथा—नोदन्वतोऽभिसिन्नायान्नचश्मप्रव्रादिकर्तयेत् अन्तर्वत्न्याःपतिःकुर्वन्नप्रजाभवतिधुःस) इत्यादी प्रायश्चित्तनोपदिष्टं तत्रापिदेशाद्यपेक्षया प्रायश्चित्तकल्प्यं=अर्थात्—अकस्मात्ही निरर्थक हसना या जंभाना ऐंडाना ताल ठोकना आदि आकारों को न करै यहनियेध कियागया है—तथा—गर्भवती नारी का पति समुद्रके जलमें न स्नान करै न दाढ़ी मछ आदि कटावै क्योंकि ऐसा करने वाले के सन्तान पैदा नहीं होती है यह निश्चय जानों) इत्यादि और भी अनेक ऐसे वचन हैं कि जिनमें विरले आचरणों को नियेध या उनका दोष भी दर्शाया गया है परन्तु प्रायश्चित्त कुछभी नहीं कहा है कदाचित् इन्हीं दोषों का प्रायश्चित्त कल्पित करना परै तहांभी देश काल आदि का विचार जैसा मूल श्लोक में कहिचुके सो सब करना चाहिये ॥ ० ॥ इस पर वादी पुरुष तर्कना खडी करता है कि पाप रूपी निमित्त मात्र कहीं भी कोई ऐसा नहीं दिखाई देता है जिसका प्रायश्चित्त न कहा गया हो क्योंकि यदि कदाचित् किसी पापका प्रायश्चित्त लिखने से रहिभी गयाहो तिसका भी प्रायश्चित्त आगे ३०६ तीन सौ छठे मूल श्लोक से योगीश्वर आपही कहा चाहते हैं और गौतम ने भी (गतान्ग्रेवानादेशैर्विकल्पेनक्रियेरन्नित्ये काहादयःप्रतिपादिताः) एक दिवस आदिके व्रतरूपी प्रायश्चित्त दर्शाये कर पीछेसे कहि दिया है कि इन्हीं प्रायश्चित्तों को विकल्प से उन पापों परभी करै कि जिनपर कोई प्रायश्चित्त न कहागया हो—इसका समाधान क्रियाजाता है कि यह तर्कना तुम्हारी सची है और ३०६ मूल श्लोक आदि में उपदेशभी सानान्य भाव क्रिया जावैगा सोभी होउ उससे कुछ विरोध यहां नहीं है क्योंकि यहां मूल श्लोक में सर्व देशकाल आदि की अपेक्षा पर इसवात की कल्पना का अवसर दीक दीक है • और तुम्हारी तर्कना पर तर्कना सेही यह उत्तर है कि अभी ऊपर जो हमने जंभाने आदि बातोंपर कल्पना करना कहिचुके जो वह नहीं कही जानी तो क्या ३०६ मूलश्लोक वाली आज्ञा से काम यहां चल सका क्योंकि वहांपर जो १०० प्राणायाम करने कहेंगे सो हसित आदि छोटे छोटे दोषों पर सर्व्व इतना बड़ा प्रायश्चित्त अयुक्त है तिससे यहां की कल्पना से यह तात्पर्य है कि उन प्राणायामों को उपपाप आदि छोटे दर्जा के पापों से दोष लगाने वाले पर पूरा नैकरा न आरुह करै अर्थात् जैसा पाप हो तैसीही

प्राणायामों की संख्या थोड़ी या बहुत सौके भीतरही कल्पित करें अथवा जिस दोषी को निर्गुणी होने आदि से प्राणायाम करने की योग्यता या सामर्थ्य न हो तिसके लिये अपने बुद्धिके विचारसे कोई और प्रायश्चित्त सोचें कि जिसको वह करसके ॥ ० ॥ वादी पुरुष फिरभी एक प्रश्न खड़ी करताहै • क्योंजी पापका छोटापन कैसे जानाजाय जिसके द्वारा प्रायश्चित्तमें कसीकरें या कुछ और कल्पनाकरें • इसमें यह उत्तर न देना चाहिये कि प्रायश्चित्त के छोटापन से पाप का छोटापन जानाजाता है क्योंकि मेरा केवल उन्हीं पापों का यह प्रश्न है जिनके लिये कुछ प्रायश्चित्त न कहागया हो — उत्तर • यह प्रश्न तुम्हारा सत्य है परन्तु ऐसे तुच्छ पापों का छोटापन या बड़ापन जानना स्वतः सुगमहोता है क्योंकि कुछ तो उनकेअर्थवाद की चर्चा कहिने सुनने मात्र सेही बोध होजाता है फिर यह भेद देखाजाता है कि उसने जानि ब्रह्मि के यह दोष किया यद्वा • बिनाजानेकिसी दोषा आदि से होगया—इसके सिवाय दंड के छोटापन बड़ापन सेभी दोष का छोटापन बड़ापन समुभ्ता जासक्ता है, उसीके अनुसार प्रायश्चित्त का छोटापन बड़ापन कल्पित होसक्ताहै— इसका दृष्टांत देखो ७४ चौहत्तरि परिच्छेद में ०६१२६२१२६३ इन्हीं तीनप्रलोकों को अधिकोक्तों सहित विचारों कि उनमें ब्राह्मणा को ब्राह्मणा मात्र कोई डराडा उगावै या लगावै या अधिकचोट लगावै इत्यादि भेदों के अनुसार प्राजापत्यआदि छोटे बड़े प्रायश्चित्त कायस किये गये केवल सजाती सवर्गी के दोषपर दशायिगये सो वह एक नसूना है • कदाचित्त बेही दोष सेसे ढंगसे उत्पन्न होयँ कि ऊंचे वर्ग वाला नीचे वर्गको डराडाआदि उगावै तब उसके दराडकीन्यूनताके अनुसार उन्हीं प्रायश्चित्तों में न्यूनता कल्पित करनी होगी अथवा नीचे वर्ग वाला ऊंचे वर्ग को दंडाआदि उगावै तहाँ उसके दराडकी बढवारी अनुसार उन्ही प्रायश्चित्तों में वृद्धि कल्पित करनी होगी • दराडके अनुसार जो विचार करना कहा गया सो व्यवहार मर्यादा परिपारी में दंडविधान के स्थल पर जहाँ (प्रतिलोन्यापवादेयु द्विगुणास्त्रिगुणादसः) यही मूल श्लोक मिले तहाँ इसकी अधिकोक्ति पर्यन्त व्याख्या देखो तब यह बात लक्ष्ममें आवैगी क्योकि आचार मर्यादा १ व्यवहार मर्यादा २ प्रायश्चित्त मर्यादा ३ ये तीनों कांड एकही वर्ष शास्त्र के तीनि अंग हैं सो तीनों यद्यपि जुदे जुदे रक्खे गये हैं परन्तु तीनों का संबन्ध परस्पर सबका सब से मिला हुआ सकही तात्पर्य है ॥ ०६४ ॥

यहां तक सर्वया पापी पुरुषों के प्रायश्चित्त वर्णान किये गये परन्तु इसमें यह

गंक्राहे कि जो पापी अपने उद्धतपनेसे नकरना चाहै तब क्या करना चाहिये तिसका उपाय अगले परिच्छेदमें दर्शावेंगे और उसका भी कि जिसने प्रायश्चित्त पूरा किया ॥

अथास्वीकृतप्रायश्चित्तपतितस्यपरित्यागकरणेस्वीकृत प्रायश्चित्तस्यसत्कारकरणेचायं परिच्छेदः षट्

सप्रतितमः (७६)

—*—

इस परिच्छेद में दो विधी जानी जायँगी कि जे कोई पतित पापी लोग प्रायश्चित्त करना नहीं चाहें तिनके भाई बन्धु इकट्ठे होकर इस रीतिसे जाति बाहर करें—दूसरे जो प्रायश्चित्त को स्वीकार करिके परा करिआवैं तिनको इस रीतिसे फिर जाति में मिलावैं• तिसमेंभी स्त्रियोंके निमित्त कोई जुदा प्रकार कहा जायगा• और विरलों की छूटभी दर्शाई जायगी कि असुकामुकों से प्रायश्चित्त करि आने पर भी मेल मिलाप सत्कार आदि व्यवहार न करना चाहिये ॥

(दासीघटविधिः)

दासीकुंभंवाहिर्यामान्निनयेरन्स्ववांधवाः । पतितस्यवाहिः कुर्युः सर्वकार्येषु चैव तम् २९५

अर्थः—दासी कुम्भको ग्रामसे बाहर पतितके स्वकीय वांधव लेजावैं तहां उसको सर्वकामोंसे बाहिरा करें=अर्थात्—पतितके जे कोई भाई बंधुआदि जातिसंबंधी हों सो सब इकट्ठे होकर एक दासी को दूत बनाकर प्रथम उसीपतितके पास खबर भेजें कि प्रायश्चित्त न करनेके हेतुसे आज ऐसा प्रबन्ध होता है (यदि वह दासीसे इस बातके समाचार सुनिकरभी अधीनके प्रायश्चित्तका स्वीकार न करै तो) (फिरउसी दासी के हाथ से भरवाये जलका भरा इन्धु माटी का घडा उसी दासी के मूड़पर धराकर उसे आगे लेकर सर्व भाई बंधु उसके पीछे पीछे साथ जाकर बस्तीसे बाहर किसी विख्यात तीर्थ आदि के स्थलपर धरिके लुढ़कवावैं अर्थात् त्यागरूपमेंके कवावैं (यही दासी कुम्भ कहाता है ॥ २९५ ॥

२९५ अधिकोक्तिः=दासी घटको त्यागनेकेसमय उसी जीवतेहुये पतितके नामसे भरेहुये प्रेतोकीतरह जलदान कियाजाताहै और चतुर्थी नवमीआदि रिक्ता तिथियों

में यह कास करना कहा है=तदाह मनुः=पतितस्योदकंकार्यं सपिंडैर्वांधवैः सह निन्दितेऽहनि सायाह्ने ज्ञात्यृत्विजगुरुसन्निधौ=अर्थात्—निन्दित खोंटेवार खोंटीतिथिके रोज संध्या के समीपी कालमें दिनका पाँचवाँ भाग वर्तमान होनेपर समस्त जाती लोग जिनसे भाजी बाइने का प्यौहार हो तिनको इकट्ठे करिके उनके सन्मुख और गुरु पुरोहित ऋत्विजआदिके सन्मुख पतितके सपिंडलोग उसके बांधवोंको साथलेकर पतितके नामका जलदान करें यह मनुने कहा=और यहभी मनुने कहा है कि=दासी घटसंपांपर्याप्यस्येत्प्रेतवत्पदा अहोरात्र सुपासीरन्न शौचवांधवैः सह=अर्थात्—जल के भरे घट को दासीअपने पैर से उलटा करे जैसे मरेप्रेतकेलिये किया जाता है उसीतरह लुठकावे और सब संबंधीजन बांधवोंसहित एकदिन रातिभर इकट्ठेरहकर ब्रतराखें और सूतक सारें=मिताक्षराकार कहिते हैं कि घट का फेंकवाना जलदान पिंडदान आदि प्रेत कर्म कराने के बांदि चाहिये क्योंकि आगे गौतम के कहे विधान में यही देखि परता है ॥ ० ॥ यथा गौतमः= तस्य विद्यायोनिशुसुसंबन्धाश्च सन्निपात्य सर्वा गयुदकादीनि प्रेतकर्माणि कुर्युः पात्रं चास्य विपर्यस्येयुः दासः कर्म करो वा पात्रमानीय दासीघटान्परयित्वा दक्षिणाभिमुखो यदा विपर्यस्येत् इदं अमुकमनुदकं करोमीति नाम ग्रहांतं सर्वे न्वालभेरज्ज प्राचीनावीतिनो मुक्तशिखा विद्यायुखो यो निसंबन्धाश्च वीक्ष्येरन्न तोऽपः उपस्पृश्य ग्रामं प्रविशेयुरिति गौतमः=अर्थात्—उस पतित के विद्या संबन्धी लोग सहपाठी या पढ़ने पढ़ानेवाले और यो निसंबन्धी लोग जिनकी लडाकियां व्याहिके उसके घर आई हों और गुरु पुरोहित आदि जो उसके कहातेहों तिनहें इकट्ठे करिके उसके सपिंड लोग उदक दान आदि प्रेतकर्म जो कुछ दाह के दिन एकही रोजहोते हों सो सब करें और इसके नामका पात्र अर्थात् दासी घटभी उलटवावें तिसका जुदा यह विधान है कि उन्हीं सपिण्डों का दास रहलुआ या उसके न होने पर कोई और ही कर्म कर मजदूर मट्टी का घडा लाइकर उसमें दासी घट नामसे जल भरिके वही दास या दासी दक्षिणा दिशा को मुह किये उसी दासी घट को जब उलटा करें तभी सपिंड और बांधव लोग पापी का नाम लेकर ऐसा मन्त्र बोलें कि (अमुकमनुदकं करोमि) फलाने को आज से अनुदक भारी में करता हूँ अर्थात् किसी से जल दान पाने का भारी वह नहीं रहा न किसी अपने लुटुम्बी को जल दान करनेमें शामिल होसकैगा• इस मंत्र को बोलते समय ये सब लोग जनेऊ को दाहिने कांधे पर बर्दलि के और चोरी की शिखा को खोलि के अपसव्य होकर मंत्र बोलें फिर पीछे से सब लोग आपस में परस्पर यथा क्रम से मिलें भेटें और इसी मंत्र का बोध

सबको कराते जावें यह सब काम होते हुये पापी के विद्या गुरु और योनि संबंधी आदि सब नाते दार लोग देखें तिसके वादि जलमें स्नान करिके अपने ग्राम बसती को चले जावें यह गौतम ने कहा ॥ ० ॥ परन्तु यह त्याग रूपी कर्म कराना उसी दशा में आवश्यक है कि जब बंधुओं से प्रेरणा किया हुआ भी प्रायश्चित्त न करै अर्थात् बन्धु जनों को यह उचित है कि पहिले वारम्बार प्रायश्चित्त कराने की प्रेरणा ताकीद उसपर करै=यदाह शंखः=तस्यगुरुवांधवान् राजसमक्षंदोयानभित्त्या प्यानुभाव्य पुनःपुनराचारंलभस्वेतिसयद्येवमप्यनवस्थितमतिःस्यात् ततोऽस्यपात्रंवि पर्यस्येदिति=अर्थात्—उस पापी के गुरुजन और बन्धुओं को राज अदालत के सन्मुख पापीके दोषों को अच्छीतरह कहि समुझाइके कि अबहूं प्रायश्चित्त करिके फिर अच्छे आचार को पकड़ौ—ऐसा कहिले पर भी यदि वह अपनी समुझ को ठिकाने पर न लावै तब जाकर उसके नाम का दासीघट उलटा करवावै (यह शंख जीने कहा=दासी घट उलटा होचुकने के वादि ये सभी बांधव आदि उक्त पापी को सब कामों में बोलना चालना पास बैठारना आदि सत्कारों से बाहर करै=तदाह मनुः—निवर्तेरंतरतस्तस्मात्संभायणा सहासने दाय्याद्यस्यप्रदानंच यावाचैवहिलौकि को=अर्थात्—दासी घट की विधि पूरी होजाने से अनन्तर उस पापीमें बोल चाल और पास बैठारना और पैहक धनका भागदेना या भाजी वाइने का व्यौहार देना आदि बातें निवर्तित होजावें और भी जो कुछ संसारी व्यवहार देन लेन आदिहोते हैं सो भी बन्द किये जायँ= इसपर भी यदि कोई उसके साथ स्नेह आदि कारणाों से बोलै तिसको प्रायश्चित्त कराया जाय—यथा (अत ऊर्ध्वं तेनसंभाष्य तियेदेक राक्षजपन्माविधीमज्ञानपूर्व ज्ञानपूर्वचेत्त्रिराज्ञिति) अर्थात्—त्याग होजानेके उपरांत उसके साथ कोई बिना जाने बात करै सो एक दिन राति भर गायत्री जप करते हुये वित्तादे यह उलका प्रायश्चित्त है पर जितने उसका त्याग होना जानते हुये बात चीत करी हो सो तीन दिन राति भर गायत्री जप करते हुये एक ठिकाने पर बैठा रहे ॥ २६५ ॥

(अथकृतप्रायश्चित्तस्यप्रत्यावर्तनविधिः)

यह बात दाहा चाहते हैं कि बंधुओंके त्याग देनेसे जिसको पछतावेसे वैराग्य आया तिससे त्याग होजानेके वादि जितने प्रायश्चित्त किया अथवा दासीघट उलटा होनेके बिनाही बंधुओंके समझानेसे प्रायश्चित्त किया अथवा किसीकी प्रेरणा

बिना आपही जिसने प्रायश्चित्त किया तिनकी साधना पूरी होने बादि क्या करना चाहिये तिसको आगे पांचप्रलोकों में आपही योगीश्वर वर्णन करेंगे ॥

(नूतनघटविधिःनिवर्तितप्रायश्चित्तस्यसत्कारः)

चरितव्रतआयातेनिनयेरन्नवंधटम् । जुगुप्सेरन्नवाऽप्येनसंविशेयुश्चसर्वशः २९६

अर्थः—प्रायश्चित्त रूपी व्रतसाधन करिके लौटिआने पर सपिंड आदि बंधूलोग नवीन घटभरिके लेजावें और इसपुस्तककी किसीतरहसे कुछ निन्दा न करें औरसब तरहसे उसमें अपनाहेलमेलभीकरें ॥ ध्यानकरो यहाँपरनवीन घटवतानेसे यहतात्पर्य दर्शाया है कि पूर्वोक्त दासीघट के विधानमें नवीनकी खसूसियत नहूँढनी ॥२९६॥

२९६ अधिकोक्तिः=घटके साथ सत्कारसे घर ले आना कहा • इसमें दो भेद हैं कि आगे योगीश्वरके ३०० तीनसौ मूलप्रलोकमें (घटेऽपवर्जिते) इसपदसे घटका त्यागना भी प्रतीत होताहै और मनुके ग्यारहवें अध्याय में १८६ । १८७ इनदोनों श्लोकसे भी त्यागना प्रतीत होता है फिर इन्हीं में अस धातुके अर्थ भेद से घट का साथ लेआनाभी सिद्ध होताहै तथैव आगे गौतमके विधानमें भी साथ लेआना सिद्ध होताहै • इसी प्रकार कहीं लोकमें समक्ष भी यह देखा गया है कि बंधूलोग जलाशयसे घट भरिके उसके आगे आगे साथ लेकर घरको जातेहैं • तिससे निश्चितहुआ कि दोनों भेद ठीक ठीकहैं जहां जैसा सम्भव होय तहां तैसाही वर्ताव कियाजाय • और भी आचार मर्यादा परिपाटीमें सातवां मूलप्रलोक तथा उसीका अभिप्रायार्थ देखो कि दो रीतों में विकल्प से कोई एक रीति अपनी इच्छा से अंगीकार करे ये सभी लक्षणा भेद आगे समक्षिलेना ॥ ० ॥ पवित्र जलाशयमें स्नान कराइके घट के साथ घर को ले आना चाहिये=यथाह मनुः=प्रायश्चित्तेतुचरितेपर्गाकुंभसपांनवस तेनैवसार्धं प्रास्येयुःत्वात्वापुशयेजलाशये १८६ ॥ सत्कम्पुतंघटंप्रास्यप्रविश्यभवन्नस्वकन्न सर्वात्ताज्ञातिकार्याशिश्यापूर्वसजाचरेह १८७=अर्थात्—प्रायश्चित्त करिके आने पर उसके लपिंड सजानोदक आदि बंधूलोग उसी के साथ जाकर पुनीत जलाशय में सभी स्नान करिके जलके भरे नवीन घट को (प्रास्येयुः) जल में फेंके या ग्रहणा करिके साथ लेजावें ये दोनों अर्थ ठीकहैं १८६ ॥ वह प्रायश्चित्ती पुस्त्य उनी घट को जलाशयमें (प्रास्य) फेंकिके या जल ग्रहणा करिके अग्ने घर को जाइ प्रवेग करिके जातिहं दोसब कार्य करनेलगे जैसे पहिले किया करता हो १८७ ॥ यद्यपि अर्थ दोनों ठीकहैं तथापि जल भरिके साथ लेजाना अर्थ उत्तम है क्योंकि गौतम ने

सबको कराते जावें यह सब काम होते हुये पापी के विद्या गुरु और योनि संबंधी आदि सब नाते दार लोग देखें तिसके बादि जलमें स्नान करिके अपने ग्राम बसती को चले जावें यह गौतम ने कहा ॥ ० ॥ परन्तु यह त्याग रूपी कर्म कराना उसी दशा में आवश्यक है कि जब बंधुओं से प्रेरणा किया हुआ भी प्रायश्चित्त न करे अर्थात् बन्धु जनों को यह उचित है कि पहिले बारम्बार प्रायश्चित्त कराने की प्रेरणा ताकीद उसपर करे—यदाह शंखः—तस्यगुरुवांधवाचराजसमक्षंदोयानभिरव्याप्यानुभाव्य पुनःपुनराचारंलभस्वेतिसद्यद्येवमप्यनवस्थितमतिःस्यात् ततोऽस्यपात्रंविपर्यस्येदिति—अर्थात्—उस पापी के गुरुजन और बन्धुओं को राज अदालत के सम्मुख पापीके दोषों को अच्छीतरह कहि समुझाइके कि अबहूं प्रायश्चित्त करिके फिर अच्छे आचार को पकड़ौ— ऐसा कहिने पर भी यदि वह अपनी समुझ को ठिकाने पर न लावै तब जाकर उसके नाम का दासीघट उलटा करवावै (यह शंख जीने कहा—दासी घट उलटा होचुकने के बादि ये सभी बांधव आदि उक्त पापी को सब कामों में बोलना चलना पास बैठारना आदि सत्कारों से बाहर करे—तदाह मनुः—निवर्तेरंस्ततस्तस्मात्संभाषणा सहासने दाय्याद्यस्यप्रदानंश्च यात्राचैवहिलौकिकी—अर्थात्— दासी घट की विधि पूरी होजाने से अनन्तर उस पापीमें बोल चल और पास बैठारना और पैदक धनका भागदेना या भाजी वाइने का व्यौहार देना आदि बातें निवर्तित होजावें और भी जो कुछ संसारी व्यवहार देन लेन आदिहोते हैं सो भी वन्द किये जायँ— इसपर भी यदि कोई उसके साथ स्नेह आदि कारणों से बोलै तिसको प्रायश्चित्त कराया जाय—यथा (अत ऊर्ध्वं तेनसंभाष्य तिस्येदेक राधंजपन्साविधीमज्ञानपूर्वं ज्ञानपूर्वंचेत्त्रिरात्रासिति) अर्थात्—त्याग होजानेके उपरांत उसके साथ कोई बिना जाने बात करे सो एक दिन राति भर गायत्री जप करते हुये वित्तावै यह उसका प्रायश्चित्त है पर जिसने उसका त्याग होना जानते हुये बात चीत करी हो सो तीन दिन राति भर गायत्री जप करते हुये एक ठिकाने पर बैठा रहे ॥ २६५ ॥

(अथकृतप्रायश्चित्तस्यप्रत्यावर्तनविधिः)

यह बात कहा चाहते हैं कि बंधुओंके त्याग देनेसे जिसको पछतावेसे वैराग्य आया तिससे त्याग होजानेके बादि जिसने प्रायश्चित्त किया अथवा दासीघट उलटा होनेके बिनाही बंधुओंके समझानेसे प्रायश्चित्त किया अथवा किसीकी प्रेरणा

बिना आपही जिसने प्रायश्चित्त किया तिनकी साधना पूरी होने बादि क्या करना चाहिये तिसको आगे पांचप्रलोकों में आपही योगीश्वर वर्णन करेंगे ॥

(नूतनघटविधिःनिवर्तितप्रायश्चित्तस्यसत्कारः)

चरितव्रतआयातेनिनयेरन्नबंधटम् । जुगुप्सेरन्नवाऽप्येनसंविशेयुश्चसर्वशः २९६

अर्थः—प्रायश्चित्त रूपी व्रतसाधन करिके लौटिआने पर सपिंड आदि बंधूलोग नवीन घटभरिके लेजावें और इसपुस्तककी किसीतरहसे कुछ निन्दा न करें औरसब तरहसे उसमें अपनाहेलमेलभीकरें ॥ ध्यानकरो यहाँपरनवीन घटबतानेसे यहतात्पर्य दर्शाया है कि पूर्वोक्त दासीघट के विधानमें नवीनकी खसूसियत नहूँठनी ॥२९६॥

२९६ अधिकोक्तिः=घटके साथ सत्कारसे घर ले आना कहा • इसमें दो भेद हैं कि आगे योगीश्वरके ३०० तीनसौ मूलप्रलोकमें (घटेऽपवर्जिते) इसपदसे घटका त्यागना भी प्रतीत होताहै और मनुके ग्यारहवें अध्याय में १८६ । १८७ इनदोनों श्लोकसे भी त्यागना प्रतीत होता है फिर इन्हीं में अस धातुके अर्थ भेद से घट का साथ लेआनाभी सिद्ध होताहै तथैव आगे गौतमके विधानमें भी साथ लेआना सिद्ध होताहै • इसी प्रकार कहीं लोकमें समक्ष भी यह देखा गया है कि बंधूलोग जलाशयसे घट भरिके उसके आगे आगे साथ लेकर घरको जातेहैं • तिससे निश्चितहुआ कि दोनों भेद ठीक ठीकहैं जहां जैसा सम्भव होय तहां तैसाही वर्ताव कियाजाय • और भी आचार मर्यादा परिपाटीमें सातवां मूलप्रलोक तथा उसीका अभिप्रायार्थ देखो कि दो रीतों में विकल्प से कोई एक रीति अपनी इच्छा से अंगीकार करे ये सभी लक्षणा भेद आगे समक्षिलेना ॥ ० ॥ पवित्र जलाशयमें स्नान कराइके घट के साथ घर को ले आना चाहिये=यथाह मनुः=प्रायश्चित्तेतुचरितेपर्याकुंभसपांनवस तेनैवसार्द्धं प्रास्येयुःस्नात्वापुरायेजलाशये १८६ ॥ सत्त्वप्सुतंघटंप्रास्यप्रविश्यभवनंस्वकञ्च सर्वातिज्ञातिकार्यासिद्यथापूर्वसजाचरेत् १८७=अर्थात्—प्रायश्चित्त करिके आने पर उसके सपिंड सदानोदक आदि बंधूलोग उसी के साथ जाकर पुनीत जलाशय में सभी स्नान करिके जलके भरे नवीन घट को (प्रास्येयुः) जल में फेंकें या ग्रहणा करिके साथ लेजावें ये दोनों अर्थ ठीकहैं १८६ ॥ वह प्रायश्चित्ती पुस्त्य उनी घट को जलाशयमें (प्रास्य) फेंकिके या जल ग्रहणा करिके अग्ने घर को जाइ प्रवेश करिके जातिहबंधोसब कार्य करनेलगे जैसे पहिले किया करता हो १८७ ॥ यद्यपि अर्थ दोनों ठीकहैं तथापि जल भरिके साथ लेजाना अर्थ उत्तम है क्योंकि गौतम ने

इस बातपर एक जुदा विधान कल्पित किया है तिसमें भी यही अर्थ देखि परता है सो सब आगे देखौ फिर इसकेमध्ये तीनसौ की अधिकोक्तिभी देखना ॥ ० ॥ अत्राह गौतमः=यस्तु प्रायश्चित्तेन शुद्धो तस्मिन्कृमिभेसात्कृमि मयंपात्रंपुरायतमात्तद्दत्तपुर यित्वा स्रवन्तीभ्योवा ततस्नसप उपस्पृशेयुरथास्मैतत्पात्रंदद्युस्तत्संप्रतिगृह्यते (शां ताद्यौःशान्तापृथिवीशान्ताशिवमन्तरिक्षंयोरोचनस्तमिह गृह्णाामीत्येतैर्यजुर्भिःपाप मानीभिस्तरत्समन्दीभिः कूप्मांडैश्चाज्यं जुहुयात् हिरण्यदद्यात् गांचाचार्याय) य स्यप्रारणांतिकंप्रायश्चित्तं समृतःशुद्धोत्त • एतदेवशान्त्युदकसर्वेषूपपातकेष्वपि • तत स्नंक्षतप्रायश्चित्तं तेनैवकुत्सयेद्युःसर्वकार्येषुक्रयविक्रयादियु तेनसहसंव्यवहरेयुः=अ- र्थात्—यह सब गौतमने आपही कहा है कि—जो कोई प्रायश्चित्तसे शुद्धहोजाय तिस पर कृमिबिधि करनेमें सुवर्ण का बना घट होय अथवा चाँदी आदि माटी पर्यन्त किसी औरही धातुका पात्रहोय तौभी उसमें कुछ सोना डार देना चाहिये तिसको पवित्र तालाव झराड या नदियों से भरिके उस प्रायश्चित्त की आगे करिके साथ साथ लेजावै किसी जलाशय पर अर्थात् अभी पहिले घरके भीतर वह न घुसै उसी जलाशयमें इसको स्नान करवावै इसके अनन्तर वही जलका भरापात्र उसके हाथों में समर्पण करै तिसको दोनों हाथसे अच्छे थाँभिकर जपकरै अर्थात् यदि आपही वेदमन्त्रों के जपनेमें समर्थहो तौ आपही जपै अन्यथा किसी वेदपाठीको अपनेसाथ प्रतिनिधि बनाकर उसके मुखसे जपकरावै और घोका होमकरै तिसके लिये (शा न्ताद्यौःशान्तापृथिवी आदि ऋचाओंके नाम चिह्न भी देदियेहैं कि इत्यादि यजुर्वेद की पावमानी और तरत्समन्दी ऋचाओंसे जपकरै तथा कूप्मांड नामके वेदमन्त्रोंसे घृतका होम करै और सोना चाँदी तथा गाय भी आचार्य को दान करै कि जिसने यही जप होम करवायाहो) किन्तु जिसका प्राणान्तिक प्रायश्चित्त टहिराहो जैसा ब्रह्महत्या आदिके प्रकरणोंमें कहाथा कि अग्निमें जलिजाना आदि प्रायश्चित्तहो सो मरजानेही शुद्धहोता यह घटकी विधि उसके लिये नहीं है • यही शान्ति का उदक रूपी घट विधान सब तरह के उपपातकों में भी जानना • तिसके अनन्तर इस प्रायश्चित्त की पुस्त्यको वे वन्धजन किसी प्रकारसेभी नकोसै अर्थात् पहिलेदोय वावत कोइसी निन्दा उसकी नकरै और सब कार्यं तथा क्रय विक्रय आदि सौदा- गरी के व्यवहारोंमें भी उसके साथ अच्छी रीतिसे वर्तावा करै कि जो कुछ पहिले छुटिगायेये यह गौतम ने कहा (इसका विधान थोडासा और बाकी रहा सो आगे ३०० के मूलश्लोकमें देखौ ॥ २६६ ॥

इस परिच्छेद में यहां तक २६५ । २६६ दोसौ पंचानवे छानवे के दोनों मूल श्लोकसे जो कुछ व्यवस्था पतित पुरुषके निमित्तपर कही गई सो सब नीचेके श्लोक से पतिता स्त्रियोंके निमित्त पर भी अतिदेश उतारा जायगा ॥

(स्त्रीष्वप्यतिदेशः)

पतितानामेषएवविधिःस्त्रीणांप्रकीर्तितः † वासोगृहांतिकंदेयमन्नंवासःसरक्षणम् २९७

अर्थः—पतिता स्त्रियोंकी भी यही विधि कही गई—अर्थात्—जैसा दोसौ पंचानवे २६५ श्लोकसे पतित पुरुषोंका दासीघट उलटा करना या जलदान पिराडदान करना आदि कहा गया वही सब स्त्रियोंकाभी ससम्भिलेना और जैसा दोसौछानवे २६६ श्लोकसे प्रायश्चित्तकिये पुरुषका सत्कार करना कहा गया वही सब स्त्रियोंकाभी जानना (यह अतिदेश धर्मका स्वरूपहै) तथापि पुरुषोंकी अपेक्षा यहां स्त्रियोंके निमित्तपर थोड़ीसी विशेषमर्यादा एक जुदीहै सो उत्तरार्धमें देखौ † घरकेष्वनीपवासदेना तथा अन्नवस्त्रभी रक्षासहित = अर्थात्—यही इतना नियम विशेषहै कि जो कोई स्त्रियां अत्यंत पतित ठहिरें और प्रायश्चित्त को न करें तिनका दासीघट विधान आदि कर्म होजाने के वादि भी कहीं बाहर न जाने देवें परन्तु घर में भी घुसना उनका नियिद्ध है तिससे घरके समीप ही किसी फूस पत्ते आदि की बनाई भोपडीमें निवास करावें और प्राणावने रहिने योग्य मोटा अन्न और मैले पुराने वस्त्रदेते रहिकर ऐसी चौकसाई से राखें जो किसी पुरुषका समागम उसमें न होसके (इसअत्रोक्त नियम से यह बात भी आपही सिद्ध होती है कि जिन प्रायश्चित्तों की साधनापुरुषों को जंगल या वन विदेश में जाकर करनी कही थी • कदाचित्त वेही प्रायश्चित्त कहीं पर्देदार स्त्रियों पर आरूढ होयें तौभी उनका बाहर जाना उचित न होगा किन्तु इसी रीति से घर के समीप जुदे स्थान में रहिकर व्रतादिक साधन करैगी या घस पुरुषों की रक्षा साथ तीर्थ आदि के स्थान पर कि जैसा कुछ विवेकी विद्वानों के विचार से ठहिरै • बल्कि ऐसे ही अटपटे विचारों के अर्थ में पठत्तरि ७५ का परिच्छेद सबसे जुदा रक्खा गया है कि सब तरह की देह टण्डे वाली बातोंकी गुंजायश उसमें सोची जासक्ती है ॥ २६७ ॥

यहां यह सन्देह खडा होता है कि वे अत्यन्त पतिता स्त्रियां कौन हैं जिनके लिये यह जुदी विधि परित्याग मध्ये कही गई क्योंकि पतित अनेक भांति की होती हैं तिनमें इनकी क्या पहिचान होगी सो अगिले मूल श्लोक से दर्शाते हैं ॥

(स्त्रीणांअतिपातित्यचिह्नानि)

नीचाभिगमनंगर्भपातनंभर्तृहिंसनम् । विशेषपतनीयानिस्त्रीणामेतान्यपिध्रुवम् २९८

अर्थः—नीच से संगम• गर्भ का गिराना• भर्ता का वध करना• स्त्रियोंको ये भी तीन कर्म निश्चय पूर्वक विशेष पातित्य का हेतु हैं=अर्थात्—जो जो महा पातक आदि पुरुषों के पातित्य का हेतु कहे गयेये तिन कर्मों से स्त्रियां भी पतित होती हैं परन्तु स्त्रियों के अत्रोक्त तीन कर्म अधिक हैं जिनसे अत्यन्त पतित होजातीहै• तिनका यह व्यौरा है कि एक जो हीन वर्गा आदि नीची जाति के पुरुष में गमन करै• दूसरा कर्म जो अपना या विराना किसी स्त्रीका गर्भ उसके कहिने या न कहिने आदि किसी तरह से गिराती फिरै और यह गर्भ चाहै ब्राह्मणी का यद्वा और ही किसी वर्गा की स्त्री का या अपनेही पेट का गिराया हो तौ हर सूरत में पतित होगी• तीसरा कर्म भर्ता का वध करना चाहें विष देकर या औरही किसी प्रकारसे मारना और यहां पर भर्ता शब्द से वह पुरुष जानना जो स्त्रीका भरण पालनकर्ता हो किन्तु चाहें उसका सजाती विवाहित या विजाती विवाहित या धरूक आदि किसी प्रकार का पति हो तिसका प्राणघात करना या करवाना भी भर्तृहिंसन कर्म कहाता है तिस कर्म के करने वाली पतिघी कहाती है ॥ २९८ ॥

२९८ अधिकोक्तिः—पुरुषों के पतित हो जाने मध्ये इतने कारणा प्रसिद्ध हैं १ महापातक २ अतिपातक ३ पातक ४ अनुपातक ये चार तौ एक ही एक वार होने से पतित बनाइ देते हैं पाँचवें ५ उपपातक कई बार होजाने पर पतित बनातेहैं ऐसे ही इनसे छोटे छूटे दर्जे वाले पाप इच्छा सहित अनेक वार होने सेवेभी कर्ता पुरुष को पतित बनाते हैं येही सब स्त्रियों को भी पतित करते हैं (यह मूल प्रलोक में अपि शब्द से ध्वन्यर्थ लिया गया) परन्तु स्त्रियोंको तीन पातक इन सबसे उपरालू भी होतेहैं=शृङ्गौनकोप्याह=पुरुषस्ययानिपतन निशिहानिस्त्रीणांअपितान्प्रेव ब्राह्मणीहीनवर्गसेवायासधिकंपततीति=अर्थात्—ऊपर की बातको शौनकने भी दृढ कियाहै कि पतित होजानेके जितने कारणा पुरुषोंके लिये कहेगये वेही सबस्त्रियों को भी होतेहैं पंच ब्राह्मणी स्त्री यदि अपनेमे हीन वर्गोंकी सेवा सगति में पहुँचै सो अत्यन्तही पतित होतीहै=वाशयन्तु=श्रीशिक्षियाःपातकानिलोकेधर्मविदोविदुः भर्तृवधोभ्रू साहत्यास्त्रस्यगर्भस्यपातनम्=अर्थात्—भर्ता का वध• भ्रूण हत्या जो गौर स्त्रियोंका गर्भ गिरावै या कित्ती का छोटा बच्चा मार डारै• अपना गर्भ गिराना• ये

तीनमहापातक धर्मज्ञलोग स्त्रियोंके बतातेहैं (इसवचनका यहतात्पर्यनहींहै किइन तीनिहेउपरालूपातकस्त्रियोंकेनहींहैंक्योंकिउन्होंविशेषकाऔरभी वचनआगेदेखी) एतन्नेवद्विशिष्टः=चतस्रस्तुपरित्याज्याःशिष्यगाशुरुगाचयापतिष्ठीचविशेषे ऽजंगितोपगताचया—इतिचतसृणाक्षेपपरित्यागइत्युक्तंत्रतासांप्रायांश्चित्तमचिकीर्षतीनांमध्ये चतसृणाक्षेपशिष्यगादीनां चैलाक्षगृहवामांश्चिजीवनहेतुत्वाद्युच्छेदेनत्यागंकुर्यात् नान्यासांसित्यभिप्रायःअतश्चान्याजांपतितानां प्रायश्चित्तमकुर्वतीनामपिवासोगृहांति केदेयसित्यादिकंकर्तव्यमित्यवगम्यतेइतिसिताक्षरा=अर्थात्—वशिष्टने यह भी कहा है कि•ये चार स्त्रियां तौ अवश्यही त्यागिदने योग्य हैं—एक जो अपने भर्तिके शागिर्द विद्यार्थी सेवक नौकर आदिसे संगमकरे•दूसरी जो गुरुओंसे अर्थात् अपने या पतिके वाप चचा सासा फूफा आदि रिश्ते से बड़े बूढ़े गिनेजाते हों तिनमें किसी गुरुजनके साथ संगमकरे•तीसरी पतिष्ठी जो भर्तिके प्राणा विनाशै•चौथी जंगितोपगता जो अपनी जातिसे नीचीजातोंके पुरुषमें संगम करे•ये चार स्त्रियां विशेषकर जुदो कहीराईहै कि इनका त्यागही उचित होताहै—इस पर सिताक्षराकार कहितेहैं कि इन चारिहीका त्यागना कहा तिसका यह तात्पर्य है कि जहांतक सबतरहकी महापतिता होती हैं तिनमें जो कोईसी स्त्रियां प्रायश्चित्त करने पर उताह न होय तिनमेंसे केवल इन्ही चारोंका परित्याग इसप्रकारसे करना चाहिये कि रहिनेको जगहभी न देवै और अन्नवस्त्रभी न देवै किन्तु ग्रामसे बाहर छोडिआवै परन्तु इनसे उपरालू जो और ऐसी बाकी रहों जिन्होंने प्रायश्चित्त करना नहीं क्वृत किया तिनको इसढंगसे न छोडना चाहिये अर्थात् उनको उसरीतिसे रखना चाहिये जैसा ऊपर २६७ सूक्तश्लोक उत्तरार्ध के अर्थमें कहिचुके हैं कि दासीघट विधान क्रिया जानेके अनंतर उनको घरहीके समीप जुदी भोपडी में बसावै और मोटा भोटा अन्न वस्त्र भी देतारहै इत्यादि•यहतात्पर्य समझागया नितान्नराकारने यहकहा॥ २६८॥

अब आगले सूक्तश्लोक में उनमर्यादाका कुछ अपवाद भी योगीश्वर दर्शावैंगे जो २६६ श्लोकसे बरान हुई थी अर्थात् सत्कार की मर्यादा जो कुछ उममें कही थी वह सभी प्रायश्चित्ती पुत्र्योंपर नहीं सतकती किन्तु विरलोको छोडिकर समझती होगी यही उसमें अपवाद (छूट) का स्वरूप जानना ॥

(संविशेषुरित्यस्यापवादश्च)

अर्थः—शरणागत० बालक० स्त्री० के हिंसकों कृतत्र सहितों के प्रति व्रताचरणा क्रियेहुयोंकेभी इनकेप्रति न संवेशकरै=अर्थात्—शरणा आयेको मारनेमरवानेवाले० बालक बच्चेका बध करनेवाले० स्त्री मात्रका बधकरनेवाले० और कृतत्र परार्थाक्रिया उपकार मेटनेवाले सहित० ये सब पातक्री यद्यपि प्रायश्चित्त भी करि आये जिससे निर्दोष ठहर सक्तेहैं तथापि इनकेसाथ पास न संवेश करै (अर्थात् इनकेपास जाना आना बैठना उठना आदि या कोईसा व्यवहार इनके साथ रोपना आदि न करना चाहिये और अर्थ यह तात्पर्य है कि यद्यपि प्रायश्चित्त करिआनेसे शुद्धिसानी गई और इसी से खाने खवाने मिलने मिलाने आदि व्यवहार भी जरूरीमात्र करने परैगे तथापि इनका पूराविश्वास न करना चाहिये ॥ इसीलिये मूलश्लोक में (ननु संविशेत्) यह कहागया कि संशयक अच्छेप्रकार से प्रवेश उनमें न करै ॥ २६९ ॥

० ६९ अधिकोक्तिः—मिताक्षराकार इसअपवादरूपीवार्ता कोवाचनिकप्रतिषेधो नासदस्ते है=यथा=नसंव्यवहरेदितिवाचनिकोऽयंप्रतिषेधः किमिदं वचनं कुर्यान्न हि वचनस्यातिभारोस्ति अतश्च यद्यपि व्यभिचारिणी स्त्रीवधेऽपि इदमेव प्रायश्चित्तं तथापि वाचनिकोऽयं व्यवहारप्रतिषेधः=अर्थात्—उनकेसाथअच्छेव्यवहार न करै यहकहिना एक(वाचनिकनिषेधहै) वाचनिकउसे कहितेहैं जो किसीमर्यादाके अनुसार तो नहीं सिद्धहोता हो केवल मुखहीके वचनसे निषेधकियाजाय जैसा दोसीछान्ने२६९ मूल प्रलोकवाली मर्यादा से व्यवहार करना सिद्ध होही चुका तो भी यहाँ वचन मात्रसे प्रतिषेध कियागया तिससे (संव्यवहारकीमर्यादाहोते) वाचनिक प्रतिषेध इसका नाम टहिरा • तिसपर यहतर्क खडी होतीहै कि यह वचन क्या चोज है जिले कोई मानै कुछ इस वचनका बोध किसीपर नहींहै जिससे मानाजाय० इसीलिये समझा कर समाधान देतेहैं कि ऐसे समझो एक दृष्टान्तहै कि जैसा इसी मूलप्रलोक में स्त्री घाती पुरुषका विश्वास मने कियागया स्त्री वध भी दोभांतिकाहै कि एकने अपनी भार्या व्यभिचारिणी को लोकलज्जा से मारडारा और एकने निरपराध स्त्री को मारडारा जो व्यभिचारिणी नहीं थी केवल उसका भयसा डरने आदि कारणाँ से घातक्रिया इस दृष्टामें दोनों घाती पुरुष यदि प्रायश्चित्त करिके आवैं तब जिनने लोकलज्जासे बध कियाथा तिनके साथ संव्यवहार करना और उसको विश्वासपात्र जानना प्रत्यक्ष सूचित होताहै • दूसरेका विश्वास करना या उसके साथ संव्यवहार जोडना यह प्रत्यक्ष अनिष्ट है अर्थ से ऐसेही अपघातियोंके साथ संव्यवहार वेदा उठी आदिका वाचनिक निषेध है कुछ उनके लिये नहींहै जिन्होंने लोकलज्जा से

लाचार होकर स्त्रीका वध किया यद्वा किसी धोखे आदि देवयोगसे अपनी इच्छा बिना वध होगया जैसे किसी वाहन सवारीको लेजातेहुये मार्गमें कोई स्त्री दबिकर सरगई और आपही पापके भयसे प्रायश्चित्त करनेपर उतारू शीघ्रहुआ हो तो यह उसके हृदयसे घर्षितलक्षणा प्राया गया तिससे इसी एक दृष्टान्त के अनुसार बहुधा और भी दशाओंपर ध्यान सर्वदा देदेकर वाचनिक निवेदका वर्तवा करना होगा।। इसी दृष्टान्त से योगीश्वर के मूल श्लोकमें यह बातभी सन्निद्ध होतीहै कि दो प्रकार के स्त्री घातियों में जो कोई एक विद्यास के लायक समझा गया है तिसके लिये २६६ दोसौछात्रवे मूलश्लोक पूर्वार्ध की मर्यादा से शांतिघट का विधान करवाना आदि कुछ भी सने नहींहै करवाना चाहिये परन्तु दूसरी भाँति का स्त्री घाती बालघाती शरणागत घाती और कृतघ्न भी यदि प्रायश्चित्त करिआवें तब उनकेलिये शांति घटलेजाना आदि कुछ भी योग्य नहींहै तिससे यह २६६ श्लोकवाला अपवाद भी वाचनिक प्रतिषेध ठहिरायागया ॥ २६६ ॥

दोसौछात्रवे श्लोकवाले विधानका जो कर्म शेषरहा था सो नीचे अब लिखतेहैं।।

(पूर्वोक्तविधावपिविशेषः)

घटेऽपवर्जितेजातिमध्यस्थोयवसंगवाम् । प्रदद्यात्प्रथमंगोभिःसत्कृतस्यहिसत्क्रिया ३००

अर्थः—घटके अपवर्जित होनेपर जातिके बीच बैठा हुआ प्रथम गौओंको यवस प्रक्षर्य से देदे गौओंसे सत्कार किये कीही सत्क्रिया होय=अर्थात्—जिसका शांति कुम्भरूपी कर्म समाप्त होगया किन्तु उसी कृतघ्न के साथ प्रायश्चित्त पक्षय घरमें आगया वह अपने जाति बन्धुके समाज में बैठाहुआ सबसे पहिले यह कांसकरै कि गौओंके लिये घास अपने हाथसे छोड़े क्योंकि प्रथम गौओंसे सत्कार पाचुकरने परही जाति बंधु आदि करके सत्कार होना चाहिये ॥ ३०० ॥

३००अधिकोक्तिः—यहां बन्धु विरादरी से सत्कारहोना केवल यही अभिप्रेत है कि उसके साथ भोजन आदिका वर्तवा किन्तु उनकी दीहुई ज्योंनारको स्वीकार करै परन्तु पहिले जब गौयें उसकीदेई घास आदिको स्वीकार करे अर्थात् देतेमार प्रीतिले खानेतरों एही उसका गौओंसे सत्कार होना सूचित कियाहै ॥ तात्पर्य इस का यह कि यदि गौयें उनका दियाहुआ अन्न खाए न भक्षणकरें तो फिर विरादरी भी ज्योंनारका स्वीकार न करे और दुबारा प्रायश्चित्त करनेपर आवे=हारीतोप्याह=स्त्रीशरसायवसनादायगोभ्योदद्यात्श्रद्धाः प्रतिगृह्णातिगुण्येनंप्रवर्तयेत्

रिति-इतरग्रान्त्याभिप्रेतस्य=अर्थात्-हारीतने भी यह कहा है कि अपने मंडप पर ला-
दिकर घास गौओं के आगे छोड़ें जो गौयें खाने लगीं तौ इस प्रायश्चित्त की खाने
पीने आदि व्यवहारों में बन्धुजन प्रवर्त करें • अन्यथा नहीं यह अभिप्राय सूचित
किया है ॥ ० ॥ दोस्रो छान्दवे ०६६ अधिकोक्ति के प्रारम्भ में जो बात लिखी गई थी
उसपर भी ध्यान देना चाहिये कि यहां के सलश्लोक में (घटेऽपवर्जिते) यह पाठ है
तिसका अर्थ अर्थापि त्यागहीका प्रत्यक्ष है कि घटके त्याग होजाने में अगिला कर्म
क्रियाजाय तथापि मिताक्षराकारने जलाशयमें छोड़ि आना फेंकिआना अर्थ नहीं
स्वीकार किया बल्कि यह स्वीकार लिखा है कि (घटेऽपवर्जितेहृदादुद्धृत्यपूर्णाकुच
नितीते- असौचरितव्रतःसपिंडादिसध्यस्थोगोभ्योयवसंदद्यादितिमिताक्षरा) अर्थात्
घटका अपवर्जित होना यह कि तालाब झरुण्ड आदिसे भरिके पूर्णा कुम्भ साथ ले-
जाने वादि-यह प्रायश्चित्त किया हुआ पुस्तक अपने सपिंड आदि बंधुओंके बीच में
दैदिके प्रथम गौओं को घास छोड़ें-सो यही अर्थ सुन्दर जानो क्योंकि सलश्लोकमें
भी घटका अपवर्जन कहिने से यह तात्पर्य नहीं है कि जलमें फेंका जावे बल्कि यह
ध्वन्यर्थ है कि घटका ससस्त पूजा कर्म आदि निपटि जानेपर घासदेना आदि कर्म
करै=और मनु का यह वचन जो पहिले भी लिखि चुके हैं कि (सतु अष्टुतंघटं
प्राश्य प्रविश्य भवनं स्वकं) सो इसका भी अर्थ व्यत्यस्त योजना से ऐसा होता है
कि वह प्रायश्चित्त अपने घर में प्रवेश करिके फिर उस घटको जलमें छोडवाइ
के अगिले कासों का प्रारम्भ करै अर्थात् वहां जलाशय से भरिके जो घट उसके
साथ घरको आया हो तिसको उसी दिन या और किसीदिन उचितजानिके जला-
शय पर सिराइ आवै फिर और कासों का प्रारम्भ करै तौ यह सिराइ आना सब
तरह के यज्ञों में प्रसिद्ध है कि जिस घट का पूजा कर्म आदि सर्वथा निपटि जाता
है वह अन्त को जलही में सिरायाजाता है कुछ इगबातों में विरोध नहीं है इसी से
मनु गुप्तावली दीक्षाकार कुत्सुक भङ्गे जलमेंफेंकना अर्थलिखा सोभी कुछविरोधी
नहीं है ॥ ३०० ॥ अब अगिले परिच्छेदमें सभी प्रायश्चित्तोंकासिद्धा भुला सकही
सारा स्वीकार करना कहा जायगा ॥ ३०० ॥

अथसकलप्रकाशप्रायश्चित्तानांसाधारणधर्मविषये पर्यटानुमतप्रायश्चित्तस्वीकरणविवेकोऽयं

परिच्छेदः सप्तसप्ततितमः (७७)

—*—

इस परिच्छेद में पर्यट सभा समाज के द्वारा ऐसे सभी पापों के प्रायश्चित्त विचार होने का प्रकार जाना जायगा कि जो जो पाप करने के समय पर ही या कुछ काल पीछे भी प्रकाश होजाय—क्योंकि— उनमें यद्यपि कर्ता पुरुष आपही ज्ञानी ध्याती धर्मशास्त्र का विवेक्ता होय तौभी वह अपने मध्ये निर्णय करने का अधिकारी नहीं है—इसी लिये तरह तरह की सभाओं के स्वरूप डौत आगे दर्शावेंगे और जिस रीति से सभा में जाना प्रश्न करना चाहिये सो भो ॥

(विख्यातदोषस्यायं विधिः)

विख्यातदोषःकुर्वीतपर्यटोऽनुमतं व्रतम् ३०१ (पूर्वार्धे एव)

अर्थः—विख्यात दोषी पुरुष पर्यट का अनुमत व्रत करै=अर्थात्—जिस दोषीका पाप विख्यातहोगया हो उसको धर्मसभाके विचारसेही प्रायश्चित्त करना चाहिये चाहें वह धर्मशास्त्र आदि सर्वशास्त्रों के विचार करने में आपही अति चतुर हो तौभी अपनेलिये आप न विचारै किन्तु सभाकेद्वारा बुझिके करै वरन जिसअवसरमें सभासदों की अपेक्षा इस दोषी में शास्त्रज्ञता आदि कुछ विशेषता विद्यमान हो तहां उसी सभा के साथ मिलिकर विचार करनेका अधिकार इसको सूचितहै सोकरै। तथापि प्रायश्चित्त के नियम उसी पर्यट सभा के अनुमत के द्वारा कल्पित होंगे—और— दोष का विख्यात हो जाना यह कहाता है कि जिस पापको उत्पन्न करनेवाला दोषल वही पुरुष एकाकी हो तितको अन्य पुरुषभी मालूम होजानेसे कहिने लगे या जिस पापको उत्पन्न करानेवाले कोई और भी दो चार सहायक हों वे अवश्यही जाना करतेहैं परन्तु उनका जानना मुख्यकर्ता के निकट कुछविख्याति में गिनती नहीं है अर्थात् सहायकों से उपरालू समुद्य जानि कर चर्चा करनेलगे सो विख्यात दोष कहाता है ॥ ३०१ ॥ यह पूर्वार्ध प्रतीत है ॥

३०२ अधिकोक्तिः—धर्म सभा के पास जाने का जुदा प्रकार होता है=यथाहं

गिराः=कृतेनिःसंशयंपापे नभुंजीतानुपस्थितः भुंजानोवर्द्धयेत्पापंयावन्नाख्यातिपर्यदि
सचैलंवाग्यतःस्नात्वाक्लिन्नवासाःसमाहितः पर्यदानुमतस्तत्त्वंसर्वविख्यापयेन्नरः व्रत
मादायभयोपितथास्नात्वाव्रतंचरेदिति=अर्थात्—पाप करना निश्चय होजाने पर
सभा में उपस्थित हुये बिना न भोजन करै क्योंकि जब तक सभामें जाकर प्रायश्चित्त
नहीं सांगता है तब तक बीच में भोजन करते हुये किया हुआ पाप वृद्धि को प-
हुंचता रहिता है तिससे शीघ्रही कपड़ पहिने हुये सचैत स्नान करिके भीजे वस्त्र
सहित अपने चित्त को ठिकाने रक्खे हुये जाकर सभा से अनुमत पाइकर दोषीमनु-
प्य अपना सब यथार्थ व्यौरा सुनावै और व्रत का उपदेश वहां से लेकर फिर उसी
तरह दुबारा गोता लगा कर चला जाय अपने प्रायश्चित्त का प्रारम्भ करै ॥ ० ॥
पराशर ने यह भी नियम दर्शाया है कि पहिले कुछ पुण्य दान करिके तब सभा में
ब्रह्मने जाय=यथा=पापंविख्यापयेत्पापीदत्त्वाधेनुंतथावृषस (सतत्रोपपातकविययं
महापातकादिष्वधिकं कल्प्यमिति मिताक्षरा)=अर्थात्—पराशर ने कहा है कि
गाय और वृषभ दान करिके पापी अपने पाप को सभा में सुनावै (मिताक्षराकार
कहिते हैं कि यह सिर्फ उपपातकोंपर समझना किन्तु महापातक आदि बड़े पापों
पर इससे अधिक दान पापकी बड़ाई के अनुसार सोचना चाहिये) और यह अ-
गिला जो वचन है कि=तस्मात्तद्विजःप्राप्त पापःसकृदाप्लुत्यवारिरिणा विख्यायपापं
पर्यदम्यःकिंचिद्दत्त्वाव्रतंचरेदिति (तत्प्रकीर्णाक विययमितिमिताक्षरा) अ-
र्थात्—पूर्वोक्त कारणा से द्विजाती जब किसी पाप से संयुक्त होय सो जलमें एक ही
बार गोता लगाकर सभा के परिडतों को कुछ देकर अपना पाप कहि सुनाय कर
प्रायश्चित्त आचरै (इसपर मिताक्षराकार कहिते हैं कि यह कुछेक देना जो कहा
सो सबसे छोटे पाप प्रकीर्णाक नामसे ७४ के परिच्छेद में जो कहे गये तिनपर सम-
झना) यहांपर सोचने का स्थल है कि पराशर के वचन को और इस वचन को
मिलाकर एकही व्यवस्था मिताक्षरा ने कही तिसके उत्तम मध्यम आदि कई
भेद किये सो यह कल्पना सुन्दर नहीं क्योंकि पतित के हाथ से पतित का दिया
हुआ गाय वृषभ रूपी महा दान लेना धर्म शास्त्री परिडतों का यह काम नहीं वे
आपही प्रायश्चित्त हो जायेंगे अर्थात् अमत्प्रतिग्रह का प्रायश्चित्त देखौ ६८ अ-
रसठि परिच्छेद में २६० दोसौनव्वे मूल श्लोक से कहिचुके हैं— तिससे पराशर
ने जो गाय वृषभ का दान किये पीछे वर्म्मसभा में जाना कहा सो औरही किसी
दान पाप के निमित्त देना अर्थ ठीक है बल्कि पराशर के सोरह अक्षर वाले अर्थ

श्लोक में कोई प्रयोगही ऐसा नहीं है जिससे धर्म सभा के परिणत भी दान के संप्रदान भूत समझे जायँ—और जो (तस्मात् द्विजः प्राप्तपाप इत्यादि) पिछले वचनमें साफ साफ कहा है कि (पर्यङ्म्यः किञ्चिद्दत्त्वा) सभा के परिणतों को कुछ देकर सो यह सिहनताने की रीति से दक्षिणा देनी सूचित करी है क्योंकि परिश्रम का बतन मिले बिना किसी का तन सन किसी कार्य में अच्छे नहीं तत्पर होता और व्यवस्था का कोई सुगम काम ऐसा नहीं है जिसको हर कोई परिणत सुघड़ भलाई में कहि सकैगा बडे परिश्रम का काम है और परिश्रम का हक लेना किसी दान प्रतिग्रह में गिनती नहीं है न उसको लेकर कोई दोष लगिसक्ता है क्योंकि यहांपर देने लेने की वाचनिक आज्ञा पाई गई—और जो पापों की बडाई छोटाई के ऊपर बहुत या मध्यम या थोडा देना मिताक्षराने ठहिराया सो भी ठहिराना कुछ आवश्यक नहीं किन्तु दान वित्त समान यह नियम घराटाघोष है कि जैसा कोई अधिक धनी या दरिद्री होगा उसी के अनुरूप दान बताया जासक्ता है— और दूसरे वचन में जहां ठेठ परिणतों का परिश्रम देना कहा गया तिसमें भी किञ्चित् शब्द का प्रयोग सिर्फ इसी आशय पर आरूढ है कि जैसा बडा छोटा परिश्रम उनकासमझि परै तैसाथोडा याबहुत कुछ देकर व्यवस्था बरूँ ॥ यहांतक तीनसौ एक मूलप्रलोक पूर्वार्धकी अधिकोक्ति पूरीहुई इसी टीकाको शेषव्यवस्था नीचे लिखतेहैं ॥३०१॥

(अथपर्षत्स्वरूपं)

पर्यत् सभा जिनमें प्रायश्चित्त ब्रूकना कहा सो कैनी हो तिनके भी अनेक लक्षणा हैं सो देखो उनमें प्रथम मनुका कहा स्वरूप दशति हैं—यदाहमनुः=त्रैविद्योहेतुक स्तर्कीनैरुक्तो धर्मपाठकः त्रयश्चाश्रमिणः पूर्वे पर्यदेया दगावरा=अर्थात्—सभामें अच्छे पुरुष चाहें तितने जुड़ें परन्तु दश महात्मा इस प्रकारके होने चाहिये जिनमें कोई त्रैविद्य कोई हेतुक कोई तर्की कोई नैरुक्त कोई धर्म पाठक हों और • ब्रह्मचारी • गृहस्थ • वानप्रस्थ • इन तीनों आयस के सत्पुरुष होयँ संन्यासी नहीं (त्रैविद्य वे कहाते हैं जो तीनों वेद की कुछ कुछ शाखायें अर्थात् सहित पढ़िकर समझे हों केवल स्वर के साथ ऋचाओं का गाना साद नहीं) हेतुक वहजानना जो हेतुस्वर्पा बाद में रत हो अर्थात् हेतु जो कारणा होय तिसको पकडि के अतियुक्ति के साथ बात कहिने का अभ्यास रखता हो सोहेतुक पुरुष कहाताहै पर यह भी शान्त्रसंपन्न होकरऐसाहोय • इसीलिये मिताक्षराकार ने दोनों सीसांमा का अर्थ तन्व जानने

वाला इसको कहा है क्योंकि विचार पूर्वक तत्व निर्णय करसकने का नाम है सीमांसा और इसीसे सीमांसा उस ग्रन्थ का भी नाम है जिसमें ऐसा तत्व निर्णय हो सक्ता हो। वह सीमांसा रूपी निर्णय भी दो भांति का होता है इसीसे उसके ग्रंथ भी दो भांति के प्रसिद्ध हैं पूर्वसीमांसा और उत्तरसीमांसा अर्थात् पहिली सीमांसा कर्म कांड है पिछली सीमांसा ब्रह्मज्ञान का विचार है। तहां जैमिनि के बनायेहुये ग्रन्थमें कर्मकांडके संदेह निर्णयहोते हैं उसीका नाम पूर्वसीमांसा भी कहाता है और ब्रह्म जो परमात्मा परमेश्वर है तिसके जो सन्देह खड़ेहोयें सो सब वेदान्त से निर्णय होसक्ते हैं जैसा इसी ग्रन्थ में संन्यास आश्रम के प्रसंग से अध्यात्म नामका प्रकरण बहुत बड़ा वर्णन होचुका है इसी तरह वेदान्त के और बहुत ग्रन्थ हैं सो सब उत्तर सीमांसा किन्तु पिछली सीमांसाके नामसे कहातेहैं। यह तात्पर्य ठहिरा हैतुक्र पुरुष का पर सामान्य अर्थ वही है कि जो वार्ताके तत्व को युक्तिसे निर्णय करसके सो हैतुक्र जानो (तर्की उसका नाम है जो तर्कशास्त्रमें कुशलहोय परन्तु न्यायशास्त्रपढा होने परभी उसकी तर्क ऐसी न हो कि श्रुति आस्मृतियोंसे विरुद्धहोय अर्थात् दोनो सीमांसा के अनुकूल उसका तर्क होना चाहिये) नैरुक्त उसका नाम है जो व्याकरण विद्या से प्रयोजनवाले शब्दों की निरुक्ति दर्शावै और वह भी नैरुक्त पुरुष होता है जो वेदका एक अगही निरुक्त कहाता है तिसको पढाहो (धर्मपाठक जो धर्मशास्त्र की स्मृतियाँ आप ऐसी पढा हो जिन्हें और को समुभाइकर पढासके) ब्रह्मचर्य गार्हस्थ्य वानप्रस्थ इनतीन आश्रमों के सत्पुरुष उनको जानना जो अपने अपने आश्रम के नियम धर्मोंका बर्तावा ठीक ठीक आचरण करते हों ॥ ० ॥ ऐसी सभा न मिलनेपर मनुने पर्यतका दूसरा डौत दर्शाया है = यथा = ऋग्वेदविद्यजुर्विचक्षामवेदविदेवच त्र्यवरापरियज्जेयाधर्मसंशयनिर्णये = अर्थात् = ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेद इनकी शाखाओंके जुटे जुटे भी अर्थोंसहित जाननेवाले अर्थात् एक एक पुरुष एकहीएक वेदकी कोई शाखा विधि पूर्वक पढाहो ऐसे तीनिही पुरुष जिस पारयत्तमें शामिल होय जोभी धर्मका संदेह निर्णय करनेवाली सभा होता है ॥०॥ इसके भी न मिलने पर मनुने कार्यके निर्दाह का और डौत दर्शाया है = यथा = एकोपिधर्मविदसंयन्वय स्पेत्समाहितः न ज्ञेयः परमोवर्षो न ज्ञानाद्युदितोऽयुतैः = अर्थात् = धर्मशास्त्र का विज्ञाता यदिज्ञाहित चित्तहोके जिह धर्मको एकही पुरुष विचार करै सोई परमधर्म जानो क्योंकि धर्मशास्त्र लक्षणालोकें ऊपर चविद्याताहै धर्मकीसर्वादा इसीकेद्वारा जानी जातीहपरच धर्मके न जाननेवाले दण्डजारीनलिकेभी कहें सो धर्मकीगिनतीमेंनहींहै

(विज्ञानेश्वर कहिते हैं कि इन बड़ी छोटी सजाओंका वर्तना जैसा जहां संभव हो तैसा तहां ससक्तना अथवा सहापातक आदि बड़े छोटे पापों के भेद से भी जानना अर्थात् बहुत बड़े पापका प्रायश्चित्त बूझने को बड़ी पर्यत् के नितते हुये छोटे में न जाना चाहिये ॥ ० ॥ एक यह स्मृत्यन्तर वचन है कि=पातकेयुशतंपर्यत्सहस्रसहस्रदिषु उपपायेषुपंचाशत्त्रयंस्त्रयस्त्रयस्यभवेत् (तदपिसहापतकादिदोयानुसारेण पर्यदायुहलघुभावप्रतिपादनपरंतपुनः सख्यानिग्रसार्थमन्वादिमहास्मृतिविरोधप्रसंगादिति सितक्षरा)=अर्थात्—पातक नामके बड़े पापोंके लिये एकसौ सभासद को पर्यत् से बूझना चाहिये और उनसेबड़े सहापातक आदि पापोंकेलिये सहस्र सभासदों को पर्यत् होय और छोटे दर्जावाले उपपातक नामकेपापोंका प्रायश्चित्त बूझनेको ५० पचास सनुष्योंकी सभा चाहिये फिर इनसे भी छोटेपापोंके लिये इससे भी थोड़े पचीस आदि सभासद होय यह ससक्तना (विज्ञानेश्वर सितक्षराकार कहिते हैं कि यह वचन केवल इसलिये है कि दोयकी बड़ाई छोटाई के अनुसार सभाका बड़ापन या छोटापन होना चाहिये पर यह तात्पर्य इसका नहीं है कि जिसमें एकसौ बताये या हजार बताये तिसमें उतनेही परसूपर सनुष्यचाहिये क्योंकि जो ऐसातात्पर्यमाना जाय तो फिर सनुआदि बड़ीबड़ी स्मृतियोंके नियमसे विरोधखडा होनेलगै जैसाऊपर दश या तीन वा एकही विद्वान्सभास्वरूप कहागयाहै)इसपर मर्यादा परिपाटी संपादक व्याख्याकार का यह विचार है कि यह बहुत बड़ी संख्या के लगभग अधिकता जो टहिराईगई सोभी सर्वसाधारण सनुष्योंकी समक्षनी किन्तु इसकेसाथ उतने विद्वानों काहोना आवश्यक है कि जैसा पहिले दश वा तीन वा एकही विद्वान् होनाकहाया तो फिर कुछ भी विरोध इसमें नहीं है अन्यथा उतनी संख्याओं के लगभग केवल विद्वानोंका संग्रह करना वा होसकना न आवश्यकहै न संभवहै बल्कि उक्त संख्याओं के नियम छोडिकर लगभग वाजा डोज सर्वमानान्य सभासदों का टहिराया गया तिसमें भी पूर्वाक्त यथा संभव की युक्ति लगानी होगी कि जहां दोयो पुरुष बडा आदिकी होय जिनके बदासे इतने अधिक सभासद इकट्ठे होमके सिर्फ नहोंकी यह व्यवस्था है सर्वत्र नहीं ॥ ० ॥ वेदके सभाके स्वरूप में एक जुदा डोन दगाया है= यथा=स्वयंनुब्राह्मणाब्रूयुरल्पदोयेद्युतिप्लवित् राजाचब्राह्मणाश्चैव महत्सुपरीक्षितास्त=अर्थात्—जो उपपातक आदि छोटे पापहों तिनमें पण्डितब्राह्मण आपनी प्रायश्चित्त बतावें परंच सहापातक आदि बड़े पापोंमें राजा और ब्राह्मण भी मिलिकर सभा करें तिसमें दोयकी परीक्षा से प्रायश्चित्त करावें (इस वचन में यह तात्पर्यहै

किं जिन अपराधों में राजवादी (राजमुद्दई) होसक्ता हो तिनको ब्राह्मण लोग केवल आपही प्रायश्चित्त कराइ के राजासे छिपावै नहीं कों वैसे महादोयों में राजद्वार से उरमाना आदि राजदंड होनेके अनन्तर प्रायश्चित्त कराना धर्म शास्त्र का सिद्धान्त है—तिससे यद्यपि किसी विरले महादोयीके ऊपर कोई वादी बनिके राज में निन्दाकरने को न गया हो तौभी प्रायश्चित्तका बोझ उसपर धरनेवालों को यह सूचित कियाहै कि प्रथम प्रायश्चित्तही के बहाने से राजद्वारमें उस दोयका प्रकाश करै जिससे राजा उसी दोयका निर्णाय ब्राह्मणोंकी पर्यत में शामिल होकर निर्णाय क्रिये पीछे यथायोग्य राजदंड लेकर प्रायश्चित्त विचारने की आज्ञा विद्वानों पर आरूढ करैगा यह तात्पर्य है ॥ ० ॥ परन्तु यह भी एक धर्महै कि यदि कोई दोयी मनुष्य अपने पापसे दुखमानि के आपही किसी पर्यत के पास जाकर प्रायश्चित्त व्रमै तौ उस परियतको अवश्यही विचार करना और बताना योग्यहोताहै क्योंकि ऐसा न करने से परियतको भी दोय लगताहै=यदाहांगिराः=आर्तानामार्गमारानां प्रायश्चित्तानियेद्विजाः जानंतोनप्रयच्छंतितेयांतिसमतांतुतैः=अर्थात्—पीडितहुये ब्रह्मने आये हुयोंको जे कोई विद्वान् ब्राह्मण धर्मशास्त्र जानते हुये प्रायश्चित्त नहीं वतातेहैं वेभी उन्हीं पापियोंके समान टाहिरतेहैं ॥ ० ॥ परन्तु किसीसभाका सभासद कोई धर्मके जानेविना यदि प्रायश्चित्त वतावै सो वतानेसे भी पापी और प्रायश्चित्ती भी होताहै=तदाहर्वाशयः=अज्ञात्वाधर्मशास्त्राणिप्रायश्चित्तंददातियः प्रायश्चित्तीभवेत्पूतःकित्विपंपर्यदं व्रजेत्=अर्थात्—धर्मशास्त्रों की आद्योपांत पढे समझे विना जो कोई पंडित प्रायश्चित्त वताताहै तिसके करनेसे प्रायश्चित्ती शुद्ध होजाताहै परंच उस प्रायश्चित्ती का पाप उसी सभासद पर आरूढ होताहै ॥ ० ॥ यहाँ तक प्रायश्चित्त वताने की रीति जो कहिचुके सो ब्राह्मण आदि सभी वर्गोंको वतानेपर कहीगई कुछ भेदभाव नहींहै तथापि क्षत्री आदिको वताने सभ्ये अंगिराने रुद्रजुदी रीति भी कही है=यथा=न्यायतोब्राह्मणाःक्षिप्रंक्षत्रियादेःक्षत्रैःनक्षः अंतराब्राह्मणांश्चत्वात्रतंसर्वेषसादिशेत् तथागूडंरुसाद्यासदाधर्मपुरःसरत् प्रायश्चित्तंप्रदातव्यंसंव होमद्विर्वाजितमिति (तययागाद्यनुष्ठानशी ज्ञानांजपादिकंवाच्यं इतरैद्यांतुतयः) कर्म नियान्तपोनियुःकदाचित्पापमागताः जपहोनादिकंतेभ्योविशेषेसाप्रदीयते ये नाम धारकाविप्रामूर्खविनविर्जिताः रुच्छांद्रायणादीनितेभ्योदद्याद्विशेषत इति=अर्थात्—क्षत्री और वैश्य जहाँ पाप क्रिये टाहिरै तहाँ धर्मज्ञ ब्राह्मण उनको न्याय के अनुसार शीघ्रही सम्पूर्णा व्रत भले प्रकार से वतावै परन्तु बीचसे उनके युक्त पुरोहित

आदि किसी प्रतिष्ठामान् ब्राह्मणाको साक्षीभूत मध्यस्थ बनाकर व्रतका आदेश करे अर्थात् केवल एकपरसकवैठिके प्रायश्चित्त न बतावे कि जहां सिर्फ दोषी पुरुष और धर्मशास्त्री इन दोकेसिवाय तीसरा न हो (सो यह नियम उस दशापर आवश्यक है कि जहाँ अनेक विद्वानों की सभा इकट्ठी न होसके केवल एक धर्मशास्त्रीही प्रायश्चित्तका आदेश करनेवाला होय जैसा (सकोपिधर्मवित्तधर्मइत्यादि) मनुके वचन से ऊपर कहिचुके-तथैव किसी शूद्रको पापकिया पाइकर भी इसीरीतिसे पुरोहित आदि को बीच में मध्यस्थ बनाकर धर्म के अनुसार प्रायश्चित्त देना चाहिये परंच शूद्रके निमित्त में सदा यही धर्म है कि उसको जप होम से रहित प्रायश्चित्त बतावे अर्थात् जिन दोषों पर जप होम करना कहीं लिखा हो तिनमें भी शूद्रको जप होम करनेकी आज्ञा न देनी चाहिये—शूद्रके सिवाय अन्य वर्णोंके मनुष्य ब्राह्मणा आदि भी जे कोई निपट निरक्षर होय तिनको भी जप होम आदि न बताना चाहिये तहां ऐसा करना चाहिये कि (जे कोई द्विजातीलोग यज्ञादि कर्मों के अनुष्ठान में सदा निरन्तर या जब तब लगे रहिते हों तिनको जप होम आदिवाले प्रायश्चित्त बतावे औरोंको तप करना किन्तु व्रतादिक प्रायश्चित्तवतावे) क्योंकि यही नियम अगिले वचन में साफ कहे देते हैं कि—जे कोई द्विजाती कर्म करने में अभ्यास रखते हों या तप करने में अभ्यास रखते हों वेही कभी पाप में फँसें तब उनके लिये विशेष कर जप होमादिरूपी प्रायश्चित्त दिया जाता और जे नामहीं मात्र के ब्राह्मणा निरक्षर सुख धनसेहीन दरिद्री तिनको जुदे जुदे उनकी दशाकेअनुसार कृच्छ्र और चांद्रायणा आदिवतावे ॥ यहप्रायश्चित्त बतानेकाडौल केवल विख्यातपापोंकेऊपर कहागया किन्तु छिपेहुये पापोंके प्रायश्चित्त अगिले परिच्छेदमेंबर्णन होवे॥इतिपरिच्छेदः॥

(इतिप्रनाशप्रायश्चित्तानां सर्वसामान्यविधिनिर्णायकप्रकरणं)

(त्रिपरिच्छेदतयं)

इस प्रकारका लें ७५ । ७६ । ७७ पचहत्तरि परिच्छेद के प्रारम्भ से सतहत्तरिके अंततक तीनि परिच्छेद हे तीनों से यद्यपि जुदे जुदे विषयों का वर्णन हे परन्तु ये तीनी जुदे विषय सब तरह के पापों में आदि मध्य अंत के अन्तर भेद से विचारने परतेहैं तिलके इन तीनी परिच्छेदका एकही प्रकारका जानागया कि जब कभी किसी पापकी विख्याति होकर प्रायश्चित्त सोचना परे तब उस पापके विचारवाला जुदा प्रकारका या परिच्छेद पहिले ढूँढिकर उसको साथही उपप्रकारकाको देना चाहिये॥

परन्तु जिनसे कभी देवयोग से कोई पाप होगया और गुप्त होनेके हेतुसे खुल्लस न होने पाया ऐसे पापी पुस्त्य जो अपने पापका छिपा हुआ प्रायश्चित्त करना चाहें तिनकी व्यवस्था आगे ७८ अठहत्तरि परिच्छेद से लेकर जानी जायगी ॥

अथ रहस्यप्रायश्चित्तानां सर्वेषां साधारणधर्मविवेकसहितः-ब्रह्महत्यायाः प्रायश्चित्तप्रबोधकोऽथ

परिच्छेदः अष्टसप्ततितमः (७८)

—*—

इसपरिच्छेदमें विणयेतासे दो बात जानीजायगी कि प्रथम तौ छिपेहुये पापोंका साधारण धर्म जो सर्वत्र काम आवैगा—दूसरे सहापातकोंमें से केवल एकब्रह्महत्या जो किसीने छिपीहुई करीहो जाहर न होनेपाई तिसकारहस्यप्रायश्चित्त कहाजायगा (रहसि) एकान्त से छिपिकर जो काम कियागया वही रहस्य कहिलाता है चाहें पापहो या उस पाप का छिपा हुआ प्रायश्चित्तहो ॥

योगीश्वर याज्ञवल्क्य मुनि यहां से आगे आगे छिपे पापों के प्रायश्चित्तों का विस्तार किया चाहते हैं कि जिससे शरीरमें घुसे हुये पापों को दुहिकर उस भांति से निकामि फेंके जैसे यनोंमें छिपाहुआ दूध बछरा के योग से निकसा जाता है (यहां पर प्रायश्चित्तों को बछरा के दृष्टांत में समझना प्रायश्चित्ती पुस्त्य को दोहने वाला समझना) इसी लिये योगीश्वर पहिले उन सभी प्रायश्चित्तों का साधारण धर्म दर्शाते हैं जो आयेआगे सभी व्रतों की आदि में सोचना होगा सो देखी निचले तीन सौ सप्त वाले उत्तरार्ध से ॥

(रहस्यप्रायश्चित्तविचारः)

अनभिख्यातदोषस्तुरहस्यं व्रतमाचरेत् ३०१

अर्थः—अनभिख्यातदोषी रहस्य व्रत को आचरे—अर्थात्—जिस दोषी का पाप उसके सहायकों से उपराखू अनुप्यों की जीभ तक न पहुंचै सो रहसि एकान्त में गुप्त ही प्रायश्चित्त करे ॥ ३०१ ॥ उत्तरार्धोऽथ ॥

३०१ आधिकोक्तिः—यहां यह शंकाहै कि अनुप्यके सहायक मिलापी समीप

आदि अनेक भांति के होते और वेही किसी पाप को करते जानि सक्ते हैं तिनका जानना छोड़िकर उपरालू मनुष्य कहे इसमें नाना प्रकार के विरोध खड़े होते हैं क्योंकि जिस पाप को सहायकों ने देखा जाना तिसको सभी मनुष्य जानि सक्ते हैं फिर क्योंकर कोई पाप अनभिख्यात कहावै इत्यादि—इसका यह समाधान है कि पापी के सहायक सिर्फ वेही अभिप्रेत हैं जो उसको पाप कर्म करवाने में साथी हुये हों जैसा किसी स्त्री से उसका सँदेशा कहि आना ले आना बुलाइ लाना आदि ऐसाही सर्वत्र सभी पापों में समझि लेना कि जितने पुरुष वा स्त्रियाँ पाप कार्यके सहायक वा साक्षी बने हों वे सब यद्यपि पापी के पाप को जानते और परस्पर चर्चा करते हैं तथापि उनका जानना विख्याति में गिनती नहीं माना गया है अर्थात् उनसे उपरालू चाहें पापी के सहायक हों वा असहायक हों तिनमें पाप की चर्चा नहीं फैली हो तौ यह पाप अनभिख्यात कहाजाता है। ऐसे पाप को करने के वादि भी दोषी पुरुष पछित्ता कर अपनी शुद्धि के लिये यदि प्रायश्चित्त करना चाहै सो छिपौआ व्रत साधै—तहां—जो ऐसापुरुष आपही धर्मशास्त्रमें प्रवीणा होय सो औरसे न कहिकर आपही अपने निमित्त पर यथा योग्य प्रायश्चित्त विचारै। जो धर्मशास्त्र को न जानता हो सो अन्य धर्मज्ञों के पास जाकर अपना पाप सुनाये विना किसी और के बहाना से प्रसंग छोड़िकर इस तरह बूझै कि जिसकिसी ने शुभ पाप किया हो अर्थात् ब्रह्महत्या• बाल हत्या• मातृ भगिनी गमन• परदार गमन• सुरापान आदि जो कुछ पाप किया हो तिसका नाम धरिक्के बूझै कि इसमें उसको रहस्य प्रायश्चित्त क्याकरना चाहिये• या जिज्ञामुता की रीति से ही बूझै कि अहुक्ताहुक्क पाप छिपौआँ जिनपर होजायँ तिनका शुभ भावही से क्या क्या प्रायश्चित्त होता है ॥ ० ॥ इसी प्रकार से स्त्री और गूढ भी औरों से बूझिके रहस्य प्रायश्चित्त का स्वरूप जान कर सक्ते हैं इसीसे उनको भी करने का अधिकार सिद्ध होगया• इसपर यह न कहिना चाहिये कि रहस्य प्रायश्चित्तों के स्वरूप प्रायस् जपादिकों की प्रधानता से निर्गता हुये हैं तिससे स्त्री और गूढों को विद्या पढने का अधिकार न होने से इन प्रायश्चित्तों का अधिकारही नहीं• क्योंकि उन प्रायश्चित्तों में जपादिकों की निर्विकल्प ही कुछ प्रधानता नहीं बल्कि उनमें दान करना आदि भी उपदेश किया जायगा और गौतम के कहे प्राणायाम आदि का भी करना संभव है तिससे भी• बल्कि स्त्री गूढों से उपरालू औरों को भी जपादिक में पूरा अधिकार नहीं पाया जाता है क्योंकि मन्त्र और मन्त्रका देवता उसकाऋषि

समभक्ता यह मिताक्षराकारनेकहा ॥ यत्तुवृहद्विष्णानोक्तं=ब्रह्महत्यांकरवा ग्रामात्प्राचीमुदीचींवा दिशमुपनिष्क्रम्यप्रभतेन्धनेनाग्निं प्रज्वालयाघमर्षणोनाष्टसहस्रमाहुर्जुहुयात्ततस्मात्पूतोभवतीति—तन्निर्गुरावधविययमनुग्राहक विययंवेतिमिताक्षरा=अर्थात्— बड़े विष्णु का जो कथन है कि—छिपी ब्रह्महत्या करिके ग्राम से बाहर पूर्वदिशा या उत्तर दिशामें निकसिके बहुत ढेर ईंधनकी अग्नि जलायके अघमर्षणा मन्त्र से आठ हजारआहुतें होमैं तिससे इस पाप से छुटि जाता है—मिताक्षराकार कहिते हैं कि यह प्रायश्चित्त सुगम है तिससे उसके लिये समभक्ता जिसने निर्गुरा ब्राह्मणा को मारा हो अथवा गुरावान् को मारने वाले का अनुग्राहक जो कोईबना हो तिसके लिये भी ॥ यत्तुयमेनोक्तं=अहंतूपवसेद्युक्तस्त्रिरहोऽभ्युपयन्नपः मुच्यते पातकैः सर्वैस्त्रिर्जपित्वाऽघमर्षणाम—तद्गुरावतोहंतुर्निर्गुरावधविययं प्रयोजकानुमंढ विययंवेति मिताक्षरा=अर्थात्—यम ने जो कहा है कि—तीन दिन उपवास करै जि-हेंद्री होके फिर तीन दिन जल के आहारसे रहै तहां तीन बार अघमर्षणा को नित्य जपता रहै तौ सभीपातकों से छुटि जाता है—मिताक्षरा कार कहिते हैं कि यह प्रा-यश्चित्त उससे भी सुगम है तिससे उसके लिये समभक्ता जो मारने वाला गुरावान् होकर उसने निर्गुरा ब्राह्मणा को मारा हो अथवा गुरावान् को मारने वाले के साथी सहायक प्रयोजक अनुमन्ता बने हों तिनके लिये भी ॥ यत्तुहारीतेनोक्तं=महापातकातिपातकानुपपातकानामेकतः संपात्तेवाऽघमर्षणामेवत्रिर्जपेदिति—तन्निमित्त कर्तविययमिति मिताक्षरा=अर्थात्— हारीत ने जो कहा है कि जब किसी पर एक साथ ही सब तरह के पाप आपरैं किन्तु महापातक अतिपातक अनुपपातक आदि एक साथ ही बनि परैं या इन में से कोई एक तरह का पाप आपरै तब अघमर्षणा को ही तीन तीन बार कुछ दिन जपै—मिताक्षरा कार कहिते हैं कि—यहप्रायश्चित्त केवल निमित्त कर्ता पर आरूढ होना चाहिये (निमित्तकर्ता वही कहाता है जिसने हाथ से नहीं मारा परन्तु किसी तरह से हृदय को दुखाया जिससे वह आप ही वृद्धि मरा या विय भक्षणा क्रिया इत्यादि अनेक भेदहैं ॥ मिताक्षरा कार कहिते हैं कि जैसे दस पाँच मुनीश्वरों के वचन यहां पर मैंने लिखे और उनके न्यूनधिक भाव से वियय भेदपर विभागकर दिखलाया तैसे और भी स्मृतियों के वचन ढंढि कर विभाग कर लेना चाहिये क्योंकि ग्रन्थ बढि जानेके डरसे यहां सब नहीं लिखे जाते हैं• फिर कहिते हैं—कि—यही प्रायश्चित्त रूपी धर्तों का समूह जिस जिस परिमाण से लिखा गया तिसमें से एक चौथाई कम करिके तीन पाद उसके लिये

समझना कि जिसने यज्ञ कार्य में लगी हुई स्त्री का वध किया हो या यागस्थस्त्री पुस्त्य का या यागस्थ वैश्य पुस्त्य का या आत्रेयी का वध किया हो (आत्रेयी के लक्षणा तीसरे परिच्छेद में देखीं ॥ ३०२ ॥

योगीश्वर ने इसी ३०२ मूल श्लोक में ब्रह्महत्या पर तीन दिन का व्रत कहा था अगिले मूल श्लोक में विकल्प के लिये उसी ब्रह्महत्या पर एक ही दिन का व्रत कहेंगे परन्तु इन दोनों विधान को छोटा मत समझना क्योंकि दोनों में जल का निवास भी दर्शाया है जो सबसे बड़ा तप होता है ॥

(प्रायश्चित्तान्तरंब्रह्मघ्नस्यैव)

लोमभ्यःस्वाहेत्यथवादिवसंमारुताशनः । जलेस्थित्वाऽग्निं जुहुयाच्चत्वारिंशत्घृताहुती ३०३ ॥

अर्थः—अथवा दिन भर वायु भक्षणा किये जलमें स्थिति करिके लोमभ्यः स्वाहा इत्यादि मंत्रोंसे घृतकी चालीस आहुतें अग्निमें होसै—अर्थात्—अथवा जो पहिले कहे प्रायश्चित्तको न करना चाहै तो यह करै कि एक दिन रात भर उपवासरूपी व्रत किये हुये दिवस बीतिजाने पर संध्या समयसे लेकर तमाम रात्रिभर जलमें बैठे फिर प्रातःकाल जलमेंसे निकसिके अग्निको वेदीपर प्रज्वलित करै तिसमें चालीस आहुतियां घीसे होसै उन्हीं मंत्रोंसे कि जो पहिले (ब्रह्महत्यावाले प्रकारकाके बीच उनतीसवें २६ परिच्छेदके प्रारम्भसे २४७ दोशोंमेंतालिस के मूलश्लोक और उसी की अतिकोक्ति में) लोमभ्यः स्वाहा इत्यादि आठ मंत्र लिखे गयेथे उन प्रत्येक से पांच२ आहुतें छोड़ै सो आठ पंजे चालीस होतीहैं—यद्यपि एकही दिन कहा तथापि इसको पूर्वाक्तके बराबर समझना जलमें निवास एक राति भर करने के बड्गपन से यह प्रायश्चित्त छोटा नहीं ॥ ३०३ ॥ इतिब्रह्मवधमहापातकस्यप्रायश्चित्तं ॥

अथ ब्रह्महत्याव्यतिरिक्तमहापातकत्रय रहस्यानां तत्संसर्गिणोपि रहस्यप्रायश्चित्तविवेकोऽयं परि च्छेदः कनाशीतितमः (७९)

—*—

इस परिच्छेद में ब्रह्महत्या से उपरालू महापातक तीनों भाँति के जो छिपिकर हुयेहों तिनके जुदेजुदे प्रायश्चित्त रहस्य और संसर्ग के प्रायश्चित्त भी सब जाने जायेंगे ॥

(सुरापानप्रायश्चित्तं)

त्रिरात्रोपोषितो ह्रस्वाकूप्माण्डीभिर्वृतंशुचिः † ३०४ (पूर्वाधोऽयं) ॥

अर्थः—तीन रात्रि उपवासक्रिये कूप्माण्डी ऋचाओंसे घृत होमिके शुचिहोय= अर्थात्—सुरा पीकर जो अशुचि हुआहो वह भी चालीस आहुतें ऊपर के प्रलोक में दर्शाई हुई होमिके प्रवित्र होताहै परन्तु इसके संत्र जुदेहैं कि जैसा अधिकोक्ति में देखी ॥ ३०४ ॥

३०४ अधिकोक्तिः—(कूप्माण्डीभिः यद्देवादेवहेडनमित्याद्याभिः कूप्माण्डदृष्ट्या भिरनुष्टुभमंत्रलिंगदेवताभिश्चरिभप्रचत्वारिंशत्घृताहुतीर्हुत्वाशुचिर्भवेदिति मिताक्षरा) अर्थात्—सुल प्रलोकमें यद्यपि आहुतियोंकी संख्या कुछ नहीं कही परंच कूप्माण्डी ऋचाओं से घृत होमना कहा तिसका निर्णय मिताक्षराकार ने यह लिखा है कि (यद्देवादेवहेडनं) इत्यादि ऋग्वेद की ऋचायें जो कूप्माण्डनाम ऋषिकी कही कूप्माण्डी कहाती हैं जिनका अनुष्टुभ मन्त्ररूप देवताकहाताहै तिनसे चालीस आहुतें घीकी होमिके वह पुस्त्य शुद्ध होजावै जिसने छिपमा सुरापान किया हो ॥ वौधा-यनेनाप्युक्तं=अथकूप्माण्डदृष्ट्याभिरनुष्टुभिर्जुहुयात् योऽपूतसवात्मानं मन्येत यदूर्वा चीनमेतोभूसाहत्यायास्तस्मान्मुच्यते अथोनौवारेतः सित्क्वाऽन्यत्स्वप्नात्=अर्थात्—वौधायनजी प्रथम अथशब्दसे अन्वादेश प्रकट करतेहैं कि यह प्रायश्चित्त चाहिये किन्तु कूप्माण्ड की देखी विचारी अनुष्टुभ मन्त्ररूपो ऋचाओंसे वह पुस्त्य होम करै जो अपने शरीर को अपवित्र मानता हो अर्थात् जिसने सुरा आदि कोई अशुद्ध वस्तु

खाई पीहो और जो इसी जन्मका क्रिया पाप कोई गर्भ हत्या बालहत्या सम्बन्धी होय तिससे छुट्टिजाताहै अथवा स्वप्नमें वीर्यपात होनेसे उपरालू जो बढिया पापहै कि जिसने अयोनिमें वीर्यपात क्रियाहो तिस पापसे भी छुट्टिजाताहै (यहांपर अयोनि कहिनेसे यह तात्पर्यहै कि योनिके बिनाही धरती आदि पर वीर्यपातक्रिया हो यद्वा पुरुषके साथ मैथुन करिके वीर्य गुदामें सींचाहो सो भी अयोनिमें सींचना कहाजासक्ताहै यद्वा चाराडाली वा गुराजी आदि अगम्या स्त्रियोंको योनिहीमें सींचाहो सो भी अयोनिमें सींचना तात्पर्यहै क्योंकि वहयोनि उसकेवीर्य सींचनेयोग्य नहींहै तिससे अयोनि इसी शब्दसे उपलक्षित करी (परन्तु सोतेसमय स्वप्नमें किसी स्त्री के ध्यानसे अथवा बिना ध्यानके आपही वीर्य गिरजाय तिसकेलिये यहप्रायश्चित्त नहींहै—अन्यत्र स्वप्नात्—इसअपवाद रूपी छूटका यही तात्पर्यहै) और यह भी तात्पर्यहै कि जिसने सोते समय अपनी कामनासे किसी स्त्री का स्वरूप ध्यान करिके उसकी योनि से वीर्य सींचा होय तो यह अयोनि ही में सींचना कहावेगा क्योंकि यद्यार्थसे कोई योनि वहांपर जासात्कार नहींमौजूदहै तिससे अयोनिकही गई अर्थात् उसके सधये यही प्रायश्चित्त करना चाहिये जो वौधायन मुनिनेकहा—वौधायनके इस वचनमें (अयोनीवारितःखित्वा) इसी पदसे अनेक अर्थ जो उत्पन्न हुये तिसका यहीकारणहै कि उन्होंने वा शब्द इसी निमित्तपर दर्शायाहै कि सब तरहके अर्थ भेद लक्ष्येजाय ॥ ० ॥ यत्तुमनुना=कौत्संजप्त्वाऽपइत्येतद्वागियं च प्रतीत्यृचस साहित्रंशुद्धवत्यष्टसुरापोऽपिदिशुद्धधति—इतिनासंप्रत्यहंयोऽगकत्वोऽपनः शोशुचदद्यमित्यादीनासन्त्यतलस्यजपउक्तः सशिराज्ञोपवासकून्सांडहोभागक्तस्यवेदितन्व इतिमिताक्षरा=अर्थात्—मिताक्षराकार उपरकी व्यवस्था कहिकर फिर कहिनेहरे कि—सबुने जो कौत्स आदि इलोकमें (अयनःशोशुचदद्यं) इत्यादि अनेक ऋचायें दर्शाइकर उनकेसे किसी एकही संज्ञका जप एक सहीनाभर प्रत्येक दिवस सोरह सोरह बार जपना कहा सो उसके लिये लक्ष्यता कि जिनपर योशीचर का वताया तीन दिन उपवास और एक दिन कूपसांडी संघों से चार्त्वीन आहुतें या को न होचनी (यहां पर शोचना चाहिये कि तीन चार दिनकी अवधि के लक्ष्य प्रत्येक एक सहीना की अद्यपि बहुत बड़ी होती है तथापि आचार्योंने उसको उमंतनु से छोटी ठहराया है कि उनके वेदत सोरहसंघों का जपनी करना होया किन्तु उनके लक्ष्य तीन दिनका उपवास और चौथे दिन चार्त्वीन आहुतें देना बहुत कठिन प्रतीत होता है) इसीलिये जो कोई उस कदिताई को न जावि सके या

उसको करै यह कहा—परन्तु मनुके उस वचन का यह तात्पर्य नहीं है कि सोरह मन्त्रोंसे अधिक न जपै बल्कि यह तात्पर्य है कि जितना अधिक जप होसके उतना करै पर कम से कम सोरह बार अवश्यही किसी एक मन्त्र का उच्चारण कियाकरै कि जिस मन्त्र का नियम प्रथम दिन से स्वीकार किया गया हो—अत्र=उस कौत्स आदि श्लोक वाली टीका यहां लिखिकर भाषा अर्थ भी दर्शाते हैं—यथा= कौत्स मिति•कौत्सेन ऋषिराणा दृष्टं अपनःशोशुचदद्यं इत्येतत्सूक्तं—वशिष्टेन ऋषिराणादृष्टं प्रतिस्तोमेभिरुषसंवाशिष्टा इत्येवं ऋचं—साहित्रं• सहित्रीणा सधौस्त्वित्येतत्सूक्तं—शुद्धवत्य एतान्निद्रंस्तवाम इत्येतास्तिस्त्रऋचः । प्रकृतंसासमहरहः योडशद्वत्त्वोऽपिजपित्वासुरापोऽपिबिशुद्धति । अपिशब्दात् आतिदेशक सुरापान प्रायश्चित्ताधिकृतोपि २४६ प्रलोक अध्यायः ११ मनुसूक्तावल्या मितिषाठः=अर्थात्—(अपनः शोशुचदद्यं) यही सूक्त जो कौत्स ऋषि ने वेद में निष्चय किया था तिसको जपै—या—(प्रतिस्तोमेभिरुष संवाशिष्टा) यह ऋक् मन्त्र जो वेद में वशिष्ट ऋषि ने प्रकाश किया था तिससे यह वाशिष्ट नाम कहाता है तिसको जपै—या—(सहित्रीणामधोस्तु) यह इतना सूक्त जो सहित्र ने प्रकाश किया था तिसको जपै—या—(शुद्धवत्य एता निन्द्रं स्तवाम) ये इतनी तीन ऋचार्ये जो शुद्धवती नाम से कहाती हैं तिनको जपै=कितना जपै या कबतक जपै यह सन्देह खड़ा रहा— तिसके लिये जैसा इससे पहिले प्रलोक में मनु कहि चुके हैं वही एक महीना की अवधि तक सोरह सोरह मन्त्रों का जप रोज करना सूचित हुआ क्योंकि उसमें सोरह प्राणायाम करने कहे थे उतना जप करने से भी सुरा पान का पातक मिटि जाता है ॥ अत्र मिताक्षरा—एतच्चा कामतः पैय्याःसकृत्पाने• गौडीमाध्वयोस्तु पानावृत्तौ वेदितव्यं=अर्थात्=इस पर मिताक्षरा कार कहिते हैं कि यह प्रायश्चित्त उसकोलिये समझना जिसने पैयी सुरा जो अन्नके संयोगसे बनतीहै विना इच्छाके एकहीबार पीलईहो और गौड़ी जो गुड़सेवनतीहै साध्वी जो महुआसेवनतीहै इनको इच्छासहित अनेकवार पीलियाहो तिसकेलियेभी ॥०॥ फिरकहिते हैं कि जिसनेकामनाकेसाथ सुरापानकिया तिसको अप्रोक्त मनुका कहा प्रायश्चित्त है=यथा=मंत्रैःशाकलहोमीयैरब्दंहुत्वाघृतंद्विजः सुषुर्वप्यपहंत्येनोजप्त्वावानमदृष्टुचस=अर्थात्—द्विजाती पुरुष शाकलहोमी नामके वेद मंत्रों से एक साल भर घी का होम करिके बड़े से बड़े भी पाप को विनाश करता है अथवा (नम इन्द्रश्च) इस ऋचा को एक साल भर जपि के पाप को धो देता है=अर्थात् (देव कृतस्यैनस) इत्यादि आठ मन्त्र वेद में शाकल होमी कहातेहैं तिनसे

रोज रोज घी होसि के एक वर्ष पूरा करै अथवा (नम इदुग्रं नम आवि वास) इस ऋचा से जप करते हुये एक साल पूरा करै दोनों तरह से महापातक नाश होजाते हैं (यहां पर नम इत्यादि ऋचाका दो जगह दोहरा रूप मनु मुक्तावली और सिताक्षरा के पाठ भेदसे होगया है तिसका ठीक शोधन वेदहीसे होसक्ता है ॥ ० ॥ सिताक्षरा-कार फिर कहिते हैं कि मनु का अग्रोक्त एक दूसरा जो वचन है कि (महापातक संयुक्तोऽनुराच्छेदगाःसमाहितः अभ्यस्याब्दंपावसानीभ्यस्याहारोविशुद्ध्यति) सो इस वचन का प्रायश्चित्त उसके लिये संसक्तता कि जिसने बारम्बार उसी महापापका अभ्यास किया हो यद्वा अनेक महापापों का समुच्चय एक शाय किया होय=और अर्थ इसका यही है कि यदि कोई द्विजाती महापातकों से संयुक्त होजाय सो एक साल भर अपने चित्त को लगाकर सौत्रों के पीछे पीछे फिरै और (पावसानीः) इस ऋचाका जप बारम्बार अभ्यास करतार है और भिक्षा सांघि भोजन किया करै तो यह शुद्ध होजाताहै (सुरापानका प्रायश्चित्तकिये पीछे एकदुधारगाय देनीचाहिये सो ३०५ मूलश्लोक में देखना ॥ यहपूर्वार्ध मूलश्लोककी अधिकोक्ति पूरीहुई ३०४ ॥ उत्तरार्ध से सुवर्ण हरने का प्रायश्चित्त नीचे कहेंगे ॥

इतिसुरापान महापातकस्य प्रायश्चित्तं ॥

(अथसुवर्णस्तेय प्रायश्चित्तं)

ब्राह्मणस्वर्णहारीतुरुद्रजापीजलेस्थितः ३०४

अर्थः—तु—अव्यय के योग सेतीन रात्रि का उपवास जो पहले कहिचुके वह इसमें भी लगता है तिससे—ब्राह्मण का सुवर्ण हरने वाला महापातकी पूर्वोक्त तीन दिन का उपवास किये जल में वैठा हुआ रुद्र जप करने से विशुद्ध होता है अर्थात् (नमस्तेरुद्रमन्त्रव) इत्यादि शत रुद्रोक्ता जप तीनदिन जलमें बैठके करै ॥ ३०४ ॥

३०४अधिकोक्तिः=शातातपने एक जुदी विगोयताने साथ यहीकहा है=यथा =मद्यन्पीत्वागुरुदारान्प्रचरत्वास्तेयं हत्वाद्रह्यहत्यांचकत्वा भस्माच्छन्नोभस्मगट्यां शसानोरुद्राध्यायीमुच्यतेसर्वपापैः=अर्थात्—मद्य पीने या सुतवारा संगम करिके या चोरी करिके या ब्रह्महत्या करिके रुद्रो पाठ करतेहुये सभी पापोंसे छुटिजाता है जो देहमे भस्म रमाये और भस्मही पर लोटिपेटि रठिन्नर पाठकिया करै=यहां भी तीनिही दिन समुक्तने जो ऊपर कहिचुके और कितना जाप करै इस अपेक्षा

में ग्यारह आवृत्ति करनी चाहिये क्योंकि (एकदादश गुणान्वापिसुद्रानावर्त्य धर्मवित महापापैरपिस्पृष्टो मुच्यतेनात्रसंशयः) यह अत्रि मुनि का वचन प्रसारा है कि धर्म का जाननेवाला यदि महापापों से भी संयुक्त होजाय और उस से कोई और प्रकारका प्रायश्चित्त न होसके तो वह ग्यारहगुणारुद्रोंका पाठकरके भी मुचि जाताहै इसमें संशय नहीं ॥ ० ॥ अत्तुमनुजा=सकृज्जप्त्वाऽस्यवामीयं शिव संकल्पमेवच सुवर्णामपहृत्यापि क्षराद्भवतिनिर्मलः (इतिद्विपंचादृक्संख्याकस्य-अस्यवामस्यपलितस्यहोतुरिति सूक्तस्य-तथा-यज्जाग्रतोदूरमुदैतुदैवमिति शिवसंकल्पस्यवा-सकृज्जपउक्तः सोऽत्यन्त निर्गुणा स्वामिक स्वर्णं हरसो गुणावतोऽपहर्तुर्द्रष्टव्यःसुवर्णान्मन्यून परिमारा विषयोऽनुग्राहक प्रयोजक विषयोवा-आवृत्तौ महापातक संयुक्तोऽनुगच्छेदित्यादिनोक्तन्द्रष्टव्यमिति मिताक्षरा= अर्थात्-मिताक्षराकार ऊपरकी व्यवस्थासे निपटिके फिर कहितेहैं कि० जो मनुने सकृज्जप्त्वा आदि वचनमें दर्शाये मंत्रके एकही बार जप करनेसे क्षरामात्रमें शुद्धहोजाना कहा सो उसके लिये समभक्ता जो अत्यन्त निर्गुणा अर्थात् नित्य नैमित्तिक यज्ञों को निपटही न करने वाले ब्राह्मण का सुवर्ण जिस किसी गुणावान् अर्थात् यज्ञादि कर्म करने वाले ने गुप्तोअर हरसो अथवा इन लक्षणाओं के बिना भी सुवर्णके मुख्य परिमान से न्यून सोना हर लिया हो अथवा मुख्य चोर से उपरालू जो कोई उस चोर का अनुग्राहक प्रयोजक आदि कोई सहायक हो तिसकेलिये भी समभक्ता क्योंकि प्रायश्चित्त अति छोटा है-और जिसने कई बार सोना हरा हो तिसके लिये ऊपरकी अधिकोक्ति के अन्त में महापातक संयुक्तो आदि मनु के वचन वाली व्यवस्था देखना-मिताक्षराकार ने प्रायश्चित्त को इस हेतु से अति छोटा कहा कि मनुने एकही बार मन्त्र का जपना और क्षरामात्र में पापीका निर्मल होजाना दर्शाया है-परन्तु-मनु बुक्तावली टीका में एक सहीना भर हररोज एकवार मंत्र जपना कुल्लूक भङ्गे दर्शायाहै-तिसके अब दोनों टीकाके भाया अर्थलिखने आवश्यक ठहरे-तहां पहिले मिताक्षरा की पंक्तों जो ऊपर लिखि चुके तिनका यह अर्थ है कि मनु ने-सकृज्जप्त्वा आदि इस वचन से ५७ वाक्य ऋचा की संख्या वाले-अस्यवामस्य पलितस्य इत्यादि सूक्त का जप एकही बार सकृत् शब्द से दर्शाया-तथा-यज्जाग्रतोदूरमुदैति इत्यादि शिवसंकल्प नामक मंत्रका जप एकही बार सकृत्शब्द से दर्शाया और एक ही बार एक मंत्र जपने से उली क्षरामात्र में पापी का निर्मल होजाना कहा=तथापि=इस व्याख्या को हरतरह अनुचित जानि के कुल्लूक भङ्ग

ने यह व्याख्या लिखी है कि (प्रहृतत्वात् मासमेकं प्रत्यहमेकवारं (अस्यवास-
स्येत्यादिक सस्यवासीयं सूक्तं जपित्वा) शिव संकल्पं च (यज्जाग्रतो दूर मित्येतत्)
वाजसनेय के अर्पितं तज्जपित्वा सुवर्णा सपहत्य क्षिप्रमेव निष्पापो भवति २५०)
अर्थात्—कुल्लूक भट्ट कहिते हैं कि मनुके ग्यारहवें अध्याय का दो सौ पचासवां
यह श्लोक है और २४८ दोसौ अरतालिसके श्लोकमें एक महीना भर प्रायश्चित्त
करनेका प्रसंग आचुका है उसी प्रहृत प्रसंगसे यहां भी एक महीना भर हररोज एक
वार अस्यवासीय नामक सूक्त जपना और शिव संकल्प नामक मंत्र भी जपना जो
यजुर्वेदकी शाखा वाजसनेयनामके बीच कहीं आया है । तो इस प्रायश्चित्तसे सुवर्णा
का अपहर्ता भी क्षणात् निर्मल होता है अर्थात् पूरे महीना भर प्रायश्चित्त पूरा कर
चुक्नेके समयसे लेकर शुद्ध होजाता है यह तात्पर्य क्षरा शब्दका ठीक है—वह नहीं
कि एक सायतभर में शुद्ध होजाय जिससे प्रायश्चित्त अति छोटा समुझा गया था
(सुवर्णास्तेय का प्रायश्चित्त क्रिये पीछे एक दुवार गाय देनी चाहिये सो ३०५
मूल श्लोकमें देखना ॥ ३०४ ॥

इतिसुवर्णस्तेयमहापातकस्य प्रायश्चित्तं ॥

(अथगुरुतल्पप्रायश्चित्तं)

सहस्रशीर्षाजापीतुमुच्यते गुरुतल्पगः गौर्देव्याकर्मणोऽस्यान्तेष्ट्रगेभिः पयस्विनी ३०५ ॥

अर्थः—सहस्रशीर्षा जपनेवाला गुरुतल्पगाली भी मुक्त होता है इत मंत्रको इस
कर्मके अन्तर्में पयस्विनी गाय भी जुड़ी देनी चाहिये—अर्थात्—जिलने छिपमा गुरु
वारा यसनक्रियाहो जिसका भेद नहीं खुलनेपाया तो यह पापी सहस्रशीर्षा आदि
सौरह सहस्राज्ञोवाला मुक्त जो नारायणाका प्रकाश क्रिया कहाता है जिसका पुत्रय
वेवता है अहुष्टु । छन्द है सिष्टुच्छन्द जिसका अर्थ है तिलको जपनेहुये उस सूद्ध पाप
से छुट्टिजाता है—और (पृथक्स्थितिः) गुरुतल्पगाली तथा पूर्वोक्त सुरापानकारी और
सुवर्णास्तेयी इन तीनोंको पृथक् जुड़े अथवा प्रायश्चित्त कृपी कर्मके समाप्त होनेपर
बहुत दुवार गाय दूध देती हुई कष्टया कहित बात करनी चाहिये ॥ ३०५ ॥

३०५ अधिकोक्तिः—सहस्रशीर्षाजापी इदपदमें ताच्छील्य प्रत्यग्रहोनेसे आवृत्ति
पाठ समुझागया है कि बारम्बार जपता रहे किन्तु एकही बार जपिके न चूपका
होजाय—इसीका प्रसंग भी यसका यह वचन है कि (पौतदं दूक्तमावर्त्यमुच्यते सर्वं

किल्बिषात्) अर्थात्—पुरुष देवतावाला सूक्त जो सहस्रशीर्षा के नामसे कहिचुके तिसको बारम्बार जपिके सबतरह के पापोंसे मुचिजाता है ॥ आवृत्तौचसंख्याऽपेक्षायामधस्तनप्रलोकगताचत्वारिंशत्संख्याऽनुमीयते—अत्रापिप्राक्तनप्रलोकगतं त्रिरात्रोपोषितइतिसम्बध्यते इतिचमिताक्षरा=अर्थात्—मिताक्षराकार यह भी कहितेहैं कि बारबार जपने मध्ये जो यह कहाजावै कि कितनी संख्यातक बारबार पाठ किया जाय और कितने दिन कियाजाय तौ फिर ३०३ तीनसौतीनके इतिक्रमें ४० चालीसकी संख्या जो आहुतोंपर कही गई और ३०४ के प्रलोकमें भी स्वीकार करी गई वही यहां भी पाठों पर अनुमान होतीहै और उसी ३०४ के प्रलोकमें तीन रात्र उपवास करना कहाया सो भी यहां समुभिलेना कि तीन दिन तक उपवास किये हुये सहस्रशीर्षा आदि सूक्तके पाठकी आवृत्ती करता रहै—इसवात का प्रमाण भी वृहत् विष्णुका यह वचनहै कि (त्रिरात्रोपोषितःपुरुषसूक्तजपहोमाभ्यां गुरुतल्पगः शुध्येत्) अर्थात्—तीन दिन व्रत कियेहुये पुरुष सूक्तका जप और होम इन दोकामों के करनेसे गुरु भार्या गाम्भी शुद्ध होवै (तीनों पापियोंको गोदान करना ऊपर कहि चुकेहैं) मिताक्षराकार कहितेहैं कि यह प्रायश्चित्त जो कहागया सो इच्छाविना स्वतः वनिपरे पातक पर समुभ्रना और अगिले वचनसे मनुका कहा प्रायश्चित्त भी इच्छाविनाके वनिपरे पातकपर समुभ्रना=यथाहमनुः=हविष्यन्तीयमभ्यस्यनतमंह इतीतिच जपित्वापौरुषसूक्तमुच्यतेगुरुतल्पगः (इत्येकादशाध्याये २५१ श्लोकः= अर्थात्—हविष्यन्तीयनाम के वेदोक्त मंत्रको बारम्बार अभ्यास करिके या नतमंह इत्यादि नामके मंत्रको या इतिमेमनः इसमंत्रको या पौरुषसूक्तको जपिके गुरुभार्या गाम्भी सुक्त होताहै (अक्षरार्थ केवल यहीहै सो लिखागया) परन्तु मनुमुक्तावली टीका और मिताक्षरामें इस वचनकी संस्कृतव्याख्या जैसी लिखीहैं और उनमें कुछ थोड़ाया अन्तर भी प्रतीत होताहै तिससे उन दोनोंको तद्रूप यहां दर्शातेहैं=तत्राहकृत्तुः—हवीति—हविष्यन्तमजरंस्त्विदामेकोनविंशतिंऋचः नतमंहोदुरितमित्यष्टौ हविष्यन्त इतिवा इतिमेमनः शिवसंकल्प इतिचसूक्तं सहस्रशीर्षा पुरुषइत्येतच्च योऽङ्गसूक्तंमासमेकंप्रत्यहमभ्यस्येतिग्रन्थात्प्रकृतत्वात्तयोऽङ्गसूक्तंमासेनजपित्वा गुरुदार गःतरनात्पापान्मुच्यते—इत्येकादशाध्याये २५१ प्रलोकटीका=अथार्चामिताक्षरायथा—हविष्यन्तीयमजरंस्त्विदामेकोनविंशतिं इतिवा• इतिमेमनः— सहस्रशीर्षेत्येया मन्यतलस्य मासं प्रत्यहं योऽङ्ग योऽङ्गऋचां चत्वारिंशत्संख्याकजपउक्तो मनुनासो यकामविययएव=कामतस्तु=मंत्रैःशाकलहोसीयैरितिसूक्तन्द्रय्यं=अर्थात्—प्रथम

कृष्णकभट्टकृत व्याख्यामें यह तात्पर्यहै कि—जिन जिन ऋचाओं वा सूक्तोंकी सम-
स्या मनुके वचनमें उपस्थितहै तिनकेसाथ अभ्यासकी आज्ञा लगीहोनेसे अनेकवार
जप करना समुभागाया और (कबतक या कितने बार इस प्रश्नकी अपेक्षामें) पहिले
२४८ के प्रलोकमें रोज रोज सोरहवारका नियम और एक महीने तक प्रायश्चित्त
करनेका नियम जो मनुजी कहिचुकेहैं उसी प्रकृतआज्ञासे यहां भी एक महीनाभर
हररोज सोरहवार कोई सा एक मंत्र निरन्तर जपिलिया करै तौ गुरुदारगामी शुद्ध
होजाताहै=इसी वचनकी व्याख्यामें मिताक्षराकारने इतना भेद अधिक याज्ञवल्क्य
जीके वचनके अनुसार और भी दर्शायाहै कि=उक्त मंत्रोंमें कोईसा एक मंत्र महीना
भर तक सोरह सोरह चालीसकी संख्यासे गुणाकर जप किया करै क्योंकि योगी-
श्वरके ३०३ तीनसौतीनवाले मूलप्रलोकमें चालीसका नियम आचुकाहै तिससे सो-
रहको चालीसगुणा करनेसे ६५० छःसौ चालीस मंत्र नित्यम्प्रति जपने ढहिराकर
पीछेसे कहाहै कि यह प्रायश्चित्त भी उसीपर आरूढ होगा जिसपर विना इच्छा
के पाप होशयाहो=किन्तु कामना से किये हुये पाप मध्ये=मनुका दूसरा वचन जो
पहले भी लिख चुके हैं सो देखौ=यथा=मंत्रैःशाकलहोमीयै रवद्वहुत्वाघृतद्विजः
सुगुर्वप्यपहंत्येनोजप्तवावानमइत्यृचस (इत्येकादशाध्याये २५६ मनुः=अर्थात्—देवकृत-
स्य—इत्यादि वेदके मंत्र जो शाकल होमीय इस नामसे कहातेहैं तिनसे एक सालभर
निरन्तर हररोज घी का होम करिके वह द्विजाती शुद्ध होजाताहै जिसने गुपतीश्वर
वड़ेसे बड़ा भी पाप इच्छा सहित कियाहो। अथवा इस होसको न करसके सो (नम
इन्द्रश्च इत्यादि) इस ऋचाको एक सालभर जपिके वड़ेपापको धो देवै ॥ ० ॥ मि-
ताक्षराकार फिर कहितेहै कि जिसने उक्त पापको इच्छा सहित कईवार कियाहो
तिसकेलिये अगोक्त प्रायश्चित्त देखना कि जैसा यद्विंशन्मतनाम के ग्रन्थका यह
कथनहै=यथा=महाव्याहृतिभिर्होमस्तिलैःकार्यैद्विजन्मना उपपातकशुद्धयर्थमहस्र
परिसंख्यया । महापातकसंबुक्तोलसहोमेनशुद्धयतीति (तदावृत्तिविययसिनिमिना
सरा=अर्थात्—जिसने सिर्फ उपपातक मात्र कियाहो ऐसे द्विजाती को उस पापकी
शुद्धिकेलिये तिलोंसे एकसहस्र आहुतियोंकाहोम महाव्याहृतियोंमें करना चाहिये
जो गायत्रीके साथ होतीहै । परन्तु जिसने महापातक रूपी पाप कियाहो वह गुरु
लक्ष आहुतियोंसे शुद्ध होताहै (सो यह एक लाख आहुतोंका होम उसीपर समुष्क-
ना जिसने उसीपापको कईवारकियाहो यह मिताक्षराने निर्गायने निपटारा किया
॥ ० ॥ फिर कहितेहैं=यत्तुयमेनोक्तं=जपेदाद्यस्यवासीयंपावसानोरयापिवा कृन्ताप

स्वालखिल्यांश्चनिविस्त्रैयान्पृथ्याकपिस होत्रिरुद्रान्सकज्जप्त्वा सुच्यतेसर्वपातकैः
 (इतितह्यभिचारिणीवियथसितिमिताक्षरा=अर्थात्-यक्षने जो कहाहै कि (अस्य
 वानस्यइत्यादिवेदमंत्रको) या (पावमानीनासकी ऋचाओंको) या (कुन्तापइत्या-
 दिको) या (वालखिल्यनासकवेदके मंत्रोंको) या (निविस्त्रैयान्मंत्रोंको या पृथा-
 कपिइत्यादि ऋचाको या होत्री आदि ऋचाको या रुद्रोंकेमंत्रोंको—इनमें किसीमंत्र
 को सकृत् एकहीवार जपिके सर्व पापोंसे शुचिजाताहै (मिताक्षराकार कहितेहैं कि
 यद्यपि यसने गुरुदार गमन सम्बन्धी सभी पातकोंसे छुटि जाना कहा तथापि केवल
 उसकेलिये यह प्रायश्चित्त समुहना कि जिसने गुरु पिता आदिकी व्यभिचारिणी
 भार्यासे अज्ञानतामें संगम कियाहो क्योंकि एकहीवार जपना कहा तिससे यह प्रा-
 यश्चित्त अति छोटा प्रतीत हुआ=अत्रमर्यादाप्रियस्तु (विज्ञाता पुरुषोंको इसवात
 पर दृष्टि देनी चाहिये कि यहां पर यम का यह एकही वचन लिखा गया तिससे
 केवल सकृत्शब्द देखनेसे एकहीवारकाजपना समुहनागया परंच ऐसा नहीं समुहना
 किन्तु यसकी स्मृतिमें इससे पहिले वचनोंको देखना चाहिये जो कुछ संख्या और
 अर्वाधि उनमें नियत होचुकीहोगी वही प्रकृत नियम इस अवोक्त वचनमें भी लिया
 जाता होगा जैसा पंच अभी ३०४ तीनसौ चारकी अधिकोक्तिमें आचुकाहै कि मनु
 के ग्यारहवें अध्यायवाले २५० श्लोकमें २४८ श्लोकसे सम्बन्ध चलाआताथा कु-
 ल्लकभट्टी टीका से दर्शाया गया• अन्यथा एकही वार किसी एक मंत्रके उच्चारण
 करनेसात्रसे सहापातक नहींधोयेजासक्त हैं ॥ ० ॥ ऊपरकी व्यवस्था देखकर मिताक्षरा
 कार फिर कहितेहैं कि—सुख्य सहापातक (गुरुदार गमन) से उपराल जो गुरुतल्प
 के अति देश जानेजातेहैं जिनका लक्षण २३२।२३३ दोसौत्रतीस तेतीस की अवि-
 कोक्तों सहित उन्हीं सप्तश्लोकोंमें कहागयाथा• उन्हीं पातकोंको गुप्तौअर जिमने
 किया हो अथवा सुख्य गुरुतल्प के समान सहापातक जो २३१ दो सौ इकतीस
 सप्त श्लोक और उनी की अधिकोक्ति से दर्शाये गये थे तिनको जिसने गुप्तौअर
 किया हो जिन पातकों को ग्रन्थान्तर की व्यवस्था से पातक या अतिपातकनाम
 धरा गया हो तिन सबसे से किसी एक पापका करने वाला पौना प्रायश्चित्त साधै
 अर्थात् जो कुछ इनी ३०५ तीन सौ पांच की अधिकोक्ति में प्रायश्चित्त कहागया
 हो तिसमें चौथाई कम करै=और=इस से भी हलके पातक जो ग्रन्थान्तर की व्यव-
 स्था से उपपातकों में गिनती हैं तिनको जिसने गुप्तौअर किया हो सो आधाही
 प्रायश्चित्त करै ॥ फिर कहिते हैं कि जो ऐसा विचार उस वर्तमान समय पर न

कर सके तौ विकल्प से अग्रोक्त हारीतका कहा प्रायश्चित्तभी कियाजासक्ता है= तथाच हारीतः=पातकातिपातकोपपातक महापातकानामेकतमे सन्निपातेवा अध- मर्यामेवत्रिर्जपेदिति=अर्थात्-पातक १ अतिपातक २ उपपातक ३ महापातक ४ इन चार प्रकारों में किसी एक प्रकार का पातक जिसने गुप्तौअर कियाहो अथवा इन में से मिले श्रुले कई प्रकार के पातक इकट्ठे सकही पुरुष पर होगये हों तौभी जहां और कुछ प्रायश्चित्त न होसक्ताहो तहां अधमर्यागा सूक्त मन्त्रही को तीनवार जपै (इसमें भी तीन वार का जपना सकही दिवस न समर्पण लेना अर्थात् इच्छा दिना होगये पातक पर तीन दिवस या पाप के वड़ापन में एक महीना भर और इच्छा सहित क्रिये पातक पर एक सालभर निरन्तर तीनवार जपना चाहिये कि जैसा निर्णय ऊपर होचुका है सो सब यहाँ भी हारीत के वचनपर समझना ॥० ॥ सैतीसवें ३७ परिच्छेद वाली २६१ दोसौ इकासटि की अधिकोक्ति में (खल्लम पातकों के प्रसंग से) अनुक्ता यह वचन लिखा गया था कि (योयेनपतितेनेयां सं- सर्ग्यातिसानवः सतस्यैवप्रतंकुर्यात्तत्संसर्गादिशुद्धये) इन सब तरह के पातकियों में जिस किसी का संसर्ग हेतु लेल जो कोई शुद्ध पुरुषभजै सोभी उसी पातकीके करने योग्य प्रायश्चित्त का व्रत साधै-विज्ञानेश्वर कहिते हैं कि उसी पूर्वोक्त नियम से यहाँ भी रहस्य पापों के प्रायश्चित्तों पर समझ लेना कि जिस प्रकार के महापा- तकी का संसर्ग जिसने किया हो उसीका प्रायश्चित्त उसको भी गुप्तौअर कर्तव्य है और(यह न कहना चाहिये कि पढाने आदि कामों का संसर्ग जो अनेक कर्ताओं से उत्पन्न होता है तिससे उसमें (रहस्यता) छिपौअर बना रहना यह नहीं सिद्ध होता है) क्योंकि अनेक कर्ताओंका संबन्ध होने पर भी पर स्त्री समन के समान छिपौअर होना सिद्ध होता है कि जैसे पर स्त्री संगस के समय भी वह पुरुष और स्त्री दो कर्ता तौ अवश्य ही उसके सदाहुआ करते हैं तौभी जबतक उन दो से उपरालू तीसरा या चौथा आदि कोई उस काम को नजाने तब तक (रहस्यता) रक्षानता कही जाती है तिससे अवश्यही रहस्य प्रायश्चित्त भी लगना है ॥ जैसा यह महा- पातकियों के संसर्ग नियमपर कहा गया तैसा अतिपातकी आदि ओरों के संसर्ग में भी उन्हीं का प्रायश्चित्त उनके संसर्गों को करना चाहिये ॥ ३०५ ॥

(इतिगुल्लम्पमहापातकप्रायश्चित्तं)

(इतिसर्वमहापातकरहस्यप्रायश्चित्तानांसमाप्तिः)

७८ अठत्तरि के परिच्छेद में रहस्यों की साधारण मिली भुली मर्यादा कहि-
कर केवल ब्रह्महत्या के प्रायश्चित्त कहे गये फिर उनासी ७९ के परिच्छेद में सर्व
महापातकों के प्रायश्चित्त कहे तिससे महापातकों का निपटारा यद्यपि होचुका
परन्तु रहस्यों का प्रकरणा अबतक नहीं पूरा हुआ किन्तु उपपातक आदि पापों
को अगिले परिच्छेदों में देखना तब इक्यासी परिच्छेद के अन्त में जाकर इसप्र-
करणा की समाप्ति होगी ॥

अथ उपपातकादीनां प्रकीर्णकपर्यंतानां भिद्विषे षानां च सर्वेषां रहस्य प्रायश्चित्तप्रबोधकोऽयं परिच्छेदः अशीतितमः (८०)

—*—

इस परिच्छेद में सब तरह के उपपातक जो गोवध से आदि लेकर छप्पन
प्रकार के प्रकाश प्रायश्चित्तों के स्थल में दर्शाये गये तिनके रहस्य प्रा-
यश्चित्त यहां जाने जायेंगे और भी प्रकीर्ण पापों पर्यंत अति छोटे
पापों के प्रायश्चित्त इसी में मिल सकेंगे ॥

(सर्वोपपातकादीनां प्रायश्चित्तं)

प्राणायामशतं कार्यं सर्वपापानुत्तये उपपातकजातानामनादिष्टस्य चैवाहि ३०६ ॥

अर्थः—सब पापोंकी अपनुत्तिकेलिये उपपातकोंसे उपजेहुयों के और अनादिष्ट
केलिये भी प्राणायामोंका सैकरा करना चाहिये=अर्थात्—गोवध आदि ५६ छ-
प्पनप्रकारके उपपातक जो २३४ दोसौ चौतीस मूल श्लोक से लेकर २४२ दोसौ
बयालिस तक दर्शायेगये उनमेंसे जिस किसी कर्मको छिपीअर कोई करै तिनसे
उपजे पापोंकी अपनुत्ति अर्थात् धोडारनेकेलिये सकसौ प्राणायाम करने चाहिये•
तथा अनादिष्ट जिन पापोंके नासहे कोई रहस्य प्रायश्चित्त इसप्रकरणा में न कहा
गयाहो जैसे जातिधंगकर संकरी करणा बलिनी करणा आदि नासोंके पाप जो म-
न्वादिस्मृतियों में विदितहैं तिनहीको छिपीअर कोई करिवैटे तिसके पाप धोनेके
लिये भी प्राणायामोंका सैकरा करना चाहिये• तथैव सभी पापोंको धोडारने के

लिये भी प्राणायाम क्रियेजासकते हैं अर्थात् सर्व पाप कहनेसे कोई पाप छूटा हुआ नहीं रहा किन्तु पूर्वोक्त महापातकों को आदि लेकर सबसे छोटे प्रकीर्णक पापों तक जितने पाप स्मृतिमें होते हैं तिनमेंसे चाहें कोईसा बड़ा या छोटा पाप जिस किसी ने छिपीया किया हो और प्राणायाम करनेका अभ्यास जिसको अच्छीतरहसे हो रहा हो तिसको अन्य प्रायश्चित्त करनेकी अपेक्षा अधिक नहीं है वहकेवल प्राणायाम साधनकारिके शुद्ध होतका है तहां इतना भेद है कि छोटेपापोंपर थोड़े और बड़े पापोंपर बहुत प्राणायाम करने होंगे तिसका ब्यौरा अधिकोक्ति में देखो ॥ ३०६ ॥

३०६ अधिकोक्तिः—महापातकोंमें कोईसा एक पातक छिपीया जिसने किया हो तिसको चारसौ ४०० प्राणायाम करने चाहिये। जिसने अति पातकों में कोई पाप किया हो तिसको तीससौ ३०० प्राणायाम करने चाहिये। जिसने अनुपातकों में कोई पाप छिपीया किया हो तिसको दोसौ २०० प्राणायाम करने चाहिये उपपातकोंपर एकसौ १०० मूलमें कहिचुके सोईकरे—इसरीतिसे प्राणायामकी संख्या से कल्पना करनी चाहिये—क्योंकि—प्रकाश प्रायश्चित्तों में यह एक नियम कहा गयाथा कि जिस महापातक पर जितना प्रायश्चित्त करना कहाहो उसी पापको यदि कोई ऐसे ढंगसे उत्पन्नकरे कि उपपातकोंकी गिनतीमें आजाय महापातकोंकी गिनतीमें न रहे तहां उस महापातकपर लिखा प्रायश्चित्त उसको सिर्फ चौथाई करना चाहिये सब नहीं—उसी नियमके न्यायसे यहां भी यद्यपि उपपातकोंपर ठीक ठीक सकही सैकरा प्राणायामोंका लिखा है तथापि पापोंके बड़ापनपर अधिकता होनी उचित है—इसीप्रकार प्रकीर्णक नासकेपाप जो सबसेछोटे गिनेजातेहैं जिनका स्वरूप ७४ चौहत्तरके परिच्छेद में वर्णन होचुका है कदाचित्त उनमेंसे कोई पाप छिपीया किया हो तिसको सौ १०० प्राणायामसेभी कसतीकी कल्पनाकरनी चाहिये—इसीकल्पनाके अनुरूपआगे इसकीकही व्यवस्थादेखी—यथाहयमः=दशप्रणव संयुक्तः प्राणायामैश्चतुःशतैः बुच्यते ब्रह्महत्यायाः किंपुनः गेयपातकैः=अर्थात्—दशसौ कारणसे संयुक्त प्राणायाम चारसौ ४०० संख्या तक (जितने दिनोंमें होसकें) साधन करनेसे ब्रह्महत्या से भी छूटिजाता है फिर और पापोंसे छूटिजाना क्या बड़ी बात है कुछ नहीं—इसी व्यवस्थापर व्रीदायनमुनिने कुछ दिग्गय एक जुवाप्रकार भी दर्शाया है—यथा=अपिवाक् चक्षुःश्रोत्रदृश्याणामनोव्यतिक्रमैद्युजिभिः प्राणायामैः शुद्ध्यति १ शुद्धीगमनान्नभोजनेयुप्यक्पृथक् सहाहंसहसहप्रणायामान्धारयेत् २ अभस्याभो- र्यानेष्ट्यप्राशनेयुतयावाऽपरायविक्रयेयु सद्गुसांखदृततैल लाकालवगारमात्रजंयुय-

चाध्यन्यदेवयुक्तं द्वादशाहं द्वादशद्वादशप्राणायामान्धारयेत् ३ अथपातकोपपातकव
 र्जयचान्यदेवयुक्तं अर्द्धसासं द्वादश २ प्राणायामान्धारयेत् ४ अथपातकपतनीयवर्जं
 यचाध्यन्यदेवयुक्तं समासं द्वादश २ प्राणायामान्धारयेत् ५ अथपातकवर्जं यचान्यदप्येव
 युक्तं द्वादशाहं सासात् द्वादश २ प्राणायामान्धारयेत् ६ अथपातकेयुसंवत्सरं द्वादश २
 प्राणायामान्धारयेत् ७ इति वौधायनाः (अस्यचसिताक्षरायां व्यवस्था यथा) तत्र
 वाक् चक्षुरित्यादिना प्राणायामत्रयं प्रकीर्णाभिप्रायं १ शूद्रस्त्रीगमनान्नभोजनेत्यादि
 नोक्ताः कौनपंचाशत् प्राणायामा उपपातकाविशेषाभिप्रायाः २ तथा अभस्याभोज्ये-
 त्यादिनोक्ताश्चतुश्चत्वारिंशदधिकशतप्राणायामा अप्युपपातकविशेषाभिप्राया एव
 ३ अथपातकोपपातकवर्जमित्यादिनोक्ताः साशीतिशत प्राणायामा जातिभ्रंशकराद्य
 भिप्रायाः ४ अथपातकपतनीयवर्जमित्यादिनोक्ताः यद्यधिकशतत्रयप्राणायामाः शीव
 वाद्युपपातकाभिप्रायाः ५ अथपातकवर्जमित्यादिनोक्ताः यद्यधिकशतसहितद्विसहस्र
 संख्याकाः प्राणायामा अतिपातकानुपातकाभिप्रायाः ६ अथपातकेष्वित्यादिनोक्ता
 विंगत्यधिकशतत्रययुक्ताश्चतुःसहस्रप्राणायामा महापातकविषया इति सिताक्षराका
 राः ७ = अर्थात्—वौधायन का बहुत बड़ा वाक्य जिसके बीच बीच सात अंक देकर
 जुदे सात भेद अर्थात् प्रिय लेखकने अर्थों की सुगमता चाहिके करदिये हैं प्राचीन
 ऋषिय वाणी और दूरदेशी देशान्तर चलचाल की तरासपर संस्कार उसका होनेके
 हेतुसे आधुनिक वा अत्रत्य संस्कृत वाणीकी अन्वय परिपटीसे अर्थलगाना उसका
 भासकहै क्योंकि अर्थ लगानेसे मुख्य प्रयोजनमें व्यतिक्रम आजाताहै—इसीहेतु से
 सिताक्षराकारने एक निराली व्यवस्थाके साथ उसका गोल गोल फलादेश प्रकाश
 कियाहै उसीके भाया अर्थ व्यौरेवार दशातिहैं समुझी कि—अपि वाक् चक्षु आदि
 प्रथम भेदके लेखमें सिर्फ तीन प्राणायाम करने जो वौधायनजीने कहे तिनको प्र-
 कीर्णादि नामके अति तुच्छ पाषोपर समुझना जिनका स्वरूप ७४ चौहत्तरिके परि-
 च्छेद मे दर्शाया गयाथा १ ॥ एवं शूद्रस्त्री गमनान्न भोजन आदि द्वितीय भेदमें सात
 दिन सात सात ४६ उनचास प्राणायाम करने जो कहे तिनको सबसे छोटी क्रिसमके
 उपपातकों पर समुझना क्योंकि (उपपातक मुख्य छद्मनभांतिके २३४ दोसौ चौं-
 तीसमूल श्लोक से लेकर कहे गये उन से उपरालू भी छोटे सोटे अनेक होते हैं)
 उनमे जो सब से छोटी क्रिसम समुझी जाय तिसका यहां प्रयोजन देखि परता
 है २ ॥ एवं अभस्या भोज्य आदि तृतीय भेद में बारह दिन बारह बारह २४४
 एकसौ चत्वारिंश प्राणायाम जो कहे तिनकोभी जुदे उपपातकोंपर समुझना अर्थात्

(छोटी किस्म को दूसरे भेदमें कहि चुके उनसे कुछ बड़े उपपातक यहांपर समझे जाते हैं) जो सध्यस किस्म के होते हैं ३ ॥ अथ पातकोपपातक आदि चतुर्थ भेद में पन्द्रह दिन बारह बारह १८० सक्र सौ अस्सी प्राणायाम जो करने कहे तिनको जाति भ्रंशकर संकरी करणा खलिनी करणा आदि नामोंके कुछ बड़े उपपातकोंपर समझना (क्योंकि जैसे क्रमसे प्राणायाम अधिक होते आते हैं तैसेही पापोंमें बड़ापन पाया जाता है ४ ॥ अथ पातक पतनीय आदि पाँचवें भेद के पाठ में तीस दिन बारह बारह ३६० तीन सौ साठ प्राणायाम जो कहे तिनको गोवध आदि बहुत बड़े उपपातकों पर समझना (केवल उपपातकों की चार किस्में छोटी बड़ी इस प्रयोजन पर करी गई ५ ॥ अथ पातक वर्ज आदि छठे भेदके पाठ में छः सहीने तक बारहबारह २१६० दो हजार एकसौ साठ प्राणायाम जो कहे तिनको अतिपातक और अनुपातक दोनों किस्म के पापोंपर समझना (ये दोनों किस्में यद्यपि सभी उपपातकों से बड़ी हैं तथापि महा पातकों से छोटी हैं) इन पातकों के सब जुदे दर्जा के तान भेद समझने चाहिकर २४२ दोसौ ब्यालिस की अधिकोक्तिको देखौ ६ ॥ अथ पातकेयुसंवत्सर आदि सातवें पाठ में सालभर पूरे तीन सौ साठ दिनतक बारह बारह प्राणायाम कुल ४३२० चार हजार तीनसौबीसकरने जो कहे तिनको महापातकों पर समझना (क्योंकि यह सबसे बड़े पातक होते हैं इन्हीं पर इतनीबड़ी संख्या सूचित हुई • यह व्यवस्था मिताक्षराकार ने उसी बौधायन के वाक्यपर स्थापन करी ७ ॥ इसमें प्राणायामों की तादाद जो कुछ लिखी गई सो सब बौधायन की कही ठीक ठीक है और पातकों की छोटाई बड़ाई का जैसा अनुक्रम यहां मिताक्षराकार ने व्यवस्थापित किया सो भी इसी प्रकार से न्यायात्मक देखि परता है क्योंकि इस क्रमके न होने से बौधायन के वचनों की सीजा नहीं मिल सकती थी—परन्तु—पाठक जनों को इतना संदेह शेषरहा कि यह गोलमगोल व्यवस्था जो कही गई तिसको बौधायन के मूल वचनों पर किस रीति से घटावें क्योंकि उनके अक्षरों पर इस गोल व्यवस्था की अखला नहीं मिलती है जिसके मिलजाने बिना विश्वास नहीं आता है—तिसके—अर्थात् परिपाठी संपादक उन दोनोंकी अखला मिला कर आगे जुदी व्याख्या दर्शाते हैं जिससे जिज्ञासुओं का मनोरंजन होसके ॥ अथ दृयोःशृंखलामेलनं= बौधायन कहते हैं कि (अपिवाक् चक्षुः योत्र त्वक् घ्राणा मनो व्यतिक्रमेषु) अपि शब्द से राहा जिन्दा की शंका रूपी संभावना अपने मनही में समुचित होने पर • उन कारणां से कि • वाक् वाराी का व्यतिक्रम रूपी पाप

जैसा किसी शिष्ट को एकान्त में गाली देना या क्रूर वचन कहि देना या गुरु को मन्दुख आते देखि प्रणाम शब्द कहिना योग्य था सो नहीं कहा गफलत से भूति-गया तो भी यह वारणी का व्यतिक्रम हुआ अथवा हाँसी ठूटा आदि में निरर्थक असत्य बोला हो इत्यादि नाना भाँतिसे समझना और वारणी की सहचरी रक्षना जिह्वा भी मुखही में होती है तिसमें झुरीति का भोजन करना आदिभी उसका व्य-तिक्रम कहा जाता है सोभी तुच्छ पाप में समझना जैसे जलके साथ बाल आदि मुह में चला गया या खुला धरा पानी पीलिया हो इत्यादि किन्तु जूटा भोजन कर लेना आदि बड़े पापका चर्चा यहां नहीं है प्रायश्चित्त छोटा होनेके हेतुसे। एवं चक्षुस् नेत्रों का व्यतिक्रम जैसा अश्लेष्य विष्टा आदि पर दृष्टि परगई या पुत्र वधु आदि को कुदृष्टि से देखा अथवा कुदृष्टि किये बिना भी उनके किसी लज्जा वाले अंग पर अपनी दृष्टि धोखे से पर गई हो तौभी यह नेत्रोंका व्यतिक्रम ठहिरा इत्यादि नाना-भाँति से। एवं श्रोत्र कानों का व्यतिक्रम जैसा महात्मा की निन्दा आदि सुनि परी या कोई अपशकुनरूपी शब्द किसी जीवका रोदन आदि सुनि परा हो इत्यादि। एवं त्वचा खालरूपी इन्द्रिका व्यतिक्रम जैसा खाल सब देहभरमें होती है उसमें कहींपर किसी मलीन वस्तुका छुडजाना या पुत्र वधु आदिके हाथ पाओंसे अपना हाथ पावें आदि कोई अंग धोखासे भिडजाना एकदोय है सो यह त्वचाका व्यतिक्रम कहिलाता है इत्यादि। एवं घ्राण इन्द्री जो नाक है तिसका व्यतिक्रम जैसे विष्टा वा मद्य आदि की दुर्गंध नासा के छिद्रों में घुसि गई हो इत्यादि। एवं मनोव्यतिक्रम जैसे मन सबही इन्द्रियों का अधियाता है उसके द्वारा ईश्वर का स्मरण और संसार की भलाईवाले विचार करने मनका मुख्य धर्म है तिसको छोडि के दूसरों की बुराईवाला विचार करने लगा हो। इत्यादि नाना भाँतिके छोटे पाप प्रकीर्ण कहिलाते हैं। इन सात इन्द्रियों के व्यतिक्रम जो कहे गये तिनमें किसी एकही के होने पर तीन प्राणायाम करने कहे—इनसे उपरालू मिताक्षराकार के व्यवस्थापित किये प्रकीर्णक नामके पापभी इन्हीं सात इन्द्रियोंसे उत्पन्न होते हैं चौहत्तरि ७४ परिच्छेद में २६१ दोसौ इक्क्यानवे मूनप्रलोकसे आदि लेकर खूब सोचिके समझौ किन्तु उनपर भी तीनही प्राणायाम सूचित हुये—तहां यह विचार भी करना चाहिये कि उनमें भी जो कुछ बड़े बड़े पाप देखि परें तिनको जुदे खींचिके निचले दूसरे भेदवाले पापोंके साथमें जोड़ना अर्थात् उनके ऊपर सिर्षा तीनही प्राणायाम नहीं बल्कि निम्नोक्त उनवास करने चाहिये। अहां तक पहिले भेदका मालान हुआ ॥ १ ॥=बौधायन फिर कहिते हैं कि (शूद्रस्त्रीगमना

अभोजनेषु पृथक् पृथक्) शूद्र जातिका दिया हुआ अन्न या शूद्रका हुआ अन्न पानी या शूद्रका देखा हुआ तैयार अन्न ये सब दूषित और निषिद्ध होते हैं तिसका भोजन करनेना • एवं स्त्रीके संगम समय भोजन करना या स्त्री के साथ भोजन करना • एवं राह चला भोजन या राह चलते भोजन करना • इन तीनों तरहके भोजनरूपी दोषों में जुदा जुदा प्रत्येक निमित्तपर सात रोज तक सात सात प्राणायाम करै क्योंकि ये एक प्रकारके छोटे उपपातक हैं निदर्शनके निमित्त कहे गये किन्तु इन्हींके उपलक्षणा से और भी छोटे उपपातक समुभोजाते हैं—इसीलिये विज्ञानेश्वरने इनतीनोंसे उपरालू इनके समान छोटे उपपातकों पर उनचास ४६ प्राणायाम समुभासये उनका स्वरूप हुंहे मिलसक्ता है ७० । ७२ । ७३ सत्तरि और बहत्तरि और तिहत्तरि परिच्छेदों में विस्तारसे बरान हो चुका तहां देखौ ॥ २ ॥=बौधायन फिर कहते हैं कि (अभक्ष्या भोज्या मेध्य प्राशनेषु) तथावा (अपराय विक्रयेषु) मधु मांस घृत तैल लाक्षा लवण रसान्न वर्जेषु (यच्चाप्यन्यदेव्युक्तं) अर्थात् (अभक्ष्य वह कि जो निषेध खानेके योग्य ही न हो जैसे पियाज आदि निषिद्ध चीजें • अभोज्य वह कि यद्यपि अन्न आदि पदार्थ खानेके योग्य हैं पर किसी अशुद्ध प्राणीके छुड़जाने या सलीन वस्तु से भिड़ जाने आदि कारणोंसे भोजनकी योग्यता उसमें नहीं रही • अमेध्य वह कि जो अपने आप स्वरूप से देखने में भी अत्यन्त सलीन और अपवित्र हो जैसे विष्टा राधि पीव खंखार आदि • अत्रोक्त तीनों प्रकारमें कोईसक भी वस्तु मुंहमें धरै या हलकमें उतारै तिन पापोंमें) तथा वा पक्षान्तरमें और भी जो जो पाप इन्हींके समान होतेहों तिन में भी (अपराय विक्रयके पापोंमें भी कि जिन चीजोंका बेचना छत्तीसमे मूलश्लोक से अरतीसमे तक नियेव किया गयाथा उन्हींको यदि छिपकर बेचा हो तहां बारह दिनतक हररोज बारह बारह प्राणायाम करै) परन्तु मधु मांस घी तैल लाख नमक रस गौरस अन्न इनका भी बेचना सबकेसाथमें नियेव किया गयाथा तिनको यहां छोड़िके अपराय विक्रयका यह प्रायश्चित्त समुभूना क्योंकि चालीसमे मूलश्लोक से ये जुदे इतने पतनीय कहे गयेथे तिससे इनके बेचनेवाले को यह छोटासा प्रायश्चित्त बड़े अनर्थमें गिनती यह तात्पर्य है (अत्रापि अन्यतसंबंधुक्तं •) और भी जो कुछ पाप इसीप्रकार ठीक ठीक संस्कार में होताहो जो इन्हीं पापोंके समान समुभूना जाय जिसका नाम यहां नहीं लिखा तिसमें भी यही प्रायश्चित्त समुभूना यह सब कथन बौधायनका है—इसीलिये विज्ञानेश्वरने अत्रोक्त २४४ श्लोकसोचवालिप्त प्राणायामोंको और भी सद्यन क्रिस्मके उपपातकोंपर व्यवस्थापित किया है (भला किनको

मध्यम किस्मके समुभ्रना इसअपेक्षामें) ५३ त्रेपन परिच्छेदकी आदिसे ६८अरसाठि परिच्छेदके अन्त तक जितने उपपातकों के प्रकाश प्रायश्चित्त कहेगयेहों तिनको मध्यमसमुभ्रना परन्तु उनसबमेंसे जिनका स्वरूपजातिभ्रंशकरोंमें या संकरीकरणोंमें या अपात्रीकरणोंमें या मलिनीकरणोंमेंभी देखिपरै तिनकोछोड़िके यहनियमसमुभ्रना क्योंकि दोजघे गिनतीहोनेसे दोतरहका प्रायश्चित्त नहींकियाजायगा औरदो में जहां छोटा प्रायश्चित्त होय सोभीनहीं किन्तु बड़ाकियाजायगा तिसकेलिये यह छूट लिखी गई है सो समुभ्रि लेना ॥ ३ ॥=वौधायन फिर कहते हैं कि (अथपातकोपपातकवर्जयचान्यदेवयुक्तं) ऊपर कहे पापों से अनन्तर और जो कुछ बढ़िया पाप लगा हो तहाँ ऐसे उचित है कि पन्द्रह रोजतक बारह बारह प्राणायाम करै परन्तु पातक नामके पापों और बहुत बड़े उपपातक नामके पापोंको वर्जितकरके उनसे निचले बढ़िया पापका यह नियमजानो—अर्थात्—वौधायन के इस कथन का यह तात्पर्य है कि मध्यम उपपातकों से कुछ बड़ेहों पर उत्तमदर्जाके उपपातकों से कुछ मध्यम हों तिनके लिये यह पखवारे का प्रायश्चित्त जानो—इसीलिये विज्ञानेश्वर ने अत्रोक्त १८० एकसौअस्सी प्राणायामों को जातिभ्रंशकर आदि पापों पर समुभ्रना या जिनके चारौनाम अभी तीसरे पाठके अन्तमें लिखेगये देखि लो। इनके प्रकाश प्रायश्चित्त ७४ चौहत्तरि के परिच्छेद में कहिचुके हैं। इन्ही के अत्यन्त स्वरूप लक्षणा २४२ दोसौ वयालिस की अधिकोक्ति में जाकर समुभ्रि ॥ ४ ॥=वौधायन फिर कहते हैं कि (अथ पातक पतनीय वर्जयचाप्यन्यदेवयुक्तं) अथनाम ऊपरले पापों से अनन्तर जो और बड़ा पाप है उसमें पातक और पतनीयोंको छोड़िके ऐसा उचितहै—अर्थात्—पूरे पातक और पतनीयजो पातकसे कुछ नीचे दर्जामें होतेहैं इन दोभाँतिसे उपरालू जो इन दोनोंसे नीचे दर्जामें अन्यभाँतिके ऐसे पापहों जो ऊपरले चौथे पाठवालोंसे कुछ बड़े समुभ्रजायँ तिनहीमें ऐसाकरना उचितहै कि एक लहीनाभर हररोज बारह प्राणायाम साथै यह वौधायनका कथन है—इसीलिये विज्ञानेश्वरने अत्रोक्त ३६० तीनसौसाठि प्राणायामोंको गोवध आदि बहुत बड़े उपपातकों के अभिप्राय पर समुभ्रना कहा क्योंकि इस प्रकार के वेही प्रतीत होतेहैं उनके स्वरूपों को समुभ्रना जिसको आवश्यक हो तो ५० चालीसवें परिच्छेद से लेकर ७० वाकन परिच्छेद की अंत्य सीमातक देखी कि उन्ही तेरह परिच्छेदों में गोवधको आदि लेकर जितने उपपातकोंके प्रकाश प्रायश्चित्त कहे गयेहों उन्हींकेरहस्य प्रायश्चित्त यहां तीनसौ साठि प्राणायामसे दर्शायेगये॥५॥=

बौधायन फिर कहते हैं कि (अथपातकवर्जयच्चान्यदप्येवमुक्तं) अथानन्तरं
 यद्यथाप्यन्यदपिपातकवर्जस्थात्तत्रयवउक्तं इतियोजना) ऊर्ध्वोक्त पापों से ऊँचे
 चढिकर अनन्तर उनसे लगभग यदि औरही बढिया पापहोय जो पूरेपातकसे वर्जित
 होय तहाँ सेसे कहाहै—अर्थात्—पाँचवें पाठवाले पापों से कुछ ऊँचाहोय परंच पूरे
 पातकोंसे कुछ नीचा होय तिनमें ऐसा कहा है कि एक छमाही भर हररोज बारह
 प्राणायाम साधै(यहाँपर पातक या पूरे पातकसे सहापातक समझा गयाहै क्योंकि
 पाठके क्रमसे अर्थात्हीका क्रम बलवान् होताहै (इसी न्याय से सिताक्षराकारने अ-
 न्नोक्त २१६० इक्षीससै साठि प्राणायामों को अतिपातक और अनुपातकों के अ-
 क्षिप्रायपर ठहिराया है कि जिससे आगे सातवें पाठसे विरोध न आनेपावै ॥ ६ ॥=
 बौधायन फिर कहते हैं कि (अथपातकेषुसंवत्सरं)उर्ध्वोक्तोंसे ऊँचे चढिकर उनसे
 अनन्तर जो सबसे बढिया पातक अर्थात् जिससे ऊँचा कोई और पाप न होता हो
 तिनमें एक सालभर हररोज बारह प्राणायाम साधै—इसी लिये सिताक्षराकार ने
 अन्नोक्त ४३२० तैत्तलिससैवीस प्राणायामोंको सहापातकोंके विषयपर ठहिराया
 है क्योंकि उनसे बड़ा कोई और नहींहै ॥ ० ॥ सहापातक० अतिपातक० पातक० अ-
 नुपातक० उपपातक० इन सबके मुख्य स्वरूप २४२ दोसौ ब्यालिककी अधिकोक्ति में
 देखौ वहाँ इनके एक एकमें कईकईभेद हैं परंच सहापातकोंसे बड़ा कोई नहीं है०
 उपपातकोंमें परस्पर छोटाई बड़ाईके हेतुसे चारपाँचक भेदहोतेहैं ॥ ० ॥ विज्ञानेश्वर
 अपना विचार कुछ और भी दर्शाते हैं कि(इदं चामस्याभोज्येत्यादिनोक्तं प्रायश्चित्त
 पंचकं अत्यन्ताभ्यासविषयं सुदुश्चित्तविषयं वा (अर्थात् बौधायन के पहिले दो पाठ
 भेद छोडिके शेष पाँच भेदोंके पाठमें जो पाँच प्रकारके प्रायश्चित्त कहेगये तिनको
 अत्यन्त अभ्यासक्रिये पापोंपर समझना कि जिसने बारबार वही एकपाप किया
 हो अथवा सकहीबार सिलेभुले कईपाप एकसाथ होरायेहाँ तिनपर भी इन प्राय-
 श्चित्तों की श्रेयता होगी ॥ फिर कहते हैं कि अनुके अन्नोक्त नचनवाला प्राय-
 श्चित्त भी अथवाही के विषय पर समझना=बदाहनुः=सन्तर्पास्थूलसूक्ष्माणांचि
 कीर्त्तनपतोदकश्च अवेत्पृच्छंजपेद्वद्वंयत्किंचिदसितीतिच=अर्थात्—सहापातक आदि
 स्थूल पापोंका तथा उपपातक आदि सूक्ष्म पापोंका अपनोदक करना चाहते हुये
 यह प्रायश्चित्तकरै कि (अवइतिऋचं) अर्थात् अवतिहेलो वरुगा इत्यादि ऋचाको
 एक सालभर या (यत्किंचिदं) अर्थात् यत्किंचिदं वरुगा वेदोजल इत्यादि ऋचाको
 एक सालभर और (इतिइतिचऋचं) अर्थात् इतिभेसतश्च इत्यादि ऋचावाले सूक्तको

एकवार नित्यप्रतिजपाकरै=अत्र मिताक्षराकाराः (यत्तुमनुनाअब्दंयावत्प्रत्यहमर्यात रात्रिस्त्रेयुकालेषु अवतेहेलेत्यादीनांश्चचांजपउक्तःसोप्यभ्यासविषयः) अर्थात् मनुने जो एक वर्षभर अवते आदि तीन ऋचाओंका जप इस ढंग से करना बताया है कि हररोज अपने अन्यजस्तरी कामोंके हर्जबाले समयोंसे उपरालू फुर्सतके समयपर एक बार जपाकरै• सोभी यह बारवार के अभ्यासबाले पापोंका प्रयोजन देखिपरता है क्योंकि सालभरका प्रायश्चित्त बहुत बडाहै ॥ ० ॥ इन सब रहस्य प्रायश्चित्तों में यह एक शंका खडी रहीहै कि ऊपरकी व्यवस्था में सभीतरह के पाप दर्शायेगये जो जो प्रकाश प्रायश्चित्तों में आचुके थे उनमें बहुधा पाप ऐसे हैं जो हर्गिज गुप्तोंअर नहींकिये जासक्ते हैं इसका दृष्टान्त जैसे ४८ अडतालिस के परिच्छेदमें परि-वेदनके नामसे एक विवाहरूपी पाप कहागया जिसमें विवाह ठहिरानेवाला कराने वाला औरनाईपुरोहित आदि अनेक मनुष्योंकीसहायतासे कार्य सिद्धहोताहै वे सभी उसको जानते हैं तो फिर क्योंकर गुप्तोंअर पाप ठहिरै जिसका रहस्य प्रायश्चित्त कियाजाय जैसा यह एक दृष्टान्त कहा तैसे और भी अनेक पापहैं जो किसी तरहसे छिपिनहीं सक्ते=इसके समाधान भी अनेक हैं=प्रथम तो यहीउत्तर देनाचाहिये कि जोवात नहींछिपसक्तीहै उसमेंरहस्य प्रायश्चित्तका संबंध क्यों जोडतेहौउसमेंप्रकाश ही प्रायश्चित्त किया जायगा जो उसके लिये पहले से नियत होचुका• दूसरा यह उत्तर है कि विरले स्थलमें वहीकर्म छिपाहुआ भी होजाता है (तहाँ रहस्यही प्रायश्चित्त की जरूरत होगी (क्योंकि भाट पुरोहित आदिका जानना गिनती में इस लिये नहीं आताहै कि वे खुद भी कुछपाप भागी होते हैं अर्थात् सहायकों को भी प्रायश्चित्तकी योग्यता पहिले लिखचुके हैं इसीलिये यह नियम है कि जिस पाप दो जितने सहायआदिकतकी साथीहों तिनसेउपरालूलोगजालिषावै औरनिन्दासहित चर्चाकरै तभी प्रकाशकी पदवीतक पहुँचताहै अन्यथा सहायोंको जानने मात्रसेनहीं• कदाचित्त यह कहिने से आवै कि भाट पुरोहित आदिसे उपरालू कुछ वराती भी अवश्य होंगे तो भी यही उत्तर है कि वे वराती भी उसके सहायों से गिनती होसक्ते हैं तिनसे उनका भी जानना प्रकाशकी पदवी तक नहीं जासक्ताहै क्योंकि यदि उनको उनका अन्यायपाप स्वीकारठहिरा तभी उसकेसाथी आवराती वने अर्थात्प्रायश्चित्त भी तब होताहै कि यातौ पापी आपही धर्मके डरसे मन से रत्नानि पैदा करै या पंच विरादरी आदि कोई निन्दा करनेपर उताव होवै•तहाँ जो साथी वरातीवने वे आपही प्रायश्चित्त के संसर्ग भागी होनेके हेतुसे सुखिया की निन्दा नहीं करसक्ते हैं और

उत्तमे उपरालू उसके बिरादर आदि यद्यपि इस कर्मका होना सुनिकर जानैभी परन्तु धर्मके बोध बिना या और किसी हेतुसे निन्दा करने पर उताह न होय तौ यह पाप उसका अनेकों के जानने पर भी प्रकाश होनेकी गिनती में नहीं आया गुप्तौअर में रहिरा तिससे सेसी दशामें यदि मुख्य पापी आपही पापके भयसे सनमें रत्नानि को उत्पन्न करै तिसकी शुद्धि रहस्य प्रायश्चित्त से होसकी है इसीलिये प्रकाश और अप्रकाश दो भाँतिके प्रायश्चित्त निर्मित हुये हैं तिससे कोई भी स्थल शंका करने योग्य नहीं है ॥ ३०६ ॥ यद्यपि योगीश्वर ने भी खवही उपपातकों पर सकसौ प्राणायामकरने कहे तथापि आपही उसका थोडासा अपवाद नीचे दर्शावैगे• अर्थात् अगिले मूल श्लोक से उसी की अधिकोक्ति में भी जितने उपपातकों पर जुदा प्रायश्चित्त दर्शावैगे तिनपर वही प्रायश्चित्त करना चाहिये किन्तु ऊर्ध्वोक्त प्राणायाम नहीं ॥ ३०६ ॥

(क्वचित्प्राणायामशतस्यापवादः)

ओंकाराभिप्लुतःसोमसलिलंपावनंपिवेत् । कृत्वातुरेतोविरामूत्रप्राशनंतुद्विजोत्तमः ३०७

अर्थः—रेतस् वीर्यधातु विष्टा सूत्र• द्विजोत्तम द्विजाती इनको मुह में चीखके यह प्रायश्चित्त करै कि सोमसलता (एक बेलि) का सलिल स्वरस निचोडि उसको ओंकार से अभिसन्वित करै वही पावन है अर्थात् शरीर का पवित्र करने वाला रस होता है तिसको पीलेवै ॥ ३०७ ॥

३०७ अधिकोक्तिः— विज्ञानेश्वर कहिते हैं कि यह प्रायश्चित्त केवल उसके लिये समभक्ता जिसने वीर्य विष्टा आदि इच्छा बिना धोखा से चखलिया हो— किन्तु चाहिकर चखने वालेको सुसन्तु का बताया करना चाहिये—यदाह सुसंतुः= रेतोविरामूत्र प्राशनंहात्वा लक्षुण्यलांडुयुञ्जन कुम्भकादीना सन्येयांचाभक्ष्यादीनां भक्षणांहात्वाहंसप्रासङ्गच्छुट अष्टगालादिनांसभक्षणात्त्वा ततः कराटनात्रमुदक सत्रतीर्य शुद्धिवतीभिः प्राणायामसहात्वा ब्रह्मव्याहृतिभि रुरोगमुदकंपीत्वा तदेतस्मात्पूतोभवति=अर्थात्—वीर्य विष्टा सूत्र चादि के या लहडुन प्याज राजर कुम्भीसात आदि अन्य अभक्ष्यों का भक्षणा करिके या हंस घरेलू दुर्गा कुत्ता दिआर आदि के नांस खाइके तिस पाप के हेतु से यह प्रायश्चित्त है कि गले के लदान रहिरे जलमें गोता लगाइ उसी जल में खड़े होकर शुद्धवती नाम की ऋचाओं से प्राणायाम करिके फिर ब्रह्मव्याहृतियों से पढि कर जल इतना पीवै जो हृदयतक पहुँचै अधि-

क नहीं तिन कर्म को करने से इस पाप से छुटि कर पवित्र हो जाता है ॥ ० ॥ मनु ने भी अभक्ष्य भक्षणा और असत्प्रतिग्रह को लिये एकजुदा प्रायश्चित्त देकर ऊर्ध्वोक्त प्राणायासोंका छुटकारा (अपवाद) दर्शाया है—यथा=प्रतिगृह्याप्रतिग्राह्यं भुक्त्वा चान्नविरहितं जपंस्तरत्नसंदीप्यं पूयतेऽथानवद्व्यहात=अर्थात्—जोकोई वस्तु वनादिक दान के द्वारा ग्रहणा करने योग्य नहो सो अप्रतिग्राह्य कहाती है जैसेविय गल्ल सदिश हाड आदि या चण्डाल महापातकी आदि पतितों का कोईसा वनहो सोभी जिनका स्वरूप २६० दोसौ नव्वेकी अधिकोक्ति में कहिचुके उनमेंसे कोईवस्तु लेकर पाप भागी जो हुआ हो अथवा सात भाँति के अभक्ष्य जो ६६ उनहत्तरि से तिहत्तरितक पांच परिच्छेदोंमें वर्णानहुयेये उनमेंसे कोई निन्दित अन्नआदि जिसने खाड लिया हो वह दोयी पुरुष तीन दिन इन्हीं चार मन्त्रोंका जप करतेहुये शुद्ध होता है अर्थात् (तरत ससन्दी धावती) इत्यादि चिह्न वाली चारों ऋचाओं को अयागक्ति के अनुवार या पाप की लघुता गुरुता के अनुवार घोडी या बहुत संख्या अपने तात्कालिक विचार से कल्पित करै कि इतना जप करना चाहिये=ध्यानकरो=अत्रोक्त पापों पर यह दूसरा प्रायश्चित्त आरूढ होजाने से पूर्वोक्तप्राणायासों का निरादर होगया इसी को धर्म शास्त्र में अपवाद नाम कहिते हैं इसी को भाया से छुट या छुटकारा समझिलेना कि इतने पापों में प्राणायास की जरूरत नहीं परन्तु यह विवेक इतना उपरालूहै कि विवेकी पुरुष यदि अपने पाप दोषको कुछ गहिरा समझै कि सिर्फ सोमलताका रस पीने साइसे संतुष्टि भेही न होगी तिसको दोनो विधि करनी चाहिये अर्थात् इससे पहिली अधिकोक्ति में लिखे बौधायनवाले ४६ उनचास प्राणायास या १४४ एकसौ चवालिस प्राणायास अथवा योगीश्वरके बताये सौ १०० प्राणायास या इनमें से इच्छाके अनुसूप कमीदेकर सावना किये पीछे सोमालता का रस पीवै अथवा जहाँ सोमालता न मिलसकै तहाँ भी अवश्य प्राणायासही करनेहोरो तिसने यह तात्पर्य नहींहै कि निषट प्राणायासोंका करना किन्ही नियम में सिनती हो बल्कि उनकी सावना में कठिनता जानिके दूसरी सुगम गति यहाँ कहीगई ॥ ० ॥ दीर्घ विद्या सूत्र आदि ण िरके सेल जलयें जोडना एक पापहै यह औरोंके देखते कम होता बल्कि दुपत्तोग्र अधिक होताहै तिससे इसके मध्ये एक जुदा प्रायश्चित्त सन्तुपे कहाहै (अत्रणरतंयु तत्राप्युवासनासीतभैक्ष्यभुक्त्वा) जलोंके भीतर दिद्या दीर्घ करवाजादि सुराकर्त करिके एकदहीना भोग्यसौमि भोजन कियाकरै तब उन पूर्वोक्त प्राणायासोंको करिके शुद्धहोय अन्यथा प्रायश्चित्त

न करने से छिपे पाप की वृद्धि होती रहेगी कि जैसे ऋणा के ऊपर व्याजकी वृद्धि होती रहती है ॥ ३०७ ॥

(अतितुच्छपापस्यप्रायश्चित्तं)

निशायांवादिवावापियदज्ञानकृतंभवेत् । त्रैकाल्यसंध्याकरणान्तत्सर्वविप्रणश्यति ३०८

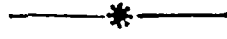
अर्थः—रातिमें या दिनमें जो अज्ञानसे कियाहोय=अर्थात्—अति छोटी किस्मके प्रकीर्णक पाप जो किये गयेहों राति या दिनमें पुस्त्यकी भूलसे और छोटी या बड़ी किस्म के उपपातक जो केवल मनके विचारही में उत्पन्न हुये हों या केवल मुहसे कहिडारने मात्रसे उत्पन्न हुयेहों सो सब तीनोंकाल की संध्या उपासन करने से विनाश होजातेहैं• पर इनसे बड़ेपाप संध्यासे नहीं मिटते हैं ॥ ३०८ ॥

३०८ अधिकोक्तिः=इस वार्तामें यमका वचन प्रमारा है=यथा=यदद्वाकुस्तेपा पंक्मरणासनसागिरा आसीनःपश्चिमांसंध्यांप्राणायामैर्निर्हंतितत्=अर्थात्—कर्म या मनसे या वाणीसे जो कुछ पाप दिनमें पुस्त्य करता है सो सब साँझ की संध्यापर वैदि प्राणायामोंसे विनाश करदेता है=सवंशातातपस्तु=अनृतंसद्यगन्धंचदिवामैथुन मेवचपुनातिवृषलाचंचसंध्यैर्वह्निउपासिता=अर्थात्—असत्य बोलना या मदिराआदि दुर्गंधें संघना या दिन में स्त्रीसे मैथुन करना आदि छोटे छोटे पाप यहाँतक कि शूद्र का दियाहुआ अन्नभी खायाहो सबको संध्या ही उपासन करीहुई पवित्र करदेती है पर बड़िया पापों में नहीं (संध्या वहिरुपासिता)कहीं ऐसा भी पाठ देखागया है तिससे यह अर्थ सिद्धहोताहै कि वहिर्देश वस्तीसे बाहर किसी मैदानके पुरायस्थान पर कूप तड़ागआदिका सहारालेकर संध्याकरीजाय जहाँ सूर्यका पूरा विम्ब आसन के सन्मुख और समस्त किरणों की प्रभास्वपी सूर्य की वृत्तियाँ अपने सब अंग पर आसकें और मनुष्योंका संघात जहाँ न होय ऐसे निर्दंड ठिकानेपर चित्त लगाकर अच्छी आराधनासे करीहुई संध्या अपने पूरे फलको देसक्ती है ॥३०८ ॥

अगिले परिच्छेद में वेदों की ऋचा आदि समस्त मन्त्रोंका संग्रहकरिके एकत्र दर्शावैगे कि जिनमंत्रों काप्रयोजन सर्वत्र प्रायश्चित्तों में जहाँ तहाँ आनि परताहै ॥ और बिरले प्रायश्चित्तभी कहेंगे ॥

अथ सकल महापातकादि पापहर साधारण पावित्र मन्त्र जप होमानां नाम चिह्न स्वरूप प्रकाशकोऽयं

परिच्छेदः एकाशीतितमः (५१)



इस परिच्छेद में उन सभी मन्त्रों के नाम चिह्न दर्शाये जायेंगे कि जिनका जप करना प्रायश्चित्तों में कहि चुके • बल्कि बहुधा मंत्र ऐसे इसमें मिलेंगे जिनका चर्चा कहीं नहीं आया तौभी उनके जपने से सर्व पापों का नाश होसक्ता है • इसी में वेदाभ्यासी पुस्तक का प्रायश्चित्त और पूरे ज्ञानी ध्यानी का प्रायश्चित्त साधारण सभी पापोंपर एकही रूप से दर्शावेंगे ॥

(सर्वपापहरा मंत्राः)

शुक्रियारण्यकजपोगायत्र्याश्रविशेषतः । सर्वपापहराह्येते रुद्रैकादशिनी तथा ३०९

अर्थः—शुक्रिय • आररायक • गायत्री • इनका जुदा जुदाही जप तथा • रुद्रैकादशिनी • ये सब जुदे जुदे सर्व पापों के हरने वाले होते हैं—अर्थात्—शुक्रिय इस नाम से भी वेदहीका एक अंश है जिसका पता सिताक्षराकारने यह दिया है (विद्यानिदेवसवितः—इत्यादि वाजसनेयके पठ्यते) इस पदको आदि लेकर यजुर्वेद की वाजसनेयी शाखा में जिसका पाठ है • तथा आररायक भी वेदही का अंश है जिसका पता यह दिया है (आररायकं च—ऋचं वाचं प्रपद्ये मनोयज्ञः प्रपद्ये इत्यादि तत्र च पठ्यते) कि आररायक भी ऋचं वाचं प्रपद्ये आदि कहता है उसका भी पूरा पाठ उसी वाजसनेयी शाखा में पढा जाता है—इन दोनोंका जप ऐसा उग्र है कि महापातक आदि सकल पापों का विनाश होता है तथा इनसे जुदा गायत्री का जप अत्यंत उग्र है तथा रुद्रैकादशिनीका अर्थात् ११ एकादश रुद्रों के रुद्रानु वाक्स्वधी मन्त्र जो वेदही में प्रसिद्ध हैं उन सबका यही एक नाम है तिनका जप सबसे अधिक उग्र है कि जिससे महापातक आदि सभी पाप हरे जाते हैं और (मूल प्रलोक में व्याख्य इस चक्रार के ध्वन्यर्थ से अथमर्याता आदि और भी अनेक मंत्र सर्व पापों के हरने वाले होते हैं तिनको भी समझ लेना उनके मध्ये वशिष्ठ का वचन अविनाशिक में देखना ॥ ३०९ ॥

३० ६ अधिकोक्तिः—शुक्रिय आदि मन्त्रोंका जप कितनाकरै इस अपेक्षामें सर्वत्र यह समझिलेना कि जैसा बडा या छोटा पापहोय तैसा बहुत या थोडा जप अपनी बुद्ध से विचार किया जासक्ता है जैसा गायत्री के मध्ये सिताक्षराकार ने व्यवस्था नियत करी है कि=गायत्र्याश्च महापातकेषु लक्ष सित्तिपातकानुपातकयोर्दशसहस्रं उपपातकेषु सहस्रं प्रकीर्णाकेषु शत सित्तयेवंविशेषतो जपः सर्वपापहरः=तथाच शंखेनोक्तं=शतं जज्ञातुसावित्री तुच्छपापविनाशिनी सहस्रं जज्ञातु तथापातकेभ्यः प्रमोचिनी दशसाहस्रं जाप्येन सर्वकिल्बिषविनाशिनी लक्षं जज्ञातुसादेवी महापातकनाशिनी—सुवर्णा स्तेयघ्नद्विप्रो ब्रह्महायुरुत्तल्पराः सुरापश्च विशुद्ध्यन्ति लक्षं जप्त्वा न संशयः=अर्थात्—सिताक्षराकार कहितेहैं कि गायत्री का जप महापातकों में एकलक्ष संख्याकरना कहा है इस हेतु से पातक तथा अनुपातकों पर दस हजार चाहिये और उपपातकों पर एक हजार और प्रकीर्णाक पापों पर एकसौ संख्या रखनी चाहिये इस तरह जुदी जुदी विशेषता से सभी पाप हरेजाते हैं=यही क्रम शंखजी ने कहा है कि=सावित्री एक सौ संख्या मात्र जपी हुई तुच्छ पापों अर्थात् प्रकीर्णाकों का विनाश करतीहै तथा एक हजार जपी हुई पातकों अर्थात् उपपातकों से छुटाइ देती है दश-हजार जाप करने से सर्व किल्बिष अर्थात् पूरे पातक और अनुपातक नाशकरनी है पुनि एक लक्ष जपी हुई वह गायत्री देवी महापातकोंका विनाश करतीहै—किन्तु—सुवर्णा का चुराने वाला ब्राह्मण और ब्रह्महत्या करने वाला और गुरु भार्या संगम करने वाला और सुरापान करनेवालाभीये चारों महापातकीहोते हैं ये सब एकएक लाख जप करिके शुद्धहोजाते हैं सन्देह न करना ॥ ० ॥ यत्तु चतुर्विंशतिमतेनोक्तं=गायत्र्यास्तु जपेत्कीर्तिं ब्रह्महत्यां च्यपोहति लक्षाशीतिं जपेद्यस्तु सुरापानाद्विमुच्यते पुनाति हेमहतरिं गायत्र्या लक्षसहस्रतः गायत्र्या लक्षव्ययात् मुच्यते गुस्तल्पराः इति (तद्गुरुत्वात्प्रकाशविषय सित्तिसिताक्षरा=अर्थात्—चतुर्विंशति मत वालों ने जो कहा है कि—गायत्री का किरोड जप करै तिससे ब्रह्महत्या मिटि जाती है और जो अस्ती लाख संत्र जपै वह सुरापान के पातक से छुटि जाय और गायत्री का सत्तरि लाख जप किया हुआ सुवर्णा चुराने वाले को पवित्र कर देता है और गायत्री के साठि लाख जप से गुस्तल्परासी शुद्ध होता है० यह कहा (सिताक्षरा कार कहिते हैं कि यह प्रायश्चित्त अति बड़े होने के हेतु से प्रकाश पापों के दिग्भोजन पर सम-भना किन्तु यहां रहस्य पापोंपर नहीं ॥ ० ॥ रुद्रैर्दानाशिली के मध्ये यह वचनहे=सकादशागुरान्दापि रुद्रानादत्यर्धमवित् सहस्रं चतुर्पापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः=

अर्थात्—ग्यारह रुद्रमंत्रों को ग्यारह गुणा लौटि लौटि जपिके वह पुरुष महापापों में भी छुटि जाता है इसमें मन्द्देह नहीं (जबकि इसमें महापातकों पर ग्यारह गुणी आकृति कही गई तो फिर इनसे छोटे अति पातक आदि पर कम कल्पना करनी चाहिये अर्थात् चौथाई चौथाई यथा क्रमसे कमकरते चले आना यह तात्पर्य है ॥ ० ॥ च शब्द के ध्वन्यर्थ से अधर्म्यगा आदि अन्य मन्त्रोंका संग्रह समभिलेना जो कर्त्तव्यके तिनके मध्ये वशिष्टका अग्रोक्त वचन है—यथा— सर्ववेदपवित्राणावस्थ्या-स्य हमतःपरस्य येषां जपैश्च होमैश्च प्रयत्नेनात्र संशयः अधर्म्यगां देवकृतं शुद्धवत्यस्तरत्स-माः कूपसांड्यः पावसान्यश्च दुर्गासावित्र्यथैव च । अभियंगाः पदस्तोमाः सामानिव्याह-तीस्तथा भारुंडानि च सामानि गायत्रं रैवतं तथा पुरुषव्रतं च भासं च तथा देवव्रतानि च अच्लिंगावार्हस्पत्यांवा वाक्सूक्तं मधुसूक्तं तथा शतरुद्री आथर्वशिखरिस्त्रिसुपर्णा महाव्रतं गोसू-क्तं चाथर्वसूक्तं च इन्द्रशुद्धिं सामनी ॥ त्रीण्यज्य दोहानि रथंतरं च अग्नेर्ब्रतं वामदेव्यं वृ-हत्तयानि पुतानि पुनंति जंतुं जातिस्मरत्वं लभते यदिच्छेत्—अर्थात्—यहां से वशिष्ट जी उन मंत्रोंके नाममात्र दर्शाते हैं जो वेद में सर्वथा पवित्र गिनेजाते हैं जिनका जप करिके या होस करिके पापी लोग पवित्र होते हैं तिनके नाम—अधर्म्यगा•देवकृत•शुद्धवन्ती•तरत्समादि•कूपसांडियां•पावसानियां•दुर्गा•सावित्र्यः•अथ•अभियंगाः•पदस्तोगाः•सामानि•व्याहृतियां•भारुंडानि•चसामानि•गायत्रं•रैवतं•पुरुषव्रतं•भासं•देवव्रतानिच•अच्लिंगाः•वार्हस्पत्यं•अंवा•वाक्सूक्तं•मधुसूक्तं•शतरुद्री•आथर्वशिखरं•त्रिसुपर्णा•महाव्रतं•गोसूक्तं•अथसूक्तं•इन्द्रशुद्धिं•सामनी ॥ त्रीण्यज्य दोहानि•रथन्तरं•अग्नेर्ब्रतं•वामदेव्यं•वृहत्—ये इतनी सब ऋचायें ऐसी हैं कि जपने से जीवोंको पवित्र करती हैं और जो जातिस्मरत्वको इच्छा करिके निरन्तर सेवन करै तो वह भा पावै ॥ ३०६ ॥

(गायत्र्यात्तिलहोमः सर्वपापेष्वेव)

यत्र यत्र च मन्दीर्णमात्मानं मन्यते द्विजः । तत्र तत्र तिलहोमो गायत्र्या वाचनं द्विजैः ३१०

अर्थः—हिजाती पुरुष अपनेको जहां जहां मन्दीर्ण मानै अर्थात् ब्रह्महत्या आदि कौड़े महा पाप लगीजाने में उसके दोष से अपने को जटित समझै तहां तहां सर्वत्र गायत्री से तिलों का होस करै और ब्राह्मणों से तिलों से वाचन करावै ॥ ३१० ॥

३१० अधिकोक्तिः—महापातकों पर गायत्री से पूरा एक लक्ष होस करना चातियेकोक्ति (गायत्र्यात्तिलहोमेन मुच्यते सर्वपातके रितियस्मरणां) यमका यह

वचन है कि गायत्री से एक लक्ष होम करने में सब तरह के पातकोंसे मुचि जाता है—
 इससे नीचे अतिपातक आदिपर यथा क्रमसे एक एक चौथाई कमी देकर होमकर-
 ना चाहिये=तथा तिलैर्वाचनं कार्यं=तदाह रहस्याधिकारेऽशिशुः=वैशाख्यांपौर्णा-
 मास्यांच ब्राह्मणान्पंचसप्तत्र सौद्र्युक्तैस्त्रिलैःक्षणां वाचयेदथवेतरैः (इतरैःशुक्लै-
 रित्यर्थः) प्रीयतान्धर्मराजेतियद्वासनसिबर्त्तते यावज्जीवहृतंपापंतत्क्षणादेवनश्यांतं=
 अर्थात्—योगीश्वर ने गायत्री से तिलों का होम या तिलोंसे वाचन कराना दो बात
 कहीं तिनसे वाचन का विधान वशिष्ठ ने रहस्य प्रायश्चित्तों के रहस्याधिकार में
 कहा है कि=वैशाखी पूर्णासासी के रोज पाँच या सात ब्राह्मणों से सहत लगे काले
 तिलों से अथवा छुपे ही तिलों से वाचन करावै किस मन्त्र से सो कहिते हैं कि
 (प्रीयतां धर्मराज) इस मन्त्र से अथवा जो कुछ कामना मन में होय तिसका मन्त्र
 बतावै जैसा (असुक्त पापं विनश्यतु) इत्यादि मन्त्रों से वाचन कराने में जहां तक
 जिन्दगी भरमें पाप किया हो सो सब उसी समय नाश हो जाता है (यद्यपि यो-
 गीश्वर की विद्वक्षा अनुसार सहत लगे तिलों से होम करावै यही अर्थ ठीक प्रतीत
 होता है) परन्तु विज्ञानेश्वर की अगिली विद्वक्षा से वशिष्ठके इसवचन सेभी वाचन
 शब्द का अर्थ तिलदान करना समझा गया है तथा (ब्राह्मणान् पञ्चसप्तत्र) इस
 द्वितीया विभक्ति से भी यह तात्पर्य प्रकटहोता है कि सहत लगे तिल पाँच सात ब्रा-
 ह्मणों को दान देकर प्रीयतां धर्मराज यह वाचन करावै= इसीलिये विज्ञानेश्वर ने
 इसी वचन के अनन्तर खेडा कहा है कि=अनियत कालं अपिदानंते नैवोक्तं=अर्थात्-
 व-जिस वशिष्ठ ने पूर्णासासी के नियत काल पर यह दान बताया उसीने अनियत
 कालों में भी चाहें तब दान करना कहा है=यथा=क्षणाजिनेतिलान्कृत्वा हिरण्यं
 सधुसर्पिणी । दशतियस्तुविप्राय सर्वंतरति दुष्टकृतम्=अर्थात्—काले मृगडाला पर
 काले तिल धरिके और सोताधरिके सहत घृतधरिके जो ब्राह्मणको देता है वहयभी
 अपने दुरे पापों को भेटता है (दोनों वचन पर दृष्टि देकर यह विचारना चाहिये
 कि पहिले वचन से (सौद्र्युक्तैस्त्रिलैः) सहत लगे तिल कहिने से होम ही करना
 समझा जाता है तथापि विज्ञानेश्वर की विद्वक्षा से यदि उसको दान करना लक्षित
 लियाजाय तो फिर घृक्त शब्दसे भी सहत कालगाना तिलमें नहीं किन्तु माय हेना
 पर देना माना जायगा कि जैसा इस दूसरे वचन में क्षणाजिन के ऊपर तिल सहत
 आदि अनेक चीजें धरनी कही गईं— तिससे जहां जैसा सम्भव हो तहां उसी प्रयो-
 जन वाले किसी एक अर्थ का खीकार करना योग्य होगा ॥ ० ॥ व्यासेनाप्युक्तं=

तिलधेनुं च यो दद्यात्संयतात्मा द्विजन्मने ब्रह्महत्यादिभिः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः = अर्थात् व्यासने भी कहा है कि जो कोई आप अपने इंद्रियादिक शरीर को तप के द्वारा गृह करिके तिल धेनु रूपी दान ब्राह्मण को देता है सो ब्रह्महत्या आदि महापापों से छुटिजाता है (तिल धेनु वही कहाती है कि मृगच्छाला के ऊपर तिलधरिके सोना चांदी सहित या शक्ति के अनुरूप सोने चांदी के पात्र में या ताँबे के पात्र में या ढाकर आदि पवित्र पत्तों परही यथाशक्ति काले तिल सोने चांदी सहित धरिके उसी को धेनु रूप मानि के पाप मोचन के अर्थ से संकल्प करै) विज्ञानेश्वर कहिते हैं कि जैसे दोचार दान यहांपर दशाये तैसे इनको आदि लेकर और भी अनेक दान हैं जो रहस्य काराड में और जहाँ तहाँ ग्रंथों में जाने जाते हैं सो सब उन्हीं द्विजाती लोगों के लिये समझना जो पढ़े परिशुद्ध न होने से जप होस करने में समर्थ न हों तथा स्त्री काय और गूढ़ जाती पुस्त्योंके निमित्तमें समझना जो सदाही वेद मन्त्रोंके अधिकारी नहीं हैं = विज्ञानेश्वर फिर कहिते हैं कि = यत्तु यमेनोक्तं = तिलान्ददाति यः प्रातः स्तिलान्स्पृशति खादति तिलस्नायी तिलान्जुह्वन्सर्वतरति दुष्कृतम् - तथा - द्वे चाटुर्यानुसालस्य चतुर्दश्यांतयेव च अस्नानास्था पूर्णामासी सप्तसीद्वादशी द्वयम् संवत्सरसंज्ञानः कृतं विजितेन्द्रियः मुच्यते पातकैः सर्वैः स्वर्गलोकं च गच्छति = यथात्रिणोक्तं = एषोराद्योपेयपर्यंके आयास्यां सविशोद्वारिः निद्रांत्यजति कार्तिक्यांतयोः सप्तजयेद्वरिश्च ब्रह्महत्यादिकं पाप क्षिप्रमेव व्यपोहति - इत्यादि तत्सर्वं विद्या विरहिणां कामाकामसकृदभ्यासदियद्यतया व्यवस्थापनीयमिति सिताक्षरा = अर्थात् = यमने जो कहा है कि - जो कोई अपने पाप की बड़ाई अनुसार किसी नियत करी अत्रवि तक रोज निरंतर प्रातःकाल तिलों का स्पर्श (हाथों से छुडलेना) किया करता और तिलों को पानी में पानिके रान और तिलों का होल साधारण सात्र विना सन्धके भी और तिलोंका दान करिके तिलोंको खाइके व्रत करता है और तबतक इंद्रियोंको जीति अपने वश में राखता है सो सब तरहके पातकों से मुचि जाता और स्वर्गलोकमें भी जाता है = और जो अत्रिने यह कहा है कि = सीरसागर से शेषनागरूपी शयनपर आयाही पूर्णामासी के रोज दिप्पामसदान् निद्रालेनेको प्रवेशकरते हैं फिर कार्तिकी पूर्णामासांभंजाकर निद्रात्यागते हैं इन दोनों पूर्णामासीके रोज हरिको यथा विधान से जो कोई अच्छी तरह पूजे सो ब्रह्महत्या आदि पाप को तत्काल विनाश करदेता है • इत्यादि और भी जो कुछ दान पूजन दासी लिखा देखीं जो सब ऐसे लोगों के लिये जो विद्या में विहीन होयें उनके पाप की बुराई कृत दार का अनेक बार और कामना से चाहिकर पाप

करने या बिना इच्छा पाप होजाने के जुदे जुदे भेदों पर व्यवस्था कल्पितकरलेनी चाहिये अर्थात् जैसा छोटा बड़ा पाप देखौ तैसा छोटा बड़ा दान पूजन आदि प्रायश्चित्त सोचौ ॥ ३१० ॥ विद्यावान् पुत्र्य जो नित्य नैमित्तिक धर्म क्रियासे भी संपन्न होय उसपर यदि कोई पाप दशा भोखे से बनिजाय अर्थात् पाप से डरते बचते हुये भी वैदगतिसे होजाय तिससे उसके चित्त की छिपी हुई अतिशय ग्लानि खड़ी होय तिसका जुदा नियम आगे कहिते हैं ॥ ३१० ॥

(सर्वधर्मनिवृत्त्याज्ञानकृत पापस्यविशेषः)

वेदाभ्यासरतंक्षांतंपंचयज्ञाक्रियापरम् । नस्पृशंतीहपापानिमहापातकजान्यपि ३११

अर्थः—वेद के अभ्यास में निरत क्षमायुक्त पंचयज्ञों की क्रिया में तत्पर को इहाँ कोई पाप नहीं स्पर्श करते हैं महापातक से उत्पन्न हुये भी—अर्थात्—इहाँ संसार में जो कोई पुरुष वेदाभ्यास को रखते हुये क्षमा से भी संयुक्त होय जो पीड़ा देनेवाले की पडा सहिद्वार प्रतिकार कुछ न करता होय और पंचयज्ञों की क्रिया में शास्त्रोक्त विधि से सब लगा रहित हो तिसपर यदि कोई पाप कभी दैवयोग से बनि जाय तौ वह उसको नहीं लगता है चाहें महापातक ही क्यों नहो ॥ इसका विशेष तात्पर्य अगिले ३१२ के श्लोक में देखना ॥ ३११ ॥

३११ अधिकोक्तिः= वेदाभ्यासस्यलक्षणां (वेदस्वीकारसांपूर्वं विचारोऽभ्यसनं तपः तद्दानं चैव शिष्येभ्यो वेदाभ्यासो हि पंचधा) अर्थात्—वेदाभ्यासी उलूका नाम है जिसने प्रथम वेद आदि शास्त्र को पढा फिर सनन के प्रकार से विचार क्रिया फिर उसके पाठ आदिका अभ्यास कई बार क्रिया फिर उसमें लिखे तपको क्रिया फिर शिष्यों को उस वेद का पढाने द्वारा दान क्रिया हो तौ यह पाँच भाँति का वेदाभ्यास कहा जाता है तिसके होने पर भी पुरुष में क्षमा होती यह शर्त है। क्षमा का लक्षणा एव यही है कि जिसमें दुखदाई को प्रतिकार करने की समर्थ विद्यमान हो तौ भी क्षमा करिके प्रतिकार कुछ न करने का स्वभाव जिसका होय। और पंचयज्ञ जो नित्य क्रिये जाते हैं यह सबसे बड़ा धर्म गृहस्थी का प्रसिद्ध है तिससे पंचसहायज्ञ उनका नाम है पाँचोंके जुदे नाम एक ब्रह्मयज्ञ जो ध्यान पाठ आदि रूपोंसे होता है १ देवाग्नि यज्ञ जो देवपूजन स्थावितर्पणा अग्नि होत्र आदि रूपों से कहाता है २ पितृयज्ञ जो नित्य याद पितृतर्पणा आदिरूपों से विस्मृतहै ३ नृयज्ञ जो अतिथि अन्नागतके पूजन भोजनसे लेकर इष्टसिद्ध स्थावित भृत्यवर्ग इतुंब्रजनाथ

न दुग्धी आदिको सदक्षसे संलक्ष करने और स्वल्प भिला देने पर्यंत अनेक रूपों से ताहें ४ भूतयज्ञ जो बलिवैश्वदेव रूपीकर्म से लेकर पशु पक्षी कुत्ता कागआदि चींटी रित जीवोंकोभी यथागति चूरादिना आदि रूपों से होता है ५ ॥ ० ॥ सिताक्षरा-
 ए कान्ति हं कि यद्यपि ऐसे पुस्तकको महापातक भी होजाने पर नहीं लगते कहे
 ण्तु केवल उमीपापका यह चर्चाहै जो दगा धोखेसे होगया हो इहीलिये अगिले
 ग्यके वचनोंकोदेखो=यथा=वशिष्टे न=यदा१कार्यगतंसाग्रंक्षतंवेदश्चधार्यते।सर्वं
 तस्यवेदारिनर्दहत्यस्तिरिवेन्द्रतद् (इति प्रकीर्णाकाद्यभिप्रायेणाभिधायाभिहितं)
 वेदवलमायित्यपापकर्मरतिर्भवेत् अज्ञानाच्चप्रसादाच्च दह्यतेकर्मनेतरत्त=अर्थात्-
 गियजी ने=जब किसीने सो सेभी अधिक न करने योग्य कामकियेहों पर वह वेद
 ो धारणाभी रखताहो तो उसका वह पाप सर्वथा वेद रूपी अग्नि जैसे ईंधन को
 लाइदेतीहै अर्थात् पाप उसे लगने नहींपाता (यह प्रकीर्णाक आदि तुच्छ पापों के
 भिप्राय से दर्शाइके फिर अगिले वचन में कहा है कि) वेद पढे होने केवल को
 इकार इस नियम के नहारे से जानि वृष्णि पाप कर्मों में रति न करनी चाहिये
 योंकि वेद की अग्निसे केवल वही पाप जलित सक्ते हैं जो अज्ञानता से होजायँ या
 तमें होजायँ किन्तु इतसे इतर जानिवृष्णि किये पापोंको नहींजलाइसक्ताहै ॥ ० ॥
 िरीचर के मूल प्रतीक में यह तात्पर्य नहींहै कि उसको पाप नहींलगताहै तिससे
 एष्ट प्रायश्चित्त ही न करना होगा किन्तु यह तात्पर्य है कि थोडा प्रायश्चित्त
 तिरके शुद्धिहोसकैसी सो अगिले मूलश्लोक में देखी ॥ ३११ ॥

(जघ्वेत्तपुत्रस्य प्रायश्चित्तं)

वायुभक्षोद्विवातिष्ठनरात्रिनीत्वाप्सुमूर्धदृक् । जप्त्वासहस्रंगायत्र्याःशुद्धेद्ब्रह्मवधादृते ३१२

अर्थः—दिनमें वायु भक्षी रहिके रात्रिको जलमें वित्ताकर सूर्य देखनेपर सायत्री
 ना मन्त्र जपकारिके शुद्धहोय ब्रह्मवद से रहित=अर्थात्—वेदाभ्यासी दुरुय जिसका
 दर्चा ऊपरले मूलश्लोक में आयाथा उसी का यह छोटा प्रायश्चित्त है कि यद्यपि
 महापातक भी नहीं लगते कहेगये तो भी महापातकों में यह इतना अपवाद है कि
 एका ब्रह्मवद्या के बिना कोई और महापातक भी जिनपर देवयोग से बलिगया हो
 तिसको यह प्रायश्चित्त करना चाहिये कि—एक दिनभर वायुभक्षी अर्थात् ऊँच न
 खाकर उपवासकिये देठा रहिकर संध्यादमयमे जलमें जावेँ वहाँ देठेहुये रात्रिको
 पित्ताकर सूर्यका उदय होजानेपर उनके दर्शन किये पीछे सकसहस्र सायत्रीका जप

करै उसी जल में बैठे रहिकर (या जिसको बैठे रहिने की शक्ति शेष न रही हो मो जलसे बाहर निकसि किनारे बैठि सूर्य के सन्मुख जपै) तौ यह सब तरहके महापातकसे भी छुटिजाता है पर एक ब्रह्महत्या से नहीं= जब कि इतना करने से महापातक एकवार का सिटिगया तौ फिर उपपातक आदि छोटा पाप अनेकवारकिया सिटिजायगा और छोटेछोटे अनेक पाप जो एकहीवार इकठ्ठे एकसायहुयेहों वेभी इतना करने से सिटि जायेंगे यह समझि लेना ॥ ३१२ ॥

३१२ अधिकोक्तिः=सिताक्षराकारस्तु= सावित्र्याःसहस्रंजपित्वा ब्रह्मवधव्यतिरिक्त सकलमहापातकादिपापजातान्मुच्यते अतश्च उपपातकादिष्वभ्यासेऽनेक दोषसमुच्चये वा द्वेदित्यंविषम विषयसमीकरणाश्यान्प्रत्यत्वात्= अर्थइसकावही है जो अभी ऊपरलिखिचुके उसपर सिताक्षराकार कहतेहैं कि छोटे बड़े सभी पापों पर एक ही प्रायश्चित्त समझिलेने से सब छोटे बड़े बराबर ठहरजाते सो अन्याय ठहरता तिससे वही व्यवस्था ठीक है जो लिखी गई=इस प्रायश्चित्त से ब्रह्महत्या नहीं सुचती है इसका यह तात्पर्य है कि ब्रह्महत्या अज्ञानता से होजाने पर भी ऐसे वेद के अभ्यासीकोभी वही प्रायश्चित्त करनाचाहिये जो ३०२ तीसरी दो के मूल श्लोक से सबके लिये कहिचुके=और=रातिभर जलमें जो बैठना कहा या दूसरेदिन गायत्री का जाप जलमें बैठिके तिसके मध्ये शीत देश या शीतकाल आदिकी व्यवस्था एक जुदीहै सो सब ७५ पचहत्तरि के परिच्छेद में २६४ दो सौ चौशतवे मूल श्लोक से दर्शन होचुकी तहां देखौ ॥

(अथवाशिशुंविशेषप्रायश्चित्तं)

सिताक्षराकार ने यहां पर वशिष्ठ जी का कहा एक जुदा व्रत और भी प्रकाश किया है=यथा=यवानां प्रसृतिर्जलिं वायुष्यमासां घृतंवाभिसन्वयेत् (यवाऽसि धान्यराजस्त्वंवारुसोमधुसंयुतः निरोदिःसर्वपापानां पवित्रमृत्त्रिभिःस्मृतः) इत्यनेन—घृतंयवामधुयवाःपवित्रमृतयवाः सर्वपुत्रंतुषेपापंवाङ्मनः कायसंभवं—इत्यनेनवा) अग्नि कार्थंनक्षुर्दीततेनभूतवलिंतया नाग्रंनभिक्षांजातिथ्यंतचोच्छ्रयंपरित्यजेत् (ये देवामनोजाता सनोयज्ञसदक्षादक्षपितरः तेनःपांतुतेअवन्तुतेभ्योनसः तेभ्यः स्वाहा इत्यनेनाहनिजुहुयात्) विराटंमेधाभिवृद्वयेपापसयायविराटं सप्तरात्रब्रह्महत्यादियु हादशराजपसितोत्पन्नश्च ॥ इत्येतद्दिगदलंदनेनान्यपिस्मृतिवचनानि विवेचनीयानि ति सिताक्षरा= अर्थात्=एक पसर भर अथवा एक अंजुरी भर जो लेकर तपते हुये

दीन दुखी आदिको सदत्तसे संतुष्ट करने और स्वल्प भिक्षा देने पर्यंत अनेक रूपों से होता है ४ भतयज्ञ जो बलिबैश्वदेव रूपीकर्म से लेकर पशु पक्षी कुत्ता कागआदि चींटी पर्यंत जीवोंकोभी यथाशक्ति चूगादेना आदि रूपों से होता है ५ ॥ ० ॥ सिताक्षरा-कार कहते हैं कि यद्यपि ऐसे पुरुषको महापातक भी होजाने पर नहीं लगते कहे परन्तु केवल उसीपापका यह चर्चाहै जो दगा धोखेसे होगया हो इसीलिये अगिले वशिष्ठके वचनोंकोदेखौ=यथा=वशिष्ठे न=यदाऽकार्यंशतंसाग्रंक्षतंवेदश्चधार्यते। सर्वं तत्तस्यवेदाग्निर्दहत्यग्निर्विन्धनस्य (इति प्रकीर्णाकाद्यभिप्रायेणाभिधायाभिहितं) नवेदवत्तमाश्रित्यपापकर्त्तरतिर्भवेत् अज्ञानाच्चप्रसादाच्च दह्यतेकर्मनेतरत्त=अर्थात्-वशिष्ठजी ने=जब किसीने सौ सेभी अधिक न करने योग्य कामकियेहों पर वह वेद की धारणाभी रखताहो तो उसका वह पाप सर्वथा वेद रूपी अग्नि जैसे ईंधन को जलाइदेतीहै अर्थात् पाप उसे लगाने नहींपाता (यह प्रकीर्णाक आदि तुच्छ पापों के अभिप्राय से दर्शाइके फिर अगिले वचन में कहा है कि) वेद पढे होने केवल को पाइकर इस नियम के सहारे से जानि बूझि पाप कर्मों में रति न करनी चाहिये क्योंकि वेद की अग्निसे केवल वही पाप जलि सक्ते हैं जो अज्ञानता से होजायँ या भूलमें होजायँ किन्तु इनसे इतर जानिबूझि किये पापोंको नहींजलाइसक्ताहै ॥ ० ॥ योशीश्वर के मूल श्लोक में यह तात्पर्य नहींहै कि उसको पाप नहींलगताहै तिससे निपट प्रायश्चित्त ही न करना होगा किन्तु यह तात्पर्य है कि थोडा प्रायश्चित्त करिके शुद्धिहोसकैगी सो अगिले मूलश्लोक में देखौ ॥ ३९१ ॥

(ऊर्ध्वोक्तपुरुषस्य प्रायश्चित्तं)

वायुभक्षोदिवातिष्ठन्रात्रिनीत्वाप्सुसूर्यदृक् । जप्त्वासहस्रंगायत्र्याःशुद्ध्येदूह्यवधादृते ३९२

अर्थः—दिनमें वायु भक्षी रहिके रात्रिको जलमें वित्ताकर सूर्य देखनेपर गायत्री का सहस्र जपकरिके शुद्धहोय ब्रह्मवध से रहित=अर्थात्—वेदाभ्यासी पुरुष जिसका चर्चा ऊपरले मूलश्लोक में आयाथा उसी का यह छोटा प्रायश्चित्त है कि यद्यपि महापातक भी नहीं लगते कहेगये तो भी महापातकों में यह इतना अपवाद है कि एक ब्रह्महत्या के विना कोई और महापातक भी जिसपर देवयोग से बनिगया हो तिसको यह प्रायश्चित्त करना चाहिये कि—एक दिनभर वायुभक्षी अर्थात् कुछ न खाकर उपवासकिये बैठा रहिकर संध्यासमयसे जलमें जावैठे वहाँ बैठेहुये रात्रिको वित्ताकर सूर्यका उदय होआनेपर उनके दर्शन किये पीछे एकसहस्र गायत्रीका जप

करै उसी जल में बैठे रहिकर (या जिसको बैठे रहिने की शक्ति शेष न रही हो
को जलसे बाहर निकसि किनारे बैठि सूर्य के सन्मुख जयै) तौ यह सब तरहके महा-
पातकसे भी छुटिजाता है पर एक ब्रह्महत्या से नहीं= जब कि इतना करने से महा-
पातक एकवार का सिटिगया तौ फिर उपपातक आदि छोटा पाप अनेकवारकिया
सिटिजायगा और छोटेछोटे अनेक पाप जो एकहीवार इकट्ठे एकसाथहुयेहैं वेभी
इतना करने से सिटि जाइंगे यह समझि लेना ॥ ३१२ ॥

३१२ अधिकोक्तिः=सिताक्षराकारस्तु= सावित्र्याःसहस्रंजपित्वा ब्रह्मब्रधव्य-
तिरिक्त सकलमहापातकादिपापजातान्मुच्यते अतश्च उपपातकादिष्वभ्यासेऽनेक
दोषमुच्ये वा वेदितव्यंविषय विषयसमीकरणास्यान्याद्यत्वात्= अर्थइसकावही
है जो अभी ऊपरलिखिचुके उसपर सिताक्षराकार कहितेहैं कि छोटे बड़े सभी पापों
पर एक ही प्रायश्चित्त समझिलेने से सब छोटे बड़े बराबर टहरजाते सो अन्याय
टहरता तिलसे वही व्यवस्था ठीक है जो लिखीगई=इस प्रायश्चित्त से ब्रह्महत्या
नहीं मुचती है इसका यह तात्पर्य है कि ब्रह्महत्या अज्ञानता से होजाने पर भी सेसे
वेद के अभ्यासीकोभी वही प्रायश्चित्त करनाचाहिये जो ३०२ तीनसौ दो के मूल
श्लोक से सबके लिये कहिचुके=और=रातिभर जलमें जो बैटना कहा या दूसरेदिन
गायत्री का जाप जलमें बैठिके•तिसके मध्ये शीत देश या शीतकाल आदिकी द्य-
वस्था एक जुदीहै सो सब ७५ पचहत्तर के परिच्छेदमें २६५ दो सौ चौरातवे मूल
श्लोक से दर्शन होचुकी तहां देखौ ॥

(अथवाशिष्टंविशेषप्रायश्चित्तं)

सिताक्षराकार ने यहां पर वशिष्ठ जी का कहा एक जुदा व्रत और भी प्रकाश
किया है=यथा=यवानां प्रसृत्तिर्जलिं वायुधराणां घृतंचाभिसन्वयेत् (यवोऽसि
धान्यराजस्त्वंबारुणोमधुसंयुतः निरोदिःसर्वपापानां पवित्रमृदिभिःस्मृतः) इत्यनेन-
घृतंयवामधुयवाःपवित्रमृतयवाः सर्वेषुतंतुषेपापंवाङ्मनः कायसंभवं-इत्यनेनवा)
अग्निं कार्थंजहुर्दीततेनभूतवलितया नाग्रंनभिक्षांनानातिथ्यंनचोच्छ्रयंपरित्यजेत् (ये-
देवामनोजाता मनोयज्ञसद्भादक्षपितरः तेनःपांतुतेअवन्तुतेभ्योनमः तेभ्यः स्वाहा
इत्यनेनाहनिजुहुयात्) विरात्रंमेवाभिवृद्धयेपापक्षयायविरात्रं सप्तरात्रंब्रह्महत्यादियु
द्वादशरात्रंप्रतिनोत्पन्नश्च ॥ इत्येतद्दिगदलंननेनान्यपिस्मृतिवचनानि विवेचनीयाना
ति सिताक्षरा= अर्थात्=एक पसर भर अथवा एक अंजुरी भर जो लेकर तपते हुये

घृत में छोड़िके (यवोसिधान्य आदि) अगिलेदोमन्त्रों से अभिमन्त्रित करें अर्थात् घी में जौ भुनते रहें तब तब इन मन्त्रों को बारम्बार पढ़ता जाय पवित्र लकड़ी की सन्धि से चलाता जाय और घी के नीचे अग्नि भी हवनीय कायकी जलावै जैसा ढाख आदि हवनीय प्रसिद्ध है और गायका घृतभी केवल इतने अनुमान से चढ़ावै जो भुनते हुये जवों में खिपि जाय वचै नहीं) देव योग से कुछ वचि भी जाय तो भी उस घृत से या जवों से न होस आदि अग्नि का संबंधी कोई काम करै न भतबलि कर्म करै न अग्र न भिक्षा न आतिथ्य करै न आप ठसमें से जूठनि छोड़ै (अर्थात् भिक्षा देनी एक ग्रास मात्र कहाती है तथा चारि ग्रास भर देना अग्रदान कहाताहै सो कुछ न करै और आतिथ्य यह कहाताहै कि नवीन किसी अभ्यागतको आया देखि बैठारि के पेट भरि भोजन कराया जाता है सो भी उस घी जवों से न करै) तो फिर क्याकरना चाहिये सो कहिते हैं कि (ये देवामनो जाता आदि स्वाहा पर्यंत मन्त्र पढ़ि पढ़ि के अपनेही आत्मा में होस करै) कबतक करै सो कहिते हैं कि बुद्धि बढ़ाने की कामना से पवित्र बुद्धि के लिये तीन राति और प्रकीर्णाक आदि छोटे उपपातकों का विनाश चाहि कर तीन रात्र और इनसे बड़े उपपातकों का क्षय करने के लिये सात रात्र पर्यन्त करै और ब्रह्महत्या आदि महा पातक या अति पातक या अनुपातक लगे हों तिनका क्षय करने के निमित्त पर बारह रात्र पर्यन्त करै और जो कोई पतित के वीर्यसे उत्पन्न देवयोग से होगया कदाचित्त वही वीर्य्य द्योय को सिटा कर अपने शरीर का शुद्ध करना चाहै तो बारह दिन वह भी करै= अपने ही आत्मा में होस करै परन्तु जूठनि भी न छोड़ै=यह तत्त्व पहले कहिचुके है तहां यद्यपि वशिष्ठजी ने कुछ विशेष व्यौरा नहीं खोला तथापि होस करने का डौल केवल यही देखिपरताहै कि एकएक जौ एक एकमंत्रपढ़िकर हलकमें छोड़ै तहां जितने जौएकदिनकेलिये भूनेगये उनमेंसे एकभी जौ न छोड़ै जो जूठनिमें गिनती होसके—इसके सिवाय (घृतंयवा मधुयवा) इस मन्त्रके ध्वन्यर्थसे यहभीसिद्ध होता है कि जौको भुनने के बाद सहतमें लपेटै तभी दूसरे मन्त्रको पढ़ै तिसके बाद तीसरे मन्त्रको पढ़ि पढ़ि सुंहमें छोड़ै और एक पसर या अंजुरोभर जौका विकल्प केवल आदमीके डीलडौल या पेटके अनुरूप समुभना कुछ पापोंकी छोटाई बडाईपर नहीं क्योंकि जितने दिनों का प्रायश्चित्त होय उतने दिनों तक इसी आहार से रहिकर व्रत करनेहोंगे ॥०॥ विज्ञानेश्वर सिताक्षराकार ने ३१२ तीनसौबारह के मूलप्रलोक वाली टीकामें इस प्रायश्चित्त की स्थापना करी तिससे यह भी प्रतीत होता है कि

सल श्लोकवाले प्रायश्चित्तसे जिस पुरुषकी ब्रह्महत्या नहीं भिडती कही गई तिसके लिये ३० २ तीसरी दो के मूलश्लोकवाला प्रायश्चित्त बताया गया उसी पुरुषके निमित्त में अत्रोक्त बारह दिन का प्रायश्चित्त भी सूचित हुआ कि दोनोंमें जिस किसी के द्वारा अपनी शुद्धि होसकनी ठीकठीक समझै तिस एक ही को विकल्प से साथै किन्तु दोनों को नहीं ॥ ० ॥ विज्ञानेश्वर पीछे से कहते हैं कि इसी मार्गके अवलम्बसे और भी स्मृतियोंके वचन विवेचन करने चाहिये जो नवीन-देखने में आवें ॥

इतिसकलरहस्यप्रायश्चित्तमंत्रहोमादीनांपरिच्छेदः ३१२

(इतिसर्वरहस्य प्रायश्चित्तानां प्रकरणं)

इस प्रकरणा में ससस्त ४ चारि परिच्छेद हैं अर्थात् ७८ अठत्तरि परिच्छेद के प्रारम्भ से लेकर यहां ८१ इक्यासी परिच्छेद के अन्त तक एकही प्रयोजनके चार भेद जुदे किये गये हैं उन सब का प्रकरणा एक है ॥

विनियुक्तव्रतव्रातरूपभेदेद्बुभुत्सिते कीदृक्षमितिसंक्षेपाल्लक्षणावश्यतेऽधुना (तत्र तावत्सकल प्रकाशरहस्यव्रतांगभूतधर्मानाह) अर्थात्—सिताक्षराकार कहते हैं कि जिन व्रतोंका समूह जिन पापोंपर जुदा जुदा विनियुक्त किया गया तिनके रूपभेदों की चाहना होनेके समय यदि ऐसा सन्देह खड़ा होय कि असुक्त नाम का व्रत कैसे होता है इसी लिये उन व्रतों के संक्षेप लक्षणा अब आगे कहे जाते हैं सो अगिले परिच्छेदों में यथा क्रमसे देखौ (तहां पहिले रहस्य और प्रकाश दोनों तरहके प्रायश्चित्तों में सर्वत्र उन व्रतों के अंग भूत धर्मों का स्वरूप दर्शाइ कर सान्तपन आदि व्रतों के स्वरूप कहे जायंगे ॥

अथ कृच्छ्रादि व्रतानामध्ये—सांतपनकृच्छ्रद्वयानेकभेद विधायकस्य परिच्छेदः दुशीतितमः (८२)

—*—

इस परिच्छेद में—कृच्छ्र आदि व्रतों का एक भेद जो —सांतपन या सान्तपन कृच्छ्र इस नामसे कहाता है तिसके स्वरूप भेद जाने जायेंगे कि ऐसे ऐसे विधानों से जुदे नाम भेद भी होजातेहैं—तहाँ पहिले (३१३—३१४) इन्हीं दो प्रलोकोंसे समस्त आद्योपांत प्रायश्चित्तोंके साधारण धर्म दर्शावेंगे जो प्रकाश तथा अप्रकाश दोनों तरहके प्रायश्चित्तों में कामआवें ॥

(सकलप्रायश्चित्तवृतांगधर्माः)

ब्रह्मचर्यदयाक्षांतिर्दानसत्यमकल्पता । अहिंसाऽस्तेयमाधुर्येदमश्वेतियमाःस्मृताः ३१३
स्नानमौनोपवासेज्यास्वाध्यायोपस्थनिग्रहाः । नियमागुरुशुश्रूषाशौचाक्रोधोऽप्रमादता ३१४
अर्थः—ब्रह्मचर्य • दया • क्षांति • दान • सत्य • अकल्पता • अहिंसा • अस्तेय • साधुर्य • दम • ये यम नामसे संयमरूपी धर्मकहे—और स्नान • मौन • उपवास • ईज्या • स्वाध्याय • उपस्थनिग्रह • गुरुकीशुश्रूषा • शौच • अक्रोध • अप्रमाद • ये आवश्यक नियमरूपी धर्मकहे=अर्थात्—समस्त प्रायश्चित्त कांड में यहाँतक जितने कृच्छ्र प्रायश्चित्तों के स्वरूप भेद चाहें प्रकाश पापों केहों या रहस्य पापोंके नियत कियेगये और विशेष लक्षणा उनकेआगे कहेजायेंगे तिन सबही व्रतोंके साथ इतने अवोक्त धर्मोंका होना परम आवश्यकहै क्योंकि इनके होने बिना किसी भी कियेहुये व्रतकी संसिद्धि नहीं होतीहै—इनके बहुधा अर्थ तौ मूधे स्पष्ट हैं तथापि—ब्रह्मचर्य सेशरीरकी सब इंद्रियों का संयम समुष्णना और उपस्थ लिंगेन्द्री सबके साथ में आगई तौभी उसका निग्रह जीतनाजुदाकहागया सो यह गोबलीवर्द न्यायसे निर्देश कियाहै कि जैसे गोशब्दके उच्चारणमें गाय वैल सब समुष्णगये तौभी वैलके निमित्त में विशेष नियम कहिने के अर्थसे उसका जुदा नाम बलीवर्दही लियाजाता है • अकल्पता कुदिलताका छोडिदेना कहाताहै • दम कहिनेसे हाथ पैरआदि बाहरली इंद्रियोंकी चंचलता रोकना समुष्ण जाताहै • साधुर्य कोसलवारागी बोलना • अस्तेय चोरी न करना • अप्रमाद उचित कर्मको उसके समय पर न भूलना • वाकी सब सुगम हैं ॥ ३१३॥३१४ ॥

३१३ अधिकोक्तिः—मिताक्षराकारः(यत्पुनर्ननुक्तं— अहिंसासत्यमक्रोधमार्जवं चसमाचरेत्इति)तदप्येतेषामुपलक्षणांनपरिगणानाय (अत्रचदयाक्षांत्यादीनांपुरुषार्थतयाप्राप्तानामपिपुनर्विधानंप्रायश्चित्तांनत्वार्थं) क्वचिद्विशेषोप्यस्तियथा विवाहादिष्वभ्यनुज्ञातस्याप्यनृत वचनस्यनिवृत्त्यर्थसत्यत्रविधानम् पुत्रशिष्यादिकमपिताडनीयमपितताडनीयमित्येवमर्थसहिंसाविधानमित्येवमर्थे=अर्थात्—मनुनेजोक्रुहाहै कि—अहिंसा• सत्य• अक्रोध• मार्जव सरलता• आचरै) सो यह योगीश्वर केही गिनाये वस्में का उपलक्षणाहै कुछ इसलिये नहीं कि इनकी जुदी गणना करीजाय या ऊपरलों के साथ मिता कर गिने जायँ (और योगीश्वर के दर्शाये गणानें दया क्षांति आदि कितनोंपर यह तर्कहै कि प्रायश्चित्ती पुरुष को पुत्र्यार्थत्व सेही समझे जाते थे कि ये लक्षणा जो सभी सज्जनोंमें हातेहैं उसमें होनेचाहिये तथापि यहां जुदे लाकर लिखनेसे यहतात्पर्यहै किअवश्यही प्रायश्चित्तोंका अंगभूतसमझेजायँ) और उन्हींमें विरलोंका जुदाभी कुछ तात्पर्यहै कि जैसे विवाह आदि विरले स्थलों पर असत्य बोलनेकी अनुज्ञा अद्यापि शास्त्रोक्तहै तहांभी प्रायश्चित्तीको असत्यनबोतना चाहिये इसलिये सत्य बोलने का नियम यहां दर्शाया गया तथा पुत्र शिष्य आदि को ताडना अद्यापि शास्त्रोक्त है तिनको भी प्रायश्चित्ती पुरुष न सारै इसीतात्पर्यके अर्थसे अहिंसा का नियम यहां जुदा भी दर्शाया गया• इत्यादि कुछ और भी विरलोंके जुदे तात्पर्य हैं तिससे इन दोनों प्रलोकमें सब वस्मेंका इकट्ठा लिखना उचित ठहिरा ॥ ३१३ ॥ ३१४ ॥

(सांतपनाख्यंत्रतं)

गोमूत्रंगोमयंदक्षिरंदधिसर्पिःकुशोदकम् । जग्ध्वापरंद्युरुपयसेत्कच्छ्रंसांतपनंपरम् ३१५ ॥

अर्थः—गोमूत्र•गोबर रायका•दूध•इही•घृत येभी रायके•कुश भिजोकर उनका जल लेलेना• ये सब मिलेहुये खाकर दूजरेदिन के रा उपवासकरै तो यह दोदिनका व्रत सांतपन कच्छ्र नास से परमउग्र है (पहिले दिनभी कुछ न खाकर गोमूत्र आदि जिली चीजोंका आहार करताकहा तिससे दोनोंदिन व्रतही में गिनती है ॥ ३१५ ॥

३१५ अधिकोक्तिः—कितना गोमूत्र आदि लिया जाय यह परिमाण आगे कलहोगे=जबकि इन्हीं गोमूत्र आदि सब चीजों को इस रीतिसे कि पहिलेदिन को रा उपवास करै दूसरे दिन मन्त्र पढ़िकर इनको सिलावे और सन्वही पढ़िकर पीवै तबही ब्रह्मकूर्च नामका व्रत होता है जैसा आगे परागर का कथन देखीं=यदाह

पराशरः=गोमूत्रगोमयंक्षीर दधिसर्पिःकुशोदकस्य निर्दिष्टंपंचगव्यंतु प्रत्येकंकायशोव
 नन् गोमूत्रंताम्रवर्णायाःश्वेताद्याप्रचापिगोमयस्य पयःकांचनवर्णाया नीलायाश्च
 तथादधि घृतंचक्षुष्यावर्णायाःसर्वकपिलमेवच अलाभेसर्ववर्णानांपंचगव्येष्वयंविधिः
 गोमूत्रेमायकात्वस्यै गोमयस्यतुषोडश क्षीरस्यद्वादशप्रोक्तादध्रस्तुद्वादशकीर्तिताः गो
 मूत्रंघृतंघृतस्याश्वीतदधंतुकुशोदकस्य पंचगव्यमृचाघृतंहोनयेदग्निंनिर्वोसिप्लव्याप्रचये
 दध्निश्चिच्छन्नाभ्याःशुचिस्त्रयः सतैरुद्धृत्यहोतव्यंपंचगव्यंयथाविधि इरावतीइदंवि
 प्रामानिस्तोकेचशंवती सताभिश्चैवहोतव्यंहृतशेषंपिवेत्तद्विजः प्रसावेनसत्तालोड्यप्र
 सावेनाभिसंध्यच प्रसावेनसमुद्धृत्यपिवेत्तत्प्रसावेनतु सध्यमेनपलाशस्यपञ्चपत्रेणा वा
 पिवेत् स्वर्गापत्रेणाताम्रेणावह्नतीर्थेदवापुनः यत्त्वमस्थिरातंपापं देहेतिश्रुतिसानवे
 ब्रह्मकूर्चोषवासस्तुदहत्यग्निंरिवेन्वनस्य= अथत्वि- गाय का मूत्र गोबर दूध दही घृत
 कुशोदक सिलाकर पंचगव्य कहा गयाहे जिसकी प्रत्येक वस्तु जुहीजुही कायाको
 शोवने वाली होती हैं ॥ इन में गोमूत्र लाल गायका गोबर दूध का दूध कुनहरे
 बर्णावालीका दही नीली गायका घृत काली गाय का और सब चीजें कपिल वर्ण
 वाली कपिला कीभी होयँ जो ऐसी न मिल सकें तौ सब रंगों वालीकी ये सब चीजें
 लेनी चाहिये यह तौ पंचगव्यों की विधि संग्रह करने सध्ये कही ॥ परिमान इस
 रीति से कि गोमूत्र आठ सासे भर गोबर मोरह सासे दूध बारह सासे दही दशसासे
 घृत भी गोमूत्र की बराबर आठ सासे कुशोदक सबकी तौलसे आवालेना यह ऐसा
 पंच गव्य बनाके ऋचा पहिठके पवित्र क्रिया हुआ अग्नि के समीप होसै (किन्तु
 अग्नि के दीचमें नहीं) किस प्रकार से कि सात पत्रोंवाले कुश लेकर जिनकीनोक
 टो न हो जड़का बकला छुडाकेशुद्ध कियेहोयँ तिनसे उठाकर पंचगव्य अथोक्तजैसी
 विधिहो तैसे अग्नि के समीप होसै किन्तु(इरावतीइदंविष्णुार०मानस्तोके०शवती)
 इतनी ऋचाओं के पूरे पूरे पाठ से एक एक बार होसना चाहिये इस होम से जो
 बचेसो द्विजाती प्रायश्चित्ती पुनश्च पीवै ॥ इस रीति से कि प्रसाव उंकारसे घोलि
 के उंकार सेही अभिसंजित करिके उंकार हीसे उठाकर उंकारही पहिठकर पीवै ॥
 काहे से उठाकर पीवै सो कहितेहैं कि ढाख के तीन पत्तों में बिचले पत्रसे उठाकर
 पीवै या पत्र के पत्तसे या सोनेके पत्रसे या ताम्रके पात्र आचसनी आदि से अथवा
 कुछ न हो तौ हथेली पर ब्रह्मतीर्थ के द्वारा पीवै ॥ तौ इस ब्रह्मकर्त्त नाभी उदवास
 के करने से वह सभी पाप जैसे अग्नि से ईंधन की तरह भस्म होजाता है जो कुछ
 मनुष्य के रेह से खाल हाथों तक पहुँच गयाहो ॥ ० ॥ इसी पंचगव्य को जब तीन

दिन अभ्यास क्रियाजाय तिसकी यति सांतपन सज्ञा होतीहै=तदाह शंखः (एतदेव ग्रहाम्यस्तं यदि सांतपनं स्मृतम्) यही सब चीजोंसे सिलाहुआ पंचगव्यतीनदिनपिया हुआ यतिसांतपन कहाताहै॥०॥जावाल मुनिने एकएक चीज रोज पीके सातवेंदिन कोराव्रतकरनेसेसप्ताहभरकासांतपनकहाहै=यथा=गोसूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकं स्रक् कौकं प्रत्यहं पीत्वा त्वहोरात्र भोजनं कृच्छ्रं सांतपनं नाम सर्वपापप्रणाशनम्=अर्थात्-पंचगव्य और छटाकुशोदक यथाक्रमसे हररोज एकएकचीजपीकेसातवेंदिन आठोपहरकोरा उपवासकरैतीयहसातदिनकाकृच्छ्र सांतपनव्रतसभीपापोंकाविनाश करनेवालाहोताहै। प्रायःकृच्छ्र शब्दसेविशेषसा बहुधा व्रतोंने इसलिये जोछिदेतेहैंकि उसकी कठिनाई समुझीजाय क्योंकि कृच्छ्रनामहै कष्टका ॥ योगीचरने पहिलेदिन पंचगव्य दूसरेदिन कोराव्रत करनाकहिकर कृच्छ्रसांतपन उसकानामधरा १ उसीको पराशर ने एकहीदिन विधिके साथ पंचगव्य पीना कहिकर ब्रह्मकूर्च उसका नाम धरा परंतु सिताक्षरा ने इसकोसाथ भी पहिलेदिन कोरा व्रत करना समुझाया तिससे इससेभी दोही दिन ठाहरे २उसी पंचगव्य कोतीन दिनतक पीनाकहिकर शंखने यतिसांतपन उक्तका नाम धरा ३ जावालने एकही एक चीज रोजपीना कहिकरसात दिनका कृच्छ्र सांतपन व्रतनाम धरा४ इनचारों कृच्छ्रव्रतोंकाकोटापन बडापन प्रायश्चित्ती पुण्यकी शक्ति और पापका गहिरापनआदि सोचिके व्यवस्थानियत करनी चाहिये जहाँपर कृच्छ्र व्रतकरना कहागया हो-इसीप्रकारअगिणी अधिकोक्तों में एकही व्रतके अनेक भेदहोनेके स्थलोंपर व्यवस्था नियत करनी चाहिये॥३१५॥

(महासांतपन व्रतलक्षणं)

पृथक्सांतपनं द्रव्यैः पठहः सोपवासकः । सप्ताहेनतु कृच्छ्रायं महासांतपनः स्मृतः ३१६

अर्थः-एक उपवास सहित छःदिन जुदे गोसूत्रआदि चीजोंसे सांतपन जोकि जाय (अर्थात् गोसूत्र आदि एकही एक द्रव द्रव्य पीकर सातवेंदिन कोराव्रतकरे) तो यह सात दिनका कृच्छ्रव्रत कहासांतपन कहागयाहै (जैसा ऊपरकी अधिकोक्ति में जावाल ने कहा था ॥ ३१६ ॥

३१६ अधिकोक्तिः=सहाजान्तपन दाई साँति के होतेहैं उक्तके एक पंद्रह दिनका= तदाहयनः= इयहांपदेसुगोसूत्रं इयहवैरोक्षयंपिपेह इयहविद्विद्वहंसीं इयहं सर्पिस्ततः शुचिः सहासांतपनं ह्यं तत्तुर्वपापप्रणाशनम्=अर्थात्-तीनदिन गोसूत्र पीके तीन दिन गानर पीके तीन दिन दही तीन दिन दूध तीन दिन दो पीके तिसके शुद्ध हो जायगा

यह सहा सान्तपन नाम का व्रत सर्व पापों का विनाश करने वाला है ॥ ० ॥ इक्कीस दिनका भी महासान्तपन होता है = तदाह जावालः = यथागामेकैकमेतेषां विरात्रमुपयो जयेत् इयहंचोपवसेदंत्यं महासान्तपनं विदुः = अर्थात्— इन गोसूत्र आदि छः चीजों में एकएक को तीन तीन दिन पीवै तिसके छेति या अठारह और पीछेसे तीन दिन कोरा उपवास करै तौ यह २१ दिन का महासान्तपन कहिते हैं ॥ ० ॥ गोसूत्र आदि सांतपन की सब चीजों में एक एकको दो दो दिन पीनेसे बारह दिनका भी सान्तपन होता सो अति सांतपन कहाता है = तदप्याहयमः = एतान्येव तथापेयादेकैकन्तु द्वय इम द्वयहस अतिसांतपनं नाम प्रवपाकसपिशोधयेत् (प्रवपाकसपिशोधये दित्यर्थवादः = अर्थात्— इन्हीं कुशोदक पर्यंत छः चीजों को एक एक जुदीजुदी दोदो दिन पीवै तौ यह अतिसान्तपन नाम कहावै चाराडाल को भी शुद्ध करै (सो यह अर्थवादरूपी एक प्रशंसा है कि चाराडाल से संसर्ग जिसका होजाय ऐसे द्विजाती को शुद्ध कर सकता है ॥ ३१६ ॥ यहां भी महासान्तपन के छोटे बड़े जितने भेद हुयेहों तिनको वही व्यवस्था है जो ऊपर की अधिकोक्ति में आचुकी ॥ ३१६ ॥

अथपर्णाकृच्छ्रपादकृच्छ्रतप्तकृच्छ्राद्यानां कृच्छ्र

व्रतभेदानां विशेषतः स्वरूपविधायकोऽयं

परिच्छेदः च्यशीतितमः (५३)

—*—

इस परिच्छेदमें अनेक कृच्छ्रोंके स्वरूप और नाम भेद जाने जायेंगे • तिनमें प्रथम पर्णा कृच्छ्र आदि जो पत्ता या फलफूल आदि से होते हैं • फिर पादकृच्छ्र आदि जो कड़तरहके व्रत मिलिकर एकपाद माना जाता है उसीके प्रसंगमें दिवाभोजी व्रत नक्त भोजी व्रत अथाचित भोजी व्रतभी कहे जायेंगे • फिर कृच्छ्रार्ध आधा कृच्छ्रभी • फिर पादोनपौनकृच्छ्रभी दर्शावेंगे • फिर तप्तकृच्छ्र शीतकृच्छ्र आदिभी अनेक रूपसे दर्शावेंगे ॥

(पर्णाकृच्छ्रव्रतलक्षण)

पर्णोद्वंशराजीवविल्वपत्तकुशोदकैः । प्रत्येकंप्रत्यहंपीतैः पर्णाकृच्छ्र उदाहृतः ३१७

अर्थः— पर्णा (ढाख • गुलर • कमल • बेत • कुश • इन पांचों के पत्तों का जल निचोड़िके यथाक्रमसे एकएक दिन एकएक जलको हररोज पीवै तौ यह पांच दिन का व्रत पर्णाकृच्छ्र नाम कहा है ॥ ३१७ ॥

३१७ अधिकोक्तिः=परार्कचूके अनेकभेदहैं जहाँ इनपत्तोंको मिलाकर काथ बनाया हुआ तीनरात्रि कोराव्रत करने के बादि पिआजाय तहाँ परार्कचूर्च नामहोता है=तद्व्याहयसः=सतान्येवसमस्तानिश्चिरात्रोपोषितःशुचिःकाथयित्वापिबेद्विःपरार्कचूर्चोऽभिधीयते=अर्थात्—येही सब चीजें जलसे काथ करिके तीनरात्रि व्रत किये पीछे शरीरसे शुद्धहोकर पीवै तौ यह चारदिनका परार्कचूर्च कहाता है ॥०॥ जहाँ बेल आदिके फलों में प्रत्येक जुदे फलको या सबको मिलाकर काथ बनाया हुआ पिआजाय तहाँ फल कचू कहाता है इसी तरह फल आदि पिये जायँ तहाँ उन्हीं केनामसे कचू कहातेहैं यहसब आगे मार्कण्डेय के वचनों में देखौ=यथाह मार्कण्डेयः=फलैर्मसिनकाथितःफलकचूंसनीयिभिः श्रीकचूःश्रीफलैःप्रोक्तःपद्माक्षरपरस्तथा मासेनामलकैरेवंश्रीकचूमपरंस्मृतस पत्रैर्मतःपत्रकचूःपुष्पैस्तत्कचूउच्यतेमूलकचूःस्मृतोमूलैस्तोयकचूजलेनतु=अर्थात्—उक्त वृक्षोंके फलोंसे काथ किया एक मास पीना बुद्धिसानों ने फल कचूनाम व्रत कहाहै तथा केवल बेलके फलोंसे श्रीकचूनाम कहाहै तथा कमलगद्दाओंसे पत्रकचू इत्यादि और इसी तरह एक मास आमलकों से भी दूसरा श्रीकचू नाम होताहै जो पत्तों से कियाजाय सो पत्रकचू नाम कहाता है पुष्पों से पुष्पकचूनाम होता है मूलजड़ों से किया जाय सो मूलकचू कहा जाता है जो केवल जल से किया जाय सो जलकचू तोयकचू कहा जाताहै ॥ ३१७ ॥

(तप्तकचू व्रतलक्षणं)

तप्तक्षीरघृतांबूनामैकैकंप्रत्यहंपिबेत्॥एकरालौपवासश्चतप्तकचूउदाहृत ३१८॥

अर्थः—गरसद्वद घृत जल इनमें एक एकको एक एकदिन तथाइक पीवै तिसपीछे एकदिन रातिका उपवासभी कोरा करै तौ यह चारदिन में तप्तकचूव्रत होता कहा (इसको सहातप्त कचू भी कहिते हैं ॥ ३१८ ॥

३१८ अधिकोक्तिः=तप्तकचू भी अनेक भाँतिसे होताहै•यथा (राभिरेवसमस्तैः लोपवासैर्द्विरात्रसंप्राद्यःसांतपनदत्त तप्तकचूःइतिमिताक्षरा) अर्थात्—इन्हीं गरसद्वद आदि सब चीजोंको इकट्ठी एकदिन पीकर दूसरे दिन कोराव्रत करनेसे दोदिन में यह भी सांतपन की तरह तप्तकचू कहलाता है यह सिताक्षराकारने कहा इसी लिये उन्हींके चारदिनके व्रतपर मूलके अर्थमें सहातप्तकचू नामकहा जो मूलप्रलोक में नहीं है ॥ ० ॥ वारह दिन का भी तप्तकचू होता है=तदाहमनुः=तप्तकचूंचरन्निप्रोजलक्षीरघृतानिलाद्य प्रतित्र्यहंपिबेदुष्मान्महतत्कार्यासमाहितः=अर्थात्—तप्त

कृच्छ्रको आचरते हुये ब्राह्मणा जल दूध घृत पवन इनमें एक एक को तीनतीन दिन गरम गरम पीवै और चित्तको सावधान रखकर एक ही बार स्नान क्रिया करै तो यह बारह दिन का तप्तकृच्छ्र होता है ॥ ० ॥ पंचगव्य की चीजें जहाँ जहाँ दूध आदि एक ही दो पीवनी कही गईं तहाँ सर्वव्रतितने परिमाण तक पीवनी चाहिये सो सब अगिली व्यवस्था में देखौ = यथाह पराशरः = अपांपिबेत्तु त्रिपलं द्विपलं तु पयः पिबेत्तपलमेकं पिबेत्सर्पिस्त्रिरात्रं चोषामारुतम् (त्रिरात्रं चोषामारुतमिति त्रिरात्रस्य पर्या उषामादिकं चाल्पं पिबेदित्यर्थ इति मिताक्षरा = अर्थात् - जल पीके ब्रत करना लिखा है तहाँ तीन पल पीवै और दूध लिखा हो तहाँ दो पल पीवै जहाँ घृत लिखा हो तहाँ एक पल पीवै और गरम हवा तीन रात्रि (मिताक्षराकार कहते हैं कि तीन रात्रि गरम हवा कहिने का यह तात्पर्य है कि त्रिरात्र ब्रतके पर्या होने पर थोड़ा सा गरम जल ही विकल्प से पीवै) सो यह ऐसे स्थल का चर्चा है जिस किसी ब्रत में उषामारुत पीना कहा हो ॥ ० ॥ जहाँ ढंढा दूध आदि पिया जाय तहाँ शीतकृच्छ्र नाम होता है = यथा = त्र्यहं शीतं पिबेत्तु यं त्र्यहं शीतं पयः पिबेत् त्र्यहं शीतं घृतं पीत्वा वायुभक्षः परं त्र्यहं स = अर्थात् - ढंढा जल तीन दिन पीवै फिर तीन दिन ढंढा दूध पीवै फिर तीन दिन ढंढा घृत पीके पीके से तीन दिन केवल वायुभक्षणा करै और कुछ नहीं तो यह बारह दिन का शीतकृच्छ्र कहाता है ॥ ३१४ ॥

(पादकृच्छ्र चरणां)

एकभक्तेन न केन तथैवायाचितेन च । उपवासेन चैवायं पादकृच्छ्रः प्रकीर्तितः ३१९

अर्थः - एक भक्तसे नक्तसे तथैव अयाचित से भी उपवास करने से भी यह पादकृच्छ्र कहा है = अर्थात् - ये चारों ब्रत मिलिके चार दिनमें एक पाद कृच्छ्र ब्रत कहाता है = और एक भक्तके नामसे दिवसमें थोड़ा सा रूखासूखा भोजन घी दूध आदिको छोड़िके समझना और नक्त के नाम से नक्त ब्रत समझना जिसमें सिर्फ राति ही को स्वल्प भोजन किया जाता है और अयाचित ब्रत इस ढंगसे होता है कि न किसी से मांगे न किसीको समस्या करै यदि स्वतः कोई चाहें कई दिन बीति जाने पर भोजनकी वस्तु आगे लाधरै तभी थोड़ा सा खाइके वचा हुआ किसी जीवको देनेवै पास न रक्वे फिर इसी प्रकार जिस दिन कोई बिना मांगे लाकर आगे धरै उसी दिन थोड़ा सा खाइ यदि कोई कुछ न लावै तो निपट कोरे ब्रत करता रहै तिवका नाम अयाचित ब्रत कहाता है और चौथा रूप उपवास कहा सो भी कई प्रकारके उपवास होते हैं इन सब चारों के विषये और अधिकोक्ति में देखौ ॥ ३१६ ॥

३१६ अधिकोक्तिः—एकभक्तेन•यह मूल श्लोक में देखौ तिसके लिये एकभक्त
 व्रत का लक्षणा यहाँ देखौ (दिनार्धसमयेऽतीते भुज्यतेनियमेनयत्र एकभक्तमितिप्रो
 क्तरात्रौतन्नकदाचन) अर्थात् दिन का आधा दोपहर बीति जाने पर जो नियम से
 थोडा भोजन किया जाय वही एक भक्त व्रत कहाता है परन्तु रात्रि में कदापि न
 करै न दूसरी बार दिनमें करै परञ्च नियत समयपर थोड़े से सूखे भोजनका निपट
 त्याग भी न करै इसका नियम यही है ॥ (एतच्चक्षुचक्षादीनांब्रतस्त्वत्वात् पुरुषार्थ
 भोजनपर्युदासेन क्वचछांगभूतं भोजनंविधीयते—तथा चापस्तंबः—त्र्यहसनक्ताश्रयदिवा
 शीततस्त्र्यहसयाचितव्रतः इतिमिताक्षरा=अर्थात्—सूखा भोजन दर्शाने के निमित्त
 पर मिताक्षरा कार कहिते हैं कि यद्यपि भोजन करना एक बार कहा परन्तु घी
 दूध आदि पुष्टाईका भोजन करना यहाँ नियत है क्योंकि क्वचछ आदि व्रतोंकास्वप
 एक यह भी पाद क्वचछ है तिससे वही भोजन सूचित किया है जिससे शरीर दुर्बल
 बना रहै—सैसा आपस्तम्ब के इस वचन से भी तात्पर्य मिलता है कि—तीनदिन अन्-
 क्ताशी जो रात्रि में न खाय फिर तीन दिन अदिवाशी जो दिनमें नखाय तिसपीछे
 तीन दिन अयाचित व्रत करै कि जो कुछ विना मांगे सन्मुख आजाय तौ थोडा सा
 खाय यदि नहीं आवै तौ नहीं) यह वचन आपस्तंब का यहाँपर केवल दृष्टान्तके
 लिये प्रासंगिक रीति से मिताक्षरा कारने लिखा है यह याद रखना• इसी प्रकार
 गौतम का वचन आगे प्रासंगिक दर्शाते हैं—यथा (गौतमेनापीदमेवस्पष्टीकृतं—हवि
 प्यंप्रातराशी भुक्त्वात्सोरात्रीर्नाश्रीयादिति• एवंनक्तभोजनविधावपि=अर्थात्—मि-
 ताक्षरा कार कहिते हैं कि गौतमने भी यही सूखा भोजन दर्शाया है यह कहिकर
 कि—प्रातराशी जो दिनमें भोजन करनेका व्रत रखता होय सो हविष्य नाम घी दूध
 आदि एकही बार देवयोगसे यदि खाइ तिसको खाकर तीन रात्रि तक निपट कुछ
 न खाय यह इसका एक जुदा प्रायश्चित्त समझना• इसी प्रकार रात्रि की भोजन
 विधि में भी समझि लेना तिससे सिर्फ सूखे भोजन की आज्ञा है चिकनार्द्र आदि
 नहीं यह सब (एकभक्तेन) इन्हीं पांच अक्षरोंकी व्यवस्था दिवहुई ॥ ० ॥ नक्तेन•
 यह मूलश्लोक में देखौ नक्त व्रतका जुदा विधान है सो यहाँ देखौ=अथा= हविष्य
 भोजनज्ञानं सत्यसाहारलाघवश्च अस्तिकार्यंयत्रःशय्यां नक्तभोजीयडाचरत् ॥
 नक्तान्निग्रात्रांकुर्वीत गृहस्थोदिदिसंयुतः अतिशुचिद्विवाचैव कुर्यात्तत्सद्विवाकरव
 सद्विवाकरनास्ताच्चे दंतिलेखदिकाद्वये निवानक्तानुविज्ञे अं आसार्द्धप्रयत्नेनश—तथा—
 दिवसस्याहमेभारो सन्दीभूतेद्विवाकरे नक्तंतच्चविजानीया नक्तान्निशिभोजनत्

नक्षत्रदर्शनान्नक्तं गृहस्थे तु विधीयते यत्तेर्दिनाष्टमे भागे रात्रौ तस्य नियेधनात् = अस्य च
 साहात्म्यकारणायथा = देवैस्तुभुक्तं पूर्वाह्णे सध्याह्ने ऋषिभिस्तथा पराह्णे पितृभिर्भु
 क्तं संध्यायां शुद्धक्रादिभिः सर्ववेलासतिक्रम्य नक्तं भुक्तमभोजनम् = अर्थात् - नक्तभोजी
 जो केवल रातिमें भोजन का नियम रखे सो इन छः बातों का आचरण करे कि
 स्नान १ सत्यबोलना २ हविष्य भोजन अर्थात् पवित्र अन्न का भोजन जैसे जौ धान
 मग आदि देवान्न कहाते हैं किन्तु यहांपर हविष्य कहिनेसे घोटूध खीर पूरी मेवा
 आदि मत समझि लेना जो हवन में काम आते हैं ३ आहारलाघव थोड़े भोजन का
 स्वभाव ४ अग्नि में भी उसी अन्न की आहुति देना भोजन के समय पर पहिले और
 इसी लिये इस भोजन को अन्नारखना चाहिये ५ धरतीपर शयन करना ६ गृहस्थी
 पुस्त्य इन्हीं छः नियमों के साथ नक्त नाम के व्रत को रात्रि में साधे परन्तु यती
 संन्यासी और विधवा स्त्रियां भी उसी नक्तव्रतको सदिवाकर लक्षणाके साथसाधें यदि
 किसीको सदिवाकर नामसे करना होय तो वह दिनके अन्तमें दोघडी दिन शेष रहे
 परकरे और जिन गृहस्थी लोगोंको निशानक्त करना कहिचुके तिनको दिनमें नहीं
 किन्तु सदाही रात्रि में पहिले पहरके अर्ध भीतर चारघडी राति गये तक जानना—
 तैसाही दूसरा यह प्रमारा है कि—दिनके आठवें भागमें सूर्य सन्दहोनेपर जो भोजन
 कियाजाय उसको भी नक्तव्रत जानै किन्तु केवल उसीको न जानै जो रातिमें भोजन
 करना कहा क्योंकि गृहस्थ धर्मके नक्तव्रत मध्ये तो नखत उगि आनेपर नक्षत्रोंका
 दर्शनकिये पीछे भोजन कहाहै और यतीके नक्तव्रतपर दिनके आठवें भागमें भोजन
 करना सिद्ध किया गया क्योंकि यतीको उसके संन्यासधर्म से राति में भोजन का
 पूरा पूरा नियेधहै तिससे वह सदिवाकर नक्तव्रत साधे और यतीके समान विधवाको
 भी समझना किन्तु इसको भी रातिमें भोजनका नियेधहै = इस नक्त भोजनका महा-
 त्तम जिनकारणों से अधिकहै सोभी समझो = दिनमानकी तीनतिहाई संध्याकालको
 छोडिके सप्तमनी० तहाँ पूर्वाह्णा की पहिलीतिहाई में देवता भोजन करते हैं उनके
 साथमें न खाना चाहिये० दूसरी तिहाई सध्याह्न में ऋषीभोजन करते हैं उनका भी
 अन्न रखना चाहिये० तीसरी पराह्णाकी तिहाईमें पितर भोजन करते हैं उनके साथ न
 खाना० चौथे निपट संध्याकाल में शुद्धक्र आदि भोजन करते हैं उनके भी समयपर
 व्यतिक्रम न करना चाहिये तिससे सभी बेलाओंको उल्लंघिके रातिमें भोजन करना
 ठहराया ॥ ० ॥ अत्राचितेन० यह मूलश्लोक में देखो बिना सांगे भोजनसे व्रतकरना
 कहा तिसकी व्योरेवार व्यवस्था यहाँ समझो कोई साकाल उसके लिये नहीं

वताया कि अमुक समय भोजन करे तिससे दिनमें या रातिमें जिस किसी बेराबिना मांगा भोजन आपही आजाय तभी केवल एकहीवार थोडासा प्रासाधारणमात्रभोगे किन्तु बारम्बार नहीं और पेट भरके भी न खाय क्योंकि सभी कृच्छ्रव्रतों में तप करनेकी प्रधानता है तिससे दुबारा या पेटभर खाना सिद्ध नहीं होता—और—यह भी तात्पर्य नहीं है कि गैरही से न सांगे किन्तु अपने भी सेवक भार्या आदिसे सांगनेका निषेध है बल्कि इसीलिये अपने संबंधीसे इसकाभेद भी न कहना चाहिये कि मैंने अयाचित व्रत धारणा किया है क्योंकि ऐसा जानिके अपने संबंधी भार्या आदि शीघ्रतासे अवश्यही लेकर दौड़ेंगे और बहुतसी विनती भी करें तौ कुछ अचम्भा नहीं है तिससे उसव्रतका स्वरूप भंगहोजाना सम्भव है और यहभी तात्पर्य नहीं है कि निपट अपनोंका दिया भोजन करनाही नहीं किन्तु यह तात्पर्य है कि दिनको विताऊ समझि या व्रतका अभिप्राय स्वतः जानिपानेपर भार्या आदि आपही बिनासांगे यदि भोजन पहुंचावें तौ फिर थोडासा भोगना उचित है परन्तु यदि अपने या विराने भी नहीं कोईलावें तहां एकदोदिनका कोराव्रत करने में धैर्यराखें फिर अवश्यही कोई लावैगा संदेह इसमें नहीं है—बल्कि इसी अभिप्राय से गौतम ने यह कहा है कि (अथापरंध्यहंनक्तंचनयाचेत) इसके अनन्तर तीनदिन किसी पर याचना न करे ॥०॥ ये सब तीनप्रकार के भोजन कोई दिनमें कोई रातिमें कोई बिनासांगे चाहें तब आने पर खाने कहे यद्यपि यह कह चुके हैं कि थोडा भोजनकरे तथापि थोड़ेका परिमाण कुछ नहीं समुक्तागया तिससे अगिली पराशरकी व्यवस्था देखौ=यथाइ पराशरः= सायंतुद्वादशग्रासाः प्रातःपंचदशस्मृताः चतुर्दिशतिरायाच्याः परंनिरघनंस्मृतम्=अर्थात्—जिसको संध्यासे रात्रितक भोजन करनापरै सो बारहग्रास भोगे जिसको एकभक्त नामके व्रतमें प्रातःकाल से लेकर दिनमें किसी बेरा भोजनका नियम होय तिसको पन्द्रहग्रास भोगने चाहिये जिसको अयाचित भोजन चाहै किसीबेरा करनाहोय सो चौबीसकोर भोगे तौ यह तीनों विधिका भोजन भी परस निराहार व्रत कहाता है= आपस्तंबने=इन्हीं ग्रासोंका परिज्ञान और तरहसे कहा है • यथा=सायंतुद्वादशग्रासाः प्रातःपंचदशस्मृताः चतुर्दिशतिरायाच्याः परंनिरघनास्त्रयःकुक्कुटायडप्रमाणस्तु यथाद्वा१२स्त्रयंविधौत्सुखम्=अर्थात्—सायंकाल के भोजन वाला बारहग्रास भोगे प्रातःकालिक भोजनवाला छव्बीसकोर भोगे अयाचित भोजनवाला चौबीस केवल भोगे तौ ये तीनों व्रत परस निराहार में गिनती हैं और कवल या ग्रास उसका नाम है कि खुर्याके छंडे बराबर अन्न अथवा जिस किसी के मुहमें जितना अन्न एकवार

मुखपूर्वकजासकै (इनदोनो आपस्तंब तथा पराशरके कहे कल्पों में जो कुछ थोड़े बहुतका अन्तर है तिसको मनुष्य की देहशक्ति या पेटकी बड़ाई छोटाईपर भेद करिके जोड़िलेना तिससे विरोध वाकी न रहेगा ॥०॥ प्राजापत्य नामका व्रत भी ऋच्छ्र कहाताहै तिससे यहाँऋच्छ्रपादके प्रसंगमें उसकाभी चर्चाकरना आवश्यक ठहिरा० किन्तु आपस्तंबहीने प्राजापत्य प्रायश्चित्तको चारतरहविभागकरिकेउन्हींकोचारि ५पाद ऋच्छ्र कहिकर चारोवर्गके अनुरूपव्यवस्था करी है=तथाच आपस्तंबः=त्र्यहं निरशनंपादःपादप्रचायाचित्तत्र्यहस सायंत्र्यहंतथापादःपादःप्रातस्तथात्र्यहस ॥ प्रातः पादंचरेच्छ्रदःसायंत्र्यस्यपादयेत्र अयाचितंतुराजन्पेविरात्रंवाह्नरोस्मृतम्=अर्थात्-प्राजापत्यऋच्छ्रका एकपाद वह समभक्ता जो सिर्फ तीनदिन निराहार व्रत क्रिया जाय० फिरएकपाद वह समभक्ता जोतीनदिन अयाचित भोजनसे व्रत क्रियाजाय० फिर एकपादउसे समभक्ता जोसायंकाल आदि नक्तभोजनतीनदिनक्रियाजाय फिरएकपाद वह समभक्ता जो तीनदिन प्रातर्भोजन अर्थात् जिसको एक भक्त के नामसे कहिचुके तैसा व्रत तीनदिन क्रिया जाय० ये सभी बारह दिनके व्रत निरन्तर एकसाथ क्रिये जायँ तहाँ पूरा प्राजापत्य या पूराऋच्छ्र कहाताहै ॥ इन चारों जुड़े पादोंको बर्गों पर इस तरह बाँटि दियाहै कि शूद्र प्रातःपाद व्रतको करै और सायंपाद व्रतको वैश्य करै और अयाचित पाद ऋच्छ्र को क्षत्री करै और कोरे निराहार वाले तीन व्रतका ऋच्छ्रपाद ब्राह्मण को करना चाहिये ॥ जब इनमेंसे कोरे निराहार और अयाचित वाले दोनों पाद सिलाकर छे दिनका व्रत एक साथ क्रियाजाय तब आधाऋच्छ्र होताहै जब संध्याके भोजन वाला पाद छोड़ि शेष तीनों पाद एकसाथ नौ दिनमें सावन क्रिये जायँ तहाँ पौन ऋच्छ्र कहाता है क्योंकि (सायंप्रातर्विनाशस्य्रात्पादोनंत क्तवर्जितमितितेनैवोक्तं) उन्हीं आपस्तंबने पीछे से कहिदिया है कि साँझ और सकारे वाले भोजनके दोपादोंको छोड़िके शेष दो पादों का अनुष्ठान क्रिया जाय तिसको आधा ऋच्छ्र जानना ० जहाँ नक्त भोजनवाले पादके बिनातीनों क्रियेजायँ तहाँ पौन प्राजापत्य जानना=उन्हीं आपस्तंबने=आधे ऋच्छ्रका दूसराभी प्रकार दर्शायाहै=यथा=सायंप्रातस्तथैकैकं दिनद्वयमयाचितम् दिनद्वयंनचाश्रीयात् ऋच्छ्रार्थः सोऽभिवोयते=अर्थात्-एक दिन रात्रि भोजनका व्रत करै दूसरे रोज दिन के भोजन वाला व्रत करै तीसरे और चौथे रोज अयाचित व्रत करै फिर पांचवें छठे दो दिन कोरा व्रतकरै तो इसप्रकारसेभी आधा ऋच्छ्र होजाहै ॥ ० ॥ यह शंका खड़ी होती है कि आपस्तम्ब के वचन में तीन तीन दिनों का एक एक पाद कहा सो तो ठीक

प्रतीत होता है क्योंकि उसी हिसाबसे छे दिनका अर्द्ध कृच्छ्र कहा उसी लेखसे नौ दिनका पौन कृच्छ्र कहा उसी लेखसे बारह दिनका पूराभी होता है परन्तु योगी-श्रुते तीनसौ उन्नीस ३१६ के प्रलोक मूलमें चार दिनका पादकृच्छ्र बताया उसकी विधि क्योंकि मिलाईजाय क्योंकि उसलेखमें सोरह दिनका पूराकृच्छ्र होना चाहिये अथवा उन्हीं चार दिनको पादकृच्छ्र नाम छोड़ि त्र्यंशकृच्छ्र कहिना चाहिये था— इसका—यही समाधान है कि उसमें लेखाजोखा लगानेकी अपेक्षा कुछनहीं है क्योंकि उन चार दिवसोंका नामही पादकृच्छ्रव्रत जुदी विशेषतासे रक्खा गया है इसीलिये उसे तिगुना करिके बारह दिनका प्राजापत्य नामसे पूरा कृच्छ्रव्रतावेंगे (तीनसौवीस का मूल प्रलोक देखो) इसके सिवाय कृच्छ्रों के अनेक रूप होते हैं सबही में बारह दिनका नियमनहीं है सो सबआगे तीनसौवीसकी अधिकोक्तिमें विस्तारसे आवेंगे तब समुभिलेना ॥ ० ॥ उपवास भी चौथे व्रतका स्वरूप मूलश्लोकमें कहागया तिसके लक्षणा भी अनेकहैं सो यहां देखौ (उपावृत्तस्यपापेभ्योयत्तुवासोगुराःसह उपवासः सविज्ञेयःसर्वभोगविवर्जितः) अर्थात् उप—वास ये दो शब्द मिलाके नाम धरा है इस हेतुसे कि पाप कर्मोंसे मनको उपावृत्त करना हटाइ लेना उप शब्दसे दर्शाया फिर उस पुस्तकका टहिरना वास कहाता है परन्तु गुराओंकेसाथ वासहोय ती उपवास ठीक समुभाजाय यहां गुराभी वही समुभने जो ८२वयासीके परिच्छेदमें (३१३—३१४) इन्हीं श्लोकोंसे ब्रह्मचर्य आदि लिखिचुकेहैं उन्हीं सब गुराओंकासेवन और सब तरह के भोग स्वी आरासको छोड़िके एक ठिकानेपर बैठने का उपवास नाम जानौ—सर्व भोगोंका छोड़ना यहांतक अभिप्रेत है कि निपट कुछअन्नभी न खानापीना चाहिये (तपनोदयसारभ्य यामापृक्तमभोजनस उपवासःसविज्ञेयः प्रायश्चित्ते विधीयते) अर्थात् सूर्यनारायण के उदयसे लेकर पूरे आठ प्रहरोंभर न खाना सो उपवास जानना जो प्रायश्चित्तों में कियाजाता है पंच ऊर्ध्वोक्तगुरा भी खदहोने चाहिये तथा अप्रोक्त कास करनेका त्याग राखे (उपवासफलंनष्टयेत्तद्विवास्वप्नाच्चसैयुनात् स्त्रीणां संप्रेक्षणात्स्पर्शात्तापिःसंक्रयनादपि) क्योंकि उपवास किये हुयेका भी फल नाश होजाता है दिनमें सोइ रहने से या सैयुन करनेसे तथा स्त्रियोंको पूरी निगाह भर देखनेसे या उनको हुइलेनेसे या दिना हुये भी उनके निकट बैठि परस्पर बात चीत बहुत करनेसे भी उपवासोंका फल वृथा नाश होजाता है ॥ ३१६ ॥

प्राजापत्य आदि कृच्छ्रोंके अनेक श्रेद अगिले परिच्छेद में देखना ॥

अथ प्राजापत्य कृच्छ्रादीनां बहुभेदानां स्वरूपनामलक्षण भेदविधायकोऽयं परिच्छेदः चतुरशीतितमः (८४)

—*—

इसपरिच्छेद में प्राजापत्य कृच्छ्र इस नाम को आदि लेकर अनेक भांतिके कृच्छ्रों का रूप नाम लक्षणा पहिंचानि जाने जायँगे— तिनमें सबसे प्रथम प्राजापत्यही के लक्षणा भेद (उनके बीच में शिशुकृच्छ्र भी) फिर अतिकृच्छ्रके लक्षणा भेद• फिर कृच्छ्रातिकृच्छ्र के लक्षणा भेद• फिर पराक नामकृच्छ्र• फिर सौम्यकृच्छ्र• फिर तुलापुरुषनाम कृच्छ्र• सबइसी क्रमसे कहेजायँगे ॥

(प्राजापत्य कृच्छ्रस्य लक्षणां)

यथाकथंचित्त्रिगुणः प्राजापत्योऽयमुच्यते ३२० (पूर्वार्धोयं)

अर्थः—जैसे हो किसी अति प्रयत्नसे तिगुना व्रत यही प्राजापत्य कहाजाता है— अर्थात्—यहीव्रत पादकृच्छ्र वाला जोपहिले कहिचुके (३१६ मूलप्रलोकसे देखौ) सो जैसेचाहौ तैसे किसी प्रकारके प्रयत्नरूपी विधानसे तिगुना करौ वही प्राजापत्य कहावै(जैसे चाहो तैसे किसी प्रकारसे करौ• इसकथनका यहतात्पर्य है कि तिगुना कई प्रकारों से होता है उनमें से कोईसा एक प्रकार जिसको तुम अपनी इच्छा से मनोज्ञ जानौ उसीके योग्य जतन जैसा होता हो तिसके द्वारा तिगुना करौ) सोइस सोल सोलवात का व्यौरा बहुत लम्बा है अधिकोक्ति में ॥ ३२० ॥

३२० अधिकोक्तिः= तीनसौ उन्नीस ३१६ मूल प्रलोक में जिस रीति से चार दिन का पाद कृच्छ्र व्रत समाप्त हो चुके उसी को तिगुना करि बारह दिनका पूरा प्राजापत्य कहा तिगुना करने के भी कई ढंग हैं तिनका व्यौरा सिताक्षराकार यहाँ समझाते हैं कि (अथमेवपादकृच्छ्रः यथाकथंचित् दण्डकालितवदावृत्या स्वस्थानविदृष्ट्या वा तत्राव्यानुलोम्येन प्रतिलोम्येन वा तथावक्ष्यमाराजपादियुक्तं तद्रहितं वा विरम्यस्तः प्राजापत्यं विधीयते) अर्थात् यही पूर्वोक्त पादकृच्छ्र दण्ड कालित न्याय की तरह आवृत्तियां बढाकर अथवा अपने अपने स्थान ही की वृद्धि से तिनमेंभी अनुलोम रूपे क्रम से या प्रतिलोम उलटे क्रम से वृद्धिकरै ये दो भेद औरहैं तथैव जो आगे कहा चाहते हैं सो जपादिक भी जायँगे या उनके बिनाभी तीनवार अभ्यास

कियाहु आ पूरा प्राजापत्य कहाता है) इतने भेदोंमें कोईसा एक भेद करनेवाले के विचार वाली इच्छा पर आख्ख है सो इन भेदों के ठीकठीक लक्षणा भी यथा क्रम से आगे जुदे जुदे ग्रन्थों के प्रमाणा से दर्शाते हैं=तिसमें एक रंड कालित की तरह वाले पक्ष को वशिष्ठ ने प्रकाश किया है=यथा=अहःप्रातरहर्नक्त महरेकमयाचित स अहःपराकंतत्रैकमेवंचतुरहौपरौ अनुग्रहार्थेविप्राणांसनुर्धर्मभृतांवरः बालवृद्धातुरे ज्वेवंशिशुकचछ् सुवाचह=अर्थात्—एक रोज दिन के भोजन वाला व्रत एक रोज राति में भोजन वाला एक रोज बिना सांगे भोजन का चौथे रोज निपट निराहार व्रत करिके फिर इसीप्रकार चार चार दिनों के दो फेर पिछले जानौ अर्थात् पाँचवें दिन से वही एक एक रोज वाला क्रम साधै फिर नवमे रोज से उसी प्रकार साधै तौ यह बारह दिन में शिशुकचछ् नाम का प्राजापत्य पूरा होता है जो धर्मज्ञ मनुने ब्राह्मणों पर अनुग्रह के लिये और बालक बूढ़े आतुरों के निमित्त पर कहा था (यहाँ इतना भेद जुदा समुझे रहिना कि बालक बूढ़े रोगियों के लिये शिशुकचछ् कहा सो केवल चार दिन में होगा उसी को तिगुना करने से प्राजापत्य नाम सुधेक्रम से स्वस्थान की वृद्धिवाला पक्ष भी मनुने आपही प्रकाश किया है= यथा=अहंप्रातस्त्र्यहंसायं अहमद्यादयाचितष परंअहंचनाश्रीयात्प्राजापत्यंचरेत् द्विजः=अर्थात्—निरन्तर तीन रोज तक दिन में भोजन फिर तीन दिन राति में भोजन वाला नक्त व्रत करिके तीन दिन अयाचित बिना सांगे भोजन का व्रत करै फिर सब से पीछे तीन दिन कोरा निराहार करै तौ भी यह बारह दिन का प्राजापत्य होगा ॥ इसीको उलटे क्रमसे प्रातिलोस्यावृत्तिके नामसे वशिष्ठने प्रकाशकिया है=यथा=प्रातिलोम्यंचरेद्विप्रःकचछ् चान्द्रायणोत्तरस=अर्थात्—ब्राह्मण इसीप्राजापत्यकचछ्को उलटे क्रमसे आचरै चान्द्रायण करनेकेवाद अर्थात् पहिले चांद्रायण करै फिर इस प्राजापत्य को उलटे सार्धसे साधै किन्तु पिछले कोरे निराहार वाले तीनि व्रतोंको सबसे पहिले फिर अयाचित व्रतोंको फिर नक्तव्रतोंको फिर दिन के भोजनवालोंको यही उलटा क्रमठहिरा ॥ जपादिकोंकेबिना केवल कृच्छ्रही करना जो ऊपर चर्चा कर चुकेहैं तिसका पक्ष अंगिराने खी और शूद्र आदि के निमित्त में प्रकाशकिया है=यथा=तस्माच्चछ्द्रंससासाद्यसदावर्त्मपर्येस्थितस प्रायश्चित्तंप्रदातव्यं अपहोमादिर्वर्जितस=अर्थात्—पूर्वोक्त कारणसेसदा निर्विकल्प यहीनियमहै कि प्रायश्चित्त करनेकी इच्छासे वर्त्मके पन्थ पर आख्ख हुये शूद्रको पाइकर जप होम आदिसंभवालेविद्वानोंकोछोड़िकेप्रायश्चित्तवतानाचाहिये—॥अत्रजपाटिनियमाः-

जपादिक सहित कृच्छ्र करनेका पक्षकाहिना श्रेय रहा तिसको तीनों वर्णके निमित्त में समुष्कलेना जो कृच्छ्र पढे लिखे भी हों क्योंकि विद्याके सम्बन्धसे उन्हीं पर योग्यता उसकी श्रेय रही—सो भी गौतमऋषि ने उन्हीं तीनों वर्णके निमित्त में स्पष्ट प्रकाशकरी है—यथा—अथातः कृच्छ्रान्द्व्याख्यास्यामः इविष्यान्प्रातराशान् भुक्त्वा तिस्रोरात्रीर्नाश्नीयात् अथापरं ज्यहंनक्तस्भुंजीथापरं ज्यहंनक्तं चनयाचेत्तथापरं ज्यहं सुपवसन् तियेदहनिरात्रावासीत् क्षिप्रकामः सत्यं वदेद्वनार्यैः सह न भाषेत रौरवयोधांजपे न्नित्यं प्रयुंजीतानुसवनं सुदकोस्पर्शनमापोहिष्टेति तिसृभिः पवित्रवतीभिर्मर्माज्जंथीत— हिरण्यवर्णाः शुचयः पावका इत्यष्टाभिरथोदकतर्पणां नमो हमायमोहमायमंहमायवन्व नेतापसायपुनर्वसेनमः मौज्याय और्म्याय वसुविन्दाय सर्ववर्णाविन्दाय नमः पारायसुपाराय महापारायपारदाय पारयिष्यावेनमः रुद्रायपशुपतये महते देवाय ज्यम्बकायैकचरायाधिपतये हरायशर्वायेशानाय उग्रायवज्रिणो घृणिने कपर्दिनेनमः सूर्यायादित्याय नमः नीलग्रीवाय शितिकंठाय नमः कृष्णायपिंगलाय नमः ज्येष्ठाय श्रेष्ठाय वृद्धायैन्द्रियाय हरिकेशाय ऊर्ध्वरेतसेनमः सत्यायपावकाय पावकवर्णायैकवर्णाय कामाय कामरूपिणो नमः दीप्तायदीप्तकपिरो नमः तीक्ष्णायतीक्ष्णाकपिरो नमः सौम्यायपुरुषाय महापुरुषायसम्यक्सपुरुषाय उत्तमपुरुषाय ब्रह्मचारिणो नमः चन्द्रललाटाय कृत्तिवाससे नमः—इति—एतदेवादित्योपस्थानमेतास्वा १२ ज्याहुतयो । द्वादशरात्रस्यांते चरुं ग्रपयित्वा एताभ्यो देवताभ्यो जुहुयात्—अग्नये स्वाहा सोमाय स्वाहा अग्नीषोमाभ्यामिन्द्राग्निभ्यामिन्द्राय दिप्रवेभ्यो देवेभ्यो ब्रह्मसो प्रजापतये अन्नये त्विष्टकृते—इति—अंते ब्राह्मणभोजनम्—तत्र (तियेदहनिरात्रावासीत् क्षिप्रकामः) इत्यस्यार्थः—यस्तु मन्सो १२ प्येनमः क्षिप्रमेवेनैव कृच्छ्रं शस्त्रिप्रभुच्येद्यं इत्येवं कालयते असावहनि कर्त्तव्यं कालेयु कालेयु तियेदरात्रावासीत् (एवं रौरवयो धारण्यसाजपः नमो ह्रायेत्यादिभिस्तर्पणादित्योपस्थानादिकंचतुस्रपसादिकंचयोगीश्वराद्यनुक्तां क्षिप्रकामः कूर्वीत—अतश्च योगीश्वराद्युक्तप्राजापत्यद्यस्थाने गौतमीयमनेकोत्तकर्त्तव्यतासहितं द्रष्टव्यं एवमन्यान्यापि कृत्यंतरोक्तानि विशेषतान्यन्प्रेयसीथानीति मिताक्षराकाराः—अर्थात्—गौतम आदिके नामसे मिताक्षराकार इस बहुतबड़े विद्वानको ग्रन्थान्तरसे खींचके दशातिहें सोलथाक्रमसे देखी—अब यहाँसे कृच्छ्रोंका व्याख्यान करेंगे जैसा तीनदिन इविष्य जो वान आदि प्रातःकालिक भोजन करिके उन्हीं रात्रों में कृच्छ्र न खाय अन्नन्तर इसके और भी तीन-रोज नक्ताभोजी होकरहै अर्थात् दिनमें न खाय रातिही में खायाकरै फिर तीनदिन अयाची होके किसीपर न सांसे तथा और भी तीनदिन कोश उपवास करते दिनमें

रहै तथा रातिमें भी जो शीघ्र अपने पाप सोचनकी कामना रखताहो तो ये नियम साथै सत्यबोले दुर्जनों से बातचीत न करे और सामवेदोक्त रौरवयोध नामका साम ऋष होताहै तिसको नित्य दिनमें उचित समय पर वैदिके जपे और सर्वदा नित्यही त्रिकालस्नानकरे और आपोहिष्ठा इत्यादि पवित्रवती तीनि ऋचाओंसे मार्जन करे फिर इसके अनन्तर (हिरण्यवर्गाःशुचयःपावकाः)इत्यादि आठ ऋचाओंसे जलका तर्पणा करे इसके अनन्तर ऐसे चिह्न से आगे नमोहमाय आदि लेकर कृत्तिवास से नमः पर्यन्त जितने मंत्र ऊपर लिखे सौजद हैं उन सबको पढ़िकर आदित्यका उपस्थान करे अर्थात् सूर्यको सन्मुख खड़े होकर दृष्टिमिलाकर इतने मंत्रोंसे स्तुति करे और जलमें तर्पणा इन मंत्रोंसे भी करे अर्थात् जैसा हिरण्यवर्गा आदि आठऋचाओं से करना कहिचुके तैसा उपस्थानके मंत्रोंसे जुदा तर्पणाभी करना चाहिये और इन्हीं उपस्थानवाले जुदे जुदे मंत्रोंसे घृतकी आहुति भी एकसक देनी चाहिये यह रोजरोज की साधना विधि कही गई ऐसा वारहदिन क्रिये पीछे होसकेलिये चरु पकाइके इतने देवताओं के अर्थहोस करे किन्तु जो (अग्नयेस्वाहा आदि मंत्रहैं तिनसे आहुतेंदेकर पूर्वोक्त उपस्थान और तर्पणाके मंत्रोंसेभी होसकरना फिर पीछेसेव्रह्मभोजकराना ॥०॥ यद्यपि यथाक्रमसे समस्तविधानके अर्थलिखेगये परन्तु बीचमें(तिष्ठेदहनिरात्रावासी तस्मिप्रकामः)ये चौदह अक्षर जो प्रारंभके समीपही आचुकेहैं तिनका विशेष ध्यौरे वारअर्थ सबसे नीचे आकर सिताक्षराकार जुदाभी दर्शातेहैं कि-स्मिप्रकाम उसपुरुष का नामहै जो मनसे अपने हृदयसे कामना रखताहो कि मैं शीघ्र अपने पापसे छूटों अर्थात् सकही छच्छ करिके शुद्ध होसकें इसको चाहिये कि दिनमें पूजा कर्म के अविरोधी उचित कालोंमें बैठे वा उपस्थान आदि मध्य सूर्यके मध्य सलयपर खड़ा होय एवं रात्रिमें जहां जैसा उचित हो उसीपर स्थितहोय (तिससे यह सिद्धांत टहिरा कि रौरवयोध नामका जप और नमोहाय आदि मंत्रोंसे तर्पणा तथा उन्हींसेसूर्यका उपस्थान आदि जो कुछ लिखिचुके या खीरि पक्षानाआदि और जोकुछ कहागया कि जिनवातोंको योगीश्वर आदिने प्राजापत्यके साथमें नहीं दर्शाया सो सब उसको करना चाहिये जो शीघ्र अपने काम की सिद्धि चाहे—इसी से यहभी तात्पर्य टहिरा कि योगीश्वर आदिकेवताये दोप्राजापत्योंके स्थानपर इदगौतमकीकृतान्यता सहित विचारकरे क्योंकि गौतम औरभी अनेकोंने ऐसाही कहाहै ॥ ३२०॥यह तीनसौवीस के पूर्वाह्न श्लोकवाली अविक्तोक्ति पूरी हुई इसमें दोबत प्राजापत्यही के लक्षणा भेद कहेगए ये सबकुछही कहातेहैं इससे आगे अतिछच्छ के लक्षणा कहेजायेंगे ॥

(अतिकृच्छ्रस्वरूपं)

अयमेवातिकृच्छ्रः स्यात्पाणिपूरान्नभोजनः ३२० ।

अर्थः—यही अति कृच्छ्र होय यदि पारिापूर अन्न भोजन होय=अर्थात्—यही प्राजापत्य जो ऊपर कहिचुके सो अतिकृच्छ्रनाम कहानेलगै जो एक मुट्ठीभर अन्न खाकर कियाजाय—इसका भी यह तात्पर्य्यहै कि प्राजापत्य सर्वथा उसी रीति से कियाजाय जैसा लक्षणा उसका कहिचुके हैं परन्तु इतनी विशेषता हेनो चाहिये कि उसमें जहांजहां दिनके या रातिके भोजनोंमें बाईस या चौबीस या छबीसकौर भोजन करना लिखाहो तिसको छोड़ि केवल एक मुट्ठीभर अन्न भोजन कियाजाय इतनी विधि बदलनेसे अतिकृच्छ्र कहाताहै और अन्तके दिवसोंमें जहां कोरा उपवास कहिचुके सो यहां भी उसीतरह कियाजायगा उसमें मुट्ठीभर अन्न की अपेक्षा नहींहै और वहांपर प्राजापत्यके चारजुदेपाद या तीनही पाद जैसे कहिचुके तिनकी उलटा पलटी अर्थात् अनुलोम या प्रतिलोम क्रम जैसा कुछ कहा गयाथा सो सब यहां भी उसी प्रकार समुझे रहिना ॥ ३२० ॥

३२० अधिकोक्तिः=यत्सुमनुक्तं= एकैकं ग्रासमश्रियात्त्रयहारिात्रीरापर्व्ववत् =यहंचोपवसेदन्त्यमतिकृच्छ्रं चरन् द्विजः=अर्थात्—मनुने यह कहाहै कि तीन तीन दिनोंके तीन फेर कुल्ल नौ दिनतक एकही एक ग्रास भोजन करै सो उसी पहिली रीतिसे (कि जैसा कृच्छ्रव्रत में तीन दिन सबरे तीन दिन सांभको तीन दिन बिना सांगे जब कोई लेआवै तभी खाय यही प्राजापत्य में कहि चुके हैं उसीके अनुसार यहां नौ दिन भर एक एक ग्रास रोज खाकर) पीछेसे तीन दिन कोरे उपवास करै तो यह द्विजातीका अतिकृच्छ्रव्रत कहावै—अर्थात्—पहिला प्राजापत्य जो कहिचुके सो कृच्छ्रहीकहाजाता यह अतिकृच्छ्रकहावै और कृच्छ्रातिकृच्छ्र इससे आगे कहा जायगा वह ३२१ तीनसौइक्कीस मूलप्रलोकमें देखना इन तीनोंमें यह भेदहै कि पहिला छोटा दूसरा उससे बड़ा और तीसरा इनदोनोंसे बड़ा होगा (मिताक्षराकार कहितेहैं कि अति कृच्छ्र में योगीश्वरने मुट्ठी भर अन्नखाना कहा और मनुने एक ग्रासभर अन्न खाना कहा तिससे यह कदिन प्रतीत होता समर्थ पुरुष को बताना चाहिये) यद्यर्थ में ये दोनों बात बराबर हैं कुछ भेद नहीं क्योंकि एक ग्रास भी मोरके अंडे बराबर कहिचुके हैं वह अण्डा एक मुट्ठीभर होताहै • तिससे यह भी न कहिना चाहिये कि यह समर्थको बताना वह असमर्थ को ॥ ३२० ॥

(कृच्छ्रातिकृच्छ्रस्यपराकस्यचरूपं)

कृच्छ्रातिकृच्छ्रःपयसादिवसानेकविंशतिम् + द्वादशाहोपवासेनपराकःपरिकीर्तितः ३२१

अर्थः—एकविंश २१ दिनपर्यन्त दूधपीकर व्रतक्रियाजाय सो कृच्छ्रातिकृच्छ्रनाम कहाताहै—कितना दूधपीकर इसअपेक्षासे ३१८ तीनसौ अटारहकी अधिकोक्तिमेंपराशरका बचन देखौ=सौतम ने केवल जल पीकर बारह दिनका कृच्छ्राति कृच्छ्र व्रत बताया है (अचक्षस्त्वतीयःसकृच्छ्रातिकृच्छ्रः) अर्थात् पहिले दो भाँति के रूप कहिकर पीछेसे कहाहै कि तीसरा वह जो सिर्फ जलखाके होय सो कृच्छ्रातिकृच्छ्र नाम जानौ ॥ + ॥ बारहदिनकोरा उपवास करनेसे पराक व्रत कहाता है ॥ ३२१ ॥

(सौम्यकृच्छ्रस्यरूपं)

पिण्याकाचामतक्रांबुसक्तूनांप्रतिवासरम् + एकरात्रोपवासश्चकृच्छ्रःसौम्योऽयमुच्यते ३२२

अर्थः—पिरायाक • आचास • तक्र • अंबु • सक्तू • इनका प्रतिवासर एक एकसाधन करिके पीछे से एक दिन कोरा उपवास भी करै=अर्थात्—प्रथम दिन तिलोका पीना खली • दूसरे दिन आचास अर्थात् भात का माड • तीसरे दिन मट्टा • चौथे दिन जल • पांचवें दिन सतुआ धानके बने अथवा जौ के बने • छठे दिन कोरा उपवास करिके छे दिनका यह सौम्यकृच्छ्रव्रत कहाताहै (कितनी कितनी ये चीजें खाय इस अपेक्षामें यह ससभिलेना कि जितना थोडा खानेसे प्राणाँकी रक्षा बनी रहेगी उतना खाय बहुत नहीं ॥ ३२२ ॥

३२२अधिकोक्तिः=जाबालमुनिने चारिही दिनका सौम्यकृच्छ्रकहाहै=यथा=पिरायाकंसक्तवस्तक्रंचतुर्येहन्यभोजनसदासोवैदक्षिणांद्यात्सौम्योऽयंकृच्छ्रुच्यते=अर्थात्—एक दिन पीना • दूसरे सक्तू • तीसरे मट्टा • चौथे दिन कोरा उपवास और एक बखकी दक्षिणादान करै तौ यह सौम्यकृच्छ्र कहाजाताहै ॥ ३२२ ॥

(तुलापुरुषकृच्छ्रस्यरूपं)

एपांत्रिरात्रमभ्यासादेकैकस्ययथाक्रमम् । तुलापुरुषइत्येपज्ञेयःपञ्चदशाहिकः ३२३

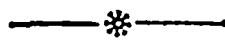
अर्थः—इन पाचौका तीन रात्रि एक एकका अभ्यास यथा क्रम करने से यह पन्द्रह दिनका तुला पुरुषनाम कृच्छ्र व्रत कहाताहै=अर्थात्—यथा क्रमसे यह दिन उन्हीं पूर्वोक्त तिलखली आदि पांचौमें पहिली चीजको पहिलेतीनदिन फिर दूसरी

को तीन दिन फिर तीसरीको तीन दिन फिर चौथीको तीन दिन फिर पाँचवींको तीन दिन खाकर पन्द्रह दिन परे करै (इसमें पन्द्रह दिनका नियम कहिदेनेसे छठे दिन कोरे व्रतकी मनादी ठाहरी ॥ ३२३ ॥

३२३ अधिकोक्तिः=यमने इक्कीस दिनका तुला पुरुष व्रतायाहै=यथा=आचा मसर्थापरायाकंतक्रंचोदकसक्तुकाव इयहंयहप्रयुंजानोवायुभक्षस्त्रहंदयस सकविंश तिरात्रस्तुतुलापुरुषउच्यते (इतिहारीतोक्तेऽतिकर्तव्यताग्रन्थगौरवभयान्नलिह्यते इति मिताक्षरा=अर्थात्—साङ्ग•पीना•मठा• जल•सत्तू• इनको तीन तीन दिन खाता हुआ चादि पन्द्रह दिनके छेदिन वायु भक्षीहोय अर्थात् कोराव्रतकरै तौ यह इक्कीस रात्रिका तुला पुरुषव्रत कहावै (मिताक्षराकार कहितेहै कि हारीत के वनास ग्रन्थ में यह बात बहुत बड़ी कर्तव्यतासे वर्तमानहै हम ग्रन्थ बढिजानेके भयसे उसे नहीं लिखतेहैं ॥ ३२३ ॥ अब अगले परिच्छेदमें चान्द्रायणव्रतोंके भेद और उनकेसाथ भी थोडासाकच्छों का बरान कियाजायगा ॥ ३२३ ॥

अथचान्द्रायण सोमायन मासिकव्रतभेदानां नामलक्षण

विधिप्रकाशकोऽयंपरिच्छेदः पञ्चाशीतितम (८५)



इस परिच्छेदमें चान्द्रायण मासिक व्रतके अनेक लक्षणा भेद उनकी विधि और नामों सहित प्रकाश कियेजायँगे तिनमें प्रथम• यवमध्यचान्द्रायण• पिपी-
लिकामध्यचान्द्रायण फिर सबका विधान• फिर साधारणचान्द्रायण•
यतिचान्द्रायण• शिशुचान्द्रायण• ऋषिचान्द्रायण• सोमायन के
विधान• ये सब इसी क्रमसे लिखेजायँगे ॥

(चाद्रायण व्रत रूपं)

तिथिवृद्ध्याचरेत्पिण्डान्शुक्लेशिख्यण्डसम्मितान् । एकैकं द्वांसयेत्कृष्णेपिंडं चान्द्रायणं चरन् ३२४

अर्थः—चान्द्रायणको करतेहुये शुक्लपाखमें शिखीसोरके अराडे समान पिण्डों का त्रिथिकी वृद्धिसे बढाते हुये चरै भक्षणा करै फिर कृष्णपाख में एक एक पिण्ड घटाताजाय=अर्थात्—शुक्लपाखकी प्रतिपदासे प्रारम्भकरै उस दिन छिपीहुई चन्द्रमा की एकही कलाहोतीहै तिसमें एक गोला दालि चावल आदि अन्नका सोरके अंडे

बराबर ब्रह्मके स्वाय फिर द्वितीयाको दो पिराड तृतीया को तीन इसी रीतिसे पूर्णा-
मासीको पन्द्रह पिराड खाइके अंधेरी प्रतिपदा को १४ चौदह पिराड स्वाय दौघ्रज
को १३ तेरह पिराड तीजको १२ बारह पिंड इसी प्रकार कृष्णाचतुर्दशीको एकही
ग्रास खाकर अमावास्यामें निपट कोई कला चन्द्रमाके नहीं रहती है उक्तदिन कोरा
उपवास करै तो यह चान्द्रायण व्रत कहाला है ॥ ३२४ ॥

३२४ अधिकोक्तिः=वशिष्टः=सकैरं वर्धयेत्पिंडं शुक्लकृष्णोचहासयेत् इन्दुक्षयेन
भुंजीतस्य चान्द्रायणो विधिः=अर्थात्-वशिष्टने साफ़ यही कहा है कि शुक्लपाख में
सक सक पिंड रोज बढ़ावै और कृष्णापाखमें सक सक रोज घटावै परन्तु इन्दुक्षय
नास जो अमावास्या है तिसके रोज कुछ भी न खाय यह चान्द्रायणाको विधि जानौ
(चन्द्रमाके अयनका बढ़ना घटना जैसा होता है तैसाही आचरणा इस व्रतके कर्म
का होता है तिससे चान्द्रायण इसका नाम टहिरा) जैसा यह कहा गया तिसका
विशेषनाम यवमध्य चान्द्रायण भी कहाला है क्योंकि जो के दोनों छोर नोकें और
बीचमें मोटापन होता है उसी प्रकार इस चान्द्रायणमें दोनों छोर एकही सक पिंड खाने
से नोकें पतरी और बीचमें पूर्णमासीके टिकाने पन्द्रह पिराडोंकी बहुत मुटाई फिर
दोनों तरफ जो के समान ढाल होता है-इतियवमध्यं चान्द्रायणं ॥ अथ पिपीलिका-
कामध्यचान्द्रायणविधिः-अर्थात्-यही चान्द्रायण जहां कृष्णापखकी प्रतिपदा से
रुकेर सक सक पिंड खाकर किया जाय जिसमें लौटकर पूर्णमासीका कोरा व्रत
करना हो जो कृष्णा प्रतिपदासे सक दिन पहिले आती है तो फिर इसका विशेषनाम
भी पिपीलिका मध्य कहा जाय कि जैसे चीटा चीटी बीचमें खाली और दोनों छोर
मोगरीसे मोटे हुआ करते हैं तैसाही डौल इस चान्द्रायणाका होजाता है (प्रकार इस
का यही है कि अंधियारी परिवार से सक सक ग्रास बढ़ाते अमावसको पन्द्रह
ग्रास खाकर अंधियारी परिवार को चौदह फिर इसी तरह सक सक घटाते चौदसि
में एकही खाकर पूर्णमासीको निपट सक भी नहीं तिससे चीटीके आकार बीचमें
खाली टहिरा क्योंकि पूर्णमासी महीनाके बीच में होती है) तथापि आचार्योंने
इस प्रकारका स्वीकार नहीं किया क्योंकि अमावास्यामें निपट विधुक्षय होनेमे को-
रा व्रत करना सिद्ध हो चुका है तिसमें पन्द्रह ग्रास खानेका व्योंत आकर परता है यह
विरोध अच्छानहीं-तिससे-इसी पिपीलिका मध्य चान्द्रायणाका दूसरा व्योंत क-
रणपरा मो दर्शाते हैं कि पूर्वाक्त यवमध्य चान्द्रायणा के टंगसे केवल इतना भेद क-
रना चाहिये कि अंधियारी परिवारसे प्रारम्भ करे परन्तु प्रथम दिन चौदह ग्रास भोगे

जो उसी पूर्वोक्त सारामे सोरहवें दिवस खानेपरये फिर दूसरेदिन द्वितीया को तेरह तृतीयाको वारह इसीप्रकार घटाते जाकर चौदसको एकही ग्रास खाकर अनावस में कोरा व्रतकरै फिर दूसरेदिन उजियारी परिव्राको एक दोयजको दो तीजको तीन ग्रास इसी प्रकार बढ़ाते जाकर पूर्णमासी को पन्द्रहग्रास खाकर उसीदिन व्रत को समाप्तकरै तौ यह टीक टीक पिपीलिकासध्य कहाजायगा कि बीचों बीच अमावस में कोराव्रत किया गया और ग्रास भी दोनों ओर एक एक दो दो आदि बढ़ते जाकर दोनों ओर मोटे होगये—और इसी व्योंतका प्रमारा आगे वशिष्ठके वचनोंसे मिलता है—अथाहवशिष्ठः=सासस्यक्षयापक्षादौ ग्रासानद्याच्चतुर्दश ग्रासापचयभोजीसनपक्ष शेषंसमापयेत् तथैवशुक्लपक्षादौगारुंभंजीतचापरस ग्रासोपचयभोजीसनपक्षशेषंसमापयेत्=अर्थात्—वशिष्ठजीने खुलासा कहिदिया है कि महीना के अंधेरे पाख की आदि में परिव्रा के रोज चौदह ग्रास भोगै फिर दूसरे दिन से एक एक घटाकर भोगते हुये पाख पूराकरै (इस व्योंतमें अमावस कोरी रहिजाती है) तैसेही उजते पाख की आदि में परिव्रा के रोज एक और ग्रास भोगै फिर दूसरे दिनसे एक एक रोज बढ़ाकर भोगतेहुये वाकी पक्षको पूराकरै यहाँ पूर्णमासी में पूरे पन्द्रहकोर होजायँगे यह टीक पिपीलिका सध्य चांद्रायणाका स्वरूपहै जिसकी अमावस में नहीं खाना परा ॥ ० ॥ यह शंका खडी रहिगईहै कि जब किसी पाखमें कोई तिथि घटिजाय या बढिजाय तब इनग्रासोंकी मोजाब कैसे टीक आवेगी• तिसके लिये इन्हीं वशिष्ठ के वचनोंपर ध्यान करना चाहिये कि अंधेरे उजरे दोनों पाखवाले जुदे जुदे प्रलोकों में (पक्षशेषंसमापयेत्) यही एकपाद आरोपित किया इसका यही तात्पर्य है कि पाखमें जितने दिन बाकी हों उनमें चाहें कोई तिथि घटी या बढीहो तौ भी पक्ष का बाकी भाग समाप्त करै अर्थात् अमावस और पूर्णमासी ये दोनों पक्ष की सीसारूपी हई होतीहैं इन्हीं हईों तक ग्रासोंका घटाना या बढ़ाना समाप्त करदेना चाहिये किन्तु एकपाखवाले कवलोंका हिसाब दूसरे पाखतकन जाने देवै इसका इसीमे समाप्तकरै—इस व्याख्यासे भी यह ध्वन्यर्थ निकसा कि तिथिके बढिजानेसे कदल भी बढ़ाये जायँ घटिजानेसे कोर भी घटाये जायँ—इसका दृष्टान्त जैसे उजते पाखवाली तीजको तीनग्रास खाने होतेहैं यदि उसी तृतीयाकी वृद्धिहोकर दोतीजें होजायँ तहाँ दोनों तीजोंको तीन तीन ग्रास खानेचाहिये• इसीप्रकार जहाँ पंचमी की जानिहोय तहाँ उसके नामके पाँचकोर न खाने होंगे अर्थात् चौथिमें चारग्रास खाकर दूसरे रोज यद्यी आपरने में छेग्रास होंगे इन्हीं दोनों दृष्टान्तसे सर्वत्र समझि

हेना—क्योंकि (तिथिवृद्धापिंडान्चरेत्) यह ३२४ सूत्रप्रलोक में पहिला पादहै
योगीश्वर का तिससे भी यही नियम सिद्धहोताहै कि तिथियोंके आधीन पिंड हो-
ते हैं ॥ ० ॥ उपयोगिविधानं—चांद्रायणाका उपयोगी विधान भी गौतमने पिपी-
लिका मध्यकी प्रधानता से कहिकर अबमध्यपर भी अतिदेश उसका किया है
बल्कि वही विधान सबतरह के चांद्रायणोंपर समझना=तदाहगौतमः=अयात्प्रचां
द्रायणांतस्योक्तोविधिः कृच्छ्रवपनव्रतंचरेत् प्रबोभतांपौरासासीमुपवसेत् आप्यायस्व
संतेपयांसिनवोन्नव इतिद्वैताभिस्तरुणा माज्यहोमोहवियप्रचानुमंत्राणामुपस्थानंचचन्द्र-
मसः॥ यद्देवादेवहेडनमित्तिचतसृभि राज्यंजुहुयात् देवकृतस्येतिचांतेसमिद्धिः(उंभूः उं
भुवः उंस्वः उंसहः उंजनः उंतपः उंसत्यंशः श्रीऊर्कइत् उंजः तेजःपुरुषःधर्मःशिवः)
इत्येतैर्गसानुमन्त्राणामुपस्थानं—प्रतिमन्त्रंसनसानमःस्वाहा इतिवासवनेतैरेव प्रासान्भुंजीत्॥ तद्-
ग्रासप्रमाराणां१२स्याविकारेणा चरु भैक्ष्य सक्तु करा यावक शाक पयो दधि घृतसूत
फलोदकानि हवींश्चि उत्तरोत्तर प्रशस्तानि ॥ पौरासास्यांपंचदशग्रासान्भुक्त्वा एकै
कापचयेनापरपक्षमश्नीयात्— असावास्यायामुपोष्यै कैकोपचयेन० पूर्वपक्षविपरीत
मेकेयामेषचांद्रायणोमासः इति=अत्रचमिताक्षरा—अत्रग्रासप्रमाराणांस्याविकारेण
ति यदुक्तंतद्वालाभिप्रायं शिख्यंडपरिमितपंचग्रासभोजनाशक्तेः—क्षीरादिद्रवहवियां
शिख्यंडपरिमितत्वंतु परांपुटकादिनासम्पादनीयं—तथाकुक्कुटांडाद्रामितकादीनितु ग्रा-
सपरिमाराणां स्मृत्यंतरोक्तानिशक्तिविययाणां शिख्यंडपरिमाराणाल्लघुत्वात्तेयां—
यत्पुनरुक्तंप्रबोभतांपौरासासीमुपवसेदित्यत्र चतुर्दश्यामुपवासमभिधाय पौरासास्यांपं-
चदशग्रासान्भुक्त्वेत्यादिना द्वात्रिंशदहरात्मकत्वं चांद्रायणास्योक्तंतत्पक्षांतर प्रदर्शना
र्थनसार्वत्रिकं योगीश्वर वचनानुरोधेन त्रिंशदहरात्मकस्यदर्शितत्वात् यद्येतत्सार्वत्रिकं
स्यात् तदानैरन्तर्येणसंवत्सरे चांद्रायणानुष्ठानानुपपत्तिःस्यात् चन्द्रगत्यनुवर्तनानुप-
पत्तिश्च=अर्थात्—गौतमका कथन है कि अब यहां से चांद्रायणा कहिना है तिसके
विधानका यह अनुक्रम है कि एक चांद्रायणा क्या बल्कि सभी कृच्छ्रमात्र में पहिले
हुंडन कराइ के व्रतका आरम्भ करै तहाँ आरम्भसे एकदिन पहिले (वपनव्रतंचरेत्)
वपनके निमित्त व्रतआचरै अर्थात् जहां पौरासासीसे चांद्रायणा आरम्भकरना स्वीकार
हो तहाँ दूसरेदिन सरेरे पौरासासी आने वाली देखि पहिले दिन सुराडनकराइकेउसी
दिन हुंडनके निमित्त दोरो उपवासकरै(इसीप्रकार अन्यकृच्छ्रोंमें समझिलेना) पौरा-
सासीसे रोजका यह कृत्यकार्य है कि (आप्यायस्ववन्ते पयांसि नवोन्नव) इत्यादि
चिह्नवाली इतनी श्रद्धाआसे तर्पणा और योका होम और जिस किनी अन्नके ग्राम

बनानेहों उसका नामहविय् होताहै उसीहविय् का अनुमन्त्रणा अर्थात् मन्त्र पढिके
 पवित्रकरना औरचन्द्रमाका उपस्थान उसकेसामने खड़े होकर मन्त्रोंसे स्तुतिकरना
 और ॥यद्देवादेवहेडलं आदि चारकण्डवाओंसे घृत होमै और होसके अन्तमें देवकृतस्य
 इत्यादि वेद मन्त्र से ससिधों से घृत लेकर होमै ॥ फिर (उंभः आदिसे शिवःपर्यंत)
 उतने मन्त्रों से पढिकर अपने रोजके सामली ग्रासोंको पवित्र करै—तिससे अतन्तर
 फिर एक एक ग्रास हाथ में लेकर उन्हीं उंभः आदि सर्व मन्त्रों को बोलिकर पीछे
 से नलःम्वाहा यह मनमें कहिकर ग्रास मुहमें धरै इसी विधिसे सब ग्रासों को भोगै ॥
 उन ग्रासों का यह प्रसारा है कि जितना मुख पूर्वक मुहमें चलाजाय किन्तु मुखप-
 खारना आदि विकार न करने परै (किन चीजों के ग्रास होयँ सो कहिते है) चरु
 अर्थात् पकाया भात वा खीरि०भैक्ष्य अर्थात् भिक्षासे सांगिलाया मिलाभूलाअन्न०
 सलुआ०कनकी तन्दुल की० यावक जौ का दलिया० शाक जो बथुआ सरसों आदि
 का इस काम के योग्य समझि परै० दूध० दही० घृत०मूत अर्थात् आलू घुइयांसकर-
 कन्द आदि जो निषिद्ध नहों०फल जोजो इस काम योग्य समझिपरै जैसे बेल खर-
 बूजा आदि० उदक गंगाजल आदि जो अतिशय पवित्र हों०इस कामके निमित्तमें ये
 सभी हविय् कहाते हैं इनमें पहिलेकी अपेक्षा पिछले पिछले अधिक अष्टजाने यह
 रोज रोज का विधान कहिके रौतम जी ग्रासों को प्रारम्भ करने का प्रकार अब
 कहिते हैं कि ॥ प्रथम पूर्रासासी के रोज पन्द्रह ग्रास खाइके अगिले दिन दूसरे
 पाख की परिवा से एक एक घटाते हुये रोज खाया करै=फिर अभावस में कोरा
 उपवास करिके परिवासे एकएक ग्रास रोज बढावै तौ यह पूर्रासासी दूसरी पर्यंत
 फिर पन्द्रह ग्रास खाकर एक साल चान्द्रायणा कहाता है (इसीका विशेष नाम
 पिपीलिका मध्य पहिले कहिचुके है) रौतम कहिते हैं कि जिरले एक आचार्यों
 के मतसे सही चान्द्रायणा पहिला पाख उलटा करदेने से भी होता है (जिसका
 नाम यवसद्य कहागया और विद्वान भी योगीश्वर आदिने कहा) यह सब रौतम
 का लयन पूरा होचुका=इसपर मिताक्षरा कार कहिते हैं कि—रौतम के विधानमें
 ग्रास का प्रसारा जो यह कहा गया कि जितना मुख से मुहमें जासके सो दालक
 शार्दूलचित्तियों के अभिप्राय पर समझना क्योंकि सोर के अराडे बराबर उन्हीं के
 मुह में नहीं जासता है और दालक उनको समझना जो सोर के अंडे बराबर पांच
 ग्रास एक दिनमें न खाइसके—और दूध आदि पतरी हरकनी चीजें जो हवियमें गि-
 नतीकरिं तिनके ग्रास सोरके अराडे समान लोंकर होसकेतहां उतने परिमानवाली

पत्ते की दोनी आदि से नाप तौल करनी चाहिये— और इन्हीं ग्रासों के परिमाण किसी ग्रन्थ में मुर्गाके अराडे समान किसीमें बहुत बड़े हरे आवरे के समान इत्यादि भेद जहां देखिपरै तिनको भी मनुष्यों की शक्ति के भेद पर समझि लेना क्योंकि मोरके अराडा से ये सब छोटे हैं—और जो गौतम ने चौदसि का उपवास फिर पूर्ण-सासी से पन्द्रह ग्रास का प्रारम्भ लेकर महीनाकी दूसरी पर्णमासी तक चान्द्रायण की समाप्ति कही तिसमें चौदसि पत्तों के दो दिन बढि जाने से बत्तीस दिन होगये सो यह एक दूसरा पक्षांतर समझि लेना कि जहां कोई बत्तीस दिनकी विशेषता से करनाचाहै सिर्फ तहांका यह नियमहै सर्वत्र नहीं क्योंकि सर्वत्रका सामान्यवही नियम है जोकि याज्ञवल्क्य आदि अनेकों ने तीस दिनका चांद्रायण ठहिराया- कदाचित् बत्तीस दिन वाला भी सर्वत्र के निमित्त माना जाय तो यह विरोध खडा होता है कि जब कोई कहीं एक संवत्सर में निरन्तरवारह चांद्रायण की साधना कियाचाहै तहांपरे वारह न होसकै तथापि यदि ऐसा समाधान दियाजावै कि वारह परे करने के लिये एक संवत्सर से उपरालू दिनबढाये जासकतेहैं जिससे वारहमहीने और चौबीस दिनमें प्रयोग पूरा होगा- तहां यह सबसे बडा व्यतिक्रम है कि चां-द्रायण चन्द्रमा की गतिके ऊपर होताहै वह गतिभी इतने दिन बढानेसे सर्वत्र छूटि जायगी कि जिसके छूटिजानेसे मुख्य क्रमका व्यतिक्रम होजायगा इति मिताक्षरा काराः॥०॥ एक यहवार्ता यादिरखनी चाहिये कि विधिमें चन्द्रमाका उपस्थानआदि कहिचुके हैं सो वह चन्द्रमा का उदयहुये दिना असंगत है तिससे रोज रोज चंद्रोदय के समय पर विधान और पीछेसे उक्त ग्रासों का भोजन किया जायगा चाहें किसी देरा उदयहोय इसीकारण चांद्रायण व्रत सबसे कठिन कहाता और इसीसे अभावस को एकभी ग्रास नहीं खायाजाता क्योंकि उस दिन विलकुल उदय नहीं होताहै—परन्तु ऐसा नियमभी उन्हींको समझना जो साक्षर सज्जन विद्वान् होते लंपर्ण विधिके साथ साथै अन्यथा सुख जन उदय होने दिनाभी रात्रिमें किसी एक नियत समयपरग्रास खाकर व्रत करते हैं क्योंकि जो चन्द्रोदयके आधीन करनाचाहें तो फिर नियत व्रत का होनाभी उनसे रहिजाय तिससे उत्तम कल्पको उपेक्षासे मन्द कल्पका स्वीकार कराया जाता है (सौतस की कही विधि के प्रारम्भ में पूर्णमासी पहिले जो मुंडन कराना कहा यद्यपि चतुर्दशी में और कर्षका नियम है तथापि वाचनिक विधि के विशेष वाक्यसे कुछ दोष नहीं है) खालान्य वाक्यसे विशेष वाक्य बलवान् होता है इसी लिये (तीर्थक्षारं चतुर्दश्यां) तीर्थमें चतुर्दशी को क्षार कराना योग्यहै यह

विशेष वचन घंटाघोष है • और प्रायश्चित्त का स्थलभी एक प्रकारका तीर्थ गिना जाता क्योंकि तीर्थके लक्षणा शास्त्रोक्त भी अनेक हैं तिससे प्रायश्चित्तके निमित्त से चतुर्विंशती में भी वपनका कुछ दोष नहीं है यह समझिलेना ॥ ३२४ ॥

अगले मूलप्रलोक से दूसरी भांति के चांद्रायणा कहे जायँगे ॥

(साधारणचांद्रायणा)

यथाकंधंचित्पिंडानांचत्वारिंशच्छतद्वयम् । मासेनैवोपभुंजीतचांद्रायणमथापरम् ३२५

अर्थः—यह और चांद्रायणा है कि जैसे किसी प्रकार के प्रयत्नसे हो दोसौचालीस पिंडोंका व्योंत लगाकर एकहीमास भरमें भोगें=अर्थात्—ऊपर जो तीसदिन का चांद्रायणा योगीश्वर ने कहा तिसमें समस्त २२५ दोसौ पचीसग्रास महीनाभरके होतेहैं उससे उपरालू गौतम के कहे विधान में दूसरी पूर्णमासी के पन्द्रहग्रास बढि जानेसे २४० दोसौचालीसकीर होजातेहैं उन दोनों प्रकारसे जुदा यह प्रकार कहा चाहते हैं इसलिये २४० दोसौचालीसपिंड तीसही दिनमें भोगेजायँ तिनके व्योंतका कोईसा नियत लेखा एकहीसा नहीं है अर्थात् इसके लेखे में अपनी इच्छाके अनुसार युक्ति लगानी होती है इसीसे यह कहा गया कि जैसे किसी प्रकार से होसके तैसे बारहवीसी पिराडोंका व्योंत एक महीना के दिनों पर फैलावै—उस फैलावा के इतने डौल हैं कि रोज मध्याह्न के समय आठग्रास खानेका नियम राखै अथवा चारकीर दिनमें चार कवल रातिमें खानेका नियम साथै तौ भी तीसदिनमें दोसौचालीस होजायँगे अथवा एकदिन चारपिराड दूसरे दिन बारहपिराड इस डौलसे भी हिसाब ठीक आवैगा अथवा एकदिन कोरा उपवास फिर दूसरे दिन सोरह पिराड इकठ्ठे या दिनराति में दोवार भोगे तौभी वही लेखा है • इसीतरह अन्यप्रकार भी कल्पना किये जासकतेहैं तिनमें कोईसा एक प्रकार अपनी इच्छा और शक्ति संभव आदि के अनुकूल सोचिके जैसा कुछ पहिलेदिन मंजूरकरै वही डौल तीसदिनतक चलाजाय तौ यह पूर्वोक्त यवमध्य और पिपीलिकामध्य दोनोंसे जुदा प्रकार (साधारणा) इस नामसे कहाला है (यतिचांद्रायणा • शिशुचांद्रायणा आदि इनके नाम भेद भी होतेहैं सो अधिलोक्ति में मनुके वचनों से देखना ॥ ३२५ ॥

३२५ अधिकोक्तिः—जितने डौल यहाँ दगाये सो नामसहित मनुने भी कहेहैं= यथा=अष्टावष्टौतत्तत्रोयात्पिंडान्मध्यंदिनेस्थितेनियतात्साहविष्णुस्ययतिचांद्रायणां चगेत् ॥ चतुर.प्रातरश्रीयात्पिंडान्विप्रःसमाहितः चतुरोऽस्तमितेसूर्येशिशुचांद्रायणां

चरत् ॥ यथा कथञ्चित्पिंडानां तिस्रोऽपीतिः समाहितः साक्षेनाश्वत्थहविष्यस्य चंद्रस्यै
 तिसल्लोक्तताम्—अर्थात्—सनुने यह कहा है कि जो कोई ब्राह्मण या यति चांद्रायण क-
 रना चाहै सो ठीक दुपहरके समय अपने शरीरको वषामें राखे हुये आठपिंड हविष्य
 के अर्घ्य पवित्र अन्नके रोज रोज एक महीना भर भोगे तो वही यति चांद्रायण
 कहाता है ॥ फिर कहते हैं कि यदि कोई विप्र शिशु चांद्रायण किया चाहै सो अ-
 पने शरीर और चित्तको सावधान राखे हुये चारकोर प्रातःकाल और चारकवल
 सूर्य अस्तहोते समय भोगे तो वही शिशु चांद्रायण कहा जाता है ॥ फिर कहते हैं
 कि हविष्य जो पवित्र अन्न है तीवार-सामा आदि तिसके तीनअस्सी अर्घ्य बारह
 बीस पिंड जो २४० दोसौ चालीस होते हैं सो चाहें किनी प्रकारसे जैसे होसके तैसे
 सकही साममें भोगे (अर्थात् जैसे ऊपर योगीश्वर के प्रलोक में कहिचुके तैसे यहाँ
 भी समझने) तो इसरीतिसे करनेवाला भी चन्द्रमा के लोकमें जाकर जन्म लेता है
 अर्थात् जिस किसीने यद्यपि कोई पाप नहीं किया जिसके प्रायश्चित्त की जरूरत
 हो दिना जरूरत के भी ऐसा व्रत करनेवाला ऐसाफल पावैसा यह तात्पर्य है ॥ ० ॥
 ऋषिचांद्रायण—सुल प्रलोकमें पीछेसे अपरं यहशब्द जो लगाया तिसका अर्थ जो
 कुछ उसीजर्थे लिखागया सो भी ठीक है पर उसी अपर शब्दका यह भी तात्पर्य है
 कि अपरं नाम और चांद्रायण जो नहीं कहे तिनको भी ग्रन्थान्तर में समाहितना=
 यदाहयमः—वींस्त्रीपिंडान्समश्नीयान्निच्यतात्माद्द्वत्रतःहविष्यान्नस्यवैसासमृयिचां-
 द्रायणांस्मृतम्—अर्थात्—जो कोई ऋषि चांद्रायण किया चाहै सो एक मास अपने
 शरीरको अच्छे नियम से जीतिके सच्चाव्रत राखे हुये हविष्यान्न के तीन तीन पिंड
 रोजखाय (इसमें सिर्फ ६० बड़े पिंडोंका हिसाब जुड़ता है ॥ ० ॥ सितासराकार
 कहते हैं कि—योगीश्वर तथा सनुने कहे० यतिचांद्रायण० शिशुचांद्रायण आदि
 अनेक और यज्ञका कहा ऋषि चांद्रायण० इन सबही में यह सुलक्षितलेना कि परि-
 वाको आदि लेकर चन्द्रमाकी रतिके अनुसार वाचना करनेकी अपेक्षा इनमें नहीं
 है तिससे सिर्फ तीसदिनका महीना चाहें तिस किसी तिथिसे सानिके प्रारंभ किया
 जासकता है अर्थात् तिथियोंकी घटी बढी आदि किनी कारणसेपूरे तीसदिन सानने
 केलिये यदि चौथि पंचमी आदि किसी औरही तिथिसे प्रारंभ करनापड़े तो भी कुछ
 बोजनहीं० परंहुयदिशुक्लेरी वाउजेरी परिव्रासेप्रारंभहोसके तोदहअदिक अष्टजातो॥०॥
 अथ सोमायन—सोमायन इजनासलेक्षे एक महीनेका व्रतजुदे प्रकारसेहोताहै=
 तदाहसाकंडेभः—तीक्ष्णसत्तरानंतु पिदेत्स्वदचतुष्टयात् सतत्रयात्सत्रराधं सत्तरांस्तन

विशेष वचन घंटाघोष है • और प्रायश्चित्त का स्थलभी एक प्रकारका तीर्थ गिना जाता क्योंकि तीर्थके लक्षणा शास्त्रोक्त भी अनेक हैं तिससे प्रायश्चित्तके निमित्त से चतुर्दशी में भी वपनका कुछ दोष नहीं है यह समझिलेना ॥ ३२४ ॥

अगले मूलप्रलोक से दूसरी भांति के चांद्रायणा कहे जायेंगे ॥

(साधारणचांद्रायणां)

यथाकथंचित्पिंडानांचत्वारिंशच्छतद्वयम् । मासेनैवोपभुंजीतचांद्रायणमथापरम् ३२५

अर्थः—यह और चांद्रायणा है कि जैसे किसी प्रकार के प्रयत्नसे हो दोसौचालीस पिंडोंका व्योंत लगाकर एकहीमास भरमें भोगै—अर्थात्—ऊपर जो तीसदिन का चांद्रायणा योगीश्वर ने कहा तिसमें समस्त २२५ दोसौ पचीसग्रास नहीनाभरके होतेहैं उससे उपरालू गौतम के कहे विधान में दूसरी पूर्णमासी के पन्द्रहग्रास बढि-जानेसे २४० दोसौचालीसकीर होजातेहैं उन दोनों प्रकारसे जुदा यह प्रकार कहा चाहते हैं इसलिये २४० दोसौचालीसपिंड तीसही दिनमें भोगेजायँ तिनके व्योंतका कोईसा नियत लेखा एकहीसा नहीं है अर्थात् इसके लेखे में अपनी इच्छाके अनु-सार युक्ति लगानी होती है इसीसे यह कहा गया कि जैसे किसी प्रकार से होसके तैसे बारहवीसी पिराडोंका व्योंत एक महीना के दिनों पर फैलावै—उस फैलावा के इतने डौल हैं कि रोज मध्याह्न के समय आठग्रास खानेका नियम राखै अथवा चारकीर दिनमें चार कवल रातिमें खानेका नियम साधै तौ भी तीसदिनमें दोसौ-चालीस होजायेंगे अथवा एकदिन चारपिराड दूसरे दिन बारहपिराड इस डौलसे भी हिमाव ठीक आवैगा अथवा एकदिन कोरा उपवास फिर दूसरे दिन सोरह पिराड इकट्ठे या दिनराति में दोवार भोगै तौभी वही लेखा है • इसीतरह अन्यप्रकार भी कल्पना किये जासकतेहैं तिनमें कोईसा एक प्रकार अपनी इच्छा और शक्ति संभव आदि के अनुकूल सोचिके जैसा कुछ पहिलेदिन संजरकरै वही डौल तीसदिनतक चलाजाय तौ यह पूर्वोक्त यवमध्य और पिपीलिकामध्य दोनोंसे जुदा प्रकार (सा-धारणा) इस नामसे कहाता है (यतिचांद्रायणा • शिशुचांद्रायणा आदि इनके नाम भेद भी होतेहैं सो अधिज्ञोक्ति में मनुके वचनों से देखना ॥ ३२५ ॥

३२५ अधिज्ञोक्तिः—जितने डौल अहाँ दगाये सो नामसहित मनुने भी कहेहैं—यथा—अष्टावष्टौनत्तत्रोयावपिंडान्मःश्रदिनेस्थितेनियतात्साहविष्णुस्ययतिचांद्रायणां चरेत् ॥ चतुर प्रातरश्रीयात्पिंडान्त्रिप्रःसमाहितः चतुरोऽस्तमितेसूर्ये शिशुचांद्रायणा

चरत् ॥ यथा कथंचित्पिंडानां तिस्रोऽशीतिः समाहितः सासेनाश्वत्थहविष्यस्य चंद्रस्यै
 तिस्रलोकतास=अर्थात्—सनुने यह कहा है कि जो कोई ब्राह्मण यतिचांद्रायण क-
 रनाचाहै सो टीक दुपहरके समय अपने शरीरको बधामें राखे हुये आठपिंड हविष्य
 के अर्थात् पवित्र अन्नके रोज रोज एक महीना भर भोगें तौ यही यति चांद्रायण
 कहाता है ॥ फिर कहते हैं कि यदि कोई विप्र शिशुचांद्रायण कियाचाहै सो अ-
 पने शरीर और चित्तको सावधान राखे हुये चारकौर प्रातःकाल और चारकवल
 सूर्य अस्तहोते समय भोगें तौ यही शिशु चांद्रायण कहाजाता है ॥ फिर कहते हैं
 कि हविष्य जो पवित्र अन्नहैं नीवार-सामा आदि तिसके तीनअस्सी अर्थात् बारह
 बीस पिंड जो २४० दोसौचालीस होतेहैं सो चाहें किजी प्रकारसे जैसे होसके तैसे
 सकही सासमें भोगें (अर्थात् जैसे ऊपर योगीश्वर के प्रलोक में कहिचुके तैसे यहाँ
 भी समझने) तौ इसरीतिसे करनेवाला भी चन्द्रसा के लोकमें जाकर जन्म लेताहै
 अर्थात् जिस किसीने यद्यपि कोई पाप नहीं किया जिसके प्रायश्चित्त की जरूरत
 हो बिना जरूरत के भी ऐसा व्रत करनेवाला ऐसाफल पावेगा यह तात्पर्यहै ॥ ० ॥
 ऋषिचांद्रायण—सूत प्रलोकमें पीछेसे अपरं यहशब्द जो लगाया तिसका अर्थ जो
 कुछ उसीजघे लिखागया सो भी टीक है पर उसी अपर शब्दका यह भी तात्पर्य है
 कि अपरनाम और चांद्रायण जो नहीं कहे तिनको भी ग्रन्थान्तर में समाहितना=
 यदाहयमः=वींश्रीपिंडान्वसञ्जीयान्निद्यतात्माद्द्वन्वतःहविष्यान्नस्यवैसासमृषिचां-
 द्रायणांस्मृतम्=अर्थात्—जो कोई ऋषि चांद्रायण किया चाहै सो एक सास अपने
 शरीरको अच्छे नियम से जीतिके सचाव्रत साधे हुये हविष्यान्न के तीन तीन पिंड
 रोजखाय (इसमें सिर्फ ६० तन्दे पिंडोंका हिसाब जुड़ता है ॥ ० ॥ मिताक्षराकार
 कहते हैं कि—योगीश्वर तथा सबुके कहे० यतिचांद्रायण० शिशुचांद्रायण आदि
 अनेक और यज्ञका कहा ऋषि चांद्रायण० इन सबही में यह सबशिक्षलेना कि परि-
 वालो आदि लेकर चन्द्रसाकी रतिके अनुसार याचना करनेकी अपेक्षा इनमें नहीं
 है तिससे सिर्फ तीसदिनका महीना चाहें तिस किसी तिथिसे मानिके प्रारंभ किया
 जासकता है अर्थात् तिथियोंकी घटी बढी आदि किजी कारणसेपूरे तीसदिन मानने
 केलिये यदि चौथि पंचमी आदिदिसी पौरही तिथिसे प्रारंभ करनापड़े तौ भी कुछ
 दोषनहीं० परंतु यदि ईश्वरी वाउजरी परिदासे प्रारंभ होसके तौ वह अशुभ अष्टयज्ञानो॥ ० ॥
 अथ सोमायनं—सोमायन इज्जनाससेभी एक महीनेका व्रतजुदे प्रकारसेहोताहै=
 तदाहमार्कडेयः=गोक्षीरं सप्तरात्रं तु पिवेत्स्तनचतुष्टयात् स्तनत्रयात्सप्तरात्रं सप्तरात्रं स्तन

चौबीसदिन होतेहैं इसमें कुछ संदेह नहीं परन्तु इन्हीं सबदिनोंमें रोजरोज तिथियोंके नामसे तिथिहोस करना भी बताते हैं कि) पहिलेदिन चौथिसे चौथिके नामसे यह मंत्रबोले (यातेसोमचतुर्थीतनुःतयानःपाहि तस्यैनमःस्वाहा) दूसरेदिन पंचमी तिथि में उसीके नामसे यह मंत्र बोले (यातेसोमपंचमीतनुःतयानःपाहितस्यैनमःस्वाहा) इसी प्रकारषष्ठीआदिके नाम जोड़ि जोड़ि इसीमंत्रसे रोज होसकरै० येहीतिथि होसकहाते हैं एकसास करनेसे पापोंके शुद्धहोकर मनुष्य चन्द्रमाके बराबरी दर्जेको पहुंचताहै उसके चन्द्रलोकमें रहने पाताहै बल्कि चन्द्रमाके शरीरहीमें संयुक्तहोके रहिताहै— इतना सुनाइके सिताक्षराकारकहितेहैं कि हारीतनेयहचौबीसदिनका भी सोमायन बताया सो उनकेलिये समझना कि जिन लोगोंसेपूर्वाक्त इकतीस या तीसदिनकानहो सकै (इसमें जोतिथियोंके होसकरहे तिनमें केवल मन्त्रही कहिकर सामग्री कुछनहीं बताई न कोईसा विशेष लक्षणकहा तिससेभी प्रत्यक्ष प्रतीत होताहै कि दूधकीधारे सुहमें लेते समय मुखसे और हृदय सेभी उन मन्त्रोंका उचारण करै यही स्वरूपहोस का बताया किन्तु अरिन में नहीं) पंच (इसवातका समाधान कुछनहीं हाथआता और सिताक्षरा ने इसवातपर पकड़भी न खड़ीकरी कि साफ चौबीसदिनका व्योंत बताकर हारीतने वाक्य परा करनेके अन्तमें एक महीना क्यों कहि दिया—तथापि मर्यादा प्रियके विचार से हारीतके वाक्य में हेतु गर्भित ध्वन्यर्थ देखि परताहै कि बारह दिन यनों का दूध पीनेके पहिले तीन दिन कोरा उपवास करै फिर दुबारा बारह दिन यनोंको पीकर अन्तमें तीनदिन कोरा उपवास करै (इसमें विशेष भेद इतना है किऊपर मार्कंडेय आदिकोंने महीना भरने एकहीबार तीन दिन वायुभक्षी होना कहाया हारीतने उसके दो भाग बनाकर दोनों पखवारे के आदि अन्तमें तीन तीन दिवस वायु भक्षी होना दर्शाया) तिससे छःदिन उन्हीं चौबीस दिनमें जुड़िकर पूरा महीना ठहिरा कदाचित्त यह ध्वन्यर्थ न होता तो हारीतके मुखसे एक महीने का शब्द भी नहीं निकलता और ऊपर जो चौबीस दिनका नाम आया सो वह व्याख्या सिताक्षरा की प्रत्यक्ष है कि उसने बारह बारह दिनों का जोड़ समझाया कुछ हारीतके सुहका शब्द नहींहै० बल्कि हारीतने इसीलिये कया पाख के तीन दिन छोड़िके चतुर्थीसे घनपीनेका आरम्भ करना बताया फिर इसीलिये शुक्लपाख की द्वादशीतक यनोंकोपीकर पीछेके तीनदिन उपवासोंके अर्थ वाकी रखवा दिये और छः उपवासोंका कराना यह महीना भरका नाम रखि देनेसे आपही सिद्धहोता है कुछ खुल्लन कहिने की जरूरत नहींरही ॥ ३२५ ॥

यहां तक चान्द्रायणा और कृच्छ्र आदि सभी व्रत भेदोंके लक्षणमात्र कहेगये—
अब योगीश्वर अगिलेपरिच्छेद में इन सबके साथ जो कुछ विधान करना शेररहा
ना दर्शावेंगे ॥

अथ सर्वेषां पूर्वोक्तव्रतादीनामनुष्ठानसमयोपयोगक्रिया विधिप्रकाशकोऽयं परिच्छेदः षडशीतितमः (६६)

—*—

इस परिच्छेद में चान्द्रायण और कृच्छ्र आदि साधारण सभी व्रत भेदों की क्रिया
विधि गकही कही जायगी कि जो सबके साथ काम आवै— अर्थात् जितने
व्रतहोसआदि प्रायश्चित्तोंके स्वरूप पहिले कहिचुके उनमेंसे जिसकिसी
का अनुष्ठान कोई करना चाहै तिसके साथ रोजरोज क्याक्या क्रिया
करनी चाहिये सो सब यहां एक साथ इकट्ठी कहेंगे ॥

(साधारणी कर्तव्यता)

सूर्याद्विषवणस्त्रायीकृच्छ्रचान्द्रायणंतया । पवित्राणिजपेत्पिंडान्गायत्र्याचाभिमन्तयेत् ३२६
अर्थः— वियवणस्त्रायी वनिदार कृच्छ्र करै तथा चान्द्रायणा भी और पवित्र
सन्ध्यांकोजपै तथा गायत्रीसेभीपिंडोंको अभिमन्त्रितकरै=अर्थात्—कृच्छ्रयाचान्द्रायणा
केदियजों से पवित्र सन्ध्यां को जपै और (उसमें जो पिंड चाससे गिनना ग्रास खाने
कहे गये उन्हीं) पिंडों पर भी वेदके पवित्र सन्ध्यां परहै तथा गायत्रीसेभी उन्हीं पिंडों
को पवित्र करै—इत बातोंका व्याख्यान शिर्ष्य अधिकोक्ति में देखना ॥ ३२६ ॥

३२६ अधिकोक्तिः—योगीश्वरने इसवचन में कृच्छ्रों और चान्द्रायणोंका सिद्धा
रूपसा साधारण तदही धर्म दर्शाया है कि अधिक उत्तम फल चाहने वाला इस
रीति से करै (किन्तु यह तात्पर्य नहीं है कि दोनों को मिलाकर एक साथ करे)
तथा कृच्छ्र जो प्राजापत्य आदि वर्णाग होचुके प्रसिद्ध हैं उन्में से जो कुछ कोई क्रिया
चाहै वही चान्द्रायणक्रिया चाहै उन्का यह वादी रहा विधान है जो सर्वत्र नहीं
करा जासकता या अब कहिते हैं कि—वियवणस्त्राय का नियम लेकर उन व्रतों को
करै—परन्तु सिताक्षराकार इस पर यह अनुमत स्वडा करते हैं कि ३२८ तीन सौ
अक्षरह मूलश्लोक में जो तत्रकृच्छ्र कला तथा या तिसको छोडिके यह नियम जानना

कोकि उसके मध्ये मनुने एकही बार स्नानका नियम साफ खोलिकर कहि दिया है (तत्र कच्छं चरन्विप्रोजलक्षीरघृतानिलाप प्रतिग्रहं पिबेदुष्यान्सकृत्स्नायीसमाहितः) यह वचन उसी अविद्वोक्ति में आच्छुका तहां देखी-तिससे त्रैकालिक स्नान तत्र कच्छं में न करै बाकी और सब तरहके व्रत विधानोंमें करै-क्योंकि-मनुने इस का प्रकार भी इस तौरसे कहा है (विरहस्त्रिनिशायांच सवासाजलमाविशेत् स्त्रीशूद्रपतितांप्रचैवनाभिभाषेतकहिचित्) अर्थात्-कच्छादि व्रत करने वाला पुरुष तीन बार दितके आदि अन्त मध्यमें और तीनवार राति के आदि अन्त मध्यमें स्नान के निमित्तसे वस्त्रों सहित जलाशयमें कूदि कर गोते लगावै (इस वचन का यह तात्पर्य है कि जिस किसी व्रतके विधान का प्रयोजन विशेषकर दिनमें होता हो तिसके मध्ये दिनहीमें त्रिकाल स्नान करै या जिस किसी व्रतका विधान प्रायः रात्रिमें करना परै तहां रात्रिही में तीनवार और दिनमें सामूली एकवार स्नानकरै अथवा किसी स्त्री शूद्र आदिसे स्पर्शाही अनायास होजाय या उनसे बात चीत करनी परी हो तब उसके निमित्तसे चाहै रात्रिहो या दिनहोय तत्काल स्नान करिके शुद्ध होजाय इसी लिये दूसरे अर्धप्रलोकमें कहिदिया है कि स्त्री और शूद्र और पतितां से बातचीत न करै इसी ध्वन्यर्थके आशयसे छे वारका स्नान बताया कि एक दो बार से लेकर चाहै छेवार तक नहाना परै पर अपने शरीर को प्रत्येक समय शुद्ध बना राखै और यही आशय अगिले अन्य वचनोंसे भी देखिलेना किन्तु आगे चलिकर कोई वचन दोही वारका स्नान बतावेंगे• तिससे छेवारका निर्विकल्प नियम नहींहै कदाचित् इसका निर्विकल्प सानाजाय तौ फिर जहां दशदश हजार जपोंका आरंभ होय तिसमें पहर पहर प्रति स्नानके हेतुसे बड़ा भारी एक दिवस खड़ा होजाय कि उस सामूली जप आदि कर्मको करनेभी न देवे-हां-उह ठीकहै कि जो कोई अति सुख होनेसे जप संघ आदि क्रियाओंको न करना जानै तिसको बारम्बार स्नानका अवकाश भी मिलसक्ताहै तथा अन्य कर्मोंके अभावमें छे वारके स्नानही का यदि नियमसाधै तौ यह उसकेलिये एक तपमें गिनती होसक्ताहै-इसीलिये-सिताक्षरा कारने अपना यह अनुमत खड़ाकियाहै कि यह राति और दिनमें भी तीनतीनवार का स्नान सिर्फ उसके लिये जानना जो अति समर्थ होके नियम साविसके किन्तु सबके लिये नहीं =सिताक्षरा कार फिर कहितेहैं कि-वैशंपायन मुनिने दोवार भी स्नान बतायाहै सो उसकेलिये जानना जिसपर त्रैकालिक न होसके=तथाचवैशंपायनः=स्नानं त्रिकालमेव स्यात् द्विकालं वा द्विजन्मनः (इतितत्त्वियवगास्नागक्तस्यवेदित

न्यमितिमिताक्षरा=अर्थात्-दृच्छोंमें द्विजाती को तीनों कालमें स्नान चाहियेअथवा दोही कालकरै=और जो=गार्ग्य मुनिने (सकनादाशचरैद्वैष्ट्यंस्नात्वावासीनपीडयेत्तदतिगक्तस्यैव० एकवागार्धवासा० लघ्वांशीस्थंडिलेशयइत्येकवहतायाअपि गंघेनपाक्षिकत्वाभिधानादितिमिताक्षरा) ऐसा नियम कहाहै कि एकही धोतीसे स्नानकरिके भिक्षासांगै किन्तु भीजी धारणा किये रहिके सांगै वस्त्र निचोड़े नहीं० यहभी नियम गक्ति वालेका समुक्तना जिसकी देहमें बलहो० एकही वस्त्र राखने मध्ये गंघेने भी यह कहिकर दर्शायाहैकि थोडासा हलुकाभोजन करिके स्थंडिल परसोवै अर्थात् ऊंची साठी रेतआदिकी चबूतरीबनाके उसपर लोटिरहै कपडानहींबिछावो॥०॥स्नानविधानं-स्नानकरनेका पूराविधानहारीतनेबतायाहैकिसेसेकरना=यथा=अथरंगुद्ववर्तीभिः ज्ञात्वाअथसूर्यारंभंतर्जले जपित्वाधौतमऽहतंवासः परिधाय शान्तासौम्येनावित्यमुपतियेत्=अर्थात्-तीनवार तीनों काल में स्नान करिके अथवा यथा संभवहो दोही कालमें स्नान करिके जल के भीतर अथसूर्यसूक्त को जपिके पश्चात् धुलाहुआ वस्त्र जो फटा पुराना न हो सो पहिन के (सदेवसौम्येदमग्रआसीत्) इत्यादि सास्येदोक्त सौम्य संघों को पढते हुये सूर्यके सन्मुख खडे होकर उपस्थान कर्म करै (यह तो देवल स्नान करने की विधि कही चाहै तीन या दो अथवा एक ही बार का स्नानहो स्नान के साथही इतना करै ॥ अथ पवित्रमंत्रविधानं-फिर योगीश्वरने जैसा मूलश्लोकमें पवित्र मंत्र जपने कहे तिनको आसनपर बैठिके जपै० इसमें यह सन्देह रहा कि वे पवित्रमंत्र कौनहैं तिनको जपै सो सब आगे मिताक्षरा कार समुक्ताते हैं देखो=पवित्राणिच=अथसूर्यारंभेवदतः शुद्धवत्यस्तरत्समा इत्यादि बगिछादि प्रतिपादिताना सन्यतसान्यथाविरुद्धेयुकालेयुजपेत्० सावित्रींवा० सावित्रीं वाजपेक्षित्यं पवित्राणिचगक्ततः सर्वेष्वेवत्रतेष्वेवंप्रायश्चित्तार्थमादृतः इतिमनुस्मरणादितिमिताक्षरा=अर्थात्-पवित्र रदोंके लक्षणानु १ इत्यादीके परिच्छेद में वर्णन हुयेये तहां ३०६ तीनसौ नौका अद्विदोक्तिमें बगिछ के भी छे प्रोक्त देखो (सर्वेवपवित्राणि) इनको आदि लेकर निम्ने होगे उनमें अथसूर्यारंभेवदत आदि अनेक संघोंके नाम लक्षण जैसे बगिछजीने कहे तैमे और भी श्रुतियों ने जहां कहीं पवित्र मंत्र दर्शायेही तिन सबहीको पवित्र जानो उनमें जे कौड़े सन्य जिसके प्रयोगन वाले नमस्किपरै उनको उन्नीका जप करना चाहिये परंच नैमे समझोंपर करना चाहिये कि जिस बेरा प्रायश्चित्त संबंधी कितनी सुख्य कादका कौड़े ना नियत समय न हो अर्थात् मुख्य कार्योंमें उपगलू जो फा नतू समय बचते देखै तिनमें जप करना चा-

हिये जिससे मुख्यकालोंका विरोध न होसके यह तात्पर्य है—अथवा—इन मंत्रों का बोध जिसको न होय वह सावित्री गायत्री को जपे क्योंकि मनुने भी यही नियम दर्शाया है कि चान्द्रायण और प्राजापत्य आदि कृच्छ्रोंमें भी सदा गायत्री जपे या अथमर्षण आदि षड्विध मंत्रोंको या गायत्री और पवित्रोंको भी अपनी शक्तिके अनुसार चाहें दोनों तरह के जप करै=और भी=चौरासी परिच्छेद में ३२० तीनसौ बीस वाली अधिकोक्तिमें (अत्रजपादिनियमाः) इसी नामका पाठ देखौ उसमें गौतमने यह लिखाहै कि (शैरवयोधांजपेन्नित्यंप्रयुंजीत० इति तदपि पवित्रत्वादेवोक्तं नटुर्ननियमाय) प्राजापत्यादिमें शैरवयोध नाम का सासवेदोक्त जप रोज करै• सो यह गौतमका कथन भी उस जघे केवल इसी अभिप्राय से समझना कि वह शैरव योध जप भी षड्विध मंत्रोंमें गिनतीहै जैसे यहां पर दर्शाए हुये अन्य मंत्रहैं तैसा वह भी एक षड्विध मंत्रहै अर्थात् उस आज्ञासे नियमात्मक यह तात्पर्य नहींहै कि उसी को जपना चाहिये और मंत्रोंको नहीं बल्कि उससे एक निदर्शन पाया जाताहै कि प्राजापत्योंके प्रयोगमें चाहें उसको जपे चाहें किसी औरही पवित्र मन्त्रको जपे अथवा गायत्री जपे• तिससे जो कोई सासवेदको न पढाहो तिसको शैरवयोधके बदले गायत्री आदिका जप करना निषेध नहीं है—और जो—उन्हीं गौतमने उसी विधिके प्रसंगमें (न सोहसाय सोहसाय) इत्यादि मन्त्रोंको दिखाइके यह कहाहै कि इतनी ही आहुतें धीकी चाहिये• सो इस बातको भी नियमात्मक न समझलेना कि प्राजापत्योंमें सर्वत्र उन्हीं मन्त्रोंसे होम होता होगा सो कुछ नियम नहींहै—क्योंकि—मनु ने महाव्याहृतियोंसे भी होम करना कहाहै=यथाहमनुः=महाव्याहृतिभिर्होमः कर्तव्यःस्वयमन्त्रहस्त अहिसासत्यसक्रोध सार्जवंचसमाचरेत्=अर्थात्—कृच्छ्र साधना के दिनों तक रोज रोज किसीकी सहायता दिना अपने आपही (उंभुः उंभुवः उंस्वः उंसहः उंसनः उंसपः उंसत्यं) इन महाव्याहृतियोंके घृतका होम करै—घृतही से क्योंकि (आज्यंहविर्वादेशेजुहोतिदुर्विधीकते० इति परिशिष्टवचनात्) परिशिष्टमें यह आज्ञा लिखी गईहै कि जहां कहीं होम करने कहेहों पर कोई हवि का नाम नहीं बतायाहो तहां घृतहीसे होय कियेजावे=यादि करौ कि यहांपर पवित्र मन्त्रों का वर्णन होरहाहै तिसमें महाव्याहृतियोंकी पवित्रता और उनका साधारण मंत्रत्व मनुकेवचनसे समझाया गया=उन्हीं व्याहृतियोंका साधारण मन्त्रत्व और पवित्रत्व भी षट्त्रिंशत्तत्के प्रथममें साफ साफ कहाहै=यथा=जपहोनादिप्रतिक्रिच्छ्रकृच्छ्रोक्तसम्भवेन्नचेत् सर्वव्याहृतिभिःक्षुर्याद्गयाय=याप्रसादेनच (आदिव्यहरणादुदकतर्पणा

दिव्योपन्यानाद्येर्हरां=अर्थात्—जप होस आदि और इसी आदि शब्दसे जलतर्पणा मंत्रका उपन्यास आदि जो कुछ कृच्छ्रोंमें कहा हो तिसका जानना या करना जहाँ सम्भव न देखिये तहाँ उन मन्त्रोंके बिना भी वही जप होस आदि सब कान व्या-
 र्हातियों के गायत्रीसे और प्रसाव उंकारसे भी करे अर्थात् पूर्वोक्त मन्त्रोंके न मिलने
 से कामकी न दोजे—इसीसे वैशम्पायनने ऐसा भी कहाहै कि (स्नात्त्वोपतिष्ठेदादि
 त्यं मारीभिस्तृतांजलिः) अर्थात् स्नान करिके सूर्यके सन्मुख सौरी नाम की ऋ-
 चाओंको पढ़त अंजली बाँधि खड़ा होय (इसमें सूर्यकी ऋचाओंसे उपस्थान बताया
 और पहिले इनी अधिकोक्तिमें हारीतने सोसकीऋचाओंसे सूर्यका उपस्थान करना
 कहा या • ती इन दोनोंका विरोध छोडि विकल्प सिद्ध होताहै कि चाहें इनसे करी
 या उनसे करी तुम्हारी इच्छा पर आरुढ है—इसी प्रकार और भी जो कोई पदार्थ
 इसमें कहीं पर विरोधी देखिये तिन सबही का विकल्प मानि लेना और जो
 अविरोधी देखिये तिनके समस्त भेदोंका समुच्चय मानिलेना कि यहभी और वहभी
 करजा चाहिये—जैसे एक वृक्षकी अनेक शाखा उस वृक्षकी एकही मूलपर आरुढ
 होने परपर भेदवाली नहीं कहातीहै—तैसे उसी शाखान्तराधिकरता न्यायसे सब
 स्मृतियोंका मूल गदाही धर्मशास्त्र रूपी वृक्ष कहाता है तिसकी अनेक शाखास्वपी
 स्मृतियां प्रसिद्ध हैं सबका गदाही प्रत्यय होनेसे उन्हीं वैशम्पायन मुनिने कृच्छ्रोंके
 कर्मकी और उनमे जपकी संख्या की विशेषता तथा जप करने का प्रकार भी जुदे
 प्रकारसे कहाहै कि=ऋषभं विरुजं चैव तथा चैवार्धमर्धसाम गायत्रीं वा जपेद्देवीं पवित्रां
 वेदसातरत्न शतसृष्टशतं वापि सहस्रस्य वा ऽपरस्य उपांशुमनसा वापि तर्पयेत्पितृदेवताः स
 नुप्यांश्चैव सूतानि प्रसास्य शिरसा ततः=अर्थात्—वश्यम नाम के मन्त्रको और विरुज
 नामके मन्त्रको तथा अघमर्षणा की या वेदोंकी साता अतिपवित्रा गायत्रीदेवी की
 जपे • रोज रोज कितना जपे सो कहिते हैं कि एक गौ या आठ गौ या एक महस्र या
 इसमे भी अधिक अपनी शक्तिके अनुसार • किन रीतिके जपे सो कहिते हैं कि उ-
 पांशु रीतिके जपे या मनके भीतर जपे • उपांशुजप उसका नाम है जो कृच्छ्रके जीभ
 और ओठ हिलते मालूम होय पर मन्त्र उतका किसीको न सुनिपरें किन्तु अपना
 मन्त्र अपनेको समझि परताहो और मनकी वृत्ति देवता से लगी हो • इससे दूसरा
 जप मनके भीतर वह जागता जिसके ओठ दन्त होय तिनके भीतर नोचे ऊपर के
 दांत परस्पर न मिले पायें और धांसमे जीभकी जड़मे जप होताजाय मनकी वृत्ति
 देवताके रूपसे लगीरहै • जप करनेके बाद देवता और पितरोंका तर्पणकरके मनुष्यों

का भी तर्पण और भूतों का भी तर्पण करै सब के पीछे शिर भुक्ताइ के प्रणाम करै—योगीश्वर ने मूलप्रलोकमें पवित्रमंत्र जपने कहथे तिनका व्योरा सब यहाँ तक निर्णय होचुका ॥ ० ॥ पिण्डाभिमंत्रणं च—गायत्री पहिंकर पिंडोंको अभिमंत्रित करना भी कहाथा सो करना चाहिये=इसके मध्ये यमने एकजुदी विशेषता दर्शाई है कि=अंगुल्यग्र स्थितं पिंडं गायत्र्या चाभिमंत्रितम् प्राश्याच्च न्यपुनः कुर्यादित्यस्याप्यभिमंत्रणात्=अर्थात्— पिंडोंको इसरीतिसे कि हाथकी अंगुरियों के अप्रभागमें एक पिंड थाँभिके एक मंत्र गायत्रीका पढ़ै तिसको खाइके आचमन करिके दूसरापिंड उसीप्रकार थाँभिके अभिमंत्रित करै पुनि उसकोभी खाइके आचमन करै इसीक्रम से जितनेग्राह जिखदिन के सामूली बनेंहां सबको भोगै=पूर्वाक्त निर्णयके अनुसार यहाँ भी यह बात टहिरौ कि पिंडोंके अभिमंत्रणा के मन्त्र जो गौतमने (३२४ तीन सौ चौबीसकी अधिकोक्ति में चान्द्रायणा के विधानपर) दर्शाये थे कि (उंभूः उं भुवः उं स्वः उं सहः उं जलः उं तपः उं सत्यं यशः श्री ऊर्क इत् उं जः तेजः पुस्त्यः धर्मः शिवः—इत्येतेग्रसिानुमंत्रांप्रतिहं व्रतं न सानमः स्वाहा इति वा सर्वानितैरेव ग्रामान्भंजीत) सो इनसे गायत्रीका विकल्प टहिरा कि चाहें गायत्री से भोगै या इन मंत्रोंसे भोगै= और जो=इन मन्त्रोंसे पहिले गौतमने ग्राह बनानेसे प्रथम उस हविष्यहीका अभिमंत्रित करना इससंज्ञसे बताया था कि (आध्यायस्वसंतेपयांसिनवोनव— इति चैताभिर्हविष्यश्चानुसंत्रां) सो यह एक जुदाकार्य होनेसे समुच्चय नहीं कियाजाताहे करने वालेको इच्छारही स्वीकार करौ या मत करौ ॥ ० ॥ मुण्डनविधिश्च—हच्छ और चांद्रायणा आदि व्रतोंको यदि कोई पाप कियेबिना केवल अपने अभ्युदयरूपी कल्याणाकी अभिलाषा से प्रारम्भकरै तिसको मुंडन कराने की अपेक्षा नहींहे—परन्तु जब कोई पापों के प्रायश्चित्त मध्ये इन्हींका प्रारम्भ करै तब प्रारम्भ करते समय प्रथम मुंडन कराना चाहिये क्योंकि (वपनव्रतंचरेदिति गौतमः) गौतम के इसवचन से यह भी कसोंकी विविक्षा एक अंगहै=इसका व्योरा वशिष्ठने दर्शायाहे=यथा= हच्छारां व्रतरूपाणां प्रसञ्चुकेशादिवापयेत् कसिरोमशिखावर्जमिति हच्छारां व्रतरूपाणां व्रतरूपाणां वपनादीन्यंगानिवह्यते इति शेषः=अर्थात्— प्रायश्चित्तों में व्रतरूपी जो जो हच्छ करनेहोय तिनके आरम्भ में दाढी सूखवालों आशिका वपन करावै परन्तु दाँह और देहके रोग तथा शिखाके बालोंको छोटिके मुडावे किन्तु वपन कराना भी व्रतके अंगोंमें गिखती है कि इसके बिना व्रतके अंग नहीं परे होते हैं ॥ यह दर्शन पहिले ७७ मतहतरि परिच्छेदमें आचुकाहे ३०२ तीनों एक मूल

प्लोक पूर्वार्धमे देखो• सभाके द्वारा प्रायश्चित्तका व्रतलेना कहा था तिसका लेना भी सिर्फ एकदिन पहिले सूचित हुआ है कि जिसदिन से प्रारम्भ करना चाहै तिसके पूर्वद्विस तीसरे पहर सभाके सम्मुख जाकर व्रतकी आज्ञा स्वीकारकरै=यदाहवशि-
 य=सर्वपापेषु सर्वेषां व्रतानां विधिपूर्वकम् ग्रहरांसंप्रवक्ष्यामि प्रायश्चित्ते चिकीर्षिते
 दिनात्तेन खरोमादीन् प्रवाप्य स्नानमाचरेत् भस्मगोमयमृद्धारिपंचगव्यादिकल्पितैः स
 लापकरांकार्यवाह्यशौचोपसिद्धये दंतदावनपूर्वेरापंचगव्येनसंयुतम् व्रतं निशामुखे
 ग्राह्यं वहिस्तारकदर्शने आचम्यातः परं मौनीध्यायनदुष्कृतमात्मनः मनःसंतापनंतीव्र
 मुहुरं च्छोकसंततः=अर्थात्—प्रायश्चित्त करनेका विचार उत्पन्न होतेसमय सर्वत्र सभी
 उपायोंमें सबही व्रतोंका ग्रहण करना विधिके सहित कहिके समुझाऊंगा—अर्थात्
 दिनके अन्तमें सांझी जोर प्रायश्चित्ती पुरुष अपने शरीरके बाहरले अंगोंका शौच
 निद्र होनेके लिये बीसोंनख और देहके रोमा तथा दाढ़ी मूछ आदि अच्छे मुडाइके
 स्नान करे• तहां राख गोबर मट्टी जल पंचगव्य आदि से बनाये हुये उबटनों करके
 मलाप कर्यगा करना चाहिये किन्तु देहमें इसप्रकारकी चीजोंसे मालिश कराइके
 मेल मलवाना चाहिये• तिससे पहिले दांत भी धोकर पीछे शुद्ध स्नानकरै तिस पीछे
 पंचगव्य से आचमन लेकर निपट मंथ्यासमय तारे देखिपरने लरौं तभी व्रतका स्वी-
 कार करै फिर ग्राम बसती से बाहर जाके शुद्ध जलका आचमन करिके इससे आगे
 मौन साधिकर अपने किये पापको याद करते हुये मनमें बारबार संताप और शोक
 भी लातेहुये उनआचरणोंका निर्वाहकरै कि जो ओ काम जिस व्रतमें जपतप आदि
 करने कहे हों—इसीप्रकार—स्त्रियों को भी व्रतोंका परिग्रह लेना चाहिये—परन्तु
 इतना भेद है कि स्त्रियों के बाल मूछ रोमा नखोंका मुडाना कटवाना नहीं चाहिये
 क्योंकि बौधायन की स्मृति में यह कहा है कि चांद्रायणा आदि कृच्छ्र व्रतों में जो
 पुरुषको विधि कही गई यही स्त्रियों को भी होती है पर मूछ बाल आदिका वपन
 मुटन कर्म छोडिके बाकी सब होता है—यथा (चांद्रायणादिव्येतदेवस्त्रियाः ऽमयुके
 शवपनवर्जानितिवौधायनस्मरणां—यहां—इस बातपर ध्यान देना चाहिये कि जिनके
 मिताक्षरा रूपी दीपक से हम दीपक जोड़ते है उन्हींने वशिष्ठ और बौधायन के व-
 चनोंसे व्यवस्था खड़ी करी है कि जैसा वशिष्ठ के वचन में नखरोमा आदि पुरुषों
 को मुडाके कहे तैसा बौधायनके वचनमें स्त्रियोंको लियेवजानी—परन्तु उन्हींने अपने
 लिये वशिष्ठकी हुक्मे वचनमें कुछ एकदमी न खडी करी कि (कृच्छ्राणां व्रतस्या
 सांयमयुके सांख्यापयव कक्षिरालगिस्त्रावर्जानिति) यही वशिष्ठका पहिला वचन है

इसमें पुस्त्यों को शिखा मुडाने का अपवाद किया सो भी सत्यप्रतीत होता है बल्कि काँछके बाल और खालसात्र के रोमोंका अपवाद किया सो भी सुष्ठु प्रतीत होता है तथापि दूसरे वचन में उन्हीं वशिष्ठने पुस्त्योंको इन्हीं कर्मोंकी विधि कही तो यह एकही कर्त्तके पूर्वपर वाक्यसे विरोध पायागया इसका कुछ समाधानभी न किया गया न इसपर ऐसे विरोध को पकड़ खड़ी करी गई—तथापि—मर्यादा प्रियके विचारसे यह समाधान प्रतीत होता है कि जब एकही मुखसे विधि और अपवाद दोनों कहेगये तो फिर मुडानेकी विधि उनके लिये समझना जो अतिशय दुराचारी प्रति सर्वहोके पापही में बृद्धि लगी राखते हैं। और रोमा आदि मुडाने का अपवाद उनके लिये समझना जिनसे देवाधीन पाप होगया हो तो फिर कुछ भी विरोध नहीं है और यही ध्वन्यर्थ अगले वचनों से मिलरुक्ता है देखी ॥ ० ॥ पवन कर्म के बाबत एक जुदाभी न्याय कहा गया है—यथाहारीतः = राजावाराजपुत्रोवात्रा-ह्यराोवावहुश्रुतः केशानांबपनंकृत्वाप्रायश्चित्तंसमाचरेत्केशानांरक्षणाार्थंतुद्विगुणंब्र-तमाचरेत्तद्विगुणोत्तुव्रतेचीर्णादक्षिराद्विगुणाभवेत्(एतच्च०महापातकादिदोषविशेषाभि-प्रायेसादृष्टव्यं) द्विद्विप्रनृपस्त्रीरानेप्यतेकेशवापनस ऋतेमहापातकिनो गोहन्तुप्रचा-वकीर्णानिः—इतिमनुस्मरणात्=अथति—हारीतने कहा है कि जहाँ प्रायश्चित्ती पुस्त्य कोईराजाहोय अथवा राजाकापुत्रहोय (यहाँपुत्रके उपलक्षरामें बढिया जागीरदार भी राजाके पुत्रही कहातेहैं सो समुझेजायँ) अथवा बहुश्रुत विद्वान् ब्राह्मणहोय तो भी बालों का बपन मुगडन कराइकेही प्रायश्चित्त का प्रारम्भ करै कृत्कारा इससे किसी का भी नहींहै परंतु यदिइसमें कोई केशोंका बचाना चाहै सो केशों की रक्षा हेतुसे दूना व्रत आचरे जहाँ कहीं दुगुना व्रत किया जाय तहां व्रतके पूरे होने वाली दक्षिणा भी दूनी होय(परंतु यह नियम केवल महापातक आदि बड़े दोषपरसमुझना क्योंकि अगिले मनुवचनका साफ यही प्रयोजनहै कि) विद्वान् ब्राह्मण तथा राजा तथा स्त्रियोंके बालमुडाने नहींचाहिये परंतु महापातकी और गोहंता औरअवकीर्णी ब्रह्मचारी को छोड़ि के यह नियम समुझना अर्थात् वही तीनों विद्वान् विप्र वा राजा वा स्त्री यदि महापातकी हुये हों या गोहत्या करी हो या ब्रह्मचर्य लेकर अवकीर्णी हुये हों तिलको प्रायश्चित्त के आरंभमें अवश्य सूडमुडाना होगा किंतु मुडाने का नियम इन पापोंसे उपरालू में समुझना ॥ ० ॥ जादाल मुनिने इस बातपर कुछ और भी जुदा प्रकार कहाहै =यथा=आरंभेसर्वकृच्छराणांदिमाज्ञीचविशेषतः आग्नेनर्वाहिःशालाश्लौजुहुयाद्वाहतीःपृथक् प्राङ्कुर्याद्वृतांतंतु गोहिरण्यादिदक्षिणा

=अर्थात्—सर्व कृच्छों के आरम्भ समय और समाप्ति के समय भी जुदा करके उस अग्नि में घोंसे व्याहृतियां जुदी जुदी होमें जो घरकेबाहर की अग्नि घरसे बाहर होय किन्तु रोमा होस घरमें नहींहोता और व्रतकी समाप्ति होजाने पीछे यादभीकरे और गाय सुत्रगां आदि उत्तम वक्षिणाभी देवे ॥ ० ॥ यमने इत्यपर और कुछ विशेष-यता दर्शाते है=यथा=पश्चात्तापोनित्यत्तिश्चस्नानंचांगतयोदितस नैमित्तिकानां सर्वे यांतयाच्चेवानुकीर्तनस= अर्थात्—सब तरह के प्रायश्चित्तों का अंग प्रत्यंग रूपी वे काम कहेगये हैं जिनके होनेसे व्रतोंकी सिद्धि हुआ करती है। तिनमेंएक पश्चात्ताप है कि मुझसे रोमा कर्म होगया विकार है इत्यादि। उन्हीं में दूसरा एक नित्यत्ति है कि फिर ऐसा काम कभी न मुझसे होना चाहिये अमुक प्रकारोंसे नित्य रहिसक्ता हूँ इत्यादि। तीसरा स्नानहै कि जहांतक होसके बार बार किया करे गहिरे जल में बहुत से गोता लियाकरे मन्त्रों के विधान से स्नान किया करे (इसीलिये धियवरा का विधि पहिले कहचुकेहैं) इत्यादि। चौथा अनुकीर्तनहै कि अपने किये पापको बारम्बार सबको सुनाया करे तिनसे भी पापकी हानि होतीरहती है अर्थात् सुनने वालोंको थोड़ा थोड़ा बँटि जाता है [इतमें सन्देह न करना जैसे कया पाठ पूजा के मन्त्र आदि सुनिके कुछ अच्छा फल मिलता है उसी प्रकार पापकी बात सुनिकेभी अवश्य उसका फल भारा सुनने वालों को पहुँचताहै जैसे वायुके योगसे सुगन्धि और दुर्गन्धि दोनों का कुछ कुछ फलभारा सबको नाकोंमें बिना चाहे पहुँचि जाताहै तैसे अच्छी बुरी दोनों भाँति की वागी के स्वरसे कानोंके द्वारा असुर पहुँचता है—इसी लिये—सुनने इतवातोंके जुदेजुदे बचन कहिकर सबका व्यौरा समझाया है=यथा= एयापनेनानुतापेनतपसाऽथयनेदथ पापहन्मुच्यतेपापात्तयादानेनचापदि ॥ अथाय याजरोऽधर्मैस्त्वयं कृत्वा नृभा व्रते तद्यातयास्त्वचेवाहिस्तेनाधर्मैणमुच्यते ॥ यथायथा मन स्तम्यदुःकृतं कर्तारहति तद्यातयागरीरंतत्तेनाधर्मैणमुच्यते ॥ कृत्वापापं हि संतप्य तस्मात्पापात्प्रमुच्यते नर्वृक्ष्यापुनरिति नित्यव्याप्यतेतुः ॥=अर्थात्—मनुकहितेहै कि पापी अपना पाप सुनाते रहिते सेभी शुद्ध होता तथा अपने मनमें धिक्कार आदि प्रकारों से पछतावा करते रहिकर भी शुद्ध होता है और कठिन तपकरने सेभी तथावेदपाठ साधना आदि मन्त्रोंका जब करने से भी शुद्ध होताहै तथेव दानकरने सेभी शुद्धहोता है ॥ मनुक अपने अपराधको जैसे जैसे अच्छी अथिक लोगोंको सुनाता है तैसे तैसे संपत्ती भरा सुगती खाती सी छोटिके शुद्ध होजाता है ॥ जैसे जैसे पापीका अन्तःकरण अपने अपने खोले कर्मती किन्वा अपने मनके भीतर करताहै तैसे तैसे उसका

शरीर उसअधर्मसे वचताहै उसवचनेसेभी पहिला पाप क्षीण होताहै इसीलियेपूर्वोक्त
यसके वचनमें ये बातेंभी प्रायश्चित्तका अंग ठहिराईगई ॥ पाप होजाने पर सन्ताप
करिके वह पापी शुद्धहोताहै जो सन्तापकेसाथ ऐसीप्रतिज्ञारोपै कि फिर आगे को
नया पाप कभी न करूँ इस प्रकार अपने चित्तको हटाकर शुद्धहोताहै तिससे प्राय-
श्चित्तोंका अहमी एकअंगहै ॥ यहां ये अनुकेवचन इसप्रसंगसे स्थापनकियेगयेहैं कि
प्रायश्चित्तोंकाअंग इनबातोंको समझिके रोजरोजकी विधिकेसाथ साधना इनकी
भी करौ ॥ इनकेसिवाय बहुधा बातोंका त्यागभी ब्रह्मचर्यके हेतुसे कर्तव्य है=तदाह
यसः=गात्राभ्यंगंशिरोन्यंगंतांबूलमनुलेपनचक्रस्थोवर्जयेत्सर्वयज्ञान्यद्वलरागद्वेष=अ-
र्थात्-देहकाउद्वटना तेलकालगाना शिरकोत्रातमजनाचुपडना पानखाना सुगन्धोंका
लगाना और कोईचीज ऐसी जो लगाने या खानेसेशरीरमें रागरागवत्त या बलउत्पन्न
करतीहो तिसकासेदन इनबातोंको वहपुरुष नकरै जो व्रतमें लगाहो (सिताक्षराकार
कहिते हैं कि इत्यादि और भौतिकी कर्तव्यता जो अन्य स्मृतियों में देखिपरै सो भी
माननी चाहिये)ऊपर कही विधियों के अनुसार व्रतको धारणा करिके अवश्य पूरा
करना चाहिये• अन्य या दोषभागी भी होताहै यदि नहीं पूराकरै=तदाह छागले-
यः=पूर्वव्रतंगृहीत्वातुनाचरेत्कामतोहिद्यः जीवन्भवतिचांडालोमृतःआचैत्रजायते=
अर्थात्-पहिले व्रतको लेकर पीछे जो कोई अपनी इच्छा से नहींकरै वह जीवता
हुआ चांडाल कहाताहै और मरे पर कुत्ता होके जन्मता है•यह विस्तार केवल सं-
क्षेप के निमित्तसे दर्शाया गया (इस परिच्छेदके विचारों में सर्वत्र ७५ पचहत्तरि
परिच्छेदका संबंध मिलारहेगा कि इसके साथ उसको भी विचारना ॥ ० ॥ इस प-
रिच्छेदकी व्यवस्था में त्रिकाल और षट्काल ज्ञानोंकी विधि यद्यपि प्रधानता स-
हित कही गई है तथापि इसके साथमें ७५ पचहत्तरि परिच्छेदवाली व्यवस्था का
विचार करना आवश्यकहै कि उसके द्वारा देशकाल ऋतुओंके अनुकूल विधिकर-
वाईजाय अर्थात् जहाँ गरमीका देश या गरमीकी ऋतुवर्तमान हो तहाँ अवश्यभाव
से षट्काल या त्रिकालका वर्तना कि याजाय इससेविपरीत जहाँ शीतदेश याशीत
ऋतु फैलीहो तहाँ अति दक्षिण देहवालेके सिवाय साधारण प्रायश्चित्तोंकोज्ञान
की आवश्यकता लें अधिक समयों पर भी चाहिये अन्यथा एक दो कालका ज्ञान
चाहिये कि जिससे प्रधान कर्मोंका अक्षय न होने पावे• इसीलिये इसअधिकोक्ति
के प्रारम्भ में तप्तज्ञप्तिके प्रसंगसे चर्चा इतना आचुकाहै वहभी देखी ॥ ३०६ ॥

इति सर्वव्रतांगभूतविधिकयनपरिच्छेदः ॥

इति सर्वकृच्छ्रादिव्रतभेदानां दानजपहोमादीनां च

स्वरूपविधायकप्रकरणम्

पंचपरिच्छेदस्यं

— ६ —

इस प्रकरण में समस्त पांच परिच्छेदों अर्थात् ऋष्याधी परिच्छेदके प्रारम्भसे लेकर ६६ कर्माणि परिच्छेदके अन्तसे आकर यहाँ तक पांच परिच्छेदोंसे प्रकरणापूरण भया० द्वयोक्तिक गृहणी प्रयोजन के पांच भेद जुड़े किये गये इनमें भी सबसे पिछला रक्त कर्मादीना परिच्छेद अपने मँघाती चारों परिच्छेदों पर अधिष्ठाता है तिससे सबसे नीचे काय इन्द्रा विचार करना चाहिये ॥

आगत परिच्छेद में यह युक्ति निकाली जायगी कि सभी व्रतदान आदि सभी पापोंपर आरुह होनाके हैं परन्तु आरुह करमकना बहुत कठिन है तिसका विचार कथा प्रकारों से दर्शावेंगे ॥

अथ कर्मादिव्रतभेदादिष्वपि चाद्यायणादिकैः सर्वैरपि व्रतभेदैः

समस्तैर्व्यस्यैवाऽऽह्वितैरनाम्नातैर्वाशुद्धिर्भवतीत्यादिव्रत

होयजपदानादीनां सर्वसाधारणविचारप्रधानोऽयं

परिच्छेदः सप्राणीतितमः (६७)

— ७ —

अनुवादकारने यह कथा निरूपणा करी अब इस कथाके अवलम्ब से उसको भी हर एक पाठक समझेंगे अन्यथा यदि यह फालत कथा नहीं लिखी जाती तो फिर उसमेंसे कोई बात समझिपाना भाया अनुवाद होते हुयेभी महासमुद्रकी गीतहखोरो से कम न होता • क्योंकि महाशय मिताक्षराकारने ऐसी अटपटी अ त्वेदसे व्यवस्था धरीहै कि बुद्धिमान भी समझिपावै और नहीं समझिपावै पछिताताही रहिजाय • यह नहीं कि वे उसको सुगम रीतिसे नहीं समझाइ सक्ये या उसवातका कोई सा- र्गही और नहीं या क्योंकि ग्रन्थकार पुस्तकोंको लिखने समझानेकी कल्पनामध्ये नाना प्रकारकी रीतें मालूम होतीहैं परन्तु (कर्तुरिच्छागरीयसी) अपनी इच्छाके आधीन जहाँपर जैसा चाहें तहाँ तैसाही लिखते हैं यहाँ पर उनको यही स्वीकार था • हमारा केवल यह तात्पर्यहै कि ऐसी कोई लपेट की आड बाकी न रहिजाय जिससे मुख्य प्रयोजनके समझनेमें भ्रंति खड़ीहोय अन्यथा यही वार्ता ऊपर चक्र में देखी कि चार पांच पंक्तियोंमें कहिचुके उसीका इतना बडा व्यौरा कहा • तथा- पि यह सन्देह अभी खडाहै कि जब सभी पापोंपर सभी प्रायश्चित्तों का अदल ब- दल होसकताहै तो फिर छोटे बड़ोंकी वियसता वाला विरोध क्योंकर शांत होगा कि जिन प्रायश्चित्तोंका स्वल्प छोटाहो वे क्योंकर बड़े प्रायश्चित्तों के स्थान पर शो- भित होंगे इत्यादि सन्देह सब अपने अपने ठिकाने पर निपटाये जायेंगे ॥

(अनादिष्टानामपियोगः)

अनादिष्टेषुपापेषुशुद्धिश्चांद्रायणेनच † ३२७ (पूर्वार्धः)

अर्थः—अनादिष्ट पापोंमें चान्द्रायणसे शुद्धि चपुनः अन्य व्रतोंसेभी (तथाचकार स्योभयवयोगेऽर्थान्तरसिद्धिस्तु) चकारको पापों के साथ भी संयुक्त करने से दूसरा भी अर्थ सिद्ध होता है कि अनादिष्ट पापों में भी चान्द्रायण से तथैव अन्य व्रतादि कांसेभी शुद्धि होतीहै=अर्थात्—चान्द्रायणसेभी तथैव अन्य भाँतिके सबप्रायश्चित्तों से भी अनादिष्ट और आदिष्ट सबतरह के पापोंकी शुद्धि होसकती है यदि येष्ट वि- चारसे कार्य कियाजाय (आदिष्ट उन पापोंको जानना जिनपर किसी प्रायश्चित्त का आदेश कियागयाहो • यहाँ यह तर्क है कि सभी पापोंपर किसी न किसी प्रा- यश्चित्तका आदेश जित्वा होताहै • तिससे ऐसा अर्थ लगाना कि उन्हीं प्रायश्चित्तों के मुक्तात्रिल उनको आदिष्ट कहिना चाहिये जिनका आदेश जिन पापों के ऊपर जित्वाहो • इती रीतिसे उन प्रायश्चित्तोंके मुक्तात्रिल अनादिष्ट पाप समझने जिन

का आदेश जिनपर नहो • और उनको भी अनादित्य पाप जानना जिन पर निषट किसी भी प्रायश्चित्तका नाम न धरागयाहो ऐसे दैवयोगसे कदाचित्त हाथ आसक्ते हैं इसी लिये इनका भी इधारा जाहर किया गया (इन बातों का विस्तार ऊपर लिखिचुके तहाँ देखो) (यदि श्रेष्ठ विचारसे कार्य कियाजाय यह कहा सो उस श्रेष्ठ विचारको अधिकोक्ति में सीखना + ॥ ३२७ ॥ (पूर्वार्धप्रलोक) ॥

३२७ अधिकोक्तिः—योगीश्वर के मूलप्रलोक पूर्वार्धके अन्तमें चक्रार है तिसके अर्थ जो कुछ ऊपर कहि चुके उनसे उपरालू भी कुछ और तात्पर्य केवल उसी चकारसे समुच्चय मानागया है कि (च शब्दात् प्राजापत्यादिभिः • कृच्छ्रै र्देवसहितैस्तन्निरपेक्षैर्वाशुडिः) प्राजापत्य आदि कृच्छ्रोंसे एक एक जुदे जुदेसे भी शुद्धिहोती है या कईको मिलाकर एक साथ भी करनेसे होती है इसका दृष्टांत जैसे चान्द्रायण और प्राजापत्य और अतिकृच्छ्र तीनों आगे पीछे क्रमसे कियेजायँ या इनमेंसे एक ही कोई कियाजाय यथा सम्भव होय=इसका प्रमाणा भी षट्त्रिंशन्मत का वचनहै कि=यानिकानिचयापानिगुरोर्गुरुतराशिच कृच्छ्रातिकृच्छ्रचान्द्रैस्तुशोधयन्तेमनुरत्र वीत=अर्थात्—बड़ेसे बड़े भी जे कोई पापहों तिनको मनुने सुझायाहै कि • कृच्छ्र • अतिकृच्छ्र • चान्द्रायण • इन तीनोंका क्रमसे एक साथ साधन होय तो मुचिजाते हैं • (यही इन तीनोंका समुच्चय कहागया जैसा इन तीनोंका समुच्चय तैसा और जप दान होम आदि का भी समुच्चय होसक्ता सम्भिलेना जहाँ जैसा उचित जानि परै) यही नियम नहीं कि परे तीनि का समुच्चय होताहो किन्तु उग्रता ने दोही का समुच्चय दर्शाया है कि=दुरितानांदुरिष्टानांपापानांसहतानपि कृच्छ्रं चान्द्रायणांचैव सर्वपापप्रणाशनम्=अर्थात्—उपपातक रूपी दुरितोंका और पातकरूपी दुरिष्टों का और महापापोंका भी सबका नाश करनेवाला कृच्छ्र और चान्द्रायणको जानो जो आगे पीछे लगना कियाजाय (जैसा इन दोनोंका समुच्चय कहा तैसा औरों का भी परस्पर दो मिलिके समुच्चय होना सम्भिलेना जहाँ जैसा प्रयोजन होय=इतना कहिकर मिताक्षराकार लिखतेहैं कि (गौतमेनतु • कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ चान्द्रायणामिति सर्वप्रायश्चित्त समासकरणैर्देव निरपेक्षताकृच्छ्रातिकृच्छ्रयोःसूचिता चान्द्रायणास्यचतन्निरपेक्षता इतिशब्देन त्रयाणांसमुच्चयः) अर्थात्—गौतम ने सर्व प्रायश्चित्तों की समस्या करिके चांद्रायणको कृच्छ्र अतिकृच्छ्र इन दोनोंसे मगाथर (निरपेक्ष) देवास्ते ठहिराया और इन दोनों को उसी चान्द्रायण का निरपेक्ष ठहिराया और भी इति शब्दसे तीनोंका समुच्चय=फिर कहिते हैं कि (लघुदोयेत्त्रनादित्येप्राजापत्यं

समाचरेत्) इस वचनमें चतुर्विंशति मतवालोंने केवल प्राजापत्यही का नैरपेक्ष्य (वे वास्तवी) सबसे जुदापन अनादिष्ट पापके मध्ये दर्शाया किन्तु • इस वचन का यह अर्थ है कि लघुदोष रूपी अनादिष्ट पापके मध्ये प्राजापत्य आचरै (यह वचन इस ध्यनिपर कहा गया है कि अनादिष्ट प्रायश्चित्त वाला पाप जब कभी उत्पन्न होगा तो प्रायः अतिछोटे पापोंमें गिनती होगी क्योंकि बड़े पापोंसे लेकर छोटा तक सब हीके जुदे जुदे नाश कहिकर उनके साथ प्रायश्चित्त भी कहे गये तिससे बड़े पापों में कोई भी अनादिष्ट कभी नहीं पैदा होसका है=मिताक्षराकार फिर कहितेहैं कि- गौतमने भी प्राजापत्य आदिकोंका परस्पर सबका नैरपेक्ष्य अर्थात् जुदापन भी दर्शाया है=यथा=प्रथमंचरित्वाऽशुचिपतःकर्मणो भवति द्वितीयंचरित्वायदन्यन्महापातकेभ्यः पापं कुरुते तस्मान्मुच्यते तृतीयंचरित्वा सर्वस्मादेन सोमुच्यते • इति महापातकादपीत्यभिप्रेतं=अर्थात्-इसमें निरपेक्षता जुदाई का यही एक चिह्न है कि किसी व्रतका नाम नहीं बरा चाहें कोईसा एकही तिसको पहिलीबार उसको अवधि भर आचरित करिके अशुद्धतासे पवित्र होकर सुकर्म करने के योग्य होजाता है फिर शुद्ध होके दूसरी बार आचरित करने से जो महापातकों के उपरालू उनसे नीचे दर्जेमें बड़ा पाप क्रिया हो तिससे छूटि जाता है एवं तीसरी बार करने से सभी पाप मुचिजाता है अर्थात् बड़ेसे बड़ा महापातक भी मिटि जाता है=मनुने भी यह कहा है (पराकोनाम कच्छोऽयं सर्वपापापनोदनः) यह पराक नाम कच्छू है सोई सब पापोंका विनाश करनेवाला है (अर्थात् छोटे पापोंपर एक बार बड़े पापों पर दो तीन बार बहुत बड़े पापोंपर अनेक आवृत्तियाँ साधन करनेसे अकेलाही सबतरह के पापोंपर काम देसक्ता है किसी दूसरे व्रत का शासित्त करना कुछ आवश्यक नहीं यह तात्पर्य है कि पराक व्रत भी सब तरहके पापोंपर किया जासक्ता है कुछ वही नियम नहीं कि जिसपर उसका नाम बराहो=हारीतने भी सर्वपापों पर अनेक प्रायश्चित्तों का जुदा जुदा वर्तवा करना कहा है=यथा=चान्द्रायणायवक्रव तुलापुरुषववा गवां चैवानुगमनं सर्वपापप्रणाशनम्-तथा-गोमूवंगोमयंक्षीर दधिसर्पिकृ गोदकन सक्तरात्रोपवासश्चपाकमपिशोवयेत्=अर्थात्-वांज्रायणा या यावक्रवत एक महीने गोमूवके रवे जो खाकर किया जाता है या तुला पुरुष नामका व्रत वर्गान होचुका है वही या गौशिके पीके फिरते रहने का व्रत बरान होचुका है वही अपने पापकी हैनियत के बराबर साधन करने से सर्वपापों के नाश करने हार ये सब एकही एक होतेहैं-तथा-गोमूव. गोवर. दूध. दही. घृत. कृ गोदक पीना और एक

दिन कोरा उपवास करना यह चांडाल को भी शुद्ध करसक्ताहै फिर अन्य पापोंकी क्या गिनती रही (तात्पर्य इसका भी वही है कि पाप की बड़ाई अनुसार आवृत्तों साधीजायँ कुछ सक्तीबार करनेसे बड़े पाप नहीं मिततेहैं यह सर्वत्र समझे रहिना= जैसा उन्हीं हारीत ने तप्तकृच्छ्रका रूप समुष्काकर उसका फल इसरीति से कहाहै कि=सप्तकृच्छ्रोद्विरभ्यस्तःपातकैभ्यःप्रसोचयेत् त्रिरभ्यस्तोयथान्यायंशूद्रहत्यांव्यपो हति=अर्थात् यह तप्त नामा कृच्छ्र दो बार साधन कियाहुआ उपपातकोंसे छुडाता है ऐसेही यथा न्याय तीनबार साधन कियाजाय तो यह शूद्र मारेकी हत्यासे छुडाताहै (ऐसेही बड़िया पातकों पर तीनसे भी अधिक आवृत्ती कल्पित करीजायँ समुष्किलेना कर्णोक्ति यथा न्यायका ध्वन्यर्थ यहीहै=उशनाने भी यही तात्पर्य ब- शरियाहै कि कहे विनकहे सर्व पापोंपर हरकोईसा प्रायश्चित्त लगाया जासक्ताहै =यथा=यत्रोक्तंयत्रवानोक्तं महापातकनाशनम् प्राजापत्येनकृच्छ्रेणशोधयेच्चाप्रसंश यः=अर्थात्—जहां उसकानाम कहिके जतायाहो या जहां कहीं नहीं भी कहाहो तो भी महापातक पर्यन्त नाशकरताहै तिससे जहांचाहै तहां प्राजापत्यनामी कृच्छ्र से पापोंका विशोधन करै कुछ सन्देह नहीं (सर्वत्र कहिनेका वही तात्पर्य है कि जैसा पाप हो तैसी आवृत्ती बढावै=मिताक्षरा कार कहिते हैं कि प्राजापत्य आदि जिन व्रतोंके नाम अच्छे प्रसिद्ध हैं तिनको अनादित्य उपपातक आदि सभी में एक बार पापहोनेकी अपेक्षा यद्वा बारम्बारकिये अभ्यासोंकी अपेक्षा यथा संभवचाहें जुदे किसी एकही प्रायश्चित्तको लगावै अर्थात् एकहीकी अनेक आवृत्तों जितनी चाहै तितनी बढावै अथवा प्रसिद्धमात्र सबही प्रायश्चित्त लगातारजोडै अर्थात् एक पुरश्चरणा इसका एक उसका एक तीसरेका इत्यादि सबका वर्त्तवा लगातारकरै तो भी कुछ दोष या विरोध कभी नहीं है—तथैव—जिन महापातक आदि में विरले व्रतोंका आदेश लिखा होय तिन आदियों में भी यदि पाप का अभ्यास बारम्बार कियागयाहो तो फिर पापकी बढवारी अनुसार चाहें उसी आदित्य प्रायश्चित्तकी आवृत्ति बढावै चाहै जुदे नामवाले व्रतोंको लेकर उस आदित्यकेसाथ जोडि लेवै= फिर कहितेहैं कि इसीलिये यमने भी (यत्रोक्तंयत्रवानोक्तं) इत्यादि वचन जैसा उशनानाका लिखागया तैसा कहाहै और=गौतमने भी उक्त निष्कृति पापोंके संग्रहात्यर्थ ही सर्व प्रायश्चित्त लेखा पद कहाया—तथा—जो कि उन्हीं गौतमने (प्रथमंचरित्वा द्वितीयंचरित्वा इत्यादि वचनमें यहकहाया कि तीसरा पुरश्चरणा करके सभी पाप शुचिजाताहै) सो यहसभी पापकहिना भी महापातकोंके अभिप्रायपरजानना किन्तु

सर्वकर्मिन्नेसे तुच्छपापोंका प्रयोजन मतसमुत्थिलेना और यह भी शोचौ कि महापातक ऐसा कोई नहीं जिसका प्रायश्चित्त न कहा गया हो तिससे उन्हींपापोंका यह प्रसंग है कि जिनके ऊपर कोईसा प्रायश्चित्त भी यद्यपि लिखा हो तो भी प्राजापत्य आदि अन्य प्रायश्चित्तभी यथा सम्भवकिली प्रयोजनकी जरूरतसे समस्त व्यस्त इकारों से जोड़े जासके हैं ॥ ० ॥

संप्रयोजनप्रकाराः—अनन्तरोक्तवृत्तादि प्रायश्चित्त किसी कार्यान्तरमें जोड़े जानेके प्रकारभी अनेक हैं सो यथा क्रमसे यहां दर्शाते हैं कि—जिन पापोंपर वारहवर्षका प्रायश्चित्त लिखा हो तिनमें प्राजापत्य इस प्रकार से जोड़ा जासक्ता है कि उन्हीं वारह वर्षों की अवधिमें अनेक प्राजापत्य साधन किये जायँ तो यह परम उत्कृष्ट फल देने वाली एक विशेषता जानो सो पापके अतिशय गहिरापन में यह प्राजापत्य का आदेश करना सूचित होता है तिसका यह लेखा है कि प्राजापत्य नियमसे वारह दिनका प्रसिद्ध है तिससे एकमासमें अट्ठाई होते हैं सालभरके पूरे तीस हुये वारहवर्षोंके ३६० तीनों साठि प्राजापत्य होते हैं जहां पर इनका होना आवश्यक ठाहरै तहां भी विकल्पसे किये जासक्ते हैं अर्थात् पूराशक्तिमान् पुरुष करसकैगा अन्यथा जिसमें इतनी शक्ति न होय सो इतनी तीनोंसाठि धेनुका गोदान करै अर्थात् वारह वारह दिनपीछे एकगोदान दूधदेतीहुई सबत्याका वारहवर्ष पर्यन्त करतारहै तो भी उतने प्राजापत्य करनेका फल प्राप्त होता है यदि इसका भी ध्यानक असम्भव हो तो सोरह मासे सुवर्णकी अशर्फीही तीन सौ साठि देनी चाहिये—जैसा यह स्मृत्यन्तर वचन है—प्राजापत्यक्रियाऽशक्तौ वै नुंदद्याद्विचक्षणः धेनोरभावे दातव्यं मूल्यं तुल्यमसंशयम्—अर्थात्—जिसको प्राजापत्य करनेकी शक्ति न हो सोसा विचक्षणा पुरुष धेनुका दानकरै धेनुके अभावमें धेनुका मूल्यही देवै परन्तु निश्चन्देह धेनुके बराबर मूल्य देा जितनेमें आसक्तौ हो—अथवा—जिसको बराबर भी देनेकी समर्थनहीं सो आधामूल्य देवै यद्वा सामान्यरीति से एक निठक अशर्फी धेनुका मूल्य समुक्तै जैसा यह वचन है कि (गवानभावे निठकं स्यात्तद्वर्द्धपादमेव वा) गौओंके अभावमें निठकमूल्य कायम क्रियाजाय यद्वा उससे आधा वा चौथाई अपनी शक्तिके समान देवै—यदि कोई पुरुष मूल्य भी न देसकै तिसको उतने दिन जलमें वासकरना चाहिये अर्थात् जितने प्राजापत्यां की जरूरत हो गक एक प्राजापत्य दो बदले एक एक दिन जलमें वास करै (जलमें बैठनेका प्रकार ३०४ तीनों चौथे मूलप्रतीकसे कहाया उसी जघे समुत्थिलेना परन्तु वहां पर शुभ पापों के हेतु से जोड़े दिन कहे गए सो नियमात्मक नहीं किन्तु यहां प्रकाश पापोंके प्रतापमें प्राजापत्यां की गिरतीसे कहा गया) जल में भी

बैठना जिसपर न होसकै सो गायत्रीका जपकरै कितना करै इसप्रश्नके उत्तरमें पराशरके अगिले वचनसे एक प्राजापत्यके बदले दशहजार गायत्री बारहदिनके कृच्छ्रकी बराबर सिद्ध होतीहैं उस लेखसे ३६० प्राजापत्योंके स्थानपर ३६००००० कृच्छ्रीसलाख जप करना चाहिये जहां इनसे थोड़े प्राजापत्योंका बदल करनाहो तहां भी इसी हिसाबसे एकही एक प्राजापत्य के बदले दशहजारका लेखा जोडिलेना क्योकि बदला उन्हीं चीजोंसे होताहै जो आपसमें बराबरहों जिन बातोंका बदला करना कहिचुके तिनकी तुल्यताका प्रमाण अगिला वचनदेखौ=यदाहपराशरः=कृच्छ्रोऽयुतन्तुगायत्र्याउदवासस्तथैवच धेनुप्रदानंविप्रायसममेतच्चतुष्टयम्=अर्थात्—प्राजापत्य नामी कृच्छ्र १ अयुत जप गायत्रीका २ एक दिनरातिजलमेंबैठना ३ दूधदेती हुई सबत्सारागायत्राह्नगाकोदेना ४ ये चारौ परस्पर सब सबके बराबरकहातेहैं ॥ ० ॥ जो कि चतुर्विंशति सत् ग्रन्थमें गायत्रीका जप छत्तीसलाखसे बहुत बढ़कर बताया गयाहै सो कुछ अशक्त पुरुषके नामसे नहीं किन्तु उसका जुदा तात्पर्य है=यथा=गायत्र्यास्तुजपन्कोटिं ब्रह्महत्यांब्यपोहति लक्षाशीतिजपेद्यस्तुसुरापानादिमुच्यतेपुनातिहेमहर्त्तारं गायत्र्यालक्षसप्ततिः गायत्र्याःयष्टिभिर्लक्षैर्मुच्यतेगुरुतल्पगः (इतिष्ठा दशवार्षिकतुल्यविधानतयोक्तं न पुनरशक्तविययमिति न विरोध इति मिताक्षरा=अर्थात्—सौलाख गायत्री जप करनेसे ब्रह्महत्या सिटिजातीहै अस्सीलाख जपिकर सुरापानके दोषसे छुटिजाताहै सत्तरिलाख जपिकर सुवर्णाका हरनेवाला शुद्धहोता है साठिलाख जपिके गुरुदार गामी शुद्ध होताहै—इसमें चारौ महापातकपर चतुर्विंशति सत्वालोंने जुदी जुदी संख्याकहीं जो छत्तीसलाखसे सब चारौ संख्या बड़ी हैं कोई भी छत्तीसलाखके बराबर नहीं (इसकेमध्ये मिताक्षराकार कहितेहैं कि जैसा बारहवर्षका विधान कियाजाताहै तैसा एक यह भी जुदाविधानहै पर इसमें बारह वर्षोंका कुछ नियम नहीं केवल जपकी संख्याकाही नियमहै चाहें कितनीहोवर्षों में होसकै और इसीसे यह बड़िया संख्या किसी अशक्त पुरुष के वियय पर नहीं मानी जासक्ती किन्तु ऊर्ध्वोक्त छत्तीसलाखवाली थोड़ी संख्या सिर्फ अशक्त पुरुष की अपेक्षापर बारहवर्षवाले प्राजापत्योंके बदले कायमहुईहै तिससे इसमें बारहवर्ष की अर्वाधिका भी नियम साथ लगाहै कि उन्हीं वर्षोंमें जाकर जपकी संख्या पूरी होय तिससे दोनोंकी ऊंचनीचसे कुछ विरोध नहींहै=इसीप्रकार औरभी प्रायश्चित्तोंके बदलहैं=कृच्छ्रोदेव्ययुतंचैवप्रागायामशतद्वयसतिलहोमसहस्रंतुवेदपारायसांतया=अर्थात्—प्राजापत्य नाम कृच्छ्र जो बारहदिनका प्रसिद्धहै तिकी एकही आवृत्ति १

देवी गायत्री दशहजारसंघ २ प्राणायाम दोसौ ३ तिलकाहोम एकहजार आहुति ४ वेदमंहिता जो मंत्र ब्राह्मणरूप होतीहै तिसकी एकहीपारायण ५—ये पांचौ परस्पर सब एकसेएक बराबर मानेगयेहैं तिससे इनका भी बदल आपसमें होताहै कि एक के बदले दूसरा किया जाय (इत्यादि चतुर्विधप्रति और मनु आदि शास्त्रोंके कहे आदेशरूपी प्रत्याभाय अनेक हैं) इन सब प्रत्येक जुदे जुदेको महापातकोंपर ० तीन सौसाठि ३६० से गुणाकर समझलेना कि इतने चाहिये अर्थात् उक्त पांचौमें सब से प्रथम दृष्ट्येकही कहा तिसको तीनसौ साठिसे गुणा करौगे तौ भी ३६० ही अंक रहेगे सोई तीनसौ साठि प्राजापत्यकरने पहिले भी कहिचुके हैं १ एवंगायत्री केदशहजार कहे तिनहैं यदि तीनसौसाठिसे गुणाकरौगे तौ वेही ३६००००० छत्तीस लाखहोंगे जो पहिले भी कहिचुके २ एवं प्राणायाम दोसौको तीनसौ साठिसे यदि गुणा करौगे तौ ७२००० बहत्तरि हजार प्राणायाम करने ठहिरैगे ३ एवं तिलहोम एकहजारको तीनसौ साठिसे यदि गुणा करौगे तौ ३६०००० तीनलाख साठिहजार आहुतें करनी ठहिरैगी ४ एवं वेदकी पारायण एकहीको यदि तीनसौ साठिसे गुणा करौगे तौ ३६० तीनसौसाठि पारायण करनी ठहिरैगी ५—यह व्यवस्था यहाँतक परे महापातकोंपर कहीगई ॥ ० ॥ कदाचित् अतिपातकोंके प्रायश्चित्त पर लेखा करना होय जिनमें बारह बर्यके जगह नौबर्यका प्रायश्चित्त कहा गया था तिनमें प्राजापत्य भी चौथाई घटाकर तीनसौसाठि के जगह २७० दोसौसत्तरि कियेजायेंगे तिनके बदलेमें जो चीजें कायनहोंगी वेभी चौथाईघटाकर मानीजायँ अर्थात् जलमें बैठनाभी २७० दोसौसत्तरि दिनकारहिजायगा या इतनीवेनुदेनी ठहिरैगी याइतनी अगर्फी देनी यागायत्रीके संघछत्तीसलाखकेजगह २७००००० सत्ताइसलाख रहि जायँगे याप्राणायाम बहत्तरिहजारकेजगह ५४००० चौबनसहस्ररहिजायँगे यातिल कीआहुतें तीनलाखसाठि हजारकेस्थान २७०००० दोलाख सत्तरिहजार बाकीरहि जायँगीया वेदकीपारायण तीनसौसाठिकेस्थान चौथाई कटिकर २७० दोसौसत्तरि बाकीरहिजायँगे ॥ ० ॥ कदाचित् अतिपातकनामके पापोंपरलेखा करनापरै जिनमें बारह बर्यके जगहछः बर्यकीअवधि कहीगई थी तिनमें प्राजापत्य भी आधीसख्या घटाकर सिर्फ आवेले १८० एकनौ अरुनी रहिजायँगे उनके बदलकी चीजें भी वेनु याअगर्फी या वेदके पाठ या जन में बैठने के दिवस उनसेही एकसौ अस्सी अस्सी माने जायँगे या गायत्री का जप अठारह लाख १८००००० या प्राणायाम बहत्तरि हजारके स्थान ३६००० छत्तीस हजार करने होंगे या तिलकी आहुतें तीन लाख साठिहजार

के स्थान १८०००० एकलाख अस्सीहजार करनी होंगी=इन बातोंका प्रमारा आगे चतुर्विंशति मत्त का वचन भी देखो=यथा= जन्मप्रभृतिपापानिवहूनिविविधानिच ह्रस्वार्वाग्ब्रह्महत्यायाः षड्वद्वं ब्रतमाचरेत् प्रत्याम्नायेगवांदेयं साशीतिधनिनाशतस तथाष्टादशलक्षारिणा गायत्र्यावाजपेद्बुधः= अर्थात्—जन्म से लेकर बहुत पाप अनेक भाँतिसेभी कियेहों परन्तु ब्रह्महत्यासे इधर समझनाती उनपापोंकी शुद्धि चाहिकर छः वर्षभर प्राजापत्य आदि व्रतका आचरणा करै यदि व्रतोंकी प्रक्रिया जिसपर न होसकै सो आदेश रूपी (प्रत्याम्नाय) बदलमें १८० एकसौ अस्सी गौर्ये धनवान् होने से देवै यद्वा धनी नहो सो बदलेमें अठारह लाख गायत्री जपै जो परिशुद्ध होय अन्यथा यहभी नहीं तौ फिर जलमें वास करना आदि जो कुछ पहिले कहा वही बदला दियाजाय (ब्रह्महत्यासे इधर कहा उसका यही तात्पर्यहै कि ब्रह्महत्याआदि महापातक जिसने कियाहो वह छः वर्ष नहीं परे वारहवर्षका व्रतकरै और बदले की सब चीजें दूनी करै जिनसे उसे प्रयोजन परै ॥ • ॥ कदाचित् उपपातक नामके ऐसे पापों पर लेखा करना परै कि जिनके लिये त्रैवार्षिक प्रायश्चित्त का नियम कहा गयाहो • तिनमें प्राजापत्य भी तीनसौ साठकी चौथाई सिर्फ १० नव्वे रहि जायँगे इसी प्रकार इनके बदल की सब चीजें चौथाई चौथाई रहि जायँगी जोसब से ऊपर जितनी तीनसौ साठ प्राजापत्यों के साथ कही गईथीं ॥ कदाचित् तीन महीना के प्रायश्चित्त वाले उपपातकों पर लेखा करना परै तहां एक महीनेमें अठ्ठाई प्राजापत्य के हिसाब से साठेसात प्राजापत्य ठहरे उनके बदल में उतनेही वेनुदान या उतनी ही अशर्फी खोरह सासे वाली या उतनेही वेद पाठ करने होंगे या उतने साठे सात रोज जल में वास करने होंगे और ७५००० पचहत्तरि हजार गायत्री मन्त्र या १५०० पन्द्रह सौ प्राणायाम या तिल होम की आहुतें ७५०० साठे सात हजार करनी चाहिये ॥ • ॥ कदाचित् ऐसे उपपातकोंपर लेखा करना होय जिनमें एकही मासका व्रत करना कहागयाहो तहां यह स्पष्ट है कि वारह दिनोंके प्राजापत्य अठ्ठाई करने होंगे अथवा उनके बदल में अठ्ठाई वेनु या अठ्ठाई वेनुका मूल्य यद्वा अठ्ठाई वेद पारायणा या अठ्ठाई दिन जल में वास करना अथवा २५००० पच्चीस हजार जप गायत्री का यद्वा ५०० पांच सौ प्राणायाम या तिल होमकी आहुति २५०० अठ्ठाई हजार ॥ अथचांद्रायण स्थानेप्रत्याम्नायः—जहां प्रायश्चित्त इस व्यौरा साथ लिखाहो कि एक महीना चान्द्रायणा करै तहां उस चांद्रायणा के बदले यदि प्राजापत्य किया चाहे तौ फिर

(अडात्रे नहीं) तीन प्राजापत्य करने चाहिये जो इसमें असमर्थ हो सो तीनही तीन कोडेमा प्रत्याम्नाय उसके बदले करे अर्थात् चाहें तीन वेनुदान या उनका मूल्य या तीन दिन जलमें वास या वेदकी संहिताके तीन पाठ या ६०० छःशौ प्राणायाम या तीसहजार ३००० गायत्रीमन्त्र या तीन हजार ३००० तिलहोमकी आहुतें— इसव्यवस्थापर—मिताक्षराकार कहितेहैं कि (अष्टौचान्द्रायणोदेव्याःप्रत्याम्नायविवी सदा) यह चतुर्विंशति मत ग्रंथमें जो कहाहै कि० चान्द्रायणके बदलारूपी प्रत्याम्नाय की विधिमें सदाही गायत्री देवीके आठहजार चाहिये—तर्पण (धनितःपिपीलिका मध्यादिचान्द्रायणविययमितिमिताक्षरा) अर्थात्—वह चतुर्विंशति मतका कहा भी बनीकेलिये पिपीलिकामध्य आदि नामोंके चान्द्रायणपर प्रत्याम्नाय बदलाकरनेका वियय जानना यह मिताक्षरा ने कहा ॥ ० ॥ कृच्छ्रातिकृच्छ्रस्यप्रत्याम्नायः— किन्तु मिताक्षराकार कहितेहैं कि जब कभी ऐसे उपपातकों में प्राजापत्यका लेखा करनापरै जिनमें एकमहीनाभर अतिकृच्छ्र करनेकी आज्ञा लिखी होयतहाँ (तीनमहीना भरमें) साडेसात प्राजापत्यकरने चाहिये—परन्तु—मर्यादा प्रियके विचारसेजहाँ एक महीनाभर कृच्छ्राति कृच्छ्र करना लिखा हो तिसकेबदले जबकिठीको प्राजापत्य करने स्वीकार हैं तहाँ साडे सात प्राजापत्य करने चाहिये जो तीन महीना में पूरे होंगे(दलिक इसीका प्रमाण आगे चतुर्विंशतिके वचनमें भी देखिलेना) और जो अति कृच्छ्र एक महीनाभर करने की आज्ञा लिखी हो तहाँ दोमहीना भर पांचही प्राजापत्य करने चाहिये क्योंकि अति कृच्छ्र प्राजापत्य से दूने दर्जे में होताहै तिगुने में नहीं और कृच्छ्राति कृच्छ्र प्राजापत्य से तिगुने दर्जेमें होताहै अर्थात् जितनी कठिनाई बारह दिनके प्राजापत्य में होती है तिससे द्विगुणा कठिनता बारह दिनके अति कृच्छ्रमें होतीहै इसका निर्णय आगेफिर भी किया जायगा—जब कि प्राजापत्य से अति कृच्छ्र की प्रतिष्ठा दूनी ठहरी तो फिर कृच्छ्राति कृच्छ्र की प्रतिष्ठा प्राजापत्य से आपही तिगुनी ठहरी क्योंकि उसमें व्रतके दिवसोंकी संख्या अधिक होनेसे बडापनप्रत्यसहै—जिसको कृच्छ्रातिकृच्छ्रके स्थानीभूतसात साडे७॥प्राजापत्य की सामर्थ्य न हो सो बदले में साडेसात वेनु दान या उनका मूल्य की अशर्फी साडे सात या साडेसात रोजतक जलमें वास करे या साडे सात वेद की पारायण पाठ या पचहत्तरि हजार ५००० गायत्रीके मंत्रपे या पन्द्रहसौ १५०० प्राणायाम करे या तिल होमकी आहुतें साडेसात हजार ५००० होमै=इसीप्रकार=जिसको अतिकृच्छ्रके स्थानावच पांचप्राजापत्योंकी सामर्थ्य न हो वह बदले में पांचवेनु दान या मूल्य

की अशर्फी पाँच या पाँच रोजतक जलमें बासकरै या वेदकी पारायणा पाँचपद्वै या गायत्री का जपही ५०००० पंचास हजार या प्राणायाम १००० एक हजार करै या तिलहोमकी आहुतै ५००० पाँचहजार होमै ॥ ० ॥ प्राजापत्य आदि व्रतोंके परस्पर जो छोटाई या बड़ाई होतीहै तिसका कारण उनके दिवसोंकी संख्यासेभी होताहै परन्तु जहाँ परस्पर दोनोंके दिवस बराबरहों तहाँ जिसमें कठिनता अधिक होतीहै सो बड़ा ठहिरताहै • तहाँ कितनी बड़ाई या कितनी छोटाई किसकी मानी जाय इस भेदका समझानेवाला चतुर्विंशतिका अग्रोक्त वचन देखौ=यथा=प्राजापत्ये तु गामेकांद्यः सांतपने द्वयस पराकतप्तकच्छ्राति कच्छ्रै तिस्रस्तुगास्तथा=अर्थात्—प्राजापत्यके बदले एक गोदानकरै सांतपनके बदले दोगायदेवै • पराक व्रतके बदले और तप्तव्रतके बदले और कच्छ्राति कच्छ्रके बदले तीनतीन गोदानकरै तब उनकी बराबर बदला ठहिरै और अति कच्छ्रका नाम यद्यपि चतुर्विंशति के वचन में नहीं आया तौ भी उसके बदले में जरूरत जहाँ समझी जाय तहाँ दो गाय देनी चाहिये क्योंकि कच्छ्रातिकच्छ्र से वह छोटा और प्राजापत्य से बड़ा है मध्यम न्याय उसका यही सिद्ध होताहै—यहाँ—प्राजापत्य की अपेक्षा सांतपन में दूना बड़ापन पायागया क्योंकि दोगाय देनीकहीं (और सांतपन छोटे बड़े कई दर्जाके होतेहैं) तिससे ३१६ तीनसौसौरहकी अधिकोक्तिमें यमकेवचनसे १५ पंद्रहदिनका और जावालके वचन से २१ इक्कीस दिनका महासांतपन कहागया था उनके मध्ये यह दोगायवाला बदल समझना क्योंकि प्राजापत्य की अपेक्षा दूनापन उन्हीं में पायागया—और तीन सौ पन्द्रह ३१५की अधिकोक्ति में जावाल के वचनसे सातदिनका तथा ३१६तीनसौ सौरह मूलप्रलोक में योगीश्वर के वचन से भी सातदिन का सांतपन कहा गया था तिसके बदले में सकही गोदान समझिलेना क्योंकि वह अपने प्रभावसे एक प्राजापत्यकी बराबर मानाजाताहै—और तीनसौ पन्द्रह ३१५ मूल श्लोक में योगीश्वरके वचन से तथा उसकी अधिकोक्ति में शंखजीके वचन से तीन दिनका यति सांतपन भी कहाथा इनदोनोंमें आधागोदान समझिलेना क्योंकि ये अर्धप्राजापत्यकी बराबर मानेजाते हैं इस आधेका प्रमाण आगे षट्त्रिंशत्सत के वचन में देखना जहाँ (सांतपनस्यचाप्यर्धं) यही पाद आवैगा (ऊर्ध्वोक्तचतुर्विंशति के वचन में • दद्यात्सांतपनेद्वयं • यह पाद जो आया था तिसकी व्याख्या मिताक्षरा में कुछ नहीं यद्यपि लिखीयी तौनी इतना विस्तार उसका सिद्ध भया सो स्थापन कियागया और यही व्याख्या निर्विकार जानौ (अत्रनिष्प्रयोजनीयाचव्याख्या) इसकोछोड़िके सि-

ताक्षराकारने भी कुछ व्याख्या जो दर्शाई तिसमें एक बोखा है कि उन्होंने (पराक तप्त कृच्छ्रातिकृच्छ्र) इसीचतुर्विंशति के वचन में ऐसा पदच्छेद (पराक० तप्तकृच्छ्र० अतिकृच्छ्र) माना तिससे कई विरोध खड़े हुये बल्कि कृच्छ्रातिकृच्छ्र के न रहिनेसे अति कृच्छ्रही के दोषेद उनको माननेपर जो अर्थ में कुछ भेद नहीं है = यथाहुर्मि ताक्षराकाराः (एतच्चैकैकंग्रामसम्प्रायादित्यैकैकग्रासपक्षेवेदित्तयं० पाणिपूरात्रपक्षे पुनर्वेनुद्वयमेव) अर्थात् वे कहिते हैं कि अतिकृच्छ्रके नामसे यह तीन गायवाला नियम उन अतिकृच्छ्र पर जानना जो नौदिन एक कोर खाने और तीनदिन कोरे उपवास करनेसे चारह दिनमें होता है दूसरा एक मुट्ठी भर नौरोज अन्न खाकर तीनि उपवाशों सहित चारहदिनमें होता है तिसके बदले दोही गाय देने चाहिये क्योंकि यह उसमें कुछ सुगम देखि परता है—यहां भी—सर्वादा प्रियके विचारसे इन दोनोंमें बड़ापन छोटापन का कुछभेद नहीं है न दिवसों की संख्यासे कुछ भेद है दोनों प्रकार चारहदिनमें सिद्ध होते हैं तहां योगीचरने मुट्ठी भर भात आदि कोई सा अन्न खाना कहा और मनुने एक ग्राम भर अन्नखाना कहा यह कुछभी भेद नहीं है क्योंकि एक ग्राम भी मयूर के अगड़े बराबर पहिले सिद्ध हो चुका है वही मोरका अगड़ा कुछ मुट्ठी भरमें कम नहीं होता अथवा जितना अन्न जिसके मुहमें एकबार में समावै सो भी ग्राम का परिमाण कहा गया था इस प्रकार से भी कुछ भेद नहीं पाया जाता है क्योंकि जिसके मुहमें जितना अन्न जासकैगा उसके हाथकी मुट्ठीमें भी उतनाही जासकैगा कुछ अधिक नहीं कि जिसके हेतुसे तीन और दो गायका बदला दोतरह माना जासकै (बल्कि इसी भेद की चाहना से मिताक्षराकार ने उस व्याख्या में एक ग्राम एक आँठरे भरका लिखि दिया है कि जिससे मुट्ठी भरके समुख उसमें छोटापन समझिपरै सो इसलिये नहीं माना जासकता है कि मनुने जिस वचन में एक गदा भान खाना कहा तिसमें आसलक भरकी समस्या भी कुछ नहीं है) और जो मिताक्षरा कार ही के दर्शन का प्रमाण मानें कि जो कुछ लिखा जोई सही तौभी यह प्रशखडा होता है कि जब ऐसे अतिकृच्छ्र में तीन गोदान माने तौफिर कृच्छ्रातिकृच्छ्र जो सबसे बड़ा बाकी रहा तिसमें कितने गोदान किये जायँ इसका कुछ भी उत्तर नहीं है—इतिप्रसंगादेवनिरर्थकव्याख्यानं=अथप्रकृतंप्रयोजनं=इन्हीं बहवा विरोधोकीट्टिसे ऊपरली व्याख्या जो सर्वादा प्रियननिदकरी सो निर्विघ्न जानी कि=एकग्रामवाले और मुट्ठी भर भोजनवाले दोनों अति कृच्छ्र को बराबर मानिके दोनोने दोहीदो गाय दानकरनेका ठीक बदतहोना और कृच्छ्राति

कृच्छ्र के बदले में तीनिगोदान करनेहोंगे जैसे चतुर्विंशति के वचन में स्पष्ट लिखे देखिलो•उसी वचनमें पराक परभी तीनिही ३गोदान करने कहेगये यद्यपि पराक भी बारहदिनका होताहै दिवसोंकी बडाई उसमें नहींहै परन्तु कठिनताका बडापन उसमें अधिक है कि बारहदिन कोरे उपवास करनेसे होताहै• उसीवचनमें तप्तनाम के व्रतपर भी तीनिही ३गाय देनी कही गई और तप्तकृच्छ्र का विधान भी ३१८ तीनसौ अठारह मूलश्लोक आदि में सिर्फ चारदिनका फिर मनुके वचन से बारह दिनका भी कहा था इससे अधिक नहीं परन्तु वह अपनी कठिनता से बडा माना गया है कि उसमें बहुत गरम तपाये हुये घा दूध जल पीने होते हैं तिससे उसके बदल में तीनगाय देनी कहीं कुछ विरोध इसमें नहींहै• उसी चतुर्विंशतिके वचन में कृच्छ्रातिकृच्छ्र के बदले जो तीनिगाय देनी कहीं तिसका बडापन दिवसों की अधिकतासे भी प्रत्यक्ष है कि तीनसौ इक्कीस ३२९ मूलश्लोक में योगीचरणे २१ इक्कीस दिन थोडासा दूधपीकर साधन करना कहा और उही जघे अधिकोक्ति में गौतमने बारहदिन जलपीके रहना कहा तौ ये बारह भी इक्कीस के बराबर ठहरे क्योंकि उसमें नौदिनकी संख्या अधिक है परन्तु थोडे दूधका सहारा देखि परताहै• गौतम के विधान में यद्यपि दिवसोंकी अविधि केवल बारह दिनकी है परन्तु केवल जल पीके बारहदिन काटने बडे कठिन हैं कि जैसे पराकमें बारहदिन कोरे उपवास किये जातेहैं इसी कठिनतासे पराकपर तीनिगायदेनी कहीयीं तैसे दोनांतरहके कृच्छ्रातिकृच्छ्रों में तीनि गाय न्यायात्मक ठहरीं— अतिकृच्छ्र वाकीरहा कि जिसका नाम चतुर्विंशतिके वचन में नहींहै तथापि उसके बदले में दोगाय देनी इस हेतुसे न्यायात्मक ठहरीं कि प्राजापत्य और कृच्छ्रातिकृच्छ्र दोनोंके बीच वाला दर्जा उसका प्रसिद्ध है और इसीलिये प्राजापत्यसे द्विगुणा उसकोमानतेहैं क्योंकि यद्यपि दिवसों की तादाद प्राजापत्य और अति कृच्छ्र में भी बराबर बारह की होती है परन्तु सुगमता कठिनता के भेदसे आपस में छोटापन बडापन होताहै अर्थात् अति कृच्छ्र में नौदिन तक सकही प्रास वा सकही मुट्ठी खाकर पीछे से निरन्तर तीनिदिन कारा उपवास करना होताहै तिससे पूरे बारह दिन उपवासही ठहरे और प्राजापत्य में तीनतीनिदिन बाईस चौबीस आदि प्रासोंको खाते हुये बीच बीच कारा उपवास हर चौकडी में सकही करना होताहै अर्थात् तीन उपवास तीनजघे दंष्ट्रिजाने से कठिनता नहीं रहती है तिससे येही तीन उपवास और नौदिन थोडा खाना परा तिसके भी तीनिही उपवास के बराबर मानेगये इसप्रकारसे छदिनके बराबरकठिनता सिद्धहुई

और ऊपर अतिक्रच्छमें वारहदिनकी कठिनता सिद्ध हुई इसीसे दूने आधेकाभेद इन में होताहै इसीसे यहवात सिद्धहोतीहै कि छेदिनकी कठिनतावाले प्राजापत्य कच्छ में दोवेनुदेनीकही तो फिर वारहदिनकी कठिनतावाले अतिक्रच्छमें दोवेनुदेनीसिद्ध होराई कृच्छ्र मन्देह नहीं रहा ॥ ० ॥ एकादशगोदानस्यप्रत्याम्नायाः कदाचित् उस प्रायश्चित्त से प्राजापत्यका बदल करना परै जो चालीसवें परिच्छेद में दोसौ पैंसाटि २६४ मूलश्लोक उत्तरार्ध से बताया था कि तीनदिन उपवास करिके दश गाय और एक आंडू वृथभ दान करै—तहाँ इतने सब कृत्यके बदले साढेरग्यारह प्राजापत्य करने चाहिये इस लेखसे कि दशप्राजापत्य दशगायके और एक वृथभ तथा तीन उपवास दोनो मिलाकर इसके बदले डेढ प्राजापत्य चाहिये• जो इनको न करमके तिसके लिये पूर्वोक्त रीति से अन्यप्रकारके बदल बताये जायँ कि इतनेही साढेरग्यारहदिन जतमे निवासकरै या वेदसंहिताकीपारायणा साढेरग्यारह आवृत्ति करै अथवा एकलाख पन्द्रह सहस्र ११५००० गायत्री के मन्त्र जपै या ११५०० साढेरग्यारह सहस्र तिलकी आहुत करै तौभी उसके बराबर प्रायश्चित्त मानाजाता है ॥ ० ॥ मासपयोत्रतस्यप्रत्याम्नायः कदाचित् उस प्रायश्चित्तसे प्राजापत्यों का लेखा करना होय जो दोसौपैंसाटि २६५ मूलश्लोक में योगीश्वरने (पयसावापि मामेन) इसी तीसरे पादसे यह कहा था कि एक महीना दूधपीके व्रतकरै•तहाँ इस महीने भरमें दूध पीना छोडि के बदले में अडाई प्राजापत्य किये जासक्ते हैं अथवा इन्हीं अडाई के अनुसार अन्य बदल भी पूर्वोक्त रीतिके लेखे सहित कियेजासक्ते हैं ॥ ० ॥ पराकस्यप्रत्याम्नायः जिन उपवातकोंपर पराकव्रत करना लिखाहै जो वारहदिन कीरे उपवास करने से होताहै तिसको यदि कोई करना न चाहै तो बदलेमें तीन प्राजापत्य करने चाहिये जो वारह वारहदिनके हिसाब से छत्तीसदिन में पूरे होगे परन्तु इनमें वाईस चौबीस आदि ग्राम खाकर करने की सुगमता कुछ होताहै इसीसे छत्तीसदिन वारहदिनके बराबर समझे जायँगे क्योंकि यही बराबरी पहिले चतुर्विंशति के उस वचनसे भी सिद्ध हुई थी कि जहाँपराक व्रतकेस्थानपर तीनिगाय दोनोक्तहीं तीनिगायको न होनेमें तीनि प्राजापत्य आदि अनेक बदल सिद्ध हुयेये क्योंकि एक गायकादान एक प्राजापत्य की बराबर होताहै—यही पराकव्रत की बराबरी आगे यद्विंशतत के वचन से प्रत्यक्ष देखि परती है=यथा=पराकव्रत कच्छाणि कच्छ कच्छयश्चरेत्तुर्जातपनस्यचार्यवर्मगक्तोव्रतमाचरेत्=अर्थात्-पराक• व्रत• कच्छाति कच्छ• इनको न करमकनेमें एक एक के बदले में तीनतीन कच्छव्रत

अर्थात् प्राजापत्य करै और सांतपनके न करसकनेमें अर्ध प्राजापत्यकरै (यहाँआधा प्राजापत्य बतानेसे गोदान भी आधाही बदलेमें करना सिद्ध होगा• तिससे सांतपन में छोटापन पाया गया• इसी लिये यहाँ पर उसी सांतपन को समझना जो सिर्फ दोही दिनमें या तीनदिनमें होना कहा था उसीकेबदले छेदिनमें आधाकृच्छ्र करना ठीक जानौ (वल्कि इसी मूल कारण से पूर्वोक्त चतुर्विंशति के वचन में भी जहाँ सांतपनके बदले दोगाय देनेकहीं तहां प्राजापत्य भी दो दहिरे तहां इस छोटे सांतपनपर न समुक्ता चाहिये किन्तु वहांपर बदलके बड़ापनसे ही सांतपन में बड़ापन पायागयाथा—इसीलिये पन्द्रह वा इक्कीस दिनके महासांतपनोंपर दोगायोंका दान या दो प्राजापत्य करने कहेये• फिर इन्हीं दोभेदोंके बीचमें जो सातदिनवाले सांतपन होतेहैं तिनपर एक पूरा गोदान या पूरा एक प्राजापत्य करना ठीक समुक्ता• किन्तु न्याय वही कहाताहै कि आवश्यक पदार्थोंका विभाग यथायोग्य होजाय जिनके परस्पर कुछविरोध बाकी न रहै ॥ तत्पूकच्छ्रुते तु सन्देहनिवारणं- तप्तनामो कृच्छ्रमें सन्देह बाकीरहा कि जिसकेबराबर बदलमें तीन गोदान या तीन प्राजापत्य रूपी कृच्छ्र करने कहेगये सो किस तप्तके बदले किये जायँ क्योंकि तप्तकृच्छ्र भी छोटे बड़े कई प्रकारके देखिपरते हैं जैसा ३१८ तीनसौ अठारह मूल श्लोक में योगीश्वरने चार दिनमें होनाकहा (उसीको दूना करिके आठदिनमें भी होता कहीं सुनाहै) उसीका आधा दो दिनमें भी मिताक्षराकारने उसी अधिकोक्तिमें दर्शायाहै कि गरम दूध घी जल तीनोंको एकही दिन इकठौरे पीकर दूसरेदिवस कोरा उपवास करनेसे दोदिनका भी तप्तकृच्छ्र होताहै—फिर उसी अधिकोक्तिमें मनुके वचन से बारह दिन का तप्त कहागया उसका भी स्वरूप केवल वही है कि योगीश्वर के बताये चारदिन वाले को लगातार तीन बार करनेसे बारह दिन होतेहैं—इन्हीं बारह दिनका प्रमाण अवोक्त गौतमके वचनसे भी मिलता है कि (पयोवृतमुद्रकं वायं तप्तं प्रतिच्यहपिवेत्सतप्तकृच्छ्र इति गौतमः) अर्थात्—दूध वृत जल वायु इन चारोंको गरम गरम तीन तीनदिन पीवै सो बारह दिनका तप्तकृच्छ्र कहाताहै यह गौतम ने कहा• परन्तु इससे अधिक दिन किसी ने भी नहीं कहे तिससे सबसे बड़ा बारह दिनका दहिरेा उनीके बदल मध्ये तीन गोदान या तीन प्राजापत्य दहिरे क्योंकि उसकी कठिणताके बड़ापनसे प्राजापत्योंकेद्वारा तिगुने छतीस दिन बदलमें देनेपर अथवा आठ दिन वालेपर दोही प्राजापत्य समझने और चार दिनवाले पर एकही प्राजापत्य समुक्ता और दोदिनके तप्तकृच्छ्रपर अर्ध ही प्राजापत्य जानना•

यह सन्देहका निपटारा भया अब इन सबही की तुल्यता समझी चाहिये सो देखौ
 ॥ ० ॥ तुल्यानां व्रतभेदानां तुल्यत्वनिरूपणं—ऊपरली व्यवस्थाओंपर सर्व्व
 ध्यान करना चाहिये कि यद्यपि वारह दिनवाले प्राजापत्य सकही महीना मे अ-
 ढाई सिद्ध होतेहैं और इसीलिये हरएक महीने भरके व्रतोंपर अढाई प्राजापत्योंका
 आदेश कियागया परन्तु चान्द्रायण सकमहीनामें कठिनाईसे होताहै तिसकेमध्ये
 उस कठिनाई के बड़ापन से तीन प्राजापत्यों का आदेश कियागया—उसके बाद
 चतुर्विंशतिका वचन देखौ जिसमें वारह दिनका पराक भी तीन प्राजापत्यों की
 बराबर टहिरा—और उमी जबे वारह दिनका तप्त कृच्छ्र भी तीन प्राजापत्यों की
 बराबर टहिरा—और उमी वचनमें इक्कीस दिनका कृच्छ्रातिकृच्छ्र भी तीन प्राजा-
 पत्योंकी बराबर तथा जलपीकर वारह दिनवाला भी कृच्छ्रातिकृच्छ्र तीनप्राजा-
 पत्यों के बराबर टहिरा वलिक अभी थोडी दूर ऊपर यदत्रिंशन्मत के वचन में भी
 उसीका उमागा समुक्तायागया कुछ सन्देह शेष नहीं रहा—तिससे—सर्वथा यह नि-
 र्गाय सिद्ध होचुकाहै कि चान्द्रायण पराक तप्तकृच्छ्र कृच्छ्रातिकृच्छ्र ये चारौ
 व्रत परस्पर बराबर मानेगये और प्राजापत्यनामका कृच्छ्र इनकी बराबर तब होवै
 कि जब उसकी निरन्तर तीन आवृतियां पूरे छत्तीस दिनमें साधी जायँ यह भी
 ऊपर सिद्ध होचुका ॥ ० ॥ अथप्राजापत्यानां चप्रत्याम्नायाः (प्राजापत्यानां
 स्थानेषु प्राजापत्येस्तुलितानां निवेगनमित्यर्थः) अनन्तर लेख में तुल्यत्व निरूपण
 होनेका फल यहीहै कि जहां कहीं जितने प्राजापत्योंकी जरूरत टहिरै तहां उनके
 बहुत दिनोंवाली अवधिमे किष्काइत शोचिके अर्थात् थोड़े दिनोंमें निपटारा करना
 चाहिके चान्द्रायण आदि चारौव्रत भेदमेंसे किषी सकहीका आदेश होसक्ताहै कि
 जितने प्राजापत्योंकी संख्याहोय तिससे तिहाई संख्या इनकी रक्खीजाय इसका
 दृष्टान्त जैसे वारह वर्षके व्रत पर ३६० तीनमौ साठि प्राजापत्य नियत होवूके है
 तिनकी तिहाई संख्या १०० एकसौबीस चाहें चान्द्रायण करौ चाहें पराक चाहें
 तप्तकृच्छ्र चाहें कृच्छ्रातिकृच्छ्र करौ सबहीका बराबर फल होताहै—तस्मादाहुर्भिर्भ-
 ताक्षराकाराः (चान्द्रायणपराकतप्तकृच्छ्रातिकृच्छ्रास्तु प्राजापत्यवयात्मका द्वादश
 चार्थिकव्रतान्याने धिग्रन्तरगतसंख्यका अनुष्ठेयाः तत्प्रत्याम्नायास्तु वेन्वादग्रधिग-
 णा पूर्वाक्तामेवेति मिताक्षरा) अर्थात्—ये चारौ जूदे ० ही तीन प्राजापत्यों की
 बराबर होते हैं तिस से वारह दिये वाले प्रायश्चित्त के स्थान पर इनकी सकसौ
 बीस १०० ही संख्याका अनुष्ठान आदेश किया जावै परन्तु प्राजापत्य के वचन

वाली चीजें वेनु दान आदि इतनी संख्या से तिगुने करने होंगे अर्थात् जितने प्राजापत्यों के साथ पहिले (प्रत्याम्नायरूपी) बदल कहेगये थे कि वेनु दान या वेद के पाठ आदि तिनकी तिहाई न होगी किन्तु वे उतनेही करने होंगे जिस पर चान्द्रायणा आदि न होसके यह आशय यहांसे आगे भी सर्वत्र समझे रहिना=इसी प्रकार=अति पातकों पर कि जहां २७० दोसौ सत्तरि प्राजापत्य बताये थे उनकी भी तिहाई संख्या नव्वे ९० होती है इतनेही चांद्रायणा आदि चारों में कोई एक प्राजापत्योंके स्थानपर आदेश किये जासक्ते हैं=इसी प्रकार=पातक नाम के पाप जो अति पातकोंसे कुछ नीचे उनके समान कहे जातेहैं•जिनपर १८० एकसौअस्सी प्राजापत्य बतायेये उनकी भी तिहाई संख्या ६० तीनवीती होतीहै इतनेही चांद्रायणा आदि चारोंमें कोई एक प्राजापत्यों के स्थान पर आदेश किये जासक्ते हैं=इसी प्रकार=तीनि वर्य के प्रायश्चित्त वाले उपपातकों पर कि जहाँ नव्वे ९० प्राजापत्य ठहिराये थे उनकी भी तिहाई संख्या ३० डेढवीसी होतीहै इतनेही चांद्रायणा आदि चारोंमें कोई एक प्राजापत्योंके स्थान पर आदेश किये जासक्ते हैं=इसी प्रकार=गो वध प्रायश्चित्तके स्थलपर जहां तीनि महीनेका गोव्रत कहा गयाहो तहाँ (गोसंडल नरिहाईके पीछे फिरना गोचर्म ओढना गोव्रजमें रातिको रहकर गौओं की सेवा चौकसी आदि करना गोसूत्र आदि पंचगव्यों का संग्रह करना इत्यादि बहुत बडे भगडोंके हेतुसे उस व्रतको नहीं करना चाहै या किसी कारणासे वानक उसका न बनता देखै (और साढे सात प्राजापत्यों का आदेश न करना चाहै तिससे उन्हीं तीन महीनोंमें चान्द्रायणा व्रतका आदेश करै जो पूरे तीनिही चांद्रायणा कियेजाय अथवा यदि इसमें भी कुछ दिवसोंकी किराइत चाहै तो फिर पराक या चारद्विन वाला तप्तकच्छू या कच्छूति कच्छू इन्हींमें से किसी को तीनि आवृत्तों आदेशकरै क्योंकि ये चारोही एकसे बराबर मानेगये हैं परस्पर इनके दिवनों की कमी बेगो पर कुछ तर्क नहींहै केवल क्रियाकी कठिनता या सुगमतासे न्याय इनका होताहै= इसी प्रकार=बहुवा उपपातकों पर जहां एक महीने व्रत करना लिखा हो तहाँ भी एकही चांद्रायणा योगीश्वरका कहा करना चाहिये कि जिनका डोल ३०४-३२५ तीनसौ चौबीस और पच्चीस मूल प्रतीकोंमें दो भाँति से योगीश्वरने कहा था=इसी प्रकार=सबसे छोटे प्रकीर्णक नामके पापों पर जहाँ जहाँ जिन पाप के जान साथ जो कुछ प्रायश्चित्त लिखाहो सो अवश्य छोटा होगा तिनके अनुचार पनक्तिवृत्ति के प्राजापत्यका एक पाद या दोपाद या पूराही प्राजापत्य आदेश कि जिनकाह

उक्तं अनुमत् प्राजापत्यक्रे ब्रह्म भी जो जो पहिले लिखे सो सब यथायोग्य लेखे
 मन्त्रित क्रिये जानते हैं—परन्तु जो उसी एक छोटेसे पापकी आवृत्ति अनेकवार करी
 गईहों तो वह भी बड़ेपापों की गणना में आजाताहै तिससे चान्द्रायणा आदि चारो
 बड़े प्रायश्चित्तोंमें से भी कोई एक एकही बार या दो बार आदि लगातार कियाजा-
 सकाहै=मिताक्षराकार कहिते हैं कि=इसी न्याय मार्गके अवलम्बसे औरभी जहां
 कहीं संदेह खड़ा होय तहां ऐसीही कल्पना करनी चाहिये ॥ ० ॥ फिर कहिते हैं
 कि अशोक्त एक वृहस्पतिक वचन है तिसका भी वृत्तान्त समझना चाहिये=यथा
 वृहस्पतिः=जन्मप्रभृतियत्किञ्चित्पातकंचोपपातकम् तावदावर्तयेत्कृच्छ्रं यावत्प
 यिगुगांभवेत्-इति (तदपि द्वेऽव्देपरदारे इतिगौतमोक्त द्वैवार्यिक समानविययं•तथात्रै
 सादिकादिवियय भूतोपपातकावृत्तिविययंवा• पातकपदाभिधेयेचांडालादिस्त्रीगमे
 द्विरभ्यासविययंच) तत्र (जानात्कृच्छ्रावदमुद्दिष्टसज्जानादैन्दवद्वयमिति सकृद्द्विपूर्व
 गमनेकृच्छ्रावदविधानात् तदभ्यासेद्विवर्यतुल्यंययिकृच्छ्रं विधानंयुक्तमेवेति मिता-
 क्षरा=अर्थात्—जन्म से लेकर जो कुछ पातक और उपपातक हुआहो तहां प्राजा-
 पत्य नामी कृच्छ्र की बारम्बार आवृत्ती से घुमाकर लगातार तब तक साधे जब
 तक साठ कृच्छ्र पूरे होय—वृहस्पति ने यह कहा इस पर मिताक्षराकार कहिते
 हैं कि (यह साठ कृच्छ्रों का परिमाण भी पातक मध्ये गौतम के कहे दो वर्य
 वाले वियय के समान जानो जैसा गौतम ने कहा था कि माता भगिनी आदि
 अपन संबंधकी छोड़िके पराई दारा जो कहातीहों तिनमें संगम करनेवाला दोवर्य
 भर व्रत करै तैसा साठ कृच्छ्र भी पराई दारा एकवार गमन करनेके पातकपरजान-
 ना क्योंकि दोही वर्य ने साठ प्राजापत्य पूरे होते हैं • तथा उपपातक उस भाँति के
 कि तिनके ऊपर तीन महीने या इससे भी थोडा दो महीने आदि का प्रायश्चित्त
 लिखा गयाहो इन्हीं पापोंको अनेक बार तिसने अभ्यास किया हो तहां भी अ-
 भ्यास की थोड़ी बहुत सीमा के अरु रूप साठ कृच्छ्रों तक प्रायश्चित्त की अवधि
 कल्पित होजाय यह तात्पर्य वा शब्दके विकल्प से समझ लेना • और इनसे बड़े
 पापक नामके पाप जो कहिते हैं तिनमें भी यह साठ कृच्छ्रोंकी पहुँच इस तीर से
 पाई जाती है कि चांडाली आदि स्त्रियोंने दोवार संगम कियाहो तो इस पातकपर
 साठकृच्छ्र करने चाहिये क्योंकि) तहां चांडाली गमनका प्रायश्चित्त (जानात्कृ-
 श्च्रावदं साठं इति इच्छा इहित संगम करनेसे सकृद्वर्य कृच्छ्र करना और त्रिंश-
 तींसे संगम करनेसे दो महीनेके चान्द्रायणा काया कहाह • तो उस ज्ञान

दक्षिणैकवारके संगम पर एक वर्ष भर कृच्छ्र व्रत के विधानसेही यह बात सिद्ध होती है कि जब कोई पुरुष चांडालीमें दुवारा आदि संगम का अभ्यास करे तिसको दोवर्ष के बराबर कृच्छ्र करने चाहिये जो द्वादश दिन के हिसाब से दो वर्ष में साठि ६० कृच्छ्र होते हैं • तिससे बृहस्पतिके वचनमें साठि कृच्छ्रोंका विधान कुछ अयोग्य नहीं ठहिरा ॥ ० ॥ और जो सुमन्तुका यह वचन है कि—यद्यप्यसकृद्भ्यस्तं ब्रुद्धिपूर्वमथन्महत तच्छुद्ध्यत्यब्दकृच्छ्रे रामहतःपातकाटते—इति (तद्युपपातकाद्यावृत्तिविषयं • तथा अज्ञानादेन्दवद्वयनिति यमोक्तैन्दवद्वयविषयभूतपातकावृत्तिविषयवेतिमिताक्षरा—अर्थात्—जो पाप चाहें बड़ा भी हो और जानिके भी किया हो यद्वा अनेक वार उसका अभ्यास किया हो तौ भी एक वर्ष भर निरन्तर लगातार कृच्छ्र करनेसे वह पाप सब शुधि जाता है पर महापापके विना किन्तु एकसालभरके तीस प्राजापत्योंसे महापातक नहीं नष्ट होसक्ता है उसके लिये बढिया प्रायश्चित्त चाहिये—यह सुमन्तुने कहा (मिताक्षराकार कहिते हैं कि यह अनेकवारका अभ्यास किया पाप जो तीसही प्राजापत्यसे नितिजाना कहा सोभी उपपातक आदि छोटे पापोंका प्रयोजन समझलेना • तथा विनाजाने किये पाप के ऊपर दो चांद्रायण यह यम के कहे दो चांद्रायणके योग्य जे कोई पातक ठहिरें तिनकी कई आवृत्ति जिसपर विना जाने होगई हों तिसके लिये भी यह तीस कृच्छ्रों वाला प्रायश्चित्त विकल्पसे समझना अर्थात् जहां किसी दूसरे प्रायश्चित्तकी मर्यादासे विरोध खडा होता हो तहां तौ नहीं परन्तु जहां दूसरी मर्यादा से विरोध नहीं दीखै तहां येही तीस कृच्छ्र कराये जासक्ते हैं अन्यथा दूसरी मर्यादा जो प्रधानतासे उस पापके ऊपर आरूढ हुई हो उसीका बर्तावा करना होगा इसीलिये वा शब्दसे विकल्प रक्खा गया है ॥ ० ॥ असंभवे ब्राह्मणभोजनं—एक यह विशेषता भी समझनी शैय रही कि जब कोई पुरुष या स्त्री रोगग्रस्त होने आदि कारणों से जप तप करनेमें असमर्थ हो परन्तु धन धान्यसे संपन्न होय तौ वह अपने करने योग्य कृच्छ्र आदि व्रतोंके स्थानपर श्रेष्ठ विद्वान् ब्राह्मणोंको सद्भोजन देकर उक्त व्रतोंका फल पाता है सो करै • इसके मध्ये अग्रोक्त वचन देखौ=यथा स्मृत्यंतरं=कृच्छ्रे पंचातिकृच्छ्रे त्रिगुणा नहरहस्त्रिंशदेवंतृतीयेचत्वारिंशच्चतुष्टे त्रिगुणित षण्णित्वाविंशति स्यात्पराकं कृच्छ्रे सांतपनाख्ये भवति यड्विक्राविंशति वैवर्हीना द्वाभ्यां चांद्रायणो स्यात्तपसिकृगवलो भोजयेद्विप्रमुख्यात् (अहरहरितिवर्षसंबन्धनाय • तृतीयः कृच्छ्रातिकृच्छ्रः अत्र प्राजापत्य दिवसकल्पनया विद्विप्राणां यष्टिभोजनं भवतीति मिताक्षरा—अर्थात्—

प्राजापत्य नामी कृच्छ्र के न कर सकने में बारह दिनतक पाँच ब्राह्मणों को नित्य प्रति उत्तम भोजन देता रहै • इसी प्रकार अति कृच्छ्र के न करने में तिगुने किंतु पंद्रह ब्राह्मणोंको नित्यजिमावै • इसी प्रकार तीसरे कृच्छ्रातिकृच्छ्रके न करनेमें तीस विद्वानों को जिमाता रहै • और तप्तकृच्छ्रमें चालीस विप्रों को नित्य जिमावै • और पराक नामी कृच्छ्रमें नित्य प्रति एक बीसी तीनि गुनी गनिकर जो संख्या होतीहो अर्थात् तीनिबीसी ब्राह्मणोंको जिमायाकरै • और बारह दिनवाले सांतपन नाम के कृच्छ्र में छत्वीस विप्रोंको नित्य जिमाया करै • और चांद्रायण के न करसकने में चौबीस विप्रोंको नित्यजिमावै वह प्रायश्चित्ती जो तपकरनेमें दुर्बलहोय (यहाँ सब सेपहिलेप्राजापत्यमें जोपाँचकहे सो बारह पंजेसाठि सब होतेहैं ऐसेही औरों में समझलेना ॥०॥ एक चतुर्विंशति मतके वचनमें उक्त ब्राह्मणोंकी संख्या इससे थोड़ी देखि परतीहै कि=विप्राद्वादश वाभोज्याःपावकेष्टिस्तथैवच अन्यावापावनीकाचि त्समान्याहुर्मनीयिराः(इति प्राजापत्यस्थानेद्वादशविप्राणां भोजनमुक्तं तन्निर्धनविषय मितिमिताक्षरा=अर्थात्—प्राजापत्य या उसकेकोई बदल भी न कर सकै सो बारह विप्रोंको भोजनकरावै या पावकेष्टि जो पावक अग्निकेनामसे वेदोक्त कर्म होता है वहीकरै या औरही कोई पावनीक्रिया होय इनको मनीयी लोग बराबर बताते हैं (इसमें प्राजापत्य के स्थानपर एकही एक रोज अथवा एकही दिन इकट्ठे बारह जिमानेकहे सो यह अतिनिर्धन प्रायश्चित्तीके निमित्तपरजानना यह मिताक्षराकार ने समझाया ॥ ० ॥ और उसी चतुर्विंशति मतमें एक दूसरे वचनसे चांद्रायण के स्थान भत आदेश भी कहेहैं=यथाचांद्रायणोमृगारीष्टिःपावनेष्टिस्तथैवच मित्र विंदा पशुश्चैव कृच्छ्रं मासवयंतथा नित्यनैमित्तिकानांचकाम्यानांचैवकर्मणास इष्टीनां पशुबन्धानामभावेचरवःस्मृता—इति (तदपिचांद्रायणाशक्तस्य • यत्तुकृच्छ्रं मासवयं तथैति कृच्छ्रं अथकंप्रत्यान्नातं तदपि वदरमुखीविषयं चांद्रायणांविभिः कृच्छ्रैरिति दर्शितत्वादलमितिप्रसंगेनेति मिताक्षरा=अर्थात्—चांद्रायण के स्थानमें मृगारि इष्टि नामका वेदोक्त कर्म या पावन इष्टि कर्म जो अग्निके पावन इस नामसे कहाता है या मित्रविंदा पशु नामका कर्म या तैसाही तीन महीने का कृच्छ्र व्रत जानौ— इसकोनिवाय—नित्यकर्मोंके या नैमित्तिकोंके या काश्य कर्मों के भी या पशुबन्व नाम की इष्टियों के अभाव में (अर्थात् इनमें से कोई कर्म जिसे करना चाहिये उससे वह न होसकै तो यह न होनाही अभाव कहाता है तिस अभाव के स्थानमें (चरवःस्मृताः) खीरि आदि नाकल्प करने कहे इसका यही तात्पर्य है कि उन

कामोंके बदले होम करदियेजायँ—यह चतुर्विंशति मत्का कथनहै• इसमें मिताक्षराकार केवल एक चान्द्रायणके प्रयोजनपर कहिते हैं कि (यह नियम सिर्फ उसकेलिये जो चान्द्रायणको न करसके और जो चान्द्रायण के स्थानपर तीनमहीना के आठ वा साढ़े सात कृच्छ्र करने कहे सो उसके लिये जो विल्कुल मूर्ख और शरीरसे सजदतहो क्योंकि पहिली मुख्य व्यदस्था में कहिचुके हैं कि चान्द्रायण के स्थानपर तीनकृच्छ्र कियेजायँ तो यहतीति और आठके अन्तरसे बड़ा विरोधआवे सो भी उस विरोधके दशाने हेतु चर्चा मात्र क्रियागया कुछ आठसे प्रयोजन यहाँ नहींहै ॥ ० ॥ ध्यान करी कि यह परिच्छेद बहुत बड़ाहै और यह भी ठीकहै कि इतना विस्तार नहीं किया जाता तो इन बातोंका समुष्किपाना दुर्घट होता—परन्तु इतने विस्तारका तात्पर्य केवल वहीहै जो परिच्छेद के प्रारम्भ और चक्रमें कहि चुके और इतने बड़े विस्तारका सारमात्र योगीचरने सिर्फ सोरह अक्षरोंसे जताया था देखो तीनसौ सत्ताईसका पूर्वार्ध मूलश्लोक † ॥ ३२७ ॥ इसीका उत्तरार्ध अगिले परिच्छेदमें जाकर काम आवैगा अर्थात् उसमें वियथ दूसरा जानो ॥

इतिप्रत्याम्नायानांपरिच्छेदः समाप्तः ॥

(प्रकरणांचासौ)

इत्यनादिष्ट प्रायश्चित्तोपायभेदेषु आदेशिकप्रत्याम्नायानांयुक्तिप्रकरणं ॥

इस प्रकारका में केवल एकही ८७ सत्तासीका परिच्छेद है अर्थात् इतने लम्बे परिच्छेदमें एकही प्रयोजनकी वार्त्ता वर्णन करीगई तिससे यह आपही परिच्छेद और आपही प्रकरणाका रूप मानागया है ॥

अथ धर्मार्थेषु चान्द्रायणकृच्छ्रादीनामुभयत्रफलसाध

नत्वन्भवतीतिगुणप्रकाशकोऽयंतथाह्यदद्यात्त्रस्यफ

लप्रदर्शकोऽयंपरिच्छेदःअष्टाश्रीतितमोऽतिमश्च(८८)

सबसे पिछला यही परिच्छेदहै—इस परिच्छेद अष्टाश्रीमें यह बात जानीजायगी कि चान्द्रायण कृच्छ्र आदि की साधना कुछ प्रायश्चित्तही के निमित्त नहीं होती

ब्रह्म जन्मान्तर के पापों का उदय रूप दुर्भाग्य आदि शोधन करना चाहिके भी होती और केवल पारलौकिक पुण्य रूपी धर्म चाहिके भी होती है या केवल इसी लोकमें प्रतिया आदि श्रेष्ठ फलको चाहिकर भी होती है या दोनों लोक में साधारण फलकीचाहसे भी होता है या केवल अपने मोक्षफलकीचाहसे भी होती है इत्यादि—इतके सिवाय—सर्व धर्म शास्त्र के पढ़ने और सुनने और घर में पुस्तक राखने आदि ग्रन्थसे जो कुछ फल होते हैं सो भी सब इसी परिच्छेदमें ॥

(चान्द्रायणस्यधर्मार्थत्वं)

धर्मार्थयश्चरेदेतच्चंद्रस्यैतिसलोकताम् ३२७

अर्थः—यही चांद्रायण जो कोई अपने अभ्युदयकी कामनासे धर्महीके निमित्त साधनकरै सो चन्द्रलोक में पहुंचता है ॥ ३२७ ॥

३२७अधिकोक्तिः—तात्पर्य इसका यही है कि प्रायश्चित्तकी जरूरत होने बिना भी यदि अपना पुण्यफल प्राप्त होना चाहिके साथै सो चन्द्रलोक में अर्थात् चन्द्रलोक भी एक प्रकारका स्वर्गही जुदा होता है तहाँ पहुँचै—सो यह फलभी एक वर्ष भर साधना करनेसमये जानना क्योंकि अग्रोक्त गौतम के वचन में यही तात्पर्य है—
यदाहगौतमः= एकमाप्त्वाविपापोविपाप्सासर्वमेनोहंति द्वितीयमाप्त्वादशपर्वाद्दशपरान्नात्मानंचैकविंशंपंक्तिंचपुनरिति संवत्सरंचाप्त्वाचंद्रमसःसलोकतांब्रजति= अर्थात्—श्रेष्ठ विधिकेसाथ एकचांद्रायण पूराकरिपाइके उनपापोंसे रहितहोजाता है जो उसके संचितहोयं पापरहित पुरुष आगामी सबतरह के पापोंको हटाता है फिर दूसरे चांद्रायणको ठीक ठीक साधिके अपने दश पहिले पुरुषा और दश अगिली संतानोंको और बीचमें इक्कीसवें निज आपेको भी पवित्र करता है इसीप्रकार तीसरे आदि चांद्रायणों से फलकी वृद्धि होते होते वर्ष भर में बारह चांद्रायण अच्छे साधिके चन्द्रमाके लोकमें स्वर्ग सुख भोगता है ॥ ३२७ ॥

(कृच्छ्राणामपिधर्मार्थत्वं)

कृच्छ्रकर्मणामस्तुमहतींश्रियमाप्नुयात् । तथागुरुकृतुफलंप्राप्नोतुसुसमाहितः ३२८

अर्थः—धर्मकी कामनासे कृच्छ्र करनेवालाबड़ी यी प्रतिया आदि लक्ष्मीको पावै जैसे गुरु यज्ञोंका कर्ता समाहित होके अपने फलको पाता है—अर्थात्—जैसे राजसूय आदि बड़े बड़े यज्ञोंका करने वाला यज्ञोंका फल (अर्थात् अपने राज्य आदि रूपों

से बड़े फलको) पाता है तैसे यह पुरुष भी प्राजापत्य आदि कई भांतिके कृच्छ्रोंको अथवा एकही किसी कृच्छ्रको समाहित होके संपूर्ण व्रतके अंग प्रत्यंगों सहित साधे जिसमें कोईसा किन्तु शेष न रहिजाय कि अमुक विधि की हीनता रही तो उस किये हुये कृच्छ्रका फल यही है कि उसके कुलजातिके संबंध वाली लक्ष्मीकी वृद्धि बहुत होती है अर्थात् जो कुछ व्यापार उसके कुल में या जातिमें होता हो या जिस बातकी कामना उसके हृदयमें मौजूद हो उसही की संपत्तों में अत्यंत समृद्धि होती रहती है और शोभा और सुकीर्ति और सुवृद्धि आदिकी प्रतिष्ठा बढि जाती है— इसमें—सुसमाहित का अर्थ ऊपर लिखा गया तिससे यहभी तात्पर्य है कि शास्त्रार्थ से व्रतोंके अंग जैसे सिद्ध होचुके हैं तैसे पूरे अंगों विना साधना करनेसे भी फल की सिद्धि नहीं मिलती है और यहभी तात्पर्य है कि प्रायश्चित्त के प्रयोजनमें जैसा इन्हीं व्रतोंके प्रत्यास्नाय रूपी आदेश और बदलभी दर्शाये गये तैसा यहां धर्मकी कामना मध्ये साधन करनेमें न होगा किन्तु यहां जिस व्रतका संकल्प किया जाय वही पूरे अंगोंसे कर्तव्य होगा तैसेही बदल वाले कर्मभी निज अपनेही नामोंसे जुड़े किये जायेंगे—बल्कि यह भी तात्पर्य है कि जहां किसी व्रत की एक दो आवृत्ति करनेसे फलकी उत्पत्ति देखने में न आवै तहां उसी व्रतकी अनेक आवृत्तों लगातार करनी चाहिये अर्थात् निराश होके मन को न हटावै किन्तु आशा लगी रखकर निरन्तर उसमें रगड़ किये जावै तिसको अवश्य फलकी प्राप्ति होती है (अतिसंघर्षणा करैजुकोई । अनलप्रकटचन्दनतेहोई ॥ ३२८ ॥ इतिचांद्रायणादीनांप्रायश्चित्तंविनापिधर्मार्थत्वम् ॥

अथच

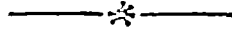
(अस्यैवधर्मशास्त्रस्य सेवनकर्तृणांफलम्)

(तत्रप्रार्थनाच ऋषिभिःकृतावरदानार्थरूपैव)

श्रुत्वैतानृपयोधमन्व्याज्ञवल्क्येनभाषितान् । इदमूनुर्महात्मानंयोगीन्द्रममितोजसम् ३२९ य इदंधारयिष्यंतिधर्मशास्त्रमतंद्रिताः । इहलोकेशःप्राप्यतेयास्यंतित्रिविष्टपम् ३३० विद्यार्थी प्राप्नुयाद्विद्यांधनकामोधनंतथा । आयुःकामस्तथावाऽऽयुःश्रीकामोमहर्तोऽश्रियम् ३३१ उक्तोक्त त्रयमपिह्यस्माद्यःश्राद्धेश्रावयिष्यति । पितृणांतस्यवृत्तिःस्यादक्षय्यानात्रनेशयः ३३२ ब्राह्मणः पात्रतांयातिक्षत्रियोविजयीभवेत् । वैश्यश्चयान्यधनवानस्वशास्त्रन्यधारणात् ३३३ यइदंश्रा वये द्विद्वान्द्विजान्पर्वसुपर्वसु । अश्वमेधफलंतस्यतद्भवाननुमन्यताम् ३३४ श्रुत्वैतयाज्ञवल्क्यो पिप्रीतात्मासुनिभाषितम् । एवमस्त्वितिहोवाचनमस्त्स्वास्वयंनुवे ३३५ ॥

=अर्थात्—ऋषिलोग याज्ञवल्क्य से कहे इतने सब धर्मोंको सुनिकर (जो आचार अध्याय से लेकर यहां तक तीनि कांडों मे योगीश्वर ने कहे तिनको अच्छे समुक्ति पाने पीछे) ऋषय यह कहने लगे उन अपार शक्तिमान् महात्मा योगीन्द्र को कि ॥ ३२९ ॥ जे कोई इस धर्मशास्त्र को निरालस होके धारणा करैगे वे पुरुष इस लोक में यशको पाइके स्वर्गमें जावैगे ॥ ३३० ॥ विद्यार्थी वनिके यदि इसकी धारणा करै सो पूरी विद्या की शक्ति पावै तथा जो धनकी कामना से पढ़ै सो धनको पावै जो आयु की कामनासे इसका अभ्यास करै तिसकी आयु बढ़िजाय श्रीशोभा संपत्ति प्रतिया आदिकी कामना राखै तिसको वही प्राप्तहोय ॥ ३३१ ॥ जो कोई याद कर्मके बीच इसका पाठ करावै अथवा इसके तीनिही प्रलोकमात्र पढिकर निमंत्रित विप्रों को सुनावै तिसके पितरों की अक्षय तृप्ति होय इसमें सन्देह नहीं ॥ ३३२ ॥ ब्राह्मण होके जो इसका अभ्यास करै सो ब्राह्मणों में सत्पात्र ठहिरै क्षत्री इसकी धारणासे विजयमान होय वैश्य इसको पढ़ै सो धन धान्यवान् होय ॥ ३३३ ॥ इतनी प्रार्थना करिके ऋषिलोग एक और प्रार्थना करते हैं कि जो कोई विद्वान् होके प्रत्येक पर्वोंमे द्विजातियों को सुनावै तिसको अश्वमेध यज्ञ कियेका फल होय•यह सब जितनी प्रार्थना हम सामग्र्यवा आदि ऋषियों ने पांच प्रलोकों द्वारा आप से प्रकाशकरी सो सब तद्रूप आप स्वीकार करै अर्थात् अपने कहे शास्त्ररूपी वचनोंमें ऐसाही प्रभाव अपनी अपार शक्तिसे आसृष्ट करै (यह सुनिके आगे वरदान देतेहैं ॥ ३३४ ॥ इतनी मुनि लोगों की प्रार्थना सुनि के याज्ञवल्क्य भी प्रसन्न हृदय होकर स्वयंभू नाम विधाताको ध्यानमात्रसे प्रणाम करिके प्रसन्न मुखसे उत्तर वरदान देकर बोले कि यह सब इसी प्रकार होउ जो कुछ तुमने चाहा ॥ ३३५ ॥

(ग्रन्थ समाप्तः)



समाप्तोऽयं महाग्रंथो धर्मशास्त्रानुवादतः मर्यादापरिपाट्याख्यो वेदवेदनवेन्दुके (१९४४) वि
 क्रमार्कस्य भूपस्य ख्याते संवत्सरोत्तमे १ श्रीमर्यादाप्रियस्यैव स्वाऽऽयासेनादितः खलु आचारो व्यव
 हारश्च प्रायश्चित्तमिति त्रयः कांडायत्रविशेषणतृतीयस्तेष्वयं जनाः २ परिच्छेदमयाः सर्वे पृथक्कार्या
 नुरोधतः कांडाः सञ्छीघ्रबोधाय संतिकर्तुः क्रियागुणैः ३ तत्रादिमौचद्वौकांडौ पूर्वमेव हि मुद्रितौ कर्तुः
 स्वातंत्र्यभावेन सप्तवर्षपरिश्रमैः आर्गलाख्ये परवरे स्थितिः कर्तुर्हि यत्र वै ४ तृतीयोऽयं धनाभावकार
 णैः सुविलंबितः पंचवर्षततः सोपि सिद्धिं प्राप्नोयथाधुना ५ सर्वेषामुपकाराय विद्वतां सुलभाय च मुं
 शीनवलकिशोरैर्धनं दत्त्वा स्वकीयकम् कर्तुः संतृप्तिपर्यन्तमौदार्येण वरीयसा ६ नियोजितः पुनर्वारं म
 र्यादाप्रियपंडितः प्रायश्चित्ताभिधस्यास्य निर्माणे क्लिष्टकर्मणि ७ स्थितोऽप्यार्गलसंज्ञेहि पत्तनप्र
 वरे ह्यहम् शुक्लादुर्गाप्रसादाख्यो नियुक्तस्तेन मुंशिना वर्षद्वितयकालेन सिद्धं तु कृतवानिमम् ८ पां
 डुलेखेऽथ संपूर्णमया दत्तश्च शोधितः लक्ष्मणापुरिसंप्राप्ता लपन ऊडति शब्दिते ९ नगरे सर्वतः
 ख्याते साकेताधिपतिस्थितौ मुद्रांकलिः पिगेहंतु यत्र ख्यातं महत्तमम् १० (गीतिः) मुंशीनवलकिशोरैः
 श्रीनवलकिशोरप्रसङ्गतिनाम्ना तस्मिन्नयं तृतीयः कांडो मुद्रितः कर्तुरसमक्षम् ११ यदानुमुद्रितः
 प्राप्नोमया कत्रैवल्लोकितः आर्गले हि पुरे तिष्ठन् ज्ञातः शोधनकर्मणा १२ कर्तुरेवासमक्षत्वात् यत्र
 दोषादिकारणैः यत्र वै तनिकानां च प्रमादात्तु विशेषतः १३ संक्षिप्तेष्वपि वाक्येषु गलितानि पदानि
 च वहूनि दृष्टिमायां तितानि शोघ्यानि पाठकैः १४ किंच तच्छोधनार्थं तु शुद्धाशुद्धविवेचनम् अ
 सुद्धशुद्धपत्राख्यं यंत्रमग्रेऽभिधीयते १५ पांडुलेखानुसारेण पुस्तकैकं च शोधितम् स्वस्यैव वर्तनार्था
 यतन्ममोपस्थितं जनाः १६ एवं चतुर्दशे वर्षे त्रयः कांडाः सुसजिताः (१९४४) सवत्सरे विक्र
 मस्य वेदवेदनवेन्दुके १७ मुंशीनवलकिशोरस्त्वथ सर्वान् पुनः स्वयम् मुद्रयिष्यति भूयोऽपि स्वातंत्र्ये
 षैव चेच्छतः १८ यतस्तेनास्य ग्रंथस्य कर्तुः पूर्वकृतापि च प्रतिज्ञा पूरिता ह्यंते निजोदार्येण सजनाः १९
 सी आई ई त्रिभिः शब्दैर्यस्य नाम अलंकृतम् सार्वभौमप्रदत्तैश्च अर्थस्तेषामयं जनाः २० भारतस्याधि
 राष्ट्रस्य तु हत्तम असौ महान् मुंशीनवलकिशोरः सर्वतज्जनसन्मतः २१ येनार्गलपुरे रम्यं नार्गवा
 नाहितायतु विद्याश्रमइति ख्याता पाठशाला निरूपिता २२ प्रतिज्ञायादृशी पूर्वमया कर्त्रा निरू
 पिता व्यवहारमर्त्यादायाः समाप्तो चेह दृश्यताम् २३ (सायथा—प्रायश्चित्तानिवेकाडेन प्रति
 ज्ञामया कृता द्रव्यादिप्रतिबंधानां कारणानि विलोक्य च गुरुकांडः स एवास्ति भृगिद्रव्यव्ययेन तु
 सिद्धिस्तस्य च संभावीनसहायः प्रदृश्यते प्रतिज्ञां यदि वा कश्चिद्दरिणीशः करिष्यति तदाह मयतो भू
 त्वा करिष्यामि न संशयः—इति तस्याः स्वरूपं) एषा हि मुंशीनवलननुनं किशोरकांन्याननभृपिनेन दृ
 शे विदेशेषु च पूजितेन प्रसाधिताऽहं चरुतः कृतार्थः २४ जन्मभूमिश्च मंगलापारदेशो विशेषतः हर्दोई
 मंडलार्थिने प्रविभागे वृहत्तमे २५ साकेतविषये शाहावादख्याते पुरोत्तमे शनिवाजारके स्थाननो
 रार्तीरे गृहं मम २६ भग्नमंदिरविख्यात शिवालयतमीपगम् वतनिःकान्यकुञ्जानां यत्र ख्याता

मही तले २७ अभून्नरद्वाजमहर्षिगोत्रेगुक्तेतिविख्यातकुलेविशुद्धे विद्यावरःश्रीहरिवंशशर्मायस्ये
 एदेवःखलुसिंहयाना २८ वेणीरामइतिप्रोक्तःपुत्रस्तद्गुणसन्निभःतस्यपुत्रास्त्रयोजातास्तेचधर्मविशा
 रदाः २९ ज्येष्ठःठाकुरनाथस्तुंगारामश्चमध्यमः चोक्षेज्जालइतिप्रोक्तःकनिष्ठोमत्पिताचसः ३०
 कूपारामादिपूर्तानांनिर्मातामध्यमोधनी प्रातिभाव्यकरश्चासीत्प्रत्यर्थीनांचराजानि ३१ दुर्गाप्र
 सादशर्माऽहंमर्यादाप्रियसत्तमः वाल्यादेवत्यजन्देशंविचरन्नर्गलेपुरे ३२ आगराइतिविख्यातेपट्टन
 प्रवरोस्थितः अत्रासीनोहृदिस्थांतुमर्यादापरिपाटिकाम् ३३ कृतवान्सुखबोधायसज्जनानांचप्रीतये
 धर्मार्थसुखमोक्षाणामर्यादायाःप्रवृद्धये ३४ ॥

प्रगट हो कि इस पुस्तक को मतवे ने निज खर्च से उलथा कराकर छपवाया है इसलिये
 विना आज्ञा इस कारखाने के कोई छापने का अधिकारी नहीं है

मुश्री नवलकियोर के छापेखाने में छपी मार्च सन् १८८८ ई० ॥

इस पुस्तक को पण्डित रामविहारी व पण्डित बंदीदीन ने शुद्ध किया ॥

मिताक्षरा स० प्रायश्चित्तकांड का शुद्धशुद्धापत्र ।

१

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१०	४	श्रष्टा	स्रष्टा	३०	३०	त्रिष्वेतेषु	त्रिष्वेतेषु
२	२०	अवरार्थ	अचरार्थः	३८	३	याम्य	याम्य
४	१८	जन्मतक	जन्मसूतक	३८	३५	शुद्धदोक्रिया	दोशुद्धक्रिया
७	२२	दक्षिणाग्निजन्म	दक्षिणाग्निकाजन्म	३८	२६	वडागहिरा)	वडागहिरा)
८	२४	मुर्दालेजार्य	मुर्दा न लेजार्य	३६	१४	न्मृतत्वथसूत	न्मृतत्वथसूत
६	७	त्रिरात्रि	त्रिरात्र	३६	१७	नकरै—परतु =	नकरै=परतु—
६	१०	दिङ्मुखा	दिङ्मुखाः	४०	१२	यमिशेषे	यमिशेषे
१०	३	नोद्धर्षयेयु	नोद्धर्षयेयु	४०	१७	शेषादद्या	शेषादद्या
१०	१४	पूर्णान् प्र	पूर्णान् प्र	४०	२०	शेषरहै	शेषरहै
११	३	पाचमेअधिकोक्तिमे	पाचमेकोअधिकोक्तिमे	४१	२१	मिताक्षराका	मिताक्षराकार
१३	२६	अगिरा	अगिराः	४१	२३	गर्भस्तुत्या	गर्भस्तुत्या
१३	२७	शौचं	शौच	४२	१८	गर्भकेगरनेमे	गर्भकेगिरनेमे
१६	७	मासं	मास	४२	२१	अचतुर्या	आचतुर्या
१६	२०	गर्हभिया	गर्हभिया	४३	२४	सूतकाहोधि	सूतकाहोभि
२०	२२	कास्थिरत्व	काअस्थिरत्व	४४	२	शौचकापेथ	शौचकानिषेथ
२१	२०	तिनका	तिनको	४५	२	अग्निहोत्रार्थ	अग्निहोत्रार्थ
२३	३	न्निर्वृत्यापि	न्निर्वृत्यापि	४५	६	जवताजी	जवताजी
२३	३	पिच्युपा	पिच्युपा	४५	७	तवताजी	तवताजी
२३	१२	मातापितोरिति	मातापित्रोरिति	४५	६	रात्रिभिर्मामनु	रात्रिभिर्मामनु
२४	२३	पिडपानीय	पिडपानीय	४५	२६	हन्य ततो	हन्याततो
२४	२४	नवकोअर्थात्देवै	अर्थात्सवकोईदेवै	४६	८	त्रिगत्रिमशु	त्रिगत्रिमशु
२५	७	अविभक्तधन	अविभक्तधन	६	१०	त्रिक्रिचि	त्रिक्रिचि
२६	१	पठे	पीठे	६	२५	ठटेनेकर	ठटेनेकर
२६	१०	यावज्जीव	यावज्जीव	४६	१६	विपोदधन	विपोदकोदधन
३१	३	सूतकरे	सूतकमे	५३	१३	भवत्येव	भवत्येव
३१	१०	भोक्तृदेपि	भोक्तृदेपि	५०	१३	यग्ना	यग्ना
३१	१८	निद्रिकिये	निद्रिकिये	५०	१६	दातजमि	दातजमि
३२	२६	बहुतकाल	बहुतकाल	५६	१७	विगोधनम्	विगोधनम्
३३	२८	।	।	६०	१०	यन्त्रै	यन्त्रै
३७	१५	पुत्रवती	पुत्रवती	६१	१७	परानव	परानव
३७	१८	सन्पर्शननिषध्यते	सन्पर्शननिषध्यते	६२	६	अविगोत	अविगोत
३७	१८	सन्पर्शसूतिकायान्तु	सन्पर्शसूतिकायान्तु	६२	२१	नोनो	नोनो
३७	२३	द्विजाराद्राय	द्विजाराद्राय	६३	४	अग्नयत्	अग्नयत्

मिताक्षरा स० प्रायश्चित्तकांड का शुद्धशुद्धपत्र ।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६३	५	दानध्ययने	दानाध्ययने	६६	१४	तांतवरक्ता	तातवरक्तं
६३	१०	निर्वाहचने	निर्वाहचलै	६६	१४	तथौपधो	तथौपधोः
६३	१४	दानध्ययने	दानाध्ययने	६७	०	योग्यहै	योग्यहै
६३	१८	होतीवहा	होतीवहो	६७	८	पतनीया	पतनीय
६३	२०	चिरात्रिमाहु	चिरात्रमाहु	६८	४	श्चविष्टायां	श्चविष्टाया
६४	५	पक्षिणी	पक्षिणी	१००	१४	विषणि दुकान	विषणिदुकान.
६६	२१	शुद्धास्यु	शुद्धा.स्यु	१००	१४	दुकानखेती.	दुकान.खेती
६०	६	पिछले	पिछले	१००	२२	दुरेत	दुरेत
६६	११	कृच्छ्रपादो	कृच्छ्रपादो	१००	२३	कुटुम्बच	कुटुम्बच
६६	१३	कृच्छ्रच.द्रायणव्रत	कृच्छ्रनामकव्रत	१०१	१३	यस्यगज	यस्यराज
७३	१०	पुरोहित	पुरोहित	१०१	१४	तद्रापृन्दु	तद्रापृन्दु
७५	१०	ऋतुस्मरण	ऋतुस्मरण	१०३	१६	नग्नोश्चैवावि	नग्नोश्चैवावि
७८	१३	गन्धकउपन	गन्धकेउपन	१०५	१२	होसके	होसकै
८१	५	स्नायात्सम्पृष्ट	स्नायात्सम्पृष्ट	१०५	१५	वानाप्रस्य	वानप्रस्य
८३	१५	श्वानश्रुपाक	श्वानश्रुपाक	१०५	१६	पितृ देवा	पितृदेवा
८३	२१	स्पृष्टा	स्पृष्टा	१०५	२०	करताहै	करतारहै
८३	२६	छुईचढा	छुईचढी	१०५	२०	भीकरता	भीकरतारहै
८५	२२	भानवायसमाजरि	भानवायसमाजीर	१०६	२०	वित्कुल	वित्कुल
८६	०	करौमुक्ता	करौमुक्त्वा	१०८	१३	यद्वाग्निसे	यद्वाग्निसे
८६	१२	करौमुक्ता	करौमुक्त्वा	१०८	१८	फलौकोमीगसे	फलौकोमीगसे
८०	१६	पकोईट	पकोईट	१०८	२०	वाऽनिवागते	वाऽनिवागते
८०	२८	प्रक्षालित	प्रक्षालितं	१०६	३	सप्रदौसे	सप्रदौसे
८०	२३	तोसरावहभो	तोसरावहभो	१०६	१०	पुरपुर	पुरंपुर
८३	४	स्पृश्यमानव	स्पृश्यमानव	१०६	३०	हृत्यराक्तितः	हृत्यशक्तितः
८६	१०	कृच्छ्रचा.द्रायण	कृच्छ्रप्राजापत्यआदि	११०	२	विकल्प	विकल्प
८३	२१	निर्वाहकरै	निर्वाहकरै	११०	३०	भोजोवस्त्व	भोजोवस्त्व
८३	२२	हीनवर्णका	हीनवर्णकी	१११	१५	उप्ते	उप्ते
८५	१६	वीचकेटोक्रम	वीचकेटोक्रम	१११	२०	प्राणयात्रा	प्राणयात्रा
८५	१८	क्रमोको	उनक्रमोको	११२	१०	आपित	आरोपित
८६	२३	जीवन	जीवन्	११०	२४	मौनमाधै	मौनमाधै
८५	३०	नकर	नकर	११०	२८	मनश्नोकोमे	मनश्नोकोमे
८६	११	शीर्षानि	शीर्षानि	११३	२८	इमाप्रस्थान	इमाप्रस्थान
८६	१६	वदरेगुडे	वदरेगुडे	११५	२५	(की)	(कि)

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
११६	५	मोटेमुट्टे	मंटेगुट्टे	१४६	१४	सनारी	चराचरससारी
११६	२०	गृहस्थो	गृहस्थो	१४६	१७	गर्भमे	वृक्षादिकस्थावर या
१२१	२	तर्कनाकरनी	तर्क न करनी				नरादिक जगम देहीके
१२१	२५	भर अन्यथा	भार है अन्यथा	१४८	१७	कहांआते	गर्भमे
१२१	२५	विरोधापाति	विरोधापाति	१४८	२१	याकपुसमर्थः	कहोमे आते
१२२	११	वनिपर	वनिपरै	१४८	२१	महापच	याकर्तु समर्थ
१२२	३०	मानपैरुक्त	मान्यैरुक्त	१४८	२	गन्थ	पचमहा
१२३	२७	ब्राह्मण प्रव्रजति	ब्राह्मणा प्रव्रजति	१४८	७	इन्द्रियादि	ग्रन्थ
१२४	२५	ती-ड	तीनटंड	१४८	२७	परिभाया	इन्द्रियादि
१२५	२७	प्रजापत्ये	प्राजापत्ये	१४९	११	विषक्तता	परिभाया
१२४	२६	वैणवांदं	वैणवान्दं	१४९	१२	गणवेदिभिः	विविक्तता
१२४	२६	प्रमाणद	प्रमाण न्द	१४९	१७	देसकै	गुणवेदिभिः
१२५	२१	शच मुनिः	श्चरेन्मुनिः	१४९	२२	करपिन	देखिसकै
१२५	२८	देवस्थन	देवस्थल	१४९	६	उग्रेदेवै	करापन
१२६	१०	वयामात्रः	कंथामात्रः	१४९	४	हडफुटन	उसैदेवै
१२८	२१	नम्रागाराराय	सम्रागाराय	१५०	५	योमिहपी	हडफुनि
१३१	२	परञ्च	परञ्च	१५०	७	उपर	योनिहपी
१३१	७	णववियोभि	णैर्वावियोभि	१५०	७	टोकथ्योरा	उदृत
१३१	७	रन्थेरगार	रन्थैरगार	१५०	११	सातापुत्र	टोकथ्योरा
१३१	२४	घर्षणाम्	घर्षणम्	१५०	२	शंगार	मातापुत्र
१३३	५	ममहू	समूह	१५०	८	नहीकहें	शगाटक
१३३	१६	राग	राग	१५०	७	दोपक	नहीकहेंगे
१३४	४	चतुष्टय	चतुष्टय	१५०	२३	अनद्रहै	दोपक
१३४	११	धारणाआदि	धारणाआदि	१५०	१६	सगोनां	अनद्रहै
१३८	२१	यत्र	यतन	१५०	२२	चालीनऔर इक	सगोनां
१३८	१७	मेकुछमहीं	मेकुछभेदनहीं	१५०	८	तालिस	चालीनऔर इक
१४१	१७	आकीशी	आकाशी	१५०	१४	मूडमें	तालिस
१४१	१६	दृष्टिजमाचाहौ	दृष्टिजमायाचाहौ	१५०	१७	पट	मूडमें
१४१	२५	वप्रपां	वपुषा	१५०	२६	कातर	पट
१४३	६	सकाम	सकाश	१५०	२६	निचटिकाने	कातर
१४३	२४	श्लोकदेखौ	परिछेदेविचारौ	१५०	२४	श्वेदश्रवण	निचटिकाने
१४४	८	मूलश्लोकी	मूलश्लोकी की	१५०	३	इनमत्र	श्वेदश्रवण
१४५	२१	प्रक को	प्रक को	१५१	१४		इनमत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१८१	२०	मैत्रादित्यसे	मैत्रादित्यसे	२२६	२२	है तिसे	हैतिसै
१८३	११	पञ्च	पहुच	२२६	२४	वाशब्दसेके	वाशब्दके
१८३	२१	अगभूति	अगभूत	२३०	१२	परमेश्वर	परमेश्वरने
१८३	२६	मजोरा	मजोरा	२३०	२१	नामहो कभी	नामहैजोकभी
१८०	३	मन्तर्प्य	सन्तर्प्य	२३१	४	डकार	डकार
१८६	३०	करना ऊर्ध्वोक्त	करना)ऊर्ध्वोक्त	२३१	१६	मेवतु	मेवतु
१८०	२१	ममवाय	ममवाय)	२३१	२७	येकोई	जेकोई
१८१	५	स्वभावहोमे	स्वभावहोसे	२३२	८	ततस्मान्	ततस्तान्
१८१	१६	विगडतेहुये	विगडतेहुये	२३२	२३	स्वर्गजितो	स्वर्गजिता
१८१	२४	परच्छेदः ॥	परिच्छेदः ॥ १४ ॥	२३६	२७	किजिसे	किजिससे
१८२	४	(वः युष्मान्प्रति	(वः युष्मान्प्रति)	२३७	३०	यागसाधना	योगसाधना
१८४	२०	खोटे	खोटे	२४४	०	मनुष्योतर	मनुष्येतर
१८६	२०	उयातिशोम	उयातिशोम	२४६	१६	कुडासी	कुडाशी
१८८	२४	आतोहै जय	आतोहै कि जय	२४८	२	वनरः	वानरः
२०१	०	जानौ	जानौ	२४८	२	न्माजरिः	न्माज्जरिः
२०१	१५	जानौ	जानौ	२४८	२	खद्योतः	खद्योतः
२०५	३	उत्पन्नभई	उत्पन्न भई	२४८	६	गवना.	गमना.
२०५	४	होय)	होय)	२४८	१८	कन्यादूष	कन्यादूषक
२०७	१८	वयसवाले	वयसवाले	२५०	४	निरार्य.	निरार्य.
२१०	२६	भवेत्)	भवेत्)	२५०	२७	करनेवाल	करनेवाले
२१२	३७	योगनिनाप	योगमिलाप	२५१	१३	पपौ के	पापौके
२१६	१४	रची तिनमे	रची तिनमे	२५२	२३	नि दितस्य	नि दितस्यच
२१६	१४	वद्वान्	विद्वान्	२५३	२६	कहतीहै	कहातीहै
२१६	२१	है अर्थात्	है अर्थात्	२५४	१०	वाक्यात	वाक्यातर
२१०	२	येमुनीखरौ	एमुनीखरौ	२५४	२१	नन्नार	नान्नर
२१०	१३	जानौ	जानौ	२५५	१३	अशुभजाति	अशुभजाति
२१०	१३	ममने	ममुके	२५५	२०	देवाहुआ	काटाहुआ
२१०	१८	मन्यजानौ	मन्यजानौ	२५६	५	प्रायश्चित्तो	प्रायश्चित्तो
२१८	२७	इतिपरी	इतिपरी	२५६	२०	नियेठचित	नियेठचित
२२२	२१	अवतकनदो	अवतकनदो	२६०	५	त्वजानातु	त्वजानातु
२२२	२६	अथतन्माच	अथतन्माच	२६०	८	प्रतमाथे	प्रतमाथे
२२२	२९	अथेयेना	अथेयेना	२६०	२५	फलमी	फलमी
२२०	२	जानौ	जानौ	२६१	८	नेष्ट्वा	नेष्ट्वा

मिताक्षरा स० प्रायश्चित्तकांड का शुद्धशुद्धपत्र ।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२६१	२६	नहीं देखोगई	नहीं देखोगई	२७७	२७	पढ़वेडका	पढ़े वेडका
२६२	१७	सोपतितात्याग	सोपतितात्याग्य	२७६	२	शिष्यकीस्त्रीवहिन	शिष्यकीस्त्री० वहिन
२६२	३६	ससार	समारो	२८०	११	मेपातकौंका	मेपातकौंका दौभाति
२६२	३०	जाराहो	जारीहो	२८०	२४	लेभागे	लेभागै
२६४	१५	उसेकहते	उसैकहते	२८१	११	क्योंजो	क्योंजो
२६४	१७	इतनं	इतने	२८२	१८	मल कमें	मूलश्लोकमें
२६५	७	कहताहै	कहाताहै	२८२	२६	योनिविगाना	योनिविगाड़ना
२६६	१०	बलसेउसे	बलसेउसै	२८५	१०	नहै	नही है
२६७	८	अराधो	अपराधो	२८५	१४	होतीहै)	होतीहै(औरवेभीअस
२६७	८	अर्यात्	अर्यात्				तशास्त्र हैं किजिनमेक
२६७	१५	पिप्रयोजित	विप्रयोजितः				भिचार व्यभिचारों को
२६७	२६	न्याय.	न्याय =				शिजाहो)
२६६	१४	अनुमन	अनुमनन	२८५	२०	जातिभ्रंश	जातिभ्रंश
२६६	२४	ढंकेहुवे	ढंकेहुये	२८६	१५	पाध्य	पाध्याय
२६६	२६	कारणकोटीक	कारणकोटीक	२८६	२१	पितृणा	पितृणा
२६६	२७	उसकेकार्य	उसकेकार्य	२८६	२३	भ्रंशकराणि	भ्रंशकराणि
२६६	३०	ग्यभिचारसे	व्यभिचारसे	२८६	३०	मेकुछनोचे	मेकुछनोचे
२७०	५	किसीडूवना	किसीकाडूवना	२८७	१५	अपनेधरो	अपनेकोधरो
२७०	१३	ओपधं	ओपधं	२८६	२६	वचनप्रभाव	वचनके प्रभाव
२७०	१४	रूप	रूप	२८७	१०	बहुतसेनाभेद	बहुतने नामभेद
२७०	२७	तहाभा	तहाभी	२८७	१४	आवैगी	आवैगी
२७०	२६	अकाररातु	अकारणतु	२८७	२२	भिजासी	भिजागी
२७२	८	वेदों का	वेदों की	२६१	१५	गौतमनेउन्हीगौतमने	उन्हीगौतमने
२७२	१७	भिशनन	भिशनन	२६१	२५	उनके वन्तों	उनके वन्तों
२७३	४	पातका	पातकी	२६२	८	निवाहकरै	निवाहकरै
२७४	२६	सिद्धि	सिद्धि	२६२	८	प्रविशेत्न	प्रविशेत्न
२७४	२७	अग्निजीवुके	अग्निजीवुके	२६२	२६	खद्वागपाणिद्रादश	खद्वागपाणिद्रादश
२७५	१३	तौद्वैगुण	तौद्वैगुण	२६३	१४	नित्यप्रति	नित्यप्रति
२७५	६	मिलना	मिलाना	२६४	६	प्रकृतिवार्ता	प्रकृतवार्ता
२७५	२७	किसीयेही	किसीकीयेही	२६६	३	भी न है	भीनही है
२७६	१२	कामाखनु	कामाखनु	२६६	१०	आयागया	पायागया
२७७	२२	प्रायश्चित्त	प्रायश्चित्त	२६७	३	छोगुना	छोगुना
२७७	२३	ब्रह्मोज्ञता	ब्रह्मोज्ञता	२६८	२३	कदाचिन	कदाचिन्

पृष्ठ	पक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२६६	१०	हुये को	हुयेकी	३२१	१६	ब्राह्मात्मक	ब्राह्मणात्मक
२६६	१०	करता है	करताहै	३२२	३	जहामात्रा	जहायात्रा
३००	८	वतानै	वतावै	३२२	१०	ताग्नेधर्मः	ताग्नेधर्मः
३०१	२५	नपुनःसर्व	नपुन सर्वा	३२३	२	द्योपन्नस्तु	द्योपपन्नस्तु
३०३	२६	योग्यपात्रैका	योग्यपात्रैकी	३२३	१०	घातककरै	घातकहोय
३०५	११	माधना अ	माधनाकी अ	३२३	१२	जत्रोजूता	जत्रोजूता
३०५	१०	क्रियाजा	क्रियाजाय	३२६	२२	य यती	या यती
३०५	२४	अब्राह्मणस्तु	अब्राह्मणास्तु	३३१	५	सवमस्या	सवनस्या
३०५	२४	अद्यौराजभृत	आद्यौराजभृत	३३२	५	घातर्थ	घातार्थ
३०६	८	योत्रव वा	योत्रिय वा	३३२	१६	ब्रह्मण	ब्राह्मण
३०६	३	दुच्छामा	दुच्छासा	३३३	६	मुख्यनिय	मुख्यनियम
३०६	१३	करै	करै	३३४	८	मरणच्छुद्धि	मरणाच्छुद्धि
३०६	२४	पावै०	कितपनेछुटकारापावै	३३५	२५	मद्योको	मद्योको
३०७	६	सममग्राह्य	सममग्राह्य	३३६	३०	ठहिरा	ठहिरा
३०७	२३	नहोसकै	नहोसकै	३३७	२७	मात्रवच्छेन	मात्रवच्छेदेन
३१०	२	अश्वमेधमेभोअव	अश्वमेधमेअव	३३८	८	हविर्निर्हस	हविर्निर्हस
३११	१०	भृत	भृत्य	३३८	२६	देवना	देवाना
३१२	८	करनासरदशमे	करनाकहाउनसवदशा	३३९	५	हूँ फिरे	हूँफिरे
			ओमे	३३९	१५	दातव्य	दातव्यः
३१२	१०	-योग्यहै कि	योग्यहै कि-	३३९	२१	कुर्यान्माता	कुर्यान्माता
३१४	४	जतशस्त्रै	जतःशस्त्रै	३४०	३	चैनौ	चैनौ
३१४	१२	प्रकार स	प्रकार से	३४०	२०	करणान्वापि	करणान्वापि
३१६	१२	स्नायुनि	स्नायुनि	३४०	२०	भक्षयेत्त्रि	भक्षयेत्त्रि
३१६	१२	स्नायुभि	स्नायुभि	३४२	१०	करै या	करैया
३१७	३	अदेश	आदेश	३४२	१०	पौवै या	पिवैया
३१८	३	अधिरा	कधिराः	३४२	१८	चौथेका	चौथेकाल
३१८	२६	वैटै	वैटै	३४२	२	योडभोजन	योडाभोजन
३१९	१४	वात्रिवृता	वात्रिवृता	३४३	१५	पिण्याकवा	पिण्याकवा
३१९	२१	इरकाई	इरकाई	३४३	१६	पचोहुई	पहुचोहुई
३१९	२८	युट्टुइतिहै	युट्टुइतिहै	३४५	१३	सुराकेभाड	सुराकेभाड
३१९	३०	अश्वमेधका	अश्वमेधका	३४५	२६	भ्रगकर	भ्रगकर
३२०	१०	तर्कनी	यइतर्कनी	३५१	२४	मर्पयेत	मर्पयेत्
३२१	३	स्वनीम	स्वनीम्	३५२	१६	वान्नाछिटकाए	वान्नाछिटकाए

मिताक्षरा स० प्रायश्चित्तकांड का शुद्धाशुद्धपत्र ।

पृष्ठ	पक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३५३	१२	मरणञ्जीव	मरणाञ्जीव	३६०	१६	उदरपूर्ण	उदरपूर्णा
३५३	१७	कोईजातिवर्ण	कोईहोजातिवर्ण	३६०	२०	इसीमान्यता	इसीसेमान्यता
३५४	७	न मारे	न मारै	३६८	२४	जातकर्ण	जातूकर्ण
३५४	६	देखो	देखौ	३६८	३०	कारणोंसेसाफ	कारणोंसे संवर्तनेसाफ
३५४	२२	होवेहो	हो वेहो	३६६	१८	नहीं अत्रोक्त	नहीं ॥ ० ॥ अत्रोक्त
३५५	६	राजासकृद्व्या	राजासकृद्व्या	३६६	२०	वहीदीनो	वहीदीनो
३५५	६	और कि	और है कि	३६०	२	जननी	जननी
३५५	६	और कि	और है कि	३६३	१०	सुनो	सुनो
३५५	२०	लिख्या	लिखा	३६३	१०	फौरजो	फौर जो
३५६	२	जहाकही	जहाकहीं	३६३	१८	करावस्मृति	करावस्मृति
३५६	६	नहींहोती	नहींहोता	३६५	१०	लिखिचुके	लिखिचुके
३५६	१६	दजुहो	दड जु				
३५६	१७	सावधानः	सावधान हो				
३५६	२५	काभिधान	का विधान	३७५	१७	ब्राह्मणोंका	ब्राह्मणोंका
३५६	२६	लिख्यामात्रे	लिखामात्रे	३७५	२०	दिनसेरहे	दिनसेरहे
३५६	३०	सावित्रां	सावित्रां	३७५	२६	जातूकर्ण	जातूकर्ण
३५७	२	प्रायश्चित्त	प्रायश्चित्त	३७६	५	कहिचुके	कहिचुके
३५७	५	ब्रह्महाव्रतं	ब्रह्महाव्रतम्				
३५७	५	इदच	इदच				
३५८	३	हर्त्रादेयं	हर्त्रा देयं	३७६	२०	यहनहींतो	यहनहींतो
३५८	१३	श्रौतुम्बरंताम्रमय शस्त्र	शस्त्रतत्रगुलिका मयमानेय	३७६	२०	वचनढूंढौ	वचनढूंढौ
		मिताक्षरा	मिताक्षरा				
			विचार (तुपचाइतिभा				
			पाया, उडुवर फलसदृश				
			गुलिकाया. सयोगात्-				
३५८	१८	गोमयाग्नि	गोमयाग्नि	३७६	२६	त्रिपवर्णा	त्रिपवर्णा
३५९	२	सुवर्णापहा	सुवर्णापहा	३७८	६	मास चरेत्	मास चरेत्
३६०	५	नहींसभव	नहींसभव	३७९	१२	नसर्गा	नसर्गा
३६०	२४	इदमनसापाप	मनसापाप	३७९	२०	तसुइयते	तसुइयते
३६१	५	नुवर्ण	नुवर्ण	३८६	१५	शयनेर्योनस्त्रौ	शयनेर्योनस्त्रौ
३६१	६	पुरुषव	पुरुष	३८०	६	भोजनात्	भोजनात्
३६२	७	अथहा	अथवा	३८०	७	मदवा	मदवा
३६२	८	वार वर्ष	वार वर्ष	३८०	७	दुदुर्व	दुदुर्व
३६०	१६	गुरुर्वे मातृ	गुरुर्वे मातृ	३८२	१३	काआटवे	काआटवे

मिताक्षरा स० प्रायश्चित्तकांड का शुद्धाशुद्धपत्र ।

पृष्ठ पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४०१ १८	कुन	कुल्ल	४३१ २६	शुणोऽपि च	शुणोऽपि च
४०० ११	लेकर २३३	लेकर २४२	४३१ ३०	चाहियेयजिसको	चाहियेयाजिसको
४०३ २१	गौर्य	गौए	४३३ १४	उचितहोगी	उचितहोगी
४१० २०	कामार्तुद्विगु	कामार्तुद्विगु	४३३ २५	अवकीर्ण	अवकीर्ण
४१० ३०	रचत मे	श्चित्तमे	४३५ १३	करना और	करना
४११ ०	अविद्वजानौ	अविद्वजानौ	४३६ १०	सशिकं	सशिक्ष
४१५ ३०	मानिव	मावित	४३८ १६	जानेहुयेये	जानैहुयेये
४१६ ५	भिहनना	भिहनना	४३८ २६	आकर्षणसे	आकर्षमे
४१६ ११	अधि	अधिक	४३६ २	गुरु कठ	गुरुकठी
४१६ २०	किन्तुइन्हीं	किन्तुइन्हीं	४३६ ५	स्तेयोउपपा	स्तेयोपपा
४१६ २४	कृच्छ्रपादो	कृच्छ्रपादो	४४० ५	अठगुण	अठगुणा
४१८ ३	देवाद्द्व्या	देवात्द्व्या	४४१ ८	विषसमुभन	विषयसमुभना
४१६ २४	तद् यवहित	तद् यवहित	४४२ ५	कृच्छ्र और अतिकृच्छ्र	कृच्छ्रातिकृच्छ्र
४२० ६	पेशक्रियाजैना	पेशक्रियाजैना	४४२ १०	तापवाद	तापवाद.
४२० १६	रुहचुने	रुहचुने	४४२ २०	हारेका	हारेका
४२० १०	रुनाते	रुनाते	४४३ २६	तत्रिगुण	तत्रिगुण
४२० २०	मोटनै	मोटनै	४४४ ०	व्यपहारि	व्यपहारे
४२३ ०	योक्तव	योक्त	४४५ २	अनाहितगिनागिना	अनाहिताग्निता
४२५ २	वर्ताने	वर्तवाने	४४५ ०	अधिकारसो	अधिकारहोसो
४२५ २१	कारण	कारण	४४६ १८	प्रवृत्त	प्रवृत्ति
४२६ १६	कुयै कायै	कुयै कायै	४४० ४	वासमामान्य	वाससामान्य
४२६ १०	वनोरन्मने	वनोरन्मने	४४० १२	एजोज	एकचोज
४२६ २०	जंजेरेते	जंजेरेते	४४० १८	पुण्यमुकम	पुण्यमुकम
४२० ६	दुहिते	दुहिते	४४० २०	हजार मत्र	हजार उोकारमत्र
४२० १६	स्माच्छ्रुपादे	स्माच्छ्रुपादे	४४० २३	मोनवन्तु	मोनिको वन्तु
४२० २३	लुनेमरो	लुनेमरो	४४० २४	इमप्रकार	इमोप्रकार
४२० ३	अमान्त्वान	अमान्त्वान	४४१ ३	अधिकारमे	अधिकार है
४२३ १	खवावे	खवावे	४४१ १०	तिमे	तिमे
४२३ ६	शिवटि	शारिवटि	४४१ १३	जेटीछोटी	जेटीको छोटी
४२३ १५	गै	गौए	४४१ २०	तादृश्यायेव	तादृश्यायव
४२३ २४	मार्गयेवद	मार्गार्थयेवद	४४३ २४	का दामने	को दारामे
४२३ २	दामदामा	दामदामा	४४३ १	कृच्छ्रानिवृत्त धर्मकर्म	कृच्छ्रोऽनिवृत्त धर्मकर्म
४२३ २०	वैश्येऽन्यद	वैश्येऽन्यद		गति कृच्छ्रइति	गोऽतकृच्छ्रइति

मिताक्षरा स० प्रायश्चित्तकांड का शुद्धशुद्धपत्र ।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४५६	२१	चाहिये	चाहिये या धर्मकर्मने	८३	१०	हत्वाचरेवेवं	हत्वाचरेदेव
			रहितनहोनिपाये ब्राह्म	४८६	१५	पडवापिक	पडवापिकं
			णकीवैनीउक्तदाराये सं	४८८	२३	प्रमगछोडिके	संछेडिके
			गनकरैनीअति कृच्छ्र	४९०	१६	जुवचनकहै	जुवचनकहै
			माथै(अर्थात् नोचेवण)	४९०	२०	किजैने	कियहजैने
			कौकन्याविवाहिलेनेमे	४९०	२०	दने तिनके	यनैयावेहोमारि जाय
			अपनेजातोधर्म जिमने				तिनके
			नछोडेहो तिसको उ	४९१	७	आदिखोटो	आदिखोटो
			न्होदाराओका सगम	४९१	१०	ब्रह्मावेट	ब्रह्मविट
			करनेवाले कोयह प्राय-	४९४	१३	ईपद्व्यभचरित	ईपद्व्यभचरित
			श्चित्तदुसगकहा=(सो	४९८	६	जोस्त्रियो	जोस्त्रियोकी
४५७	६	तीनोंकोवगवर	तीनोंकोवरवर	५०१	६	वालाअदि	वालाआदि
४५८	=	होवरीतमा	होवरीतमा	५०२	२८	मारिक	मारिके
४५९	१०	त्रिब्राह्मणी	त्रि--ब्राह्मणी	५०३	७	जिपुका	जिमका
४६०	२०	विषये गर्भके	विषये--गर्भके	५०४	२६	काष्टायनी	काष्टायनी
४६१	२६	ब्राह्मणीमाहा	ब्राह्मणीमाहा	५०६	१५	च्यहोऽरात्र	च्यहोऽहोरात्र
४६३	२०	गमनेअन्यजा	गमने--अन्यजा	५०७	२५	भवेत	भवेत्
४६३	२२	वेणुवनफोर	वेणुवसफोर	५०८	७	परगक	परगणएक=
४६४	७	का इच्छाके	कावचनइच्छाके	५०९	७	गुंजासी	गुंजाशी
४६८	२५	हडाना	हडाना	५०९	६	हसवदक	हसवदक
४६९	१६	कामनाचाहिकर	कामनासेचाहिकर	५०९	७	नोकमे	नोकमे
४७०	३३	कृच्छ्र न्यादान	कृच्छ्रन्यादान	५०९	१८	(पराशर	पराशर
४७०	२२	कृच्छ्रात्मक	एककृच्छ्राधिक	५०९	२६	रहैइनकी	रहैइनकी
४७०	३०	कृच्छ्रात्मकदो चाट्टा-	कृच्छ्रऔरचाट्टायणदो	५०९	३०	अचगरडुडुभ	अचगरडुडुभ
		यण	नोएकएक	५११	१८	और जल	और जलोके नाथ
४७१	३	दोकृच्छ्रात्मक	एककृच्छ्राधिकदो				जल
४७२	७	इद्वैवे	इद्वैवे	५१०	२६	उहेय	उहेय
४७२	१३	उदृतपन	उदृतपन	५१३	२०	दपु	दपु
४७३	११	पातकी	पातकीकी	५१४	१७	अपकक	अपकक
४७८	६	चित्तहै	चित्तहै	५१४	२०	नोअवन	नोअवन
४७८	२०	मनरीपरजे	मनरीऔरपरजे	५१४	२३	योऽनिहोत्र	योऽनिहोत्र
४७९	११	चमालिनके	चमालिनकी	५१५	२६	नाभेवद्वैव	नाभेवद्वैव
४८०	११	तैउनदोभी	तैउनदोभी	५१५	२७	जातमभे	जातमभे

मिताक्षरा स० प्रायश्चित्तकांड का शुद्धाशुद्धपत्र ।

पृष्ठ	पात्ता	अशुद्ध	शुद्ध	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	
५१०	०	तही	तहा	५५०	१६	ध्यानकरो	ध्यानकरौ
५१०	१८	तभीकीड	तभीकीड़े	५५१	३०	कहीसे	कहीसे
५१२	१३	देवै	देवै	५५३	२	अथयाज्य	अथअयाज्य
५१२	१३	गिरावै	गिरावै	५५३	२३	माप्राजापन्य	मप्राजापन्य
५१२	२६	मान	माना	५५४	१५	मन्यर्मित्य	मत्यकर्मित्य
५२०	६	ब्रह्मचर्यादिनां	ब्रह्मचर्यादिना	५५७	८	सपरयनकुल	सपरयनकुल
५२०	१५	आयय	आयम	५५६	७	तडागाराम	तडागाऽगाम
५२०	२१	धरागया	धरागया	५६२	१६	ब्रह्मोभक्ता	ब्रह्मोभक्ता
५२३	४	मोअवकीर्ण	मोअवकीर्णी	५६३	१२	तिसकेसातमा	तिसकोसातमा
५२३	२०	होमकी	होमकी	५६३	३०	करे	करै
५२३	३०	देवतान्य	देवतान्य	५६५	१२	स्तोत्रिसादिभिर्जीवन	स्तोत्रिसादिभिर्जीवना
५२४	३	मन्त्रनेलिखिदिये	मन्त्रनेलिखिदिये	५६६	१५	च्छेद (वृच	च्छेद)वृच
५२४	३	प्रग्नित्वितो	प्रग्नित्वितो	५६६	३	पट	पट
५२६	१०	वद्रायण	वद्रायणे	५६७	१६	नक्षत्रा	नक्षत्र
५३६	१६	योऽच्छुभोऽभोजनीय	योऽच्छुभोऽभोजनीय	५६७	१६	दशार्ध	दशार्ध
५३८	१०	प्राहुतोर्बुहो	प्राहुतोर्बुहो	५६८	२५	ब्राह्मजीवी	ब्रह्मजीवी
५३८	२१	हना	हना	५६८	३०	नहीकितव	नहीकितव
५३६	२	हना	हना	५६९	१६	लेलेने	लेलेने
५४०	११	कर्त्तिसमाभूतवादीः	कर्त्तिसमाभूतवादीः	५७०	१३	मवापरायै	मवापरायै
५४३	२०	मपत्त्याना	मपत्त्याना	५७०	१५	भयाविहरत	भयादिरहत
५४३	२०	अपानवे	अपानवे	५७०	१८	पराङ्मुग	पराङ्मुग
५४५	०	ठटेकेन	ठटेकेन	५७३	१२	समाचरै	समाचरै
५४५	२५	मयतोमरेदिन	मयतोमरेदिन	५७४	४	विरोधया	विरोधया
५४५	२५	नोनवप	नोनवप	५७५	१५	येगौ	येगौ
५४५	२५	नेनानप	नेनानप	५७५	१०	अर्थै	अर्थै
५४६	१३	मुदुकी	मुदुकी	५७५	२४	अर्थान्	अर्थान्
५४६	२१	मुदुकी	मुदुकी	५७५	१०	नौगादि	नौगादि
५४६	२२	मुदुकी	मुदुकी	५७५	२३	नित्यप्रति	नित्यप्रति
५४६	२२	मुदुकी	मुदुकी	५७६	८	रेप्या	रेप्या
५४६	२२	मुदुकी	मुदुकी	५७७	२०	नेउरै	नेउरै
५४६	२२	मुदुकी	मुदुकी	५७७	२०	प्रासगिको	प्रासगिको
५४६	२२	मुदुकी	मुदुकी	५७७	२०	मनुकी	मनुकी
५४६	२२	मुदुकी	मुदुकी	५७७	२०	दलादुदि	दलादुदि

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५८२	२५	शिशुकं	शिशुक	६०२	१२	एकोमप्रातिम ७१	एकमप्रातिम. ७१
५८३	१७	उपने	उपरले	६०४	५	शास्त्रमभी	शास्त्रसेमभी
५८३	२६	कृच्छ्रव्रत	कृच्छ्रव्रत	६०४	२७	नहीं खाने और न खाने	नहीं खाने पर न खाने
५८८	१३	क्लृटयो	क्लृटयो	६०८	१५	तीनकात्रन	तीनदिनकात्रन
५८८	१४	श्वमायुक्त	श्वगोमायुक्त	६०८	२३	स्तुक्जिका	स्तुक्जिका
५८८	२०	छोटेवड़े	छोटेवड़े	६०९	२०	ऐमेखाय	ऐमेमेखाय
५८८	२८	जीलकठ	नीलकठ	६१०	२१	पर०खाते	पर०खाते
५८८	२५	वारन	वानर	६१३	१०	पटत्रिंश	पटत्रिंश
५८९	१	चारमेवच	चारवनेवच	६१३	१०	एकदशा	एकदशा
५८९	१०	जापत्य	जापत्य	६१३	२२	मसद्वये	मामद्वये
५९१	३	पन्तरचानं	पन्तरचानं	६१३	२६	वैश्यका	गूडका
५९१	६	पतगास्थ	पतगान्थ	६१३	३०	वैश्यकी	गूडकी
५९१	१७	संस्पृष्ट्याशुचि	संस्पृष्ट्याशुचि	६१४	२	वैश्यका	गूडका
५९०	१४	अट्टासोमल	अट्टामोमल	६१४	३	गंखरू	गंखजी
५९०	१५	मित्यादिनां	मित्यादिना	६१५	०	न विप्रमना	न विप्रमना
५९०	१६	सेताद्रूपित	सेताद्रूपित	६१८	६	तद्व्योवार्थु	तद्व्योवार्थु
५९०	१७	शातातपः	शातातप	६१८	१०	अनन्यही मन्व्यास	अनन्यहीका अनन्यान
५९३	१५	ब्राह्मणेच्छिग्रा	ब्राह्मणेच्छिग्रा	६१८	२५	कमरि	कर्मरि
५९३	१६	ब्राह्मोत्तुवर्चना	ब्राह्मोत्तुवर्चना	६२०	१७	पित्रा	पित्रा
५९४	३०	महाशान्तपन	महाशांतपन	६२१	१७	पगकरव	पगकरव
५९५	४	पेनयुद्ध्यते	पेनयुद्ध्यते	६२३	२	गूडस्येव	गूडस्येव
५९६	५	पटत्रिंश	पटत्रिंश	६२३	२३	पवयजः	पवयजः
५९६	७	यस्तुभुक्त	यस्तुभुक्ते	६२८	३	द्यमपपानां	द्यमपपानां
५९६	१२	मोहाद्रु जीत	मोहाद्रु जीत	६२८	१५	कृच्छ्रोःस्तपने	कृच्छ्रोःस्तपने
५९६	१६	योभुक्तभुक्त	योभुक्तेषां भुक्तेषु च	६३०	२०	ब्रह्मनिवर्तनी	ब्रह्मनिवर्तनी
५९६	२०	कभुक्ते	कभुक्ते	६३०	२०	वर्गको	वर्गको
५९६	२०	एवंवैवस्वन	एवंवैवस्वन	६३३	१०	ब्रह्मव	ब्रह्मव
५९६	२५	च तेपवा	च तेपवा	६३४	३०	दंडयोः नगै	दंडयोः नगै
५९६	२८	त्रिंशो	त्रिंशो	६३५	०	मदंडय	मदंडय
६००	२०	शान्तपन	शांतपन	६३५	४	अदंडय	अदंडय
६०१	३०	गूडस्य	गूडस्य	६३६	३०	मंदां	मंदां
६०२	६	गूडस्येन	गूडस्येन	६३८	१०	दृष्ट्या-	दृष्ट्या
६०२	१७	निखिचुक्ते	निखिचुक्ते	६३९	२	निगवद	निगवद

पृष्ठ संज्ञा	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ पक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६४२ १६	ज्ञानरूपो	ज्ञानरूपो	६९२ २०	ऽन्यत्र	ऽन्यत्र
६४१ २४	प्रतिनोन्या	प्रतिनोन्या	६९३ २०	शोशुचदद्यं	शोशुचदद्य
६४६ १६	अथोनी	अथोनी	६९४ ४	एकमन्व	एकमन्व
६४० २१	ऐनामन्व	ऐनामन्व	६९४ ५	जिसमन्व	जिसमन्व
६४१ ५	प्रतिगृह्यजपेत्	प्रतिगृह्यजपेत्	६९४ ७	दद्य	दद्यं
६४० ६	जुर्भे पाप	जुर्भे पाप	६९४ ८	मथौ	मथौ
६५१ १०	दग्धौ । घर	दग्धौ ॥ । घर	६९४ १०	आतिर्देशक	आतिर्देशक
६५० ५	तीनकर्म	तीनकर्म	६९४ १२	दद्य	दद्य
६५० १०	चाहे	चाहे	६९४ १३	मन्व	मन्व
६५० २०	मगति	मगति	६९४ २६	शाकल	सकल
६५४ १४	चारिणोस्त्वो	चारिणोस्त्वो	६९६ २१	मनुमे	मनुमे
६५४ २०	जिमैकोई	जिमैकोई	६९७ २३	(पृथकराभि.)	पृथकराभि)
६५५ १६	माय	माय	६९८ ३०	यकाम	प्यकाम
५५५ २६	गृह्णायु	गृह्णायु	६९९ ३०	जपेद्वायस्य	जपेद्वायस्य
५५६ ६	पुणं कुंभे च	पुणं कुंभे च	६९९ ३०	कुताप	कुंताप
६६० १०	पर	पर	६६० २	निविस्त्रै पान्	विस्त्रै पान्
६६१ ५	न इव	न इव	६६० ५	निविस्त्रै पान्	निविस्त्रै पान्
६६० ३	न्योक्तिवैने	न्योक्तिवैने	६६२ १५	सर्वोपपात	सर्वोपपात
६६५ २५	निर्मण्डये	निर्मण्डये	६६३ ४	सृष्टिमे	मृष्टिमे
६६० ६३	मुनोक्त	मुनोक्त	६६३ ३०	उयामेध्यप्राण	उयामेध्यप्राण
६६१ ३	उयाहा	क्रियाहायदिवा अग्नि ६६३ ३०	५परायविक्रये	ऽपरायविक्रये	ऽपरायविक्रये
		होत्रोक्तोपन्नो वधकरो ६६४ ३	द्वादश २	द्वादश २	द्वादशद्वादश
		यागार्भणीके अविज्ञात ६६४ ४	द्वादश २	द्वादश २	द्वादशद्वादश
		गर्भकाविनाशविद्या हा ६६४ ५	द्वादश २	द्वादश २	द्वादशद्वादश
		अविज्ञातकायह अर्थहे ६६४ ५	द्वादश २	द्वादश २	द्वादशद्वादश
		केइमगर्भने लडकाहो ६६५ २२	मोजा	मोजा	मोजा
		मया लडकीय नपुंसक ६६० २३	अन्यतरव	अन्यतरव	अन्यतरव
		पैदा होनायइव्योगजव ६६६ ६	पेक्त	पेक्त	पेक्त
		तकानमुनो जायतनी ६६५ २३	शृष्टिवतो	शृष्टिवतो	शृष्टिवतो
		तकविनाशविद्याहो ६६० ६	यनाटिक	यनाटिक	यनाटिक
		अचेपिके ६६४ ४	बुद्ध	बुद्ध	बुद्ध
		श्रुताशुची ६६५ ०	प्रमोचिनी	प्रमोचिनी	प्रमोचिनी
		काम ६६६ ०	न्यायाप	न्यायाप	न्यायाप

पृष्ठ	पक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६६६	१३	पूतानिपुनति	गोतानिपुनति	७१७	१५	नामसूधेक्रम	नाम॥सूधेक्रम
६६७	४	तिलैवाचिन	तिलैवाचन	७१८	२२	नमोहायेत्यादि	नमोहमायेत्यादि
६६८	१४	य प्रात स्तिला	य प्रातस्तिला	७१८	२४	त्यंतरोक्तामि	त्यंतरोक्तानि
६६८	१७	क्षीराब्धौशेष	क्षीराब्धौशेष	७१९	१३	की साधना	की साधना
६६९	६	तिससेउसकेचित्तकी	जिससेउसकेचित्तकी	७१९	२१	कालौमेवैठे	कालौमेवैठे
६६९	१३	पड़ासहि	पोड़ासहि	७२०	२६	प्रतीतहोता	प्रतीतहोताहै
७००	१२	पापउसे	पापउसै	७२१	२५	इनपाचौ	इन पाचौ
७००	२२	रात्रिको	रात्रिको	७२२	४	दिनकोरेव्रतकी	दीन कोरेव्रतौकी
७०१	२८	विवेचनीयाना	विवेचनीयानो	७२२	११	उसैनही	उसैनहीं
७०३	७	आवै ॥	आवै॥ ३१२ ॥	७२२	२४	कार्तिथिकी	कार्तिथिकी
७०३	८	परिच्छेद ३१२	परिच्छेदः ॥	७२४	१०	गासभुंजीत	गासभुंजीत
७०४	१६	सूधेस्पष्ट	सूधेस्पष्ट	७२५	१५	विकारेरो	विकारेणे
७०५	१६	कोताडना	कोताडना	७२५	१७	कुक्कुटाडाद्रामल	कुक्कुटाडाद्रामल
७०६	४	सर्वकापिल	सर्वकापिल	८२५	२६	कृत्यकार्य	कृत्यकार्य
७०६	२०	कुशलंकर	कुशलंकर	७२६	१६	श्रेष्ठजानो	श्रेष्ठजानो
७०६	२२	श्रवती)	श्रवती)	७२७	२०	पूर्णमासोपहिले	पूर्णमासोपहिले
७०६	२४	वचे	वचै	७३०	२	भुगभवेत्	भुगभवेत्
७०७	२	सज्ञा	सज्ञा	७३२	१६	गिननायास	गिनमायास
७०८	५	कोरा	कोरा	७३३	३०	स्नायत्तस्य	स्नानायत्तस्य
७०७	८	आटो	आटो	७३४	४	आर्द्रवासा०लट्वांशी	आर्द्रवासालट्वांशी
७०७	२६	सान्मपन	सान्तपन	७३४	४	लट्वांशी +	लट्वांशी०लट्वांशी-
७०७	२७	-यहवै	च्यहवै				इतिचवापाठःतत्रोभय
७०८	८	द्व्य हम्	द्व्यहं				सुदर (अर्थात्नन्धाशी
७०८	१३	तिनको	तिनको				पाठहोनेनेत्रोक्कुट्ट टि-
७०८	२१	कृच्छार्ध	कृच्छार्ध				ज्ञानेपरवैठेसापही आ-
७०९	१०	मासेनकथित	मासेनकथितः				करमितैवही भोजनक-
७०९	२०	एकरात्रोप	एकरात्रोप				रै-नट्वांशीथीडाभोज-
७१४	२	इनदोनों	इनदोनों				नकरै-दोनोंअर्थकीक टै
७१४	६	पादं चरेच्छूद्रः	पादं चरेच्छूद्रः	७३४	८	कहिकरदशाया	कहिकरनियम दशाया
७१४	६	वैश्यस्यपादयेत्	वैश्यस्यपादयेत्	७३४	८	भोजनकरिके	भोजनकारिके-या-नन्धा-
७१४	१०	एकपादउसे	एकपादउसै				शी-एनापाटांतर हाने
७१५	६	उत्तैतिगुना	उत्तैतिगुना				ने-उत्तैतिगुने वैठे ज्ञा
७१६	२०	प्रतिलोभ्येनवा	प्रतिलोभ्येनवा				कुट्ट अद्रफनमुत्तमादि

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
			स्वत प्राप्तहोमोखाइके				नेहीदिनो तक उक्तस
			स्याडिलपरसोवै				ख्यारोज रोज जिमावै
०३६	१६	चैवायमर्षणम्	चैवायमर्षणम्				दृष्टांतजैसे चाद्रायण में
०३६	१६	श्रुत्कारा	श्रुत्कारा				तीसदिनतक चौबीस
०३६	३०	जुहुयाद्याहृतीः	जुहुयात्व्याहृतीः				ब्राह्मण॥०॥
०४४	००	अनादिपृषापा	आदिपृषापा	०६२	१६	नेसमुभाया ॥	नेसमुभाया- परतुजैमा
०४७	६	त्यादिभि०	त्यादिभिः				अतिनिर्धन को प्राजाप
०४८	०३	एकनिष्क	एकनिष्क				त्यके बदलेवारहब्राह्मण
०५०	२५	मातमाडे	साडेसात				कहेतैसाअन्यत्रतोके उ-
०५०	०६	उनकेमूल्य	उनकेमूल्य				परलेहिसावसे जित ने
०५५	२५	तीनदिनकारा	तीनदिनकोरा				होसकै उतनेउनमे भी
०५६	२	चारहादिनकी	पूरेचारहादिनकी				निजनिजलेखे से इन्हो
०५८	०८	जुदेरही	जुदेजुदेही				वारहकेअनुक्षप समुभि
०५६	२३	कमोवेशी	कमोवेशी				लेना ॥०॥
०६०	२६	च्छ्राव	च्छ्राव)	०६२	२०	स्थानभूत	स्थानोभूत
०६२	११	समुभलेना	समुभलेनाअर्थात्जिस	०६३	४	औरजो	और जो
			प्रतकीसाधना जितने	०६३	५	बिल्कुल	बिल्कुल
			दिनहोतीहोउसमेउत	०६४	२५	प्राप्तो	प्राप्तो

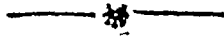
इति

नामकिताव	नामकिताव	नामकिताव	नामकिताव
पद्यसंग्रह (व) वृहज्जातक वृहत्सहिता विनयपत्रिका मूल व टीका सहित ब्रजविलास ब्रजविलासतारावली ब्रह्मांतरखण्ड विष्णुपुराणभाषा वाराहपुराण वोजककवीरदास वोजगणितदोभाग वैतालपच्चीसी वकावलीसुमन वैद्यजीवन वैद्यमनोत्सव वैद्यप्रिया वालशिक्षा दो भाग (भ) भक्तमाल भक्षिप्यपुराण भोजप्रबन्धसार भाषाव्याकरण भाषातत्त्वटीपिकाव्या० भूगोलतत्त्व भाषाचन्द्रोदय भूगोलवर्णन (स) मार्कण्डेयपुराणखण्डोक्त माधवचिदम्ब मुहूर्तचक्रटीपिका	मुहूर्तचिन्तामणिसटीक मुहूर्तभार्तण्डसटीक मुहूर्तगणपति मुहूर्तदीपक महाभारतदर्पण तथाअलगरउन्नीसोपर्व महाभारतसवलसिंह कीवनाई मिश्रितमाहात्म्य मनमोहनी मनमोहन महारामायण मनुस्मृति मंगलकोष (य) याज्ञवल्क्यस्मृति योगवाशिष्ठ युगलसंवादबोधप्रकाश यमुनालहरी युगलविलास (र) रेखागणितदोनोंभाग रघुवंशसंस्कृतवभाषादो जिल्दोने रामायणमूलतुलसीकृत नोटैअज्ञरीकी रामायणतुलसीकृतमूल छोटे अज्ञरी की तथा नोटै औरचिक्के काज्जो रामायणतु०कृ०छापटैप रामायणतु०कृ०नोदृत्तन०	रामायण शुक्रदेवजी की टीका सहित मै कांड रामायणटीकारामचरण की मैकांड रामायणकीमानसप्रचा० रामायण तुलसीकृतका शब्दार्थकोष रामा०तु०कृ०काइतिहास रामायण तुलसीकृतकी मानसदीपिका रामायणकवितावलीतु- लसीकृतमलवसटीक तथा श्रीवैद्यनाथजीकी टीकासहित रामायणगीतावलीमूल तथा सटीक श्रीमद्वाल्मीकीयरामा- यणभाषामैकांड रामचन्द्रिका सटीक रामायणरामविलास अद्भुत रामायण रामायणअध्यात्मविचार राम विवाहोत्सव रामलीला रामगीता रामचन्द्रोदय व रामचंद्रि रामप्रकाश रामनंघर रामचिन्तनकृमि काइतिहास रामचन्द्रिका रामायणप्रकाश रामजीनि	(ल) लघुसिद्धांत कौमुदी लग्नचंद्रिका लिपिपुस्तकरसेदन०तक लिगपुराण लोधेश्वरमाहात्म्यउर्दू व नागरी लक्ष्मी सरस्वती संवाद दोनोभाग (श) शार्ङ्गधरभाषाटी०सहित शिवसहस्रनाम शनिश्चरकी कथा शिवविवाहवंशावली शंकर दिग्विजय शिवपुराण भाषा शंकरचरित्रमुधा शङ्करललितिका शिवमिहसरोज शङ्करवतीसी शुक्रवहरी शिजापत्र शालागीतचन्द्रिका शुक्रनी तभाषा शिवाप्रबन्ध शिजावली शिगुबोध शुभाशुभधाकर श्रीयुक्त नतनयोदटीकविशरीगानदृ० दल्यादि

इतिहास

भादमासं मन् १९२२ ई० से मुमालिक मगरवो व शिमालो का बुकडिपो इलाहाबाद क्यूरेटर बुकडिपो से मगरवो व शिमालो लखनऊ में आगया है इस डिपो मे मगरवो व शिमालो एजुकेशनल बुकडिपो के मित्राय और भी हर एक विद्या की किताबे मौजूद है इन हर एक किताबो की खरोदारी की कुलशर्ते नोमन के महिन इन छापेखाने की छपो हुई फेहरिस्त मे दर्ज है जो दरखास्त करने पर हर एक चादने या नो को बिना कौमत मिलमकी है जिन साहयो को इन किताबा की खरोद करना हो वे इस छापेखाने से खरोद करें और फेहरिस्त तजय करें ।

द० मनेजर अवध अखबार
लखनऊ मुहल्ला हजरतगंज



ऊन्द इनका अच्छा बोध होना भी अधिकार का उपयोगी है इनके बिना औरों का भी निर्विकल्प विषय नहीं है और भी यह सतर्क उत्तर है कि तडागवनवानेआदि में ज्योतिषोम आदि के विषय वाला विरोध नहीं जोड़ा जाता है जैसे यहां भी समझना कि स्त्री पुरुषों को पढ़ने का अधिकार न होने से प्रायश्चित्त करने का अधिकार नहीं मिला जा सकता है ॥ ० ॥ परन्तु त्रैविशिक पुरुषों को देवता आदिका ज्ञान होना अवश्य ही अपेक्षित है=यथाह व्यासः= अविदित्वाऋषिच्छंदोदैवतंयोगमेव च यो ऽध्यापयेज्जपेद्वापि पापीयाच्च जायते तु सः=अर्थात्—ऋषि और ऊन्द और देवता और मन्त्र का विनियोग नहीं जानि के जो कोई पाठ या जप करे वो पापी होता है ॥ ० ॥ व्रताहारादिनियमाः—रहस्य प्रायश्चित्त जो आगे सब दर्शाये जायेंगे उन्ही का यह धर्म सामान्य वर्णान हो रहा है तिनमें इतना और भी यह जुदा नियम समझे रहिना कि यद्यपि जिन व्रतों में कुछ आहार करना न लिखा जाय तथापि उन में दूध पीना या पंचगव्य या यावक आदि जैसा प्रकाश प्रायश्चित्तों में कहि चुके तैसा यहां भी समझि लेना • जहां कोई काल विशेष न कहा जाय तहां संवत्सर आदि समझना • प्रायश्चित्त करने का ठिकाना जिनमें न कहा जाय तिनमें पर्वत के निकट शिला आदि का स्थल समझना जैसे प्रकाश प्रायश्चित्तों में गौतम आदि के कहे नियम हैं तिनमें ढूंढना चाहिये यह मिताक्षराकारों की दर्शाई हुई व्यवस्था है ॥ ३०२ ॥

यह सब इतना रहस्य प्रायश्चित्तों का साधारण धर्म दर्शाया जो सबही की आदि में विचारना होगा अब अगिले मूल प्रलोक से लेकर रहस्य प्रायश्चित्तों के स्वरूप सब जुदे जुदे ब्रह्महत्या आदि गुप्त पापों पर उसी क्रम से दर्शावेंगे कि जैसा पहिले खुल्लम पापों के प्रायश्चित्त ब्रह्महत्या आदि के क्रम से वर्णान हो चुके ॥

(ब्रह्मवध प्रायश्चित्तं)

विरात्रोपोपितो जप्त्वा ब्रह्महात्वधर्मपणम् । अन्तर्जले विशुद्धे तदत्वागाञ्च पयस्विनीम् ॥ ३०२ ॥

अर्थ—ब्रह्महा तीन रात्र उपास किया जलके भीतर अघमर्याता को जपि के पयस्विनी गाय देकर विशुद्ध होय=अर्थात्—छिपी हुई ब्रह्महत्या जिसपर होगई मो ब्रह्महा पुन्य किराने जाहर किये बिनाही तीन दिव उपवास करै और उन्हीं तीनों दिवस तीर्थ के जन्ताशय पर जलके भीतर निमान देटाहुआ उस अघमर्याता मन्त्र को जपे जो इसी नामके महर्षि ने अघमर्याता सूक्त (ऋतं च सत्यं चेति) इत्यादि ऋचाओं

का अनुष्टुप् भाव और वृत्त और देवता के परिज्ञान सहित निश्चयकरिके प्रकाश किया है उसी सूक्तको जलमें छिपिकर तीन बार जपे जितनी देरमें तीन आवृत्ति पूरी होसकीहों उतने काल तक तीनों दिन जप किये पीछे चौथेदिन दूध देती हुई त्रिआनी अधिक दुधार साथ दान करिके शुद्ध होजाताहै ॥ ३०२ ॥

३०२ अधिकोक्तिः=ऊपर लिखे नियमोंका प्रसाराभी अत्रोक्तवचनहै=यथाह सुमंतुः=देवद्विजगुरुहंताऽधुनिमग्नाऽधर्म्यसूक्तत्रिरावर्तयेत् सातरंभगिनींरात्वा सात्त्वसारंस्त्रयां सखींचान्यद्वाऽगस्यागसनंक्त्वाऽधर्म्यसामेवान्तर्जले त्रिरावर्त्यतदेतस्मात्पूतोभवतीति=अर्थात्-सुमन्तुने खुलासाही कहिदियाहैकि-देव०द्विज०गुरु०इनका हंता पुरुष जलमें निसग्नहोके अधर्म्यसूक्तको तीनवार जपे किन्तु०साता०भगिनी को गसनकरिके यासाताकी वहिन मावसीको या पिताकी वहिन फूआको या बेटा की बधुको या सखी कोभी गसनकरिके यदा और प्रकारका अगस्या गसनकरिके अधर्म्यसूक्तहीको जलके भीतर तीनिवार जपिके वह पापी इनपापोंसे छुटिकर शुद्ध होजाता है (अर्थात् अधर्म्यसूक्तही एक ऐसा परमतीव्र शस्त्रहै जिससे सब तरहके पाप कटिजातेहैं) सुमंतुके इसवचनमें देवहंता जो कहा सो दो तरहका सम-भना किन्तु जिसने गुप्तभावसे कोई देवसूर्ति तोड़ीहो या छिपकरकहीं किसीराजा का बध किया हो तहां राजा का बध भी दो तरह का समभना किन्तु जिसने किसी शस्त्र आदिसे बधकिया हो या तांत्रिक प्रयोगोंवाली कृत्यासे बध किया हो ये सभी देवहंता समझिलेने और द्विजहंता यद्यपि यहां पर ब्रह्महत्या की प्रधानता से ब्राह्मण को मारनेवाला अभिप्रेतहै तथापि शब्द अर्थसे द्विजाती साधका मारने-वाला समभना किसी दैत्य और विरोध में गिनती नहींहै क्योंकि अधर्म्यसूक्त जो ब्रह्महत्यापर्यन्त महापाप को भेटिसक्ता है उसको सभी दैत्यके बधका पाप भेटने में न कुछ उजर है न कठिनाई है(इस व्याख्या में ऊपर जो खुलासा शब्द लिखागया तिसको धावनी भाया के अनुजार सारार्थका बोधक न समझना किन्तु देशी भाया में खुल्लसको खुलासा कहिते हैं इष्टान्त जैसे डंकाजा या खुलाजा-स्पष्टनिवेत्यर्थ० स्पष्टमेवेत्यभिप्रायः ॥ इतच्चकारकारवियचनितिमिताक्षरा=यत्तुमनुगीतं=अथवाह तिस्रसावकाःप्राणायाजास्तुयोडय अपिभूराहनंजानात्पुनंत्यहरहःकताः-तदग्रिमि-नेववियवेगोदानाशक्तस्यदेवितव्यनितिमिताक्षरा=अत्यत्रि-मिताक्षराकार कहिते हैं कि यह प्रायश्चित्त जो लिखि चुके सो सब उनके लिये अनक्षना जिसने इच्छा सहित अत्रोक्त प्राय किये हों=वर्तिक जो मनुने यह कहाहै कि=उपरह प्राणायाज

ओंकार प्रभाव और व्याहृतियों सहित रोज रोज एक महीनातक साधे तौ ये इतने प्राणायामधूराहत्यारे को भी पवित्र करतेहैं अर्थात् किसीका गर्भ या बालक बच्चा तक्र विनाश जिसने किया हो (इसके भीतर ऊपर कहे पापोंको भी समझना क्योंकि धूराहत्या सबसे बड़ी होतीहै) सो भी इतने प्राणायामों से शुद्ध होजाताहै—मिताक्षराकार कहिते हैं कि यह मनुका कहा एक महीने का प्रायश्चित्त इसी पूर्वोक्त विययपर समझना कि जिसने इच्छा सहित पाप किया हो और योगीश्वर वाला अधर्म्यसूक्त तीनदिन जपने के पीछे यदि गोदान करने में असमर्थहो तौ गोदानके पलटे यह एक महीनेका प्राणायाम अधिक साधे (ऐसेही महीने आदि के व्रतों में कि जहां जहां खाने पीनेका कुछ चर्चा नहीं किया जाय तहां तहां सर्वत्र वही नियम देखिलेना जो इससे पहिली अधिकोक्तिमें व्रताहार आदि नियम लिखचुकेहैं) इतिसकामकृतहत्यादिप्रायश्चित्तं ॥ अथाकामकृत हत्यादि विषयेसकामा कामभेदाः=यत्तुगौतमेन—यद्विंशदहोरात्रव्रतमुक्तोक्तं • तद्व्रतेष्व ब्रह्महत्यासुरापान सुवर्गस्तेय गुरुतल्पेयु प्राणायामैः क्षातोऽधर्म्यसांजपेदिति— तदकामतोऽसकृद्वियय मिति मिताक्षरा=अर्थात्—गौतमने—छत्तीस दिनरातिका व्रत वयान करिके साथही उसके यह कहाहै कि • ब्रह्महत्या • सुरापान • सुवर्गस्तेय • गुरुतल्पगमन • इन चारों प्रकारके महापातकोंपर वही ३६ दिनका व्रत करनेमें यह चाहिये कि नित्यम्प्रति स्नान करिके अधर्म्यसा सूक्तको जपै (स्थलहीमें जपना कहा जलके भीतर बैठना यहां पहिले कहेकी तरह मत समुझिलेना) मिताक्षराकार कहितेहैं कि यह गौतम का कहा प्रायश्चित्त उसकेलिये समुझना जिसने इच्छासे चाहेविना कई बार पाप कियाहो=और=जिसने निपट कामनासे चाहिकर पूर्वोक्त हत्या आदि पाप कई बार छिपना कियेहों अथवा इच्छाके विनाही पहिलेसे बढिया पाप अर्थात् यो-वियका बर्कियाहो या आचार्यका बध कियाहो या यज्ञ करते ब्राह्मण आदिका बधकियाहो तिन सबकेलिये आगे बौधायन का बचन देखौ=यदाहबौधायनः=प्रा मात्प्राचींघोदीचींदिगमुपनिष्क्रन्त्य क्षातशुचिवासाः उदकांतेत्यगिडलमुपतिष्ठन् ऋत्विक्त्तन्वासाः सन्नतपूतेनपाणिना आदित्याभिमुखोऽधर्म्यसांस्वाध्यायसधीर्यात प्रातःगतंमध्याह्ने गतमपराह्ने गतमपरिमितचोदितेयु नक्षत्रेयुप्रस्थित्यावक्रंप्राप्रनीयात् ज्ञानतोऽज्ञानतःकृतेभ्यश्चोपपातकेभ्यः सन्नरात्राल्प्रमुदयते षाडशरात्रान्नहापातके भ्येव्रह्महत्यासुरापान सुवर्गस्तेयानिबर्जयित्वा एकविंशतिरात्रेणा तान्यपितरतीति— तत्कामकारिविययं • अकामतःयोत्रियाचार्यं सन्नतस्यवद्विययंवेति मिताक्षरा=

अर्थात्—बौधायन ने जो इस प्रकार से प्रायश्चित्त दर्शाया है कि—ग्राम से पूर्व और उत्तर की दिशा में घूमिके उसी जगह स्नान किया हुआ शुद्ध वस्त्र पहिने जलाशय के समीप ही (स्थण्डिल) चबूतरी तुल्य वेदी बना कर एकही बार गोता लगाइ भीगा वस्त्र एक ही पहिरे हुये एकही बार पवित्र हाथ से स्थण्डिल को लीपि के उस पर सूर्य के सन्मुख बैठा हुआ अपना पाठ अधर्म्यरा वेद मंत्र से पढ़े (इसकी कितनी आवृत्ति करनी चाहिये सो कहिते हैं कि) प्रातः कालिक संध्या के साथ एक सौ अधर्म्यरा पढ़े संध्याह्न की सन्ध्या साथ एक सौ अधर्म्यरा जपे सायंकाल की सन्ध्या से पहिले एक सौ अधर्म्यरा के मन्त्र जप चुके फिर सन्ध्या के साथ भी यथा शक्ति अधर्म्यरा मन्त्रों का पाठ करे जिनका परिमाण कुछ नहीं है किन्तु जितने होसके वही अपरिमित परिमाण है तिस पीछे राति में नक्षत्रों का उदयहाने पर एक पसर अर्थात् आधी अँजुरी जो लेकर उन्हें गोमंत्र में राँधि के यावक बनावे तिसका भोजन करे ऐसा नियम खात दिन करने से उन पापों से छुटि जाता है कि जो कुछ गुप्त भाव से उपपातक मात्र अपने ज्ञान सहित किया हो वा अज्ञानता से किया हो और बारह दिन ऐसा नियम साधने से महापातकों से भी छुटि जाता है पर (ब्रह्महत्या० सुरापान० सुवर्णास्तेय) इन तीनों को छोडिके शेष महापातकोंका यह नियम कहा गया और इक्कीस दिन उसी तरह अधर्म्यरा का जप करने से उन तीनों से भी छुटि जाता है—मिताक्षराकार कहिते हैं कि यह बौधायनका कहा प्रायश्चित्त कामना सहित किये पापों पर करना चाहिये अथवा विना कामना केभी जिस किसीने योत्रिय विद्वान् का वध किया यद्वा आचार्य का वध किया हो या किसी को यज्ञ करते सारडारा हो तिसको भी यह २१ इक्कीस दिन का प्रायश्चित्त चाहिये ॥ अथवा कामना सहित योत्रिय आचार्य और यज्ञस्य का वध किया हो तिसके लिये अग्रोक्त मनुका वचन देखौ=यथा= अरसायेवात्रिरभ्यस्य प्रयतोवेदसंहितान् मुच्यतेपातकैःसर्वैःपराकैःशोदितैस्त्रिभिरिति—तत्कामतःयोत्रियादिवधविययं इतरत्रकामतोऽभ्यासविययंवेति मिताक्षरा=अर्थात्— वन जंगल में तीन बार वेद की संहिता पाठ करिके जितेन्द्र होके रहिते हुये तीन पराक्तों से गोत्रे हुये सभी पातकों से छुटि जाता है अर्थात् चाहें कोईसा पाप गुप्त किया हो पहिले तीन पराक्त करिके पीछे वेदकी संहिता तीन बार पढ़े—सोयह बड़ा प्रायश्चित्त उसके लिये समझना जिसने कामना सहित योत्रिय आदि का वध किया हो अथवा योत्रिय आदि से उपरालुओं का वध इच्छा सहित अनेक बार किया हो तिनके लिये भी

समभङ्गा ग्रह मिताक्षराकारनेकहा ॥ यत्तु वृहद्विद्यानोक्तं=ब्रह्महत्यां कृत्वा ग्रामात्प्रा
 चामुदोच्चींवा दिशमुपनिष्क्रम्यप्रभतेन्वनेनारिं प्रज्वालयाधर्म्यराणाष्टसहस्रमाहुर्तु
 हृद्यात्ततस्तस्मात्पूतोभवतीति-तन्निर्गुरावधविययमनुग्राहक विययंवेतिमिताक्षरा=
 अर्थात्- बड़े विप्रा का जो कथन है कि-छिपी ब्रह्महत्या करिके ग्राम से बाहर
 पूर्वदिशा या उत्तर दिशामें निकसिके बहुत ढेर ईंधनकी अग्नि जलायके अधर्म्यरा
 मन्व से आठ हजारआहुतें होमैं तिससे इस पाप से छुटि जाता है-मिताक्षराकार
 कहिते हैं कि यह प्रायश्चित्त सुगम है तिससे उसके लिये समभङ्गा जिसने निर्गुरा
 ब्राह्मण को मारा हो अथवा गुरावाच को मारने वाले का अनुग्राहक जो कोईव-
 ना हो तिसके लिये भी ॥ यत्तुयमेनोक्तं=त्र्यहंतूपवसेद्युक्तस्त्रिरहोऽभ्युपयन्नपः मुच्यते
 पातकैः सर्वैस्त्रिर्जापित्वाऽधर्म्यराम-तद्गुरावतोहंतुर्निर्गुरावधविययं प्रयोजकानुसंह
 विययंवेति मिताक्षरा=अर्थात्-यम ने जो कहा है कि-तीन दिन उपवास करै त्रि-
 तैत्री होके फिर तीन दिन जल के आहारसे रहै तहां तीन बार अधर्म्यरा को नित्य
 जपता रहै तो सभीपातकों से छुटि जाता है-मिताक्षरा कार कहिते हैं कि यह प्रा-
 यश्चित्त उससे भी सुगम है तिससे उसके लिये समभङ्गा जो मारने वाला गुरावाच
 होकर उसने निर्गुराी ब्राह्मण को मारा हो अथवा गुरावाच को मारने वाले के
 साथी सहायक प्रयोजक अनुमन्ता बने हों तिनके लिये भी ॥ यत्तुहारीतेनोक्तं=म
 हापातकातिपातकानुपपातकानामेकतः संपातेवाऽधर्म्यरामेवत्रिर्जापेदिति-तन्निमित्त
 कर्तव्ययमिति मिताक्षरा=अर्थात्- हारीत ने जो कहा है कि जब किसी पर एक
 साथ ही सब तरह के पाप आपरैं किन्तु महापातक अतिपातक अनुपपातक आदि
 एक साथ ही बनि परैं या इन में से कोई एक तरह का पाप आपरैं तब अधर्म्यरा
 को ही तीन तीन बार कुछ दिन जपै-मिताक्षरा कार कहिते हैं कि- यहप्रायश्चित्त
 केवल निमित्त कर्ता पर आसूड होना चाहिये (निमित्तकर्ता वही कहाता है
 जिसने हाथ से नहीं मारा परन्तु किसी तरह से हृदय को दुखाया जिससे वह आप
 ही वृद्धि मरा या विय भक्षणा क्रिया इत्यादि अनेक भेदहैं ॥ मिताक्षरा कार कहिते
 हैं कि जैसे दस पांच मुनीश्वरों के वचन यहां पर मैंने लिखे और उनके न्यूनान्विक
 भाव से वियय भेदपर विभागकरि दिखलाया तैमे और भी स्मृतियों के वचन टंडि
 कर विभाग कर लेना चाहिये क्योंकि ग्रन्थ बढि जानेके डरसे यहां सब नहीं लिखे
 जाते हैं. फिर कहिते हैं-कि- यही प्रायश्चित्त रूपी श्रुतों का समूह जिस जिस
 परिमाण से लिखा गया तिसमें से एक चौथाई कम करिके तीन पाद उसके लिये

समझना कि जिसने यज्ञ कार्य में लगी हुई स्त्री का वध किया हो या यागस्थस्त्री पुरुष का या यागस्थ वैश्य पुरुष का या आत्रेयी का वध किया हो (आत्रेयी के लक्षणा तीसरे परिच्छेद में देखो ॥ ३०२ ॥

योगीश्वर ने इसी ३०२ मूल श्लोक में ब्रह्महत्या पर तीन दिन का व्रत कहाया अगले मूल श्लोक में विकल्प के लिये उसी ब्रह्महत्या पर एक ही दिन का व्रत कहेंगे परन्तु इन दोनों विधान को छोटा मत समझना क्योंकि दोनों में जल का निवास भी दर्शाया है जो सबसे बड़ा तप होता है ॥

(प्रायश्चित्तान्तरंब्रह्मघ्नस्यैव)

लोमभ्यःस्वाहेत्यथवादिवसंमारुताशनः । जलेस्थित्वाऽग्निं जुहुयाच्चत्वारिंशत्घृताहुती ३०३ ॥

अर्थः—अथवा दिन भर वायु भक्षणा किये जलमें स्थिति करिके लोमभ्यः स्वाहा इत्यादि मंत्रोंसे घृतकी चालीस आहुतें अग्निमें होमै=अर्थात्—अथवा जो पहिले कहे प्रायश्चित्तको न करना चाहै तो यह करै कि एक दिन रात भर उपवासरूपी व्रत किये हुये दिवस बीतिजाने पर संध्या समयसे लेकर तमाम रात्रिभर जलमें बैठै फिर प्रातःकाल जलमेंसे निकसिके अग्निको वेदीपर प्रज्वलित करै तिसमें चालीस आहुतियां घीसे होमै उन्हीं मंत्रोंसे कि जो पहिले (ब्रह्महत्यावाले प्रकारकाके बीच उनतीसवें २६ परिच्छेदके प्रारम्भसे २४७ दोषोंमेंतालिस के मूलश्लोक और उसी की अधिकोक्ति में) लोमभ्यः स्वाहा इत्यादि आठ मंत्र लिखे गयेथे उन प्रत्येक से पांच२ आहुतें छोड़ै सो आठ पंजे चालीस होतीहैं—यद्यपि सकही दिन कहा तथापि इसको पूर्वाक्तके बराबर समझना जलमें निवास एक राति भर करने के बड़प्पन से यह प्रायश्चित्त छोटा नहीं ॥ ३०३ ॥ इतिब्रह्मवधमहाप्रातकस्यप्रायश्चित्तं ॥